

श्री लक्ष्मण स्वरूप हिन्दी ग्रन्थमाला-३

ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य

(तुलनात्मक अध्ययन)

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पीएच० डी० उपाधि के लिये
स्वीकृत शोध प्रबन्ध]



डॉ० श्रीमती कणिका तोमर, एम० ए०, एम० एड०, पीएच० डी०,
अध्यापिका, हिंदी भवन
विश्वभारती, शान्तिनिकेतन ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
१९६४

मूल्य { पूर्ण कपड़े की जिल्द ९)
कागज की जिल्द ८)

मुद्रक

लक्ष्मीदास

वनारस हिन्दू युनिवर्सिटी प्रेस

वाराणसी—५ (भारत)

श्रद्धेय सुधीदा
तथा
श्रद्धेया स्वप्नादी को
सादर समर्पित ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के वणव-साहित्य को भिन्न भिन्न पहलुआ से समझने की चेष्टा की गई है। "ब्रजबुलि" उस काव्य भाषा का नाम है जिसमें पूर्वी प्रदेश जसे बंगाल, आसाम, उड़ीसा तथा नेपाल में मुख्य रूप से वृष्ण-लीला का वणन किया गया है। इसकी विवेचना 'ब्रजबुलि' के उद्भव और विकास वाले अध्याय में की गई है। ब्रजभाषा की नाइ यह किसी अचल विशेष में बोली जाने वाली भाषा नहीं है। ब्रजभाषा और ब्रजबुलि में रचित साहित्य अत्यन्त विशाल है। सबडों वर्षों तक भक्त-कविगण अपनी रचनाआ द्वारा अपने प्रेमाराध्य को अपनी भक्ति निवेदित करते रहे हैं और भारतीय जन समाज को अनुप्रेरित करते रहे ह। भारतीय जनचित्त उससे अभिभूत रहा है। प्रस्तुत प्रबन्ध में इस प्रेरणा के मूल उत्स के उदघाटन की चेष्टा की गई है। सुलनात्मक दृष्टि से ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के वणव-साहित्य के अध्ययन से यह समसा जा सवता है कि उस मूल प्रेरणा ने विभिन्न स्थाना में कौन-सा रूप ग्रहण किया और उस रूप ग्रहण करने के पीछ कौन सी शक्ति काय करती रही है। दोना का पारस्परिक क्या सवध रहा है और दोनों एक दूसरे से किम प्रकार प्रभावित होते रहे हैं या प्रभावित करते रहे हैं। एक सीमित क्षेत्र में अपने आप को निबद्ध कर लेने पर सम्पूर्ण को समझना या उसका मूल्यांकन करना समभव नहीं हो पाता।

यह बात बड़ी अद्भुत-सी लगती है कि ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी में वणव भक्ति की धारा ने समस्त भारतवर्ष को इतने प्रबल वेग से आलाडित कर दिया। भारतीय साहित्य और ससृति के अध्येताओ ने इसे रुझ किया है। यह भक्ति की धारा रुक्षिण से आई और विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के कारण इमने देग के भिन्न भिन्न भागा में भिन्न स्वरूप ग्रहण किया मध्ययुग में यह धारा साहित्य के माध्यम से और भी स्पष्ट होकर दिताई पडी। समसामयिक साहित्या ब्रजभाषा, बंगला, गुजराती मराठी उड़ीसा, आसामी—के अनुगीलन से ऐसा जान पडता है कि समुचा भारत एक ही साधना एक ही भावना, एक ही विचार धारा एक ही विश्वास के सूत्र में गाड़ भाव से गुम्पित है। भारत का मध्य

कालीन साहित्य वस्तुतः एक ही है और वह है वैष्णव-साहित्य । अतः विभिन्न वोलियों और देश के विभिन्न भागों के साहित्य का व्यष्टि रूप से परीक्षण उस विनाश साहित्य के यथार्थ स्वरूप का परिचय नहीं देती । इनलिये अगर हमें उसके यथार्थ मूल्यांकन की आवश्यकता है तो उसे समष्टि में देखना होगा ।

यह सम्पूर्ण वैष्णव-साहित्य एक विशेष दृष्टिभंगी में लिखा गया है और इसे समझने के लिये उस "दृष्टिभंगी" को ध्यान में रखना आवश्यक है । भक्ति-आन्दोलन के पूर्व भगवान् का ऐश्वर्य-रूप, सर्वशक्तिमान रूप ही प्रधान था । धर्म की रत्नानि देखकर धर्म के अभ्युत्थान के लिये भगवान् अवतार धारण करते हैं । इसी रूप को ध्यान में रखकर भक्त उनके माथ अपना संबन्ध जोड़ता है । यह सबव्य जैसे भक्त को वाध्य होकर जोड़ना पड़ता है, क्योंकि भगवान् सर्वशक्तिमान हैं और वह अक्षम । भक्ति-आन्दोलन ने जैसे इस सबव्य के पीछे जो एक वाध्यता की भावना थी उसे उड़ा दिया । इस भक्ति ने प्रेरित होकर भगवान् के साथ आप सबव्य स्थापित करना चाहता है, लेकिन जानता नहीं कि क्यों ? वस इतना ही भर वह जानता है कि बिना उसके वह रह नहीं सकता, बिना उसके वह अपूर्ण है । यह अहेतुकी सबव्य स्थापित कर वह चरम परितृप्ति का अनुभव करता है । वह भीतर ही भीतर इस सबव्य-स्थापना के लिये व्याकुल रहता है । ससार के सभी सबव्य उसे बचन से प्रतीत होते हैं ।

"वैष्णव धर्म का मूल तत्त्व" शीर्षक अपने एक लेख में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने वैष्णव-भक्तों की दृष्टिभंगी का बड़े सुन्दर ढंग से स्पष्टीकरण किया है । यह लेख विश्वभारती पत्रिका (हिन्दी), जनवरी-मार्च १९४५ ई० के अंक में प्रकाशित हुआ है । उसमें बतलाया गया है कि भक्त समझता है कि "जिस व्याकुलता में मैं उन्हें चाहता हूँ ठीक वैसी ही व्याकुलता लेकर वे भी मुझे चाहते हैं । इसीलिये तो वे मुझे इस प्रकार सब ओर से अपनी ही तरफ आकर्षित किया करते हैं । विश्व जगत् में सर्वत्र उनकी वामुरी मेरा ही नाम पुकारती हुई बज रही है । ... इसीलिये इस ससार की सभी सुन्दर वस्तुएँ मुझे अपने ही से दूर खींच ले जाती हैं और जहाँ ले जाकर उत्तीर्ण करती हैं वही मेरे वे परम बन्धु ओठों पर मुस्कान लिए बैठे हुए हैं । हम चाहे जिसे भी क्यों न चाहे वस्तुतः चाहते उन्हीं को हैं । सब प्रकार के प्यार-दुलार का अर्थ ईश्वर को ही ज्योनाधिक परिमाण में-जाने अथवा अनजाने-हृदय में उपलब्ध करना है । ... आनन्द उसके सिवा और कहीं नहीं । जल-थल-आकाश, फल-फूल-शस्य, पिता-

पुत्र भ्राता, पत्नी-कन्या माता में वही आनन्द रूप एकमात्र विराजमान है। जीवन में जो हमारा परमप्रिय है, वही हमारा परमेश्वर है। जहाँ वे असौम्य हैं और मैं ससीम, वे स्रष्टा हैं, मैं स्रष्ट, वे ईश्वर हैं, मैं दीन, वही उनमें और मुझमें अनन्त व्यवधान है। वहाँ किसी भी तरह उनका ओर छोर पाना संभव नहीं। किन्तु वहाँ वे भरे ही लिए सुन्दर होकर, प्रिय होकर मेरे ही पुत्र-शत्रु अथवा प्रेमी बनकर मुझे मधुर भाव से दर्शन देते हैं, वही वे मेरे समक्ष होकर मानो मेरे ही प्रेमपाश में पकड़ाई दे जाते हैं। उस समय वे मथुरा का राजत्व त्याग, वासुरिया हाथ में लिए, वृंदावन के गोप बालका में आकर सहे होते हैं। इसलिये भक्त पुकार कर कहता है

। तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानिय जो भाव ।

वास्तव में भक्ता के इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखे बिना भक्ति-काव्य के मर्म को समझना कठिन है।

प्रस्तुत प्रबंध में ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के कृष्ण काव्य का समझने तथा कृष्णभक्ति शास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों के दृष्टिकोणों को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। प्रस्तुत प्रबंध दस अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में कृष्णव भाव धारा को समझने की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। कृष्णव धर्म साधना के श्रमिक विकास, भक्ति तथा भगवान् के अवतार लेने संबंधी तथ्या पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही यह भी समझने की चेष्टा की गई है कि यह धर्म-साधना किस प्रकार से साहित्य और शिल्प में प्रतिफलित हुई है। राधा-कृष्ण संबंधी कथा ने किस प्रकार से साहित्य और शिल्प को अनुप्राणित किया है इसका परिचय दिया गया है। ईमवा सन् की सालहवी गतादी के पूर्व ब्रजभाषा तथा ब्रजबुलि के कृष्ण-काव्य का स्वरूप क्या था इस पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। साहित्य पर बल्लभाचार्य और चतन्य का प्रभाव कितना और किस रूप में पड़ा इसे समझने के लिए सूर-भूय ब्रजभाषा और चतन्य पूर्व बंगीय कृष्ण काव्य का परिचय दिया गया है। इस संबंध में सूर-भूय ब्रजभाषा के कई कवियों जैसे बजू बाबरा, तरहरि तथा विष्णुदास की रचनाओं की विवेचना इस अध्याय में की गई है। इन कवियों की चर्चा हिन्दी साहित्य के इतिहास में नहीं के बराबर ही हुई है। चण्डीदास के पदा पर कुछ विस्तार से लिखा गया है चूंकि हिन्दी के पाठकों का उसे बहुत कम परिचय है।

दूसरे अध्याय में ब्रजभाषा की भाषागत विरोधताओं तथा उसके उद्भव और क्रमिक विकास को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। अभी तक इन प्रकार से उसे क्रमबद्ध रूप में रखने के प्रयत्न का अभाव ही रहा है।

तीसरे अध्याय में वैष्णवता के प्रभाव से ब्रजभाषा साहित्य में होने वाले परिवर्तनों की विवेचना की गई है। किम प्रकार से भाव और शैली के परिवर्तनों में इसका हाथ रहा है इस पर प्रकाश डाला गया है। मध्य युग के साहित्य का धर्म से अत्यधिक सन्नत रहा है। ब्रजभाषा के भक्ति-साहित्य के घनने और विकसित होने में धर्म का ही हाथ रहा है। इस अध्याय में उन्ने समझने की चेष्टा की गई है। धर्म और साहित्य का योग इन काल में किम राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति में सम्पन्न हुआ उसका भी परिचय दिया गया है।

राधा-कृष्ण की लीला पर आधारित ईसवी मनु की मोलह्वी तथा बाद की शताब्दियों में जिस साहित्य की रचना हुई उसका अध्ययन करने पर यह सहज ही समझा जा सकता है कि किसी सम्प्रदाय में अन्नभुक्त भक्त-कवियों ने लीला के किसी एक विशेष अंग पर बल दिया है तो दूसरे सम्प्रदाय के कवियों ने किमी अन्य अंग पर। इस प्रकार की विभिन्नता और वैचित्र्य के पीछे उन सम्प्रदायों की भाव-पद्धति, मान्यताओं आदि का हाथ रहा है अतएव चतुर्थ अध्याय में वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सम्प्रदाय तथा मखी सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित दर्शन और सिद्धान्त की विवेचना की गई है।

पाचवे अध्याय में ब्रजभाषा के भक्त-कवियों की रचनाओं, जन्मवृत्तान्त तथा काव्य के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला गया है। इन अध्याय में वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख कवियों के अलावा अन्य कृष्ण-सम्प्रदाय के कवियों का भी समावेश है, साथ ही ऐसे कुछ कवियों तथा उनकी रचनाओं का उल्लेख किया गया है जिन्होंने कृष्ण-सम्प्रदायभुक्त न होकर भी राधाकृष्ण पर ब्रजभाषा में भक्ति विषयक रचनाएँ की। वल्लभ शाखा के कवि दामोदर हरमानी तथा गदाधर द्विवेदी की रचनाओं का बहुत ही कम उल्लेख हुआ है। हरमानी की तो कुछ रचनाएँ ब्रजभारती पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख कवि परशु राम की रचनाओं पर भी अभी तक बहुत कम सामग्री प्रकाश में आई है। परशुराम रचित 'पराशुराम सागर' की हस्तलिखित प्रति का, जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है, उपयोग किया गया है। इसी

प्रकार से निम्बाक सम्प्रदाय के हरिव्यास की रचनाओं के सबध में भी हिन्दी साहित्य में बहुत कम आगेचना हुई है। प० बलदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'भागवत संप्रदाय' में थोड़ा कुछ परिचय दिया है। हरिव्यास की रचना 'महावाणी' अत्यन्त महत्त्व की है। महावाणी का उपयोग इस अध्याय में किया गया है। इसी प्रकार से सखी-संप्रदाय के भी बहुत से भक्त-कवियों की रचनाएँ तथा जीवनी बहुत कम प्रकार में आई हैं। सखी-संप्रदाय के कई कवियों की रचनाएँ तो पहली बार इस अध्याय के द्वारा प्रकाश में आ रही हैं। इन कवियों में बिहारनि दास, नागरी दास, (उन नागरी दास के भिन्न जा राजा थे), सरसदास नवलदास, श्रीवृष्णदास, नरहरिदास तथा रसिकदाम आदि हैं। खोज रिपोर्टों में कहीं-कहीं इनमें से कुछ के पद मिल जाते हैं। इन कवियों की वाणियों के संग्रह की हस्तलिखित प्रति का उपयोग इस अध्याय में किया गया है। गदाधर भट्ट की, जो वास्तव में चैतन्य संप्रदाय में अन्तर्भुक्त थे रचनाओं का भी विवेचन इस अध्याय में किया गया है। चैतन्य संप्रदाय के और भी कई भक्त-कवि हो गए हैं जिन्होंने ब्रजभाषा में पद रचना की है। इससे एक बात का पता अवश्य चल जाता है कि चैतन्य और बल्लभ सम्प्रदाय का एक दूसरे पर अवश्य प्रभाव पड़ा होगा।

छठे अध्याय में ब्रजबुलि के उद्भव और विकास की विवेचना की गई है। ब्रजबुलि की रचनाएँ नेपाल बगाल आसाम और उड़ीसा में मिलती हैं। उनके सबध में इस अध्याय में प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। ब्रजबुलि के व्याकरण के सबध में कुछ विशेष जानकारी हिन्दी ग्रन्थों से प्राप्त नहीं होती अतएव इस अध्याय में कुछ विस्तार से उनकी चर्चा की गई है। इसी कारण ब्रजभाषा की अपेक्षा ब्रजबुलि के व्याकरण का परिचय अधिक दिया गया है।

सातवें अध्याय में बगाल में वैष्णवता के प्रभाव पर विचार किया गया है। किस प्रकार से वैष्णव धर्म ने साहित्य का प्रभावित किया तथा किन परिस्थितियों में उसका प्रसार हुआ इन बातों की कुछ जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न इस अध्याय में किया गया है। इस्लाम धर्म तथा अचल के अन्य धर्म और संप्रदायों का प्रभाव किन किन रूपों में पड़ा इसकी चर्चा इस अध्याय में की गई है। तत्कालीन राजनतिक आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था का भी परिचय दिया गया है।

जिस प्रकार से ब्रजभाषा के कवियों की रचनाओं को समझने के लिये विभिन्न वैष्णव संप्रदायों की चर्चा चौथे अध्याय में की गई है उसी प्रकार से

आठवें अध्याय में चैतन्य प्रवर्तित गौरीय द्रवणव मत के दर्शन और सिद्धान्तों को समझने का प्रयत्न किया गया है। 'अतिन्त्य भेदाभेद', गद्या तरु, गगानुगा भक्ति आदि पर उस अध्याय में विचार किया गया है।

नवें अध्याय में ब्रजबुलि के पद कर्ताओं की रचनाओं तथा जीवनवृत्त पर प्रकाश डाला गया है।

अन्तिम अर्थात् दसवें अध्याय में सिद्धान्त और साधना, पदावली, भाषा तथा छन्द और अलंकार की दृष्टि से ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य पर तुलनात्मक रूप से विचार किया गया है।

प्रस्तुत प्रवच की सामग्री का सकलन कई स्थानो ने किया गया है। उन स्थानो और उनके अधिकारियो एवं कर्मचारियों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा वनाग्न ट्रिन्डू विश्वविद्यालय की लायब्रेरी ने मैंने बहुत लाभ उठाया है। ब्रजभाषा के कवियों की ग्रन्थ-लिखित प्रतियाँ मुझे सभा की लायब्रेरी में मिली। वही प्रकार ने विश्वभारती शान्तिनिकेतन में सुरक्षित दो हस्तलिखित पद-संग्रह गन्ध एवं फुटक-रूपों की हस्तलिखित प्रतियों से ब्रजबुलि के कुछ पदों के आकलन में सहायता मिली है। कलकत्ता की नेशनल लायब्रेरी तथा रायल एशियाटिक सोसायटी में भी ब्रजबुलि सबधी बहुत सी सामग्री मिली।

इस प्रवच के प्रस्तुत करने की प्रेरणा गुरुवर आचार्य डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी से मिली। उनके मुझव तथा पथ-प्रदर्शन से लाभ उठाने का मतत प्रयत्न किया है। महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ जी कविराज का आशीर्वाद भी प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला है। सपूर्ण प्रवच की रूप रेखा तथा मतों के सिद्धान्त और साधन-पद्धति सबधी बहुत-सी जानकारो उनके द्वारा प्राप्त हुई है। उनके आशीर्वाद प्राप्त करने का सौभाग्य बराबर प्राप्त होना रहे यही प्रार्थना है। ब्रजबुलि के सबध में डा० मुकुमार मेन, श्री तपन मोहन चटर्जी, विश्वभारती के अध्यापक प० तिनार्ड विनोद गोस्वामी तथा अध्यापक डॉ० श्री पंचानन मण्डल से अत्यधिक प्रोत्साहन मिला है। डॉ० पंचानन मण्डल ने नाना भाव से इस प्रवच को प्रस्तुत करने में सहायता पहुँचायी है। स्वर्गीय डॉ० प्रबोधचन्द्र वागची (भूतपूर्व वाइस चान्सलर विश्वभारती विश्व-विद्यालय) ने नेपाल के नाटको के सबध में सामग्री देकर अमूल्य सहायता पहुँचाई है। सभी के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

गुरुवर डॉ० जगन्नाथ प्रसाद जी शर्मा ने प्रस्तुत कृति को काशी हिन्दू विश्व विद्यालय की ओर से प्रकाशित होने वाली ग्रन्थमाला में प्रकाशित करने की व्यवस्था की उसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ। विश्वविद्यालय मुद्रणालय के अधिकारियों ने जिस तत्परता से कृति को छापा है इसके लिए उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

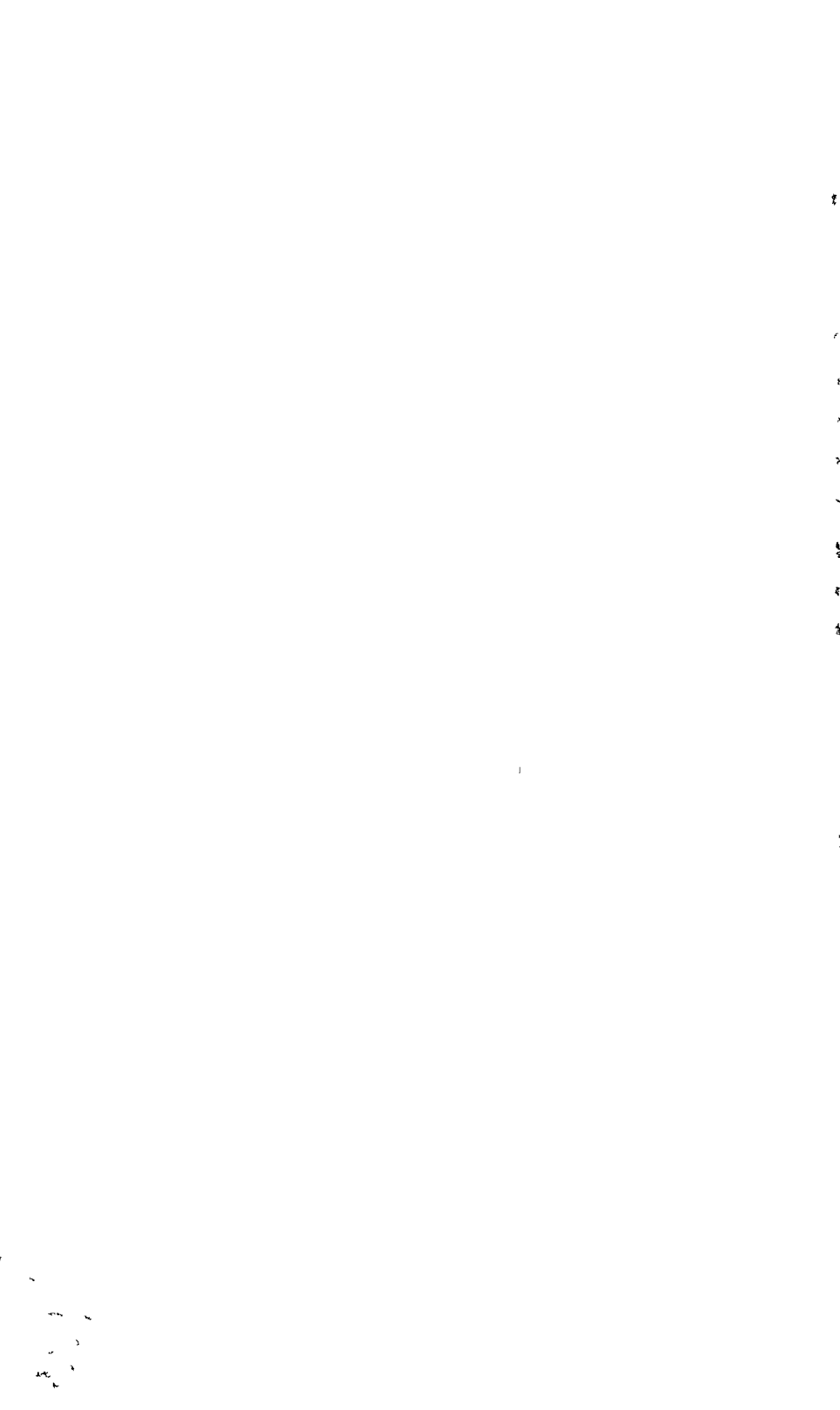
नामानुक्रमणिका तैयार करने में रिसच स्कालर कुमारी चचल वर्मा, एम० ए० और श्री देवनाथ चतुर्वेदी, एम० ए० ने सहायता की है। उनका धन्यवाद देती हूँ। मेरी असावधानी के कारण छपाई में कुछ असुद्धियाँ रह गई हैं। सहृदय पाठक क्षमा करेंगे।

हिंदी भवन, शान्ति निकेतन

४-३-१९६४

कणिका तोमर





सक्षिप्त विषय सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
आमुख	१-६
विस्तृत विषय-सूची	९-२५
पहला अध्याय—पद्य भूमि	१-१५०
(१) षष्णव धम का सक्षिप्त विवरण	३-५७
(क) षष्णव साधना का इतिहास	३-३६
(ख) षष्णव साधना भक्ति साधना है	३६-५१
(ग) भगवान् वा अवतरण	५१-५७
(२) साहित्य और शिल्प में राधाकृष्ण-कथा का स्वरूप	५७-१०१
(३) बल्लभ और चतय से पूव का षष्णव काव्य साहित्य	१०१-१५०
(क) सूर से पूव ब्रजभाषा का षष्णव काव्य साहित्य	१०१-११७
(ख) चतय मे पूव का बगीय षष्णव काव्य साहित्य	११८-१५०
दूसरा अध्याय—ब्रजभाषा का उद्भव और विकास	१५१-१७६
तीसरा अध्याय—ब्रजभाषा साहित्य पर षष्णवता का प्रभाव	१७७-१८९
चौथा अध्याय—ब्रजभाषा साहित्य के विभिन्न सम्प्रदायों के बदान और सिद्धान्त	१९१-२३८
(क) बल्लभ सम्प्रदाय	१९१-२२९
(ख) निम्बाव सम्प्रदाय	२२९-२३०
(ग) सखी सम्प्रदाय	२३०-२३३
(घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय	२३३-२३८
पाचवा अध्याय—ब्रजभाषा साहित्य	२३९-३८०
(क) बल्लभ सम्प्रदाय के कवि	२३९-३०१
(ख) निम्बाव सम्प्रदाय के कवि	३०१-३४२
(ग) सखी सम्प्रदाय के कवि	३४२-३४८

विषय .	पृष्ठ सख्या
(घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कवि ...	३४८-३६५
(ङ) चैतन्य सम्प्रदाय के कवि ..	३६६-३६९
(च) कुछ अन्य कवि ...	३६९-३८०
छठा अध्याय—ब्रजबुलि का उद्भव और विकास ..	३८१-४४०
(क) नैपाल ...	३९८-४०९
(ख) वगाल ..	४०९-४१८
(ग) आसाम ..	४१८-४२७
(घ) उड़ीसा ...	४२७-४४०
सातवा अध्याय—बंगला साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव ..	४४१-४५८
आठवा अध्याय—चैतन्य सम्प्रदाय के दर्शन और सिद्धान्त ..	४५९-४८९
नौवा अध्याय—बंगाल का ब्रजबुलि साहित्य ..	४९०-५८६
दसवा अध्याय—तुलनात्मक अध्ययन ...	५८७-६२९
(क) भक्ति और साधना ...	५८७-६०६
(ख) पदावली ...	६०६-६१८
(ग) भाषा ...	६१८-६२५
(घ) छन्द और अलंकार ..	६२५-६२९
× × × ×	
सहायक ग्रन्थो की सूची :	...
हिन्दी ...	६३०-६५३
हिन्दी पत्रिकाएँ और अभिनन्दन ग्रन्थ ...	६३०-६३९
हिन्दी अप्रकाशित ग्रन्थ और खोज रिपोर्ट ..	६३९-६४०
बगला, आसामी, उडिया ..	६४०-६४२
बगला पत्रिकाएँ ...	६४३-६४५
बगला अप्रकाशित ग्रन्थ ...	६४६
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश ...	६४६
अंग्रेजी ..	६४६-६५०
अंग्रेजी पत्रिकाएँ ..	६५१-६५३
	६५३

विस्तृत विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
पहला अध्याय पृष्ठभूमि	१-१५०
(१) वैष्णव धर्म का संक्षिप्त विवरण	३-५७
(क) वैष्णव साधना का इतिहास वैष्णव धर्म का व्रजभाषा और व्रजबुलि से सम्बन्ध-वैष्णव धर्म का स्वरूप-वैष्णव साधना के विकासक्रम का त्रिविध वर्गीकरण-वैष्णव धर्म की प्राचीन सज्ञा 'पाचरात्र मत-पाचरात्र साहित्य-पाचरात्र-सिद्धांत का विभाजन-परमतत्त्व वासुदेव-शक्ति और गक्तिमान गक्ति-तत्त्व-सृष्टि तत्त्व-पङ्गुण पाचरात्र मत में लीलावाद-जाव के द्विविध भेद-पाचरात्र-साहित्य में राधाकृष्ण-पाचरात्र मत का साधन पक्ष-पाचरात्र मत में भक्ति की प्रधानता-वैष्णव धर्म की दूसरी प्राचीन सज्ञा 'भागवत धर्म-शिला-लक्ष और प्राचीन लेखा में भागवत धर्म का उल्लेख-गुप्त-नरेश और वैष्णव धर्म-आलवार सन्तो की भावधारा-द्वादश आलवार सन्त-आलवार सन्तो का साहित्य-आलवारों की भक्तिमयी साधना-आलवारों की विशेषताएँ-दागनिक आचार्यों की भावधारा-नाथमुनि परम्परानुसार सर्वप्रथम गण्य-यामुनमुनि (९१६ १०४० सन् ईसवी) श्रीसम्प्रदाय या विनिष्टा द्वैतवाद श्रीरामानुजाचार्य (१०१७ ११३७ सन् ईसवी)-उपास्य-स्वरूप-भक्ति और प्रपत्ति की प्रधानता-ईश्वर का स्वरूप-मूर्ति भगवान् की लीला ह-चित् का स्वरूप प्रकार-अचित् का स्वरूप-भक्ति के साधन-भक्ति ही एक मात्र लक्ष्य-भक्ति का मार, प्रपत्ति-प्रपत्ति के भेद-जीव और भगवान् का सम्बन्ध-जीव में दास्यभाव-श्रावणवो के दो दल-ग्रह्य सम्प्रदाय या द्वैतवाद मध्वाचार्य (११९७	३-३६

विषय :

पृष्ठ-संख्या

१२७६ सन् ईसवी) — ऐतिहासिक महस्व-त्रिया की दो अवस्थाएँ—परमात्मा—लक्ष्मी—उपास्यदेव—जीव-जगत्—पंचविध भेद या प्रपञ्च—मोक्षलाभ—मुक्ति में आनन्द भोग तारतम्य—मुक्ति के प्रकार—माधवमत का गौडीय सम्प्रदाय में सम्बन्ध—हम या मनकादि सम्प्रदाय या द्वैताद्वैत मत—निम्बार्काचार्य—निम्बार्क का आविर्भाव काल—द्वैताद्वैत मत की प्राचीनता—ब्रह्म—उपास्य—स्वरूप—चित्त—अचित्—युगल—स्वरूप उपास्य—परामुक्ति और गोलोक रुद्र सम्प्रदाय या शुद्धाद्वैतवाद (विष्णुस्वामी और बल्लभाचार्य) . सिद्धान्त—पक्ष अस्पष्ट—बल्लभाचार्य (१४७८-१५३० सन् ईसवी)—गौडीय सम्प्रदाय या अचिन्त्यभेदा भेद (श्री चैतन्य १४८६-१५३४ सन् ईसवी) गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय—उपामना—पद्धति का बल्लभ और निम्बार्क से साम्य—अन्य प्रमुख सम्प्रदाय—राधावल्लभीय सम्प्रदाय (हितहरिवंश) —प्रवर्तक—राधा का प्राधान्य—सखी सम्प्रदाय (स्वामी हरिदास) . प्रवर्तक ।

- (ख) वैष्णव साधना भक्ति साधना है : वैष्णव वर्म और भक्ति—भक्ति की विभिन्न व्याख्याएँ—जीव और भगवान् का सम्बन्ध—साधना से यथार्थ ज्ञान—भक्ति का स्वरूप गुणमयी और निर्गुणा भक्ति—निर्गुणा भक्ति के दो प्रकार—भक्ति की पुष्टि योग्यता—भाव भेद से, भक्ति—रस में पाँच भेद— (१) शान्त भक्तिरस. शान्ति रति का स्वरूप—दो प्रकार के भेद—शान्तभाव के भक्त की विशेषता—वैष्णव मत में शान्ता रति का निम्नतम स्तर— (२) दास्य भक्ति रस . प्रीति—रति का स्वरूप—दो भेद भगवद्दासों के प्रकार—सेवा—कर्म और दास्य—भक्ति का स्वरूप— (३) सख्य भक्ति रस—सख्य रति का स्वरूप—शान्ति—प्रीति की तुलना में श्रेष्ठता—सख्य भक्तों के प्रकार—रस—तारतम्य— (४) बत्सल भक्ति रस. वात्सल्य—रति का स्वरूप—वात्सल्य भक्ति का स्वरूप

३६-५१

विषय

पृष्ठ-संख्या

(५) मधुर भक्ति रस मधुरा-रति का स्वरूप-त्रिविध मधुरा-रति-मधुरा-रति स्ववीय और परकीय-शृंगार रस द्विविध-विप्रलम्ब और सभोग के प्रकार माधुय-भक्ति की सवश्रेष्ठता ।

(ग) भगवान् का अवतरण परतरव का द्विविध स्वरूप अवतार भेद-अवतार का प्रयाजन-स्वयं रूप के अवतरण का प्रयोजन-लीला-द्विविध लीला-लीला विविध अवतरण द्वारा भगवन्-मानव-मुल्म भावों के आलम्बन ।

(२) साहित्य और शिल्प में राधाकृष्ण-कथा का स्वरूप- ५७ १०१

कृष्ण का ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप-कृष्ण के लीला नायक रूप का प्राधान्य-गोपाल कृष्ण का आभीर जाति से सम्बन्ध-तामिल साहित्य में 'कृष्ण'-मायोन और कृष्ण कुडकुट्ट नृत्य-श्रीकृष्ण के अय-नृत्य-कुरुद वृन् का उखाडना-वृक्ष वशीकरण प्रथा-आलवारा की वाणी में श्रीकृष्ण प्रियतमा प्रधान गोपी-नप्पिनाइ-दोल उत्सव कविया द्वारा राधा-कृष्ण-कथा का ग्रहण-काव्य में प्रचलित राधा-कृष्ण-कथा का वैष्णव धर्म में ग्रहण-हरि वश में कृष्ण-कथा विष्णुपुराण में कृष्ण-कथा-श्रीमद् भागवत में कृष्ण लीला का पूण विकास-श्रीमद्भागवत में गोपियों की प्रेमलीला-पुराणा में राधा का उल्लेख साहित्य में राधा कृष्ण कथा का प्राचीनतम प्राप्त उल्लेख वेणी-महार में मानिनी राधा का उल्लेख बाल चरित में ब्रज कथा-ध्वर्यालोक में राधा-कृष्ण सवधी श्लोक-ववी द्रवचनस-मुच्चय में उदतराधा सम्बन्धी श्लोक-नल चम्पू में राधा कृष्ण का उल्लेख-ताम्रपत्रा में राधा कृष्ण का-उल्लेख अपभ्रंश के प्रवचकाव्य में श्रीकृष्ण लीला रूपों का दर्शन हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के उदाहरणों में राधा कृष्ण का उल्लेख-सदेग रासक में गोपालिका दशावतार-चरित-दशावतार चरितों में कृष्ण का पराक्रमी स्वरूप-

विषय :

पृष्ठ-संख्या

वाक्पति गिला लेख-महुन्निकर्णामृत' में कृष्ण लीला गोपी मदेरा विषयक ब्लॉक-गीतगोविन्द-कृष्ण-कर्णामृत-सर्वय-प्रस्तारलिपि में कृष्ण का उल्लेख-प्राच्यत पिंगल-प्राकृत कल्पतरु-श्री भाषाओं में राधाकृष्ण लीला विषयक काव्य-गन्य-वैष्णव-काव्य में विरह-पक्ष की प्रधानता-राधाकृष्ण-कथा के लौकिक तथा पारलौकिक रूप का पृथक्करण-गौडीय वैष्णव धर्म में मधुर रस की लीलाओं का प्राधान्य-गौडीय वैष्णव संप्रदाय के मुख्य प्रचारक-वैष्णव कवियों की वाणी में राधाकृष्ण-कथा का विस्तार-मिलन-विरह के नवीन प्रसंग-गोविन्दलीलायत में राधाकृष्ण की आठवालीय लीला-गौडीय संप्रदाय में परकीया भाव की सर्व श्रेष्ठता-वल्लभ संप्रदाय में बाल-कृष्ण-श्रीकृष्ण के शीर्ष पक्ष की क्रमशः क्षीणता-श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी मूर्तियाँ-भारत से बाहर के देशों में कृष्ण-लीला के चिन्नावेश-चैतन्य-चरितामृत में श्रीकृष्ण-लीला विषयक मूर्तियों का उल्लेख-चित्रकला में श्रीकृष्ण-लीलाएँ ।

(३) वल्लभ और चैतन्य से पूर्व का वैष्णव-काव्य साहित्य १०१-१५०

(क) सूर से पूर्व ब्रजभाषा का वैष्णव काव्य साहित्य : १०१-११७

गोस्वामी विष्णुदास-विष्णुदास का पद-साहित्य-वैजू दावरा-वैजू दावरा के पद-नरहरि-हुमायूँ, शेरगाह, अकबर के दरवारी कवि-रुमिणी मंगल-नरहरि के भक्ति विषयक स्फुट पद-निम्बाकं संप्रदायी कवि तथा उनकी रचनाएँ-श्रीमद् रचित युगल-गतक-हरिव्यास रचित 'महावाणी'-परशुराम रचित 'परशुराम सागर' ।

(ख) चैतन्य से पूर्व का वंगीय वैष्णव काव्य साहित्य : ११८-१५०

मलाधर वसु-श्रीकृष्ण-विजय-श्रीकृष्ण कीर्तन-श्रीकृष्ण कीर्तन में वर्णित लीलाएँ-श्रीकृष्ण कीर्तन के पद-चण्डीदास और गीतगोविन्द की राधा-चण्डीदास के

विषय

पृष्ठ-सख्या

कुछ पद-मैथिल कवि विद्यापति को बंगालिया का अपना-चण्डीदास और विद्यापति-विद्यापति की विशेषताएँ-विद्यापति के कुछ पद ।

दूसरा अध्याय—ब्रजभाषा का उद्भव और विकास—

१५१-१७६

काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा-ब्रजभाषा साहित्य की व्यापकता-सन ईसवी की १६ वीं शताब्दी की छिटपुट रचनाएँ-'ब्रजभाषा' शब्द का प्रयोग-पिपल-पुरानी ब्रजभाषा का नाम-परिनिष्ठित अपभ्रंश-अवहट्ट-अवहट्ट-उत्तर भारत की सामान्य काव्य-भाषा-अवहट्ट पर प्राप्त विशेष की छाप-पूर्वी और पश्चिमी अवहट्ट-पूर्वी अवहट्ट की रचनाएँ-पश्चिमी-अवहट्ट की रचनाएँ ब्रजभाषा की भाषा सबधी कुछ विशेषताएँ-प्राचीन काव्य भाषा का रूपान्तर-आधुनिक भारतीय भाषाओं का उत्पन्न-परवर्ती अपभ्रंश में ब्रजभाषा का पूर्व रूप-प्राकृत पगल में ब्रजभाषा की क्रियाओं, सनाओं के प्रयोग-पृथ्वीराज रासो और 'ढाला मारू रा दूहा' में ब्रजभाषा का विकसित रूप-अमीर खुसरो की रचनाओं में ब्रजभाषा-सन ईसवी की १५ वीं शताब्दी तक ब्रजभाषा की रचनाओं का प्रभाव-कबीर की रचनाएँ-ब्रजभाषा साहित्य का आरम्भ और वल्लभ सम्प्रदाय-रामानन्द वल्लभाचार्य और अष्टछाप के कवि-वृंदावन में महाप्रभु चैतन्य के शिष्य-कृष्ण भक्ति और ब्रजभाषा साहित्य-तुलसीदास की रचनाएँ और नाभादास का भक्तमाल-नरोत्तमदास का मुदामा चरित तथा बादशाह अकबर की रचनाएँ-'रीतिकाल का साहित्य'-रीतिकाल के प्रमुख कवि-भारतेन्दु की रचनाएँ-ब्रजभाषा के गद्य साहित्य का विनास-ब्रजभाषा में लिखित टीका-ग्रन्थ-ब्रजभाषा के नाटक-ब्रजभाषा के लीला सबधी भक्त कवियों के नाटक ।

विषय :

पृष्ठ-संख्या

तीसरा अध्याय—ब्रजभाषा साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव :

१७७-१८९

ब्रजभाषा साहित्य और भक्ति आन्दोलन—तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति—वार्मिक आन्दोलन—भक्ति आन्दोलन का साहित्य पर प्रभाव—तत्सम शब्दों का प्रयोग—भक्ति काल के पूर्व का साहित्य—सूरदास के पहले की रचनाएँ—ब्रजभाषा साहित्य में लीला वर्णन—लीलागान की परंपरा—मधुर रस की भक्ति और ब्रजभाषा साहित्य—गेय पदों की परंपरा—काव्यत्व और भक्ति का योग—कृष्ण-भक्त कवि और नायिका-भेद—भक्ति आन्दोलन और ईसाई धर्म—मधुर रस की भक्ति और महायान—ब्रजभाषा की रचनाओं में कृष्ण-रस—भक्तिकाल के चरित—काव्य ।

चौथा अध्याय—ब्रजभाषा साहित्य के विभिन्न संप्रदायों के दर्शन और सिद्धान्त

...

१९१-२३८

- (क) वल्लभ सम्प्रदाय : वल्लभ—मत के प्रवर्तक श्रीवल्लभा-
चार्य—वल्लभ—मत की अन्य सनाएँ—वल्लभाचार्य का
साधन—पक्ष 'पुष्टि-मार्ग'—वल्लभ सम्प्रदाय में ब्रह्म या
श्रीकृष्ण : ब्रह्म का स्वरूप—ब्रह्म की लीला सृष्टि का
कारण—ब्रह्म के आविर्भाव—तिरोभाव की अवस्था—ब्रह्म के
तीन प्रकार—भगवान की शक्ति—माया—रसरूप श्रीकृष्ण
ही परब्रह्म—लीला के लिये श्रीकृष्ण का परिकरो
के साथ अवतरण—कृष्ण अवतार के दो रूप—वल्लभ
सम्प्रदाय में राधा . राधा-स्वरूप—राधा स्वमिनी और
स्वकीया—वल्लभ संप्रदाय में गोपी गोपी-स्वरूप—गोपियाँ
रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्ति—सर्वात्मभाव और
उसके पाच सोपान—गोपियाँ सर्वात्मभाव का पूर्ण प्रतीक—
गोपियाँ सर्वश्रेष्ठ भक्त—गोपी आत्मा और श्रीकृष्ण
परमात्मा—गोपियों के तीन प्रकार—'अन्यपूर्वा', 'अनन्य-
पूर्वा', सामान्या—अष्ट सखा-सखी—वल्लभ सम्प्रदाय में
जीव : जीव का स्वरूप—माया का जीव पर प्रभाव—

१९१-२२९

विषय

पृष्ठ-संख्या

भगवान् के अनुग्रह से जीव का ब्रह्मभाव-जीव के प्रमुख तीन प्रकार-पुष्टि जीव-मर्यादा जीव-प्रवाही जीव-मुख्य तीन प्रकार के जीवा का भेद-उपभेद-जीवा के वर्गीकरण की विशेषता-जीव का ब्रह्मभाव-वल्लभ संप्रदाय में जगत् जगत् ब्रह्म का अविद्वृत परिणाम-ब्रह्म जगत् का निमित्त और उपादान कारण-ब्रह्म-श्रुत 'जगत्' और जीव-कृत ससार-जगत् और ससार में भेद-भगवान् की भक्ति और कृपा से ससार की निवृत्ति-विद्या द्वारा अविद्या का उपशमन-जीव की चरम फल प्राप्ति 'ब्रह्मभाव'-वल्लभ संप्रदाय में भक्ति का स्वरूप माहात्म्य ज्ञान और प्रेम ही भक्ति है-पुष्टि भाग-मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति-भगवान् के अनुग्रह का तात्पर्य-लीला सवभावेन भगवान् का भजन-नवधा भक्ति तथा दसवी प्रेम लक्षणा भक्ति-दसधा भक्ति और अष्टछाप के कवि-प्रेम की तीन अवस्थाएँ-दीक्षा और ब्रह्म सवध-संप्रदाय के सेव्य रूप-प्रपत्ति-वल्लभ-संप्रदाय की विशेषताएँ-वल्लभ संप्रदाय का व्यापक प्रभाव—

- (ख) निम्बूक सम्प्रदाय—युगल-सरकार की उपासना और २२९-२३०
इस सम्प्रदाय के कवि-निम्बूक सम्प्रदायों में श्रीराधा की प्रधानता—
- (ग) सखी सम्प्रदाय स्वामी हरिदास-सखी सम्प्रदाय के २३० २३३
प्रवक्तक-भक्तमाल में वर्णित हरिदास जी का परिचय-
हरिदास जी के चमत्कारों से सम्यग्घित कहानियाँ-टटटी
सस्यान के महन्त-सखी सम्प्रदाय में गोपी भाव से उपासना
- (घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय प्रवक्तक-राधातत्व की २३३ २३८
प्रधानता-संप्रदाय में श्रीराधा का स्थान-युगल विशोर
रूप और नित्य विहार लीला-जीव वास्तव में प्रेमरूपा
गोपा है-हित' प्रेम ही परमात्मा-ब्रजभाषा और संप्रदाय
के भक्त कवि ।

विषय :

पृष्ठ-संख्या

पाँचवा अध्याय -- ब्रजभाषा-साहित्य

ब्रजभाषा-साहित्य और विभिन्न सम्प्रदाय

२३९-३८०

(क) वल्लभ-संप्रदाय के कवि - सूरदास-सूरदास पर वल्लभा- २३९-३०१

चार्य का प्रभाव-वल्लभाचार्य का प्रथम दर्शन-सूरदास की जन्मभूमि-सूरदास की जन्मतिथि-जीवन-वृत्त-दीक्षा सूरदास के विभिन्न नाम-क्या सूरदास अन्वे थे ?-प्रेम का स्वरूप-भक्तमाल में सूरदास का परिचय-लीला का स्वरूप-वात्सल्य का चित्रण-वाल-लीला-संयोग वर्णन-वियोग वर्णन-भ्रमरगीत-सूरदास की रचनाएँ-परमानन्ददास-परमानन्ददास का परिचय भक्तमाल में-'सारंग' छाप-भक्तमाल में वर्णित-चार परमानन्द-जन्मतिथि-व्याह का प्रसंग-प्रयाग में परमानन्ददास-दीक्षा-रचनाएँ-दास्य-भाव-वाल-लीला-विरह के पद-संयोग के पद-कृष्णदास-जीवन वृत्त-भक्तमाल में उल्लेख वार्ता का विवरण-रूप मावुरी के पद-खडिता नायिका-रचनाएँ-कुम्भनदास-भजनानदी कुम्भनदास-कुम्भनदास के पदों में मधुर रस की प्रधानता-प्रीति ही एकमात्र काव्य-कीर्तन की रचनाएँ-परम सतोषी कुम्भनदास-जन्म और मृत्यु-तिथि-नन्ददास-नन्ददास का जीवन वृत्त और भक्तमाल-रचनाएँ-कोमल कान्त पदावली-नन्ददास की गोपियाँ तथा भ्रमरगीत-विरह की विशेषता-संयोग-शृंगार के वर्णन-जीवन वृत्त-पूर्वा-नुराग के पद-छीत स्वामी जीवन वृत्त-दीक्षा-काव्य की विशेषता-गोविन्द स्वामी संगीतज्ञ-दीक्षा तथा जन्म और मृत्यु की तिथियाँ-जीवन वृत्त-रचनाएँ वाल-लीला-मधुर रस के पद-चतुर्भुजदास सम्प्रदाय में विगिष्ट स्थान-जीवन-वृत्त-रचनाएँ-वाल-लीला-रूपासक्ति और संयोग वर्णन-दामोदरदास हरसानी : वल्लभ सम्प्रदाय में इनका स्थान-जीवन-वृत्त-गोस्वामी विट्ठलनाथ और दामोदरदास-उनके कुछ पद-रसखानि

- जीवन-वृत्त, जन्म तिथि, वंश परिचय-रचनाएँ-आस करन भक्तमाल में वर्णित आमबरण जी का वृत्त-जीवन वृत्त और पद-गदाधर दास द्विवेदी रचनाएँ-जावन-वृत्त-गदाधर नाम के और अय भक्त-दीक्षा-इनके काव्य का वैशिष्ट्य-पद-नागरीदास जीवन वृत्त-नागरीदास की भक्ति-रचनाएँ-सूफी प्रभाव और अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग-राधावृष्ण-लीला-ब्रजभूमि से प्रेम-इश्क चमन ।
- (ख) निम्वाक सम्प्रदाय के कवि श्रीभट्टजी-भक्त- ३०१-३२४
माल में श्रीभट्टजी का वृत्तान्त-युगल शतक-युगल मूर्तिवासरस वणन-चमत्कारकीकहानियाँ-श्रीभट्टजीके गुण-पद-सयोग-शृंगार-मान-रूपासक्ति-हरिव्यासजी हरियासजी का निम्वाक संप्रदाय में महत्व-भक्तमाल में वर्णित जीवन-वृत्त-हरिव्यासजी का काल निष्य संप्रदाय-महावाणी-पदा की सरसता-रूपासक्ति-प्रेम की तमयता-नित्यलीला-महावाणी की बुजी-श्रीपरगु रामाचाय-वंग परिचय-काल-मृत्यु-तिथि, जीवन-वृत्त-सलीमशाह चिन्नी भक्तमाल में वर्णित इनका वृत्त-हरिव्यास छव्वीसी में इनका परिचय-रचनाएँ-रचनाओं की विशेषता-पद-रूपासक्ति-गापिया का विरह-वणन-घनाना जीवन वृत्त-काव्य की विशेषता-विरह के पद-भक्ति-रसिव गोविन्द रचनाएँ-वंश परिचय, गुरु और संप्रदाय-रचना काल-काव्यत्व ।
- (ग) सखी संप्रदाय के कवि स्वामी हरिदाम हस्तलिखित ३२४ ३४८
प्रति के कुछ पद-रूपासक्ति-हिंढाग-मान-विहारनि दास पदों की हस्तलिखित प्रति-सिद्धान्त के पद-भक्ति की महिमा-लीलाविषयक पद-युगलरूप-गात्री-नागरीदासजी गुरु-कुण्डलियाँ-रचनाएँ-सरगदास-जी परम उज्ज्वल रस सिंगार के पद-सिद्धान्त के पद-नवलदास रचना-युगल छवि का वणन-मिश्रत्रमु विना में इनका परिचय-श्रावणदासजी नागरीदास

विषय :

पृष्ठ-संख्या

के शिष्य-वृन्दावन का वर्णन-भक्ति-नरहरिदाम :
सखी सम्प्रदाय में न्यान-गिद्वान्त के पद-रूपामक्ति-
रमिकदास जी . सिद्धान्त के पद-काव्यत्व-मापी-
किशोरीदामजी (ललित किशोरी) . गिद्वान्त के पद-
गुरु-परिचय-जीवन वृत्त-'उज्ज्वल सिंगार रत्न' के पद-
रूपामक्ति-लीला के पद-भक्ति-'ललितमाधुरी' के पद-
भगवत रसिक . काल और गुरु परिचय-जनामवत
भाव-रचनाएँ-भगवद्भक्ति का रस-वृन्दावन-सिद्धान्त
के पद-सहचरिग्रण गुरु परिचय तथा रचनाएँ-इनके
काव्य की विशेषता-रूपामक्ति ।

- (घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कवि : हितहरिवर उपासना ३४८-३६५
में श्रीराधा की प्रवानता-भक्तमाल में वर्णित उनका
परिचय-जीवन वृत्त-भगवत्प्रेम का सरस वर्णन-रूपा-
सक्ति-रचनाएँ-हरिराम शुक्ल 'व्याम' . इनकी भक्ति
का स्वरूप और जीवन वृत्त-वृन्दावन तथा भक्तों का
महत्व-भक्तमाल में वर्णित इनका परिचय-रचनाएँ-
सयोग वर्णन-ब्रज के प्रति भक्ति-ध्रुवदास . रचनाएँ-
गुरु-परिचय-माधुर्य-भाव-वृन्दावन-रूपासक्ति-प्रेम-
वर्णन-चाचा हित वृन्दावनदास 'चाचा' शब्द का
प्रयोग-काल निर्णय-जीवन वृत्त-रचनाएँ-प्रेम का स्वा-
भाविक चित्रण-बाललीला-वृन्दावन की शोभा-छद्म-
लीला का वर्णन-हठी . गुरु-राधा सुधा गतक-श्रीराधा
की भक्ति-रूपासक्ति-वृन्दावन के प्रति आसक्ति-अल-
वेली अली : सम्प्रदाय और गुरु-परिचय-संस्कृत की
रचना-गुरु भक्ति-लीला के पद-
- (ङ) चैतन्य सम्प्रदाय के कवि : गदाधर भट्ट का जीवन वृत्त- ३६६-३६९
भक्तमाल में इनका परिचय-रचनाएँ-प्रियादास और
चैतन्य के प्रति उनकी भक्ति-
- (च) कुछ अन्य कवि : तुलसीदास श्रीकृष्ण गीतावली- ३६९-३८०
बाल-लीला-गोपी विरह-उद्धव और गोपियाँ-विहारी :

विषय

पृष्ठ-संख्या

दोहो की विशेषता—कुछ दोहे—देव काव्य की विशेषता—
कुछ पद—गुणमजरीदास जीवन वृत्त—चैतन्य महाप्रभु
के प्रति भक्ति—रूपासक्ति—नारायण स्वामी जीवन वृत्त
और रचनाएँ—विरह के पद—निगुण—सगुण और अभेद—
सत्यनारायण कविरत्न' जीवन वृत्त—भ्रमर दूत—

छठा अध्याय—ब्रजबुलि का उदभव और विकास

३८१ ४४०

ब्रजबुलि—'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग—ब्रजबुलि
और ब्रजमडल—ब्रजबुलि के उदभव सम्बन्धी प्रियसन का
मत—ब्रजबुलि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दीनेशचन्द्र सेन
का मत—ब्रजबुलि और ब्रजभाषा में प्रभेद—ब्रजबुलि की
उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० सुकुमार सेन का मत—वैष्णव
पदावली का वण्य—विषय—अवहट्ट और आधुनिक लोक
भाषाएँ—अवहट्ट में वर्णित राधा-कृष्ण लीला—चर्चागीति
में वैष्णव पदों के प्रेमरस का आभास—उमापति ओझा
की रचनाएँ—ब्रजबुलि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा०
सुकुमार सेन के मत की आलोचना—ब्रजबुलि का व्या-
करण और भाषागत विशेषताएँ ।

३९८ ४०८

(क) नेपाल नेपाल के पदावली साहित्य का विकास ऐति-
हासिक पृष्ठभूमि पर आधारित—हरिर्मह देव तथा
नेपाल—भोरग का नाट्यगीति और पदावली साहित्य—
नेपाल के मल्ल राजा जयस्थिति का घम शास्त्र संपादन
करवाना—जयस्थिति के सभाकवि के पुत्र मणिक के दो
नाटक 'अभिनव राघवानन्द' और 'भैरवानन्द—नेपाल
में ब्रजबुलि रचना का आरम्भ—पांडव विजय नाटक—
विद्या विलाप नाटक—नेपाल के नाटका में केवल गीत—
कृष्ण-लीला विषयक नाटक में श्रेय पद—नेपाली भाषा
की रचनाओं में बगला का मिथुण—हरगौरी विवाह
नाटक तथा कुजबिहारी नाटक—मलयगण्धिनी तथा
मदनचरित नाटक—कवीन्द्र प्रतापमल्ल देव की रचनाएँ—
गीत दिगम्बर, हरबलि तथा चतुरंग तरंगिणी नाटक—

विषय :

पृष्ठ-संख्या

गोपीचन्द्र नाटक और हृदयचन्द्र नाटक—श्रीनिवाग मल्ल का ब्रजवृत्ति का पद—अश्वमेध नाटक और मदालसाहरण नाटक—भूपतिन्द्र मल्ल की रचनाएँ—भाषा सर्गोत्त में ब्रजवृत्ति के पद—रणजीत मल्ल की रचनाएँ—रामचरित और माधवकाय कन्दला—रणजीत मल्ल रचित नाटक—नाटको में ब्रजवृत्ति ।

- (र) बंगाल . ब्रजवृत्ति की व्यापकता—बंगाल में ब्रजवृत्ति का प्राचीनतम उदाहरण—‘श्रीकृष्ण-कीर्तन’ में ब्रजवृत्ति—ब्रजवृत्ति पर मैथिल का प्रभाव—गोविन्ददाम कविराज और ब्रजवृत्ति—सत्रहवीं शताब्दी के बाद का ब्रजवृत्ति साहित्य—सत्रहवीं शताब्दी—उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रजवृत्ति साहित्य—परवर्ती काल के ब्रजवृत्ति के कुछ पद । ४०९-४१८
- (ग) आसाम : शंकरदेव और असमिया स्रष्टृति—आसाम का वैष्णव साहित्य—आसाम में ब्रजवृत्ति साहित्य का प्रवर्तन—असामी साहित्य और ब्रजवृत्ति—आसामी ब्रजवृत्ति और ब्रजभाषा—असमिया ब्रजवृत्ति पर ब्रजभाषा साहित्य का प्रभाव—आसाम के बङ्गीत—आसामी के नाटक—आसामी नाटको की भाषा—आसामी ब्रजवृत्ति का गद्य—पौराणिक निबन्ध—आसामी तथा बंगाल के ब्रजवृत्ति साहित्य में प्रभेद । ४१८-४२७
- (घ) उड़ीसा उड़ीसा में वैष्णव धर्म—उड़ीसा में ब्रजवृत्ति साहित्य—राय—रामानन्देरभणितायुक्त पदावली—सोलहवीं शताब्दी में उड़ीसा के ब्रजवृत्ति के कवि—बृद्ध चम्पति राय और दामोदर चम्पति राय—सत्रहवीं शताब्दी के तीन प्रमुख कवि—उड़ीसा का ब्रजवृत्ति साहित्य बहुत कुछ अनुपलब्ध—पच सखा—बलराम दास—जगन्नाथदास—अच्युतानन्द—यशोवन्त मल्लिक—अनन्तदास—ब्रजवृत्ति साहित्य को पचसखाजो की देन । ४२७-४४०

सातवा अध्याय—बंगाल-साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव :

चैतन्य का युगान्तरवादी प्रभाव—वैष्णव

४४१-४५८

विषय

पृष्ठ-संख्या

भाव धारा का व्यापक प्रभाव—साहित्य पर चैतन्य का प्रभाव—बंगाल में वैष्णवता—बंगाल के वृष्णव सेन राजा—तत्कालीन साहित्य की दो धाराएँ—राधा के विकास में शाक्त धर्म का प्रभाव—गीत गविन्द की राधा—बडु चण्डीदास का श्रीकृष्ण कीर्तन—मालाधर बसु का 'श्रीकृष्णविजय'—चैतन्य पूर्व श्रीकृष्ण का स्वरूप—चैतन्य की समसामयिक राजनतिक परिस्थिति—इस्लाम का प्रभाव—तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति—नवयुग का उदय—चैतन्य—पूर्व मधुर रम की साधना—प्रेम रस के आदि प्रचारक—माधवे दुपुरी—नवद्वीप का वृष्णव समाज—गौडीय वैष्णव काव्य साहित्य और गायिका सप्त सती—वृष्णव सहजिया मत और गौडीय वैष्णव साधना—सहजियामत और चैतन्य चरितामत—सहजमत की देहाश्रित प्रेम साधना—सहज भावना अतमुक्त ह—सहजिया मत का प्रेम तत्व—चैतन्य साधना और सहजिया साधना का अंतर ।

आठवा अध्याय—चैतन्य सम्प्रदाय के दर्शन और सिद्धान्त—
सिद्धान्त

४५९ ४८९

गौडीय दर्शन और सिद्धान्त गौडीय वृष्णव मत का प्रवक्तव्य—गौडीय वैष्णव मत का स्वावलम्बन—चैतन्य और अचिन्त्य भेदाभेदवाद—चैतन्य सम्प्रदाय में ब्रह्म या श्रीकृष्ण एव ही तत्त्व ब्रह्म 'परमात्मा' 'भगवान्'—श्री कृष्ण ही परब्रह्म—श्रीकृष्ण का स्वरूप—श्रीकृष्ण सगुण एव निगुण—श्रीकृष्ण में विरुद्ध धर्म—श्रीकृष्ण लीलामय—नरलीला—श्रेष्ठलीला—श्रीकृष्ण में माधुय की प्रधानता—श्रीकृष्ण का ऐदवय माधुय के आश्रित श्रीकृष्ण रसिक शिरामणि—श्रीकृष्ण स्वरूप की श्रेष्ठता—भगवान् श्रीकृष्ण—वरुणामय—भक्तवत्सल—चैतन्य सम्प्रदाय में शक्ति या राधा या कृष्ण की मुख्य शक्तियों—स्वरूप शक्ति के तीन प्रकार—श्रीराधा

विषय :

पृष्ठ-संख्या

का स्वरूप—कृष्ण राधा के वधावर्ती—राधा मूल कान्ता शक्ति—राधा—लीला रस आस्वादन का आधार—प्रेम का स्वरूप तथा राधाकृष्ण की युगल उपासना—चैतन्य सम्प्रदाय में श्रीगौरांग (महाप्रभु चैतन्य) श्रीगौरांग के रूप में राधा-कृष्ण का मिलन-नवद्वीप-लीला—गौर-लीला का उद्देश्य—श्रीकृष्ण और गौरांग में अभिन्नत्व—चैतन्य सम्प्रदाय में गोपी गोपी का स्वरूप—गोपी प्रेम—गोपी प्रेम की विशुद्धता—गोपियों के प्रकार—सेवा भेद से दो प्रकार की गोपियाँ—चैतन्य सम्प्रदाय में जीव : जीव भगवान् की शक्ति—ब्रह्म-जीव में भेदाभेद सबद—जीव तटस्थ शक्ति—जीव के प्रकार नित्यमुक्त जीव—भगवत् कृपा से भक्ति प्राप्ति—ब्रह्म जीव—जीव की माया—निवृत्ति के उपाय—चैतन्य सम्प्रदाय में जगत् · ससार का स्वरूप—मुक्त भवत और बद्ध जीव के जगत् में अन्तर—गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में भक्ति का स्वरूप—भक्ति की विशेषता—गौडीय-वैष्णवाचार्यों द्वारा भक्ति रस साहित्य में ग्रहण—जीव की प्रेम-सेवा और भक्तिमयी साधना—प्रेम पञ्चम पुरुषार्थ—प्रेम का क्रमिक विकास—साधुसंग और भजन—निष्ठा, रुचि, आसक्ति, रति और प्रेम भक्ति के तीन स्वरूप—साधन भक्ति के चौंसठ अंग—साधन भक्ति के प्रकार—रागात्मिका—भक्ति—रागात्मिका भक्ति के दो प्रकार—रागानुगा भक्ति—रागानुगा भक्ति रागात्मिका का साधन—रागानुगा भक्ति के भेद उपभेद—रागानुगा के साधन दो प्रकार—मधुर भाव की सेवा श्रेष्ठतम—वैधी और रागानुगा में अन्तर—साधन भक्ति का सार कृष्ण स्मृति—भाव—भक्ति—भाव—भक्ति का स्वरूप—भगवत् कृपा से भाव—उत्पत्ति—भाव के पांच प्रकार—रागमार्ग का भक्त—प्रेम भक्ति का स्वरूप—प्रेम भक्ति की परिणति महाभाव—स्नेह और उसके प्रकार—मान और उसका स्वरूप—

मान और प्रणय का सबध-प्रणय की परिणति राग में-
अनुराग का स्वरूप-भाव और महाभाव-भक्तों के प्रेम
की श्रेणियाँ-महाभाव के दो प्रकार-चरम-साध्य महा
भाव-गौडीय वैष्णव-धम की विशेषताएँ ।

नवा अध्याय बंगाल का ब्रजवृत्ति-साहित्य

४९० ५८६

ब्रजवृत्ति की दीर्घकालीन परम्परा-ब्रजवृत्ति और
ब्रजभाषा-यशोराज खान जीवन वृत्त-यशोराज खान
का एक खडित पद-एक और पद-ब्रजवृत्ति पद का
प्राचीनतम उदाहरण-रामानन्द राय जीवन वृत्त-
चैतन्य देव के साथ साक्षात्कार-चैतन्य को सुनाया जाने
वाला पद-युगल स्वरूप सबध पद-ब्रजभाषा का
प्रभाव-राम राय कौन ? चैतन्य देव के स्नेहाधीन-
वासुदेव धोष जीवन वृत्त रचनाएँ-नागरी भाव के
पद-गौराग विषयक पदों का वैशिष्ट्य-रामानन्द वसु
जीवन वृत्त-पद-रचनाएँ-वृदावनदास जीवन वृत्त-
रचनाएँ-पद-भाषवदास जीवन वृत्त और रचनाएँ-
पद-पुरुषोत्तमदास जीवन वृत्त और रचनाएँ-पद-
ज्ञानदास जीवन वृत्त-काव्य का वैशिष्ट्य-मुग्धावस्था
का प्रेम-रूपानुराग-राधा का मान-चतय सबधी पद-
रचनाएँ-अनन्तदास जीवन वृत्त और रचनाएँ-कृष्ण
के रूप लावण्य का वणन-बलरामदास जीवन वृत्त-
रचनाएँ-राधा के विरह में कृष्ण की अवस्था-रास
लीला-चतय सबधी पद-काव्य का वैशिष्ट्य-गोविन्द
दास कविराज जीवन वृत्त-रचना वैशिष्ट्य-कृष्ण के
रूप का वणन-रज्जु-वणन-राधा का श्याममय रूप-
अभिसार-मुरलि-वादन-कृष्ण के रूप का वणन-कृष्ण
के मथुरा जाने की सूचना-वियोग की अवस्था की
कामना-अलकार की छटा-चैतन्य वन्दना-रचनाएँ-
कविशेखर राय जीव वृत्त रचनाएँ-निगाभिसार-
रचना कौशल में विद्यापति से साम्य-वर्षा ऋतु में

विषय :

पृष्ठ-संख्या

विरहिणी की दशा—इनकी रचनाओं में विद्यापति की रचनाओं का भ्रम—चैतन्य—स्तुति—कविरजन, कविशेखर, विद्यापति—रावा-कृष्ण की प्रेम-श्रीडा—रचनाएँ—वल्लभ-दाम वल्लभ—छाप—जीवन वृत्त—युगल स्वरूप—कवि वल्लभ जीवन वृत्त प्रेम प्रगाटना—विद्यापति के पदों से साम्य—रावावल्लभदास : जीवन वृत्त—रचनाएँ—प्रथम दर्शनजन्य प्रेम—दूती द्वारा श्रीकृष्ण के रूप—गुण—प्रेम का बखान—रचनाएँ—प्रसाददास . जीवन वृत्त रचनाएँ—कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन—रूप सौन्दर्य—घरणी : पदकल्पतरु घरणी के पद—राधा का कामदेव को दीपी बनाना—किशोरदास जीवन वृत्त एव रचनाएँ—अभिसार—रचनाएँ—नृप वैद्यनाथ प्रथम मिलन—विद्यापति से साम्य—घनश्याम दास जीवन वृत्त—नरहरिदाम के पदों का मिश्रण—रचनाएँ—वारहमासा—वक्रोक्ति अलंकार का चमत्कार—वर्षा की अवेरी रात में राधा की दशा—मुन्दर दास . जीवन वृत्त एव रचनाएँ—बलराम का रूप सौन्दर्य—जगदानन्ददान . जीवन वृत्त—पद—राधा की कमनीय शोभा—रचनाएँ—गोपालदास : जीवन वृत्त—रचनाएँ—अभिसार—खण्डिता—रचनाएँ—तरुणो—रचनाएँ और जीवन वृत्त—खण्डिता प्रेमदाम : जीवन वृत्त—रचनाएँ—पद घनरामदास . वैशिष्ट्य—रचनाएँ घनश्याम दास नाम के और कवि—रचनाएँ—घनश्यामदास का परिचय—वात्सल्य—राधामोहन ठाकुर : जीवन वृत्त—स्वकीया—परकीयावाद का सैद्धान्तिक विरोध—रचनाएँ—पदों का वैशिष्ट्य—श्रीकृष्ण वन्दना ।

दसवाँ अध्याय—तुलनात्मक अध्ययन :

५८७-६२९

(क) भक्ति और साधना . भक्ति के आश्रय—वल्लभ और चैतन्य—सम्प्रदाय—वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों में साम्य गौडीय वैष्णव मत—वल्लभ की पुष्टि भक्ति—निम्बार्क, राधावल्लभी और सखी-संप्रदाय चैतन्य सम्प्रदाय

५८७-६०६

विषय

पृष्ठ-संख्या

में राधा-तत्व-चैतन्य सम्प्रदाय में परकीया भाव-
वल्लभ सम्प्रदाय की मधुर और सख्यभक्ति सखी और
मजरी-द्वादश गोपाल पंच सत्ता और पंच तत्व-
वल्लभ-भगवान् के अवतार-चैतन्य-पूण अवतार-
चैतन्य-एक ही देह में राधा और कृष्ण-भगवान् की
लीला-सयोग-वियोग-लीला-वर्णन में भिन्नता-वल्लभ
सम्प्रदायी कविया की विशिष्टता-वल्लभ-सम्प्रदाय
में परकीया भाव-निम्बाक सम्प्रदाय में मधुर रस की
प्रधानता-सखी और राधावल्लभीय सम्प्रदाय में युगल
लीला-गौडीय वृष्णव सम्प्रदाय में रस का विवेचन-
गौडीय वृष्णव सम्प्रदाय में नाम-सकीर्तन का महत्व-
चैतन्य सम्प्रदाय में साधन भक्ति-वल्लभ सम्प्रदाय में
सेवा का प्राधान्य ।

- (स) पदावली ब्रजभाषा का पदावली-साहित्य-महाजन' ६०६ ६१८
पदावली-राधा-कृष्ण लीला का लौकिक रूप में
वर्णन-वृष्णव-पदावली में धम की अनुप्रेरणा-पदावली
में मधुर रस का प्राधान्य-आसाम, उड़ीसा और नेपाल
में ब्रजबुलि के पद-पदकल्पतरु के आधार पर वर्ण्य
विषयो की सूची-ब्रजभाषा के वर्ण्य-विषय-विनय के
पद-दास्य भक्ति के पद-साख्य रस के पद-जम सबधी
पद-वाल लीला-वात्सल्य-रस का पद-शृंगार के पद-
ब्रजबुलि और ब्रजभाषा में वर्णित विभिन्न लीलाएँ-
भ्रमरगीत की परम्परा-लीला-वर्णन द्वारा भक्ति-
निवेदन ।
- (ग) भाषा-ब्रजबुलि में ब्रजभाषा के ऋ-वगला की ६१८ ६२५
वृष्णव-पदावली में ब्रजभाषा के ऋ-ब्रजबुलि की भाषा
गत विशेषताएँ और ब्रजभाषा-ब्रजबुलि के कुछ ऋ-
वद ।
- (घ) छन्द और अलंकार-उगाल की वृष्णव पदावली के ६२५ ६२९
छन्द-वगला की ऋ-वगली और ब्रजभाषा के पदों में
अलंकार-ब्रजभाषा के पदों के छन्द ।

पहला अध्याय

पृष्ठभूमि

(१) वैष्णव धर्म का संक्षिप्त विवरण—

(क) वष्णव साधना का इतिहास

(ख) वष्णव साधना भक्ति साधना ह

(ग) भगवान का अवतरण

(२) साहित्य तथा शिल्प में राधा कृष्ण-कथा का स्वरूप—

(३) बल्लभ और चैतन्य से पूर्व का वैष्णव काव्य-साहित्य—

(क) मूर से पूर्व राजभाषा का वष्णव-काव्य-साहित्य

(ख) चतय से पूर्व का वगीय वष्णव-काव्य-साहित्य

वैष्णव साधना का इतिहास

वैष्णव धर्म का ब्रजभाषा और ब्रजबुलि से सवन्ध

मध्ययुग का समस्त भारतीय साहित्य अगर हम कुछ अपवादो को छोड़ दे ता पाएंगे कि वह प्रमुख रूप से वैष्णव साहित्य ही है। भारत के मध्य कालीन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि घम ने अपने आपको प्रकाशित करने के लिये साहित्य को बड़े अदभुत ढंग से अपनाया। साहित्य और घम का यह एकीकरण आश्चर्य चकित करने वाला है। उस काल की एक विचित्र बात यह भी देखने को मिलती है कि सच्चा वैष्णव भक्त ही अच्छा और सच्चा कवि बन सका। यह भक्ति-साहित्य ज्ञान, भक्ति और रस की त्रिवेणी का अपूर्व एव अद्वितीय सगम है। ससार इस साहित्य का पावर घन्य हो उठा।

वष्णव-साधना, प्रेम और भक्ति की साधना है। मध्ययुग के वष्णव साहित्य का अधिकांश भाग कृष्ण को आश्रय कर रचित हुआ है। भक्ति की वेगवती धारा जा दक्षिण से आई उसने समस्त भारत को आप्लावित कर दिया। कृष्ण-काव्य के आधार कृष्ण तथा उनकी विभिन्न लीलाएँ ही हैं लेकिन इस काव्य ने देश के विभिन्न भागों में सामाजिक आदि कई कारणों से घोड़ा भिन्न स्वरूप लिया। यही कारण है कि ब्रज प्रान्त में बल्लभ-संप्रदाय का प्राधाय रहा तो बंगाल प्रान्त में चतुर्थ संप्रदाय ने आधिपत्य जमाया।

ब्रजभाषा-साहित्य का चरम उत्कृष्ट बल्लभ-संप्रदाय के अष्टछाप के कवियों में देखने को मिलता है और उनमें भी सूरदास प्रधान है। सूरदास के प्राधाय और उनकी लोकप्रियता का मूल में उनकी अनन्य साधारण शली तथा कवित्व भक्ति थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अष्टछाप के भक्त-कवियों की रचनाओं का माधुर्य तथा उनकी भाव प्रवणता अपने आप में अपूर्व है फिर भी अन्य वैष्णव-संप्रदाय जैसे निबाक, राधावल्लभी, सखी संप्रदाय आदि के भक्त-कवियों को इतर प्रकार में आने वाली रचनाएँ कम सुन्दर अथवा ललित नहीं हैं। इन रचनाओं में भी वही भक्त-हृदय की आतुरता, भगवान की रूप-माधुरी और लीला-माधुरी के हमें दर्शन होते हैं।

ब्रजबुलि-साहित्य ईसवी सन् की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में बंगाल में पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। गौड़ीय संप्रदाय के भक्त कवियों द्वारा ही इस साहित्य का पोषण एवं सर्वर्द्धन हुआ। इस प्रकार से ब्रजभाषा और ब्रजबुलि-साहित्य के अध्ययन से यह सहज ही समझा जा सकता है कि इन दोनों के मूल में धर्म और दर्शन का ही हाथ रहा है। अतएव यह स्पष्ट ही समझा जा सकता है कि इन दोनों साहित्यों के उचित मूल्यांकन तथा रसास्वादन के लिए यह आवश्यक है कि उन दार्शनिक तत्वों और मिद्धान्तों से परिचय प्राप्त कर लिया जाय जिनसे इन साहित्यों को प्रधान रूप से प्रेरणा मिलती रही है। इसका अर्थ यह है कि वैष्णव-धर्म के स्वरूप तथा उसके क्रमिक विकास को हम समझने की चेष्टा करें।

वैष्णव धर्म का स्वरूप

वैष्णव-धर्म की अन्यतम विशिष्टता उसकी भक्तिमयी साधना है। विष्णु परक होने के कारण यह धर्म वैष्णव-धर्म कहलाया। विष्णु और उनकी स्व-स्वरूपा लक्ष्मी इस धर्म के केन्द्र में हैं। विष्णु, सभी वैष्णव संप्रदायों के परम उपास्य हैं। सभी वैष्णव संप्रदाय अपने मत को श्रुति-सम्मत मानते हैं। इसमें कोई सदेह नहीं कि विष्णु, वेदों के एक प्रधान देवता है लेकिन जो भक्ति का स्वरूप मध्ययुग में देखने को मिलता है उसे वेदों में ढूँढना व्यर्थ है। जिस वैष्णव-धर्म का परिचय हम उस युग में पाते हैं वह विष्णु तथा भक्ति के क्रम-विकास के साथ नाना भावधाराओं और तत्वों के समावेश से काल-क्रम में संगठित एवं सुव्यवस्थित हुआ। वैष्णवों की इस भक्तिमयी साधना का पहले पहल दर्शन हमें महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणीयोपाख्यान के 'पाचरात्र मत' में होता है।

वैष्णव साधना के विकास क्रम का त्रिविध वर्गीकरण

वैष्णव साधना के क्रम-विकास को समझने के लिये निम्नलिखित तीन भावधाराओं का संक्षेप में अध्ययन कर लेना आवश्यक है. (१) प्राचीन पाँचरात्र मत तथा भागवत की भावधारा (२) आलवार सन्तों की भावधारा (३) दार्शनिक आचार्यों की भावधारा। ईसवी सन् की तेरहवीं शताब्दी के बाद जो नये संप्रदाय विकसित हुए, वे चार प्रधान वैष्णव संप्रदायों में ही अन्तर्भुक्त हैं इसलिए इनकी अलग से यहाँ चर्चा नहीं की जा रही है।

घण्टव धर्म की प्राचीन सज्ञा 'पाचरात्र मत'

घण्टव धर्म की प्राचीन सज्ञा 'पाचरात्र मत' है। इस मत का निरूपण महाभारत के दान्तिपर्व के नारायणीयोपाख्यान में किया गया है। महर्षि नारद इस पाचरात्र मत के उद्घाटन करने वाले तथा प्रमुख उपासक माने जाते हैं। इस मत में भक्ति की प्रधानता है। नारद और शाण्डिल्य दोनों का सबंध पाचरात्र मत से अत्यन्त घनिष्ठ रहा है। ये दोनों ही भक्ति-सूत्रों के रचयिता हैं। 'शाण्डिल्य संहिता' का उल्लेख बहुत से प्राचीन ग्रंथों में पाचरात्र संहिता के रूप में मिलता है। नारद पाचरात्र अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारद, पाचरात्र मतावलम्बी थे। इन दोनों के सबंध में कुछ इस तरह की बातों का उल्लेख मिलता है जिससे लगता है कि भक्ति आन्दोलन का सबंध अवदिक विचारधारा से रहा है। कहा जाता है कि शाण्डिल्य ऋषि को वेदों में परम श्रेयस नहीं मिला और उन्हें पाचरात्र के आश्रय से परम तृप्ति हुई। इसी प्रकार नारद के सबंध में विचित्र कहानी कही जाती है। ऊपर महाभारत के जिस दान्तिपर्व का उल्लेख किया गया है उसके अध्ययन से पता चलता है कि जब नारद को पाचरात्र मत के रहस्या को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई तब वे श्वेतद्वीप में गए। वहाँ के निवासी नारायण के एकांत उपासक थे। उनका रंग श्वेत था और वे दिव्य प्रभा पुञ्ज से प्रकाशित हो रहे थे। नारद ने नारायण की प्रायना की और नारायण ने उनपर अनुग्रह कर पाचरात्र मत का रहस्य प्रकट किया। महाभारत के अनुसार नारद जी इस मत के प्रधान प्रचारक बने गये हैं। उपनिषद् में 'एकामय विद्या' से परम भागवत नारद जी का सबंध बताया गया है। पाचरात्र मत को 'एकामय संप्रदाय' भी कहा गया है। क्याकि इस मत का सबंध वेद की 'एकामय शाखा' से भी है।^१ पाचरात्र मत की सज्ञा 'पाचरात्र' कसे हुई इसकी नाना प्रकार की व्याख्याएँ पाचरात्र के विभिन्न ग्रंथों में मिलती हैं^२ लेकिन इसका सन्तोष-जनक उत्तर वही नहीं मिलता। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित सिद्धान्त 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज' ही इस मत का मूल सिद्धान्त है। इस संप्रदाय में समस्त सासारिक वस्तुओं का परित्याग कर एक ही पर पूण रूप से आश्रित रहना बताया गया है।

^१ एष एकामयानो वेद प्रस्यात सवतो भुवि । ईश्वर संहिता १।४३ ।

^२ श्रेढर-इंद्रोदकान दृ दि पाचरात्र एषु दि अहिमुषन्ध संहिता ५०

पांचरात्र साहित्य

लेकिन एक बात यहाँ ध्यान देने की है, पांचरात्र साहित्य अत्यन्त विस्तृत है इसलिये उसमें सर्वत्र एक ही भाव का मिलना नभव नहीं। श्रेणर ने पांचरात्र साहित्य पर बड़े सुन्दर ढंग में प्रकाश डाला है। साधारणतः पुराने ग्रन्थों में १०८ पांचरात्र संहिताओं का उल्लेख मिलता है लेकिन श्रेणर ने जो नामावली प्रकाशित की है उसमें २१० नाम मिलने हैं, फिर भी नामावली संपूर्ण है ऐसा नहीं कहा जा सकता। पांचरात्र शारत्र को आगम साहित्य कहते हैं। उसके गन्ध 'संहिता' और 'तन्त्र' कहलाते हैं।

पांचरात्र सिद्धान्त का विभाजन

पांचरात्र सिद्धान्तों का विभाजन मूलतः दो भागों में किया जा सकता है :
(१) सृष्टि विषयक (२) साधना मन्त्रों। यहाँ पर पांचरात्र मत के व्यापक सिद्धान्तों पर थोड़ा-सा प्रकाश डालना समीचीन होगा।

परमतत्त्व वासुदेव

इस मत के अनुसार भगवान वासुदेव ही परमतत्त्व, परम देवता हैं। ये अनादि, अनन्त, परब्रह्म हैं। यही ऋग्वेद में वर्णित परम पुरुष हैं। ये सर्व शक्तिमान, पद्गुण सम्पन्न, अजर, ध्रुव हैं। ये जगत् के कारण आवार और प्रमाण हैं। ये सर्वभूतों के आवान-स्थल, सबको अपने में समाहित किये हुए हैं। वे निर्विकार क्षोभ रहित तरंगों से हीन प्रयान्त महानागर के समान हैं। प्राकृत गुण उनका स्पर्श नहीं कर सकते। वे अप्राकृत गुणान्मद हैं।^१ इसी लिये वे निर्गुण हैं। वे परमात्मा^२, वामुदेव,^३ सर्वप्रकृति^४ और प्रधान^५ हैं। वामुदेव ब्रह्म ही 'शक्ति' कहलाते हैं जब निर्गुण ब्रह्म 'जगत् प्रकृति भाव' ग्रहण करता है।^६ यह वामुदेव ही विष्णु है।

^१ अप्राकृत गुणस्पर्शमप्राकृतगुणास्पदम्—अहिर्बुध्न्य संहिता, २।२४।

^२ पारम्येणात्मभाविन्वात् परमात्मा प्रकीर्तित, वही २।२७।

^३ समस्त भूतवासित्वाद्दामुदेव प्रकीर्तित, वही २।२८।

^४ सर्वप्रकृतिशक्तित्वात् सर्वप्रकृतिरोरित, वही २।३०।

^५ प्रधीयमान कार्यत्वात् प्रधान परिगीयते, वही २।३०।

^६ जगत् प्रकृति भावो य सा शक्ति परिकीर्तिता, वही २।५७।

शक्ति और शक्तिमान

भक्तिमाग में शक्ति और शक्तिमान की सत्ता स्वीकार करनी पडती है । इन दोनों की सत्ता या स्वीकार किए बिना भक्ति नहीं रह सकती । ईश्वर जीव तथा जगत् के पारस्परिक संबन्ध का तभी तक महत्व है जब तक कि शक्ति की सत्ता है । भक्ति और व्रम का उत्स यही है । यही कारण है कि वष्णव शैव और शक्ति आगमों में शक्ति की सत्ता स्वीकार की गयी है । पाचराम के अद्वैतवाद में शक्ति और शक्तिमान का समन्वय है ।

सृष्टि का प्रारम्भ ब्रह्म के सकल्प का परिणाम है । ब्रह्म न बहुस्याम का सकल्प किया^१ और यह सकल्प उनका स्वरूप दर्शन है, यहा ईक्षण है ।^२ इसके पूर्व परम पुरुष आत्म समाहित थे, स्वशक्ति परिवृंहित थे । स्वरूप दर्शन या ईक्षण से उनमें सृष्टि करने की इच्छा जगी । ब्रह्म की शक्ति या गुण ही ब्रह्म का स्वरूप है ।^३ शक्तिमान से शक्ति की सत्ता का अभेद है । दोनों को अलग कर नहीं देखा जा सकता । यह शक्ति तत्त्व अचिन्त्य है । सूक्ष्म अवस्था में प्रत्येक शक्ति अपनी आश्रय-वस्तु या भाव की अनुगामिनी है अतएव परब्रह्म के स्वरूप में शक्ति पश्य रूप में नहीं दीखती । शक्ति का उसकी बाह्य क्रिया द्वारा ही देखा जा सकता है । अतएव शक्ति के संबन्ध में न यही कहा जा सकता है कि ऐसी है और न यही कि ऐसी नहीं है । उसका संबन्ध में कुछ भी कहना बठिन है ।^४ भगवान् परब्रह्म की यह अचिन्त्य शक्ति ब्रह्म के सबभावाभावानुगा सबवायवरी और स्वरूप में ब्रह्म में अपृथक स्थिता है । यह ब्रह्म के साथ उसी प्रकार से अभिन्न है जिस प्रकार से चन्द्र-ज्यात्ना, सूर्य रश्मि, अग्नि-स्फुलिंग तथा सागर-तरंग ।^५

^१ अहिवुषन्म सहिता २।७।६२ ।

^२ यत्तत् प्रेक्षणमित्युक्तं दानं तत् प्रगीयते, वही २।८ ।

^३ स्वरूप ब्रह्मणस्तच्च गुणश्च परिगीयते वही २।५७ ।

^४ शक्तयः सबभावानामचित्या अपृथक्स्थिता ।

स्वरूपे नव दूयन्ते दूयन्त वायतस्तुता ॥

सूक्ष्मावस्था हि सा तेषा शक्त्यानुगामिना ।

दृग्गत्या विधातु मा न त्रिपेद्बु च दाष्यते ॥ वही ३।२३ ।

^५ सबभावानुगा शक्तिर्ज्यात्नेव हिमदीपिन ।

भावाभावानुगा तस्य सबवायवरा मिभा ॥ वही ३।५ ।

शक्ति-तत्त्व

वासुदेव में प्रथम सकल्प स्पन्दन ही स्वस्वा-गुणा शक्ति में इच्छा-ज्ञान और क्रियात्मिका को जागृति का कारण हुआ। विष्णु स्वरूप में तीन अपृथक शक्ति उस समय स्वतंत्र भी हुईं और यही विष्णु-तदात्मिका शक्ति जो 'स्वातन्त्र्य रूपा' या 'स्वतंत्र शक्ति' कहलाती है विश्व-सृष्टि के कार्य में लगी। सृष्टि-कार्य क्षेत्र में वह स्वतंत्र है। यह स्वैच्छा से सृष्टि-न्ययि विन्य करती रहती है। यह आनन्दा, नित्या और पूर्णा है। नाना रूपां, गुणो और कार्यों के फलस्वरूप यही शक्ति नाना नामों से अभिहित की जाती है। लक्ष्मी, श्री, पद्मा, कमला, गौरी, अदिति, गायत्री, प्रकृति, माता, शिला, तारा, जान्ता, मोहिनी, डडा, रति, सरस्वती, महाभाषा आदि उन्हीं के नाम हैं। सर्वांग-सम्पूर्णा भावाभावनुगामिनी विष्णु की यह दिव्य शक्ति ही नारायणी है।^१

सृष्टि तत्त्व

महाप्रलयावस्था में परब्रह्म नारायण 'प्रसुप्ताखिलकार्यं' (जिसमें सभी कार्य प्रसुप्त हो) रूप में और 'सर्ववास' रूप में विराज करते हैं। षड्गुण पूर्ण रूप से उनमें स्तिमित रहने हैं। उस काल में परब्रह्म की आत्मभूता शक्ति स्तैमित्य रूपा और शून्यत्वरूपिणी रहती है।^२ इस शक्ति का सृष्टि के लिये प्रथम उन्मेष उसका लक्ष्मी-रूप है। शक्ति उन्मेष के दो प्रकार हैं—क्रिया और भूति। क्रिया शक्ति, विश्व की प्राण रूपा शक्ति^३ है और जगत्भूति शक्ति का प्रपञ्च रूप है। भूति और क्रियाशक्तियों को विष्णु का भाव्य भावक रूप भी कहा जा सकता है। विष्णु की जगत् प्रपञ्चकारिणी शक्ति ही उनकी त्रिगुणात्मिका शक्ति है। शक्ति द्वारा विष्णु की जो सृष्टि है वह दो प्रकार की है—शुद्ध सृष्टि और शुद्धेतर सृष्टि। शुद्ध सृष्टि, विष्णु की गुणोन्मेष दशा है, अर्थात् महाप्रलय की अवस्था में ब्रह्म की निस्तरंग सत्ता के बीच गुण समूहों का प्रथम उन्मेष। शुद्धेतरा सृष्टि, प्रजा सृष्टि है। शुद्ध सृष्टि में क्रम से चार स्तर हैं जिसे पाचरात्र में चतुर्व्यूह कहा गया है। एक-एक व्यूह भगवान् के एक-एक प्रकाश के स्तर है। चतुर्व्यूह का क्रमशः नाम है—वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। यह प्रकाश एक के बाद दूसरा,

^१ अहिर्बुध्न्य संहिता, ३।२४।

^२ वही, ५।२-३।

^३ वही, ३।२८, ८।२९-३२।

दूसरे के बाद तीसरा इसी क्रम से एक दीपक से दूसरा तथा दूसरे से तीसरे को जलाने के सदृश हैं।

चतुर्व्यूह

वासुदेव तत्त्व, विष्णु शक्ति की प्रथमावस्था है। यह विष्णु शक्ति सत्र कुछ करती है इसलिये विश्व प्रकृति कहलाती है, अतएव भगवान् वासुदेव ही परमा प्रकृति है। इसमें त्रिगुणा का उत्पत्ति नहीं होती। सृष्टि का इच्छा से जब सब शक्तिमान् वासुदेव अपने का विभक्त कर लेते हैं तो यह अपने में अपना विभक्त रूप ही सकषण है। यह सृष्टि की भ्रूणावस्था है जैसे सूर्योदय के ठीक पूर्व की प्रभा दिगमडल में पङ्क जाती है। इसमें चित् अचित् में कोई भेद नहीं रहता। इस सकषण व्यूह से प्रद्युम्न व्यूह की उत्पत्ति होती है। इसमें प्रकृति, पुरुष विभाजित हो जाते हैं और त्रिगुणात्मक प्रकृति का उदभव होता है। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध व्यूह की उत्पत्ति हुई। प्रद्युम्न के प्रारंभ किए हुए सृष्टि के काय का अनिरुद्ध पूरा करता है।

षड्गुण

ज्ञान, ऐश्वर्य शक्ति, बल, वीर्य तेज ये षड्गुण भगवान् के हैं। भगवान् प्रकृति के गुणत्रय से रहित हैं फिर भी षड्गुणा वाले होने से वे नित्य सगुण हैं। भगवान् इस जगत् के उपादान और निमित्त कारण दाना ही हैं। इन षड्गुणा में ज्ञान, ऐश्वर्य शक्ति, 'विश्राम भूमि' और बल, वीर्य, तेज 'श्रम भूमि' कहलाते हैं। इन गुण-समुदाय का सम्मिलित रूप ही भगवान् तथा लक्ष्मी का स्वरूप है।

पांचरात्र मत में लीलावाद

वष्णवा का विश्वास है कि यह सृष्टि, विष्णु का लीला स्वरूप है। महा-प्रलय के समय परब्रह्म विष्णु अकेले थे। अकेले रमण समय न हो सकने के कारण सनातन विष्णु ने लीला के लिये सृष्टि की रचना की। पांचरात्र मत में इसी लीलावाद को स्वीकार किया गया है। पहले सवग देवों के नामरूप की सृष्टि की और लीला के उपकरण स्वरूप त्रिगुणात्मिका प्रकृति की सृष्टि कर जनादन उत्सा के साथ रमण करने लगे। कल्पावसान में लीला रस के लिये उत्सुत होकर भगवान् पुरुषोत्तम ने जगत्-सृष्टि की इच्छा की। इस व्यक्त क्रीडा में ही सृष्टि रूपा प्रकृति के द्वारा ईश्वर पूण आनन्द का उपभोग कर रहे हैं। प्रकृति के ऊर्ध्व में वकुठघाम अवस्थित है। यह परम-पुरष की क्रीडाभूमि है।

जीव के द्विविध भेद

परध्याम मे दो प्रकार के जीवो-नित्य और मुक्त-का वाग है । नित्य जीव सदा मुक्त है । वे सामारिकता मे परे, सर्वज्ञ और भगवान के मेवक है । भगवान् की सेवा का अनादिकाल मे उन्हे अधिकार है । भगवान् के पापंदगण, नित्य जीव है । मुक्त जीव, पापंद गण और अविचार मण्डली मे बाहर है । इनका एकमात्र ध्येय भगवान् की सेवा है । उन्हे प्राच्यन शरीर तो नही प्राप्त है फिर भी अत्राकृत शरीर वाग्ण कर ये जगत् मे विचरण कर सक्ते है परन्तु जगत् के कायों मे द्रव्य नही दे सक्ते ।

पांचरात्र साहित्य मे राधाकृष्ण

साधारणत पाचरात्र मे विष्णु और लक्ष्मी की उपासना का ही वर्णन है । फिर भी ऐसा नही कहा जा सकता कि उसमे राधाकृष्ण या वृन्दावन-लीला का उल्लेख है ही नही । नारद-पाचरात्र मे राधा का उल्लेख मिलता है । इम ग्रंथ का ज्ञानामृत सार अत्र प्रकाशित हुआ है । ॐ० आर० जी० भण्डारकर ने नारद-पाचरात्र की प्राचीनता मे सदेह प्रकट किया है । श्रेडर ने भी उन्ही का अनुसरण किया है । इस सवय मे महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज का मत उल्लेख योग्य है । उनका कहना है कि "नारद-पाचरात्र अत्यन्त अर्वाचीन है, ऐमा अनुमान करने का कोई विशेष कारण नही है । चैतन्यदेव ने दक्षिण देश मे जिस ब्रह्मसहिता का सग्रह किया था वह निस्सन्देह प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ है । उसमे भी वृन्दावन तत्व ही प्रवान रूप से अर्गीकृत हुआ है । कारी सस्कृत कालेज के पुस्तकालय मे सनतकुमार संहिता की जो पाण्डुलिपि है वह पाचरात्र संहिता होने पर भी राधाकृष्ण तत्व का प्रतिपादन करने वाली है । अतएव ऐसा नही कहा जा सकता कि पाचरात्र सम्प्रदाय मे राधाकृष्ण का स्थान नही । मेरा विश्वास है कि प्राचीन समय मे भागवत सम्प्रदाय ने राधाकृष्ण और वृन्दावन की महिमा को विशेष रूप से प्रचारित किया था, जब यह सम्प्रदाय पाचरात्र के साथ मिल गया तभी से इस साकर्य का आविर्भाव हुआ" ।^१

पांचरात्र मत का साधना पक्ष

पाचरात्र रहस्य नामक ग्रन्थ के अनुसार भगवान् पांच प्रकार के रूप धारण करते है । ये पांच रूप, अर्चा, विभव, व्यूह, मूक्षम तथा अन्तर्यामी है ।

^१ गौडीय वैष्णव दर्शन, पृ० ३०, उत्तरा, प्रथम वर्ष आश्विन ज्येष्ठ
१३३२-१३३३ वगीय सं० ।

उपासक की प्रवृत्ति तथा भाव के अनुसार ही भगवान् इनमें से कोई रूप धारण करते हैं। इन पंचविध मूर्तियाँ की उपासना क्रमशः भक्ति का रूप ले लेती हैं लेकिन यह भगवान् के अनुग्रह से ही संभव हो पाता है। उपासना द्वारा जीव के मासारिक बंधन शिथिल होते हैं। भक्ति के द्वारा जब भगवान् प्रसन्न होते हैं तब जीव की अविद्या आदि का विनाश हो जाता है और उसके जो स्वभाविक संवत्तावादि कल्याणकारी गुण हैं उनपर से जैसे पर्दा हट जाता है। यह मुक्तजाव ईश्वर का अग्रभूत होकर ईश्वर के साथ परमानन्द का उपभोग करने लगता है। भगवान् की कृपा से ही भवबंधन से छुटकारा संभव है यही पांचरात्र का साधना-मार्ग है।

पांचरात्र मत में भक्ति की प्रधानता

पांचरात्र मत में भक्ति की प्रधानता है। ऋकाराचार्य ने इसे अवधिक कहा है। 'ब्रह्म सूत्र भाष्य' में इसकी आलोचना की गई है। इसी आधार पर बहुत लोग पांचरात्र मत को अवधिक कहते हैं। वास्तव में इसे सम्पूर्ण अवधिक मानने का कोई आधार नहीं है। यह संभव है कि तत्कालीन विचार-धाराओं का कुछ अंश पांचरात्र मत में प्रविष्ट हो गया हो। उक्त समय घम तथा दशन शैव, शाक्त, शास्त्र, योग आदि विभिन्न शाखाओं में विभक्त था।

वैष्णव धर्म की दूसरी प्राचीन सत्ता—भागवत धर्म

वैष्णव धर्म की दूसरी प्राचीन सत्ता भागवत धर्म है। पांचरात्र मत की साधना-पद्धति से इसकी साधना-पद्धति में साम्य है। इसी एकरूपता के कारण पंडितों का अनुमान है कि भागवत धर्म, पांचरात्र मत का ही विकसित रूप है। मूल में दोनों में कुछ फरक था लेकिन बाल काल में दोनों संप्रदाय एक ही में मिल गये। श्री जीव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत की टीका और 'पट्टसूत्र' में भागवत मत पर प्रकाश डाला है और पांचरात्र मत से इसका सम्बन्ध किया है। भागवत धर्म प्रकृति प्रधान था। ऐवान्तिक भाव से एक ही लक्ष्य के प्रति आत्म-समर्पण इस धर्म की विशेषता है। श्रीमद्भागवत गीता में इसी की चरम परिणति देखने को मिलती है।

शिलालेख और प्राचीन लेखों में भागवत-धर्म का उल्लेख

वेमनगर के शिलालेख से जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी का है, भागवत धर्म के

अत्यन्त व्यवस्थित रूप में प्रचार होने का पता चलता है कि उस काल में 'वामुदेव' देवताओं के भी देवता माने जाते थे और उनके अनुयायी 'भागवत' कहलाते थे। इस शिलालेख में भागवत धर्म के औदार्य, व्यापकता तथा प्राचीनता का पता चलता है। इस शिलालेख में कहा गया है कि देवाविदेव वामुदेव की प्रतिष्ठा में हेलियोडोरस ने गरुड स्तम्भ का निर्माण किया। हेलियोडोरस तक्षशिला का निवासी 'दिय' का पुत्र था। वह राजा नागभद्र के दरवार में अन्तर्लिकित (इंडो-त्रैविट्रियन राजा एण्टिअलकिडाम) का राजदूत था। भागवत-धर्म भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर प्रदेश में फैला हुआ था और यूनानियों ने इसे भी स्वीकार कर लिया था।

भागवत-धर्म सम्बन्धी कुछ बातों का पता यूनानी यात्रियों के विवरणों से चलता है। मेगस्थनीज जो ई० पू० चौथी शताब्दी में भारत आया था, ने अन्य स्थानों के साथ शूरसेन का भी उल्लेख किया है। मेगस्थनीज के इस विवरण को यूनानी लेखक एरियन (ई० सन् की दूसरी शताब्दी) ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है। उसने लिखा है - "शूरसेन (शूरसेन) के लोग 'हेराक्लीज' को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हैं। शूरसेन के लोगों के दो बड़े गहर भेयोरा^१ (मथुरा) और वलीमोवोरा (केशवपुरा) हैं। उनके राज्य में जोवरेस नाम की एक नदी बहती है, जिममें नावें चल सकती हैं।" आधुनिक विद्वान् हेराक्लीज को हरिकुल या श्रीकृष्ण मानते हैं। 'जोवरेस'^२ यमुना नदी है। इससे पता चलता है कि इसवी पूर्व की चौथी शताब्दी में भागवत-धर्म का प्रचार था और उसका महत्त्व का स्थान था जो विदेशी यात्रियों का ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हो सका। भागवत-धर्म के अनुयायियों के उपास्य देव वामुदेव थे।

गुप्त नरेश और वैष्णव-धर्म

वैष्णव धर्म के इतिहास में इसवी सन् की चौथी और पाँचवीं शताब्दी बड़े ही महत्त्व की हैं। इन्हें वैष्णव-धर्म का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। गुप्त वंश के प्रसिद्ध महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त ने भी (इसवी सन् ४००-४६४) मुद्राओं पर परम भागवत अंकित कराकर

^१ टालमी ने 'मोदुरा' (मथुरा) को देवताओं का नगर कहा है।

^२ प्रथम शताब्दी के यूनानी लेखक प्लिनी ने भी मथुरा और केशवपुरा के बीच से बहने वाली 'जोमनेस' (यमुना) का उल्लेख किया है।

वैष्णव धम को राजधम जैसा कर दिया। इसका फल यह हुआ कि राज्याश्रय पाकर वैष्णव धम अत्यन्त फूला फड़ा और इसका खूब प्रसार हुआ लेकिन गुप्त साम्राज्य के ध्वस्त होने के साथ ही वैष्णव धम का प्रभाव भी कम होता गया।

आलवार सन्तों की भाव धारा

वैष्णव भक्ति की दृष्टि से आलवार सन्तों का स्थान बड़े ही महत्व का है। गुप्तों के बाद वैष्णव भक्ति का उत्थान इन्हीं के हाथ हुआ। तामिल देश के प्राचीन वैष्णव सन्ता को आलवार कहते हैं। 'आलवार' शब्द का अर्थ भगवद्भक्ति या भगवद् प्रेम में तल्लीन रहने वाला मनुष्य है।

द्वादश आलवार सन्त

आलवारों की संख्या तो अगणित है लेकिन वैष्णव साहित्य में बारह आलवारों का परिचय मिलता है। इन बारह आलवारों में पौयूग आलवार (सरो योगी) पूदत्तालवार (भूत यागी) और पेयालवार (महत्त यागी) अत्यन्त प्राचीन तथा आदि भक्त माने जाते हैं। अन्य नौ आलवारों के नाम यह हैं— तिरुमडिस आलवार (भक्तिसार), पेरियालवार (विष्णुचित्त), आण्डाल (विष्णुचित्त द्वारा पालिता), तिरुमगे आलवार (नीलन् या परकाल) नम्मालवार (शठकोप) मधुर कवि (वास्तविक नाम ज्ञात नहीं), तोण्डरडिप्पोलि (विप्रनारायण), तिरुप्पन (मुनिवाहन), तथा कुलशेखरालवार।

इन आलवारों के काल को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद है। वैसे अधिकांश विद्वान् इनका समय ईसवी सन की सातवीं शताब्दी तक मानते हैं। ये आलवार मद्रास प्रान्त के भिन्न भिन्न स्थानों के रहने वाले थे। उनमें सात ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, दो शूद्र और एक पानर जाति के थे।^१

आलवार सन्तों का साहित्य

पौयूग आलवार, पूदत्तालवार और पेयालवार रचित लगभग ३०० भजन मिलते हैं। इन तीनों के तीन गतक 'तिरुवदादि' के नाम से प्रसिद्ध हैं। वेणवा छन्द में ये रचे गये हैं। इन तीनों का भावसौष्टव और अय-नाम्नीय

^१ सर सुत्रमय आयर लेक्चर आन, दि हिस्ट्री आफ दि थ्री वैष्णवास अलिबडे वाइ टी० ए० गोपीनाथ राव, प० २।

इन्हें उच्चकोटि के काव्य के पदपर आगीन कर देते हैं। भक्त लोग इसे ऋग्वेद का मार मानते हैं।

वहा जाता है कि तिरुमडिसे आल्वार प्रकाण्ट गणित थे। जत्र इनके पदो और इनके पाण्डित्य की प्रसिद्धि बढ़ने लगी तो इन्हें अत्यन्त विरक्ति हुई और इन्होंने अपनी ममस्त रचनाओं को कावेरी नदी में बहा दिया। भाग्य से दो पुन्तकें किनारे लगी इसलिए बच गईं, शेष नष्ट हो गईं।

परियाल्वार का काल ईशवी सन् की छठी सताब्दी मानते हैं। ये अत्यन्त निष्ठावान ब्रह्मचारी थे। उनकी रचनाओं में वात्सल्य रस की प्रधानता है। कृष्ण के बाल-रूप और बाल-नीला का अत्यन्त सुन्दर चित्रण इनके काव्य में मिलता है। निम्नलिखित उदाहरणों^१ ने इनके वर्णनों का सौष्ठव देखा जा सकता है। माना यशोदा, बालकृष्ण के रूप पर मुग्ध है। कृष्ण के अभी एक ही दाँत निकला है और उनको मथुरा हँसी चित्त को आकर्षित कर रही है। उस छवि को निरन्ध्र माता यशोदा अपने-आप को भूल गई। भक्त कवि के शब्दों में 'कान्हा की घुघराली काली लटें उसके प्रवाल जैसे होठों से लग-लग कर अलग हो जाती है मानो भीरे लाल-कमल का मधुपान कर रहे हैं।' कान्हा के जन्म के बाद यशोदा के घर में कुछ भी सुरक्षित नहीं रहता, न घी, न दूध न दही, न मक्खन। कान्हा, पड़ोस के बच्चों से झगडा करता है और चुपके से घर में आ जाता है। पड़ोसिनें अपने रोते बच्चों के साथ यशोदा को आ धरती है और शिकायत करती है। यशोदा परेशान हो रही है और कृष्ण को इसमें पूरा रस मिल रहा है। वह आनन्द लेता हुआ हँस रहा है।' इन प्रकार के अनेक चित्र भक्त कवि ने अंकित किए हैं।

यमुना के तट पर वंशी बजाते हुए कृष्ण का अपूर्व चित्र भक्त-हृदय को अभिभूत किये हुए है। कृष्ण का "बायाँ चिबुक बाँयें कन्धे से लग रहा है। दोनों हाथों की कोमल उँगलियाँ बगी पर चल रही हैं। भीहें विक्रम है। लाल कमल पर मँडराने वाले भीरो की नाईं घने, घुघराले, काले केशों की लटें मुख पर लोट रही हैं और मेघ के समान साँवला कान्हा बगी बजा रहा है। बगी की उम तान से मोहित हो हिरण चरना भूल गये हैं। उनके मुँह से आधी चरी घास धीरे-धीरे गिर रही है।"

^१ विभिन्न आल्वार सन्त कवियों के पदों के उदाहरण पूर्ण सोम सुन्दरम् के लिखे ग्रन्थ 'तमिल और उसका साहित्य' में उद्धृत है।

पेरियाल्वार का प्रभाव आण्डाल की काव्य-कला पर पड़ा है। कहते हैं कि आण्डाल इनकी पोष्यपुत्री थी। ये सालह वष तक क्वारी रही और फिर अपने प्रियतम विष्णु के साथ सशरीर सायुज्य का प्राप्त हो गई। मधुर रस से ओतप्रात उनकी कविताएँ 'नाच्चियार तिरुमीलि के नाम से विख्यात हैं। इनकी रचनाओं में उत्कृष्ट शृङ्गार रस की अपूर्व माधुरी है। वैष्णव सिद्धान्ताचार्यों ने आण्डाल को इन रस सितत रचनाओं में गूढ अर्थ दसा है। उन कविताओं में भक्त हृदय की आबुलता और उच्छ्वास है। जो हो, आण्डाल की इन रचनाओं के महत्व का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में रामानुजाचार्य ने इनसे प्रेरणा ग्रहण की थी।

आण्डाल रसीले-छवीले की रूप-माधुरी पर यात्रावर है। वह वन्दावन की एक गोपा बन कृष्ण की लीला-सगिनी बन जाती है। कृष्ण के मुग्ध बग्न बाल उत्पात आरम्भ होते हैं। आण्डाल अन्य गोपियाँ व साथ घरोंदे बनाती है, कृष्ण ताड़ पांड कर भाग जाता है। चीर हरण कर जल क्रीडा करने वाली गोपियाँ का रङ्ग-रत्न मारता है। आण्डाल स्वप्नाविष्ट इन लीलाओं में भग्न है। स्वप्न भग्न होना है। वह अपने का अपनी बूटियाँ में अकेली पाती है। बाहर निकल काले भयों को देखती है। उन्हें सवाधन कर कहती है, नीले वालीन की तरह आकाश में बिछे हुए पाठ मेघा, मुक्ता-निधि बरसाने वाले दानिया। तुम्हीं बनाओ सुन्दर साँवरे ने क्या कर दिया है? हृदय में वामाग्नि जल रही है, बाहर मलय-भवन के रूप में अग्नि बरस रही है। आधी रात के समय में दोनों ओर से झुलस रही हैं। मेरी दगा पर तनिक तरस तो साआ।' वर्षा होती है, पट-पीछे लहलहा उठते हैं। सारी प्रकृति उत्फुल्ल है। रग विरग व फूला पर इन्द्रधनुष के रगावाली तिरग्नियाँ मँडरा रही हैं। विरहिणी आण्डाल के लिए यह स्थिति असह्य है। उम लगता है जने प्रकृति उसकी दयनीय दगा पर हँसी उठा रही है। लडाके हाथी भी मस्ती में आकर आपस में खेल रहे हैं। उपवन में फूग से लडी जूहा की लताएँ घबल हँसी हँस रही है और कह रही हैं 'हमस अब तुम नहीं बन सकती। सारा, उम निष्ठुर ने मेरी ऐसी दगा कर दी है, विगम परियाद करें।

आण्डाल मर्यादाशाल बुद्धि-व्या है। वह सावले के प्रेम में व्याम विभार है। उमक साथ स्वप्न में उत्तका विवाह सम्पन्न होता है। वह अपने में आकर

विधिपूर्वक उसे स्वीकार करता है। उन विवाह का मुद्र वर्णन आडाल ने अपनी दम कविताओं में किया है। पेरियालवार, जिन्होंने आण्डाल का पालन-पोषण किया था, इस प्रसंग में कहते हैं, "मेरी उकलौती त्रिटिया। मैंने श्री के समान उसका पालन किया था। लेकिन मद भरे अरुण नेत्रों वाग्ना मादव उसे हर ले गया"।

आलवार सन्तों में तिरुमगे की कहानी अद्भुत है। कहते हैं कि वे एक छोटे-से राजा थे। जाति के क्षत्रिय थे। उनकी भक्ति 'आक्रमणान्मन' थी। उन्होंने अपने राज्य का त्याग कर दिया था और अपने चार साथियों के साथ डाका डाला करते और उस घन से मंदिर घनवाते तथा विष्णु भक्तों की सहायता करते। इस प्रकार की अद्भुत कहानियाँ उनके नाम के साथ जुड़ गई हैं। अतएव उनके वास्तविक व्यक्तित्व और प्रतिभा का ठीक-ठीक पता लगाना कठिन हो जाता है।

तिरुमगे तमिल और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। वे एक नहृदय कवि और प्रकृति के प्रेमी थे। अपनी रचनाओं में उन्होंने तमिल की प्रायः सभी काव्य-शैलियों का उपयोग किया है। उनकी रचनाओं में मधुर और वाच्य भाव समान रूप से मिलते हैं। उनकी काव्य-रचना की प्रतिभा का वितना समादर हुआ इसका पता इसी बात से चल जाता है कि वे 'नालु कविप्पेरुमाल' (काव्याचार्य) कहे जाते हैं।

तिरुमगे आलवार ने विष्णु के दसों अवतारों की स्तुति की है लेकिन रामावतार ने उन्हें अधिक मुग्ध किया है। रामावतार के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है, "तुम्हारी इसी भक्त वत्सलता पर मुग्ध होकर मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ।"

नम्मालवार का काल ईसवी सन् की नवीं शताब्दी है। वे आत्मज्ञानी थे। कहते हैं कि विष्णु-मंदिर के प्रागण में एक इमली के पेड़ के सूराल में बैठकर उन्होंने तपस्या की थी। आज भी तिरु नगरी के विष्णु-मंदिर में एक पुराना इमली का पेड़ है जिसे नम्मालवार के तपस्या करने का स्थान बताया जाता है। आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन उन्होंने अपनी कविता में किया है। आलवार सन्त-कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्धि इन्हींको मिली। विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से भी उनकी रचनाएं उत्कृष्ट हैं। उनकी भाषा-शैली मुग्ध करने वाली है : साधुय रस से भरी इनकी रचनाओं की एक विशेषता लक्ष्य करने योग्य है। इनमें कभी ये प्रेमिका रूप में और कभी प्रेमिका की मा के

रूप में अपने का उपस्थित करते ह। साधना-भाग पर चलने वाले जीव के क्रमिक विकास का सुंदर वर्णन इनकी कविताओं में प्रबन्ध-काव्य का सा आनन्द देता ह।

नम्मालवार की प्रेमिका प्रारम्भ में प्रियतम विष्णु को अपने से दूर और भिन्न समझती है, बाह्य जगत भी उसे बसा ही प्रतीत होता ह। लेकिन प्रेमानुभूति की तीव्रता के साथ वह बाह्य जगत की वस्तुओं को अपने प्रेम में सहायक समझने लगती ह। कोयल भ्रमर वगुला हंस के द्वारा वह प्रियतम क पाम सदेश भेजती है। उसे बात में लगता है कि सृष्टि की सभी वस्तुएँ उसी की तरह प्रियतम के साथ एकाकार होने को लालायित ह। सागर, मेघ वायु पक्षी भ्रमर सभीमें वह अपनी छाया देखने लगती ह। ये सभी उसी प्रेमी की ओर उमुख ह। प्रेम की अनुभूति जब और तीव्र होती है तो प्रेमिका को लगता ह जैसे प्रियतम उसके हृदय क भीतर स्थित है।

केरल राज्य के सत नरेश बुलशेखरालवार तमिल आलवार सन्ता में कालत्रम से अतिम ह। उनका काल ईसवी सन की दसवीं शताब्दी माना जाता है। वे राम के भक्त थे, वैसे वृष्ण को लेकर भी उन्होंने कई सुन्दर कविताएँ रची ह। वे अत्यन्त भावुक थे वृष्ण के वियोग में दक्की के करुण विलाप का अत्यन्त मार्मिक वर्णन उन्होंने उपस्थित किया है। संस्कृत में उन्होंने एक स्तुति ग्रन्थ मुकुन्दमाला^१ की रचना की ह। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान और सुकवि थे। इनके स्तोत्र ग्रन्थ वृष्णव भक्ता को अत्यन्त प्रिय है। उनमें भावा की सुकुमारता और भाषा की मधुरिमा है।

इन आलवार सन्तों की स्तुतियाँ का संग्रह 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' (चार सहस्र पद्यात्मक) के नाम से विख्यात ह। इनमें भक्ति ज्ञान, प्रेम आनन्द सौन्दर्य से आतप्रोत अध्यात्मज्ञान है। यह तमिल वेद के नाम से प्रसिद्ध ह। ये रचनाएँ तमिल भाषा में ह।

आलवारों का भक्तिमयी साधना

आलवार भगवद्भक्त मस्त जीव थे। अपनी मस्ती में वे भगवान की स्तुति के पन्ना को लोगा क बीच गाते फिरते थे। आजकल के साधु सन्यासिया

^१ इस ग्रन्थ के दस सस्वरण मिलते हैं। इसकी बहुत सी प्राचीन टीकाएँ उपलब्ध ह। यह ग्रन्थ एक प्राचीन टीका क साथ अन्नमलाई विश्व-विद्यालय से प्रकाशित हुआ है।

की तरह ये भी कीर्तन किया करने थे । उनमें किसी प्रकार की सांप्रदायिकता नहीं थी । उनकी दृष्टि में भगवान् के दरवार में सभी समान हैं । ब्राह्मण, शूद्र, स्त्री, पुन्य, वृद्ध, बालक भक्तिमग्न हृदय को लेकर भगवान् के दरवार में सहज ही स्थान पा सकने हैं । वर्धा जाति-पाति, उच्च-नीच का भाव नहीं है । विष्णु भगवान् के ये मत सच्चे उपासक थे । उनमें किसी ने राम की उपास्य देव माना है और किसी ने कृष्ण को^१ । प्रपत्ति और विद्युद्ध भक्ति का ही इन्होंने सहारा लिया था ।

आलवारों की विशेषताएं

आलवार अत्यन्त लोकप्रिय हुए । अपनी मानृभाषा के द्वारा उन्होंने भक्ति का प्रचार किया और इसलिये ये सहज ही में जनचित्त को आकृष्ट कर सके । जाति-पाति के भेद को इन्होंने रत्नोकार नहीं दिया और उस प्रकार से निम्नतर के लोगों को भी ऊपर उठने का अवसर मुलभ दे राया । भक्ति पर सब का समान अधिकार है, इन चरम मन्य से इन्होंने लोगों को अदगत कराया । ज्ञान की शुक्ता को दूर कर उन्होंने भक्ति की सरसता में लोगों के हृदय को बाष्पावित कर दिया ।

दार्शनिक आचार्यों की भावधारा

भक्ति-आन्दोलन को विशिष्टता प्रदान करने का श्रेय जिन लोगों को है वे आचार्य नाम से विख्यात हुए । आलवारों की भक्तिमयी भावना के उपरांत इन आचार्यों ने इस आन्दोलन को शास्त्रीय रूप दिया । ये आचार्य मन्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे । इन्होंने आलवारों की रसमयी भक्ति के माथ वेद प्रतिपादित ज्ञान और कर्म का समन्वय किया । इन आचार्यों के प्रस्थानत्रयी-उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता-को आवार मानकर विभिन्न दार्शनिक मतों की स्थापना की । अपने मतों की पुष्टि के लिये इन्होंने भाष्य-ग्रन्थों के अलावा सैद्धान्तिक ग्रन्थों की भी रचना की । इन आचार्यों के सामने शकराचार्य के मायावाद का खण्डन सबसे प्रमुख नमत्या थी । यह नमन्या न आलवारों के सामने थी और न पाचरात्र मत मानने वालों के सामने । शकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त मत का प्रतिपादन किया और जगत् को माया-जनित कह असत्य और प्रपचमय सिद्ध किया । मायावाद के साथ भक्ति का समन्वय नभव नहीं इसलिये मायावाद का खण्डन इन आचार्यों के लिये आवश्यक

^१ भण्डारकर-वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रेलिजस सिस्टम्स पृ० ५० ।

था। इसके बिना भक्ति की मुदढ प्रतिष्ठा नहीं हो सकती थी। शंकराचार्य के प्रभाव से लोग नान माग की ओर प्रवृत्त हुए और भक्ति का माग शिथिल पड़ने लगा। आचार्यों ने इस मायावाद का भरपूर खंडन किया और शुद्ध अद्वैतवाद के स्थान पर भक्तिमूलक भागवत धर्म की श्रेष्ठ बताया।

नाथमुनि-परम्परानुसार सर्व प्रथम गण्य

नाथमुनि आचार्य का समय म.स. ८२४ ई० से स.स. ९२४ ई० तक माना जाता है। परम्परा के अनुसार इन्होंने प्रथम मानते हैं। इन्होंने प्राचीन भी माना जाता है और गौरव का स्थान भी इन्होंने प्राप्त है। 'प्रबोधन' का सम्पादन इन्होंने ही किया था। आलवारों के पद प्रायः लुप्त हो चले थे। नाथमुनि ने उनका उद्धार किया और क्रम के अनुसार एक एक सहस्र की सख्या वाले चार भागों को चार ग्रंथों का रूप दिया। कहा जा सकता है कि प्राचीन वैष्णव धर्म की इन्होंने फिर से प्राण प्रतिष्ठा की। विशिष्टाद्वैत दर्शन का सूत्रपात इन्होंने ही किया, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।

यामुन मुनि (९१६-१०४० ई०)

यामुन मुनि नाथमुनि के पीछे थे। ये बहुत बड़े पंडित हुए। पितामह के समान ही इन्होंने भी आलवारों का धर्म का प्रचार और प्रसार किया। इन्होंने अपने ग्रंथ 'सिद्धिग्रन्थ' में शंकराचार्य के मायावाद का खण्डन किया। अपने दूसरे ग्रंथ 'आगम प्रमाण' द्वारा भागवत धर्म का प्रतिपादन तथा 'गीताय-संग्रह' में श्रीमद्भगवद्गीता का भक्तिपरक सारांश दिया।^१ यामुनाचार्य की पत्नी के पुत्र रामानुजाचार्य थे।

श्री सम्प्रदाय या विशिष्टाद्वैतवाद

श्री रामानुजाचार्य (१०१७-११३७ ई०)

रामानुजाचार्य के नाम के साथ श्री-सम्प्रदाय या विशिष्टाद्वैतवाद का नाम जुटा हुआ है लेकिन ये आदि प्रवृत्तक नहीं थे। विष्णुपुराण शारीरक सूत्र, महाभारत आदि में इस मत का प्रतिपादन किया गया है। बोधायन के श्रुतिग्रन्थ में भी इसपर विचार किया गया है। तब, द्रविड आदि आचार्यों ने द्रविड भाष्य में इसका सारांश दिया है। श्री पराबुग मुनि ने अपने द्रविडो-

^१ राय चौधरी अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट पृ० ११४।

पनिपद् में वीस से भी अधिक गाथाओं में इसका प्रवर्तन किया है, नाथमुनि और यामुन मुनि के मन्वन्व में हम देख ही चुके हैं कि उन्होंने भिन्न भिन्न ग्रन्थों में इसका निरूपण किया है, उमें श्री-सम्प्रदाय त्यों कहते हैं हमके मन्वन्व में यह कहानी प्रचलित है कि भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी के निकट उन धर्म का रहस्योद्घाटन किया था। यही कारण है कि यह 'श्री-सम्प्रदाय' कहलाता है और भक्तगण 'श्री वैष्णव' कहलाते हैं।

उपास्य स्वरूप

इस सम्प्रदाय के उपास्य देवता वैकुण्ठपति विष्णु और लक्ष्मी हैं। लेकिन इस सम्प्रदाय में दोनों के अवतारों को अलग-अलग या साथ उपास्य देवता के रूप में ग्रहण किया गया है। जैसे नारायण या लक्ष्मी-नारायण, राम-सीता, सीताराम, कृष्ण रुक्मिणी आदि^१। उन प्रकार में इस सम्प्रदाय की भिन्न-भिन्न शाखाएँ हो गई हैं।

भक्ति या प्रपत्ति की प्रधानता

रामानुज ने वैष्णवधर्म को जो रूप दिया उसमें भक्ति तथा प्रपत्ति की ही प्रधानता थी लेकिन सिद्धान्त-पक्ष के वैशिष्ट्य के कारण यह 'विशिष्टाद्वैत' कहलाया। श्री सम्प्रदाय में चित्, अचित् और ईश्वर ये तीन मूल तत्त्व हैं। रामानुज ने इन तीनों के बीच के संबंध को 'अपृथक् सिद्ध' कहा है इसका कारण यह है कि चिदचित् की ईश्वर से स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ये पृथक् रूप से असिद्ध हैं लेकिन ईश्वर की सत्ता स्वतन्त्र रूप से सिद्ध है। दोनों के संबंध को स्पष्ट करने के लिए कहा जाता है कि मिट्टी के साथ घड़े का जो सम्बन्ध है, आत्मा का शरीर के साथ जो सम्बन्ध है वही ईश्वर का चिदचित् के साथ सम्बन्ध है। ईश्वर को विशेष्य या अगी तथा चिदचित् को विशेषण या अग कहा गया है। ईश्वर नियामक है और जीव-जगत् नियाम्य। अगभूत चिदचित् की अगीभूत ईश्वर से स्वतन्त्र सत्ता न होने के कारण ब्रह्म अद्वैत है। इसी विलक्षणता के कारण यह सम्प्रदाय 'विशिष्टाद्वैत' के नाम से प्रसिद्ध है।

ईश्वर का स्वरूप

ईश्वर मूल तत्त्व है तथा आत्मा और जड का आश्रय स्वरूप है। ईश्वर से अलग उनकी सत्ता नहीं। चित्, अचित्, ईश्वर के शरीर है और ईश्वर

^१ विलसन हिन्दू रिलिजन्स, पृ० १८।

दोना की आत्मा । वह आत्मा की भी आत्मा है । ईश्वर अनन्त ज्ञान, अनन्त कल्याणगुण भण्डित, आनन्द स्वरूप सृष्टि का विधाता भक्तों का आश्रयदाता, कम फलदायक तथा विकारादि दोषों से रहित है । वह भुवन मोहन, अतीव मुन्दर है । उसका सौन्दर्य सब कुछ के प्रति बराबर उत्पन्न कर देता है । नित्य मुक्त उसी का आस्वादन करते हैं । धर्म की स्थापना के लिए तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये वह पञ्चविध अवतार लेता है । (१) परमा या वासुदेव (२) व्यूह या सकृपण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध (३) विभव या प्रादुर्भाव (४) अन्तर्यामी (५) अर्चावतार ।

सृष्टि भगवान् की लीला है

सृष्टि, भगवान् की लीला से उत्पन्न होती है और इसका प्रयोजन भी लीला ही है । सृष्टि पदार्थों के साथ लीला कर भगवान् का आनन्द की प्राप्ति होती है । ईश्वर के दो प्रकार हैं—कारणावस्थ ब्रह्म तथा कार्यावस्थ ब्रह्म । जीव जीव जगत, प्रलयकाल में सूक्ष्म रूप से भगवान् में अवस्थान करते हैं, इसीलिये वह 'कारण ब्रह्म' कहलाता है । सृष्टि काल में यही ब्रह्म, जीव और जगत् के रूप में अवतरित होते हैं । सृष्टि काल में चिदचिद् स्थूल रूप ग्रहण करते हैं । इस अवस्था में चिदचिद विशिष्ट ईश्वर 'वाय-ब्रह्म' कहलाता है ।

चित् का स्वरूप

चित् तत्त्व आत्मा है । यह स्वयंप्रकाश, आनन्दरूप, नित्य, अणु अव्यक्त या अतीन्द्रिय, अचित्य, निरवयव सबदा एकरूप और निर्विकार है । ज्ञान स्वरूप होने पर भी आत्मा ज्ञान का आश्रय है । ज्ञान सबत्र व्यापक है अतएव अणु होने पर भी उसके भोग में बाधा नहीं । ज्ञान की व्याप्ति के द्वारा एक आत्मा एक ही समय बहुत से शरीर धारण कर सकती है । जीव का वस्तुत्व ईश्वराधीन है । उसकी मूल स्वतन्त्र शक्ति, ईश्वर प्रदत्त है । जीव के प्रयत्न के अनुसार भगवान् उसे कम विघेय में प्रेरित करते हैं । वास्तव में यह अनुमादवक्ता मात्र है, वैसे निरपेक्ष रूप से भगवान् जीव को प्रवर्तित करते हैं । ईश्वर के अधीन उसकी शक्ति है इसलिये जीव के लिए भगवद् दाम्य या वैक्य ही यथायथा स्वातन्त्र्य या परम पुरुषार्थ है ।

प्रकार

आत्माएँ तीन प्रकार की हैं—बद्ध, मुक्त और नित्य । ये भिन्न प्रकार की आत्माएँ असंख्य हैं । आत्मा जब प्रकृति के समग्र में आती है तब उसमें

अविद्या, कर्म, वामना और रचि की उत्पत्ति होती है। अगर अचित् से चित् का सवन्व न रहे तो अविद्या दूर हो जाती है। ज्ञान नित्य, अजड, द्रव्यात्मक और आनन्द रूप है लेकिन उसमें सकोच-विकाम होता है। यह इन्द्रियों के द्वार पर फैला हुआ विषय ग्रहण करता है। आत्मा स्व-प्रकाश है और ज्ञान पर-प्रकाशक। मुक्त अवस्था में ज्ञान पूर्ण विकसित और विभु है लेकिन वृद्धावस्था में सकोच के कारण यह परिच्छिन्न है। यह क्रिया और ज्ञान का आश्रय होने के कारण द्रव्यात्मक है। देहात्म भ्रम ही प्रतिकूल ज्ञान और दुःख का कारण है जैसे प्रकृति की वस्तुएं ईश्वरात्मक होने के कारण स्वभावतः अनुकूल हैं। प्रतिकूल भाव उपाधि के सिवा कुछ नहीं।

अचित् का स्वरूप

ज्ञान-गूण्य वस्तु अचित् या जड-तत्त्व कहलाती है। रामानुज के मतानुसार शुद्ध सत्त्व, मिश्र सत्त्व और काल ये तीन जड पदार्थ हैं। शुद्ध सत्त्व का रजोगुण और तमोगुण से सवन्व नहीं। यह नित्य है, निर्मल है तथा ज्ञान और आनन्द को उत्पन्न करता है। शुद्ध सत्त्व ही नित्यवाम में वैकुण्ठधाम, विमान, गोपुरादि का आकार धारण करता है। लेकिन यह आकार-धारण कर्म निरपेक्ष है और भगवदिच्छा में ही सम्भव हो पाता है, इसका स्वरूप निर्देश कठिन है। यह अनन्त तेजोमय अद्भुत पदार्थ है। ईश्वर और नित्य मुक्त इसकी सीमा नहीं पाते। मिश्र सत्त्व, रज और तमोमिश्र है। प्रकृति, माया, अविद्या, इसी का नामान्तर है। यह ज्ञान विरोधी है। नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत सब प्रकार के प्रत्यय काल के अधीन हैं। लीलाविभूति में ईश्वर कालाधीन होकर कार्य करता है, किन्तु नित्य विभूति में काल का अस्तित्व रहने पर भी स्वातन्त्र्य नहीं है।

भक्ति के साधन

भक्ति के साधनों में प्रवान रूप से विवेक, विमोक, अम्यास, क्रिया, कल्याण, अनवमाद और अनुद्वर्ष का उल्लेख मिलता है। आहार शुद्धि को 'विवेक' तथा बाह्य विषयों में अनाशक्ति को 'विमोक' कहा गया है। 'क्रिया' से मतलब शक्ति के अनुसार पञ्चमहायज्ञ का अनुष्ठान है। चित्त की ऐकान्तिक प्रसन्नता को अनवमाद कहा गया है और अति सन्तोष का अभाव अनुद्वर्ष है। रामानुज के अनुसार कर्म के अनुष्ठान से चित्त की शुद्धि होती है और भक्ति या ब्रह्मज्ञान का उदय होता है। लेकिन पुण्य-पाप दोनों ही ज्ञानोत्पत्ति के

विरोधी है इनसे बचने का बहा गया है। कहा जाता है कि इनसे रजोगुण और तमागुण की वृद्धि होती है।

भक्ति ही एक मात्र लक्ष्य

श्री वैष्णव, भक्ति को ही एकमात्र लक्ष्य मानते हैं। वे ज्ञान और काम को सहायक मानते हैं। जीव पर माया का प्रभाव अत्यन्त प्रबल है क्योंकि जीव में अज्ञानका बहिर्मुखी भाव बना रहता है। इसीलिये उस कभी फल भोगता पडता है आर बार बार जन्म ग्रहण करना पडता है। इसमें उद्धार पाने का एकमात्र उपाय भगवान् की ओर अभिमुखता है। इसी अभिमुखता का भक्ति कहते हैं। भगवान् के प्रति विमुखता के कारण ही जीव माया की आर प्रधा वित होता है।

भक्ति का सार प्रपत्ति

भक्ति का सार प्रपत्ति है। अहं का त्याग कर सभी धर्मों का परित्याग कर एक मात्र भगवान् के चरणों में अपने को समर्पित करना ही प्रपत्ति का स्वरूप है। जो असमय है, जिनमें कोई योग्यता नहीं, तथा जो शूद्र वर्ग के हैं उनके लिये श्री सम्प्रदाय में प्रपत्ति की व्यवस्था की गई है।^१ भगवान् पर ही अपना सब भार डाल देना, सब प्रकार से अपने आपको भगवान् के जाश्रित, कर देना मोक्ष का साधन माना गया है। बहुत से शास्त्रों से प्रमाण देकर रामानुज मतावलम्बियों ने प्रपत्ति की साथवता सिद्ध की है।

प्रपत्ति के भेद

प्रपत्ति के दो भेद माने गए हैं (१) आत (२) दत्त। आत प्रपत्ति वह है जिसमें भक्तका भगवान् की अहतुक कृपा प्राप्त होती है और गुरु का उसे आश्रय मिलता है। वह शास्त्रों का अभ्यास और श्रवण करता है और उस यथाथ ज्ञान की प्राप्ति होती है। उसे देहादि सम्बन्ध असह्य प्रतीत होते हैं और भगवदनुभव में वह सम्बन्ध उसे वाचा देने वाले प्रतीत होते हैं। उनका त्याग कर भगवदनुभव के अनुकूल रूप और देहादि को वाचकर वह भगवान् के अनुसंधान में ही लगा रहता है। (२) दत्त प्रपत्ति में भक्त जन्म मरण दुःख सुख, स्वर्ग-नरक के बंधन से छुटकारा पाने के लिए अपने को अविचन समय भगवान् पर अपना समस्त भार छोड़ देते हैं। वे सब प्रकार से कर्तव्य का वरण

^१ गोपीनाथ राव, हिन्दू आर श्री वृष्णवाच, पृ० २९।

करते हैं। भगवान् के साथ वे अगागी पिता-पुत्र, भर्ता-भार्या, नियन्ता-नियम्य, शरीरी-शरीर, धारक-धार्य, रक्षक-रक्ष्य, भोक्ता-भोग्य आदि नित्य-सम्बन्ध का अनुसन्धान करते हैं।

जीव और भगवान् का सम्बन्ध

जीव और भगवान् का सम्बन्ध नित्य है। इस नित्य-सम्बन्ध का आविष्कार ही साधना का लक्ष्य है। जीव और भगवान् में अगागी भाव है। जीव संदा भगवदाश्रित है। यह आश्रित भाव ही दास्य या कैकर्य है इसका पूर्ण विकास मोक्ष है। भक्त, इस भगवदानुभूति या मोक्ष की कामना किया करते हैं। इस अवस्था में मुक्त पुरुष का भगवान् के साथ कोई भेद नहीं रहता। उसमें ज्ञान, आनन्द आदि गुण पूर्ण रूप से विकसित रहते हैं। लेकिन भगवान् के साथ अभेद होने पर जीव-भाव चिर दिन अक्षुण्ण बना रहता है अतएव ईश्वरत्व लाभ करने पर भी भगवान् की अवीनता का भाव उसमें बना रहता है। भक्त 'कैवल्य' नहीं चाहते क्योंकि उसमें आत्मानुभव होता है, भगवत्-स्फूर्ति नहीं होती अतएव आनन्द का विकास नहीं होता।

जीव में दास्य भाव

जीव में दास्य भावमूलक भक्ति नित्य है। प्रकृति-सम्बन्ध से उसमें जो कृत्रिम अभिमान का उदय होता है वह ब्रह्मविद्या की प्राप्ति से तिरोहित हो जाता है और विशुद्ध दास्य-भाव का उदय होता है। मुक्ति में भक्त लोग अहं का विनाश नहीं मानते अतएव वे भक्ति की कामना करते हैं जिसमें दास्य-भाव से उत्पन्न परमानन्द का अनुभव वे बराबर करते रहे। हनुमान की उक्ति में हम यही पाते हैं।

भवबन्धच्छिदे तसे, प्रार्थयामि न मुक्तये ।

'भवान् प्रभुरहं दास' इति यत्र विलुप्यते ॥

श्री वैष्णवों के दो दल

रामानुज की मृत्यु के डेढ़ सौ वर्षों के भीतर ही श्री वैष्णवों के दो दल हो गये (१) टेकलइ (दक्षिण पथ), (२) वडकलइ (उत्तर पथ)। प्रपत्ति और कृपा को लेकर इन दोनों गाखाओं में मतभेद है। टेकलइ, शरणागति को ही मोक्ष का उपाय मानते हैं और कर्म के अनुष्ठान को वाछनीय नहीं मानते। वडकलइ, प्रपत्ति में भी कर्म का अनुष्ठान आवश्यक मानते

है। वडकलई वैवल्यमक्ति का रथायी नहीं मानते और टेकलई उसे नित्यावस्था मानते हैं। वडकलई, नारायण के समान श्री के भाददान मामध्य पर विश्वास करते हैं। टेकलई इसे नहीं मानते, उनका कहना है कि श्री, मध्यवर्तिनी होकर जीव को भगवान् के कृपापात्र होने में सहायक होती है। इस प्रकार स दोना दला में और कई मतभेद हो गए हैं।

ब्रह्म सम्प्रदाय या द्वैतवाद (मध्वाचार्य ११९७-१२७६ ई०)

ब्रह्म-सम्प्रदाय के आदि गुरु विष्णु के प्रधान भक्त ब्रह्मा मान जाते हैं। इस मत के प्रधान आचार्य मध्वाचार्य या आनन्दतीय थे जो वायु के अवतार माने गये हैं। यह सम्प्रदाय द्वैतवादी या भेदवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

ऐतिहासिक महत्त्व

जिन दिना शहर मत और भक्तिवाद का प्रबल सघष चल रहा था उसी काल में कनाटक तथा महाराष्ट्र प्रान्त के दक्षिणी भाग में माध्वमत का उदय हुआ।^१ मध्वाचार्य ने अद्वैत वेदान्त का प्रबल विरोध किया। विशिष्टाद्वैत पर शहर के अद्वैत का कुछ प्रभाव था लेकिन मध्वाचार्य ने जिस द्वैतवाद^२ का प्रवर्तन किया उसे सब प्रकार से उहाने अद्वैत भावना से मुक्त करने की चेष्टा की।

क्रिया की दो अवस्थाएँ

माध्व मत में क्रिया की दो अवस्थाएँ मानी गई हैं (१) अव्यक्त या शक्ति अवस्था, (२) व्यक्त अवस्था। सृष्टि के समय जो क्रिया अभिव्यक्त होती है कालान्तर में वह शक्ति रूप में अवस्थित रहती है। जब ईश्वर, सृष्टि की रचना नहीं भी करते हैं तब भी यह क्रिया उनमें विद्यमान रहती है। कम के नित्य अतित्य का भेद माने गये हैं। नित्यकम, ईश्वरादि चेतन

^१ प्रियसन तथा भडारकर ने मध्वाचार्य का जन्म काल सन् ११९७ ई० माना है तथा मध्वाचार्य के 'महाभारत-तात्पर्य निणय' के अनुसार सन् ११९९ ई० है। हाल ही के कूम्भमे में मिले शासन पत्र के आधार पर उनके सम्पादक वृष्ण शास्त्री ने उनका जन्मकाल सन् १२३८ ई० माना है, लेकिन यह मत सर्वमान्य नहीं है।

^२ सात्व्य के द्वैतवाद ने यह सिद्ध है।

का स्वल्पभूत है जैसे मृष्टि महाराष्ट्र के कर्म। अनिय वस्तु के गहारे जिम क्रिया का उदय होता है वह अनित्य है। ममारी जीवों में चिन्तन आदि की क्रियाएँ अनित्य हैं। उनकी नमाप्ति मुक्ति में होनी है।

परमात्मा

अनन्त गुणों वाला परमात्मा ही विष्णु म्यग्ग सर्वोच्चतत्त्व है। उसके अनन्त रूप हैं। सूर्य, चन्द्र, वरुण आदि वेद प्रतिपादित देवता एसी शक्ति के विलाम मात्र हैं। परमात्मा, मृष्टि मन्त्री आठ प्रकार के कार्य निरन्तर कर रहा है। ये कार्य मृष्टि, स्थिति, महार, नियमन, अज्ञान या आवरण, ज्ञान, बद्ध और मोक्ष हैं। वह नित्य मुक्त है। विद्या, जद्विद्या, त्रिगुण, देहोत्पत्ति, मुख-दुःख सभी उसके उच्छा मूलक हैं। परमात्मा, सर्वज्ञत्व, अनन्त शक्तितमत्त्व आदि अपरिमित अत्राटन गुणों का निधान है।

लक्ष्मी

लक्ष्मी भी नित्यमुक्त और गुणयुक्त है। वे परमात्मा ने भिन्न, पर एकमात्र परमात्मा के ही अधीन हैं। वे आप्त काम है फिर भी भगवान् की उपासना में सर्वदा लगी रहती है।

उपास्य देव

इस सप्रदाय में प्रथम विष्णु ही उपास्य देव थे। लेकिन बाद में राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के अवतार माने गए। माध्वान्प्रदाय में कृष्ण और राम उपासना की दो पृथक् शाखाएँ हो गई^१।

जीव

जीव, भगवान् का भिन्नांग है और यह भिन्नता अक्षुण्ण बनी रहती है। यही कारण है कि अनन्त काल तक जीव भगवान् की महिमा का अनुभव करता रहता है। जीव, अल्प ज्ञान और अल्प शक्ति वाला है। भगवान् का वह सेवक है। भगवान् ने ही वह शक्ति पाता है। भगवान् को छोड़ कर उसमें स्वतः कार्य सम्पादन की क्षमता नहीं है। अनादि काल में वह माया से आवद्ध है इसीलिये अज्ञान, दुःख और मोहादि से सयुक्त वह मसारी है। प्रत्येक जीव अपना पृथक् अस्तित्व बनाए रहता है। वह परस्पर भिन्न है साथ ही परमात्मा

^१ पाण्डेय रामावतार शर्मा भारतीय ईश्वरवाद पृ० ४६८।

से भी भिन्न है। यह भेद स्वभावसिद्ध और नित्य है। ससारी और मुक्त दशा दोनों में ही पाथक्य का तारतम्य बना रहता है। विगिष्टाद्वैतवादी मुक्तावस्था में इस तारतम्य का नहीं स्वीकार करते। जीव व गुणगत भेद, उत्तम मध्यम और अधम है। उत्तम वह है जिसने सब प्रकार से भगवान के पद का आश्रय ले लिया हो और जिसके मन में सब वस्तुओं के प्रति बराबर हो गया हो। जिसमें शम है वह मध्यम और भगवान् में भक्तिभाव रखते हुए जो अध्ययनशाल है वह अधम अधिकारी है।

जगत्

मध्वाचार्य जगत को माया नहीं मानते। वे इसे सत्य मानते हैं। भगवान् नित्य और सत्य है अतएव मध्यमत के अनुसार उसके सत्य सकल्प द्वारा निर्मित ससार असत्य नहीं हो सकता। फिर भी वह जड़ और अस्वयत्न है यद्यपि उसका अस्तित्व सत्य है। परमात्मा उसका नियामक है। पूर्ण तरह से वह परमात्मा के अधीन है।

पञ्चविध भेद या प्रपञ्च

इन पदार्थों या तत्त्वों के बीच मध्वाचार्य पञ्चविध भेद मानते हैं। इस भेद का हा 'प्रपञ्च' कहा गया है। य पांच या है (१) ईश्वर का जीव में भेद (२) ईश्वर का जड़ से भेद (३) जीव का जड़ से भेद (४) एक जीव का अन्य जीव से परस्पर भेद (५) एक जड़ पदार्थ का अन्य जड़ पदार्थ से भेद^१। बिना तात्त्विक भेद ज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं। अभेद ज्ञान ही बंधन है। भगवान के सभी गुण सत्य हैं। जीव, ईश्वरादि भेद भी सत्य हैं। जगत् भी सत्य है और पञ्चमेव युक्त जगत का प्रवाह भी सत्य है।

मोक्ष लाभ

मध्यमत में मोक्ष लाभ का प्रश्न इस प्रकार है^२। भगवान के अनुग्रह से अपरोक्षज्ञान या भगवद ज्ञान होता है। इस ज्ञान के फलस्वरूप भगवान के अनन्त, कल्याण गुणों का ज्ञान होता है और उनके प्रति अत्यन्त प्रेम

^१ जीव-वरभिदा च व जडेश्वरभिदा तथा। जीव भेदा मियदच व जडजीवभिदा तथा। मिथश्च जडभेदाहय प्रपञ्चा भेद पञ्चम्। मोक्षय सत्याह्यादुनादिश्च सादिश्चेन्नागमाप्नुयान्-नत्वनिणय।

^२ महामहापाध्याय गार्गीनाथ कविगुरु के गोडाय वर्णव ज्ञान के आधार पर।

प्रवाह उत्पन्न होता है। इन प्रेम के उदय में भक्त अपने आप तथा अपने मगे-सम्बन्धियों को भूल जाता है, यह 'परम भक्ति' है। इन्हीं से भगवान् का अत्यन्त प्रसाद और परम-अनुग्रह प्राप्त होता है जिससे मुक्ति लाभ होता है। भगवद्दर्शन से सत्त्वादि गुण, कर्म, आत्म-संग्लिष्ट प्रवृत्ति तथा मूढम देह दग्ध होते हैं। लेकिन प्रारब्धकर्म जब तक बना रहता है वे बार बार आविर्भूत और तिरोभूत होते रहते हैं। अज्ञान का आश्रय जीव ही है, अन्त करण नहीं। जीन स्वप्रकाश है परन्तु ईश्वरेच्छा से वह अविद्या से आवृत हो सकता है। आत्मज्ञान के उदय होने में जीव में बहुगुणों का आविर्भाव होता है जिससे मोक्ष का जन्म होता है।

मुक्ति में आनन्द भोग-तारतम्य

प्रलय काल में सभी जीव भगवान् के उदर में प्रविष्ट हो जाते हैं। उस समय विषय भोग नहीं होता, यह विषय भोग नवीन सृष्टि के समय जब फिर से बहिर्गति होती है तब होता है। प्रलय काल में केवल स्वरूपानुमति ही होती है। जो मुक्त पुरुष है उनके ज्ञान और आनन्द में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता चाहे सृष्टि की अवस्था हो या प्रलय की। माध्व मत के अनुयायी मानते हैं कि मुक्ति में स्वकीय योग्यता के अनुसार जीव में आनन्द भोग होता है तथा जीव मात्र के आनन्द में साम्य नहीं होता। इसीलिए भोग में भी तारतम्य होता है क्योंकि जीवों की योग्यता में तारतम्य है।

मुक्ति के प्रकार

मुक्ति चार प्रकार की है - मालोक्य, सामीप्य, माह्य, मायुज्य। सायुज्य मुक्ति में भगवान् में प्रविष्ट होकर भगवद्देह द्वारा भोग भावन होता है। मुक्त जीव, अनित्य देह को त्याग चिन्मय देह और चिन्मय इन्द्रिय युक्त ही भगवद्देह में प्रविष्ट होता है और वह भगवान् के अनुग्रह से जैसे उन्हींके पैरो चलता है, उन्हीं की दृष्टि से देखता है।

आदेन हृद्दिस्तेन हरिदृष्ट्यैव पश्यति ।

गच्छेच्च हरिपादेन मुक्तम्यैपास्थिति भवेत् ॥

इसके अधिकारी देवता लोग हैं। ब्रह्मा का भोग परमात्मा के शरीर से ही निष्पन्न होता है। प्रलय काल में तो सभी को भगवद्देह में प्रविष्ट होना पड़ता है लेकिन अन्य समय मुक्त लोग स्वेच्छानुसार स्वरूप में प्रविष्ट हो सकते हैं और बाहर आ सकते हैं। परमात्मा में प्रविष्ट होने पर भी जीव परमात्मा

के आनन्द का भोग नहीं कर सकता वह स्वरूपानन्द का ही भोग करता है। परमात्मा, जीव भोग्य आनन्द का भी भाक्ता है। जीव और परमात्मा में यही पायबन्ध है। सालाक्य मुक्ति में मुक्त लोग भगवद्लोक में जिस किसी भी स्थान पर रहकर इच्छानुरूप भोग सम्पादन करते हैं। कोई वही मुक्ति लाभ कर अवस्थान करत है और कोई-कोई अन्तरिक्ष अथवा स्वर्ग में, महारादि लोक या क्षीरोद समुद्र में अवस्थान करते हैं। सामान्य और साहस्य भोग में भी ऐसा ही होता है। मुक्त पुरुषों के भोग स्थान का अन्त नहीं है। विद्वानों का कहना है कि माध्व मत भक्ति की दृष्टि से अत्यन्त तब सगत है।

माध्व मत का गौडाय सम्प्रदाय से सम्बन्ध

माध्वमत का प्रचार दक्षिण भारत में और विशेषतः कर्नाटक और महाराष्ट्र अंचल में ही था। कई शताब्दियों के बाद इसका प्रचार उत्तर भारत में और विशेषरूप से बंगाल में हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय माध्वमत की शाखा से ही सम्बद्ध है। दोनों सम्प्रदायों में दार्शनिक दृष्टि से अन्तर है लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों का संबंध स्थापित किया जाता है। मध्वाचार्य की गुरु-परम्परा में इश्वरपुरी तथा कान्धभारती का नाम मिलता है। ये दोनों चतुर्थ श्रेय के क्रम में दीक्षा और सत्यास गुरु थे।

हंस या सनकादि सम्प्रदाय या द्वैताद्वैत मत (निवाकाचार्य)

द्वैत की दृष्टि से वैष्णव-सम्प्रदायों में द्वैताद्वैत मत को महत्व का स्थान प्राप्त है। इसने ऐतिहासिक प्रतिनिधि आचार्य निम्बाक हैं। इन्हें भगवान् के सुदराचित्र का अवतार मानत है। इस सम्प्रदाय के हंस सम्प्रदाय, सनकादि सम्प्रदाय आदि भिन्न भिन्न नाम हैं। हंसवतार भगवान् इन्हें सत्रप्रथम उपदेष्टा माने जाते हैं। इनके गिष्य शांकादि थे। सनकादि ने महर्षि नारद का इसका उपदेश दिया और महर्षि नारद से निवाक का यह प्राप्त हुआ।

निवाक का आधिर्भाव काल

निवाक के आधिर्भाव काल को स्वरूपानन्द प्रचारक मत है। निवाक सम्प्रदाय के अनुयायियों का कहना है कि निवाक का प्राकट्य द्वापर में हुआ। कुछ विद्वान् इसे प्राचीनतम वैष्णव सम्प्रदाय मानत हैं और उक्त काल इसकी गुरु की पाँचवीं शताब्दी बताते हैं।^१ निवाक ने ब्रह्मसूत्र का जो भाष्य

^१ गिनि मोहन सेन भारतीय मध्य युगे साधना का धारा पृ० ३४।

किया है उसमें शंकर के मायावाद का खंडन नहीं मिलता इसमें बहुतांश का अनुमान है कि वे शंकर के पूर्ववर्ती हैं। लेकिन निम्बार्क के बाद ही उनके प्रधान शिष्य श्री निवास ने शंकर के 'प्रतिविम्बवाद' का उल्लेख किया है। 'माध्व-मुञ्ज-मर्दन' नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ अभी हाल ही में मिला है जिसे निवार्क रचित माना जाता है। अगर यह सही हो तो निवार्क, मध्वाचार्य के बाद अर्थात् इसवी सन् की तेरहवीं शताब्दी में हुए।^१ गुरु-परम्परा की छानबीन कर भण्डारकर ने इनका समय सन् ११६२ ई० के आस-पास माना है।

द्वैताद्वैत मत की प्राचीनता

द्वैताद्वैत मत का उल्लेख बहुत पहले से मिलने लगता है। प्राचीन आचार्यों में किसी-न-किसी रूप में सभवतः इसका प्रचार था। निवार्क के पहले भास्कराचार्य ने इसका समर्थन किया है। ब्रह्मसूत्र में ओडुलोमि नामक आचार्य का उल्लेख मिलता है जो भेदाभेदी थे। ओडुलोमि के अनुसार ब्रह्म और जीव में अवस्था विरोध से भिन्नत्व तथा अभिन्नत्व है। सप्ताश्रय में एकात्म ब्रह्म के साथ नानात्मक जीव का सर्वथा अन्तर है लेकिन मुक्ति दशा में चैतन्यात्मक होने से जीव और ब्रह्म अभिन्न है।^२ निम्बार्क भेदाभेद को स्वाभाविक मानते हैं। उनके मतानुसार बद्ध और मुक्त दोनों ही अवस्था में यह वर्तमान रहता है। जीव ब्रह्म से अवस्था भेद से भिन्न तथा अभिन्न है। ईश्वर, जीव, जगत के स्वरूप के सन्ध में इस मत की स्थापनाएँ बहुत दूर तक रामानुज के मत का अनुकरण करती हैं। उपास्यदेव को लेकर दोनों में भेद है। रामानुज संप्रदाय में उपास्य देव नारायण और लक्ष्मी है। निम्बार्क संप्रदाय में सर्वेश्वर श्रीकृष्ण और उनकी ह्लादिनी शक्ति राधा आराध्य है। इस भिन्नता के कारण दोनों की साधना-पद्धति में भी भिन्नता आ गई है।

ब्रह्म

जगत् कर्तृत्वादि गुणों के आश्रय श्रीकृष्ण ही पर-ब्रह्म है। वे दोषरहित, कल्याण-गुणाकर, सत्य-ज्ञान स्वरूप, अनन्त, सच्चिदानन्द विग्रह है। उनके स्वरूप के समान ही उनका शरीर अनन्त असंख्य गुणों का आश्रय है। वे

^१ रमा चौधरी · डाक्टरेट्स आफ निम्बार्क एण्ड हिज फालोअर्स, पृ० १५।

^२ ब्रह्मसूत्र · १।४।२१।

सबशक्तिमान है। एकरस है। उनका शरीर परम सौन्दर्य, लावण्य और सुकुमारता से नित्य विभूषित है। भगवान् भक्तवत्सल कमपल्दाता ह। वे मुक्त-गम्य और योगिया के ध्यान के विषय ह।

चित्त और अचित्त दोनों ही तत्त्व ब्रह्मात्मक हैं लेकिन ब्रह्म इनसे निय-विलक्षण है। अणु और अल्पज जीव बद्धावस्था में भी ब्रह्मात्मा होने के कारण ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी अभिन्न ह। वृक्ष से पत्र, प्रदीप से प्रभा गुणी से गुण और प्राण से इन्द्रिय पथक् रूप से न रह सकते ह और न काय करने में समय हो सकते हैं। इसी प्रकार मुक्ति में भी पथक् स्थिति नहीं रहने में अभेदत्व के रहत हुए भी भेद ह। मुक्तावस्था में प्रत्येक आत्मा यह अनुभव करता है कि वह परमात्मा से अविभक्त ह। परमात्मा जीव का स्वाशी और जीव उसका स्वांग है। इसीलिये जीव स्वभावत ईश्वरात्मक और अविभाज्य है। स्वरूपत दाना में स्वाभाविक विभाग है लेकिन दाना में स्वाभाविक अविभाग भी बतमान है। अतएव जीव और ब्रह्म का परस्पर सबंध विभाग सहिष्णु-अविभाग है।

ब्रह्म ही जगत के उपादान और निमित्त है। वे ही वृत्तिमान (कर्त्ता) और वही कृति के विषय (कर्म) ह इसीलिये वे अभिन्न निमित्तापादन है। जीव अनादि कर्म सस्कार के वशीभूत ह।

परमात्मा, सबज्ञ, सबशक्तिमान और अच्युत विभव है। वे 'स्वात्मक और स्वाधिष्ठित' अपनी शक्ति को विकसित करके जगत आकार में अपनी आत्मा को परिणत करत ह। उनमें स्वभावसिद्ध अनन्त शक्ति ह। इन शक्तिया के विक्षेप से सृष्टि आदि व्यापार सम्पन्न होते ह। ये निर्विकार और अच्युत रहने पर भी जगत् का प्रसवादि काय कर सकत ह, यही उनका वणिष्ठय ह।

उपास्य स्वरूप

निम्वाक मत में युगल रूप की उपासना हाती है। श्रीकृष्ण की बायीं ओर राधा सधन विराजमान है। ये कल्याण मूर्ति ह फलदायिनी ह और सब इच्छाओं का पूरी करने वाली ह।

चित्

चित्त तत्त्व ही जीवात्मा ह। यह नित्य पान का आश्रय ह और ज्ञान स्वरूप है। यह दह आदि जडपदार्थ से पृथक् है। भगवान् इसमें व्याप्त ह।

इसकी अन्तरात्मा भगवान् है। यह सर्वदा भगवान् के अधीन है। ईश्वर इसका प्रेरक है। जीव तीन प्रकार के हैं—नित्य, मयन और बद्ध। नित्य जीव सदा ही तत्सार दुःख से मुक्त है। वह स्वभावतः भगवदनुभाविन है। वह भगवान् के स्वरूप, गुणादि विषयों का आनन्द अनुभव करता रहता है। मुक्त जीव वे हैं जो अधिष्ठा से उन्नत बन्धन को छिन्न कर उन्मुक्त हो जाते हैं। मुक्त जीव दो प्रकार के हैं—नित्य मुक्त और दूगुणे वे हैं जो मन्त्रगो द्वारा पूर्व जन्म के कर्मों का भोग सम्पन्न कर नगार के बन्धन में मुक्त हो जाते हैं, नित्य मुक्त गरुड, चित्रकमेत, भगवान् के नानाविध आभूषण और वयो आदि हैं। बन्धन से मुक्त होकर जीव ज्योति-स्वरूप परमात्मा को पाकर अपने यथार्थ स्वरूप में आविर्भूत होते हैं और फिर नगार में लौटकर नहीं आते। उन मुक्तों में कुछ तो स्वरूप ज्ञान मात्र से तृप्ति लाभ करने हैं और कुछ ईश्वर सादृश्य प्राप्त करते हैं। जो भगवत् माम्य प्राप्त करते हैं वे नित्य जीवों के समान भगवान् के नमान ही गुणजाली होते हैं। आत्मा के समान यह देह भी नित्य है। जीव का नित्य देह बन्धनावस्था में आवृत रहता है। भगवान् के अनुग्रह से जब वह प्रकृति सवन्ध से मुक्त होता है तब उन्मग अपने नित्य-सिद्धदेह से योग होता है। बद्ध जीव वे हैं जो अनादि कर्मजन्म देहादि में आत्मा और आत्मीय रूप में अभिमान करते हैं। इनमें भी अवस्था का तारतम्य है। इनमें कोई बुभुक्षु जीव है और कोई मुमुक्षु जीव।

अचित्

अचित् तत्त्व तीन प्रकार का है—प्राकृत, अप्राकृत और काल। यह कारण रूप से नित्य, कार्य रूप में अनित्य है। अचित् की सत्ता भगवन् सापेक्ष है। इसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। अर्थात् तत्त्व का अप्राकृत अज विगुद्ध सत्त्व है। यह अचेतन तो है लेकिन प्रकृति और काल में विलकुल भिन्न है। परमपद, विष्णुपद, परमव्योम आदि इसके नामान्तर हैं। यह कालातीत होने के कारण परिणामादि विकार-शून्य है। काल, नित्य विभु है। लेकिन ज्ञानमात्र में काल बोध रहता है। यह भगवान् के अधीन है। यह सृष्टि आदि का सहकारी है और प्राकृत वस्तु मात्र का नियामक है।

युगल-स्वरूप-उपास्य

इस सम्प्रदाय में सर्वेश्वर श्रीकृष्ण और उनकी बाह्यादिनी शक्ति श्रीराधा की युगल उपासना का प्रतिपादन किया गया है। भगवान् के माधुर्य पक्ष और उनकी प्रेम शक्तिरूपिणी श्रीराधा की उपासना पर निम्बार्क ने जोर दिया

या। निम्वाक मत के अनुसार भेदा भेद आश्रय श्रीवृष्ण ही वेदान्त के विषय हैं और भक्ति ही मोक्ष का साधन है। लगता है जैसे निम्वाक मत की सर्वेश्वरी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा ने गौडीय वष्णव सम्प्रदाय को खूब प्रभावित किया।

परामुक्ति और गोलोक

जीव सद्गुरु का आश्रय लेकर साधन माग पर अग्रसर होता है। साधना के माग-कम, नान, ध्यान और प्रपत्ति है। इनका अनुसरण कर जीव भगवान् की अहेतुक वृषा प्राप्त कर परामुक्ति लाभ करता है। ये साधक वैकुण्ठ के बदले गालोक की ही कामना करते हैं। वे वैकुण्ठ से गोलोक का स्थान ऊँचा मानते हैं। गोलोक में भगवान् नररूप से द्विभुज आकार में लीला करते हैं जब कि वैकुण्ठ में भगवान् के ईश्वरीय रूप की लीला चलती रहती है।

रुद्र सम्प्रदाय या शुद्धाद्वैतवाद (विष्णुस्वामी और वल्लभाचार्य)

सिद्धान्त पक्ष अस्पष्ट

रुद्र सम्प्रदाय के संस्थापक विष्णुस्वामी माने जाते हैं। लेकिन यह सम्प्रदाय बहुत पहले ही लुप्त हो गया था और विष्णुस्वामी की कोई प्रामाणिक रचना भी उपलब्ध नहीं अतएव इन सम्प्रदाय के सम्बन्ध में बहुत कुछ पता नहीं चलता। कहते हैं कि इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त विष्णुस्वामी की शिष्य परंपरा से प्राप्त हुए। रुद्रदेव ने बालखिल्य ऋषि को इसका उपदेश किया था और फिर वही उपदेश शिष्य-परंपरा से विष्णुस्वामी तक पहुँचा। कहते हैं कि वल्लभाचार्य, विष्णु स्वामी की परंपरा में पडत है लेकिन इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। कहा जाता है कि विष्णुस्वामी के सिद्धान्त को ही नये सिरे से वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत के नाम से प्रचारित किया लेकिन विष्णुस्वामी के सिद्धांत का अल्पांग में जा कुछ भी पता चलता है उससे लगता है कि दाना में यथेष्ट पाथक्य है। श्रीधरी टीका से विष्णुस्वामी के कुछ सिद्धान्तों का आभास मिलता है। उसके अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है और वे अपनी आह्लादिनी 'सक्ति' के द्वारा आग्लिष्ट है तथा माया उन्हीं के अधीन रहती है। नृसिंह रूप का इन्होंने ईश्वर का प्रधान अवतार माना है। कुछ लोग उन्हें नृसिंह तथा गोपाल दोनों का उपासक मानते हैं।

वल्लभाचार्य (१४७८-१५३० ई०)

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत, शंकराचार्य के मत का विरोधी है। इसमें ज्ञान का स्थान गौण है। भक्ति को इसमें प्रधान माना गया है। बाल-गोपाल उनके उपास्य हैं। बाद में चलकर लीला पुनर्णोत्तम श्रीकृष्ण रूप की उपासना भी वल्लभ-सम्प्रदाय में आ गई। भगवान् की वृन्दावन-लीला और नित्य-लीला इस सम्प्रदाय के आचार्यों को मान्य हुई। कहते हैं कि परवर्ती काल में वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने इस सम्प्रदाय में मधुर भाव की भावना को सन्निविष्ट किया। वैसे इन बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि वल्लभाचार्य को भी मधुर रस की भक्ति अमान्य नहीं थी। वल्लभ-दर्शन, उपासना तथा साधना के सम्बन्ध में आगे चलकर विस्तृत आलोचना की जायगी।

गौड़ीय-सम्प्रदाय या अचिन्त्य भेदाभेद (श्री चैतन्य १४८६-१५३४ ई०)
गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय

गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री चैतन्य थे। गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का विश्वास है कि राधाभावद्युतिमण्डित कृष्ण ही श्री गौरांग (चैतन्य महाप्रभु) के रूप में अवतरित हुए। यह सम्प्रदाय वल्लभ-सम्प्रदाय का समसामयिक है। प्राचीन परम्परागत चार वैष्णव सम्प्रदायों में इसकी गणना नहीं होती। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का सबव माध्व मत से जोड़ा जाता है यद्यपि दर्शन, मिद्धान्त और साधना की दृष्टि में दोनों में पार्थक्य है, दोनों के साथ ऐतिहासिक सबव स्थापित किया जाता है। ईश्वरपुरी और केगवभारती जो चैतन्य के दीक्षा और सन्यास गुरु थे, माध्व की गुरुपरम्परा में पढते हैं। इन्हे कहीं तक विश्वसनीय माना जा सकता है, कहना कठिन है लेकिन इस प्रकार से माध्व सम्प्रदाय के साथ सबव जोड़ने से गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय की नीति दृढ़ हो गई और उसका महत्व बढ़ गया।

उपासना पद्धति का बल्लभ और निम्बार्क से साम्य

इस सम्प्रदाय में मधुर रस की भक्ति का ही प्रधान्य है। युगल रूप की उपासना ही इसके मूल में है। राधाकृष्ण इस सम्प्रदाय के उपास्य हैं। इस दृष्टि से इस सम्प्रदाय का साम्य निम्बार्क और वल्लभसम्प्रदाय से अधिक है माध्व सम्प्रदाय से नहीं। नित्य वृन्दावन तथा गोलोक धाम की नित्य-लीला का रसास्वादन भक्त का एकमात्र लक्ष्य है। श्रृंगार रस की प्रधानता के

कारण कुछ लोग राधावल्लभीय तथा सखी-सम्प्रदाय को गौडीय सम्प्रदाय की शाखा विशेष मानते हैं लेकिन इस बात को लेकर पूरा मतभेद है। गौडीय सम्प्रदाय की विशेष रूप से चर्चा आगे मिलेगी।

अन्य प्रमुख सम्प्रदाय (राधावल्लभीय सम्प्रदाय—हित हरिवंश)¹

प्रवर्तक

हितहरिवंश, राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इस सम्प्रदाय की सीमा ब्रजमण्डल तक ही रही। इस सम्प्रदाय का आविर्भाव काल ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी माना जा सकता है।

राधा का प्राधान्य

इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना हाती है। युगल जाड़ी की प्रेम-लीलाओं का मनन और चिन्तन तथा स्वरूप की पूजा ही इस सम्प्रदाय में एक मात्र साधना बताया गया है। इसी के द्वारा परमानन्द की प्राप्ति होती है। इस मत में राधा को प्रधान मिला है। मधुर रस की उपासना ही इस सम्प्रदाय के भक्तों का एकमात्र लक्ष्य है। इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त पक्ष किसी ठोस दार्शनिक मतवाद पर आधारित नहीं है। बहुत लोगोंने इस सम्प्रदाय को चतुर्थ² अथवा निम्बार्क² सम्प्रदाय की शाखा माना है। इस सम्प्रदाय के सिद्धांतों आदि का परिचय आगे दिया जायगा।

सखी सम्प्रदाय (स्वामी हरिदास)

प्रवर्तक

सखी-सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास थे। यह वल्लभसम्प्रदाय का लगभग समकालीन है। इसका प्रचार ब्रज में उस काल में हो रहा था। कहा जाता है कि स्वामी हरिदास पहले निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे बाद में गोपी भाव को ही भगवत्प्राप्ति का एकमात्र साधन मानकर इन्होंने इस स्वतंत्र मत को चलाया।

सखी-सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्य हैं। सखी भाव से युगल-

¹ अक्षयकुमार दत्त भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय पृ० २२६।

² प्रियसन भक्ति मार्ग इन्सायक्लोपेडिया आफ रिलिजस एण्ड एथिक्स, पृ० ५४६।

स्वरूप की उपासना तथा सेवा ही इस सम्प्रदाय के भक्तों की साधना का एकमात्र लक्ष्य है। इस सम्प्रदाय वाले किसी दार्शनिक तत्वविवेचन के चक्कर में नहीं पड़े। इस सम्प्रदाय की विशेष जानकारी हम आगे चलकर प्राप्त करेंगे।

ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी में गौडीय सम्प्रदाय, वल्लभ-सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सम्प्रदाय और सखी-सम्प्रदाय वृन्दावन में खूब फूले फले। ये सम्प्रदाय अत्यन्त लोकप्रिय हुए और इनका प्रभाव समाज और साहित्य पर गहरा और व्यापक रूप से पड़ा। इनके रथायी प्रभाव का प्रमाण हमें आज भी मिलता है। ब्रजभाषा और ब्रजवृत्ति के साहित्यों के मूल में इन्हीं संप्रदायों की प्रेरणा थी। इन सम्प्रदायों की चर्चा बाद में भी की जाएगी।



(ख) वैष्णव-साधना भक्ति-साधना है

वैष्णव धर्म और भक्ति

भारतवर्ष में नाना धर्मों के आश्रय में विभिन्न साधना प्रणालियों का उद्भव, विकास और प्रसार हुआ। बौद्ध, जैन, शैव, शक्ति आदि सम्प्रदायों ने कर्म, ध्यान, ज्ञान, योग आदि की ही प्रधानता स्वीकार की, भक्ति उनके लिए गौण थी। इसके प्रतिकूल वैष्णव सम्प्रदायियों को भक्ति ही प्रधान रूप से मान्य हुई, उनकी दृष्टि में ज्ञान तथा कर्म हेतु तो नहीं परन्तु उन्होंने भक्ति के सहकारी के रूप में ही इन्हें ग्रहण किया। वैष्णव मतानुसार कर्म से चित्त की शुद्धि होती है तथा ज्ञान से आत्म-साक्षात्कार। पर भगवान् की प्राप्ति भक्ति के द्वारा ही संभव है और वही एकमात्र साधना है। इस भक्ति भाव को चरम उत्कर्ष पर पहुँचाना वैष्णव धर्म की अन्यतम विशेषता है। वस्तुतः गौडीय वैष्णव आचार्यों द्वारा इस भक्ति भाव का पूर्ण विकास तथा प्रसार हुआ। इन्होंने भक्ति को केवल भाव से रस तक ही नहीं पहुँचाया प्रत्युत उसे रसों में श्रेष्ठ या प्रधानतम सिद्ध किया और उसे "मधुरभाव" या "मधुररस" की सजा में प्रचारित किया। किसी भी सम्प्रदाय का मेरुदण्ड उसकी साधनापद्धति ही है। वैष्णव सम्प्रदाय भी भक्ति साधना के अपूर्व वैशिष्ट्य के कारण ही जगत् में ख्यात और इतना लोक-प्रिय हुआ।

भक्ति की विभिन्न व्याख्याएँ

भक्त का भगवान् से रागात्मक सम्बन्ध स्थापन ही भक्ति है। शाब्दिक्य के अनुसार भक्ति का लक्षण है “सा परानुरक्तिरीश्वरे”^१—ईश्वर में परम अनुराग ही भक्ति है। जिसके द्वारा भगवान् की कृपा आकृष्ट होती है और समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है, वही भक्ति है। देवर्षि नारद ने सरल और स्पष्ट शब्दा में भक्ति की व्याख्या की—“सा त्वस्मिन् परमप्रेम रूपा^२—उस परमेश्वर में अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है। जान-कम भूलकर, वासना-कामना भूलकर, सुखदुःख भूलकर, घम-अघम भूलकर, घन ऐश्वर्य भूलकर स्त्री-पुत्र, यहा तक कि ‘स्व’ को भी भूलकर भगवान् की ऐकान्तिक अनुरक्ति ही भक्ति है। भक्तप्रवर प्रह्लाद ने भगवान् से याचना की थी—“अविवेकिया की इन्द्रिय विषय में जैसी प्रबल आसक्ति है हे भगवान् तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में भी उसी प्रकार की आसक्ति कभी न नष्ट हो^३।” महात्मा तुलसी की भी तो यही कामना थी—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि वाम ।

तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम^४ ॥

तात्पर्य यह है कि फल-हेतु विचार दूर होकर भगवान् के प्रति सहज प्रेम ही प्रकृत भक्ति है। ऐसी भक्ति जिसे प्राप्त हुई है वही सच्चा भक्त है। भक्त भगवान् में आत्म विस्मृत हो जाता है। समस्त इन्द्रियों की शक्ति के साथ मन के तदगत भाव को भक्ति कहा जा सकता है। भक्ति इच्छा शक्ति की ऐवान्तिक स्वमुखी वृत्ति है। इच्छाशक्ति की प्रबल प्रेरणा से ही भगवान् स्वरूप धारण करते हैं। जैसे समुद्र का जल अत्यन्त शीत के कारण जमकर बर्फ हो जाता है, तद्रूप निराकार, निर्विकार, अनन्त, चिन्मय भगवान् भक्त की तीव्र इच्छा शक्ति के कारण ही चिद्घन हाकर प्रकाशित होते हैं, जगन्मय मन-मोहन रूप में आकर प्रकट होते हैं।

^१ शाब्दिक्य-भूष, सख्या २ ।

^२ नारद भक्ति-सूत्र २ ।

^३ या प्रीतिरविविक्ता विषयेष्वनपायिनी ।

त्वामनुस्मरत सा मे हृदया-मापतापतु ॥ —विष्णु पुराण

^४ रामचरितमानस—उत्तरकाण्ड १३० (त)

जीव और भगवान् का सम्बन्ध

वैष्णव मत का यह मौलिक सिद्धान्त है कि श्रीकृष्ण ही परब्रह्म, सर्वभक्ति-सम्पन्न, विभु, अशी तथा स्वामी हैं। जीव मात्र उमते अधीन, शून्य, अणु तथा अज्ञ रूप है। जीव का अणुत्व किसी भी दशा में लुप्त होने का नहीं। ससारी दशा में तो वह नाना प्रपञ्चों, बन्धनों में जकड़ा हुआ सगार चक्र में भ्रमता ही रहता है, किन्तु इस जीवन के पश्चात्, मुक्त होने पर भी, जीव का अणुत्व स्वभाव बना ही रहता है। यही भक्तिवादी वैष्णवों का ज्ञान-वादियों से स्पष्ट मत पार्यक्य है। जीव, साक्ष्यमत जीव में अणुभाव को स्वीकार नहीं करते, मोक्ष दशा में जीव ईश्वर के रूप में मिलकर ईश्वरमय हो जाता है, उमका पृथक् अस्तित्व शेष नहीं रहता। पर भक्ति के पूर्ण रसा-स्वादन के लिए वैष्णवों को यह कदापि मान्य नहीं। उनके मतानुसार जीव में दासता, अधीनता, अणुत्व के सकोच की भावना सदा सर्वदा विद्यमान रहती है। भले ही मोक्ष दशा में उम परम पद की ही प्राप्ति क्यों न हो जाए। साधना में जीव का जीवरूप बने रहने में ही नार्थकता है। अणु यदि विभु में अपनी सत्ता का लय कर दे तो फिर भक्ति कैसी और किसकी ? इस अव्याय के पूर्वांग में हमने देखा है कि विभिन्न वैष्णव संप्रदायों के सिद्धान्त पक्ष में ब्रह्म और जीव के अभेदत्व सम्बन्ध के बीच भी किसी न किसी प्रकार से जीव के भेदत्व की प्रतिपादना हुई ही है।

साधना से यथार्थ ज्ञान

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि भक्ति ही भगवदाराधना का प्राण है। भक्ति के साधना-क्रम में जब साधक उच्च स्तर पर पहुँच जाता है तो उसके हृदय में यह अनुभूति होती है कि जीवात्मा परमात्मा का भिन्न विकास मात्र है और यह जगत् भगवान् का ही विस्तार है^१। अतएव जीव मात्र ही भगवान् का स्वजन है इसलिए भगवद्-भक्ति जीव का स्वाभाविक धर्म है। मायावरण ने आत्मा का स्वरूप और तदीय स्वाभाविक धर्म आवरित रहने के कारण जीव विभ्रान्त होकर आवागमन के चक्र में घूम रहा है। संसार के प्रपञ्चों में आवद्ध मानव के मन में सदा अतृप्ति, असंतोष बना ही रहता है। समस्त भौतिक सुखों को प्राप्त कर चुकने के पश्चात् भी कुछ अनजानी

^१ विस्तार सर्वभूतस्य विष्णोर्विश्वमिदं जगत् ।

द्रष्टव्यमात्मवत् तस्माद् भेदेन विचक्षणैः ॥ —विष्णु पुराण

“चाह सदा भवदा उसके मन को अज्ञान्त, विक्षुब्ध किए रहती है, तभी तो मानव पूण सुखी नहीं हा पाता। वस्तुतः अशी परब्रह्म से विछुडा हुआ अज्ञ रूप जाव सदा उमके सामीप्य की आकाशा करता है, साक्षात्कार चाहता ह जिसका शीतल छत्र ठाया में वह अपने मन को खोई हुई शान्ति, आत्मा के विलुप्त आराम, प्राणा के विम्भृत सुप्त को पुन प्राप्त कर सकें। अशी, स्वामी का विम्भरण उसके अचेतन मन में सजा हाकर उसे नित्यप्रति अपूणत्व की अस्थिरता से चञ्चल बनाए हुए ह। मन के इस क्षाम और ग्लानि का सहज उपचार वर्णव पथ की सानुराग भक्ति में ही पाया जा सकता है। भगवा की जा भक्ति जीव को नित्य निरन्तर अनन्त उन्नति के माग पर, पूण भगल और परमानन्द के पथ पर आनर्पित करता है, वही वर्णव है और जिसके द्वारा हम उनकी ओर आकृष्ट होते ह वह भक्ति है।

भक्ति का स्वरूप

ऐहिक और पारलौकिक भोग की लालसा का परिहार करते हुए, भगवा में चित्त समर्पण करके, निरन्तर तद्भाव में भावाग्रान्त रहना हा भक्ति है। यह भक्ति त्रिया नष्काम्य भाव से अभिहित है^१ इसलिए श्रेष्ठ भक्ति स्वरूपत निर्गुणा है। किन्तु जब प्रकृति के गुणत्रय का अवलम्बन लेकर प्रकाशित होनी है तत्र सगुणा रूप से अभिहित होती है। पुरुष के गुणमय स्वभाव भेद से तन्निष्ठ भक्ति में भी भेद होना है अर्थात् सत्त्वादि गुण के तारतम्य में जिसका जसा स्वभाव, उसकी भक्ति भी तन्नुस्य होती है। यह गुणमयी भक्ति प्रधानतः तीन श्रेणी में विभक्त ह—तामसी, राजसी और सात्त्विकी। यह त्रिविध गुणमया भक्ति भी तीन-तीन अंश में विभक्त होकर नवविधा भक्ति रूप से उदरगित ह^२। अपने-अपने उद्देश्य पूरणाय जो स्वामा

^१ भक्तिरस्य भजन तदिहामुत्रापाधिनागम्येनामुष्मिमा कल्पामव तन्नेव च नष्काम्यमिति । —शापाल तापनी ।

^२ अभिगघाय यो हिंसा दम्भ मातमयमेव वा ।

मरम्भो भिन्नप्रभाव मयि धुमान स तामस ॥

विषयानभिगघाय यः ऐश्वर्यमव वा ।

अच्चात्प्रवचयेत् यो मां पश्यभाव स राजस ॥

बन्मतिहारमुहित्य परस्मिन् वा तत्पणम ।

यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भाव स सात्त्विक ॥

भक्ति है, वही मगुण है। जिस प्रकार पतितपावनी गंगा का जल प्रवाह समस्त बाबा विघ्न अतिक्रमण करके निरन्तर यनमुग्गों में घाबिन होकर महासमुद्र में मम्मिक्लिन हो रहा है, उमी प्रकार जो चिनवृत्ति ज्ञान-कर्मादि व्यवधान-मम्दायो का अतिक्रमण करके और विविध फलाभिसन्धिया का विमर्जन करके स्वत ही नर्वं भूतान्तर्यामी भगवान् की और नर्वंदा अभिमुख रहती है, वही निर्गुणा भक्ति है। इस भक्ति में किसी प्रकार की कंनव वाछा नहीं है, यह अतिशय निर्मंठ और नव भक्तियों में श्रेष्ठ है। ऐमे शुद्ध भक्तों मे किसी प्रकार की कामना नहीं रहनी, यहाँ तक कि सालोक्य, सार्पिटि, सामीप्य, सारूप्य और मायुज्य ये सब भक्ति देना चाहने पर भी वे भगवान् की सेवा के अतिरिक्त और कुछ पाना नहीं चाहते। एम प्रकार की भक्ति को ही आत्यन्तिक कहा जा सकता है, उममे अधिक और कोई पुरुषार्थ नहीं है^१।

गुणमयी और निर्गुणा भक्ति

अव तक जो भक्ति वर्णित हुई है वह प्रधानत दो श्रेणी में विभक्त की जा सकती है—एक गुणमयी या गौणा अथवा अपरा, दूसरी निर्गुणा मुन्या अथवा परा। प्रथम गुणमयी मात्त्विकी भक्ति सत्त्वगुण मे विच्छुत होकर भक्त को निर्विशेष ब्रह्म—सुख का अनुभव कराती है और द्वितीय निर्गुणा भक्ति परिपाक दशा में प्रेम भक्ति नाम से अभिहित होकर भक्त को सच्चिदानन्दमय भगवद् रूप गुणलीला के माधुर्य रस का आस्वादन कराके चरितार्थ करती है। ब्रह्मसुखानुभव दशा के पूर्ववर्ती विभिन्न दशाओं में माया का अविकार रहता है।

^१ मद्गुणश्रुतिमावेण मयि नर्वं गृहाणये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गगाम्भसोहम्बुधी ॥
लक्षण भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहेतुक्यव्यवहिता वा भक्ति पुरुषोत्तमे ॥
सालोक्य-सार्पिटि-सामीप्य-सारूप्यकत्वमप्युत ।
दीयमान न गृह्णन्ति विना मत्सेवन जना ॥
न एव भक्तियोगात्त्य आत्यन्तिक उदाहृत ।
यनातिब्रज्य त्रिगुण मद्भावायोपपद्यते ।

निर्गुणा भक्ति के दो प्रकार

निर्गुणा भक्ति भी प्रधानतः दो अंगों में विभक्त है—एक प्रधानीभूता या ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा, दूसरी केवला या रागात्मिका^१। कर्मादिमिश्रा सात्त्विकी भक्ति ही परिपाक दशा में सत्त्वगुण परिहार करके प्रधानीभूत निर्गुणा भक्ति में पयवसित होनी ह। अतएव इसकी अपववदशा गुणमयी और परिपाक दशा निगुण्य है। केवला भक्ति ऐसी नहीं है यह आरम्भ से ही निर्गुणा है, इसकी अपववदशा रागानुगा और परिपक्व दशा रागात्मिका है। शातदास्यादि रस भेद से प्रधानीभूता भक्ति पाच श्रेणी में और केवला भक्ति चार श्रेणी में विभक्त ह। महिमा ज्ञान से प्रीति सकुचित होती ह इसलिए प्रथमा भक्ति की अपेक्षा द्वितीय भक्ति श्रेष्ठ और अधिक विमुद्ध है। प्रेम-सेवा की पूणतम आनन्दास्वादहेतु द्वितीय दास्यादि चतुर्विधा भक्ति में भी शृंगारसात्मक भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। यह व्रजस्थिता श्रीराधिकादि गोपिकाओं में नित्य विराजमान है।

भक्ति की पुष्टि योग्यता

सब प्रकार की भक्ति की पुष्टि-योग्यता एक सी नहीं। भक्ति के गुणत्व और लघुत्व के अनुसार उसकी पुष्टता का भी तारतम्य होता ह। फिर भी निर्गुणा भक्ति ही परिपुष्ट हाकर रति और प्रेम स्वरूप में पयवसित होने की योग्यता रखती ह। साधन भक्ति से रति के उदय होत ही भक्ति रति-लक्षणा हाती ह फिर वह रति पत्रवावस्था में प्रेम रूप से आत्मप्रकाश करने से ही वह प्रेम-लक्षणा हो जाती है। इस प्रेम लक्षणा भक्ति को ही प्रेम भक्ति कहते ह। अतएव गुणमयी भक्ति म निर्गुणा भक्ति के परिपक्व दशा तक भक्ति को साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। भक्ति के इस क्रमिक स्तर की विगत विवचना 'गौडीय वष्णव-दशान' की साधना पद्धति की चर्चा के प्रसंग में की जायगी।

भाव भेद से भक्ति रस के पांच भेद

भक्ति में केवल एक स्थायी भाव ह—वह ह श्रावृष्ण विषयक रति या प्रेम। भक्ता के स्वभाव भेद से वह रति पांच प्रकार की मानी गई है—दान्ति, प्रीति, मत्स्य, वात्मल्य और मधुर। इन पांच प्रकार की रति या

^१ चतुर्विंशतिमत्, २।१९।१६५।

स्थाविभावो के अनुराग भक्ति रस प्रमत्त, पाच प्रकार का है—दास्य, मत्स्य, मन्त्र, वात्सल्य और मधुर। ये पंचविध रस प्रमत्त रस के श्रेष्ठतर होने जाते हैं। जैसे आकाशादि एवं प्रथं भूतों के रस प्रायः त भूतों के पंचवर्णित होते हैं, जैसे ही दास्य में शान्त, मत्स्य में शान्त और दास्य, वात्सल्य में शान्त, दास्य और मत्स्य, और मधुर में शान्त, दास्य, मत्स्य और वात्सल्य—के चार रस वर्तमान हैं^१। शान्तादि रस प्रमत्त रस में प्रकृत रसों को जोड़ कर रस में मधुर रस रस में द्विधमान होता है। यह मधुर रस ही सर्वश्रेष्ठ मानी गई है^२। उन पांचो भक्ति रसों के रसविभागादिकारि का विवरण निम्नलिखित है—

(१) शान्त भक्ति रस

शान्ति-रति

स्वरूप

शान्ति का अर्थ नम है। मन ही निश्चितपता या मगनगति का ही "नम" कहते हैं^३। श्रीमद्भागवत के अनुराग भगवान् श्रीकृष्ण में निश्चय अनुराग होता ही "नम" है। जहाँ भगवान् में प्रवेश अनुरक्ति का जाली है वहाँ स्वत ही विषय-वामना ने मन विरक्त हो जाता है, उन प्रकार निजानन्द में स्थित हुए मन के उस स्वभाव को "नम" कहते हैं। गमना-सम्पन्न व्यक्तियों के परमात्म बुद्धि में श्रीकृष्ण में समतागन्तर्विजा मयाश्रय-स्वरूप जो गुद्ध रति उत्पन्न होती है उसे 'शान्ति' कहते हैं^४।

^१ गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य चाडे प्रति रसे ।

शान्त दास्य मत्स्य वात्सल्यैर गुण मधुरैरे वीसे ।

आकाशादिर गुण जैमन पर पर भूते ।

दुड तिन क्रमे वाडे पच पृथिवीते ।

—चैतन्य चरितामृत २।८।६७-६८

^२ परिपूर्णं कृष्णप्राप्ति एह प्रेम हेंते ।

एह प्रेमरे वरा कृष्ण कहे भागवते ॥

—चैतन्य चरितामृत, २।८।६९

^३ भक्तिरसामृतसिन्धु—२।५।१३

^४ वही,—२।५।१४

दो प्रकार भेद

यह शान्ति रति ममा और साद्रा भेद से दो प्रकार की हाती है^१ । असप्रनात नामक समाधि भगवत साक्षात्कार का नाम समा और सब प्रकार अविद्याध्वसहेतु निर्विकल्प समाधि में भगवत साक्षात्कार होने पर सवतोरूप से भक्त हृत्य में जो आनन्द आविभूत हाता है वही साद्रा ह ।

शान्त भाव के भक्त की विशेषता

जिसमें सुख नहीं, दुःख नहीं, द्वेष नहीं, मात्स्य नहीं और सबल भृता में समभाव है, वही शान्त भाव सम्पन्न भक्त कहलाता है जैसे सन्यादि ब्रह्मर्षि । इस प्रकार के योगी भक्ता का इसमें निर्विशेष ब्रह्मानन्द जातीय सुख की अनुभूति होती है, क्वचित् भगवद गुणावली भी स्फूत होती है किन्तु इसमें आत्म दशन का सुख अत्यल्प ह इसका विपरीत सच्चिदानन्द विग्रह भगवत स्फूर्ति का सुख महान है । भगवान् के गुणा का अनुभव होने पर भी शान्त भक्त को दास भक्ता के समान मनोपत्व (सौन्दर्य सुकुमारत्वादि) और लीला (गोवद्धनधारण, चातुय, भक्तवश्यता) आदि की माधुरी का अनुभव नहीं हाता केवल लीला का दशन ही हाता ह, यही तन उसका मर्यादा है ।

वैष्णव मत में शान्ता रति का निम्नतम स्तर

जहा तक जड जगत का सम्बन्ध है उसमें 'शान्ता रति' ही सर्वोत्कृष्ट है । पर यष्णवा के साधना क्रम में इसका स्थान सबसे नीचे माना गया ह क्योंकि इस भक्ति में भगवान् के साथ भक्त के किमी प्रकार व्यक्तिगत सम्बन्ध की स्थापना सम्भव नहीं, यह केवल भक्त की भगवान् के प्रति अबाध गतिमय साधना है जिससे परमानन्द की प्राप्ति हाती है ।

(२) दास्य भक्ति रस

प्रीति-रति

स्वरूप

प्रीति या दास्य रति में भक्त ईश्वर को सदा स्वामी और स्वयं का सेवक रूप से मानता है । भक्त ईश्वर का अनुग्राह्य और वे उसके आराध्य ह एस स्वरूप विशिष्ट रति को ही 'प्रीति' कहते हैं^१ ।

^१ भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।१।२५ ।

^२ वही २।५।२१

दो भेद

अनुब्राह्म्य व्यक्ति के दासत्व और व्याख्य भेद में इस प्रीतिभक्तिरस के भी सन्नम प्रीति और गौरवप्रीति दो भेद हो जाते हैं^१। श्रीकृष्ण के दानों में श्रीकृष्ण के प्रति नम्रम प्रथाना प्रीति पुष्ट होकर जो रस उत्पन्न होता है वह "नम्रमप्रीत" के नाम से ख्यात है। इस भाव का भक्त भगवान् के सामने अपने को अत्यन्त दीन-हीन समझता है और मना उनके अनुग्रह की ही आकांक्षा करता है। गौरवप्रीतिमय भक्त भगवान् के द्वारा लात्याभिमानि पुत्र या कनिष्ठ भ्राता के समान सदा पालित तथा रक्षित होने की इच्छा रखता है।

भगवद्दासों के प्रकार

भगवान् के दास अविकृत, आश्रित, पारिपद और अनुग भेद से चतुर्विध हैं^२। "अविकृत" दासों में ब्रह्मा, शिव इत्यादि मुख्य हैं। आश्रित शरण्य ज्ञानीचर और सेवानिष्ठ रूप से द्विविध हैं^३। भगवान् के शरण में आए हुए भक्त जैसे विभीषण, मुग्धोव आदि "शरण्य" के अन्तर्गत हैं। मोक्ष सुख को भी तिलाजलि देकर जिन्होंने केवल भगवान् का आश्रय ग्रहण किया वे "ज्ञानी" भक्त हैं जैसे सनक, शुकदेवादि। भूक्ति-मूक्ति को सकल स्पृहा छोड़कर "सेवानिष्ठ" भक्त का एकरुमात्र भगवद् सेवा ही जीवन का व्रत है जैसे हनुमान, पुण्डरीक आदि। "पारिपदों" में उद्धव, नन्द आदि का स्थान है। सर्वदा ही प्रभु की परिचर्या में आनन्द चित्त "अनुग" भक्त कहलाते हैं। अनुग के भी पुरस्य और ब्रजस्य द्विविध भेद हैं^४। सुचन्द्र, मण्डल आदि प्रथम और रक्तक, पत्रक, मधुव्रत, चन्द्रहाम द्वितीय के उदाहरण हैं।

सेवा-कर्म और दास्य-भक्ति का स्वरूप

उपास्य की निरन्तर सेवा और उनके प्रीत्यर्थ कर्म इस भक्ति भाव के मुख्य कर्तव्य हैं। इस प्रकार की भक्ति का मुख्य लक्षण है कि उपासक के उपास्य ही सर्वस्व हो जाते हैं और उसका मन वाणी और शरीर सदा-सर्वदा

^१ भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।२।४

^२ वही, ३।२।१४

^३ वही, ३।२।१६

^४ वही, ३।२।२३

अनन्यभाव से भगवान् में और उन्ही के निमित्त सेवा घम करने में प्रवृत्त रहता है, उसकी प्रवृत्ति कदापि अयत्र नहीं उभूत होती। प्रभु से स्वार्थ सम्बन्धी किसी भी वस्तु की कामना न करना, यहा तक कि मोक्ष को भी उसके सामने तणवत् ममज्ञाना और भौरों के अनय अनुराग से निरन्तर चरण कमल के रस में लवलीन रहना। स्व-मुख के त्याग द्वारा स्वयं कष्ट भोग कर भी सेवा रत रहना ही प्रीति भाव के भक्तों के लक्षण है। इस प्रकार की प्रीति रति भी रसमय है जिसके रसास्वादन से उपासक तप्त रहता है किन्तु केवल रसास्वादन की तृप्ति ही उमका उद्देश्य नहीं प्रत्युत उपास्य की परितुष्टि ही उसकी तृप्ति का कारण है। सर्वशक्तिसम्पन्न आराध्य को किसी वस्तु का अभाव नहीं, तथापि भक्त की तृप्ति के लिए वे भक्त की सेवा सहर्ष स्वीकार करते ह जिससे दोनों का सबध दृढ होता जाता है। इस "प्रीति रस" के कारण भक्त के चित्त में हीनता, दीनता, आधीनता तथा मर्यादा का भाव सदा बना रहता है इससे भक्त और भगवान् के बीच गौरव आदर तथा सभ्रम की एक निर्दिष्ट रेखा बना रहती ह।

(३) सख्य भक्ति रस

सख्य रति

स्वरूप

इस सख्य भक्ति रस को 'प्रेया रस' भी कहते ह। प्रायः समयस्क सखाद्वय में परस्पर जो सभ्रमहीन विश्रम्भ प्रधान (प्रगाढ विश्वासमय) रति होती है वही 'सख्य रति' कहलाती ह इस प्रेया रस का "सख्य रति" ही स्थाया भाव है^१। विश्रम्भ में सब सकोच रहित प्रगाढ विश्वास ही प्रमुख है। यह सख्य रति वृद्धिक्रम से सख्य, प्रणय, प्रेम, स्नेह, राग रूप से पंचविध कहलाती है^२।

शान्ति प्रीति की तुलना मे श्रेष्ठता

शान्ति प्रीति रति की तुलना में सख्य रति (प्रेयोरस) कही अधिक श्रेष्ठ है। सख्य भाव का साधना में समस्त कामना दूरीभूत हानी है, आसक्ति की ज्वाला शान्त हा जाती है। सख्य भाव के भक्त, शांत भाव के भक्त

^१ भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।३।५७

^२ वही, ३।३।५८

के समान भगवान् को महिमान्वित या दान्य भाव के भाग के समान सम्भ्र-
मयुक्त नहीं मानते, उनके और भगवान् के बीच ऐना समानता का भाव है
जिसमें भगवान् के कर्मे पर चटने, उन्हें अपनी जूठन गिलाने में भी निमी
प्रकार गकोच नहीं। तभी तो श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि ज्ञानी व्यक्ति
जिसे ब्रह्मसुखानुभूति में और भक्त जिसे सर्वोपद्रव्यरूप में और मायाश्रित
व्यक्ति जिसकी नरगिणु-ज्ञान से प्रतीति करने है, इस प्रकार माया मुग्ध गोप
वालाओं ने साधारण नर शिशु बंध में जिनके साथ श्रीकृष्ण की थी निस्सन्देह
वह उनके रागि-रागि पुष्पों का ही फल है^१। सत्य भाव का भक्त अपने
गोपनीयतम भावों को भी बलि सहज, स्वच्छन्द रूप से भगवान् के सामने
प्रकट करता है। किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बत भक्त-भगवान् के बीच
का व्यवधान मिटकर घनिष्ट सम्बन्ध की स्थापना होती है। एतदा यह
अर्थ नहीं कि सत्य भाव में सेवा के लिए कोई स्थान ही नहीं, घनिष्टता के
कारण सेवा का रूप और भी मधुर और गाढ होकर प्रकट होता है। प्रेम
और माधुर्य की वृद्धि से त्याग भी भारी हो जाता है। सत्य भाव में
सम्बन्ध की घनिष्टता के कारण यही ने मधुर भाव का बीज-वपन हो जाता है।

सख्य भक्तों के प्रकार

सख्य भक्ति के प्रकार भेद से पुर सम्बन्धी और ब्रज सम्बन्धी दो प्रकार
के भक्त माने गए हैं^२। 'पुर सम्बन्धी' भक्त अर्जुन, भीम, द्रोपदी, श्रीदाम
आदि हैं। और 'ब्रज सम्बन्धी' भक्त क्षण मान कृष्ण के अदर्शन से अत्यन्त
व्याकुल और दुःखी हो उठते हैं। श्रीकृष्ण के साथ ये मत्त विहार करते
हैं और कृष्ण ही उनके जीवन स्वरूप हैं, ऐसे ब्रजवासी ही सर्वप्रधान भक्त
हैं। ये चार प्रकार के हैं^३—'सुदृढ सखा' जो श्रीकृष्ण से वय में कुछ
जेष्ठ होने के कारण वात्सल्य भाव से श्रीकृष्ण की रक्षा में दत्तचित्त रहते हैं
जैसे सुभद्र, बलभद्र आदि। 'सखा' श्रीकृष्ण से छोटे वय वाले जो मदा
उनकी सेवा तथा मुख के ध्यान में दत्तचित्त रहते हैं जैसे वरुषप, मरन्द,
मणिवन्ध, देवप्रस्थ आदि। 'प्रिय सखा' श्रीकृष्ण के समवयस्क, नि सकोची

^१ इत्य सता ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्य गताना परदैवतेन ।

मायाश्रिताना नरदारकेण साक विजहन्नु कृतपुण्यपुजा ॥ १०।१२।११

^२ भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।३।७

^३ भक्तिरसामृत सिन्धु, ३।३।११

और हिलमिल कर उनके साथ खेलने वाले सुताभा, श्रीदाम दाम आदि । "प्रियनम सप्ता" अत्यन्त अन्तर्गम जो गोपनीयतम रहस्य काय (प्रेयसी मिलन सहायता के गुप्त काय विशेष) में नियुक्त रहते हैं जस भुवल, उज्जवल, अजुन गाप आदि ।

रस-तारतम्य

श्रीवृष्ण और सप्ताया समजातीय माधुयशाली यह प्रेयोरस अनिवचनीय चित्त चमत्कार पोषण करता है । शान्ति, प्रीति वात्सरय में वृष्ण और भक्तों के पारस्परिक सम्बन्ध में वैषम्य है । अतएव इन रसा में प्रेयोरस ही उत्तम है । भावोत्पत्ति की दृष्टि से सख्य रति में एक अभाव यह है कि वह देग, बाल और परिस्थितिजय बाधाया के कारण उस तमयावस्था को प्राप्त नहीं हो पाती जिसमें पूण रग का स्थिति उत्पन्न हो सके । अतएव इस दृष्टि से वात्सल्य रति की ग्राह्यता और महनीयता अधिक ह ।

(४) वात्सल्य भक्ति रस

वात्सल्य-रति स्वरूप

गुरुत्वअभिमानमय रति वाले व्यक्ति हरि के पूज्य रूप से प्रसिद्ध ह । उनकी अनुग्रहमयी रति का नाम 'वात्सल्य' है । यशादा, नन्द, देवकी आदि गुरुवर्गीय जन वात्सल्य भाव के भक्त हैं । उनके प्रेम में शुद्ध वात्सल्य मयी भक्ति का स्वरूप निहित ह । जैसे अबोध सन्तान पर माता पिता की ममता रहती है, वे अत्यधिक प्रमत्तता से सन्तान के किए नाना कष्ट, आपदाओं को झेकर उमका लालन-पालन करते ह । बालक के मनोहारी रूप और बाल-चेष्टाओं की सरसता में ही उनका मन सबदा तमय रहता है । ठीक ऐसा ही भाव वात्सल्य भाव के भक्त का अपन उपास्य के प्रति रहता है । बाल-स्वरूप में बाल गोपाल वृष्ण ही उनके उपाम्य देव ह । इनके मन मोहन स्वरूप और बाल-सुलभ श्रीडाया में भक्त वात्सल्य भाव से भगवान् पर अपने को निछावर कर देता है इसी में उसके मन की पूण तृप्ति और परम शान्ति ह ।

वात्सल्य भक्ति का स्वरूप

वत्सल्य-सम्प्रदाय में श्रीवृष्ण के बाल स्वरूप की उपासना को ही सर्वाधिक -

^१ भक्ति रसामृत निघु २।५।२१

महत्त्व दिया गया है। भक्त, वात्सल्य भावार्वाधक्य के कारण उपास्य की अत्यन्त त्याग और ममतापूर्ण सेवा में तद्वर रहता है। भक्त भगवान् की मनोमुग्धकारी बाल-क्रीडाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करना हृद्या यगोरा के नमान मातृ स्नेह में उत्फुल्लित रहता है। इस प्रकार की वात्सल्यगयी भक्ति में भगवान् का ऐश्वर्यभाव वित्तुल दब-ना जाता है। अर्हनिज बाल गोपाल का मंगल चिन्तन और तन्मयसेवा ही भक्त के जीवन का नार है। इस भाव की सवने प्रमुख विशेषता यही है कि भक्त अपने स्नेह और सेवा का कुछ भी प्रतिदान नहीं चाहता। जैसे पुत्रवत्सल जननी का हृदय मन्तान-स्नेहातिजयता में सिक्त, ममता में ओतप्रोत रहता है, मन्तान के मुग्ध-गल्याग के लिए वह अपने को मिटा कर ही मुग्धी और परम तृप्त रहती है, उसे स्नेह के प्रतिदान में क्या और कितना मिल रहा है इसकी रच-मात्र चिन्ता नहीं। उसी प्रकार भगवान् का भक्त के प्रति कितना स्नेह, अनुग्रह है इसके लिए भक्त हृदय तनिक नशकित अथवा नचेष्ट नहीं। देकर ही वह परम मुग्धी और मन्तुष्ट है, पाने की चिन्ता उसे नहीं। बाल-गोपाल को मातृवत् वहर्निजि पलकों में सहेजे हुए ही भक्त अपने जीवन को धन्य समझता है। वात्सल्य भाव की भक्ति में निष्कामता की पराकाष्ठा है, अन्य रसों की तुलना में यही उसका महत्त्व और गौरव है।

(५) मधुर भक्ति रस

मधुरा-रति

स्वरूप

आत्मोचित विभावादि द्वारा मधुरा रति जब सदाशय व्यक्तियों के हृदय में पुष्ट होती है तब उसे मधुर भक्ति रस कहते हैं^१। मधुर रस का रथायी भाव है 'प्रियता' या 'मधुरा'। श्रीकृष्ण और ब्रज मुन्दरियों का परस्पर जो स्मरण-दर्शनादि अष्टविध सम्भोग है, उसका आदिकारण जो गोपियों की रति है वही प्रियता है^२। कान्त भाव से श्रीकृष्ण की उपासना ही मधुर भक्ति है।

त्रिविध मधुरा रति

मधुरा रति तीन प्रकार की है—साधारणी, समजसा और ममर्या^३।

^१ भक्तिरसामृत सिन्धु, ३।५।१

^२ वही, २।५।२५

^३ उज्ज्वलनीलमणि—स्यायिभाव प्रकरण, २०।

बुद्धि की रति 'साधारणी' ह वह सम्भोगेच्छाजन्य या आत्मसुखेच्छाजन्य होने के कारण तिरस्कृत हुई। इसमें प्रेम की प्रगाढता का अभाव है, श्रीकृष्ण के दशन मात्र से ही साधारणी रति उत्पन्न होती है। सम्भोगेच्छा निदान स्वरूप साधारणी रति सम्भोगेच्छा के ह्रास के साथ ही ह्रास प्राप्त करती है। रुक्मिणी आदि द्वारका की महिषिया की रति समजसा' है, यह रति लोक धम को अपेक्षा रख कर विवाह विधि द्वारा बद्ध है। पत्नीत्वभिमान और श्रीकृष्णसुखेच्छा समजसा रति के मुख्य कारण ह, सम्भोगेच्छा उसमें गौण रूप से सन्निविष्ट है। समजसा रति स्वाभाविकी होने पर भी उसके प्रकटीकरण के लिए श्रीकृष्ण के गुणादि श्रवण की अपेक्षा है। गापिया की रति 'समथा' है। श्रीकृष्ण-सुख ही समर्था रति का एकमात्र लक्ष्य है। इस रति के आविर्भाव के लिए रूपादि दशन या गुणादि श्रवण की अपेक्षा नहीं ह, यह स्वभावसिद्धा है। उनकी सम्भोगेच्छा कृष्ण-सुख के अनुबूल होने के कारण ही स्वीकृत है। गोपिया का तन मन श्रीकृष्ण प्रेम और सुख अनुकूल कार्यों में ही निरन्तर निमग्न ह। गापिया का सुख कृष्ण सुख में अवसान प्राप्त करता ह। लज्जा, मान, बुल, शील, धम परित्याग करके, स्वजन, गह, आत्मसुखचिन्तन विस्मृत हाकर ब्रजवनिताएँ तन मन से श्रीकृष्ण सुख सेवा रत है। असह्य कष्ट झेल कर भी वे केवल श्रीकृष्ण-सुख की ही वाछा करती ह। गापिया की समर्था रति अतुलनीय है। इसलिए माघारणीरति को मणि-तुल्य समजसा रति का चिन्तामणि-तुल्य और समर्थारति को जगदुलम कौस्तुभ के समान अनयलम्भा कहा गया है^१।

मधुरा-रति स्वकीय और परकीय

मधुराख्य रति में नित्य रूप से स्वकीय और परकीय जाति भेद ह। जिसका जसा नित्य भाव है तन्तुरूप उसकी रति भजन और प्राप्ति ह। द्वारकादिधाम में रुक्मिणी सत्यभामा आदि शास्त्र विधि अनुसार विवाहिता महिषिया श्रीकृष्ण की स्वकीया ह और ब्रजधाम में 'परोढा' श्रीराधिवादि ब्रज रमणिया परकीया ह। स्वकीया भाव ही मूल कान्ताभाव है रसपापक परकीया भाव कान्ताभाव का विलाम-वचिष्य मात्र ह। परकीयाभाव में मिलन-हनु बहुत बाधा विघ्ना के अतिप्रमण के कारण उत्कण्ठातिगय और प्रेमरस के उद्घापन का अधिक अवसर मिलता है। परकीया के समान

^१ उज्ज्वलनीलमणि—स्थायिभाव प्रकरण, २१।

स्वकीया में विचित्र-लीला-रसास्वादन-आनन्द नहीं है। परकीया भाव ही मधुरभाव की परमउत्कर्षाविरया है। ब्रजव्राम के अतिरिक्त अन्य कहीं परकीया-लीला का अस्तित्व नहीं है। बहुत से आलोचक ब्रज के इन पुनीत परकीया भाव को भीतिक, मूल जगन के परदारत्व के अनुरूप मानकर उनकी कटु आलोचना करते हैं। वस्तुतः अपूर्व रम-वैचित्र्य-आस्वादन के लिए और कान्ता-रस-उल्लास और प्रेम उच्छ्वासमाधिव्य के कारण ही स्वकीय कान्ता भाव में परकीय भाव का आवरण मात्र उला गया है, प्रकृततया वह स्वकीया भाव ही है। दूसरी बात—गोपियाँ यथायं में परस्त्री नहीं, वे स्वरूपतः श्रीकृष्ण की स्वकान्ता हैं। भगवान् श्रीकृष्ण बालक की स्वप्रतिविम्ब के साथ क्रीडा के समान ही ब्रजसुन्दरियों के साथ लीलामय क्रीडा कर रहे हैं। जिस निज चिच्छक्ति द्वारा परब्रह्म श्रीकृष्ण निरन्तर आनन्द का अनुभव करते रहते हैं, वह है ज्ञादिनी शक्ति। श्री गवा इमी ज्ञादिनी शक्ति की मूर्त विग्रहस्वरूपा है। अन्य ब्रज-रमणियाँ श्रीराविका की कायव्यूह स्वस्वा है। अत अचिन्त्य शक्तिमान कृष्ण की विभिन्न शक्तियाँ उनकी स्व-शक्तियाँ ही हैं। शक्ति और शक्तिमान के अभेद के कारण परकीय भाव किसी प्रकार भी अमर्यादित नहीं। लीलामय श्रीकृष्ण की इच्छा से ही उनकी स्वरूपशक्ति की वृत्ति ने योगमाया के अभाव स्वरूप पति-पत्नी के भाव को आवृत्त कर रखा। और इस प्रकार स्वकीय कान्ता में परकीया-भाव का पोषण हुआ। अत स्वकीया के समान यह परकीया-लीला भी नित्य और गरिमामयी है।

शृंगार रस द्विविध

शोभनीय मधुर रम ही का नाम “शृंगार या उज्ज्वल” रस है। अवस्था भेद से यह दो प्रकार का है—विप्रलम्भ और नम्भोग। रजित वस्तु में पुन-रग का पुटपाक देने से जैसी रग वृद्धि होती है, तद्रूप विरह द्वारा नम्भोग का रसोत्कर्ष होता है। विप्रलम्भ के बिना नम्भोग की पुष्टि नहीं होती।

विप्रलम्भ और संभोग के प्रकार

पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्र्य और प्रवास यह विप्रलम्भ के चार प्रकार हैं^१। विप्रलम्भ रस स्वतः सिद्ध नहीं, वह केवल संभोग रम की पुष्टि करता है। नित्यरस में भी कुछ विप्रलम्भ अवश्य अवस्थित रहेगा, नहीं तो विचित्र-लीला

^१ उज्ज्वलनीलमणि—शृंगारभेद प्रकरण, ३।

सभव नहीं। सभोग की प्रगाढता के अनुसार सक्षिप्त सकीर्ण सम्पन्न और समृद्धिमान चतुर्विध है^१।

माधुर्य भक्ति की सर्वश्रेष्ठता—

गौडीय वृष्णवो ने मधुर भक्ति को श्रेष्ठतम माना है। इस भाव में सकोच, मर्यादा, परत्व की भावनाएँ पूणतया लुप्त हो जाती हैं। “स्व” का अस्तित्व कृष्ण-सुख सेवा में विलीन हो जाता है। यह अनुराग लौकिक दाम्पत्यरति से सवया पृथक है। इसमें किसी भी प्रकार के स्वाध, अहकार की गंध नहीं है। जगत नियन्ता के प्रति यह अलौकिक प्रेम है। चिज्जगत में कृष्ण और तदाय विविध शक्ति का पुष्प प्रकृति भाव से सम्मेलन भी इसीलिए इतना पवित्र और पुनीत माना गया है। अतएव गौडीय वृष्णव रस सिद्धान्त में मधुररस को सर्वोपरि स्थान दिया गया और शान्त रस का सबसे निम्नस्तर पर रखा गया। सच्चिदानन्द कृष्ण के प्रति यह प्रेम बराबर आगे बढ़ना हुआ भ्नेह, मान, प्रणय, अनुराग की अवस्था का पार कर अन्त में “महाभाव” की चरम सीमा को पहुँच जाता है। यह इन्द्रियातीत भावमयी परिस्थिति है जो गौडीय वृष्णव भक्त के लिए चरम काम्य है।

भक्ति के मूल तत्त्वों का विवेचना से यह तो स्पष्ट है कि वृष्णव साधना पूणतया भक्ति पर ही आधारित है और गौडीय-वृष्णव आचार्यों के भक्ति विषयक सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा भक्ति का स्वरूप और भी सुस्पष्ट हो गया।



(ग) भगवान् का अवतरण

परतत्त्व का द्विविध स्वरूप

सच्चिदानन्द परम भगवान् के दो स्वरूप हैं। एक तो निर्विण्ण, निर्गुण रूप जो देग काल के वचन से अपरिच्छिन्न, अनादि, अनन्त, अकल, अनीह, अगम, अगोचर, निराधार निर्विकार है, यही ज्ञानी का ‘ब्रह्म’ है। भगवान् के इस स्वरूप की अनुभूति केवल नानी भक्त का होती है यह अनुभव वाणी द्वारा अप्रकाश्य, मन द्वारा अगम बुद्धि द्वारा अप्राप्त्य है। जब यही अव्यक्त ब्रह्मानुभूति भाव रूप में भक्त के हृदय में प्रकट होकर स्थायित्व लाभ करती

^१ उज्ज्वलनीलमणि, प्रवरण ९९।

है तो सगुण, सविशेष भगवान् कहलाने लगती है, यही भगवान् का दूसरा रूप है। भक्त का भाव-गृहीत रूप इसी को कहा गया है^१। भक्त के भाव-जगत की परिधि में बचकर निराकार-साकार, निर्गुण-सगुण, अप्राकृत-प्राकृत, अगोचर-गोचर, अपार्थिव-पार्थिव, नारायण-नर या नरेंतर जीव का रूप ग्रहण करके जगत् के बीच प्रकट होता है। यही भगवान् का अवतार ग्रहण करना या अवतरण कहलाता है। वैष्णव भावना भगवान् के इसी सगुण, अवतारी, स्वरूप को लेकर चली।

अवतार-भेद

भगवान् के अवतार असंख्य हैं—पुरुषावतार^२, गुणावतार^३, लीलावतार^४, मन्वन्तरावतार^५, युगावतार^६ और आवेशावतार^७। जैसे क्षयहीन जलाशय से

^१ ५० हजारीप्रसाद द्विवेदी “मध्यकालीन धर्म-गाधना”, पृ० ३।

^२ तस्यैव योहेतु गुणभुग्वहुवैक एव, शुद्धोहप्यशुद्ध इव भूतिविभागभेदै ।
ज्ञानान्वित सकलसत्त्वविभूतिकर्ता तस्मै नतोहन्मि पुरुषाय सदाव्ययाय ॥

—विष्णुपुराण ६।८।५९

^३ सत्त्व रजस्तमसि प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्त

पर पुरुष एक इहास्य घत्ते ।

स्थित्यादये हरि-विरिचि-हरेति सज्ञा

श्रेयासि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणास्यु ॥

—श्रीमद्भागवत, १।२।२३

^४ पच्चीस सख्यक यथा—चतु सन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण कपिल, दत्त या दत्तात्रेय, हरशीर्षा, हंस, ध्रुवप्रिय, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राघवेन्द्र, व्यास, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि ।

^५ मन्वन्तरावतारोऽसौ प्राय शक्रारिहत्यया ।

तत्सहायो मुकुन्दस्य प्रादुर्भावि सुरेषु य ॥

—श्रीलघुभागवतामृत (मन्वन्तरावतार-प्रकरण)

^६ कथ्यते वर्ण-नामभ्या शुक्ल सत्ययुगे हरि ।

रक्त श्याम क्रमात् कृष्णस्त्रेताया द्वापरे कलौ ॥२५॥

—वही (युगावतार-प्रकरण)

^७ ज्ञानशक्त्यादिकलया यत्राविष्टो जनार्दन ।

त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमा ॥१८॥

सहस्रो जलधारा निगत होती है उसी प्रकार स्व प्राबुध्मत् शक्ति के आश्रय स्वरूप हरि के अवतार असम्भ्य है। अत्र अवतार तो अशावतार, भगवान की कला या विभूति स्वरूप है, श्रीमद्भागवत ने प्रतिपादित किया कि "वृष्णस्तु भगवान् स्वयं^१ अतएव वही एकमात्र अशी है। भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण स्वयं रूप होने के कारण उसमें श्रीकृष्ण की गणना लीलावतार रूप से नहीं हुई है, वे अवतारी हैं। श्रीकृष्णावतार दो मुख्य रूपा में प्रकट हुआ है—एक यदुकुल शिरोमणिवीर, दुष्-सहारी शक्तिशाली राजा, दूसरा गिरिधारी, गोपाल, गोपीजनवल्लभ, नन्द, यशोदा का लाडला सुत। प्राचीन यथा में प्रथम रूप पर ही अधिव महत्त्व दिया गया पर धीरे धीरे साहित्य के बीच दूसरा रूप ही प्रधान होता गया। जिससे पहला रूप दब-सा गया।

अवतार का प्रयोजन

अब प्रश्न उठता है कि भगवान् को अवतार लेने की क्या आवश्यकता आनी? इसका उत्तर श्रीमद्भागवद्गीता में स्वयं भगवान् के श्रीमुख से मिलता है "धम की स्थापना, साधुओं के परित्राण और दुष्टों के विनाश के लिए अवतार धारण करता हूँ^२।" प्राचीन साहित्य^३ और शिल्प में^४

वैशुण्ठेऽपि यथा क्षेपो नारद सनवादेय ।

अक्रूरदृष्टास्ते चामी दशम परिकीर्त्तिता ॥१९॥

—वही (आवेशावतार प्रकरण)

^१ "एते चाशकला पुत्र वृष्णस्तु भगवान् स्वयम ।"

—श्रीमद्भागवत १।३।२८

^२ यदा यदा हि धमस्य ग्लानिभवति भारत ।

अभ्युत्थानमधमस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धमसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ॥

—श्रीमद्भागवद्गीता ४।७-८

^३ अश्वघोष रचित 'बुद्धचरित (१,५०), कालिदास के 'मेघदूत' (१५), महाभारत का सभाभव (६८।४१-४२), हरिवंश का विष्णु-पर्व (६-२५), विष्णु-पुराण, भागवत ।

^४ मन्दसौर मंदिर के टूटे हुए दो द्वार-स्तंभ प्राप्त हुए हैं जिनमें गोवधन धारण, शकट भग, धेनुकवध और कालियदमन की लीलाएँ उत्कीर्ण

दुष्ट-दलनकारी और भक्त-वल्लभ रूप में ही कृष्ण के दर्शन होते हैं। क्रमशः पूर्व उल्लेखित कृष्ण के द्वितीय रूप की प्रधानता के कारण उनका दुष्ट-दमनकारी रूप दबता गया और लीलामय स्वरूप ही प्रमुख हो उठा। परवर्ती प्रकाण्ड विद्वान् वैष्णव भक्तों के अनुसार भगवान् लीला-विस्तार हेतु और निज भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से ही अवतरित होते हैं। उनके प्रकट होने का कारण श्रीलघुभागवतामृत में कहा गया है—“उनकी जन्मादि लीलाओं का उत्तम हेतु अपनी लीला कीर्ति का विस्तार तथा भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा ही है”^१।

स्वयं रूप के अवतरण का प्रयोजन-लीला

जब भगवान् अवतीर्ण होते हैं तब दुष्टों के दलन से भक्तों की रक्षा तो होती ही है और धर्म की संस्थापना भी स्वतः ही हो जाती है। इससे यहाँ यह प्रश्न उठता है कि इन कार्यों की सिद्धि के लिए मर्त्यलोक में भगवान् के स्वयं रूप में अवतरण की क्या आवश्यकता है, यह काम तो भगवान् के अशावतारी रूप द्वारा भी साध्य है वस्तुतः भगवान् में जो “रिरसा वृत्ति” अर्थात् रमण करने की इच्छा है उसी के फलस्वरूप सच्चिदानन्द भगवान् अपने आनन्द अंश से सृष्टि का प्रसार करते हैं। यह सृजन व्यापार ही लीला-सुख-पोत्तम की अपूर्व लीला है। भगवान् इस लीला का विस्तार स्वान्तः सुखाय तथा भक्त हिताय करता है।

द्विविध लीला

“प्रकट” और अप्रकट भेद से लीला द्विविध है। श्रीकृष्ण स्वरूपभूत अनन्त प्रकाश और लीला द्वारा गोलोक में सर्वदा ही क्रीडारत है। भगवान् के सभी लीला-परिकर^२ इसमें नित्य विराजमान हैं। जड़ चक्षुओं के लिए

है। विद्वानों ने इसका निर्माण काल सन् ईस्वी की चौथी या पांचवी शताब्दी अनुमान किया है। चौथी शताब्दी (संभवतः) की एक और गोवर्धनधारी मूर्ति मथुरा में प्राप्त हुई है। महावलीपुरम में भी गोवर्धनधारी की उत्कीर्ण मूर्ति मिली है।

^१ स्वलीलाकीर्तिविस्ताराद् भक्तेष्वनुजिघृक्षुता।

अस्य जन्मादिलीलाना प्राकट्ये हेतुत्तमः ॥३८८॥

^२ ब्रजवासी, यादवगण, ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेरतनय नलकूबर, मणिश्रीव आदि, देव, नारदादि मुनि, केशि आदि दानव, कालिय आदि नाग और शंखचूड़ आदि यक्ष सभी लीला-परिकर हैं।

यह नित्य-लीला अगोचर है इसी कारण यह "अप्रकट लीला" कही गई है, यह विव्य-लीला "देव लीला" की सना से भी अभिहित है। सयाग से उस अनन्त प्रकाश में से किसी एक प्रकाश के द्वारा भगवान अपने सहचरा के साथ जगदन्तर में प्रादुर्भूत होकर लीला का विस्तार करते हैं। प्रपञ्च गोचर होने के कारण यह लीला "प्रकट लीला" कही जाती है, भगवान् के नर-रूप में आविर्भूत होकर लीला रचना के कारण यह "नर लीला" है। इस प्रकट लीला में श्रीकृष्ण गोकुल, मथुरा और द्वारका में गमनागमन करते हैं। वृन्दावन ही प्रकट लीला का मुख्य क्षेत्र है मथुरा और द्वारका सहकारी हैं अतएव नर-लीला में उनका स्थान गौण है। कहा जाता है कि वृन्दावन में भगवान् का पूणतम, मथुरा में पूणतर और द्वारका में पूण रूप में आविर्भाव होता है। भगवान् का नित्यधाम गोलोक ही वृन्दावन के रूप में प्रकट हुआ है। कृष्णलीला प्रकट और अप्रकट भेद से दो प्रकार की होने पर भी वस्तुतः वह एक ही तत्त्व है। प्रकट ब्रजलीला में भी नित्य और नैमित्तिक दो भेद हैं। ब्रज में अप्ठवालीन लीला नित्य होती रहती है, पूतनावधादि, दूर-प्रवासादि नैमित्तिक लीलाएँ हैं। यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से गोलोक और वृन्दावन में कोई पाषण्ड्य नहीं तथापि वृन्दावन लीला का वशिष्ट्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता। गोकुल में श्रीकृष्ण की माधुरी सवातिशायिनी है। श्रीकृष्ण का रूप माधुय, वेणु माधुय, प्रेम माधुय और लीला-माधुय इन चतुर्विध अपूर्व माधुयमय स्वरूप का एकमात्र ब्रज में ही विवास हुआ। मम्मोहन तत्र में कहा है—“यद्यपि श्रीकृष्ण के सहस्रो उपादेय अवतार विद्यमान हैं, किन्तु उन सब अवतारों में बालत्व अति दुलभ है।” ब्रज में बाल रूप में अवतीर्ण होकर भगवान् ने नित्य नूतन विविध लीलाएँ कीं। अप्रकट लीला में जन्मादि लीला का अवसर न रहने के कारण अनादिकाल से भगवान् केवल नित्य विशोर रूप में ही लीला कर रहे हैं। प्रकट-लीला में जन्मादि ग्रहण करके बाल्य पौण्ड और केशोर वय के अनुरूप नाना मनोमुग्धकारी लीलाओं द्वारा अपने भक्तों के हृदय को आनन्द से अनुरजित किया। गोलोक की लीला देव-लीला है, उसमें विप्रलभ भाव नहीं, अतः वहाँ न तो विरह की टीस है और न मिलनोत्कंठा। वह लीला एवांगी है। ब्रज में नर-रूप में प्रकट होकर भगवान् ने जो नर लीला की उनमें सर्वांगीण माधुय का प्रस्फुटा

१ सन्ति तस्य महाभागा अवतारा सहस्रश ।

तेषा मध्येऽवताराणा बालत्वमतिदुलभम् ॥

—सम्मानन तत्र

हुवा । उस लीला का रसास्वादन देवताओं को भी अलभ्य है । उस मुसा-
नुभूति के लिए वैकुण्ठस्थिता विष्णु-प्रिया लक्ष्मी का चित्त भी चंचल हो उठा
था^१ । गोलोक की अपेक्षा गोकुल की महिमाविक्रय के कारण ब्रह्म-नहिता
में श्रीकृष्ण धाम गोलोक को गोकुल की विभूति स्वल्प माना गया है जहाँ
माधुर्य-प्रकाश-वेदीप्रमान है । मथुरा में भगवान् के माधुर्य तथा ऐश्वर्य दोनों
पक्षों के दर्शन होते हैं, द्वारिका में केवल ऐश्वर्य का ही प्रकाश है ।

लीला-त्रैविध्य

वस्तुतः भगवान् के रूप, गुण, धाम, लीला सभी नित्य और अनन्त
हैं पर लीला-भेद से वह चतुर्लोकों (गोलोक, गोकुल, मथुरा, द्वारिका) में
भिन्न रूपों में प्रकट हुआ है । भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न अवतार ग्रहण
करके भगवान् ने विविध लीलाएँ की । अवतारों की विभिन्न लीलाओं के
कारण ही भगवान् की शाश्वत नित्य लीला का इतना प्रसार हो सका । ये
अवतार लीला-प्रचारक हैं । भक्ति के उत्कर्ष के लिए भगवान् के माय जीव
का वैयक्तिक सम्बन्ध अपेक्षित है । अवतार उस सम्बन्ध के लिए उपयुक्त
सामग्री प्रदान करता है ।

अवतरण द्वारा भगवान् मानव-मुलभ भावों के आलम्बन

भगवान् का अवतरित होकर नर-लीला करने के पीछे एक बहुत बड़ा
मनोवैज्ञानिक तथ्य निहित है । सत्य का वही पक्ष मानव के उपयोगी हो
सकता है जिसे वह अनुभूतिगम्य बना सके । निस्मन्देह भगवान् के विराट्,
शाश्वत रूप की महिमा अपरम्पार है, वह देव-लीला भी सहस्रो वार वन्दनीय
है । आनन्द ही आनन्द की प्राप्ति का मानव स्वप्न देख सकता है, कामना
कर सकता है पर उसे वास्तव में पा नहीं सकता । मनुष्य सीमाओं में बंधा

^१ श्री प्रेक्ष्य कृष्णसौन्दर्यं तत्र लुब्धा ततस्तप ।
कुर्वन्तीं प्राह ता कृष्ण किन्ते तपसि कारणम् ॥
विजहीर्वे त्वया गोष्ठे गोपीरूपेति साब्रवीत् ।
तद्दुर्लभमिति प्रोक्ता लक्ष्मीस्त पुनरब्रवीत् ॥
स्वर्णरेखेव ते नाथ । वस्तुभिच्छामि वक्षसि ।
एवमस्त्विति सा तस्य तद्रूपा वक्षसि स्थिता ॥

हुआ प्राणी है, उसकी इन्द्रिया की अनुभूतिया की सीमा के बीच देशकाल से परिच्छिन्न मन की आशा-आवाधाओं के घेरे में भगवान जब नर रूप में अवतरित होते हैं तो वह उन्हें सत्य, यथाय रूप में मान पाता है। समस्त प्रकार के मानव भाव-जनित आशा-आनन्द, आशंका, अघोरता, निराशा व्याकुलता द्वारा भगवान की प्राप्ति मनुष्य जीवन का चरम प्राप्तव्य है। यहाँ भगवान् जन-साधारण के सुख-दुःख के समभागी होकर उसी के स्वजन रूप में बसते हैं। यहाँ वे माता के प्राण, पिता के नयन-तारे, स्वजना के आनन्द-बद्धक, दुष्ट-दलनकारी, भक्त प्रतिपालक, धर्म-संस्थापक और सबसे बढ़कर गोपियों के जावनाधार, प्रेमाश्रय, प्रियतम हैं—सब प्रकार के मानव-सुलभ भावा के आश्रय। वृष्णव आचार्यों ने इस महासत्य की अभिव्यक्ति बहुत सुदूर ढंग से की है। इसी मानवत्व के कारण ही भगवान की प्रकटलीला का इतना उत्कृष्ट रूप है जिसके सामने देव-लीला भी श्रो-हीन है।



(२) साहित्य और शिल्प में राधाकृष्ण-कथा का स्वरूप

पूव अध्याय में हमने ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य की धार्मिक पृष्ठ-भूमि के रूप में वृष्णव धर्म और उसमें अन्तर्भुक्त मुख्य सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया है। प्रस्तुत अध्याय में दोनों साहित्यों की साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप में राधा-कृष्ण-कथा के स्वरूप पर विचार करने जा रहे हैं जिससे विषय-वस्तु का रूप स्पष्ट हो जाय।

कृष्ण का ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप—अति प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में विष्णु की उपासना का पता चलता है। नारायण, वासुदेव और श्रीकृष्ण के रूप में विष्णु ही प्रकट हुए^१। वैष्णवा के परम आराध्य के इन विभिन्न रूपों में प्रकट होने तथा इन विभिन्न रूपों में विवसित होने के पीछे गाना प्रकार का परिस्थितिया का हाथ रहा है। कृष्ण का ऐश्वर्य रूप ही पहले

^१ विष्णु व इस विकास क्रम की विस्तृत चर्चा भट्टारकर ने 'वृष्णविज्ज, शिवविज्ज एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टमस' में की है और रायचौधरी की 'अर्ली हिस्ट्री आफ दि वृष्णव संकट' तथा गास्वामी की "दि भक्ति कल्ट इन ऐशेट इंडिया" में थोड़ी बहुत हुई है।

प्रधान था। प्राचीन साहित्य की उन्नति करने वाले अध्येताओं के लिये इस स्वरूप का परिचय पाना कुछ कठिन नहीं है। गीता में भगवान् के अवतार का कारण बतलाया गया है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च कृष्णाम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

उममें सहज ही पता चलता है कि भक्तों के परित्राण, दुष्टों के विनाश तथा धर्म की मस्थापना के हेतु ही कृष्ण का अवतार होना है। इनमें कृष्ण के परम ऐश्वर्यशाली और देवत्व रूप की ही प्रधानता है। उस रूप की प्रधानता के मूल में वेद, उपनिषद् और तंत्रों का प्रभाव रहा है। महाभारत में कृष्ण के इसी रूप का परिचय मिलता है। महाभारत में भगवान् कृष्ण परम ऐश्वर्यशाली, पराक्रमी और नीतिज्ञ के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे भक्तों के लिये सब कुछ करने को तैयार हैं अगर भक्त अर्जुन की नाई सम्पूर्ण रूप में अपने आपको उनके चरणों में निवेदित कर दे। इस प्रकार से ऐकान्तिक भक्ति का विकास महाभारत के समय में होने लगा। इन भक्ति में कृष्ण को ही एकमात्र आश्रय मानना और उनकी ही कृपा पर निर्भर करना भक्त का परम धर्म माना गया है^१।

कृष्ण के लीला-नायक रूप का प्राधान्य—गोपाल-कृष्ण के साथ कृष्ण का लीला-नायक रूप प्रधान हो उठा। गोपाल कृष्ण का विक्रम परवर्ती काल का विकास है। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं में कृष्ण का माधुर्य पक्ष प्रबल हो उठा। उनकी मधुर रस की लीलाएँ प्रधान रूप में भक्तों के आकर्षण का विषय रही हैं। उसके बाद बाल-लीला आदि के वर्णन हैं।

गोपाल कृष्ण का आभीर जाति से संबंध—गोपाल कृष्ण की भावना का परिचय बाद में मिलने लगता है। विद्वानों का अनुमान है कि आभीर जाति से गोपाल कृष्ण का गहरा संबंध है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आभीरों का राज्याधिकार इस भावना के प्रसार और विक्रम का कारण है और सभवत ईसवी सन् की पहली से तृतीय शताब्दी के बीच इस भावना से भारतीय जनता का परिचय हुआ। महाभारत में आभीर जाति का उल्लेख अवश्य है लेकिन उससे इतना ही पता चलता है कि वह उधर-उधर घूमनेवाली गोपाल जाति है। आभीरों के संबंध में समुद्रगुप्त के ईसवी सन्

^१ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरणं व्रज । —१८।६६

३६० के प्रयाग वाले स्तम्भ लेख से यह पता चलता है कि वे अत्यन्त शक्तिशाली थे और सम्पूर्ण राजस्थान पर उनका अधिकार हो गया था^१। ये आभीर गोपाल कृष्ण के उपासक थे। पंडितों का अनुमान है कि आभीर जाति में ही ब्रज की गोपागनाओं और नटवर, चपल, किशोर कृष्ण की विविध प्रेम लीलाओं का प्रचलन लोकगीतों के रूप में रहा होगा और इन लोकगीतों के माध्यम से ही इनका प्रचार भारत के अन्य प्रान्तों में हुआ होगा। कृष्ण की इन शृंगार प्रधान लीलाओं की ओर जन चित्त का आवृष्ट होना स्वाभाविक ही था। इसका फल यह हुआ कि कृष्ण का परम ऐश्वर्यशाली स्वरूप और उनके देवत्व का अभी तक जो गुणगान होता था उसके स्थान पर उनकी इन मनोहारी और सरस लीलाओं ने अधिकार जमा लिया। वैसे 'स परिवर्तन के माय ही गोपाल कृष्ण के पराक्रम का उल्लेख भी साहित्य में यदा-कदा मिल जाया करता है। गोपाल कृष्ण की पराक्रमशीलता का वणन अश्वघोष के 'बुद्धचरित' में मिलता है, जिसे विद्वान लोग सबसे पहला मानते हैं

एपातानि कर्माणि च यानि शौरे शूरादयस्तेष्वबला बभूवु^२ ।

'सूरवशी कृष्ण के जो विख्यात कम हैं उनकी तुलना में 'सूर व्यक्ति भी निबल हो गए। इसी सन् की चौथी शताब्दी के बाद से भारतीय साहित्य में गोपाल कृष्ण का उल्लेख प्रचुरता से मिलने लगता है। कालिदास ने भी 'गोप वेपथ्य विष्णो' लिखा^३ है।

तामिल साहित्य में "कृष्ण—तामिल साहित्य में गोपाल कृष्ण की कथाओं के विभिन्न रूपों का प्रवेश बहुत पहले से हो गया था। इसी सन् के प्रारम्भ से ही तामिल साहित्य में इन कथाओं का परिचय मिलने लगता है। तामिल के सुप्रसिद्ध काव्य 'मदुरइक्काचि'^४ में कृष्ण के जन्मोत्सव^५ का उल्लेख मिलता है। पुराने समय में तामिल प्रदेश के चरागाह प्रान्त (मुल्लइ) के

^१ हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ. २४।

^२ १।५०

^३ मेघदूत—पूवमेघ, १५।

^४ मांगुटी मरुदणार द्वारा रचित बृहत् तामिल काव्य है। इसका संकलन, सगम रचना पत्तुप्पाट्टु (१० काव्य-ग्रन्थों का संकलन-ग्रन्थ है) में हुआ है। पाण्डयन राज्य का इसमें विनाद वणन हुआ है।

^५ २।५९०-५९२।

गोपाल-देवता मायोन या मायावन (श्यामवर्ण) थे^१। मायोन या मायावन में विष्णु और कृष्ण एक ही गए हैं। उत्तर भारत की परंपरा में कृष्ण श्यामवर्ण है। मायोन या मायावन के स्वरूप का वर्णन "विष्णु" जैसा है उनके कार्य कृष्ण के समान^२। अत्रिनाथ स्थलों पर मायावान या विष्णु के नाम के साथ कृष्ण की ही लीलाएँ जुड़ी हुई हैं।

मायोन और कृष्ण—मायोन या मायावन के संभव में तामिल साहित्य में जो कुछ मिलता है उससे इन बात में सन्देह नहीं रह जाता कि वास्तव में मायोन और कृष्ण एक ही हैं। मायोन या मायावन का परिचय गोपालो के मुखिया के रूप में मिलता है। वे ग्वाल-वाल और बालाबो के गायी हैं। वे गायों को वन में चराने के लिये ले जाते हैं। उन्हें चरती हुई छोड़ स्वयं मधुर वांसुरी तन्मय होकर वजाते और चराचर को मुग्ध करते हैं। मायोन गोपियों के साथ नृत्य में भी कृष्ण से पीछे नहीं रहते। अपने अग्रज बलराम और प्रियतमा नाप्पिनार्डी के साथ मायोन के "कुरवडकुट्टु"^३ नृत्य करने का भी उल्लेख मिलता है^४।

कुरवडकुट्टु नृत्य—"शिलप्पाधिकारम्"^५ में "कुरवडकुट्टु" का एक और प्रकार का उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि राजा पाण्डयन ने कोवलण को

^१ रामचन्द्र दीक्षितार—"कृष्ण इन अलीं तामिल लिटरेचर," पृ० २६८।

^२ "शिलप्पाधिकारम्"—मदुरडक्काण्डम अध्याय १७, पृ० २३७।

^३ विद्वानों का मत है कि कुरवडकुट्टु नृत्य ही रास-क्रीडा है।

^४ "शिलप्पाधिकारम्" अध्याय १७, पृ० २२९, २३४।

^५ शिलप्पाधिकारम् तामिल महाकाव्य है। कुछ बातों में इसकी तुलना रामायण और महाभारत से हो सकती है। इसके तीन मुख्य अंग हैं—साहित्य, संगीत और नाटक। तीनों ही अपने में पूर्ण हैं। इसमें कई सुन्दर गेय-पद (इण्ड्रपाट्ट अर्थात् लिरिक) हैं। इस काव्य से प्राचीन तामिलों के सामाजिक जीवन का अच्छा परिचय मिलता है। इनके रचनाकाल के सवध में विद्वानों का अनुमान है कि यह ईसापूर्व ५०० से ईसवी सन् की चौथी शताब्दी के बीच किसी समय की रचना है। इतने बड़े महाकाव्य में कांची के प्रसिद्ध पल्लव राजाओं (सबसे प्राचीन राजा, ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी में हुए) का कोई उल्लेख नहीं मिलने के कारण विद्वानों ने इसके रचनाकाल के सवध में ऐसा निर्णय किया है।

चोरी के अपराध में मृत्युदण्ड दिया। कोवलय निरपराध था। मृत्युदण्ड के बाद से ग्वाली की बस्ती में नाना प्रवार के अमंगल सूचक लक्षण दीख पड़ने लगे। इस सकट से बचने के लिये गोपबधुओं ने कृष्ण से प्रायना करते हुए कुरवडकुट्टु नृत्य किया^१। यह नृत्य अभी भी दक्षिण में प्रचलित है। इस नृत्य में रास के समान सात या नौ स्त्रियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़कर नाचती हैं। व नृत्य के साथ-साथ कृष्ण-स्तुतिपरक गीत भी गाती जाती हैं^२।

श्रीकृष्ण के भय नृत्य—अदियारक्कुलार^३ ने श्रीकृष्ण के दस प्रकार के नृत्या^४ का उल्लेख किया है। जिनमें से तीन—अल्लियावुट्टु मल्लाडल, बुडवुट्टु—का वगन शिल्पाधिकार में किया है।

(१) अल्लियम नृत्य—कस-दमन के पश्चात् श्यामवण विष्णु (कृष्ण) ने यह नृत्य किया था।

(२) मल्लु नृत्य—विष्णु (कृष्ण) ने बाणासुर दत्य को मारकर यह नृत्य किया था।

(३) कुडम नृत्य^५—विष्णु (कृष्ण) ने बाणासुर का मारने के बाद अनिरुद्ध को बधन से मुक्त कर विजयाल्लास में शोणितपुर (बाणासुर के राज्य) में लम्बे लम्बे डग भरत हुए यह नृत्य किया था^६।

कुरुन्द वक्ष का उखाड़ना—उपयुक्त तीनों नृत्या में कृष्ण के पराक्रम और बलशाली रूप का ही चित्रण हुआ है। कृष्ण के और भी भय प्रसंग आए हैं जिनसे उनके शौर्य पर प्रकाश पड़ता है। शिल्पाधिकारम् में उनके कुरुन्द वक्ष के उखाड़ने का भी प्रसंग आया है^७। यह यमलार्जुन उद्धार की

^१ मधुरइक्वाण्डम् अध्याय १७, पृ० २२९।

^२ रामचन्द्र दीक्षितार, स्टडीज इन तामिल लिटरेचर पृ० २९३।

^३ शिल्पाधिकारम् के टीकाकार।

^४ प्राचीन समय में ये नृत्य ग्वाला के बीच प्रचलित थे जो बाद में कृष्ण के साथ जोड़ दिए गए ('स्टडीज इन तामिल लिटरेचर पृ० २९३)।

^५ कृष्ण की बाल क्राडाया की स्मृति में आज भी यह नृत्य उरियडि-उत्तव में होता है। शिल्पाधिकारम् अध्याय ६, पाल टीका सख्या २, पृ० १२५।

^६ वही, अध्याय ६ पृ० १२४-२५।

^७ वही, अध्याय १७, पृ० २३२।

ही कया है। इस प्रकार से यह महज ही देखा जा सकता है कि तामिल-साहित्य में कृष्ण के मधुर पक्ष का ही चित्रण नहीं मिलता बल्कि उनके गौरव रूप का भी चित्रण मिलता है।

वृष-वशीकरण प्रथा—तामिल देश में एक प्राचीन प्रथा वृष-वशीकरण की थी। कृष्ण चरित्र में इस प्रथा का भी उल्लेख हुआ है। वृष-वशीकरण प्रथा कन्याओं की विवाह-सवधी एक सामाजिक प्रथा थी। क्वारी कन्याएँ, साँड़ों के रगने की जगह से कुछ साँड़ चुन ले जाती और उनका आगन-भागन करती। कुछ दिनों बाद ये पुष्ट और बलशाली नाँड मृद्ध कर छोड़ दिए जाते। विवाहेच्छुक युवक उन्हें वश में करने की चेष्टा करते। उन युवकों में जो श्रेष्ठ वीर घोषित किया जाता उसे कन्याएँ वरग करती। दक्षिण के आयरों में यह विवाह की एक प्राचीन प्रथा थी^१। 'गिरुप्पाधिकारम्' में कृष्ण के नाँडों पर विजय प्राप्त कर क्वारी कन्याओं से विवाह का उल्लेख मिलता है^२। 'गिरुप्पाधिकारम्' के कई शताब्दी बाद रचे गए आलवार के ग्रन्थों में भी इस प्रथा की चर्चा है। नग्नजित की कन्या नग्नजिती (नाम्पिनाड) का व्याह कृष्ण के माय इसी प्रकार सपन्न हुआ था^३। यह प्रथा आज भी दक्षिण में कुछ अंशों में अवशेष रह गई है वैसे विवाह के साथ उसका कोई भी सवध नहीं रह गया है।

आलवारों की वाणी में श्रीकृष्ण-प्रियतमा प्रधान गोपी नाम्पिनाड— जो वर्णन आलवारों के साहित्य में मिलते हैं उनमें नाम्पिनाड श्रीकृष्ण की वृन्दावन-लीला की मगिनी है। श्रीकृष्ण, विष्णु के अवतार के रूप में वर्णित हैं और नाम्पिनाड उनकी प्रियतमा प्रधान गोपी के रूप में वर्णित हैं और वे लक्ष्मी की अवतार मानी गई हैं^३। इन वर्णनों के आधार पर विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि नाम्पिनाड ही राधा हैं^४।

दोल-उत्सव—दोल-उत्सव बंगाल में होली-उत्सव को कहते हैं लेकिन दक्षिण का यह दोल-उत्सव, होली उत्सव से भिन्न है। यह उत्सव क्वारी कन्याओं द्वारा तामिल देश में बड़े समारोह के साथ मनाया जाता था। एक और

^१ वही, अध्याय १७, पादटीका, पृ० २३०।

^२ रामचन्द्र दीक्षितार · "कृष्ण इन अर्ली तामिल लिटरेचर", पृ० २७१।

^३ हूपर : हीम्स आफ दि आलवारम् ग्रन्थ मे कविवित्री आण्डाल का पद।

^४ शशिभूषण दासगुप्त "श्री राधार क्रमविकास दर्शने—ओ-साहित्ये, पृ० ११३।

उत्सव में कन्याएँ प्रत्युप काल में यमुना में स्नान करती और प्रायना करती हुई कृष्ण को पति रूप में पाने की कामना करती। यह मारगलि-नोणवु का मानना कहा जाता था। उपर्युक्त दोल उत्सव के पीछे एक कहानी जुड़ गई है। कहा जाता है कि कृष्ण के नर रूप में अवतार लेने के बाद एक बार पृथ्वी पर वष्टि का अत्यन्त अभाव हो गया। उस समय गोपियो ने कृष्ण से प्रायना की थी। मारगलि-नोणवु का मानना श्रीमद्भागवत (१०।२२) में वर्णित कात्यायनी व्रत की कथा है। गापिया ने देवी कात्यायनी की पूजा कृष्ण का पति रूप में पाने के लिये की थी। तामिला में कात्यायनी ने नोणवु का रूप ग्रहण किया।

उपर्युक्त विवरण से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि गोपाल कृष्ण की मधुर रस का लीलाआ स तामिल देश का परिचय ईसवी सन की प्रथम शताब्दी से ही हो गया था। तामिल-देश में गोपाल-कृष्ण की लोकप्रियता का परिचय तत्कालीन साहित्य और उत्सवों से मिलता है। आराध्य रूप में गोपाल-कृष्ण की प्रतिष्ठा वहाँ उस काल में हो गई थी और वे वहाँ के साहित्यिक और सामाजिक जीवन में पूणतया घुलमिल गए थे।

कवियों द्वारा राधाकृष्ण-कथा का ग्रहण—राधा-कृष्ण की मधुर रस की लीलाआ ने जनचित्त को अत्यधिक आकृष्ट किया और कलात्मक सृष्टि की व उपजीव्य बनी। कविया, मूर्तिबारा, चित्रकारा ने इन लीलाआ का आधम्य ग्रहण कर अपूर्व रस की सृष्टि की है। रसविदग्ध कविया ने राधा-कृष्ण की लीलाआ का वर्णन बड़ी तमयता से किया है और उनके द्वारा ही राधा-कृष्ण की प्रेमरथा का व्यापक रूप से प्रसार तथा प्रचार हुआ। प्राचीन सम्वृत श्लोका प्राकृत-भाषाआ और अपभ्रंग-शोहो में इस अपूर्व माधुरी को रूप देने की चेष्टा की गई है। उन कविया की दृष्टि शृंगार प्रधान ही थी और उनकी रचनाओं में काम रस का ही प्राधान्य रहा। राधा-कृष्ण व प्रति उन कविया ने जा स्यान-स्यान पर सभ्रम और सम्मानसूचक भाव का प्रत्यान किया है उसके मूळ में उन कवियो व दवता विषयक सृज सस्कार थे। वैसे साधारणत उन कविया ने राधा-कृष्ण को अपनी प्रेम-कथा के लिये आलबन विभाव के रूप में ही ग्रहण किया। इन कविया का ध्यान प्रेम-लीलाआ के बाद बाल-गीताआ की ओर भी गया है।

काव्य में प्रचलित राधाकृष्ण-कथा का वर्णन धम में ग्रहण—वर्णन धम का जब और जहाँ प्रभाव विस्तार हुआ यहाँ उसके प्रवतका ने राधा-कृष्ण-

कथा आवश्यकतानुसार अपनायी। लेकिन धर्म के क्षेत्र में आकर उस कथा का जो लौकिक रूप-रंग था वह बदल गया और दर्शन तथा धर्म के प्रभाव से वह कुछ और ही दीखने लगा। भक्त कवियों ने राधाकृष्ण की प्रचलित लोक-कथा को लोकोत्तर रूप प्रदान किया। श्रीकृष्ण की लोकोत्तर लीला इस लोक प्रचलित प्रेम-कथा के सम्मिश्रण से अत्यन्त मधुर और स्निग्ध बनकर लोक-जीवन के अत्यन्त निकट आ गई। भक्त कवियों के हाथों मानवीय प्रेम भक्ति से स्निग्ध होकर महान् और मगलमय बना। इस प्रकार में जो सामान्य काव्य-रस था वह भगवद्गुण्य होकर लोकोत्तरता को प्राप्त हुआ।

हरिवंश में कृष्णकथा—श्रीकृष्ण की ब्रज-लीलाओं ने पौराणिक साहित्य में अत्यन्त मधुर रूप ग्रहण किया और उनका अत्यधिक विस्तार हुआ। सबसे पहले “हरिवंश” में ब्रज-लीला का सुव्यवस्थित वर्णन हुआ है। “हरिवंश” में कृष्ण का दुष्ट-दमनकारी, पराक्रमी रूप ही अधिक स्थान पाए हुए है। कृष्ण के इस स्वरूप का, विस्तार में वीन अध्याय^१ में वर्णन हुआ है। उसमें वर्णित घटनाएँ ये हैं गोवर्धनोद्धार, शकट-भंग, पूतना-वध, दामवन्ध, यमलार्जुन भंग, वृकदर्शन, वृन्दावन-प्रवेश, कालिय दमन, घेनुक वध, प्रलम्ब वध, वृषभासुर वध, केशि वध, गोविन्दाभिषेक आदि। हल्लीमक-क्रीडा (रास-क्रीडा) का संक्षेप में वर्णन केवल तीसरे अध्याय में मिलता है।

विष्णु पुराण में कृष्णकथा—विष्णु पुराण में हरिवंश की घटनाओं को दोहराया भर गया है। वैसे इसमें गर्ग द्वारा नाम-संस्कार^२ और गोप-वालाओं के कृष्ण-प्रेम^३ के प्रसंग का विस्तार है। विष्णुपुराण में गोपियों के वियोग का वर्णन भी आया है जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। यह एक मौलिक वस्तु थी। वियोगपक्ष का प्राधान्य वाद में चलकर बहुत हुआ। विष्णुपुराण में एक विशेष गोपी^४ का भी प्रथम बार उल्लेख मिलता है लेकिन उसके नाम की कोई भी चर्चा नहीं है। हल्लीस क्रीडा (रास-क्रीडा) का जो वर्णन विष्णु-पुराण में मिलता है उसका हरिवंश के वर्णन के साथ बहुत अधिक साम्य है, यहाँ तक कि एक पद^५ दोनों में समान वर्णन रूप से मिलता है।

^१ विष्णु-वर्णन, ६-२५ अध्याय।

^२ ५।५।

^३ ५।१३।

^४ ५।१३।२९-४०।

^५ हरिवंश—२।२०।२४, विष्णु-पुराण—५।१३।५७।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण-लीला का पूण विकास—परवर्ती युग अर्थात् मध्य युग में श्रीमदभागवत का समादर विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदाया में हुआ। गोपिया और कृष्ण के प्रेम की कथा का पूण विस्तार और परिभाजन भागवत में हुआ। वैष्णव धर्म के इतिहास में श्रीमद्भागवत का एक विशिष्ट स्थान है। विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायो का, यह ग्रन्थ, आधार रहा है। चतुर्थ और वल्लभ सम्प्रदाय तो पूण रूप से भागवत पर ही आधारित हुए। इस महत्व के ग्रन्थ में कृष्ण की लीला का विशद वर्णन अत्यन्त सुचिपूण और भव्य है। लेकिन गोपी लीला के वर्णन में राधा का कहीं नाम नहीं आया है।

श्रीमद्भागवत में गोपिया की प्रेम-लीला का सुन्दर, मनाहारी चित्रण भागवत के अन्तर्गत "रास पंचाध्यायी" में किया गया है। इन पाँच अध्यायों में गोपिया और कृष्ण की विभिन्न लीलाओं द्वारा जीव और ब्रह्म के मधुर प्रेम का सरस रूप में वर्णन है। 'रास पंचाध्यायी' को भागवत का सार कहा गया है। उसमें जिस उदात्त प्रेम का चित्रण और वाच्य है। भागवत में और भी नये नये प्रसंगों की अवतारणा की गई है। इन प्रसंगों में प्रमुख उनकी बाल-लीला का वर्णन है जो बाद में चलकर भक्तों और कवियों का प्रिय विषय बन गया। इसमें कृष्ण के ऐश्वर्य रूप का चित्रण उनके नाना असुरों के वध के द्वारा प्रस्तुत किया गया है जैसे तणावर्त मोक्ष, वत्सवक-वध दावाग्नि-पान, व्योमासुर-वध आदि। बाल-लीला में जो वात्सल्य भाव दखने को मिलता है उसका पहले के साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता। भागवत में ही सर्वप्रथम वात्सल्य भाव के दर्शन होते हैं।

पुराणों में राधा का उल्लेख—हम यह देख चुके हैं कि भागवत परवर्ती काल के वैष्णव-सम्प्रदायों में अत्यधिक समादृत हुआ। इस सबके में पद्म पुराण और ब्रह्मवैवतपुराण के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों पुराणों में राधा और कृष्ण का प्रेम-कथा का वर्णन मिलता है। लेकिन इन दोनों पुराणों के बालों को लेकर विद्वानों में पूरा मतभेद है। इन दोनों का समय निर्धारण करना कठिन है। ऐसा अनुमान है कि ईसवी सन् की छठी से आठवीं शताब्दी के बीच किसी समय पद्मपुराण की रचना हुई होगी। ब्रह्मवैवतपुराण को ईसवी सन् की सोलहवीं या और भी बाद की रचना मानते हैं। चाहे जो हो, इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि पद्मपुराण में जिस प्रकार से राधा-कृष्ण की प्रेम-कथा का वर्णन है उससे लगता है कि राधा-कृष्ण की लीलाओं का विकास एक प्रसार पद्मपुराण की रचना के पहले

होता है कि इस "सत्तसई" के संकलन के पहले ही राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का परिचय जनसाधारण को हो गया था। केवल परिचय ही नहीं बल्कि कहा जा सकता है कि उसका प्रचार लोगों में बड़े विस्तार के साथ हो गया था। इन पदों से दूसरी बात यह मालूम होती है कि उस काल तक राधा की प्रतिष्ठा कृष्ण की प्रमुख प्रेयसी के रूप में हो चुकी थी। "गाहा सत्तसई" के निम्नलिखित पद से इस संकलन की रचनाओं के स्वरूप का पता चल जाता है। कोई गोपी कृष्ण से इस बात की शिकायत कर रही है कि राधा के मुख में लगी हुई गोरज को मुख-मास्त से पोछकर वे अन्य गोपियों और नारियों का गौरव घटा रहे हैं।

मुहमासएण तं कल्ल गोरअं राहिआएं अवणेन्तो ।

एताणं बलवीणं अण्णाणं वि गोरअं हरसि^१ ॥

एक दूसरे पद से कृष्ण के रसरज रूप का परिचय मिलता है। इसमें कहा गया है कि जब यशोदा ने इस प्रकार कहा कि "दामोदर अभी भी बालक ही है" तो कृष्ण के मुख की ओर देखकर गोपिया छिपी हँसी हँस रही थी।

अज्जवि वालो दामोअरोत्ति इअ जम्पिअ जसोआए ।

कल्लमुहपेसिअच्छं णिहुव हररिअं वअवहहि^२ ॥

वेणीसंहार में मानिनी राधा का उल्लेख : "गाहा सत्तसई" के अलावा अन्य काव्य-ग्रन्थों में भी राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला के वर्णन मिलते हैं लेकिन मध्य-युग के भक्त-कवियों की रचनाओं में उसका जैसा विस्तार देखने को मिलता है वैसा उन रचनाओं में देखने को नहीं मिलता। प्रसंगवश ही यदा-कदा राधा-कृष्ण-लीला से संबंधित श्लोक उद्धृत किए गए हैं। इस तरह के श्लोक "ध्वन्यालोक", "काव्य-प्रकाश" आदि में पाए जाते हैं। इसी प्रकार से कुछ संकलन-ग्रन्थों में भी ये श्लोक देखने को मिल जाते हैं, जैसे "कवीन्द्रवचन समुच्चय" तथा "सदुक्तकर्णामृत" को देखने से पता चल जाता है। कवि भट्टनारायण के "वेणी-संहार" नाटक के नान्दी श्लोक में राधा-कृष्ण-लीला का जो रूप देखने को मिलता है उससे पता चलता है कि उस काल तक आते-आते राधा-कृष्ण की कथा लौकिक कथा से ऊपर उठकर अलौकिक रूप धारण कर चुकी थी। नान्दी श्लोक के रूप में इस कथा का उपयोग इसी बात का संकेत करता है। इस श्लोक को आलंकारिक वामन के अलंकार-ग्रन्थ में उद्धृत किया गया। इसका मतलब यह है कि "वेणी संहार" नाटक ईसवी

सन् की आठवीं शताब्दी में पूव की ही रचना है। 'वेणी सहार' के इस श्लोक में कहा गया है कि कालिन्दी के पुलिन पर रास के रस को छोड़ कर जाती हुई, केलिकुपिता अथु विसजन बरती हुई श्रीराधा के चरणा में श्रीकृष्ण ने जो अनुपम विनय किया था, वह तुम्हारी रक्षा करे। राधिका उस समय प्रसन्न दृष्टि से कृष्ण को देख रही थी।

बालचरित में ब्रज-कथा कहा जाता है कि "बाल चरित" भास का लिखा हुआ नाटक है। इस नाटक में ब्रज-कथा का वणन है। त्रिवेन्द्रमु से प्राप्त नाटका में यह भी एक है। इस नाटक की ब्रज-कथा के वणन को गवप्रथम लीकिक साहित्यिक प्रयास कहा जा सकता है।

ध्वन्यालोक में राधा-कृष्ण-संबन्धी श्लोक "ध्वन्यालोक" में राधा के विरह को अभिव्यजित करने वाला जो श्लोक मिलता है उसमें राधा की विरह कातरता का अत्यन्त ही मार्मिक चित्रण है। मधुरिपु कृष्ण द्वारवती चले गये ह। राधा ने इन्ही के वस्त्रा या अपने शरीर में लपेट लिया है और कालिन्दी-तट के बुजो की बजुल लताओ से लिपट कर वाष्प गदगद स्वर में गीत गाया है जिसे सुनकर यमुना के जलचरा ने भी उत्कण्ठित होकर कूजन करना प्रारंभ कर दिया है। ध्वन्यालोक में उद्धृत दूसरे श्लोक में दूर प्रवास गत कृष्ण की मनोदशा का चित्रण है। चन्दावन से आये हुए सखा से कृष्ण पूछ रहे हैं कि हे भद्र ! यमुना तीर के जा लना-बुज गोपवधुओ के विलास में सुहृत्स्वरूप थे, राधा की निभूत त्रीढाओ के जा सांगी थे, उनकी कुशल ता है ? नीली नीली बापलें ता अब पक ही जानी होंगी क्याकि विलास शय्या की रचना में उपयोग करने के लिये अब बाईं उन्हें तोढता ही न होगा—

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारह साक्षिणा ।
 क्षेम भद्र कलिचराजतनयातीरे लतावेशमनाम् ॥
 विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनविधिच्छेदोपयोगेऽधुना ।
 ते जाने जरठी भवन्ति विगलप्रोलत्विय पल्लया ॥

यह श्लोक "कवी-द्रवचनसमुच्चय" में ना उद्धृत किया गया है। ऊपर ध्वन्यालोक के जिन श्लोक का उल्लेख है जिसमें राधा के विरह का चित्रण है इसका और कई ग्रन्थों में उपयोग किया गया है। श्रुतव के वक्त्रोक्त जीवन" तथा सुदुक्खिणामृत" में इन श्लोक को उद्धृत किया गया है लेकिन स्वयंसा का नाम दागा में ही जिनगी में भी नहीं है। हमचन्द्र क काव्यानुगासन' में भी इसका पाठान्तर मिलना है।

कवीन्द्र वचन समुच्चय में उद्धृत राधा-कृष्ण संबंधी श्लोक : "कवीन्द्रवचन समुच्चय" में राधा-कृष्ण-लीला विषयक श्लोकों की बोधी भी चर्चा अपेक्षित है। यह सकलन-ग्रन्थ, ईश्वरी मन् की दसवीं गनाष्टी का है। उग ग्रन्थ में राधा-कृष्ण विषयक नात-श्लोक उद्धृत हैं। गकलनकर्ता का नाम नहीं दिया हुआ है। वैसे ये श्लोक पुराने होंगे और परंपरा में प्राप्त हुये होंगे ऐसा अनुमान करना गलत नहीं होगा। उन श्लोकों में जैसा वर्णन आया है उसकी स्पष्ट छाप मध्ययुगीन वैष्णव-काव्य में देखने को मिलती है। एक श्लोक में राधा की दूती के वचन उद्धृत हैं। कृष्ण को दूढ़ने के लिये राधा ने दूती को भेजा है। जितने भी गभव स्थान हों सकते थे वहा दूती उन्हे गोजने गई है लेकिन उन्हे पा नहीं सकी है। हास्कर दूती लौटती है और राधा से कहती है कि "हे सखी, मैंने कृष्ण को रात भर गोजा, पर वह कहीं नहीं मिले। "यहा होंगे, वहा होंगे" उग प्रकार गोजने-गोजने दूढ़नी रही। निरचय ही उन्होंने किमी दूसरी रमणी से अभिमार किया है। भाण्डार के तले, गोवर्द्धन की तटभूमि में यमुना के तीर पर, चेतन कुज में, कहीं भी कृष्ण नहीं मिले^१।" इसकी स्पष्ट छाया शजियेवर के निम्नलिखित पद में है :—

जिति कुंजर गति मंवर चलत सो वर नारी ।

वंशी जावट-तट वनहि वन फेरी ॥

मदन कुंजे श्याम कुण्ड-राधाकुण्ड तीरे ।

द्वादश वन हेरत सघन शैलहुं फिनारे ॥

एक दूसरे श्लोक में गोचारण के बाद लौटते हुये कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुये मगल-कामना की गई है। "दिवस के अवसान में मन्द-मन्द स्वर में वेणु वजाते हुए, गोधूलि से घूमर मोर-मकुट को गिर पर धारण किये हुये, म्लान वनमाला से सुशोभित हरि गोकुल को लौटते ममय श्रान्त होते हुये भी अतिशय मुन्दर लग रहे थे। गोपियों के नयनों के उत्सव-स्वरूप वे केशव तुम्हारा कल्याण करें।"

मन्द ववाणितवेणुरहिन शिधिले (सं)वतंयन् गोकुलं

वर्हापीडकमुत्तमागरचित गोधूलिघूर्णं दधत् ।

म्लायन्त्या वनमालया परिगतः श्रान्तोऽपि रम्याकृति-

गोपस्त्रीनयनोत्सवो वितरतु श्रेयोसि वः केशवः^२ ॥

^१ कवीन्द्रवचन समुच्चय, ३४ ।

^२ वही, २२ ।

नल चम्पू में राधा-कृष्ण का उल्लेख 'नल चम्पू' काव्य, इसवी सन की दसवीं शताब्दी की रचना है। इसके रचयिता त्रिविधम भट्ट ने नल-समयन्ती के वणन के प्रसंग में कुछ दो अर्थों वाले श्लोकों में राधा-कृष्ण का वणन किया है।

ताम्रपत्रों में राधा कृष्ण का उल्लेख इसवी सन की नवीं शताब्दी तथा दसवीं शताब्दी के दो ताम्रपत्रों में कृष्ण और गोपिया का उल्लेख है। वनमालवम देव के मुद्रवाए हुए एक ताम्रपत्र पर कृष्ण के सबध में जा कहा गया है उसका साराग निम्नलिखित है "गोपिया द्वारा चित्तका मानम तृप्त हुआ है ऐसे विष्णु का वक्ष परित्याग करके यावतीय नारिया के देह-सौन्दर्य का आहरण करके उन्होंने जन्म लिया था।" वनमालवमदेव का काल इसवी सन की नवीं शताब्दी का मध्य है। व का मरूप के राजा हजरवमदेव के पुत्र थे। दूसरा ताम्रपत्र महाराज भोजवममदेव का मिलता है। पूर्वी बंगाल के ढाका जिले में यह मिला है। इसमें लोच-मंगल के लिये कृष्ण के अवतार लेने का उल्लेख है। उस ताम्रपत्र में मुद श्लोक का तात्पर्य यह है कि वे पूजनीय पुरुष (अर्थात् हरि) जगत् में भूमिभारोद्धारकारी अगावनार रूप में गोपी शतवेलिवार और महाभारत नाटक के सूत्रधार कृष्ण रूप से अवतीर्ण हुए थे।

वाकपति गिलालेख^१ में जिस प्रकार म कृष्ण-वन्दना की गई है उसमें राधा के प्रति कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। यह गिलालेख अनुमानत इसवी सन की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ का है। इस गिलालेख में कहा गया है कि 'लक्ष्मी के वन्दोन्तु द्वारा जो सुनी गयी, वारिधि के वारि द्वारा जो प्रशमित नहीं, अपने नाभिसरसीपथ द्वारा भी जिसे शान्ति नहीं प्राप्त हानी जो शैपनाग के सहस्रत्रा पणा की मधुर सास द्वारा भी आश्वासित नहीं ऐसे मुररिषु का राधा विरहातुर वम्पित यपु तुम लागा की रसा करे।'

यत्कलमोषदने पुना न मुक्षित यद्वाग्दितम्वारिधे

वारा यत्र निजेन नाभिसरसीपथन शान्तिगतम।

यच्छेपाहिफणासहस्रमधुरवासेनचाश्वासित

तत्राधाविरहातुर मुररिषोष्यैल्लक्षु पातु य ॥

सङ्क्षिप्तवर्णनित में कृष्ण-श्लोका 'सङ्क्षिप्तवर्णनित' में कई ऐसे श्लोक सङ्ग्रहित हैं जिसमें यह पाता चलता है कि राधा की श्रेष्ठता का उत्तरात्तर विश्वास हुआ गया। वाकपति गिलालेख में इसवी सन की ग्यारहवीं शताब्दी

^१ इन्दिया एंटाबरी (१८७७ ई०) पृ० ५१।

की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। और उसके बाद की अताद्वियों में राधा-कृष्ण की लीला में राधा के प्राधान्य का पता "मदुक्तिकर्णामृत" के श्लोकों से चल जाता है। इस ग्रन्थ में दृष्टि की लीलाओं का भी वर्णन है। यह मकलित ग्रन्थ बंगाल के नैन राजाश्री के काल का है। इस ग्रन्थ में जयदेव, उमापतिधर, योंवी, गोवर्द्धनाचार्य, गण्य आदि प्रमुख कवियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है। ये कवि राजा लक्ष्मण नैन के दरबार के थे। इनके श्रीकृष्ण-लीला-त्रिपयक्त श्लोकों ने उस काल में राधा-कृष्ण की कथा के विकास और स्वरूप का परिचय मिलता है। इनकी रचनाओं का प्रभाव पुरा-पुरा भविष्य के वैष्णव कवियों पर पड़ता है। इस ग्रन्थ के कुछ श्लोकों की चर्चा करने में राधा के स्वरूप का स्पष्टीकरण हो जाता है। यह ग्रन्थ ईसवी मन् की बारहवी-तेरहवी अताद्वी का है।

एक श्लोक में कहा गया है कि कृष्ण, गोवर्द्धन धारण किये हुये हैं, सब गोपियों के साथ राधा भी कृष्ण की ओर देख रही है। गोपिया, राधा को संबोधन कर कहती है, "राधे, तुम कृष्ण के दृष्टिपथ में बहुत दूर चली जाओ, तुम्हारे प्रति आसक्त दृष्टि से कृष्ण के हाथ शिथिल न हो जायं, किन्तु गोपियों की कहीं हुई "राधा को दृष्टि ने दूर हटाने" की बात मन में चिन्ता कण्ठे गिरिवारण के श्रम से कृष्ण दीर्घ श्वास छोटने लगे।"

दूरं दृष्टिपथात्तिरोभव हरेर्गोवर्धनं विभ्रत-
स्त्वप्यासपतदृश. छुशोदरि कर सस्तोऽस्य मा भूदिति ।

गोपीनामितिजल्पितं कलयतो राधा-निरोधाश्रयं

श्वाताः शैलभरश्रमभ्रमकरा. दृष्टस्य पुष्पन्तु वः^१ ॥

इसी प्रकार में एक श्लोक में लक्ष्मी अथवा स्वामिणी ने भी राधा के प्रेम को श्रेष्ठ व्यक्त किया गया है। उसमें कहा गया है "मैंने जलमग्न अवस्था में कामदेव के भय से आली का आलिंगन कर लिया था। आज तुमने किमने यह मिथ्या बात कह दी ? राधे ! तुम व्यर्थ कुपित हो रही हो।" गार्ङ्गवर विष्णु को स्वप्न में इस प्रकार बोलते हुये मुनकर लक्ष्मी ने बहाने में उनका जो कण्ठग्रह शिथिल कर दिया था, वह तुम्हारी रक्षा करे^२। इस श्लोक में भी रचयिता का नाम नहीं है। "पद्यावली" में यह

^१ गोवर्द्धनोद्धार ४, रचयिता का नाम नहीं, यही श्लोक "पद्यावली" में (श्री गोवर्द्धनोद्धारणम्, २६७) शुभाग के नाम से उद्धृत है।

^२ सदुक्तिकर्णामृत-कृष्णस्वप्नाधितम्, ५ ।

उमापति घर के नाम से मिलता है और उसमें 'कमला' के स्थान पर 'विमली' का नाम लिया गया है।

सदुक्तिरूपामृत के श्लोका में राधा कृष्ण-लीला के जो वणन हैं उनमें मधुर वाच्य रस का सुर ही प्रधान है। घम या गभीर स्वर धीमा सा है। इन श्लोका के विभिन्न रचयिताओं पर राज दरवार का प्रभाव पूरा मात्रा में है। उनका लक्ष्य इन रचनाओं द्वारा अपने आश्रयदाता महाराज की सुष्टि करना प्रतीत होता है। कहा जाता है कि बंगाल के सेन राजा वैष्णव थे।

गोपी सन्देश विषयक श्लोक 'सदुक्तिरूपामृत' में गोपीसन्देश के नाम से जो अनेक श्लोक उद्धृत हैं उनमें भाव भाषा रस के चमत्कार का उत्कृष्ट देखने को मिलता है। गोपीसन्देश विषयक श्लोकों के साथ परवर्तीकाल के और मुख्य रूप से ब्रजभाषा के कवियों (सूरदास, नन्ददास) के 'भमरगीत' के प्रथम के पदा के साथ साम्य है। इन श्लोका में एक-दो श्लोकों का देखने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। एक श्लोक में राधा तथा अन्य गोपिया विगत दिना का स्मरण कराने वाली वस्तुओं की याद दिलाते हुये सन्देश भेजती है। कृष्ण, द्वारवती चल गये हैं। गोपियों को आशा है कि उन वस्तुओं की याद कर के लौट आयेंगे। गोपिया कहती है 'गोवधनगिरि की वे सब कदरार्यें, यमुना का वह तीर, वे चेष्टारस, वह भाण्डीर वनस्पति, वे तुम्हारे सहचरवन्द, वह तुम्हारा गोष्ठ का आगा—है द्वारवती भुजग के सब भूल से भी याद नही आने क्या?' हरि के हृदय में ब्रजवधू सन्देश रूप यह दुःसह शल्य तुम लागा की रक्षा करे^१।

वीर सरस्वता वृत्त गोपी-सन्देश का व्यञ्जना-मौन्दय अपूर्व है —

मधुरापथिक मुरारोरुद्गेय द्वारि यल्लयीवचनम ।

पुनरपि यमुनासलिले कालियगरलानलो ज्वलति ॥^२

अर्थात् है मधुरापथिक, मुरारो के द्वार पर तुम इस गोपीवचन को अवश्य ही गाकर सुनना—'पुन उस यमुना के जल में कालियगरलानल (वाग्ण्य गरल के समान विरहानल) जल रहा है ।'

^१ 'सदुक्तिरूपामृत' गोपीसन्देश, १, पद्यावली-प्रजदेवीया मन्देश, ३७५ ।

^२ वही गोपीसन्देश ५ ।

‘मदुक्तिकर्णामृत’ में वात्मल्य रस के श्लोक भी पाये जाते हैं। एक श्लोक में कहा गया है कि गोपगण जाकर नन्द बाबा से कहते हैं कि “कृष्ण हमें न तो कालिन्दी के पुलिन पर दिवाट दिये, न पर्वत के नीचे मैदान में मिले, और न ही राधा के पिता के प्रागण में मिले”—उनके ऐसा कहने पर नन्द बाबा विस्मित हो गये, तभी जो हरि हमते दृये घर में बाहर निकल आये, वे तुम्हारी रक्षा करें^१। यह श्लोक उमापतिवर का है। उसी प्रकार से अभिनन्द कवि के श्लोक में भी वात्मल्य-रस तथा वैष्णवता का प्रभाव देखने को मिलता है। उस श्लोक में कहा गया है “हे बल्य, पर्वत कन्दराजो और गोचारण भूमि में विचरण करते हुये यदि नामने कोई हिमक पद्म देगो तब पुराण पुरुष नारायण का ध्यान करना”—यशोदा के कहने पर मुरारि कृष्ण का स्मित हास्य, फटकते हुये ओठों के गाट पीहन द्वारा एक अव्यक्त भाव की व्यजना कर उठा, वह सब जगत् की रक्षा करे^२।

गीतगोविन्द—

इन विभिन्न सकलन ग्रन्थों में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का उल्लेख प्रकीर्ण श्लोकों के रूप में यत्र तत्र बिखरा हुआ मिलता है। सर्व प्रथम १२वीं शताब्दी में जयदेव ने ही गीत-गोविन्द में राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं को सुव्यवस्थित, सम्पूर्ण तथा सुन्दर काव्य का रूप दिया। संस्कृत के सुमधुर गीति काव्य “गीतगोविन्द” में चौबीस संस्कृत पद श्रीकृष्ण की शृंगारिक लीलाओं के कुछ अल्प-विस्तृत प्रयोगों के आधार पर ग्रथित होकर उपस्थित हुए हैं। काव्य-रस की दृष्टि से विवेचना करने पर गीतगोविन्द के पद स्पष्ट ही पूर्ववर्ती राधाकृष्णलीला-सम्बलित साहित्यधारा के प्रनारमात्र प्रतीत होते हैं पर साथ ही वैष्णवता की प्रगाट छाप इस काव्य में सुस्पष्ट है। यदि इस काव्य को सुसम्बद्ध वैष्णव साहित्य का मूल उद्गम श्रोत मानें तो अनुचित न होगा। इस ग्रन्थ रचना द्वारा किसी दार्शनिक मतवाद की स्थापना कवि का ध्येय नहीं प्रत्युत आद्यन्त काव्य परिशीलन से यही प्रतीत होता है कि राधा-कृष्ण के लीला-मण्डल से दूर रह कर लीला-दर्शन, लीला-आस्वादन, लीला-गान ही एकमात्र कवि को अभिप्रेत है। इसी लीला-प्राधान्य के कारण ही ३०० वर्ष बाद आविर्भावित श्रीचैतन्य

^१ वही, कृष्णकौमारम्, ४।

^२ वही, कृष्ण स्वप्नायितम्, १।

महाप्रभु भी इस वाक्य से इतने अनुप्राणित हुए कि इन गीता के श्रवण से वे सुघ मुग्ध खो बैठने थे^१ ।

‘गीत-गोविन्द’ के साधारण पाठका के लिए इस भाव-रूपा की अनुभूति समभव नहीं क्योंकि इन लोकोत्तर लीलाओं के आस्वादन के लिए प्रवर्तिया की विशेष प्रकार की जागरूकता अपेक्षित है इस विशिष्ट चेतना का ही नाम तमयावस्था है । सबसाधारण के लिए यह अतीन्द्रिय उच्चस्थिति अनुभव गम्य नहीं है । इसीलिए इस काव्य के अधिकारी की भीमसा करते हुए श्र-धारम्भ में कवि ने स्वयं कहा है —

यदि हरिस्मरणे सरस मनो यदि विलासकलामु बुतूहलम ।

मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम^२ ॥

यदि हरि-स्मरण से मन सरस हाता हो और विलास कला समूह में कौतूहल हो तब जयदेव भारती के मधुर कामल और कान्त पदावली का श्रवण करा ।

स्वरूप गक्ति राधा के माय कृष्ण की लोकोत्तर लीलाओं का आस्वादन ही वैष्णवों के जीवन की चरम आकांक्षा है । इसी परम ध्येय को लेकर ही जयदेव ने “गीतगोविन्द” की रचना की—

“राधामाधवयोजयति यमुनाकूले रह वैलय ।”

यमुना तट पर होने वाली राधा माधव की एकान्त लीलाओं की जय हो ।

लीला प्राधाय ही “गीतगोविन्द” काव्य की एकमात्र विशेषता होने के कारण कवि ने प्राधना की —

^१ सुति स्वरूपगोसायि तव मधुर करिया ।

गीतगोविन्दैर पत्र गाय प्रभुने सुनायां ॥

स्वरूपगोसायि जवे एइ पद गाइया ।

उठि प्रेमावेसै प्रभु ताचिन लागिया ॥

× × ×

एक पद पुन पुन कराय गाया ।

पुन पुन आशान्ये वाइये तान ॥—श्रीरामचरितामृत, अन्त्य-लीला

१५ परिच्छेद, ७७-७६ ।

^२ गीतगोविन्द—१।२ ।

भणति कवि जयदेवे विरहविलासिनेन ।
मनमि रभरा-विभवे हरिरुदयतु मुकुतेन ॥

कवि जयदेव भणित हरि का यह विरह-विलास जिनके मन का वैभव स्वरूप है, उन पुण्यवानों के हृदय में हरि उदित हैं ।

“गीतगोविन्द” को रचना द्वारा जयदेव ने राधा-कृष्ण की अनेकों क्रीड़ा-कलाओं को एक सम्पूर्ण काव्य के धाराप्रवाह में उपस्थित किया । जिस काव्य में केवल तीन ही पात्र हैं—नायक कृष्ण, नायिका राधा और लीला गृहचरी मत्तिया । वास्तव में “गीतगोविन्द” ब्रजस का मुयामिन्दु है । भावउत्साह, भाषा-भाव्य और छन्द-शालित्य के परिचायक दो चार पद उदाहरण-स्वरूप उद्धृत किए जाते हैं ।

नीलाम्त कृष्ण को कुछ दूरी से दिग्गतर गयो शंराधा ने कहती हैं—

चन्दनचञ्चितनीलकलेवर पीतयसनयनमाली ।

केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली ॥

हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलमति केलिपरे^१ ।

पीतवसन-परिहित यनमाली नील कलेवर (मुञ्ज) चन्दन में अनुकृष्ट है । उनकी क्रीडामत्तता के कारण मणिमय कुण्डल हिल रहा है और उन कुण्डलच्छटा में इतत हान्योज्ज्वल कपोलयुगल गोभित हुआ है । विलास मत्त मुग्धवधुओं को लेकर हरि केलि विलास में रत हुए हैं ।

राधा सखी से कृष्ण से मिलन कराने के लिए अनुरोध करती है :—

निभृत निकुज गृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम् ।

चकितविलोकितसफलदिशा रतिरभसरसेन हसन्तम् ॥

सखि हे केशिमयनमुदारम् ।

रमय मया सह मदन मनोरथ भावितया सविकारम्^२ ॥

मेरे रजनी में निभृत निकुज गृह में उपस्थित होने पर जो बहाने छिपे रहते हैं, और चकित होकर जब मैं चारों ओर निहारती हूँ तब देकर अतिशय रतिरस में हस उठते हैं, मेरी विलास कामना जिनके चित्त को लालसायुक्त करती है, सखि, उस उदार केशिमयन के साथ मेरा मिलन करा दो ।

^१ गीतगोविन्द—१।४० ।

^२ गीतगोविन्द—२।११

मानिनी राधा का मान भजन करते हुए कृष्ण कह रहे हैं —

त्वमसि मम भूषण त्वमसि मम जीवनम त्वमसि मम भवजलधिरत्नम ।

भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी तत्र मम हृदयमतिपत्नम^१ ॥

तुम्हीं मेरे भूषण हो, तुम्हीं मेरे जीवन हो, तुम्हीं मेरे समार सागर के रत्न स्वरूप हो, हृदय केवल यही कामना करता ह कि तुम मेरे प्रति चिर अनुकूल रहना ।

पहले से आती आई राधा कृष्ण की गित्य-लीला जो श्रीमद्भागवत और पुराणा का वष्य विषय रही "गीतगोविन्द" के रासलीला प्रसंग द्वारा कवि ने भगवान के उसी ऐश्वर्य प्रधान रूप को परम माधुयमम लीलाकारी स्वरूप में दिखाया जिसके फलस्वरूप श्रीकृष्ण और श्रीराधा लोक-जीवन के अत्यधिक निकट आ गए । वही-वही तो कृष्ण राधा इतना अधिक लौकिक नायक नायिका-से प्रतीत होने लगत ह कि उनके देवत्व प्रधान चरित्र में भी सन्देह होने लगता ह । काव्य की विशुद्धता की रक्षा के साथ रस की पूर्ण व्यजना ही कवि की अतुलनीय शक्ति का परिचायक ह । लाकांतर धदा-धनीय-लीला का प्रतिबिम्बित रूप है लौकिक प्रेम-लीला, मत्य प्रेम के बीच से जिस अमत्य प्रेम का साक्षात्कार कवि ने भाव और भाषा के उज्ज्वल गीतिमय शब्द चित्र के द्वारा कराया वह अवश्य ही स्तुत्य है । मानव प्रेम के श्रेष्ठ, सायक और सुन्दरतम परिणति रूप परम स्निग्ध भगवत प्रेम के रसास्वादा द्वारा कवि की साधना चरिताय हुई । केवल धमग्रन्थ ही नहीं काव्य की दृष्टि से भी गीत-गोविन्द का उत्कृष्ट अद्वितीय है । भाव-मौन्द्य, भाषा-माधुय, छन्द लालित्य की प्रचुरता में 'गीतगोविन्द' निस्सन्देह सस्कृत साहित्य में अतुलनीय है और रहेगा ।

कृष्ण-कणामृत—

राधा-कृष्ण कथा की धारावाहिकता में लीलागुक्त विल्व मंगल रचित 'कृष्ण-कणामृत' का उल्लेख आवश्यक ह क्योंकि इस ग्रन्थ में राधा-कृष्ण का देव प्रपात चरित ही प्रबल होकर प्रकट हुआ ह । इसके रचना-काल के सम्बन्ध में बहुत मतभेद ह अत १० वी १४ वीं शताब्दी के बीच का समय इसका रचना का काल माना जाता है । कृष्ण-कणामृत का एक पद (१०६ सूर्यक) सदुक्तीकणामृत (१२ वीं १३ वीं शताब्दी में संकलित) में (१५८५)

^१ वही—४१२ ।

उद्धृत है, अतएव इसी प्रमाण के आधार पर यदि “कृष्णकर्णामृत” का रचना-काल भी “गीतगोविन्द” के रचनाकाल का समसामयिक द्वादश शताब्दी मान लें तो अनुचित न होगा। इस काव्य की रचना दक्षिण में हुई ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं, महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव अपने दक्षिण भ्रमण के समय “कृष्ण-कर्णामृत” काव्य और “ब्रह्म-सहिता” को “महारत्न” समान मानकर वहाँ से अत्यन्त आदर तथा प्रेम के साथ ले आए^१। वे निरन्तर इस ग्रन्थ-रत्न का आस्वादन करते रहते थे^२।

भाव, भाषा, छन्द के माधुर्य में तो “कृष्णकर्णामृत” अद्वितीय है ही पर वर्मानुराग की प्रबलता ही इसकी प्रमुख विशेषता है। “कृष्णकर्णामृत” वृन्दावनीय सुधारस का अक्षय निर्झर स्वरूप है। इस काव्य के अवलोकन में स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके रचयिता सच्चे वैष्णव भक्त थे, लीला-प्रसार तथा लीला-आस्वादन के लिए ही इन्होंने इस काव्य की रचना की। इस प्रसंग में विल्वभगल का “लीलाशुक” विगेष व्यान देने योग्य है। मधुर वृन्दावनीय लीला को दूर के कदम्ब वृक्ष से दर्शन और आस्वादन करना और शुक के समान मधुर काव्य-काकली में उसी के माधुर्य का वर्णन करना ही भक्त कवि का यथार्थ परिचय है। दो-एक श्लोको की उद्धृति से ही भक्त कवि की भाव-वारा का स्पष्ट परिचय मिल जाएगा—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे त्वदालोकनमन्तरेण ।

अनाथवन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि^३ ॥

हे हरि ! हे अनाथवन्धु ! हे करुणा के एकमात्र सिन्धु ! हा ! हा ! तुम्हारे दर्शन के बिना इन अधन्य दिवसों को कैसे बिताऊँ ?

और—

हे देव ! हे दयित ! हे भुवनैकवन्धो !

हे कृष्ण ! हे चपल ! हे करुणैकसिन्धो ।

हे नाथ ! हे रमण ! हे नयनाभिराम !

हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे^४ ॥

हे देव ! हे प्रियतम ! हे भुवनैकवन्धो ! हे कृष्ण ! हे चपल ! हे करुणैकसिन्धो ! हे नाथ ! हे रमण ! हे नयनाभिराम ! हा ! हा ! कब तुम्हारे चरण मेरे नयनगोचर होंगे ? ।

^१ चैतन्य-चरितामृत, मध्य, ९ प० ।

^२ वही, मध्य १ ।

^३ लीला शुक्ल ७।४१

^४ वही ६।४०

यानि तच्चरितामृतानि रसनालेह्यानि धयात्मना
ये वा शशवचापलयतिवरा राधावरोधो-मुखा ।
ये वा भावितवेणुगीतगतयो लीला मुखाम्भोध हे
धारावाहिकया बहन्तु हृदय तायेव तायेव मे^१ ॥

तुम्हार जो सब चरितामृत धयात्माओ (सौभाग्यवान पुण्यात्माओ) की रसना द्वारा लेहन योग्य हैं, राधा के अवरोध (राधा का विभिन्न प्रकार से अवरुद्ध करने के लिए) में उ-मुख तुम्हारी जो सब शशवचापल्य-प्रसूत चेष्टाएँ हैं एव तुम्हारे मुखपद्म से निकली हुई भावशबल वेणुगीन गति समूह की लीलाएँ—वे सब धारावाहिक रूप से भरे हृदय में प्रवाहित होती हैं। उक्त श्लोक के 'राधावरोधो-मुख शशवचापल्यहतु चेष्टा समूह' द्वारा परवर्ती काल के विस्तृत रूप से वर्णित दानलीला, नौवा-लीला का ही आभास मिलता है।

भगवान ने लीला-शुक से पूछा—'तुमने अय, धम काम, मोक्ष इन चतुर्वर्ग फलों को छोड़कर तथा मेरी प्राप्ति की इच्छा का भी तिलाजलि देकर एकमात्र भक्ति की ही याचना क्या की? लीलाशुक ने उत्तर दिया —

भवत्तस्त्वयि स्थिरतरा यदि स्याद्भवेन न फलति दिव्यकिशोरमूर्ति ।

मुक्ति स्वयं मुकुलिताजलि सेवतेऽस्मान धर्माधिकामगतय समय प्रतिक्षा ॥

'यदि तुम में मेरी निश्चला भक्ति हो और दैववश तुम्हारी 'दिव्य किशोरमूर्ति' भरे सामने प्रत्यक्ष हो जाए, तो मुक्ति स्वयमेव हाथ जोड़कर मेरी सेवा में उपस्थित रहेगी और धर्माधि-काम-मोक्ष सब समय आत्मापालन के लिए तत्पर रहेंगे।'

सच्चे ब्रह्मण्य के लिए यह 'निष्काम भक्ति ही चरम निधि है। यही उसके जीवन का ध्येय, साधनाआ का साध्य है तब फिर और किसी वस्तु की प्राप्ति की आकांक्षा उसमें दोष नहीं रह जाती।

'कृष्णवर्णामृत मय में आदि से अन्त तक आध्यात्मिक आकांक्षा जैसी प्रबल दिखाई पड़ती है उसकी तुलना में 'गीत गोविन्द' का आध्यात्म पक्ष महत्त्वहीन है। ऐसा प्रतीत होना है कि 'गीतगोविन्द' में 'हरि स्मरणे सरम मन' की अपेक्षा 'विलास कलामु कुतूहलम' का पक्ष ही प्रबल हो उठा है। जयदेव के पूर्ववर्ती युग के रस विदग्ध कविया ने प्रेम लीलाआ के वर्णन में जा निपुणता दिखलाई, जयदेव ने गीत-गोविन्द काय में राधा-कृष्ण का अवलम्ब

^१ वही १।१०६।

ले उसी विलास-कला के कौतूहल और वर्णन निपुणता का परिचय किया है। 'कृष्णकर्णामृत' के रचना-वैशिष्ट्य का कारण उमका स्थानगत तथा धर्मगत प्रभाव अनुमित होता है। १३ वीं शताब्दी तक वैष्णव धर्म दक्षिण में पर्याप्त प्रसिद्धि तथा प्रचार पा चुका था, इसकी आलोचना तो पिछले अध्याय में की जा चुकी है। यदि दक्षिण प्रान्त में समृद्धिवाली विभिन्न वैष्णव-धर्म ग्रन्थों ने परम वैष्णव भावुक भक्त को इस प्रकार अनुपम भक्ति-काव्य-मृजन के लिए प्रेरणा दी हो तो आश्चर्य ही क्या। आलवार भक्तों की मधुर रसनिम्न साधना की चर्चा पहले की जा चुकी है। 'कृष्णकर्णामृत' काव्य ने परवर्ती काल के गौडीय वैष्णव धर्म और साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। श्रीचैतन्य ने शिक्षा-सिद्धान्तों के लिए दक्षिण से लाए हुए इन दोनों ग्रन्थों ही का अवलम्ब लिया, भजन शिक्षा के लिए 'कृष्णकर्णामृत' और तत्व शिक्षा के लिए 'ब्रह्मसहिता' ही उन्हें मान्य हुई।

सर्वय-प्रस्तरलिपि में कृष्ण का उल्लेख—

सन् ईसवी १३ वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में सर्वय-प्रस्तरलिपि में कृष्ण 'राधाधव' रूप से वर्णित हुए हैं^१।

अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्य में श्रीकृष्ण लीलाओं का वर्णन

अपभ्रंश साहित्य के प्रबन्ध काव्य रचयिता प्रसिद्ध पुष्पदंत कवि ने महापुराण^२ की रचना की। कवि पुष्पदंत का रचनाकाल १० वीं शताब्दी है। महापुराण में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाएँ वर्णित हुई हैं। जैसे—बाललीला, पूतना-लीला, ओखल-बन्धन, गोवर्धन-वारण, कालिय-दमन आदि। उदाहरण के लिए दो-एक लीलाओं का यहाँ विस्तृत विवरण दिया जा रहा है।

कृष्ण की बाल-लीला .—

दुवई—धूलीधूसरेण वरमुक्कसरेण तिणा मुरारिणा ॥

कीलारसवसेण गोवाल्यगोवीहिययहारिणा ॥६॥

रगतेण रमतरमते

मथउ घरिउ भमतु अणते

मदिरउ तोडिवि आविहउ

अद्धविरोलिउ दहिउ पलोहिउ ।

का वि गोवि गोविदहुलग्गी

एण महारी मंथणि भग्गी ।

^१ दी इण्डियन एन्टिक्वेरी, १८९३, पृ० ८२ ।

^२ माणिकचन्द्र दिगंबर जैन ग्रन्थ माला ववई डाक्टर पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित (१९३७, १९४०, १९४१) तीन जिल्द ।

एयहि मोल्लु दउ आरिगणु	ण ता मा मल्लु मे प्रगणु ।
वाहि वि गोविहि पडुरु चेलउ	हरितणुतेए जायउ कालउ
भूट जलेण बाइ पक्खालइ	णियनडत्तु सहियाहि दक्खालइ ।
यण्णरसिच्चिरु छायावतउ	मायहि समुहु परिधावतउ ।
महिससिलवउ हरिणा धरियउ	ण करणिवधणाउ णीसरियउ ।
दोहउ दोहणहत्थु समीरइ	मुइ मुइ माहव वीलिउ पूरइ ।
कत्थइ अगणभवगालुद्धउ	वालवच्छु धालेण निम्भउ ।
गुजाशेदुयरइयपओए	मेल्लाविउ दुक्खेहि जसोए ।
कत्थइ लाणियापिडु गिरिक्खिउ	कण्हे कसहु ण जसु भक्खिउ ।

घत्ता—पसरियकरयलेहि सद्दनिहि सुइसुहकारिणिहि ।

भच्छिइ गियाडि धिए धरयम्मु ण लग्गइ णारिहि ॥६१॥

धूलि धूसरित श्रेष्ठ मुक्त बाणो से तृणावत को मारने वाले, श्रीधारस में बशीभूत, गोपालक, गोपिया के हृदय का हरण करने वाले “प्रेम राग से रजित रमण करने वाले मुरारी ने अनन्त भ्रमण करने वाले (अनवरत घूमने वाले) मथानी का पकड़ा। जजीर को ताड़ दिया, अद्ध धिलेए हुए दधि का पलोट दिया। बोई गोपी गोविन्द से उलझी। इसने मेरे दधि भांड को तोड़ा है। इसका मोल आलिंगन दा, नहीं तो मेरे घर का आगन छाड़ा। किसी गोपी का पादुर (पीला) वस्त्र हरि के शरीर से लगने से काला हो गया है। (वह) मूर्त्ता जल से काइ प्रक्षालन करती है (और) अपनी मूर्त्ता सखिया को दिसला रही है। दुग्ध के स्वाद की इच्छा वाला क्षुधावान (बच्चा) भंस के सामने दौड़ता है। भंस के बच्चे को हरि ने पकड़ा। उनके हाथ में बंधा हुआ (उनके द्वारा पकड़ा हुआ बच्चा) छूटता नहीं है। गोपाल (अपने) हाथ बढाकर दोहन करते हैं। आनन्तित हो होकर माधव श्रीझ से परिपूर्ण होते हैं। कही अपने अगा (के सौन्दर्य) से भुवन का लुब्ध करने हैं। गाय के बछड़े को कृष्ण रोकते हैं। गुजा निमित्त कृष्ण के प्रयोग से यगोण को दुग्ध देते हैं। कही नवनीत के पिण्ड को निरसते हैं और कृष्ण कस के यग की तरह उसका भक्षण करते हैं। हाथ पसारते हैं और सुन्दर गुण देने वाली विलवारी करते हैं। कृष्ण के टिकट रहनेवाला स्त्रिया का घर के नाम में चित्त नहीं लगता।

१ महापुराण—पारायणवाल्मीकीकृष्णकथा पचासीमो सर्ग, पृ० ६४-६५।

अपभ्रंश काव्य प्रेम-निश्चित वीर काव्य है । यदि उसमें प्रेम की दमक है तो तलवार की चमक भी कम नहीं है । अतः यहाँ कृष्ण केवल रमिक-नायक ही नहीं वीर नायक भी हैं । गोपिया के साथ छद्मर प्रेम-क्रीड़ाएँ की, साथ ही दुष्ट-दलन, भक्त-पालन ने भी मुह नहीं मोटा । कंस के बढ़ते हुए पाप तथा अत्याचार को कृष्ण ने पूतना (तथा अन्य छत्रवेगी राक्षसों) के वध द्वारा रोका—

दुवई—कहियं देवयाहि जो णदणिहेलणि वसइ चालओ ।

तो पई नृव ण भति कं दिवनु वि मारइ भच्छरालओ ॥६॥

जाणिइ अरिवरि	ता तहि अवनारि ।
कसात्से	मायावेनें ।
वल मायाविणि	वाइय जोरणि ।
वच्छरवाउलु	गय त गोउगु ।
जयगिरितण्हहु	णवमहु कण्हहु ।
पासि पवणी	अ ति पिसणी ।
फभणइ पूयण	है महुसूयण ।
पियगरुडद्वय	आउ थणद्वय ।
दुद्धरसिल्लउ	पियहि थणुल्लउ ।
त आयणिवि	चगउ मणिगवि ।
च्यपयपडुरि	वयणु पओहरि
हरिणा णिहियउ	राहु गहियउ ।
ण ससिमडुलु	सोहइ थणयलु
सुरहियपरिमलु	ण णीलुप्पलु ।
सियमलनुघरि	विभिउ मणि हरि ।
कडुए खीरें	जाणिय वीरें ।
जणणि ण मेरी	विप्पियगारी ।
जीविगहारिणि	रक्खसि वइरिणि ।
अज्जु जि मारमि	पलउ समारमि
इय चित्तें	रोमु वहंतें ।
माणमहत्तें	मिउडि करते ।
लच्छीकत्तें	देवि अणत्तें ।
दत्तहि पीडिय	मुट्ठिइ ताडिय ।

दिटिठइ तज्जिय	धामें णिज्जिय ।
अणु विण मुक्की	णहहि विलुक्का ।
एलहि रसतहि	सुण्णु हसतहि ।
भीमें वालें	कयवल्लोलें ।
लोहिउ सोसिउ	पलु आवरिसिउ ।
दाणवसारी	भणइ भडारी ।
हियरुहिरासव	मुइ मुइ केसव ।
णदाणदण	मेल्लि जणदण ।
कसु ण संवमि	रोसु ण दावमि ।
जहि तुहु अच्छहि	कील समिच्छहि ।
तहि णउ पइसमि	छलु ण गवेसमि ।

धत्ता—इय रूपति कलणु कह कह य गोविदे मुखी ।

गय देवय कहि मि पुणु णदणियासि ण दुक्की ॥९१॥

‘उस देव (ज्योतिषा) ने कहा कि नन्द के घर में बालक रहता है । वह तुमको राजा नहीं समझता, कुछ दिनों में तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु होगा और (तुम्हें) मार डालेगा । इसलिये थोड़ा शत्रु जाकर उस अवसर पर कस के आदेश से (पूतना ने) माया का वेश धारण किया । बलशालिनी, मायाविनी योगिनी दीदी । बछड़े के समान शब्द बरती हुई वह गोकुल गई । जयश्री की तृष्णा (धामना) करने वाले, नवम नारायण कृष्ण के पास क्षत पहुँची । पूतना ने कहा ह मधुसूदन, प्रिय गरुडध्वज, हे पुत्र आओ । दुग्धयुक्त स्तन को हरि ने पकड़ा (जसे) राहु ने ग्रस लिया हो । माना स्तन पर शणि मडल गोभित ह । सुरमित परिमल से युक्त (मानो) नीलोत्पल हो । श्वेत बलम के ऊपर हरि मणि (नील मणि) बिम्बित हो रहा ह । बडुआ दुग्ध वीर (कृष्ण) ने जाना । यह मरी जननी नहीं है यह अनिष्टकारिणी है । जीव (प्राण) का हरण करने वाली है राक्षसी बरिणी ह । अभी मारुगा, पल भर में समाप्त करुगा । इस प्रकार चिन्ता करते हुए रोप प्रकट करते हुए मान का धारण करते हुए लक्ष्मीकान्त, अनन देव ने दात स पीडित किया, मुट्ठी स प्रहार किया, दष्टि स धमकाया बल स पराजित किया । पल भर भी उसे मुक्ति नहीं (मिला), नभ भी ओर दगती ह, दुष्ट वचन बोलती ह और धूय को हमती है । अत्यन्त बलगाली बालक

१ महापुराण—नारायणबालकीलावण्ण पचासीमो सपि, पृ० ६६-६८ ।

अव्यय हैं। उदाहरण उस दोहों के मध्य में उनका निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि वे सिद्धी मन् की शारदाकी जनाब्दी के पूर्व ही रचे गए होंगे। एक दोहों में कहा गया है कि इन् प्रमाण में नचाये गए। दोष विम्वय में पड गये। इस नाम्य राधा के पयोधरो को तो रचे घट हा।

हरि नन्चाप्रिउ पंगण्ट विम्वह्द पाउउ लोउ।

एम्वाहं राट-पजोरहं जं भायह्द सं होउ^१ ॥

मदेशरामक में गोपालिका अट्टमण के मदेशरामक में एक दोहा अण्य है जिनमें गोपालिका के उदन ने नायिका की विरहायन्त्या की उपमा दी गई है। उससे आभीर जाति के मघटन का पता चलता है और गमात्र पर उसके प्रभाव को देखा जा सकता है। नायिका अपनी विरहायन्त्या की उपमा देती हुयी कहती है कि वह विरह के माय मघपं करने में अममथ है। (गोप्राप्तों द्वारा हरी जानी हुई गायो की) गोपालिका की मरद घन्या पंगने ग्यामियों द्वारा घुमाई जाकर रो रही है।

दशावतार-चरित

नवी-दमवी शताब्दी के बाद से नाहिन्य में 'दशावतार चरित' नाम ने अनेक काव्य लिखे जाने लगे। क्षेमेन्द्र कवि ने ११ वीं शताब्दी के मध्य भाग में "दशावतार चरित" नामक एक सुन्दर काव्य की रचना की। जयदेव ने भी गीत-गोविन्द में दशावतार की वन्दना की है^२। पृथ्वीराज रासो में एक "दशम" है जो वस्तुतः दशावतार चरित है। इन पुस्तकों में दश अवतारों की स्तुति और चरित लिखे जाते हैं परन्तु प्रधानता राम और कृष्ण अवतारों की ही होती है^३। क्षेमेन्द्र के दशावतार चरित में कृष्णावनार का प्रमग ही करीब-करीब पुस्तक के आधे भाग को घेर हुए है। यह काव्य मुक्तक शैली में रचा गया है, जिनकी शैली में गीत-गोविन्द के पूर्व रूप का आभास मिलता है। रचना शैली के उदाहरण के लिए यहाँ एक श्लोक उद्धृत है।—

ललित-विलास फला-मुख-खेलन-

ललना-लोभन-शोभन-यीवन-

भानित-नव-मदने।

^१ हेमचन्द्र, "प्राकृत व्याकरण" ८।४-४२०।

^२ दशावतारचरित १।१।१-११।

^३ प० हजारीप्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन धर्म-साधना पृ० १२०।

अलि-कुल-कीकिल-कुवलय-वज्जल-

काल-कलि-द-सुता इव लज्जल

कालिय-कुल दमने ॥

केनि किशोर-महासुर-भारण-

दारुण-गोकुल दुरित विदारण-

गोवद्धन धारणे ।

कस्य न नयन-युग रति-सज्जे

मज्जनि मनसिज-तरल-तरगे चर रमणि रमणे^१ ॥

श्रीकृष्ण ललित विवास-कला सुप्त में त्रीडा करने वाले ह । उनका सुहावना यौवन ललनाओ को लुभाने वाला है । उनमें नवीन कामदेव का आविर्भाव हुआ है । व कृष्ण भ्रमर-समूह, कीकिला, कुवलय के समान इयामवण, काल की सुता यमुना तथा कालि-दी की सुता नागिनिया की भाँति लज्जित कालिय-कुल का दमन करने वाले हैं । किशोर केशि महासुर के व सहारक हैं । गोवद्धन धारण द्वारा उन्होंने गोकुल की दारुण विपत्ति का हरण किया था । वर रमणिया के साथ रमण करने वाले वे हरि किसके नयना को रति स सज्जित नहीं करत ह ? उन नेत्रा का कामदेव की तरु-तरुगा में निमज्जित कर देत ह ।

दशावतार-चरितों में कृष्ण का पराक्रमी स्वरूप

भगवान् के अवतरण के सम्बन्ध में यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने की है जब भी ससार में पाप, अत्याचार प्रचण्ड रूप से बढ़ता है, भगवान् आवश्यकतानुसार विभिन्न अवतार ग्रहण करते हैं । दुष्टों के दलन से पाप विनाश द्वारा घम की स्थापना और भक्ता का पालन तथा रक्षा ही भगवान् के अवतार लने का मुख्य कारण है । उनकी चर्चा पिछले अध्याय में विस्तृत रूप में की जा चुकी है । दुष्टों अत्याचारिया आततायियों से जूझने के लिए अवतारों में गमित पक्ष की प्रवृत्ति ही अपेक्षित थी । यही कारण है कि भगवान् के सभी अवतारों में पराक्रम चक्रि शीघ्र का ही प्राबल्य था वचन कृष्णावतार में ही माधुय पक्ष की प्रधानता ने पराक्रम पक्ष को दौक-सा लिया, पर आवश्यकता पडने पर गसिक गिरोमणि कृष्ण अपार वीरत्व प्रदान में भा धूये नहीं । इन 'दशावतार-चरिता' में अवतारों का दुष्ट-दलन और आतताया-दमन पक्ष ही प्रधान रूप से प्रस्तुत हुआ ।

^१ दशावतारचरित ८।१७३ ।

जो कुछ भी हो, यह तो स्पष्ट ही है कि उन समय के विकासमान साहित्य की धारा में श्रीकृष्ण की शृंगारी-लीलाओं का ही प्राचुर्य था।

प्राकृत-पिंगल—

सन् ईसवी की चतुर्दश शताब्दी के लगभग सकलित 'प्राकृत-पिंगल' के दो-एक पद्यों में राधाकृष्ण की ब्रजलीला का उल्लेख मिलता है। 'प्राकृत-पिंगल' के प्रथम अध्याय में आशीर्वाद-पुष्पिका में कृष्ण-वन्दना विषयक एक पद्य मिलता है—

जिणि कस विणासिअ कित्ति पवासिअ
मुहिरिहि विणास करे
गिरि हत्य धरे।

जमलज्जुण भंजिअ पअभर गंजिअ
कालिअ-कुल सं-हार करे
जस भुअण भरे।

चानूर विहण्डिअ णिअ-कुल मण्डिअ
राहा-मुहमहु पाण करे
जणि भमर परे।

सो तुमूह णाराअण विप्प-पराअण
चित्तह चिन्तिअ देउ धरा
भव-भीइ-हरा^१।

जिन्होंने कस के विनाश द्वारा कीर्ति प्रकाशित की थी, मुष्टिक-अरिष्ट का विनाश किया था, हाथ पर गिरि धारण किया था, यमलाज्जुन भग किया था, पद-तिरस्कार में कलियकुल का संहार किया था, उस यग से भुवन भर गया था, चानूर के खण्डन से निज कुल का मडन किया था, भ्रमरवर के समान राधा-मुखमधु का पान किया था, वे विप्रपरायण नारायण तुम्हारे चित्त में चिन्तित होकर भवभीतिहरण का वरदान दें। राधाकृष्ण की नौकालीला का उल्लेख सर्व प्रथम 'प्राकृत-पिंगल' के निम्नोद्धृत पद्य में मिलता है; यह राधा की उक्ति प्रतीत होती है.—

अरेरे वाहहि काणह णाव छोड़ि डगमग कुगति ण देहि।

तइ इतिय णइहि संतार देइ जो चाहहि सो लेहि^२ ॥

^१ प्रा० पै० २०७

^२ वही ९।

हे कृष्ण ! नाव खेओ चचल डगमग की कुगति मुचे न दो । तुम इस नदी का पार करा दो फिर कुछ चाहो लो ।

परवर्तीकाल में गौडीय वैष्णव सम्प्रदायमुक्त पद रचयितामा ने नौका लीला विषयक बहु-संख्यक पद रचे जिससे बंगाल में नौका लीला को प्रमुख स्थान मिला ।

प्राकृतकल्पतरु—

1

राम गर्मा के 'प्राकृतकल्पतरु' के अपभ्रंशस्तवक के उदाहरणा में राधा कृष्ण की प्रेम श्रौडा विषयक कविता की दो एव पक्तिया उद्धृत हुई हैं^१ ।
उदाहरणाय—

कीलन्तु म मोहइ कहु एमु कीलन्तु आलिंगइ कह गोपी^२ ।

श्रीडा करता हुआ यह कृष्ण मुझे मोह रहा है श्रीडा करता हुआ कृष्ण गोपी का आलिंगन कर रहा है । अथवा श्रीडा करती हुई गोपी कृष्ण का आलिंगन कर रही है ।

राहीउ बालाओ^३ जुआनु कहु ।

राधिका वाला है और कृष्ण युवा ह ।

लोक भाषाओं में राधा-कृष्ण लीला विषयक काव्य ग्रन्थ—

१४ वी शताब्दी तक तो संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश में ही राधाकृष्ण-लीला विषयक कविताएँ रचित होती रहा पर १४ वी शताब्दी के अन्तिम दिनों से जब लोक भाषाएँ स्वतंत्र रूप से विकसित होने लगी तब उन लोक भाषाओं में भी राधाकृष्ण लीला विषयक काव्या की रचना आरम्भ हुई । १६ वी शताब्दी के आते आते राधाकृष्ण लीला विषयक काव्या, नाटको, पदा का डेर लग गया ।

वैष्णव-काव्य में विरह-पक्ष की प्रधानता—

हम पहले देख चुके हैं कि वैष्णव-कविता का बाहरी ढांचा लौकिक प्रेम विषयक कविता का ही था । लेकिन लौकिक प्रेम विषयक होने पर भी उसमें एक दीप्ति और एक विशेष आवरण था । इसका कारण यह था कि उसमें कवि-कल्पना के साथ आध्यात्मिक तत्व का संयोग हो गया था ।

^१ इंडियन ऐंटिक्वेरी १९२२ प्रियसन—'दी अपभ्रंश स्तवकस् आफ राम गर्मा' ।

^२ प्रियसन का पाठ 'गोरी' ठीक नहीं प्रतीत होता ।

^३ प्रियसन का पाठ 'जुआन्वे' ठीक नहीं लगता ।

वैष्णव साहित्य का शृंगार-वर्णन भारतीय परंपरा के अनुसार है। भारतीय काव्य-साहित्य और रति-शास्त्र उसके भी आचार रहे हैं इसीलिये लौकिक प्रेम के नायक, नायिका, उनके प्रणयकलह, मिलन-विरह आदि को हम वैष्णव-साहित्य में पाते हैं लेकिन आध्यात्मिकता के संयोग ने उसमें निखार लाकर उसे एक अपूर्व महिमा प्रदान की। लौकिक प्रेम-साहित्य में दैहिक मुखोपभोग तथा संयोग-पक्ष की प्रधानता है और इसीलिये उसका स्वरूप स्थूल, जड़वत् हो गया है। वैष्णव-साहित्य में विरह पक्ष की प्रधानता है। यह भगवत् प्रेम लोकोत्तर और दिव्य है। उसमें प्रेम के उज्ज्वलतम आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है।

राधाकृष्ण-कथा के लौकिक तथा पारलौकिक रूप का पृथक्करण—

आरम्भ में तो प्राचीन काव्य-साहित्य के शृंगार प्रवाह के साथ ही वैष्णव-साहित्य की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही थी। प्राचीन काव्य-संग्रह ग्रन्थो-हाल की 'गाथा-मप्तगती' से लेकर 'कविन्द्रवचनसमुच्चय', 'सुभाषितावली', 'सदुक्तिकर्णामृत', 'सूक्तिकर्णामृत', 'शाङ्गवर-पद्धति', 'सूक्ति-रत्नहार'—के शृंगार विषयक पद्यों से भाव विषयक कविताओं के मिलान से पूर्व काव्य-धारा की क्रम परिणति स्पष्ट ही परिलक्षित होती है। बहुत बाद में अर्थात् १६ वीं शताब्दी में विशेषतः गौड़ीय वैष्णव गोस्वामियों ने दोनों साहित्यों के बीच पार्थक्य की एक सुस्पष्ट रेखा खींच दी।

गौड़ीय वैष्णव धर्म में मधुर रस की लीलाओं का प्राधान्य—

गौड़ीय वैष्णव धर्म में मधुर रस की लीला का ही प्राधान्य है। अतएव श्रीराधाकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का दर्शन, आस्वादन और जयगान ही इन भक्तों का एकमात्र चरम साध्य है। लीलामय भगवान् की लीला का वैशिष्ट्य सबसे अधिक मधुर स्वरूप में ही खुल-खिल सकता था यही कारण है कि गौड़ीय वैष्णव धर्म ने भगवान् के केवल माधुर्य पक्ष साथ ही मधुर-रस की क्रीडाओं पर इतना जोर दिया। बगाल में गौड़ीय वैष्णव-धर्म के पूर्व बौद्ध-साधना की प्रबलता के कारण ही यह भूमि इस मधुर भाव की उपासना के लिए इसी तरह इतनी उपयुक्त सिद्ध हुई जिससे प्रेम भक्ति की अपूर्व बेल यहाँ खूब लहलहाई।

गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के मुख्य प्रचारक—

श्री चैतन्य प्रवर्तित-गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारकों में श्रीनित्यानन्द और अद्वैताचार्य के बाद पद्म गोस्वामी-श्रीरूप गोस्वामी, सनातन

गोस्वामी, रघुनाथदास गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गापाल भट्ट, जीव गोस्वामी-वा स्यान् ह । ये सब गोस्वामी वंशजों में ही रहते थे, इन्हीं आचार्यों की प्रतिष्ठा के कारण ही वृन्दावन को इतना गौरव प्राप्त हुआ । इन पट गोस्वामियों के लिये भगवान की लीला का प्रचार ही प्रधान लक्ष्य था । अतएव उन्होंने लीला सम्बन्धी बहुत ग्रन्थों की रचना की । ये केवल धर्म प्रचारक और रचयिता ही न थे प्रत्युत प्रकाण्ड दार्शनिक भी थे । इन्हीं के स्तुत्य प्रयास के कारण दशान के गम्भीर तत्त्व साहित्य के माध्यम से अभिनव रूप में प्रस्फुटित हुए ।

वैष्णव कवियों की वाणी में राधाकृष्ण कथा का विस्तार—

सभी गौडीय-वैष्णव रचयिताओं ने राधाकृष्ण प्रेम का ही अपने काव्या तथा प्रकीर्ण पदा का वर्णन विषय बनाया । अतएव उस कथा का नूतन और आकर्षक बनाए रखने के लिए उसमें नए तत्वों के समावेश की बहुत आवश्यकता थी, समय व साथ ही साथ राधा-कृष्ण की लीलाओं में भी विस्तार होता चला । जयदेव के पूर्ववर्ती राधा कृष्ण विषयक पदा में जिन लीलाओं का आभास मिलता है जयदेव ने अपनी नवोपेक्षालिनी प्रतिभा द्वारा 'गीतगोविन्द' में उनका बहुत कुछ विस्तार किया । वहीं लीलाएँ विद्यापति चण्डीदास में विभिन्न रूपा में पल्लवित हो उठी । चण्डीनाम ने दान-लीला^१,

^१ दान-लीला का प्रसंग इस प्रकार है—

कृष्ण राधा के प्रेम में आत्मविभोर हैं परन्तु राधा कृष्ण को प्रेम देने से अनिच्छुक अथवा भयभीता है । मिलन का कोई अन्य अवसर सुरुभ न पा मथुरा जाने वाले भाग अथवा गोवर्द्धनपर्वत पर (कुछ लोगों का मत) कृष्ण राधा से मिलने वाले के लिए खड़े होते हैं । उधर राधा अपनी सखियों सहित दूध-दही बेचने के लिए मथुरा अथवा किसी उत्सव के उपलक्ष्य में गोवर्द्धन पर्वत पर दूध चढ़ाने के लिए (अथ मतानुसार) जाती है । तब दान मानने के छत्र से कृष्ण पथ अवरोध करत हैं । कुछ देर तक वाक-युद्ध चलता रहता है । अन्त में अनिच्छापूर्वक राधा आत्म-समर्पण कर ही देती है ।

दान प्रसंग के मूल रूप में किसी प्रकार की वासना का लगाव नहीं था कृष्ण तथा श्वाल-वाला का दूध-दही ल जानी हुई गाप वालाओं के स्नायुपेय पत्थरों के ही प्रति सहज बाल मुल्भ लोभ था गोपवधुआ का प्राप्ति से, प्रेम-तृप्ति का लक्ष्य नहीं था । 'वृन्दावनवास क चतन्य भागवत और मायव भट्ट के लाला वाक्य से इसका

गौड़ीय सम्प्रदाय में परकीया भाव की सर्वश्रेष्ठता—

यह बात विशेष ध्यान देने की है कि गौड़ीय-वैष्णवों ने भगुर रस की यथा नभव पुष्टि के लिए ही राधा-कृष्ण कथा में नई घटनाओं की योजना की। गौड़ीय-वैष्णवों द्वारा 'परकीयावाद' की स्थापना के पीछे भी इसी ध्येय की प्रेरणा थी। परकीया प्रेम में स्वकीया की तुलना से अधिक त्याग कष्ट सहिष्णुता, अवीरता होने के कारण कृष्ण भक्ति के लिए श्री चैतन्यदेव को परकीया-प्रेम ही आदर्श प्रतीत हुआ। अतएव कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्य-चरितामृत' में परकीया भाव को भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। पर उत्तर-भारत के वैष्णवों (वल्लभ-संप्रदायी) को यह भाव किमी प्रकार भी मान्य नहीं था, उन्होंने इस मत का प्रचण्ड रूप में विरोध तथा वण्डन किया।

वल्लभ-संप्रदाय में बाल-कृष्ण—

१६ वीं शताब्दी में उत्तरप्रदेज में गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का मनसामयिक वल्लभाचार्य प्रवर्तित वल्लभ-सम्प्रदाय जोर पकड़ रहा था। वल्लभाचार्य ने 'बालकृष्ण' की उपासना का ही प्रचार किया था। तत्कालीन वल्लभ-सम्प्रदायी विशेषतः अष्टछाप कवियों—सूरदाम, नन्ददास, परमानन्ददास, कृष्णदाम कुम्भनदाम, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास, छोट स्वामी—के बाल-कृष्ण मन्वन्वी बाल-श्रीलाओं के पद भारतीय साहित्य में अनुत्तनीय हैं। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य के पुत्र आचार्य विठ्ठलनाथ ने 'वल्लभ-सम्प्रदाय' में युगल स्वरूप की उपासना को प्रवर्तित किया। संभव है, विठ्ठलनाथ इस विषय में चैतन्य सम्प्रदाय से प्रभावित हुए हों। किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में राविका सर्वत्र स्वकीया 'स्वामिनी' रूप से ही विराजित हैं, गौड़ीय वैष्णवों का परकीया तत्त्व इन्हें मान्य न हुआ।

श्रीकृष्ण के शौर्य-पक्ष की क्रमशः क्षीणता—

सम्पूर्ण द्वारा प्रवाह को लक्ष्य में रखते हुए विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाना है कि बहुत आरम्भ में श्रीकृष्ण की ऐश्वर्य गरिमा से पूर्ण देव रूप की ही प्रधानता थी, क्रमशः काव्य-साहित्य के प्रभाव में राधा-कृष्ण कथा में भगुर और वात्सल्य पक्ष ही प्रबल हो उठा। उनमें भी माधुर्य के सर्वव्यापी प्रसार के कारण ही श्रीकृष्ण की पराक्रम-शीलता और शौर्य के पक्ष की पूर्ण अवहेलना हुई। आगे चलकर इसका परिणाम बहुत ही बुरा हुआ। माधुर्य-भाव

प्रधान कृष्ण भक्ति में ऐश्वर्य-बोध के लिये कोई स्थान नहीं था, जिससे दास्य भावना बिल्कुल दब-सी गई। जिसके फलस्वरूप कृष्ण भक्ति में क्रमशः आत्मश और पवित्रता की भावना का अभाव होता गया जिससे जनता भक्ति के निम्न आध्यात्मिक पक्ष को भूल कर भौतिकता की ओर बढ़ चली। उस समय के शक्तिहीन राजाओं और विलासी बादशाहों की प्रवृत्ति ने उस साहित्य को और भी उत्तेजित किया। फलस्वरूप मुस्लिम शृंगारी साहित्य को प्राप्ताह्न मिटने लगा। कृष्ण चरित में सब रसा की सामग्री रहने हुए भी कविगण उमका उपभोग नहीं कर सके, या कहना चाहिए कि उस भाव धारा का मोड़ने की शक्ति उनमें नहीं थी। उन कवियों की विद्वत् भावना को फारसी काव्यधारा से भी भरपूर सुराक मिलती रही। जिससे राधा कृष्ण कथा से दबत्व की पवित्र भावना लुप्त हो चली और राधिका-बन्हाई सुभिरन को बहानो मात्र रह गया।

साहित्य चर्चा के साथ ही यदि शिल्प में विकसित राधाकृष्ण कथा के स्वरूप पर विचार न किया जाए तो प्रसंग अधूरा ही रह जाएगा। राधा कृष्ण का मूर्ति-कला तथा चित्रकला पर प्रभाव साहित्य की तुलना में कुछ कम महत्व का नहीं।

श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी मूर्तियाँ—

श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी मूर्तियाँ की चित्रों से पहले उपलब्धि के कारण शिल्प की चर्चा मूर्तियाँ से ही आरम्भ की जाएगी। पुरातत्व विद्या का कहना है कि प्रथम अथवा द्वितीय सन् ईसवी में पूर्व श्रीकृष्ण-कथा से सम्बन्धित कोई भी मूर्ति उपलब्ध नहीं, उसके पहले की मूर्तियाँ विष्णु मूर्ति हैं। सब प्रथम मयुरा में श्रीकृष्ण जन्म सम्बन्धी उभारदार मूर्ति (रिलीफ) का एक खंड प्राप्त हुआ। रायबहादुर दयाराम सहानी ने उसका समय प्रथम से द्वितीय सन् ईसवी के बीच का अनुमान किया है^१। चौथी सन् ईसवी के बाद से श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी मूर्तियाँ पर्याप्त मात्रा में गड़ी जाने लगी, ऐसा उपलब्ध सामग्री के आधार पर विद्वानों का अनुमान है। मदौर में दो भग्न द्वार-स्तम्भ प्राप्त हुए हैं जिनमें गोवर्द्धन धारण नयनीत चौथ, धक्क भग धेनुक-बन्ध और कालियदमन की लीलाएँ उत्कीर्ण हैं, विद्वानों ने इसका निर्माणकाल चौथी या पाचवी सन् ईसवी माना है। मयुरा में गोवर्द्धनधारी

^१ आर्कैआलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, १९२५-१९२६।

कृष्ण की बलुआ पत्थर की एक सुन्दर कलापूर्ण मूर्ति प्राप्त हुई है, सभ्यत-यह चौथी सन् ईसवी की है। महावलीपुरम् में भी गोवर्द्धनवारी श्रीकृष्ण की एक सुन्दर उत्कीर्ण मूर्ति मिली है। गोवर्द्धनवारी कृष्ण की एक मूर्ति काशी के एक टीले में पाई गई थी, अब सारनाथ के संग्रहालय में सुरक्षित रखी हुई है। इसमें भी कृष्ण का अकन बड़ा उदात्त और ओजपूर्ण हुआ है। वे गोवर्द्धन-पर्वत को सहज में 'कंदुक-इव' धारण किए, तने हुए दृढ़ता से खड़े हैं^१। इन उपलब्ध मूर्तियों से ऐसा अनुमान होता है कि श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन-वारण की लीला ही उस समय सर्वाधिक लोकप्रिय रही होगी, साथ ही यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि साहित्य के समान शिल्प भी इसी की साक्षी देता है कि आरम्भ में श्रीकृष्ण के पराक्रम की ही चर्चा प्रचलित थी।

वादासी गुफा के श्रीकृष्ण-लीला विषयक उत्कीर्ण भीति-चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है, इनका समय विद्वानों ने छठी से सातवी शती सन् ईसवी के बीच का अनुमित किया है^२।

बंगाल के राजशाही जिले के पहाडपुर की खुदाई में कृष्णलीला की अनेक मूर्तियाँ निकली हैं जो एक से एक सुन्दर और सजीव हैं। वेनुक-वध और कृष्ण का किसी गोपी के साथ प्रेमालाप की मूर्ति ही इनके दो विनिष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। इनका निर्माण काल ७ वी शती सन् ईसवी माना गया है^३। गोपी मूर्ति के सम्बन्ध में श्री सुनीतिकुमार चटर्जी का अनुमान है कि श्रीकृष्ण के साथ अन्य स्त्री मूर्ति राधा ही होगी। पर 'भक्तिरत्नाकर' और 'प्रेम-विलास' काव्य से इस मान्यता के विरुद्ध साक्ष्य मिलता है, इन ग्रन्थों के अनुसार नित्यानन्द प्रभु की स्त्री जाह्नवी देवी जब वृन्दावन गई तो वे डम वात से अत्यन्त दुःखी हुईं कि श्रीकृष्ण के साथ राधा-मूर्ति की

^१ श्रीरायकृष्णदास 'भारतीय मूर्ति-कला' पृ० ९९।

^२ द्रष्टव्य—आर० डी० वैनर्जी वास रिलीफ आफ वादासी, आर्कै-ओलाजिकल सर्वे आफ इंडिया मेमोयर, जी० सी० चन्द्रास नोट एण्ड प्लेट इन दी आर्कैओलाजिकल सर्वे आफ इंडिया एनुअल रिपोर्ट, १९२८-२९।

^३ द्रष्टव्य—'नोट्स ऑन दी पहाडपुर रिलीफ्स'—के० एन० दीक्षित, आर्कैओलाजिकल सर्वे आफ इंडिया एनुअल रिपोर्ट, १९२६-२७।

उपासना क्या नहीं होती। अतएव यहाँ से लौटते ही मूर्तिकार नयान भाप्पर से कुछ राधा-मूर्तियाँ बनवाकर जाह्नवी दबी ने वृंदावन भेजी। जीव-गोस्वामी के आदेशानुसार ये मूर्तियाँ कृष्ण पार्श्वस्थिता की गइ और तभी से युग-स्वरूप की उपासना होने लगी। तब से बगाल में विष्णु या बाल गोपाल की मूर्तियों के अतिरिक्त अकेली कृष्ण मूर्ति की पूजा नहीं हाती^१। भारत से बाहर के देशों में कृष्ण लीला के चिह्नावशेष—

भारत से बाहर अकोरवाट के मन्दिर में शिलापट्टा पर उत्कीर्ण कृष्ण लीला के चित्र सजीवता के कारण विशेष उल्लेखनीय हैं। अकोरवाट का प्राचीन नाम यशोदाधरपुर था, यह कंबोडिया देश की पुरानी राजधानी थी। १२ वाँ शती के आरम्भ (लगभग ११२५ ई०) में सम्राट सूय वमन द्वारा बनवाए गए विशाल मन्दिर के शिलापट्टा पर रामायण और महाभारत के दृश्यों से दृश्य उत्कीर्ण होने के कारण ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मन्दिर के मध्य के दक्षिणी-पश्चिमी कोने में कृष्ण की बाललीला के कई दृश्य उत्कीर्ण हैं उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं—

(१) यमलार्जुन उद्धार—चकित यशोदा के सामने बालकृष्ण घिसटत हुए देख रहे हैं। पीछे दो गोपियाँ खड़ी हैं। उनके पीछे बाइ और यमलार्जुन वृक्ष और उनसे उत्पन्न कुबेर के दो पुत्र नलकूबर और मणिप्रीव बने हैं।

(२) गावद्वनधारी कृष्ण—यह दृश्य बड़ा प्रभावोत्पादक है। कृष्ण की मूर्ति सबसे बड़ी है। बीच में खड़े हुए व दाहिने हाथ के ऊपर पवत उठा रहे हैं, बाएँ हाथ में एक माडदार छड़ी है। उनके समीप एक सखा है। नीचे दो पकितियाँ में ग्वाल-बाल और गाय-बछड़े अत्यन्त चकित मुद्रा में भक्ति भाव से कृष्ण की ओर देख रहे हैं। और कुछ उन्हें प्रणाम कर रहे हैं।

(३) एक ही शिलापट्ट पर उत्कीर्ण दो दृश्यों में एक दावानल आचमन का है और दूसरे में कृष्ण प्रलवासुर का वध कर रहे हैं। कृष्ण का रूप चतुर्भुज है। हिरण्य-वाघ आदि जंगली जीव घबरा कर भाग रहे हैं आग की लपटें बढ़ रही हैं, कृष्ण अविचल भाव से अग्नि की आर देख रहे हैं।

(४) इंद्र के लिए जो भोज्य-पदार्थ लाए गए थे, उन्हें कृष्ण चतुर्भुजी रूप से प्रकट होकर खा रहे हैं। ग्वाल बाल भक्ति भाव से उन्हें प्रणाम कर रहे हैं^२।

^१ श्रीमदुत्तम सन हिस्ट्री आफ ब्रजवुलि लिटरेचर' प० ४८०-४८१।

^२ पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ 'अकोरवाट के मन्दिर में कृष्णलीला के दृश्य'—श्रीवासुदेव गरण अग्रवाल पृ० ७९९।

यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि अंतोरवाट के मन्दिर में उन्नीस कृष्ण-लीला के दृश्य उन नथ्य की गवाही देने हैं कि उन समय कृष्ण-लीलाएँ इतनी सर्वप्रिय थीं कि उनका प्रचार तथा प्रचार भारत ही नहीं भारत में बाहर के देशों में भी काफी हो चुका था। तभी तो अकारवाट के मन्दिर में इतने मजीब और गुन्दर श्रीकृष्ण लीलाओं के दृश्य उत्कीर्ण होने सम्भव हुए। उन शिलापट्टों पर उत्कीर्ण श्रीकृष्ण-लीला के चित्रों में कृष्ण के वीर देवत्व प्रधान पक्ष की ही प्रशंसा है।

चैतन्य-चरितामृत में श्रीकृष्ण-लीला विषयक मूर्तियों का उल्लेख—

श्रीकृष्ण लीला विषयक मूर्तियाँ १६ वीं शताब्दी तक गयी जाती रही, इसका प्रमाण 'चैतन्य-चरितान्त' ग्रन्थ से मिलता है। महाप्रभु चैतन्यदेव के गौड के पास कानाइर नाटशाला ग्राम में श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी कुछ उत्कीर्ण चित्र देखने का उल्लेख है^१।

अब भी न जाने कितनी ही श्रीकृष्ण लीला-विषयक गुन्दर मूर्तियाँ घरती के गहन-नाम में छिपी पड़ी हैं जिनका पुरातत्व वेत्ताओं तक को कुछ पता नहीं।

चित्रकला में श्रीकृष्ण-लीलाएँ—

१५ वीं शताब्दी में साहित्य के साथ ही चित्रों में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं की बड़ी मांग हुई। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि भक्तों को स्तुति साहित्य के साथ ही अपने इष्टदेव की विविध लीला सम्बन्धी चित्रों की बड़ी आवश्यकता थी। जैनैतर मन्त्रियों में बाल-नोपाल स्तुति की एक प्रति बोस्टन संग्रहालय में, दूसरी गुजरात के श्री भोगीलाल जयचन्द्र साडेसरा के संग्रह में है। यह चित्र १५ वीं शताब्दी के राजस्थानी चित्र शैली में अंकित है ऐसा विद्वानों का मत है। राजस्थानी चित्रशैली में श्रीकृष्ण लीलाओं की प्रमुखता है।

१६ वीं शताब्दी में वैष्णव पुनरुत्थान के कारण ब्रज में श्रीकृष्ण लीलाओं के चित्र खूब रचे गए। श्री रायकृष्णदान जी का अनुमान है कि श्रीकृष्ण के रसीले मोहक स्वरूप के चित्रण में ही सबसे पहले कटावदार आँखों का आलेखन हुआ होगा। आज भी नाथद्वारा के चित्रों में यह विशेषता विशेष

^१ प्रायः चलि आइला प्रभु कानाइर-नाटशाला ।

रूप में देखी जाती है। ये चित्रकार बल्लभ सम्प्रदायी हैं, तायद्वारा के पहले इनका मुख्य केन्द्र श्रवण था।

१७ वीं शताब्दी में अकबर की शान्तिप्रिय नीति के फलस्वरूप सम्पूर्ण दशमर में नवचेतना का आलोक-सा फल गया। सांस्कृतिक पुनरुत्थान में चित्रकला ही आरंभ भी लागू प्रवृत्त हुई। मूर्तिकला का अन्त १२ वीं शताब्दी में ही हो गया था, फिर उसका पुनरुत्थान न हो सका। इसका एकमात्र कारण तत्कालीन शासकों की नीति ही थी, वे हिन्दू देव-देवी की मूर्तियाँ तथा मंदिरों को सहन नहीं कर सकते थे। सौभाग्य से शासकों का चित्रकला के प्रति यह भाव नहीं था प्रत्युत मुसलमान शासकों (बाद के कई) की ओर से इसे प्रेरणा मिली, जिससे चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ। १७ वीं शताब्दी में चित्रों के उत्थान काल में राधा-कृष्ण लीला विषयक चित्रों में काफी पुष्टता आई।

बुन्देला उत्थान के कारण बुन्देलखण्ड में भी हिन्दू-संस्कृति को नया जीवन मिला। वहाँ भी राजस्थानी शैली में कृष्ण-लीला के बहुत चित्र बने पर उन चित्रों में कला की वारीकी और सौन्दर्य का अभाव रहा। विद्वानों ने इनका समय १६४० सन् ईसवी अनुमान किया है।

महाराज वीरसिंह देव के ओडिशा और दक्षिण के महलों में काश्मीर शैली के कृष्ण-लीला विषयक भी चित्र बने हैं। ऐसा मालूम होता है कि अपने प्रासादों को अलङ्कृत करने के लिए महाराज ने काश्मीर से कारीगर बुलवाए थे।

१८ वीं शताब्दी तक राजस्थानी शैली का पूर्ण विकास हो चुका था। इन चित्रों का विषय मुख्यतः श्रीकृष्ण लीलाएँ और केशव और विहारा के ग्रन्थों पर आधारित नायिका भेद था। इस युग में इन विषयों के अनेक सचित्र ग्रन्थ भी बने। इस समय मेवाड़ राजस्थानी शैली का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा। मेवाड़ शैली में कुछ बड़ी चित्रमालाएँ प्राप्त हैं जिनमें एक कृष्ण-लीला सवधी चित्रमाला बहुत बड़े आकार में है, इसका चित्रण अत्यन्त सुन्दर है। सूरसागर पर आधारित शायद एकमात्र चित्रमाला भी इसी शैली में है।

राजस्थानी शैली का एक मुख्य केन्द्र जयपुर भी था। वहाँ के इस समय के रास-मण्डल और गावदहन धारण के चित्र बड़े सुन्दर और सजीव हैं। जोधपुर, बीकानेर, बूंदी और नाथद्वारा में भी श्रीकृष्ण लीला विषयक सुन्दर चित्र बने।

दतिया के राजा शत्रुजीत (१७६१-१८०१ ई०) के समय वृन्देलखण्ड का सांस्कृतिक विकास पूर्णता पर पहुँचा। उस समय देव के 'अष्टयाम' 'विहारी-सतमई, और मतिराम के 'रमराज' की पूरी चित्रावली और धार्मिक चित्र बड़ी सख्या में तैयार हुए।

उस समय राजस्थानी शैली राष्ट्र शैली थी। इन चित्रों के विषय मुख्यत गीतगोविन्द, भागवत, महाभारत, रामायण, रागमाला एवं नायिका भेद हैं। १८ वीं शती का मध्य इस शैली का उत्कर्ष काल है, जिसके मुख्य उदाहरणों में से १६३० ई० के मानकू चित्रकार की बनाई 'गीतगोविन्द' चित्रावली है जो आजकल लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित रखी हुई है।

पहाड़ी शैली में भावना और वास्तविकता का सुन्दर मेल रहता है। पहाड़ी शैली के उत्कृष्ट नमूने के रूप में कृष्ण का कालिय-दमन संवदी एक चित्र भारत कला-भवन संग्रह, बनारस में सुरक्षित रखा है। अत्यन्त पराक्रम से किशोर कृष्ण ने दुर्दान्त कालिय को दबा रखा है और सहज भाव से उस पर नाच रहे हैं। नृत्य में गति है। उनके पैरों से दक्कर कालिय पिसा जा रहा है। नाग-वालाएँ उसकी प्राण-भिक्षा माग रही हैं। घटना की भीषणता से भयभीत और कालिय के विष से प्रभावित ग्वाल वृन्द तथा गायें तट पर मूर्च्छित पड़ी हैं।

कृष्ण-लीला में गीतिकाव्यात्मक दृश्य भी देखते हैं साथ ही ग्राम-जीवन का भी सरस चित्रण हुआ है। पहाड़ी शैली ने पौराणिक-साहित्य, ऐतिहासिक-नाथा, लोक-कथा तथा हिन्दी की प्रमुख रचनाओं से विषय चुने। उनकी प्रत्येक रेखा में जीवन, स्पन्दन और प्रवाह रहता है, इनमें अत्यधिक मौलिकता है। अजन्ता के बाद पहाड़ी शैली में ही भारतीय कला का अत्यन्त उत्कर्ष दिखता है।

कागडा के राजा ससार चन्द्र (१७७४-१८२३ ई०) का समय पहाड़ी कला का स्वर्णयुग है। १८२८ ई० में ससार चन्द्र की दो कन्याओं के गडवाल नरेश से विवाह के अवसर पर काँगड़ा के चित्र और चित्रकार भी दहेज में आए। दहेज में आए हुए चित्रों में 'गीतगोविन्द' और विहारी चित्रावली बड़ी ही सुन्दर और कोमल हैं^१।

^१ श्रीराय कृष्णदास. 'भारत की चित्रकला' के आवार पर चित्रकला में श्रीकृष्ण लीलाओं का विवरण दिया गया है।

यहा एक बात ध्यान देने की यह है कि चित्रा की विषय-वस्तु पूणतया साहित्य पर आधारित होने के कारण चित्र-कला में श्रीकृष्ण का शृगारी, रसिक रूप ही अपेक्षाकृत अधिक निररा ।

(३) वल्लभ और चैतन्य से पूर्व का वैष्णव-काव्य साहित्य

(क) सूर से पूर्व ब्रजभाषा का वैष्णव काव्य साहित्य—

पिछले अध्याय में ससृृत, प्राकृत, अपभ्रश साहित्य की क्रमान्विति के बीच राधा-कृष्ण-वचन का स्वरूप पर विचार किया । अब इस अध्याय में पहल वल्लभ से पूव के ब्रजभाषा तथा बाद में चैतय-पूर्व वगीय वैष्णव-साहित्य विषयक आलाचना मक्षेप में प्रस्तुत की जाएगी ।

प्राचीन ससृृत, प्राकृत, अपभ्रश साहित्य में दूढने पर कृष्ण-लीला विषयक पदसाहित्य का पता मिलना सरल है पर ब्रजभाषा में सूर से पूव के श्रीकृष्ण लीला विषयक काव्य-साहित्य की प्राप्ति कठिन ही है । उसका एकमात्र कारण यही है कि सूर की असाधारण काव्य प्रतिभा की उमङ्गती वेगवती धारा ने परम्परा की क्षीणधारा को आत्मसात् कर लिया फिर क्रमशः साहित्य के इतिहास से उसकी अवस्थिति के चिह्न भी धुल गए । आज बहुत छान चीन के बाद साहित्य के किसी काने स उम विच्छिन्न सूत्र की कोई एक टूटी कडी हाथ लग जाता है जिसके सहारे परम्परा-सूत्र का सुशृंखलित रूप में जाडवर उपस्थित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । अतः यहा उन दो चार उपलब्ध टूटी कडियाँ का विच्छिन्न रूप में ही उपस्थित किया जा रहा है ।

गोस्वामी विष्णुदास—

गोस्वामी विष्णुदास दूंगरे-दत्तसिंह तोमर (सन ईसवी १४२४-१४५५) के समकालीन थे । इनका रचनाकाल सा १४३५ ई० के लगभग माना जाता है^१ । विष्णुदास ने रविमणी-मंगल की रचना की जिसमें प्रचुर परिमाण में उनके पद मिलते हैं । रागरागिनिया में बचे हुए ये पद मध्यदेश के १५ वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक की पद-परम्परा के विकास के सुन्दर नमून हैं ।

^१ हरिहरदास द्विवेदी 'मध्यदेशीय भाषा (ग्यालियरी)', पृ० ७८ ।

नेयपद-रचयिता के अतिशक्ति हिन्दी प्रबन्ध काव्यों के भी विष्णुदास १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के बहुत बड़े रचयिताओं में से हैं। बड़े वेद या विषय हैं कि यद्यपि विष्णुदास के ग्रन्थों का पता गोज रिपोर्ट में सन १९१२ में ही लग गया था परन्तु इनका उल्लेख हिन्दी के किसी साहित्य-इतिहास में नहीं मिलता। विष्णुदास ने 'रुक्मिणीमंगल' के नेयपदों के अतिशक्ति महाभारत कथा, स्वर्गारोहण कथा, और मकरध्वज कथा ग्रन्थ लिखे हैं। इनके तीन ग्रन्थ दत्तिया के राजकीय पुस्तकालय में हैं और दो गगन संग्रह ग्वालियर के श्री भा० रा० भालेराव जी के संग्रह में पड़े हैं^१। विष्णुदास के सम्बन्ध में कुछ उल्टा-सीधा उल्लेख मित्रबधु विनोद में अवश्य मिलता है^२। यद्यपि विष्णुदास गायक और कथावाचक मात्र थे पर नसार का उन्होंने पटना दृष्टि ने निरीक्षण किया था इनका प्रमाण उनके ग्रन्थ में पाए हुए वर्णनों में मिलता है। उन्होंने दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि उस समय उन भाषा का नूतनपात कर दिया जिसमें आगे हिन्दी के अनेक महाकाव्य लिखे गए।

विष्णुदास का पद-साहित्य—

'रुक्मिणीमंगल' में कुछ पद उदाहरण स्वरूप नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

राग गौरी

गुण गाऊँ गोपाल के चरण कमल चित लाय ।
मन इच्छा पूरण करो जो हरि होय सहाय ॥
भीषम नृप की लाडली कृष्ण ब्रह्म अवतार ।
जिनकी अस्तुति कहत हों मुनि लीजी नरनार ॥

श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाहोपरान्त विदाई का वर्णन :—

रागनी पूर्वी दोहा

विदा होय घनश्याम जू तिलक करे कुल नारि ।
तात मात रकमन मिली अखियन आंभू डारि ।
मोहन रुक्मिन ले चले पहुंचे द्वारका जाए ।
मोतियन चौक पुराय के कियो आरती माय ।
आज बघाई बाजे माई बसुदेव के दरवार ।
मनमोहन प्रभु व्याह कर आए पुरी द्वारका राजै ।

^१ हरिहरनिवास द्विवेदी : 'मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी)' पृ० १३६ ।

^२ प्रथम भाग, तृतीय संस्करण, स० १९८६ वि०, पृ० २४१-२४२ ।

अनि आनन्द भयो ह नगर में घर घर मगल गाई ।
 अगन तन में भूपन पहिरे सब मिलि करत समाज ।
 बाजे बाजत कानन सुनियत नौवत घन ज्यू बाज ।
 नर नारिन मिलि देत बघाई सुख उपजे दुख भाग ।
 नाचत गावत मृदग बाज रग बसावत आज ।
 विष्णुदास प्रभु की ऊपर कोटिक ममथ राज ।

कृष्ण रक्मिणी के साथ विलास में मगन ह —

पद

मोहन महलन परत विलास ।
 कनक मंदिर में खेलि करत ह और षोऊ नहि पास ।
 रुक्मिन चरन सिराय पिय के पूजो मन की आस ।
 जो चाहो सो अवे पावो हरि पत देवकी साथ ।
 तुम यिन और न षोऊ मेरो घरणि पताल अकास ।
 निस दिन सुमिरन करत तिहारो सब पूरन परबास ।
 घट घट ध्यापक अतरजामी त्रिभुवा स्यामी सत्र सुखरास ।
 विष्णुदास रक्मन अपनाई जनम जनम की दास^१ ।

इन पद्य की देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि ये पद और इनकी प्रवाह मयी भाषा आगे के वष्णव-काव्य की संभावनाएँ अपने में छिपाए हुए थीं ।

बैजू बावरा—

गान प्रवाह बैजू बावरा की जावनी अभी तक प्रकाश में नही आई । इनके सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ तो प्रचलित हैं पर प्रामाणिक सामग्री का अत्यन्त अभाव है ।

बजू बावरे का असली नाम वृजलाल था । ये एक साधु थे और बन्दावन में यमुना के किनारे रह कर भक्ति में तल्लीन रहते थे । इनकी तल्लीनता के कारण ही लोग इन्हें बावरा कहा करते थे^२ ।

बजू बावरा के समय के सम्बन्ध में कई जनश्रुतियाँ हैं । एक के अनुसार

^१ गडवापुर, जिला सीतापुर के ५० गणपनलाठ दूबे की प्रति से (काग रिपोट १९०६-२८, पृ० ७५९-७६०) ।

^२ नमोस्वर चतुर्वेदी 'संगीतक कवियों की हिन्दी रचनाएँ पृ० १५० ।

अमीर खुसरो से होड़ लेने वाले संगीतज्ञ गोपाल नामक वैजूवावरा के शिष्य थे, यदि इसे ठीक माना जाए तो वैजू वावरा का समय १३ वी-१४ वी शताब्दी ठहरता है। दूसरी इन्हें तानमेन का प्रतिद्वन्दी और गुरुभाई मानती है, इसके अनुसार वैजू वावरा अकबर कालीन हुए। 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वैजू वावरा का समय तानमेन से कुछ पूर्व माना है^१। तीसरे मत के अनुसार यह समय पहले और दूसरे के बीच में पड़ता है।

वैजू वावरा की जीवनी विषयक अन्य उपलब्ध सामग्री द्वारा भी तीसरे मत का ही समर्थन होता है। घटना इस प्रकार है—हुमायूँ ने गुजरात को विजय कर लेने के बाद चापानेर नामक नगर में कल्लेआम की आज्ञा जारी कर दी। उस आज्ञानुसार सेनाधिकारियों की पकड़ में सबसे प्रथम जो व्यक्ति आया वह गानयोगी वैजू वावरा ही था। वह तो अपनी सिद्धावस्था के कारण पकड़े जाने पर भी निर्विकार ही रहा। किन्तु पकड़ने वाला सेनाधिकारी उसकी असाधारण कला से परिचित था। उसके प्राण हरण करने में उस अधिकारी को अतिशय दुःख हो रहा था। अतः किसी प्रकार साहस बटोर कर वह वैजू वावरा को साथ लेकर वादशाह के सामने उपस्थित हुआ और उनमें यह कह उसे प्राणदान देने की याचना की कि 'हुजूर! ऐसा गुणी गायक फिर पैदा नहीं होगा।' हुमायूँ ने यह सुन कर वैजू वावरा से कुछ गाकर मुनाने को कहा। वैजू वावरे का दिव्य संगीत जितनी देर तक चलता रहा, तब तक वादशाह की आंखों के आँसू थमे नहीं। अत्यधिक प्रभावित होकर वादशाह ने वैजू वावरे से इच्छानुसार कुछ माग लेने का अनुमति किया। सब प्रकार से निःस्पृह वैजू वावरे ने और कुछ न माग कर केवल कल्लेआम बन्द करा देने की याचना की। वादशाह ने तत्काल तदनुसार आज्ञा दे दी। वादशाह के कुछ और मांग लेने का आग्रह करने पर वैजू वावरे ने गुजरात के मुल्तान बहादुरशाह एवं उनके अन्य अधिकारियों को कारागार से मुक्त कर देने की माग की। हुमायूँ ने वह माग भी तत्काल पूरी की। इस पर उनके कुछ सिपहसलार विगड़े कि एक पागल के कहने से दुश्मन को कैद से छोड़ दिया जाना कहा तक उचित है। किन्तु हुमायूँ ने कहा कि—

'इस समय यदि वैजू वावरा गुजरात का तख्त भी माग लेता तो मैं सहर्ष दे

^१ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० १६८।

देता। क्याकि उसने अपने गायन द्वारा मुझे जो आनन्द दिया है, वसा आनन्द मुझे दिल्ली का तस्त मिलने पर भी नहीं मिला था^१।

उक्त घटना ने सिद्ध होता है कि हुमायू के समय में ही वैजू वावरा प्रौढ रहे हगें। अत अकबर के समय में जब तानसेन की प्रसिद्धि हुई तब यदि वैजू वावरा रहे भी हगें तो अतिशय बढ हगें, तानसेन के समवयस्क या छाटे तो नहीं हा हगें।

वैजू वावरा के पद—

वजू वावरा का उल्लेख हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में नहीं मिलता, केवल रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास^२ में वैजू का एक पद उद्धृत हुआ है। वैजू वावरे के पद गीतों के सकलन-ग्रन्थों में सगृहीत ह। वण्य विषय की दृष्टि से ये पद कुछ सगीत शास्त्र विषयक तथा अधिकांश अवतारा की स्तुति सम्बन्धी हैं उनमें से भी श्रीकृष्ण विषयक पद ही संख्या में अधिक ह। मन की उमग, मस्ती की धुन में मस्त वजू ने समय समय पर जिन प्रकीर्ण पदा की रचना का उनमें उसवे भवन हृदय की ही चल्क मिलती है। यहाँ श्रीकृष्ण सम्बन्धी कुछ पदा को उद्धृत किया जा रहा है —

ब्रज में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया —

जयतश्री-ताल चौताल

ऐरी अब आनन्द भयोरी ब्रज में श्रीकृष्ण जनम लियो आज।

गुभ घरी शुभ दिन शुभ ही महरत प्रगट भए ब्रजराज ॥

ब्रह्मा वेद पढ़त महादेव दगन आए नाचत गोपी

ग्वाल नारद वीण बजाए स्वर साज।

बजू नव महोत्सव देख मगन भए पूजे मन इच्छा सुर नर मुनि काज ॥^३

नन्द के आगन में कृष्ण के दगनाभिलाषियों की भीड लग गई —

आगन भीर भई ब्रजपति के आज नव महोत्सव आनन्द भयो।

हरद दूय वधि अशत रोरी ले छिरकत परस्पर गावत मगल चार नयो ॥

^१ 'मिरात सिक्दर' में यह घटना वर्णित ह। प० ओकारनाथ ठाकुर ने इसका अनुवाद सावरमती आश्रम में देखा था। उही से यह सूचना मिली है।

^२ पृ० १६८, संगाधित और प्रवर्द्धित सस्वरण, स० २००३ वि०।

^३ रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग) १, पृ० २५७।

ब्रह्मा ईश नारद सुर ननु मुनि हरपित विमानन पुष्प वरन रंग दयो ।
धन धन वैजू सन्तन हिन प्रगट नन्द जसोदए सुग जो दयो^१ ॥

प्रथम दर्शन मात्र में कृष्ण की मन मोहिनी माधुरी मति ने राधा या किमी गोपी को आत्मविग्नमृत कर दिया, उमी दया और उस अपूर्व रूप का वर्णन वह सखी ने कर रहीं हैं —

भरव-चीताल

आज सखी लखी मनमोहिनी भूरत माधुरी मुन्दर चतुर मुजन कान्ह ।
सीस मुकुट श्रवण कुंडल धुंधवारी अन्क झलक

चन्त चान् हुनक हुनक अधरन मुरली बगई तान ॥

भूली सुध दुध मव गृह काज टार दियो दिसरि गयो

खान पान लखि मन मोहन चतुर मुजान ।

वैजू बावरी रावरी कर उरी मोही

न नुहान आन त्याग देई कुलवान^२ ॥

प्रथम दर्शन ने मन पर जो जादू डाला उनके परिणामस्वरूप तन-मन उसी क्षण से 'उसी का' हो गया, अब स्थिति यह है कि जागते-मोते, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष में केवल 'वही माधुरी भूरत' —

आज सपने में माधुरी मलोनी भूरत देखी सनन करी मोनों बात ।

तब ते में बहुत सुख पायो जागत भई परभात ॥

मधुर वचन बोल मदन मत्र पह डारी

उन दिन छिन पल नछू न सोहात ।

वैजू के ब्रज की नारी जन्त्र तन्त्र लिखि सारी

कल न परत गात सब दिन रात^३ ॥

रूप-दर्शन ने तो गोपियों के मन-नयन विक ही चुके थे अब मुरली की तान ने मन पर और जुलुम डाय। अबला गोपिया तो गोपिया, इन्द्रियजीत मुनि, जड-चेतन सब मुरली की दिव्य स्वर लहरी से मन्त्र-मग्न थे —

मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहन तें गोपी रीक्षि रही रसतानन सों ।

सुध दुध सब विसरई धुनसुन मन मोहे मगन भई देखत हरि आनन ॥

^१ रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग), ३, पृ० २५७-२५८ ।

^२ वही, १, पृ० ७१ ।

^३ वही, २, पृ० ७१ ।

जीव जतु पशु पच्छी सुर नर मुनि मोहे हरे सब के प्रानन ।
 बज्र बनवारी बसी अधरधरी बूदावनचद बस किए सुनत ही कानन^१ ॥
 रास करने समय के कृष्ण क अदभुत रूप और उमके प्रभाव का वणन
 एक गोपी अपनी सखी से कर रही ह —

मूलतानी घनाश्री

कुजन मघ रच्यो रास अदभुत गत लिए गोपाल

कुडल की झलक देख फोटि मदन ठठक्यो ।

अधर तो तुरग रग बासुरी गुहाय सग टेडी छवि

देख देख मेरो मन अटक्यो ॥

एरो अब देखो जाय ऐसे सा कहा बसाय

अल्पन की गत निरस शोष नाग सटक्यो ।

निरतत सगीतरी ततततयेई ततततयेई त्रिभगी

अगो रगी चाल देख इद्रघनुष पटक्यो ॥

रुनक शूनक नूपुर रुनक रुन शून रुन शनननननन

सननननन वगी बाजे मद मुख सों मटक्यो ।

रासविलास मुख की रास भनत बज्र सुन गोपाल

यह स्वरूप दरस परस वदावन का सटक्यो^२ ॥

राधा ने मान किया ह, किसी तरह दाल गलती न देख कृष्ण ने राधा
 की सखी का अपनी और मिला लिया, मखी बीच में पडकर दोनों में समझौता
 कराना चाहती ह —

भीमपलासी-चीताल

दोलीयो न डोलीयो ले आऊह प्यारी को

सुनोहो सुधरवर अब ही में जाऊह ।

माननी मनाय के तिहारे पास ल्याय के

मधूर बुलाय क तो चरण गहाऊह ॥

सुनरी सुदर नारि काहे करत एती रा

मदन डारत मार चलत पन गुशाऊह ।

मेरो सीस मान कर मान न करो तुम ऐसे

बनू प्रभु प्यारे सा बहिया गहाऊह^३ ॥

^१ रागवल्लभद्रुम (प्रथम भाग), ६, पृ० ४६ ।

^२ वही, ५७, प० २१५ ।

^३ वही, २ पृ० २१६ ।

राधा मान न करें तो क्या करें, देवारी प्रतीक्षा में पलक-भाबटे बिछाए
बैठी को बैठी ही रह जाती है उधर रमिक शिरोमणि नन्दशाल अपनी
'ढरकीही वानि' से वाज नहीं आने —

जयतश्री-ताल चौताल

मेरे नहीं आए हो नन्दलला जाओ क्यों न तिनके

ग्रह जिनके रस बस भए रहे सुख वाई रैन जागे ।

धन धन भाग सुहागनि सरस सुन्दर तिया रग

अंग अभूषण रग देखि ब्रजभूप प्रेम पागे ॥

तुम हो गोपाल जू बाल जाति अहीर बेपीर

परनारिन सों हिन चितरी तुमरे नैना लागे ।

बैजू प्रभु निडर डीठ लंगर डगर उगर घर घर

फिरत छैल लागे जाबक चिह्न रन चाखे मदन तें

मुल सदन देखो बदन ढीले आगे ॥^१

कृष्ण मयूरा चले गए, गोकुल में घना अन्वहार छा गया । राधा के प्राण
कृष्ण के मानिध्य के लिए तटप रहे है —

मूलतानी—ताल घमार

प्यारे विन भर आए दोऊ नैन ।

जब तें ब्याम गवन कीनो गोकुल तें नाहीं परत री चैन ॥

लगे न भूख प्याम न निद्रा मुख आवत नहीं बैन ।

बैजू प्रभु कोई आन मिलावै बाकी बलिहार चरन रैन ॥^२

हरि के गुण असीम, अपरम्पार हैं, विह्वल भक्त हृदय गा उठता है —

टोड़ी—चौताल

वरणन को कर सकत हरि के गुणानुवाद

शेष सहस्र शुक पावत नाहीं पार ।

सनक सनन्दन सनातन सननकुमार

ब्रह्मा शिव व्यास वारद नारद हाहाहुहु गान्धर्व

गावत नित नित नाम सार ॥

^१ रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग), १४, पृ० २५९ ।

^२ वही, १, पृ० २२३ ।

सुर नर मुनि सब रच गए पच गए

बाको मरम भेद कोउ ना जानत अपरम्पार ।

यजू बावरे प्रभु भक्तवत्सल ह सब जग के करतार ॥^१

नरहरि-हुमायू, गेरशाह, अकबर के दरबारी कवि—

मुगल बादशाहा में अधिकाश साहित्यिक, कला प्रेमी और सहृदय थे। बहूत से कवि और कलाकार रागाश्रय में पलते थे। अकबर की साहित्यिक उदारता तो प्रसिद्ध ही है, उस ममज्ञ ने मुसलमान हिन्दू कवि-कलाकार को समान रूप से सम्मान दिया था। पर अकबर के पूव भी दिल्ली-दरबार के कुछ शासका ने हिन्दी कवियों को अपनाकर अपनी साहित्यिक उदारता का परिचय दिया था। हुमायू के दरबार में कुछ हिन्दू-कविया को भी रागाश्रय मिला हुआ था, जिनमें नरहरि मुख्य थे। नरहरि की रचनाआ में हुमायू की बीरता तथा उनकी विपम परिस्थिति सम्बन्धी कई छन्द उपलब्ध होते हैं जिससे हुमायू की राज्यकालीन परिस्थितिया पर प्रकाश पडता है जिससे लगता है कवि ने आसो देगी घटनाआ का वर्णन किया है। किवदन्तिया और नरहरि के बशजा में प्रचलित विद्वास से भी यही बात होता है कि ये हुमायू के दरबार में थे।^२ हुमायू के दरबार में एक हिन्दी कवि छेम का भी उल्लेख मिलता है।^३ गेरशाह ने भी हिन्दी कविया को उचित मान दिया था।

^१ रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग), ७९ पृ० १२२ तुलनीय, रसतानिका पद-
गावें गुनी गनिका गधव और सारद सेस सबै गुन गाव ।
नाम अनन्त गनन्त गनेम ज्या, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पाव ॥
जोगी जती तपसी बध सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगाव ।
ताहि अहीर की छोहरिया, छछिया भरि छाछ प नाच नचाव ॥१॥
सेस महेस गनेस दिनेस, सुरसेहु जाहि निरन्तर गावें ।
जाहि अनादि अनन्त असद, अछद अभेद सुवेद बतावें ।
नारद से मुक व्यास रट, पचि हारे तऊ पुनि पार न पाव ।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचाव ॥२॥

^२ कवि लिगि बगी मुकवि भये नरहरि गुभाग्य घर ।

साह हिमाऊ निबट रह सुरमुख सुनीति घर ॥

अधवनी-धरिण लालजी, पृष्ठ० २,३ ।

^३ मिश्रवपु विनोद भा० १, पृ० २९७ कवि सत्या १८५, मुगल बादशाहा की हिन्दी, पृ० ७ ।

वह एक नाहिन्यिक मर्मज्ञ और महदय शासक था, नरहरि उनके दरबार में भी उपस्थित थे। नरहरि रचित शेरगाह सम्बन्धी बहुत से छन्द मिलने हैं जिनमें शेरगाह की बीरता, ऐश्वर्य, महदयता आदि का वर्णन है।^१ नरहरि, अकबर के दरबार में भी रहे। अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों में यह बयोबुद्ध थे।^२

मध्यकाळ भक्ति का युग था। उग्वार का शृंगारिक और विलासमय वातावरण होते हुए भी युग के जाग्रह में अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों ने राधाकृष्ण, राम, शिव तथा अन्य देवता विषयक भक्ति के पद लिखे, जिनमें उनकी ईश्वर-भक्ति और तन्मयता की जलन मिश्रती है। नरहरि के भक्ति मन्त्रन्वी छन्द बहुत थोड़े ही प्राप्त हैं फिर भी ये कवि की भक्ति भावना के द्योतक हैं।

रुक्मिणी-मंगल—

नरहरि की "रुक्मिणी-मंगल ही एक छन्दोबद्ध रचना उपलब्ध होती है। इसमें कवि ने कृष्ण और कुन्दनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी के गंधर्व-विवाह का वर्णन किया है। सर्व प्रथम कुन्दनपुर के राजा भीमराज का परिचय, उसकी कन्या रुक्मिणी का यौवनावस्था का वर्णन, पुरोहित को लगन लेकर भेजना, जरासिन्धु, शिशुपाल आदि राजाओं का स्वयंवर में आने तथा रुक्मिणी का गुप्त रूप से पुरोहित द्वारा कृष्ण के पास परिणय-संदेश आदि के वर्णन दिये गये हैं। अन्त में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण और उनके द्वारा जरासिन्धु, शिशुपाल तथा अन्य राजाओं की पराजय और कृष्ण का रुक्मिणी के साथ गंधर्व विवाह दिखाकर कवि ने ग्रन्थ के पाठ करने का महत्त्व बताया है।

अभी तक यह ग्रन्थ अप्रकाशित ही था। डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल ने अपनी "पुस्तक "अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि" के परिशिष्ट भाग में इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। उदाहरण के लिए उनमें ने दो एक छन्द यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं।

रुक्मिणी आसन्न विपत्ति देख कृष्ण को सदेश भेजती है—

मरई की लाल उपाइ मनहि मन कल्पइ
जस आंचा के आगि हृदे अति तलफइ
कर मीजे पछिताइ बहुत दुख पावइ
विपति मोरि इह जाइ को प्रभुहि सुनावइ

^१ अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि, पृष्ठ २८।

^२ वही पृ० ५४।

छंद

विपति इह धी कहि सुनाय ताप दुख जो म शही
 हे निवट लगन निदश प्रीतम दुख कठिन वासी वही
 तजि लाज एक उपाइ अजहु करो जो विधि बनि आवई
 लिखि देए तासु शदेश नरहरि प्रभुहि जाइ सुनावई
 बलि एकातहि रकुमनि विप्र बोलएउ
 देव न मान निहोर शदेग बुझाएउ
 जहुपति कह कर मुदरी पाती दी हेउ
 शजल नएन पशु लुगि शो बिनती की हेउ
 चले विप्र वर धो शगुन शुभ पाएउ
 हृद धरेउ हरि ध्यान द्वारिका आएउ
 कनक रतन मनि मंदिर विप्र भुलानेउ
 आपन जीव जम सुफल वरि मानेउ
 आएउ शीहि दुआर तो प्रभुहि जनाएउ
 कुदनपुर शो विप्र लिखा ल आएउ
 सुनि पाती तय जहुपति निकट बुलाएउ
 बुझि कुशल दम घोष शो नित यथाएउ
 तबहि ज पाती दीन शो वात जनाएउ ॥

छंद

हिय विचारे मुख निहोर शकुचि मन ही मे रह
 दुख गुल जो मिलन विओग अब दहु विप्र मोगो वा कह ।
 द्विन कहा शन बुझाय सुतर पाइ पति गुल पाइआ ।
 जनु रग पाएउ रतन रकुमनि प्रगट जहुपति आइआ ।
 सुनि रकुमनि क विपती श्रीपानिधि आइआ
 पाइ लागि जनु रक परम निधि पाइआ
 नगर लोग नर नारि सोहे छन आइआ
 देखि रूप बलि जाहि परम गुल पाइआ
 हरि रकुमनि व ध्याह सो विधिहि मनाइआ
 नूप भीखम तय गुनठ की जहुपति थाइआ
 आएउ भीखम निकट दो माय नवाइआ
 रहेउ दोउ कर चोरि घरन चित दीहेउ
 मोर जम हरि आह कीतारय कीहेउ

रुकुमहि दुख न लाइ सो हरि परितोखउ
 कहेउ मरम सब भेद गोन्दिबहि तोखेउ
 हरि पुनि कीन्ह शंतोख बहुत गुण मानेउ
 जराशिषु शिशुपाल काल वश जानेउ ॥***

मंगल

***चढ़ी शो मंदिर वार हनहि छन निररइ
 विथुरी जुथ मृगी जनु चहु दिगि चितवइ

छंद

चितवै शो जहं तहं श्रीगी जनु तनु काम छवि बहु गोहई
 मंजीर नूपुर कलित कंकन देखि मुनि मन मोहई
 शव शखी लीहै शो कनक थार विलोकि अति सुख पाइआ
 वर बेख नरहरि रुकुमिनी के मनहि मन अति भाइआ ॥

मंगल

शोहै अलक वदन पर नह श्रुति ठारइ
 नरहरि प्रान नाय को पंथ निहारइ
 लोग कहै चलु वेगि विलंब न लाइआ
 इह गति देखि धुजा तव पट तर पाइआ
 धुजहि के शाय गयो मन तुरति शिधाऐउ
 इत डांडी उत अंबर फरकि जनाऐउ
 रहै न पावै रुकुमिनी चलै न पार ही
 कहां रहे करतार सो हृदे विचारही
 तेहि छन शारंगपानि सो आइ तुलानेउ
 हरि पुनि देखि रुकुमिनी अति हरखानेउ
 देखेउ तन की हेतु एक करि मानेउ
 गहि रुकुमिनी की वाह शो रथहि बैठाऐउ
 जनु त्रिभुवन की शोभा जदुपति पाऐउ

छंद

पायो जो शोभ शंतोख मन माह अतिहि शव देखहि खरी
 जनु जुथ जंवुक मध्य नरहरि शिव आपन बलि हरी
 शशि हरि तजे शो तिमिर पशरै अंधु धुवन सुझई
 लै चले रथहि चढाइ रुकुमिनी एक ऐकइ बुझई ॥***

मगल

जादव के सग चले प्रभु चेटक लाऐउ
हरि रकमनि ल सग द्वारिका आएउ
कीहो गध्रव व्याह शुजग जग छाऐउ
महापातु कवि नरहरि मगल गाऐउ
जो यह मगल गाव गाइ सुनावइ
व्याह काज कल्यान परम पद पावइ
रकुमिनि हरन शुन जो हृदे विचारइ
आप तर भव शागर पुल निस्तारइ

नरहरि के काव्य में हिन्दी के प्राचीन रूप का अधिक प्रयोग है ।

नरहरि के भक्ति विषयक स्फुट पद—

नरहरि की भक्ति सम्बन्धी फुटकल रचनाओं में राधा-वृष्ण का रूप सौन्दर्य तथा गोपी विरह और सीय-स्वयंवर वर्णित है । इतना अवश्य है कि नरहरि की रचनाओं में भक्ति रस का वह पुष्ट रूप नहीं मिलता जो उनके समसामयिक सूर आदि भक्त कवियों की रचनाओं में पाया जाता है । पर नरहरि ने परम्परा के भक्ति भाव का उसी रूप में ग्रहण किया, इसका परिचय उनके भक्ति विषयक पदा में मिलता है ।

निम्नोद्धत पद में कवि ने भगवान् के आत-जन रक्षक रूप को दिखाया है —
चोटी गहि द्रौपदी निषोरिवे को ठाढ़ी कीहीं

कोपि कह्यो मुमिरि सहाय कौन धरिह
लनि पावे उसासि न दुसासनि प दोन हव पुकारो कहूँ दीनवधु हरिह
गुरुजन पुरजन देखत तमासो सब नरहरि कोउ न करत धरहरिह
ऐसे में अनाथनि को कौन मुघ लह मोरपक्ष धरिह सो मोर पक्ष धरिह^१ ।

भगवान का नाम-जप भक्त का एक महज अवलम्ब है —

भाधव केशव वृष्ण विष्णु धकुठ दमोदर
हरि भुकुद गोविन्द अमर अविगच्छ अगोचर
नारामण नरसिंह सत्य धिटठल बल गजन

^१ “अकवरी दरवार के हिन्दी कवि नरहरि के विविध विषयक फुत्कर छन्द (परिशिष्ट) छन्द सख्या १२९ ।

प्रभु मुरारि बनवारि गोपि जीवन जनरंजन
सारंग शख गद चक्रधर पढ़त गुनत संकटहरण
जय रामचंद्र भगवंत हित कहि नरहरि तवयो शरणे ॥

नरहरि की भक्ति-भावना तत्कालीन पद्धति के अनुसार ईश्वर की वन्दना करके उनके पराक्रम और गुणों के रूप में व्यक्त हुई है। राधाकृष्ण के सयोग-विलास का नरहरि रचित केवल एक ही पद मिलता है—

करत विनोदु स्याम स्यामा संग दऊ मन मुदित रूप गुन भाजन
अग अंग प्रति रंग रंग यह छवि उप्पम घन विंदु विराजन^१

कवि ने विरह के अन्तर्गत “वारहमासा” का क्रमबद्ध वर्णन किया है। वारहो महीनो में विरह की विविध अवस्थाओं का विवेचन हुआ है। प्रिय के बिना सब “सुखद वस्तुए किस प्रकार दुखद हो जाती है फागुन के चित्रण के साथ इसका वर्णन किया है.—

रास विलार वसु सुर पूरित घेल्लत फिरत नृपति प्रजटागुन
बाजहि पंच सह बहु भातिन सज्जन समीप सुषि न सुषतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूजाहँ सब जग मुदित मोर परमागुन
वे जदुनन्दन भोग सषा सब पिय विन वृथा फागु भई फागुन^२ ॥

यद्यपि नरहरि की रचनाओं में न तो भाव-उत्कर्ष की विशेषता है और न भाषा का सौन्दर्य फिर भी ब्रजभाषा के प्रारम्भिक पद-साहित्य के कारण उनका ब्रजभाषा-साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व अवश्य है।

निम्बार्क सम्प्रदायी कवि तथा उनकी रचनायें—

निम्बार्क सम्प्रदायी अपने सम्प्रदाय को चारों वैष्णव सम्प्रदायों में प्राचीनतम बताते हैं। इस प्रकार उनके अनुसार सम्प्रदाय के आरम्भिक ब्रजभाषा के काव्य-ग्रन्थो-युगल-शतक (श्री भट्ट), महावाणी (हरिव्यास), परशुराम सागर (परशुराम)—का रचनाकाल सूर से पूर्व ठहरता है। पर प्रामाणिकता के अभाव में विद्वान् लोग इस सांप्रदायिक मान्यता से एकमत नहीं हो सके हैं।

^१ वही, छंद स० ११७।

^२ अकवरी दरवार के हिन्दी कवि, पृ० १८४।

^३ अकवरी दरवार के हिन्दी कवि—वारहमासा (परिशिष्ट), छ.स. १११।

श्रीभट्ट रचित युगल-शतक—

निम्वाक सम्प्रदायियों में सब प्रथम श्रीभट्ट देवाचाय ने व्रजभाषा में काव्य रचना की इसलिए इनका “युगल शतक” सम्प्रदाय में आदि वाणी के नाम से विख्यात है। ‘युगल शतक’ का प्रतियो के अन्त में यह दोहा मिलता है—

नयन वान पुनिराम शशि गनो अकगति वाम ।

युगल शतक पूरन भयो सवत अति अभिराम ॥

इससे यह निश्चित होता है कि ‘युगल शतक’ की रचना स० १३५२ में हुई थी। श्री भट्ट जी के समय का प्रमुख आधार यही दोहा माना जाता है। इस प्रकार सम्प्रदाय में श्री भट्ट जी का समय आरम्भिक चौदहवीं शताब्दी से अन्तिम चौदहवीं शताब्दी तक का अनुमान किया जाता है। पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित ‘युगल शतक’ की प्रति में इस ग्रन्थ का रचनाकाल विषयक दोहा कुछ दूसरे रूप में मिलता है—

‘नयन वाण पुनि राग शशि’

‘राम के स्थान पर इसमें ‘राग’ पाठ मिलता है जिसके अनुसार ‘युगल शतक’ का रचनाकाल स० १६५२ ठहरता है। ‘राग’ पाठ के सम्बन्ध में निम्वाक सम्प्रदाय वाला का कहना है कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अन्वयका ने मु० नानपारा जिला बहराइच के निम्वाक पुस्तकालय की पुस्तक से प्रतिलिपि करते समय असावधानी और विचार वितक न करने के कारण भ्रान्त पाठ लिख लिया इसी कारण काल सम्बन्धी इन भ्रान्त अनुमानों की सृष्टि हुई। सम्प्रदाय के अनुयायियों ने नानपारा की पुस्तक देखी तो पता चला कि वह अक्षर अस्पष्ट है जिससे ‘राम’ और ‘राग’ दोनों ही शब्दों का मान होता है। निम्वाक सम्प्रदाय वालों का इस विषय में और भी कहना है कि सोज रिपोर्ट में भी भट्ट परशुराम आदि के विषय में जो जानकारी मिलती है वह लिखने वाला का सम्प्रदाय की परम्परा को न जानने के कारण उल्टी-मीठी है।

जो कुछ भी हो समय सम्बन्धी इस वितण्डावाद के आधार पर कोई निश्चय निणय देना अत्यन्त कठिन है। समझें यह ग्रन्थ इतना प्राचीन न हो बस सम्प्रदाय का महत्त्व बढ़ाने के लिए ही सम्प्रदाय वालों ने इसे इतना प्राचीन सिद्ध करने की चेष्टा की है। पर फिर भी इतना ता कहना

१ व्रजभाषा आदि वाणी ‘श्रीयुगल-शतक’ की भूमिका, पृ० ९।

ही पड़ता है कि सम्प्रदाय की परम्परा का अपना महत्व अवश्य है जिसे यो ही उड़ाया नहीं जा सकता। यह भी असंभव नहीं कि श्रीभट्ट के मूल ग्रन्थ में वाद की शिष्य-परम्परा द्वारा बहुत-सा अंश प्रक्षिप्त किया गया हो जिससे भाषा और काव्यत्व की दृष्टि से यह रचना १४ वीं शताब्दी की-सी पुरानी नहीं जान पड़ती। इस ग्रन्थ की प्राचीनता विषयक अन्य कोई पुष्ट प्रामाणिक विवरण अभी उपलब्ध नहीं है, सभी मान्यताएँ अनुमान पर ही आधारित हैं। अन्य दोनों ब्रजभाषा ग्रन्थों के रचना काल के सम्बन्ध में भी प्रामाणिकता के अभाव में इसी प्रकार का मतभेद प्रश्रय पा रहा है।

हरिव्यास रचित 'महावाणी'

श्री हरिव्यास देवाचार्य आचार्य श्री भट्ट जी के शिष्य थे। संस्कृत में इनके कई ग्रन्थ हैं पर ब्रजभाषा में केवल एक ही ग्रन्थ महावाणी है, इसे युगल-शतक का भाष्य कहा जाता है। श्री हरिव्यास के आविर्भाव-तिरोभाव का समय अभी निश्चित ज्ञात नहीं। सम्प्रदाय वाले मानते हैं कि हरिव्यास देव जी का जन्म चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में मथुरा में हुआ था।^१ काशी सरस्वती भवन (पुस्तकालय) में पुस्तक 'श्रीनृसिंह परिचर्या' है जिसके अन्त में लिखा है कि इस पुस्तक को वि० स०-१५२५ में श्रीहरिव्यास देव जी ने अपने हाथ से लिखी थी।^२ इसके अनुसार हरिव्यास जी वि० स० १५२५ तक विद्यमान थे। 'मिश्रवन्दु विनोद' ने इसके सम्बन्ध में खूब गडबड़ी की है।^३ हिन्दी के कुछ साहित्यिकों ने भी ओरछा वाले हरिराम शुक्ल 'व्यास' एवं आलोच्य हरिव्यास जी को एक ही व्यक्ति मानकर भारी भूल की है।^४ ठोस प्रमाण के बिना कुछ भी निश्चित रूप से कहा या माना नहीं जा सकता।

परशुराम रचित 'परशुराम सागर'—

सम्प्रदाय में प्रचलित है कि जयपुर राज्य के अन्तर्गत १५ वीं शताब्दी भाद्रपद कृष्ण ५ को परशुराम जी का जन्म हुआ था। १५ वर्ष की अवस्था में ही इनपर वैराग्य का रंग चढ़ चुका था अतः हरिभक्ति से प्रेरित हो उस समय के

^१ महावाणी-निवेदन, महावाणी-प्रणेता-परिचय।

^२ महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज की नोट बुक से उद्धृत।

^३ प्रथम भाग, तृतीय सस्करण, स० १९८६ वि०, पृ० ३९१ (१९७१)।

^४ ब्रजमाधुरीसार-हरिराम व्यास, पृ० ११६।

सुप्रसिद्ध महात्मा हरिव्यास देवाचार्य के पास मंत्र से दीक्षित हुए।^१ श्री हरिव्यास देव जी के १२ प्रधान शिष्य हुए, जिनकी परम्परा विशेष रूप से चली। जिमें से कई एक परम्पराएँ आज लुप्त-सी हो गई हैं। तथापि ८१९ परम्पराओं के मठमन्दिर अभी विद्यमान हैं। इनमें श्री परशुराम देवाचार्य द्वारा सस्थापित व पुस्करक्षत्रस्य श्री निम्बाकाचार्य पीठ (परशुरामपुरी सलेमाबाद, कृष्णगढ स्टेट) सब पूज्य जगद्गुरु पीठ माना जाता है। औघपुर स्टेट की तवारीख के अनुसार^२ वतमान आचार्य पीठ का विक्रम की १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पुनरुद्धार एवं निर्माण हुआ है। उस आचार्य पीठस्य 'श्रीसर्वेश्वर जी की अत्यन्त सूक्ष्म प्रतिमा सनवादिया की सेव्य प्रतिमा मानी जाती है अर्थात् अति प्राचीन है इस बात को कई एक पाश्चात्य विद्वान भी स्वीकार कर रहे हैं।^३ इस ग्रन्थ में लेखन काल सवत् १६७७ विक्रमी अंकित है पर कई इसे स्वयं परशुराम जी का लिखा नहीं मानते।^४

जा कुछ भी हो सीभाग्य से यदि उक्त तीनों काव्य-ग्रन्थों की प्राचीनता का सिद्ध करने के लिए पुष्ट प्रमाण मिल जाएँ तो सूर-भूय ब्रजभाषा की विलुप्त प्रौढ परम्परा का सूत्र हाथ लग जाए जिससे प्राचीन ब्रज-साहित्य का काफी अंश जो गहन अधकार में छिपा पड़ा है, वह प्रकाश में आ जाए। इन ग्रन्थों तथा उनके पदा की विस्तृत आलोचना आगे ब्रज भाषा के निम्बाक सम्प्रदायी कवियों के अध्याय में की जाएगी।

^१ उदय (मासिक पत्र), वष ४ जनवरी, फरवरी, मार्च १९४२ (सख्या १३) 'परशुराम-सागर ग्रन्थ प्रणेता का जीवन चरित्र, पृ० १३।

^२ खेजडलारा भाटी सरदारन की तवारीख सवत १५१५ पद्रह सौ पद्रह की साल अजुनजीरा वेटा सावन्तसिंह जी बुधर पदे था, सु अमुना जीर तट मार्ग सा० (स्वामी) परशुराम जी कृष्ठी बाघी तहा गाव सलेमाबाद ताम्बा-पत्तर सासण करा दियो ने वादगाही नौ मुहरो कराय दियो। 'इसके अनुसार श्री परशुराम जी स० १५१५ में विद्यमान थे।

^३ डा० ह्यूटलर लिखित इपीरियल-गजेटियर आफ इण्डिया भा० ८, पृ० २२३।

^४ उदय (मासिक पत्र) वष ४ जनवरी, फरवरी, मार्च १९४२, सपा० 'विद्योगी विश्वेश्वर (अपनी यात्र) पृ० ८।

(ख) चैतन्य से पूर्व का वंगीय वैष्णव काव्य-साहित्यः

बंगाल के वैष्णव-धर्म की चर्चा करने समय सर्व प्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु का ही स्मरण हो जाता है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि श्री चैतन्य के अद्भुत व्यक्तित्व और अपूर्व भगवद्भक्तता की चरित्र का प्रभाव, माय ही उनके प्रकाण्ड विद्वान और प्रमुख दार्शनिक अनुयायियों की मतत चेष्टा का ही परिणाम था जिसमें गौडीय-वैष्णव धर्म और उसके साहित्य का सर्वव्यापी स्थायी प्रचार तथा प्रसार हुआ। पर इसका मतलब यह नहीं कि वैष्णव धर्म का आरम्भ भी बंगाल में महाप्रभु के ही हाथों हुआ। चैतन्य देव के आविर्भाव के बहुत पहले ही से बंगाल में वैष्णवसाहित्य की रचना होती जा रही थी, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। निस्सन्देह श्री चैतन्य के विशेष दार्शनिक मतवाद के वारि-निचन द्वारा ही बंगाल में अकुरित वैष्णव-धर्म पल्लवित और पुष्पित हुआ।

मालाधर वसु—

१५ वी शताब्दी में माधवेन्द्रपुरी, ईश्वरपुरी, अद्वैताचार्य तथा श्रीनिवास आदि कई भक्तों ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का अरुणोदय सूचित किया था, 'श्रीकृष्णविजय' के रचयिता कवि मालाधर वसु भी उनमें से एक हैं। इस काव्य की रचना १४७३-७४ सन् ईसवी में आरम्भ होकर १४८०-८१ सन् ईसवी में समाप्त होती है। बंगाल की श्रीकृष्णचरित विषयक रचनाओं में यह प्राचीनतम है। महाप्रभु ने इस गीतिकाव्य के रसास्वादन के पश्चात् अथ और ग्रन्थकार के सम्बन्ध में कहा है—

गुणराजखान कैल श्रीकृष्णविजय ।

ताहा एक वाक्य तार आछे प्रेममय ।

'नन्दनन्दन कृष्ण-भोर प्राणनाय ।'

एइ वाक्ये विकाइनु तार वंशेर हात ॥^१

(गुणराज खान ने श्रीकृष्णविजय की रचना की। उसमें उनका एक प्रेममय वाक्य है "नन्दनन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाय", इसी वाक्य के पीछे मैं उनके वद के हाथ विक गया।)

महाप्रभु के निम्नोद्धृत कथन में तो उनके अनुराग की पराकाष्ठा ही है—

^१ चैतन्यचरितामृत, मध्य १५-९९-१००।

प्रभु कहे-कुलीनप्रामेर जे हय पुषकुर । सेह भोर प्रिय अयजन बहु बूर ॥
 कुलीनप्रामेर भाग्य कहने ना जाय । शूकर चराय डोम सेहो कृष्ण गाय^१ ॥
 (प्रभु कहते हैं—कुलीन प्राम का कुत्ता भी मुझे प्रिय है, और लग बहुत दूर
 है । कुलीन प्राम का भाग्य वणनातीत है, (जो) डोम सूअर चरता है
 वह भी कृष्ण (गुण) गाता ह ।)

श्रीकृष्ण विजय—

गीति-शाब्ध "श्रीकृष्णविजय" श्रीमदभागवत का पल्यानुवाद है । किन्तु यह अक्षरशः अनुवाद नहीं, यथा स्यात् कवि ने महाभारत, हरिवंश, ब्रह्मवैवत्त या भविष्य पुराण से भी सहायता ली है । बहुत स स्थला पर भगवान् का ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप का वणन का बाहुल्य ह । लोक में श्रीकृष्णकथा का प्रसार ही अय रचना का ध्येय है^२ । रचना में पाब्ज-कला-कौशल नहीं, भक्त हृदय का तीव्र और सीधा हृदयोदगार है । लाव-रूपट अलवार आदि का लदाव नहीं, सरला ही इसका प्राण है—

अल्प धन-लोभ लोके एडाइते पारे ।

वानु हेन धन सखि ! छाडि विव पारे^३ ॥

(अल्पधन के लाभ अवज्ञा कर सजते ह (पर) वानु ऐसे (अमूल्य) धन का सखी किसके पास छोड़ ।)

वणनात्मक काव्य के कारण प्यार छन्द की ही बहुलता है कही-यहीं दीप्त त्रिपदी भी ह । गीति-शाब्ध के कारण सबत्र राग रागिणीसो का ही उल्लेख है काव्य अध्याया के अनुसार विभक्त नहीं, राग रागिनी के विभाग से गीत विभक्त ह ।

^१ चैतन्यचरितामृत—१।१०।८०-८१ ।

^२ सत्तान-सागर लोक बरिते तारण ।
 भागवत अवतरि हितेर कारण ॥
 भागवत दुनि आमि पण्डितर मुने ।
 लोकिने कहिये सार बुझ महानुते ॥
 भागवत-अय जत प्यारे बांधिया ।
 ताक निस्तारिते जाइ पांचाली रजिया ॥

—श्रीकृष्णविजय प्रथम गीत, १४-१६ ।

^३ श्रीकृष्णविजय—३९ वा गीत, ६४ ।

इस काव्य में कृष्ण के शीर्य-पक्ष के साथ ही प्रेम-पक्ष भी खूब निखरा है। 'भागवत' के कृष्ण गोपियों को प्रेम देकर अनुगृहीत करते हैं पर 'श्रीकृष्ण-विजय' के कृष्ण यदि प्रेम देकर कृतार्थ हैं तो प्रेम पाकर भी उतने ही प्रमुदित हैं।

वगाल के प्रथम वैष्णव काव्य 'श्रीकृष्णविजय' से ही प्रेम के मावुर्यपक्ष का नव विकास आरम्भ होता है। आगे चलकर वही प्रेम श्रीचैतन्य प्रवर्तित गौडीय वैष्णव-धर्म तथा साहित्य के बीच पूर्ण परिणति को प्राप्त करता है। 'प्रेम-माहात्म्य, आराध्य-आराधक का ऐकान्तिक चित्त सयोग 'श्रीकृष्णविजय' का अभिनव विषय है। प्रेमाभक्ति में 'श्रीकृष्णविजय' भागवत से कुछ आगे ही बढ़ गया है।

श्रीकृष्णकीर्त्तन—

ब्रजभाषा के दूसरे प्रसिद्ध वैष्णव-काव्य चण्डीदास रचित 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों में विशेष मतभेद है। चण्डीदास रचित 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' और चण्डीदाम पदावली में भाव तथा भाषागत पार्थक्य है। इन दोनों के रचयिताओं के एक होने में सन्देह उपस्थित किया जाता है। सदेह निवृत्ति के लिए अभी तक भिन्न चण्डीदास सम्बन्धी पर्याप्त पुष्ट प्रमाण नहीं मिल सके हैं। अतएव यहाँ केवल इतना ही कहना उचित होगा कि 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' काव्य के रचयिता चण्डीदास थे, पदकर्त्ता चण्डीदास ने राधा-कृष्ण लीला-विषयक पदावली की रचना की। उपरोक्त दोनों चण्डीदास एक ही थे अथवा नहीं, चण्डीदास का निवास स्थान कहा था, उनकी जीवनी विषयक अन्यान्य चर्चा वितण्डावाद का विषय होने के कारण यहाँ स्थगित रखना ही उचित होगा। इतना अवश्य है कि चण्डीदास का 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' और चण्डीदास की पदावली दोनों ही विद्वानों द्वारा प्राक् चैतन्य कालीन वैष्णव साहित्य के अन्तर्गत मान्य है, वस इतना ही तथ्य हमारे वैष्णव-काव्य-सम्बन्धी प्रसंग के लिए आवश्यक है।

श्रीकृष्णकीर्त्तन में वर्णित लीलाएं—

'श्रीकृष्णकीर्त्तन' 'गीत-गोविन्द' के अनुकरण पर रचित गीति-नाट्य श्रेणी का गीति-काव्य है। श्रीकृष्ण की किशोर कालीन भिन्न लीलाएँ ही इस काव्य के वर्ण्य विषय हैं, यथा—जन्मखण्ड, ताम्बूलखण्ड, दानखण्ड, नौकाखण्ड, भार-खण्ड, छत्रखण्ड, वृन्दावनखण्ड, कालियदमनखण्ड, यमुनाखण्ड, हारखण्ड, वाणखण्ड, वशीखण्ड, राधाविरह खण्ड। इन लीलाओं में दान-लीला का प्रसंग बहुत विस्तार

से उल्लेखित हुआ, दानववृष्ण की पदसख्या सम्पूर्ण काव्य की पदसख्या की एक चौथाई से भी अधिक है। श्रीकृष्णकीर्तन में जिस रूप में राधाकृष्ण की लीलाएँ वर्णित हुई हैं वह अथ किसी भी पुराण में नहीं मिलती, हाँ, बगाल में इस प्रकार की बहुत सी कहानियाँ उस समय अवश्य प्रचलित थीं। ग्रथ रचयिता ने श्रीमद्भागवत के बालियन्मन वस्त्रहरण और रासादि की परम्परा का पालन नहीं किया है। श्रीकृष्ण के 'स्वयं दौत्य' व्रणन में चण्डीदास की कल्पनाशक्ति का विलक्षण परिचय मिलता है। राधा से मिलने के लिए कृष्ण को न जाने कितने ही विचित्र स्वाग रचने पड़ते हैं, जैसे—बैद्य, सपेरा, जाहूगर, पमारी, योगिन, नाइन, मालिन आदि।

श्रीकृष्णकीर्तन के पद—

काव्य में आरम्भ से अन्त तक पदों की समष्टि है, बीच-बीच में सस्कृत श्लोक के द्वारा कथा का त्रम जोड़ा गया है। उदाहरणार्थ—

भाटिआली राग—एकताली

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा राधिकाधिमती सती ।

येपमानतनुस्तन्वी जगाव जरतोमिद ।

घटवधि बुधे बडाधि पसार साजिला गो विके जाइतें मयुरा नगरी ।

भाचले धरिआं मोक्ष काहूनाधि रहाए गो बोले तोएँ वांगी कली चुरी ॥^१

अधिकांग पद श्रीकृष्ण, राधा और बडाई (दूनी, राधा की फूफेरी सास) के उक्ति प्रत्युक्ति के रूप में है।

कथा के बीच-बीच में काव्य रचयिता स्मरण दिलाता चलता है कि नन्दन कृष्ण ही परब्रह्म हैं। तभी तो दूनी बडाई का परकीया राधा को कृष्ण में जात्म-समर्पण की शिक्षा लांछनीय नहीं वांछनीय ही है। बडाई राधा को बार-बार यही समझाती है —

जे देव स्मरणे पाप विमोचने देखिल हय मुक्ती

तो देव सने नेहा यादाइलें एए विष्णुपुरे स्थिनी ।^२

(जिस देव के स्मरण से पाप वर्जित होत हैं और स्थान में मुक्ति मिलती है।

उस देव से स्नेह बढान पर विष्णुपुर में स्थान मिलना है।)

उस भव-विक्रमात् के लिए राधा को मोहना तो क्या बड़ी बात है, अपना

दृष्टानुबूल समस्त जगत् का सम्मोहित कर सकते हैं —

^१ श्रीकृष्णकीर्तन—वगी सङ्घ १, पृ० १२४ ।

^२ वही, ताम्बूलसङ्घ, ७, पृ० ८ ।

तस्मिन् पुत्रिणां काङ्क्षामि वास्तुन औदार्य
वांशीर शब्दे वाँरे लय मौलिकार ।^१

(जुति में भर कर कर्त्तव्य अपने औदार्य वशी के शब्द (शब्द) में कर्त्तव्य शब्द को गीत करने ? ।)

उस विद्या-मौलिकी वशी कर्त्तव्य - वाँरे शब्द-कर्मजुति में वाँरी है—
ऐन्द्रर मन ॥ १५४ ॥

के ना वांशी वाँरे कर्त्तव्य काङ्क्षामि नष्टकृते ।
के ना वांशी वाँरे कर्त्तव्य वाँरे मौलिकार ॥
आकुल शरीर मोर देखाकुल मन ।
वांशीर शब्दे मौ श्राङ्गनादनी शब्द ॥१५॥
के ना वांशी वाँरे कर्त्तव्य के ना वाँरे शब्द ।
वाँरी शब्द तार वाँरे निर्दिष्टो शब्द ॥१६॥
के ना वांशी वाँरे कर्त्तव्य निर्दिष्टो शब्द ।
तार वाँरे कर्त्तव्य वाँरे शब्द शब्द ॥
वाँरे शब्द मोर शब्द वाँरी ।
वांशीर शब्दे कर्त्तव्य श्राङ्गनादनी शब्द ॥१७॥
आकुल कर्त्तव्य कर्त्तव्य आङ्गनादनी मन ।
वाँरे मुक्त वांशी नान्देर नन्दन ॥
वाँरे नान्देर तार वाँरे शब्द वाँरी ।
वाँरी शब्द वाँरे शब्द वाँरी श्राङ्गनादनी शब्द ॥१८॥
वन पोड़े आग कर्त्तव्य जगजने जाँरी ।
मोर मन पोड़े जेह कुम्भारंर वशी ॥
आन्तर नुराए मोर कर्त्तव्य वाँरी शब्द ।
वाँरी शिरे वशी वाँरी श्राङ्गनादनी शब्द ॥१९॥

(वडापि । कालिन्दी नदी के किनारे न जाने कौन वाँरी वजा रहा है, गोकुल-नोष्ठ में न जाने किमकी वशी वजा रही है । जिससे शरीर आकुल और मन व्याकुल है । वशी के शब्द से मैंने रन्धन अस्तब्यस्त कर दिया । जो वशी वजा रहा है, न जाने वह कौन है ? दामी होकर उसके चरणों में न्योछावर करूँगी । न जाने कौन प्राणों की प्रमत्तता से वाँरी

^१ श्रीकृष्णकीर्त्तन—वशीखंड, ७ पृ० ११० ।

^२ वही, वशीखंड, पृ० ११६ ।

बजा रहा है। उसके चरणा में मने बौन-सा अपराध किया जिससे नेत्र झडी लगा कर बरस रह है। वशी के स्वर से मैंने अपने प्राण खो दिए। अथवा वया मेरे मन को आवुल करने के लिए ही नन्द-नन्दन सुस्वर वगी बजा रहा ह। पक्षी नहीं हू कि उडकर उसके पास जा पहुचू। घरती को विदीण कर दो तो मैं उसमें प्रविष्ट होकर छिप बैठू। जब वन दावाग्नि में जलता है तो सारा जगत जान जाता है लेकिन मेरा मन कुम्हार के आवा की तरह भीतर ही भीतर जलता है मेरा अन्तर वृष्ण की अभिलाषा से सुखा जा रहा ह। नत मस्तक हा वासुकी देवी (चण्डीदास की उपास्या) की वन्दना कर चण्डीदास ने गाया।)

वृष्ण स्मरण से राधा अत्यन्त व्याकुल हो रही है—

रामगिरीराग ॥ आठताला ॥

प्राण व्याकुल भेल वाशीर नादे ।
 एवें आसिआ काहूनायि दरशन नां दे ॥
 आम्हा उपेखिआ गेला नादेर नदन ।
 ताहात मजिल चित ना जाए धरण ॥१॥
 बडार बौहारी आम्हे बडार शो ।
 काह्ल विणि मोर रूप जीवने की ॥
 मद पवन बहे कालिनी नइतीरे ।
 काहूनायि साअरी मोर चित नहे धीरे ॥^१

(वशी के स्वर से मन आवुल हो रहा है। अब तक वृष्ण ने आकर दर्शन नहीं दिया। नन्दनन्दन मेरी उपेक्षा करके चला गया। उसमें मेरा डूबा हुआ चित्त धारण करना (मम्हालना) कठिन हो रहा ह। मैं बड़े आदमी की स्त्री और बड़े आदमी की ही बेंटी हू पर बाण्ड के त्रिना मेरा रूप-जीवन सभी व्यय है। कालिनी नदी के किनारे मद पवन बह रहा ह कन्हाई का स्मरण कर मेरा मन स्थिर नहीं ह।)

यह व्याकुलता वगी वजाने वाले श्रीवृष्ण के लिये ह जो परब्रह्म ह—

उत्तरली हयिली राहो वाशीर नादे ।
 विरहे विवली हआ गोआठिनी कावे ॥१॥
 श्रीनन्दनन्दन गोविंद ह ।
 अनाथी नारीक सग ने ।१॥^२

^१ श्रीवृष्णकात्तन—वशीखड पृ० १२० ।

^२ श्री वृष्णकीत्तन-वशीखड, पृ० १२२ ।

(राइ (राधा) वगी ध्वनि से तू उतावली हो उठी है । विरह में आकुल होकर ग्वालिनी से रो रही है । श्री नन्दनन्दन ! हे गोविन्द ! अनाथ नारी को अपने माथ ले ।)

कृष्ण-दर्शन से वचित हो वियोगिनी राधा कभी जोगिन बनकर देश-देशान्तर में निकल पड़ने को सोचती है तो कभी विपपान से प्राण ही त्यागने का सकल्प कर लेती है —

धानुयीराग ॥ एकताली ॥

ए घन जीवन बड़ायि सबई आसार ।
छिन्डिआ पेलाइवो गजमुकुतार हार ॥
मुछिआं पेलयिवो भोये सित्सेर सिन्दूर ।
वाहुर बलया मो करियौं शंखचूर ॥१॥
मुन्डिआ पेलाइवो वेश जाइवो सागर ।
जोगिनीरूप धरी लइवो देशान्तर ॥
जवें काछून ना मिलिहे करमेर फले ।
हाथे तुलिआ मो लाइवो गरले ॥२॥
माथे शंभु सम् खोपा शिसते सिन्दूर ।
एहा देखि केहूने काहून गेलान्त विदूर ॥^१...

हे बड़ायि । ये घन-यौवन सभी असार हैं । मैं गजमुक्ता की माला तोड़ फेकूंगी । माँग का सिन्दूर पीछ डालूंगी । हाथ के ककण को मैं शंखचूर्ण के समान करूंगी । केश मुडाकर सागर के किनारे जाऊँगी । योगिनी का वेश बनाकर देशान्तर को निकल पडूँगी । यदि कृष्ण कर्म फल के कारण न मिलें तो अपने ही हाथो विपपान करूँगी । निर पर शंभु के समान जूडा, माँग में सिन्दूर देख कर भी कान्ह क्यो दूर चले गए ।)

किसी प्रकार बड़ायि की चेष्टा में कृष्ण से राधा का साक्षात्कार होता है । अब राधा ने कृष्ण के स्वरूप को पहचान लिया अतः अत्यन्त दीनता से पिछले अपरावो के लिए जगन्नाथ से क्षमा मागती है और सान्निध्य के लिए प्रार्थना करती है—

विभाषराग ॥ एकताली

विरहे विकल गोसायि तोम्हे बनमाली ।

जवें आछिलाहों आम्हे आतिशय वाली ॥१॥

^१ श्रीकृष्णकीर्तन-राधाविरह, पृ० १३२ ।

पान फूल ना लइला भाइलो तोर दूती ।
 सेहो दोष खण्ड मोर मदनमुक्ती ॥२॥
 वारें वारें तोक जत बुयिलों आहवारे । ।
 सेहो दोष खण्ड मोर देव गदाधरे ॥४॥
 आर बुण बिलो तोक वहायिलों भार ।
 सेहो दोष जगन्नाय खण्डह आम्हार ॥६॥
 नाशुणिलों तोर बोल लजा जाइतें पाणी ।
 सेहो दोष खण्ड मोर देव चक्रपाणी ॥७॥
 आनायो नारीक कत थाके अभिमान ।
 आलिंगन दिआ वाह राखह पराण ॥८॥
 नाहि उपेतिह मोरे नादर नदन ॥१

(हे गोसाइ वनमाली ! तुम्हारा विरह में अत्यन्त व्याकुल हूँ । जब तुम (मेरे पास) आए मैं निरी बालिका थी । पान फूल न लेकर तुम्हारी दूती को मार भगाया था । हे मदन मूर्ति मेरे उस दोष को खण्डित करो (भूल जाओ) । बारंबार अहंकार के कारण तुम्हारा जा प्रत्याख्यान किया था, हे देव गदाधर ! मेरे उस अपराध का भी माजन करो । (मने) तुम्हें और भी दुःख दिए भार बहन कराया । हे जगन्नाय । मेरे उस दोष का भी परिहार करो । जल भरने जाते समय तुम्हारी बात नहीं मानी, हे देव चक्रपाणि !, मेरे उस दोष का भी निराकरण करो । अनाथ नारी का कितना अभिमान रह सकता है । आलिंगन देकर (हे) वान्ह ! इन प्राणों का रखो । नन्दनन्दन मेरी उपेक्षा न करा ।)

वृष्ण ने उत्तर में कहा—'मैं हरि, नारामण, मुकुन्द, मुरारि, युग-युग में विभिन्न अवतार ग्रहण करके लीलाए करता आया हूँ, मैं परदार-ग्रहण जसा महापाप कैसे कर सकता हूँ ? तुम घर लौट जाओ ।' सब कामनाओं के साथ शिरोमणि परब्रह्म को एक बार पाकर पुन खोने की मूर्खता कौन कर सकता है तभी तो राधा बहती है—

श्रीराग

नाना तपफले तोम्हा मोरे दिल बिधी ।
 आरे घर जाइते मोके बोल गुणनिधी ॥

तोम्हे जव्ने जोगी हैला सकल तेजियाँ ।
 याकिव जोगिनी हयाँ तोहाक सेविया ॥१॥
 ना जाइवो पर आर तोम्हाक छाटिया ।
 वढ दुःख पाइलों तोर विरहे पुटिया ।...
 हेन मने परिभाव जगत-इशार
 आम्हाक पराणे माइले कि लाभ तोम्हार ॥ध्रु॥ ..
 आनुगती भकती आनाथि आम्हि नारी ।
 तमो केह्ले आम्हा परिहर मुरारि ॥^१

(मुझे बहुत तपफल से विधि ने तुम्हें दिया । हे गुणनिधि ! मुझे घर जाने को क्यों कहते हो । तुम जब सब त्याग कर (मेरे लिए) योगी हो गए मैं तुम्हारी सेवा करते हुए योगिनी बन कर ही रहूंगी । अब तुम्हें छोड़कर घर नहीं जाऊंगी । तुम्हारे विरह में जलते हुए बहुत दुःख पाया । हे जगदीश्वर ! भला सोचो तो जरा, मुझे प्राणों से मार कर तुम्हारा क्या लाभ ? मैं तुम्हारी अनुगता, भक्तितन, अनाथनारी हूँ, हे मुरारि ! फिर मुझे क्यों छोड़ते हो ।)

सच्चे वैष्णव भक्त के लिए राधा प्रेम ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य और आदर्श है । “श्रीकृष्ण कीर्तन” के रचयिता ने अपनी परम आराध्या राधा के चरित्र के विकास और परिणति में जिस चातुर्य और कौशल का परिचय दिया है वह अवश्य ही स्तुत्य है । बडाई केवल तटस्थ दूती मात्र नहीं, वह हृदय से राधा की मंगलाकाक्षिणी है, उसने अपने मर्म की बात प्रकट कर दी— “आसि जाइ करि मोर आकुल पराण” । बडाई ने परब्रह्म कृष्ण के स्वरूप को राधा से पहले ही पहचान लिया था तभी तो कृष्ण से राधा के मिलन के लिए वह इतनी आतुर थी । भगवान को रसमय, प्रेममय, आनन्दमय रूप में जानना ही जीव के अनुभव की चरम सीमा है । श्रुति का “आनन्द ब्रह्म”, “मधु ब्रह्म”, “अमृत ब्रह्म”, “रसो वै स” आदि महावाक्य उसी स्वरूप के परिचायक हैं । उस परम पुरुष के प्रेमानन्द रसामृत लाभ के लिए “श्रीकृष्ण कीर्तन” काव्य अत्यन्त उपादेय है ।

चण्डीदास और गीतगोविन्द की राधा

प्राक् चैतन्य-युग के प्रेमभक्ति-शास्त्र के रससिद्ध वैष्णव कवि, महादार्शनिक चण्डीदास ने राधाकृष्ण लीला विषयक सुमधुर पदावली की रचना की । पदावली रचना में चण्डीदास को गीतगोविन्द से यथेष्ट प्रेरणा मिली इसमें तो

^१ श्रीकृष्णकीर्तन—राधाविरह, पृ० १४३ ।

कोई सन्देह नहीं। परन्तु चण्डीदास की राधा का प्रेम "गीतगोविन्द" की राधा के प्रेम से कहीं अधिक गम्भीर, और उत्कृष्ट पर पहुँचा हुआ है। "गीतगोविन्द" की राधा का प्रेम वायु-संचालित दीर्घशुश्रूष-समुद्र की ऊपरी तरंग के समान है जो समीपस्थ के ज्वार में इतना प्रबल होकर प्रकट हुआ पर चण्डीदास की राधा का प्रेम समुद्र की सतह के समान मन्द प्रशान्त और पूर्य है।

चण्डीदास के कुछ पद

चण्डीदास की राधा अभी पूर्वराग की ही स्थिति में है, केवल "श्याम-नाम" श्रवण से ही उनकी दशा विचित्र हो रही है

कामोद

सङ्ग केवा मुनाइल श्याम नाम ।

काणेर भितर दिया, मरमे पशिल गो,
आकुल करिल मोर प्राण ।

ना जानि कतेक मधु श्याम नामे आछे गो,
बदन छाडिते नाहि पारे ।

जपिते जपिते नाम अवश करिल गो,
बमने पाइव सङ्ग तारे ॥

नाम परतापे जार ऐछन करिल गो,
अगेर परसे किबा हय ।

जेखाने असति तार नयने देखिया गो,
जुवती घरम कछे रय ॥

पासरिते करि मने पासरा न जाए गो,
वि करिव कि हवे उपाय ।

कहे द्विज चण्डीदासे कुलवती कुल नासे,
आपनार जीवन जाँचाय ॥^१

(सखि ! किसने 'श्याम' नाम मुनाया ? काना में से होकर वह मम में प्रवेश कर गया और मेरे प्राणा को आकुल कर दिया। नहीं जानती कि 'श्याम' नाम में कितना मधु है जिसे मुझ छोड़ नहीं पाता। नाम जपते जपते उसने अग का परवश कर दिया, उसे कैसे पाया जाए ? जिसके नाम

^१ चण्डीदास पदावली—नायिका का पूर्वराग, १ ।

के प्रताप ने ऐसा किया (उसके) अग के राशं में (मात्स्य नदी) गया होगा ? जहाँ उसका वास है, (उने) नयनों ने देख कर स्वर्ती मर्म कौं रट माना है । (उसे) भूलने को मोचती है, भूया नहीं जाना, क्या करे, क्या उपाय है । द्विज चण्डीदास कहते हैं गुणवती (रानी) कुछ नष्ट करके अपने यौवन को जाचती है ।)

यह स्थिति प्रेम की उच्च भाव दशा की परिचायक है । उम प्रेम ही लोकोत्तरता में किमी को मन्देह नहीं हो सकता । चण्डीदास की राधा के प्रेम में हृदय-पक्ष की प्रवानता के कारण यह अत्यधिक गहिर्-गभीर, तन्मय और मर्म-स्पर्शिनी है । उन गुणों में अन्य कोई वैष्णव कवि चण्डीदास को बराबरी न कर सका ।

राधा जिस ओर दृष्टि फेरती है, प्रेमाश्रय के कारण सब कुछ श्याममय ही दिखता है, वे अपनी मर्म-व्यथा को कितने सुन्दर दग से व्यक्त कर रही हैं.—

धानशी—

काहारे कहिव मनेर मरम केवा जावे परतीत ।
हियार माझारे मरम वेदना सदाई चमके-चीन ॥
गुरुजन आगे दाटाइते नारि सदा छल छल जागि ।
पुलके आकुल बिक नेहारिते सब श्याममय देखि ॥
सखीर सहिते जलेरे जाइते से कया कहिवार नय ।
जमुनार जल करे झलमल ताहं कि पराण रय ॥
कुलेर धरम राखिते नारिनु कहिलाम सवार आगे ।
कहे चण्डीदासे श्याम सुनागर सदाई हियाय जागे ॥^१

(मन के मर्म को किनसे कहूँ, कौन विदवात करेगा । (मेरे) हृदय में मर्म-वेदना है (जिसमें) चित्त सदा ही चींकता रहता है । गुरुजनों के आगे खड़ी नहीं हो पाती (क्योंकि) आशे सर्वदा छलछलायी रहती है । पुलक से आकुल जिघर देखती हूँ सब श्याममय ही दिखता है । सखी के साथ जल भरने को जाते हुए की बात कहने की नहीं, यमुना का जल झलमलाता है उससे क्या प्राण (स्थिर) रह सकते हैं । (मैं) कुल-धर्म न रख सकी (इससे) तुम्हारे सामने कहा । चण्डीदास कहते हैं कि श्याम सुनागर सदा ही हृदय में विराजित है ।)

कृष्ण ध्यान-रता राधिका की भावमग्न दशा का अपूर्व चित्रण है —

^१ चण्डीदास पदावली—अनुराग (अपने प्रति), १३६ ।

सिधुडा—

राधार कि हलो अतरे व्यया ।
 बसिया बिरले याकये एकले,
 ना शुने काहार कया ।
 सदाई घेयाने चाहे मेघ पाने,
 ना चले नयनेर तारा ।
 विरति आहारे रागा यास परे,
 जेमन जोगिन पारा ॥
 एलाइया बेणी फुलेर गायनी,
 देखये छसाये चुलि ।
 हसिन घयाने चाहे मेघपाने,
 कि बहे दुहात तुलि ॥
 एक दिठ करि मयूर मयूरी,
 कण्ठ बरे निरीक्षणे ।
 चण्डीदास कय, नव परिचय
 पालिया बघुर सने ॥^१

(राधा के अन्तर में कौन-सी व्यथा हुई ? वह एवान्त में अवेनी बठी रहती ह किसी की बात नहीं सुनती । सदा ध्यान मग्न रहती है, मेघा की ओर देखती रहती है, नयना के तारे गही चलते (पुतली स्थिर रहती ह) । आहार में विरक्ति ह, लाल (गेरुआ) वस्त्र पहनती ह योगिनी के जसी बनी हुई है । बेणी को गिधिल पर, पूठा की गायनि (प्रिय) को खोल कर बेगा को देखती ह । स्मित मृन् से मेघ की ओर तावती ह और दोगा हाथा को ऊपर उठा कर न जाने क्या कहती ह । एकटक मोर मोरनी के कण्ठ (नीले रंग) का निरीक्षण करती रहती है । चण्डीदास कहने हैं कि बाले भयु (प्रियतम शृष्ण) के माथ गया परिचय हुआ है ।) और—(सखी की उक्ति)

धानगी—

धरर बाहिरे दण्डे गत बार निले तिले एसे जाय ।
 मन उचाण्ण दिशवास साधन बद्धम्य कानने चाय ॥
 राई एमन बेनेवा हलो ।
 गुद बुरजन भय नाहि मन बोया था कि देव पाइल ॥

^१ चण्डीदास पदावली—नामिका का पूर्वराग ९ ।

सदाइ चंचल वमन अंचल सम्भरण नाहि फरे ।
 वसि थाकि थाकि उठये चमकि भूषण चसाये परे ॥
 वयसे किशोरी राजार कुमारी ताहे कुलवधू वाला ।
 कि वा अभिलासे घाटाय लालसे ना वृत्ति ताहार छला ॥
 ताहार चरिते हेन वृत्ति चिते हात बाड़ाइले चाये ।
 चण्डीदास भणे करि अनुमाने ठेकेछे कालिया फादे ॥^१

(घर के बाहर, दण्ड भर में सी-सी चार, तिल-तिल आनी-जाती रूती है । मन उचटा रहता है, दीर्घ श्याम भरती रहती है, कदम्ब-कानन की ओर देगनी रहती है । राइ ! ऐसा (न जाने) क्यों हुआ ? गुग्जन-दुर्जन किनी का भी भय (उसके) मन में नहीं है, (पता नहीं) कहा, क्या देव लगा । नर्ददा चंचल (रहती) है, वस्त्र-चंचल सम्हालती नहीं । बंटे-बंठे (अचानक) चीक उटती है, गहने (शरीर से) तिमक कर गिर पडते हैं । किशोरी वय को राजा को बेटी, ऊपर से कुलवधू स्त्री है । (न जाने) किम अभिलाषा ने लालना बगई, तुम्हारे इम रहस्य को (मैं) समझती नहीं । तुम्हारे चरित (भाव भगी) को देखकर ऐसा मन में सोचती हू कि तुमने चाद के लिए हाथ बटाया है । चण्डीदास कहते हैं, अनुमान होता है कि काले (कृष्ण) के फन्दे में पड गई है ।)

राधा बेचारी भी करे तो क्या करें, मन तो मन उनकी समस्त उन्धिया ही कृष्णमय हो गई है, लाख प्रयत्न करने पर भी वे इन्द्रियों को कृष्ण-विमुख नहीं कर पा रही है :—

गान्धार

जत निचारिये ताय निवार ना जाय रे ।
 आन पये जाइ से कानु पये घाय रे ॥
 ए छार रनना मोर हइल कि घाम रे ।
 जार नाम नाहि लइ लयतार नाम रे ॥
 ए छार नासिका मुइ कत करु बन्ध ।
 तवु त वारुण नासा पाय तार गन्ध ॥
 से ना फया ना शुनिव करि अनुमान ।
 परसंगे शुनिते आपनि जाय काण ॥
 धिक रहुं ए छार इन्द्रिय मोर सब ।
 सदा से कालिया कानु हम अनुभव ॥^२

^१ चण्डीदास पदावली-नायिका का पूर्वराग, ८ ।

^२ चण्डीदास पदावली—अनुराग-आत्मप्रति, १४२ ।

(जितना भी उसे राकती हू वह रोका नहीं जाता। दूसरे माग पर चलते हुए वे (चरण) कानु पथ पर ही दौड़ पड़ते ह। मेरी यह अभागी जीभ (मेरे लिए) कसी विपरीत हो गई, जिसका नाम (म) नहीं लेती यह (जीभ) उसी का नाम लेती है। इस अभागी नाक को मैं कितना ही वन्द करती हू फिर भी (यह) नाक श्याम का तीव्र गंध पाती ही ह। जिस बात को न सुनने का निश्चय किया है, (उसका) प्रसंग सुनने पर, कान अपने आप उघर चले जाते हैं। (इन्हें) धिक्कार ह मेरी सभी इंद्रिया अभागी हैं, इन्हें सदा काले कानु का ही अनुभव होता रहता ह।)

और भी तो लोग थे, कृष्ण के प्रेम उनकी वासुरी की तान में वे सभी सुध बुध क्यों नहीं विसरा बटे ? इसका उत्तर राधा स्वय ही दे देती है —

‘सवार वाशी काने वाजे,

‘वाशी वाजे आमार हियार माझे ।’

(सधवे लिए ता काना में वशी वजती है (पर) मेरे लिए (तो) मेरे हृदय में वशी वजती ह।)

सबकी अनुभूति से उनकी अनुभूति ही भिन्न ह इसी कारण उसका परिणाम भी निराला ही है।

स्वजन परिजन, अडोसी-पड़ोसी राधा के पर-मुरूप के प्रति प्रेमाशक्ति के कारण उसकी घोर निन्दा कर रहे ह। पर कृष्ण प्रेम-दीवानी राधा को अपवाद के लिए रच मात्र ग्लानि अथवा बलेश नहीं क्याकि —

सुहृद्

यधु तुमि से आमार प्राण ।

देह मन आदि तोहारे सपेछि कुल शील जाति मान ॥

अखिलेर नाय तुमि हे कालिया जोगीर आराध्य धन ।

गोप गोपालिनी हाम मति हीना ना जानि भजन पूजन ॥

पिरीति रसते, दालि तनु मन दियाछि तोमार पाय ।

तुमि मोर पति तुमि मोर गति मन नाहि आन भाय ।

बलकी बलिया डाके सब लोके- ताहाते नाहिक दुख ।

तोमार लागिया कन्केर हार गलाय परिते सुख ॥

सती वा असती तोमाते विदित भाल मव नाहि जानि ।

बहे चण्डीदास पाप पुण्य सम तोहारि चरण खानि ॥^१

^१ चण्डीदास पदावली—भाव सम्मिलन, १८५ ।

(वधु (प्रियतम) ! तुम्ही मेरे प्राण हो। देह-मन-कुल-शील-जाति-मान आदि सभी तुम्हें सौंपा है। हे काले ! तुम अग्नि के नाथ, योगी के आराध्य धन हो। हम गोप-गोपालिनी अत्यन्त दीन हैं, भजन-पूजन नहीं जानते। पीरित (प्रीति) रम में तन-मन ढाल कर तुम्हारे पैरों में मोंपा है। तुम मेरे पति, तुम मेरे गति हो, मन को और दूगरा नहीं भाता। सब लोग "कलकी" कहते हैं, (मुझे) ब्रम्हा का दृग् नहीं। तुम्हारे लिए गले में कलक का हार पहनने में (भी) मुख है। मैं नहीं हूँ अथवा अमली यह तुम जानते हो, अच्छा-बुरा नहीं जानती। चण्डीदास कहते हैं, तुम्हारे चरणों में पाप-पुण्य सभी बराबर (माना) है।)

और—

तोमारइ गरवे गरविनी हाम, रूपसी तोमार रूपे ।

(तुम्हारे गर्व से ही मैं गर्विता, तुम्हारे रूप में ही रूपसी हूँ।)

फिर भला उन्हें दीन-दुनिया की क्या परवाह होती। चण्डीदास की राधा भगवत् प्रेम की प्रतीक है। साधक जब साधना की उच्च स्थिति में पहुँच जाता है तब इन्द्रियों की चहल-पहल, ठेला-रेला सब शान्त हो जाता है। साधक अन्तर में ही अपने आराध्य को ऐकान्तिक रूप से पा लेता है, इप्सित में ही उसकी समस्त कामनाएँ अन्तर्हित हो जाती हैं। राधा उसी भाव-दशा का वर्णन कर रही है :—

मरम ना जाने धरम बाखाने, एधन बाछये जारा ।

काज नाहि सखि, तादेर कथाय, बाहिरे रहन तारा ॥

आमार बाहिर दुआरे कपाड लेगेछे,

भितर दुआर खोला ।

(मर्म न जानकर जो वर्म बखानते हैं, मखि ! ऐसे लोगों की बात से काम नहीं, वे बाहर ही रहें। मेरे तो बाहर के द्वार के पट बन्द हैं, भीतर का द्वार खुला है।)

इस अपूर्व प्रेम का चण्डीदास ने 'पीरित' नामकरण किया। 'पिरित' की गूढता को एकमात्र सच्चा साधक ही हृदयंगम कर सकता है। चण्डीदास का कहना है इस 'पिरित' के लिए जिसने अपार, दुःख, कष्ट न सहा बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेकर भी वह समस्त सुखों से वंचित रहा.—

सइ पिरिति ना जाने जारा ।

ए तिन भुवने जनमे जनमे

कि सुख जानये तारा

(सखि ! जो पीरित नही जानते । इन तीना भुवना में जम ले ले कर भी उन्हाने क्या सुख जाना ।)

इतना अपार कष्ट सहने के बाद, सवस्व समपण के पश्चात् भी राधा क्या देखती है—उनका प्राणप्रिय उन्ही के सामने से, उन्ही के आगन को पार करता हुआ किसी अन्य रमणी के पास प्रणय-बेलि के लिए जा रहा है । कस अधीर प्राणो को सम्हालें—

सह केमने घरिब हिया ।

आमार बधुया आन बाडी जाय आमार आंगिणा बिया ॥^१

(सखि ! कसे प्राणा वो रखू । मेरा बधुआ (प्रियतम) मेरे ही आगन से होकर दूसरे के घर जाता है ।)

फिर भी प्रिय निर्दोष है, ऐशा सोचना स्वाभाविक ही ह । राधा सोचती है उनका प्रिय तो ऐसा नहीं था । 'निश्चय ही किसी स्त्री ने उस पर जादू-टोना किया है जिससे मेरा सरल स्वभाव प्रिय ऐसा बदल गया' —

ए हन बधुरे मोर जे जन भागाए ।

हाम नारी अबलार बध लागे ताए ॥

(मेरे ऐसे बधु का मन जो (मेरी ओर से) छटटा करे, हम नारी अबला बध (का पाप) उमे लगेगा ।)

इतने बडे अक्षम्य अपराध के लिए इतना ही दण्ड तो काफी नहीं । दुःख और शोध से सन्तप्त राधा अभिगाप देती है "जिसने इस प्रचण्ड यातना कि अग्नि में मुझे तिल तिल कर जलाया है भगवान् उसे भी यही गति दे"—

आमार पराण जेमति करिछे सेमति हजक से ।

(मेरे प्राणा को (उसने) जैसा किया ह वैसा ही वह भी हा ।)

इस असह्य पीडा से मुक्ति पाने के लिए राधा कामना करती है —

विधि यदि श्रुनित मरण हइत घुचित सकल दुःख ।

(विधि यदि सुनता (और) मरण होता (तो) सब दुःखो से पीछा छटता ।)

मर कर इस अपार दुःख से मुक्ति तो अवश्य मिलेगी किन्तु प्रिय को भी ता एक वार इस दुःख की अनुभूति होनी चाहिए जिससे वह समय सवे किस अपार-असह्य वदना के कारण राधा ने प्राण त्यागे—

^१ कुछ पदावली सप्रहो में यह पद गानदास की छाप से मिलता ह ।

बंधु कि आर बलिव तोरे ।
 आपना खाइया पिरिति करिनु
 रहिते नारिनु घरे ॥
 कामना करिया सागरे मरिव
 साधिव मनेर साधा ।
 मरिया हइव श्रीनन्देर नन्दन,
 तोमारे करिव राधा ॥
 पीरित करिया छाड़िया जाइव,
 रहिव कदम्ब-तले ।
 त्रिभंग हइया मुरली पूरिव
 जखन जाइवे जले ॥
 मुरली शूनिया मुरछा हइवे
 सहजे कुलेर वाला ।
 चण्डीदास कय तवेसे जानिवे
 पीरिति केमन ज्वाला ॥^१

(बंधु (प्रियतम) तुम्हें और क्या कहूँ । अपने को खाकर (नष्ट करके मँने) प्रीत की, घर में न रह सकी । कामना करके सागर में मरूँगी (और) मन की साध पूरी करूँगी । मरकर श्रीनन्दनन्दन होऊँगी और तुम्हें राधा बनाऊँगी । (पहले) पीरित करके (फिर) छोड़ आऊँगी । कदम्ब के नीचे रहूँगी । त्रिभंग होकर बाँसुरी बजाऊँगी । जब (तुम) पानी भरने जाओगे (तुम) सहज कुल-वाला मुरली सुनकर मूर्छित होओगे, चण्डीदास कहते हैं तब जानोगे पीरित कैसी जलन है ।)

राधा की यह करुण स्थिति चण्डीदास की दृष्टि में सच्चे प्रेम की परीक्षा का क्षण, परख की कसौटी है अतएव यह आनन्दमय है —

चण्डीदास कय एमति नहिले पिरितेर किबा सुख ।
 (चण्डीदास कहते हैं, ऐसा न होने से पीरित का क्या सुख ।)

“पीरिति” कठोर साधना का धन है । इतने अल्प में विचलित होने से परम सिद्धि की कैसे प्राप्ति होगी । दुख के पत्थर पर घिसने से ही पीरिति-

^१ चण्डीदास पदावली (ब्रजभाषा साहित्य परिपद् से प्रकाशित), ३७ । कुछ पदावली-संग्रहों में ज्ञानदास की छाप से मिलता है ।

चन्दन की सुगन्धि चारों ओर प्रसारित होगी। केवल असह्य दुःख सहते हुए ही यदि 'पीरित' प्राप्त हो जाती तब भी गनीमत थी परन्तु यहाँ तो —

पिरिति लागिआ पराण छाडिले पीरिति मिलये तथा ।

(पीरित के लिए प्राण छोड़ने पर पीरित की प्राप्ति होती है ।)

ऐहिक जीवन में प्राणा से बढ़कर और कुछ नहीं, उन्हीं प्राणा के पूण समपण से ही पीरित घन की प्राप्ति हो सकती है। 'पिरिति' के लिए सब सुख-लालसा, इन्द्रिय चरिताघता और स्वाथ का परित्याग और सर्वोपरि आत्मा-बलिदान की आवश्यकता है पिरिति इन तीन अक्षरों में ही चण्डीदास का सवस्व समाया हुआ है, यही उनके जीवन का धरम सार है —

पीरिति बलिया ए तिन आखर ए तिन भुवन सार ।^१

(पीरित तीन अक्षरों का (शब्द) है यही तीनों भुवना का सार है ।) इस जग से निराली 'पिरित' का स्वरूप भी विचित्र ही है—'नितुइ नूतन' तिले तिले नूतन होय' की दशा के साथ ही 'तिले तिले बाटि जाए इस बढ़ने की भी कोई सीमा नहीं —

ठाण्य नाहि पाय तथापि बाड्य परिमाणे नाहि आर ।

(स्थान नहीं मिलता फिर भी बढ़ता है (इसके) परिणाम का आरपार नहीं ।)

इस 'पिरिति, का न आदि है और न अन्त, यह अपरिमेय है। इस 'पिरिति' के लिए कवि का उचित उपमा ही नहीं मिलती यह लाकोत्तर प्रेम लौकिक वस्तुओं की सीमा में कैसे समा सकता है, यह अनयोपमा है अपना उपमान स्वयं है ।

एमन पिरिति कभु देखि नाइ श्रुनि ।

पराणे पराण बाधा आपनि आपनि ॥

डुहु कोरे डुहु कादे विच्छेद भागिया ।

आघ तिल ना देखिले जाय ये मरिया ॥

जल धिनु मीन जनु कबहु ना जीये ।

मानुष एमन प्रेम कोया ना श्रुनिये ॥

भानु कमल बलि, सेहि हेन नहे ।

हिमे कमल मरे, भानु सुखे रहे ॥

^१ तुलनीय-व्याख्यान की पंक्ति—'ढाई अक्षर प्रेम का पद सु पण्डित होय ।'

चातक जलद कहि, से नहे तुलना ।
 समय नहिले से ना देय एक कणा ॥
 कुसुमे मधुप कहि, सेह नहे तुल ।
 ना आइले भ्रमर आपनि ना जाय फुल ॥
 कि छार चकोर चांद, दुहुं सम नहे ।
 त्रिभुवने हेन नाहि चण्डीदास कहे ॥^१

(ऐसी पीरित न कभी देखी न मुनी । प्राणों से प्राण अपने आप ही बधे हुए हैं । दोनों परस्पर की गोद में गहकर भी 'वियुक्त हैं' ऐसा नाचकर रोते हैं । तिल (क्षण) भर के लिये न दगने पर मरे जाते हैं । जल के बिना मछली जैसे कभी भी नहीं जीती है । मनुष्य ने ऐसे प्रेम के विषय में कही नहीं मुना (होगा) । भानु-कमल कहें तो वह भी ऐसे नहीं । पाले से कमल मरता है (पर) भानु सुख से रहता है । चातक-बादल कहें तो उसकी तुलना भी (ठीक) नहीं । समय न होने पर वह (जल का) एक कण भी नहीं देता । कुसुम-मधुप कहें तो उसकी भी तुलना (ठीक) नहीं । भ्रमर के न आने पर फूल स्वयं (उसके पास) नहीं जाता । अभागे चकोर-बाद ये दोनों भी उसके समान नहीं । चण्डीदाम कहते हैं, त्रिभुवन में ऐसा कहीं भी नहीं ।)

इस 'पिरित' की अनुभूति भी विचित्र है । 'पराणे पराण, गाढ प्रेम टोर से बधा हुआ है, फिर भी 'दुहु कोरे दुहु कादे विच्छेद भाविया ।' यह दशा प्रेम की चरम परिणति की परिचायक है । मिलन में भी विरह का भाव, यही 'प्रेम-त्रैचिद्र्य' (प्रेम-विपरीतता) कहलाता है । यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है, जब लट्टू बहुत जोर से धूमता है तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह विलकुल स्थिर है, वैसे ही प्रेम की अत्यन्त उत्कर्ष अवस्था में इस विचित्र भाव दशा की अनुभूति होती है ।

नचमुच यह 'पिरित' विचित्र ही है । कभी तो पूर्ण रूप से पाकर भी न पाने की व्याकुलता सताती है और कभी वियांग में ही सयोग मुख की अनुभूति होने लगती है ।

कृष्ण मयुरा चले गए हैं यहाँ से पुन लौटकर नहीं आते । पर राधा एक क्षण के लिए भी प्रिय को भूल नहीं पाती ध्यान की अत्यन्त तन्मयावस्था के फलस्वरूप कल्पना में ही प्रिय को प्रत्यक्ष पाने की सुख-त्रान्ति में राधा का मन उल्लास से नाच उठता है —

^१ चण्डीदास पदावली-सभोग मिलन, ७३ ।

बहुदिन परे वधुया एले ।
 देखा ना हइत पराण गेले ।
 एतेक सहिल अवला चले ।
 फाटिया जाइत पापाण हले ॥
 दुखिनोर दिन दुखेंते गेल ।
 मयुरा नगरे छिले त भाल ॥
 ए—सख दु ख किछु ना गणि ।
 तोमार कुशले कुशल मानि ॥
 सब दुख आजि गेल ह दूरे ।
 हारान रतन पाइलाम कोरे ॥
 (एखन) कोकिल आसिया करक गान ।
 भ्रमरा घरक ताहार तान ॥
 मलय पवन बहुक मव ।
 गगने उदय हउक चव ॥
 वाशुली-आदेशे कहे चण्डीदास ।
 दु ख दूरे गेल सुख विलासे ॥^१

(बहुत दिनों के बाद वधुआ (प्रियतम ! तुम) आए । प्राण चल जाने पर मुलाकात न होती । अवला थी इसीलिए इतना सहा पापाण होने पर (कव का) विदीण हा चुवा होता दुखिनी के दिन दुख में बीते मयुरा नगर में तुम तो अच्छे थे न ? इन सब दुखों को कुछ (भी) नहीं गिनती हूँ । आज सत्र दुख दूर हुए, खोया रतन श्रेष्ठ में मिला । (भले ही) अब कोकिल आकर गान करे, भौरा अपना तान अलापे, मलय पवन मन्द बहे आकाश में चंदा उदित हो । वाशुली (चण्डीदास की उपास्या) के आदेश से चण्डीदास कहते हैं, सुख विलास में दुख दूर गया ।)

कितनी मार्मिक व्यंजना है—बेमलहृदय होने के कारण ही राधा इतना सह पा रही है, पापाणवत हृदय होता तो कव का विदीण हो गया होता, बीच सब प्रकार चुपचाप सहता जाता है पर पापाण आघात का प्रतिघात करे जाता है इसीलिए ता विदीण हा जाता है ।

विरहावस्था में भी मिलन की इस आनन्दानुभूति, भावान्वास का खगद्र नाथ मित्र महाशय ने भाव-सम्मेलन नामकरण किया । मनोविज्ञान में भी

^१ चण्डीदास-वदाली (चयन)—मिलन और भाव सम्मेलन, ३ ।

यह स्थिति मान्य है, ध्यान की अत्यधिक तन्मयता में कभी-कभी एक प्रकार की भ्रान्ति हो जाया करती है जिसे "हैलुसिनेगन्" कहते हैं ।

चण्डीदास का रसादर्ग बहुत उच्च स्तर का है । स्वरूप में अरूप, सीमा में असीम लीला का आभास इन पक्तियों में कितने स्पष्ट रूप में प्रस्फुटित हुआ है :—

ए देहे से देहे एकइ रूप । तवे से जानिवे रसेरइ कूप ।

ए बीजे से बीजे एकता हवे । तवे से प्रेमेर सन्धान पावे ॥

(यह देह और वह देह जब एक रूप होंगे तभी रस-कूप (के मर्म) को जान सकेंगे । इस बीज और उस बीज में एकता होने पर तभी प्रेम का पता मिलेगा ।)

जेमति दीपिका उजरे अधिका भितरे अनल शिखा ।

पतंग देखिया पड़ये घुरिया पुड़िया मरये पाखा ॥

जगत घुरिया तेमति पड़िया कामानले पुड़ि मरे ।

रसज्ञ जे जन से करये पान विष छाड़ि अमृतेरे ॥

(जैसे दीपक भीतर अनल शिखा को लेकर अधिक प्रज्वलित होता है । पतंग उसके चारों ओर घूमते हुए पख जलाकर मर जाता है । वैसे ही जगत् में भ्रमते हुए (मनुष्य) कामानल में पड़कर जल मरता है । जो रसज्ञ है वे विष छोड़कर अमृत का पान करते हैं ।)

चण्डीदास की "पिरित" जैसी व्यापक कल्पना, ऊंचा भावादार्श और प्रगाढ अनुभूति वैष्णव-साहित्य में "दुर्लभ ही है । रस-मर्मज्ञ, सावक चण्डीदास के हृदय की भगवद् प्राप्ति की आकुलता, प्रेम-भक्ति की एकनिष्ठ शाश्वत आकांक्षा ही उनके प्रत्येक पद में गम्भीर रूप से अनुस्यूत है । प्रेम-भक्ति का यह उच्चतम आदर्ग प्रेम-पथ के पथिक के लिए चिरदिन पाथेय बना रहेगा —

ओ दुटि चरण पराणे घुरिया, नयन मुदिया याकि ।

(उन दोनों चरणों को हृदय पर रख कर, नयनों को मूदे रहती हू ।)

और—

बंधु कि आर बलिब्र आमि ।

मरणे जीवने जनमे जनमे प्राणनाथ हैय तुमि ॥

तोमार चरणे आमार पराणे बांधिल प्रेमेर फांसि ।

ए कुले ओतुले दुकुले गोकुले आपना बलिव काय ।

शीतल बलिया शरण लइनु ओ दुटि कमल पाय ॥^१

(वधु (प्रियतम) ! मैं और क्या कहूँ ?—मरण-जीवन, जन्म-जन्म में तुम्हीं प्राणनाथ होओ। तुम्हारे चरण और अपने प्राणा को प्रेम के फदे से बाधा है। सब समर्पित करके एक मन (एकनिष्ठ) होकर निश्चयपूर्वक (म) तुम्हारी दासी बनी। इस कुल, उस कुल दोना कुला तथा गोकुल में (अत्र) मैं अपना विस कहूँ। उन दोना चरण कमलों की शीतल जान कर मने शरण ली।)

चण्डीदास केवल मात्र कवि ही नहीं, प्रत्युत रसा साधक, वैरागी, परम भागवत थे। 'ऐकान्तिक भक्ति साधना एकमात्र सच्चै वणव साधका स ही वा पढी उसमें चण्डीदास अग्रगण्य ह।

मैथिल कवि विद्यापति को बंगालियों का अपनाना—

सुप्रतिष्ठित वैष्णव-कविया में स विद्यापति भी एक ह। ये मिथिला के सर्वश्रेष्ठ कवि ह। वणव भावधारा से ही अनुप्राणित होकर विद्यापति ने राधावृष्ण लीला विषयक मधुर रससिक्त पदावली की रचना की। विद्यापति के पदा के अपूर्व माधुर्य स बंगाल का चित्त इतना मुग्ध हुआ कि बहुत दिनों तक बंगाल विद्यापति को बंगाली कवि ही मानता रहा इसका प्रधान कारण था बंगाल साहित्य की ब्रजबुलि स विद्यापति की भाषा की समता। वगीय वैष्णव-साहित्य में विद्यापति के पद इतने घुलमिल गए कि सत्य के उदघाटन के बाद भी बंगाल से उनका सत्रया सम्प्रघ विच्छेद कठिन ही नहीं असम्भव हो गया। अतएव वगीय वणव-साहित्य के बीच ही विद्यापति के पदा का मूल्यांकन करना उचित होगा।

चण्डीदास और विद्यापति—

चण्डीदास और विद्यापति के काव्य में भाव साम्य होने पर भी राधा चित्रण, काव्य-शुभात्ता कवि प्रतिभा में इनो गुरु स्वामीय वणव कविया में पर्याप्त पाथक्य हैं। यदि चण्डीदास के काव्य में भाव गाम्भीर्य वा प्राधाय है तो विद्यापति के पद में भाषा चमत्कार और छन्द विन्यास वा प्राचुर्य है। चण्डीदास के काव्य को यदि भाव रत्नाकर कहें तो विद्यापति के काव्य को भाषा का ताजमहल कहना होगा। अतएव चण्डीदास और विद्यापति को यदि एक दूसरे का परिपूरक कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

^१ चण्डीदास पञ्चाङ्गी—भाष्यगमिन्तन १८४।

विद्यापति की विशेषता-

विद्यापति में निस्सन्देह असाधारण पाठित्य है। सस्कृत और प्राकृत के भाव, भाषा, शब्द, अलंकार और छन्द के अगाध भण्डार से विद्यापति ने बड़े कौशल के साथ रत्न-चयन द्वारा श्री राधा की वय सन्धि, मौन्दर्य और प्रेम-प्रसंग का अपूर्व चित्र उपस्थित किया।

विद्यापति के कुछ पद—

राधा वय सन्धि की अवस्था को प्राप्त होती है, शैशव और यौवन के सन्धि का अत्यन्त सुन्दर वर्णन विद्यापति ने किया है :—

संसव जौवन दरसन भेल ।

दुहु पय हेरइत मनसिज गेल ॥

मदन क भाव पहिल परचार ।

भिन जन देल भिन्न अधिकार ॥

कटि क गौरव पाओल नितम्ब ।

एक क तीन अओक अवलम्ब ॥

प्रगट हास अब गोपत भेल ।

उरज प्रगट अब तन्हि लेल ॥

चरन चपल गति लोचन पाव ।

लोचन क धैरज पदतल जाव ॥

नव कवि सेखर कि कहइत पार ।

भिन-भिन राज भिन्न बेवहार ॥^१

और—

खने खन नयन कोन अनुसरई ।

खने खन बसन घूलि तनु भरई ॥

खने खन दसन-छटा छुटहास ।

खने खन अधर आगे गहु वास ॥

^१ विद्यापति की पदावली-वय सन्धि, ६। तुलनीय राजशेखर का श्लोक—

पद्मा मुक्तास्तरलगतय सश्रिता लोचनाम्या

श्रोणीविम्ब त्यजति तनुता सेवते मध्यभाग ।

घत्ते वक्ष कुचसचिवतामद्वितीय च वक्तृ

तद्गात्राणा गुण-विनिमय कल्पितो यौवनेन ॥

घउकि चलए खने खन चलु मद ।

ममय पाठ पहिल अनुबध ॥

हिरदय-मुकुल हेरि हेरि धोर ।

खने आधर दए खने होय भोर ॥

याला सेसय तायन भेट ।

लखए न पारिअ जेठ कनेठ ॥

विद्यापति कह सुन वर कान ।

तरनिम ससव चिहइ न जान ॥^१

राधा क वमनीय रूप का वणन अत्यन्त मनाहारी है —

चांद-सार लए मुख घटना कर

लोचन चकित चकोर ।

अमिय घोय आचर धनि पोछलि

बह दिसि भेल उजोरे ॥

कामिनि कोने गढ़ली ।

रूप सरूप मोयें कहइत असभव

लोचन लागि रही ॥

गुरु नितम्ब भरे चलए न पारए

माझ-खानि खोनि निमाई ।

भागि जाइत मनसिज धरि राखलि

त्रिवलि लता उरझाई ॥

भनइ विद्यापति अदभुत कीतुक

ई सब बचन सरूपे ।

रूपनरायन ई रस जानधि

सिर्वासघ मिथिला भूप ॥^२

कृष्ण ने अरूप सुन्दरी राधा का भाग पर जाते देखा —

पय गति वेखल मो राधा ।

तखनुक भाय परान पए पीडलि

रहल कुमुद निधि साधा ॥

^१ विद्यापति की पञ्चवली-वय सन्धि, ९ ।

^२ वही, नखगिख, १४ ।

ननुआ नयन नलिनि जनि अनुपम
बंक निहारइ थोर ।

जनि सृखल में सगवर वांघल
दीठि नुकाएल मोरा ॥

आव बदन-ससि विहसि देखाओलि
आघ पहिलि निअ बाहू ।

किछु एक भाग बलाहक झांपल
किछूक गरामल राहू ॥^१

राधा की अपार सौन्दर्यराशि के सम्पर्क में ही समस्त प्रकृति सौन्दर्यजालिनी हो रही है :—

जहाँ-जहाँ पग युग घरई । तहि-तहि सरोरुह क्षरई ॥
जहाँ-जहाँ झलकत अंग । तहि-तहि विजुरि तरंग ॥
कि हेरल अपरुव गोरि । पइठल हिय मधि मोरि ॥
जहाँ-जहाँ नयन विकास । तहि-तहि कमल प्रकास ॥
जहाँ लहु हास संचार । तहि तहि अमिय-विकार ॥
जहाँ-जहाँ कुटिल कटाख । ततहि भदन-सर लास ॥
हेरइत से घनि थोर । अब तिन भुवन अगोर ॥
पुनु किए दरसन पाव । अब मोहे इत दुख जाव ॥
विद्यापति कह जानि । तुअ गुन देहव आनि ॥^२

यह रूप निश्चय ही लोकोत्तर है ।

अलकारो का निपुण प्रयोग विद्यापति की प्रतिभा की एक प्रमुख विशेषता है । राधा के नयनों के सौन्दर्य वर्णन में तो विद्यापति ने उपमा, उत्प्रेक्षा की सेना ही प्रस्तुत कर दी है, सभी एक से एक बढ़कर सुन्दर हैं :—

नयन-नलिनि दओ अंजन रंजइ
भौंह विभंग-विलासा ।

चकित चकोर-जोर विधि वांघल
केवल कारल पासा ॥

चंचल लोचन बांक निहारए अंजन शोभा पाय ।
जनि इन्दीवर पवन-पेलल अरि भरे उलटाय ॥

^१ विद्यापति की पदावली—प्रेम-प्रसंग, ३४ ।

^२ वही, ३५ ।

लोचन जनु यिर भग आकार ।
 मधु भातल किये उडइ ना पार ॥
 भागुक भगिम थोरि-जनु ।
 काजरे साजल मदन धनु ॥
 भौह सुरखलि आलि ।
 पकज मधु पिवि मधुकर रे
 उडय पसारल पालि ॥
 सुदर बदन चार अह लोचन
 काजर रजित भेला ।
 बनक-कमल भास काल भुजगिनि
 स्त्रीसुत एजन खला ॥

सद्यस्नाता राधिका के नेत्रों की शोभा —

नीर निरजन लोचन राता ।
 सिद्धुर मडित जनि पकज-पाता ॥

राधा-कृष्ण के प्रेम की प्रगाढ़ता की भी धवि ने उपमा के द्वारा ही समझाया है —

टूटइते नहि टूटे प्रेम अदभूत ।
 जसन बाडए भगालक सूत ॥

निम्नोद्धत पद स्पष्ट ही 'गीत-गोविन्द' के निश्चयालवार क प्रसिद्ध श्लोक^१ के अनुकरण पर रचित है —

- कत न वेदन मोहि वेसि मदना ।
 हर नहि बला मोहि जुबति जना ॥
 विभुति भूपन नहि चानन क रेनु ।
 घघछाल नहि मोरा नेतक बसनू ॥
 नहि मोरा जटाभार चिकुर क वेनी ।
 सुरसरि नहि मोरा कुसुम क खेनी ॥

^१ हृदि विसृताहारो नाय भुजगमनायक ।

कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युति ॥

भलयजरजा नेद भस्म प्रियारहिते मयि ।

प्रहर न हर भ्रान्त्यावनग द्रुघा किमु धावसि ॥ —३।११

जाति के सिद्ध होने पर ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

जाति के अनुसार ही दण्ड देना ।

१ विद्यापति की पदावली-प्रेम-प्रसंग, ४३ ।

२ पद्यकल्पतरु, १४०८ ।

कछने जावय जमुनातीर ।
 कछे नेहारब कुज कुटीर ॥
 सहचरी सये जाहा फयल फुल-खेरी ।
 कछने जोयब ताहि नेहारि ।

कृष्ण ने शीघ्र लौटने का वचन दिया था, उनकी प्रतीक्षा में राधा ने —

नखर खोपायलु दिवस लिखि लिखि ।
 नयन अधायलु पिया पथ देखि ॥^१

कृष्ण के विरह में राधा "गिनु सिनेहे बरड जनि दीव' की सी दशा में कष्ट झेलते हुए, दुःख सहते हुए श्रीहीन हो रही है। इसका वचन कवि ने किस चानुय के साथ किया है।—

सरदक ससधर भुखरुचि सापलक
 हरिन के लोचन लीला ।
 बेसपास लए घमरि के सापलक
 पाए मनाभव पीला ॥
 मापय, जानल न जिवति राही ।
 जतया जकर ले ले छलि सुदरि
 से सब सापलक ताही ॥
 दसन-दसा दालिम के सापलक
 वधु अघर रुचि देली ।
 देह दसा सौवामिनि साँपलक
 काजर सनि सखि भेली ॥
 भौहक- भग अनग-चाप दिहु
 शोकिल के दिहु बानी ।
 बेचल देह नेह अछ लजोले
 एतया अएलहुँ जानी ॥
 भनइ विद्यापति मुन बर जोवति
 चित्त झलह जनु आने ।
 राजा सिर्वासिष रुपनरापन
 लखिमा बेह रमाने ॥^२

^१ तुलसीय—जे महु दिग्गा दिअह्ण दइए पवसन्तण ।
 ताण गणन्तिए अगुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥

—हेमचन्द्र (प्राकृत व्याकरण)

^२ विद्यापति की पदावली विरह, २१३ ।

दु खिनी राधा के हृदय-निरन्तर आनन्द वहाने ने और एक नई विपत्ति आ बमकी—
विपत्त अथत्त तरु पाओल रे

पुन नव नव पात ।

विरहिन—नयन विहल विहि रे

अविरल बरिसात ॥^१...

निरन्तर बहती हुई आसू की धारा तो अब और भी बलवती और वेगवती
हो गई—

लोचन नीर तटिनि निरमाने ।

करए कलामुखि तथिहि सनाने ॥

सरस मृनाल करइ जपमाली ।

अहनिस जप हरि नाम तोहारी ॥

वृन्दावन कान्हु धनि तप करई ।

हृदय-वेदि मदनानल बरई ॥

जिव कर समिव समर कर आगी ।

करति होम बघ होएबह भागी ॥

चिकुर बरहि रे समरि का लेअई ।

फल उपहार पयोधर देअई ॥

भनइ विद्यापति चुनह मुरारी ।

तुअ पय हेरइत अठि बर नारी ॥^२

पय निहारते, प्रतीक्षा करते हुए राधा की दशा अत्यन्त व्यनीय हो रही है।
वे सोचती हैं राज-काज, सुख-ऐश्वर्य में कृष्ण को अवकाश ही कहाँ जो राधा
की सुख लें। इस अपार दुःख, अनह्य पीड़ा की अनुभूति निर्मोही कृष्ण को
एकवार अवश्य करवानी चाहिए, उसका एक ही उपाय है :—

हम सागरे त्यजव पराण । जान जनमे होयब कान ॥

कानु होयब जब राधा । तब जानव विरहक-बाधा ॥^३

धीरे धीरे राधा की दशा अत्यन्त गौचनीय होनी जाती है। विरह ने राधा को
विगिर मयिता पद्मिनी के समान मलिन और निश्चेष्ट बना दिया है। अब

^१ विद्यापति की पदावली—विरह, २०७ ।

^२ वही, २०९ ।

^३ चण्डीदास की राधा के समान ही कामना है—सागरे जाइव कामना
करिव.....

ता नीवत यहा तक आ पहुची कि वे चेतन हैं अथवा अचेतन यहा तक समझ में नही आता —

चेतन मुरछन मुझई न पारि ।

अनुखन घोर विरह ज्वर जारि ॥

और कुछ दिना के बाद तो स्थिति इतनी मार्मिक हो जाती है कि निरन्तर कृष्ण ध्यान रता राधा आत्मबोध भी खो बढती है और राधा से माधव बन जाती है यह तन्मयता की पराकाष्ठा है —

अनुखन माधव माधव सुमरइत

सुदरि भेलि मघाई ।

ओ निज भाव सुभावहि बिसरल

अपने गुन लुनुघाई ॥

माधव, अपत्य तोहर सिनेह ।

अपने बिरह अपन तनु जरजर

जियइत भेलि सदेह ॥^१

साधक की साधना की भी यही चरमावस्था है जब भक्त आत्म-बोधहीन होकर भगवान् से अभिन्न हो जाय कृष्ण न आते हों तो न आए, अब राधा ने अपनी कल्पना में, भावाधिक्य की भान्ति में कृष्ण का प्रत्यक्षवत पा लिया उनके विरह जनित दुःखों क्लेशों की समाप्ति हुई, राधा अत्यन्त प्रफुल्लित है —

आजु रजनि हाम भागे पोहायलु

पेललु पिया-मुल-चंदा ।

जीया जीवन सफल करि मानलु

बग दिन भेल निरदंदा ॥

आजु मनु गेह गेह करि माननु

आजु मनु देह भेल घेहा ।

आजु विहि मोहे अनुकुल होयल

टटत सबहु सदेहा ॥

सोइ शोबिल अब लाय लाय दापउ

लाय उदय कर चंदा ।

पांच पाण अब लाय पाण हउ

मलय पवन घनु मन्दा ॥

^१ विद्यापति की पदावली विरह, २१६ ।

अबहन जबहुं मोहे परि होयत
 तबहुं मानव निज देहा ।
 विद्यापति कह अल्प भागि नह
 घनि घनि तुया नव नेहा ॥^१

वैष्णव साहित्य में माथुर के बाद "भावन-सम्मेलन" नामक नूतन अध्याय की परिकल्पना द्वारा चण्डीदास और विद्यापति ने पूजा-गृह में ऐसा हीमानल प्रज्वलित कर रखा जो कभी बुझने का नहीं । प्रेम-वैचित्र्य विषयक विद्यापति का निम्नोद्धृत पद पदावली साहित्य में कौस्तुभ-मणि तुल्य है —

सति, कि पुछसि अनुभव मोय ।
 से हो पिरित अनुराग बज्ञानिए
 तिल तिल नूतन होय ॥
 जनम अवधि हम रूप निहारल
 नयन न तिरपिन भेल ।
 सेहो मधु बोल छवतहि सूनल
 द्युति पय परस न भेल ॥
 कत मधु-जामिनि रभस गमाओल
 न वृक्षल कइसन केल ॥
 लाख लाख जुग हिय हिय राखल
 तइओ हिय जुड़ल न गेल ॥
 कत विदगध जन रस अनुमोदई
 अनुभव फाहु न पेख ।
 विद्यापति कह प्राण जुडाएत
 लाखे न मिलल एक ॥^२

प्रेम-वैचित्र्य का यही अद्भुत वैशिष्ट्य है कि प्रेम-परिपाक के चरमोत्कर्ष के कारण मिलनोत्कण्ठा इतनी अधिक बढ़ जाती है जो अविच्छिन्न मिलन से भी मिलन-स्पृहा कभी प्रशमित नहीं होती और इसी कारण प्रेम की अनुभूति नित्य नवीन ही बनी रहती है ।

^१ पदकल्पतरु, १९९६ ।

^२ विद्यापति की पदावली—भावोल्लास, २२७ ।

तुलनीय—यदपि परस्परमिलन हरिगोपीनां चिरान्न विच्छिन्नम् ।

तदपि न तृष्णा शान्ता स्वाप्तिकमाने यथा पिपामूनाम् ॥

—गोपाल-चम्पू-पूर्वार्ध, ३३।४ ।

विद्यापति ने अब तक ता राधाकृष्ण के लीला विलास का ही वणन किया, अन्त में कवि भगवान् श्रीकृष्ण में आत्म समर्पण करते हुए कहता है —

माधव, बद्धत मिनति कर तोय ।

दए तुलसी तिल देह समर्पिनु

दय जनि छाडबि मोय ।

गनइत दोसर गुन लेस न पाओबि

जब तुहु करबि विचार ।

तुहु जगत जगनाय कहाओसि

जग बाहिर न इ छार ॥

किए मानुस पशु पखि भए जनमिए

अथवा कीट पतंग ।

करम बिपाक गतागत पुनु पुनु

मति रह तुअ परसंग ॥

भनइ विद्यापति अतिसय कातर

तरइत इट भव सिधु ।

तुअ पद-पल्लव करि अबलम्वन

तिल एक देह दिनबधु ॥^१

क्षण भगुर भौतिक वस्तुआ के भोग के अनन्तर निराशा और ग्लानि ही हाय लगती हैं । विद्यापति सचेत हुए हैं अत अब के जगतारण दीन दयालु माधव पर ही अपने जीवन को तारने का भार सौंप कर निश्चिन्त होते हैं —

तातल सकत बारि विडु सम

सुत मित रमनि-समाज ।

तोहे विसारि मन ताहे समरपिनु

अथ मझु हब कोन काज ॥

माधव, हम परिनाम निरासा ।

तुहु जगतारन दीन दयामय

अतए तोहर विसधासा ।

आथ जनम हम नौद गमायनु

जरा सिमु कत दिन गेला ।

निधुवन रमनि रभस रग मातनु

तोहे भजब कोन बेला ॥

^१ विद्यापति की पदावली प्राथना और नचारी, २५२ ।

कत चतुरानन मरि मरि जाओत
 न तुअ आदि अवताना ।
 तोहे जनमि पुन तोहे नमाओत
 नागर लहरि समाना ॥
 भनइ विद्यापति सेप समन भय
 तुय विनु गति नहि आरा ।
 आदि अनादि नाथ कहाओसि अव
 तारन भार तोहारा ॥^१

विद्यापति ने काव्य के आरम्भिक अध्यायो में राधा की वय सन्धि, सौन्दर्य, अनुराग, अभिमार, मिलन, मान में संस्कृत अलंकार धान्त्र का ही मुख्य रूप से अनुगमन किया जिससे उन वर्णनों में विलास का पक्ष ही अत्यधिक प्रबल हो उठा है पर क्रमशः विरह, भाव-सम्मेलन, प्रार्थना के पदों में वैष्णव भाव और स्वर ही प्रधान होते गये ।

सूर्य के साथ उपाकाल का जो योग है, वही योग इन प्राक् चैतन्ययुगीय वैष्णव काव्य रचयिताओं के साथ श्रीचैतन्य का है । ये वैष्णव-काव्य चैतन्य देव के अरुणोदय के सूचक थे । चैतन्य युग से पूर्व बंगाल प्रान्त में श्रीकृष्ण लीला विषयक संस्कृत के प्रकीर्ण श्लोक, पद तथा काव्य पर्याप्त मात्रा में रचे जा चुके थे अवश्य; पर यह तो निश्चित ही है कि श्रीचैतन्य प्रचारित प्रेमधर्म के प्रचार से वैष्णव-साहित्य ने जैसी विस्तृति और प्रचार पाया, उसका यह रूप पहले न था । बंगाल के वैष्णव-साहित्य में राधा को प्रधानता मिलने लगी थी पर उसकी पूर्ण परिणति श्रीचैतन्य में ही आकर हुई, कहना यो चाहिए कि श्रीचैतन्य द्वारा ही राधा भाव की प्राण-प्रतिष्ठा हुई । बंगाल की प्राचीन वैष्णवीय भक्ति द्वारा चैतन्य-युग में आकर विशिष्ट स्वरूप ग्रहण करती है ।

^१ विद्यापति की पदावली—प्रार्थना और नचारी, २५३ ।

दूसरा अध्याय

ब्रजभाषा का उद्भव और विकास

पिछले पन्नों में हम वैष्णव धर्म के स्वरूप, राधा कृष्ण-कथा का विकास तथा मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के पूर्व व वैष्णव वाक्य-साहित्य की चर्चा करते रहे हैं। प्रस्तुत अध्याय में ब्रजभाषा के उद्भव और विकास पर विचार करेंगे।

काल्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा—

काल और क्षेत्र की दृष्टि से ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास अत्यन्त महत्व का है। वाक्य भाषा के रूप में इसका व्यवहार बहुत पहले से होना आ रहा है। साहित्य की दृष्टि के लिये इस भाषा का प्रयोग एक बहुत बड़े भूभाग में दीर्घकाल से होता रहा है। कहा जा सकता है कि वाक्य भाषा के रूप में इसका प्रचार समस्त उत्तरी भारत में था।^१ ब्रजभाषा १२०० से १८५० ई० तक के सुदीर्घ काल के अधिकांश भाग में सारे उत्तरी भारत, मध्य भारत तथा राजपूताना, और कुछ हद तक पंजाब की भी सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक भाषा बना रही।^२

ब्रजभाषा-साहित्य की व्यापकता—

वास्तव में आधुनिक हिन्दी के प्रसार और उसमें साहित्य रचना के पूर्व उत्तरी भारत में ब्रजभाषा का ही बोलचाल था। सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी से लेकर सन् ईसवी की अठारहवीं शताब्दी तक का काल प्रमुख रूप से ब्रजभाषा साहित्य का काल है। इस प्रकार से इन शताब्दियों का हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रधानतया ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास है। सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य भक्त कवियों की रचना ब्रजभाषा साहित्य की अपूर्व निधि है। तुलसादास ने यद्यपि 'रामचरितमानस' की रचना अवधी भाषा में की है लेकिन उनकी कई श्रेष्ठ रचनाएँ जैसे, कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका ब्रजभाषा की ही रचनाएँ हैं। उनकी अवधी में भी ब्रजभाषा का मिश्रण है, जो कि स्वाभाविक ही है। अष्टछाप के भक्त कवियों के अलावा अन्य सकल कवियों की रचनाओं से ब्रजभाषा का साहित्य अलङ्कृत हुआ है।

^१ रामचन्द्रगुप्त बुद्ध चरित की भूमिका, पृ० ४ तथा प्रभुदयाल मीसल ब्रजभारती (फाल्गुन सं० २००० विप्रमास), पृ० ६।

^२ डा० सुनीतिनुमार चटर्जी भारतीय आमभाषा और हिन्दी, पृ० १८९।

रीतिकाल के कवियों में विहारी, भक्तिराम, घनानन्द, रमगान, देव, मेनापति तथा पद्माकर आदि ने ब्रजभाषा-साहित्य को अत्यन्त समृद्ध किया है। ब्रजभाषा-साहित्य प्रमुख रूप से भक्ति और शृंगार की रचनाओं का भण्डार है। वैसे अन्य विषयों की ओर भी ब्रजभाषा के कवियों का ध्यान गया है। ज्ञान, वैराग्य, नीति, ज्योतिष आदि का भी समावेश इस साहित्य में है। वनभ्रमणों से जन्म लेनेवाली अन्य उत्तरभारत की भाषाओं के साहित्य ने ब्रजभाषा का साहित्य अविनाशमय है परिमाण की दृष्टि से भी और काव्यगत्य की दृष्टि से भी।

सन् ईसवी की १६ वीं शताब्दी की छिटफुट रचनाएँ—

सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी से तो ब्रजभाषा का काव्य-भाषा के रूप में पूर्ण अधिकार हो गया था, लेकिन उसके बहुत पहले ही पुराने कवियों ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना की थी जिसका पता छिटफुट उधर-उधर ही रचनाओं में मिल जाता है। लेकिन यह नहीं है कि पहले तो वैसे कोटि बड़ी रचना प्राप्त नहीं होती जिनमें केवल ब्रजभाषा को ही अपनाया गया हो। बाद में चलकर वैष्णव कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा में अपूर्ण साहित्य का निर्माण किया। ब्रजभाषा-साहित्य के नूतन और प्रचार में बल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों और उनके शिष्य-प्रशिष्यों का बहुत बड़ा हाथ है। बल्लभ-सम्प्रदाय का जहाँ-जहाँ प्रभाव था वहाँ ब्रजभाषा साहित्य श्रद्धा और समादर पाता रहा। धार्मिक क्षेत्र में निकलकर अपने माधुर्य गुण के कारण उन साहित्य और भाषा ने जाति-वर्ग निर्विशेष जन-माचारण ने लेकर राजा-महाराजाओं और मुसलमान बादशाहों तक अपना प्रभाव विस्तार किया।

“ब्रजभाषा” शब्द का प्रयोग—

“ब्रजभाषा” शब्द का प्रयोग बहुत हाल से होने लगा है। बहुत दिनों तक यह विश्वास किया जाता रहा है कि “ब्रजभाषा” शब्द का उल्लेख सन् ईसवी की अठारहवीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता।^१ भिखारीदास के “काव्य निर्णय” में ब्रजभाषा शब्द का प्रयोग मिलता है।^२ इसी प्रकार से लल्लू लाल ने भी “राजनीति” में इसका प्रयोग किया है।^३ ब्रजप्रदेश की भाषा के रूप

^१ धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा, पृ० १७।

^२ वही, (पादटिप्पणी-२) “ब्रजभाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोय।”

^३ वही।

में 'पिंगल', "भाखा" नाम से इसका परिचय मिलता रहा है। मोतीलाल मेनारिया ने दिखलाया है कि "ब्रजभाषा" शब्द का प्रयोग 'भित्तारीदास' से पहले मिलता है।^१ श्री मेनारिया ने गोपाल वृत्त रसविलास^२ (स० १६६४) से निम्नलिखित उद्धरण दिया है —

मद्भाषा निरमल तजी, करि ब्रजभाषा चोज ।

अब गुपाल या तें तह, सरस अनोपम मोज ॥

इसी प्रकार समर्थ वृत्त रसिकप्रिया की टीका (स० १७५५) में भी "ब्रजभाषा" शब्द का प्रयोग ही नहीं है, बल्कि उसे "मुरभाषा" से भी 'अधिक' कहा गया है क्योंकि 'ब्रज भूपन' (कृष्ण) की भाषा थी।

'मुरभाषा तें अधिक है ब्रजभाषा सो हेत ।

ब्रजभूपन जाको सदा, मुर भूपन धरि लेत ॥"^३

इन उद्धरणों से पता चलता है कि "ब्रजभाषा" शब्द का प्रयोग सन ईसवी की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होने लगा था।

'पिंगल' पुरानी ब्रजभाषा का नाम—

प्राचीन ब्रजभाषा के लिये "पिंगल" शब्द का प्रयोग होता रहा है। कहते हैं कि पिंगल छन्द के आचार्य थे और साधारणतः पिंगल छन्द-शास्त्र के लिये व्यवहृत होता है। संभवतः "प्राकृत पंगलम" के बाद "पिंगल" शब्द भाषा के लिये रूढ़ हो गया था। तेस्रोतरी ने "प्राकृत पंगलम" की भाषा को "पिंगल अपभ्रंश" कहा है।^४ डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने प्राचीन ब्रजभाषा या "पिंगल" की चर्चा करते हुए बतलाया है कि राज्याथय पाकर यह भाषा उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग की साहित्य भाषा हो गई थी। उन्होंने इसे शौरसेनी अपभ्रंश का कनिष्ठ रूप कहा है जिसका पता राजस्थान में सन ईसवी की बारहवीं शती में चलता है। यह "अवहट्ट" या पिंगल के

^१ राजस्थान का पिंगल साहित्य प० १० ।

^२ अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति (संवत् १७४९), पृष्ठ ४५ ।

^३ दानसागर भंडार, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति (स० १७९९) पृष्ठ १७ (राजस्थान का पिंगल साहित्य, प० १० पर उद्धृत) ।

^४ इंडियन एंटीक्वरी, १९१४, पृ० २२ ।

नाम से सुपरिचित थी^१। डा० ग्रियर्सन ने इस काल की इस साहित्य-भाषा का जिक्र करते हुए बतलाया है^२ कि स्थान-विशेष के अपभ्रंशों की रचनाएँ जब अधिक लोकप्रिय हुईं और उनकी एक विशेष परम्परा सुप्रतिष्ठित हो गई तब एक विशेष अपभ्रंश के रूप में साहित्य-रचना के लिये उनका प्रवर्तन हुआ। काव्य-भाषा के रूप में इस अपभ्रंश ने उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग पर अधिकार जमा लिया। इसे बहुत लोगों ने गौरसेनी अपभ्रंश कहा है। इसे ग्रियर्सन ने साहित्यिक अपभ्रंश माना है जो उस बड़े भूभाग में सर्वमान्य हो गया था लेकिन वे इसे गौरसेनी प्राकृत का उत्तर विकारी नहीं मानते।^३

परिनिष्ठित अपभ्रंश—

गूरसेन प्रदेश—ब्रजमंडल—के गौरसेनी अपभ्रंश में पिगल या ब्रजभाषा उत्पन्न हुई। गौरसेनी अपभ्रंश परिनिष्ठित अपभ्रंश थी। हेमचन्द्राचार्य ने इसी परिनिष्ठित अपभ्रंश का व्याकरण लिखा है। यह काव्य-भाषा सन् ईसवी की नवी गताब्दी से लेकर सन् ईसवी की बारहवीं गताब्दी तक पश्चिम पंजाब, गुजरात, राजस्थान से लेकर पूर्व में आसाम, बंगाल और मिथिला तक प्रचलित थी। स्थान-विशेष में थोड़ा इसका रूप-परिवर्तन भी देख पड़ता है। इसमें प्रान्त विशेष के शब्दों का समावेश होना स्वाभाविक ही था। यह शिष्ट समाज की भाषा हो गई थी और राजदरबारों में इसका खूब सम्मान था। यह इतनी व्यापक हुई कि सिद्ध महात्माओं ने भी अपनी रचनाओं के लिए इसका आश्रय लिया। एक प्रकार से उत्तर भारत की यह राष्ट्रभाषा-सी हो गई थी। लेकिन इसके बाद की शताब्दियों में बीरे-बीरे इसमें परिवर्तन होता गया फिर भी सन् ईसवी की चौदहवीं गताब्दी तक कम या বেশी परिवर्तनों के साथ यह साहित्य की भाषा बनी रही। फिर भी अपभ्रंश की विभिन्न बोलियों का विकास होता रहा और सन् ईसवी की पंद्रहवीं गताब्दी तक आते आते उनमें से कई बोलियों में साहित्य की रचना होने लगी। परवर्ती अपभ्रंश को “अवहट्ट” कहा गया है।

^१ ओरिजिन एन्ड डेवलपमेन्ट आफ वैगाली लैंग्वेज, पृ० ६४।

^२ लिग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, जिल्द १, भाग १, पृ० १२४।

^३ वही पृ० १२५ (पाद-टिप्पणी)।

अवहट्ट—

“अवहट्ट” को परिनिष्ठित अपभ्रंश और आज की विकसित भिन्न प्रदेशों की बोलियों के बीच की कड़ी कह सकते हैं। वैसे यह कहना बठिन है कि परवर्ती अपभ्रंश कब और कहा समाप्त हुई और पुरानी हिंदी का कहा आरम्भ हुआ^१। “अवहट्ट” वास्तव में उस भाषा का रूप था जो काल क्रम से परिनिष्ठित अपभ्रंश के विकास स्वरूप अपना-स्थान बना चुकी थी। परिनिष्ठित अपभ्रंश से यह भिन्न हा चुकी थी, लेकिन इसके मूल में पश्चिम अपभ्रंश की प्रवृत्तियाँ ही क्रियाशील थीं। ‘अवहट्ट’ शब्द का पहला प्रयोग अब्दुल रहमान के ‘सदेशरागक’ में मिलता है जो समवन चारहवीं शताब्दी या उससे भी थोड़ा पहले का काव्य है। फिर ज्योतिरीश्वर ठाकुर के वर्णरत्नाकर में मिलता है। वर्णरत्नाकर सन ईसवी की चौदहवीं शताब्दी की रचना है। विद्यापति ने भी ‘कीर्तिलता’ में ‘अवहट्ट’ का प्रयोग किया है —

‘दिसिल बअना सय जन मिठठा ।

त तसन जम्यओ अवहट्टठा ॥

प्राकृत पंगलम्’ के टीकाकार वशीधर ने ‘प्राकृत पंगलम्’ की भाषा को अवहट्ट” कहा है^२। अब्दुलमान ने भी अवहट्ट” का प्रयोग किया है^३।

अवहट्ट उत्तरभारत की सामान्य काव्य-भाषा—

इस प्रकार से हम देखते हैं कि अवहट्ट का प्रयोग पूर्वी और पश्चिमी दोनों भाग के कवियों ने किया है। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तर भारत में यह काव्य भाषा थी जिसका आश्रय भिन्न भिन्न अचला के कवियों ने लिया है। भले ही भिन्न भिन्न अचला के शब्द और प्रयोग उसमें आ गए हैं फिर भी भाषा प्रायः समान ही थी। इस प्रकार से व्यापक होने के कारण इसके कई रूप वर्तमान हैं। जिन अचला के कवियों ने इसका उपयोग किया है, उसने अपने अचल की बानी की विशेषता तथा शब्दों का उसमें समावेश किया है। भाषा की दृष्टि से यह सामान्य काव्य भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश से अलग हो गई थी। ‘अवहट्ट’ काल में

^१ चन्द्रधर गर्मा गुलेरी पुरानी दिल्ली, पृ० ११।

^२ प्राकृत पंगलम् पृ० ३।

^३ मन्देशरासक १६।

परसर्गों का प्रयोग अधिक बढ़ गया जैसे यह प्रवृत्ति अपभ्रंग काल में ही प्रारम्भ हो गई थी। सर्वनामों और क्रियापदों में बहुत सी नवीनताएँ परिलक्षित होने लगी।

अवहट्ठ पर प्रान्त विशेष की छाप—

अवहट्ठ की व्यापकता को स्वीकार करते हुए डा० मुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखा है, “ब्रजवुलि इस बात का द्योतक है कि एक वनावटी भाषा भी दूसरे प्रांत में काव्य-भाषा के रूप में किस प्रकार ग्रहण की जा सकती है और इसी से इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि किस प्रकार गौरसेनी अपभ्रंश या अवहट्ठ मध्यदेश के अलावा बंगाल आदि में छाया हुआ था^१।” जहाँ तक पश्चिमी प्रान्तों, राजस्थान आदि का प्रश्न है, डा० मुनीतिकुमार चटर्जी ने कहा^२ है कि राजस्थान में अवहट्ठ “पिंगल” नाम से परिचित था। इस प्रकार से हम देखते हैं कि एक काल में “अवहट्ठ” उत्तर भारत की सामान्य काव्य-भाषा थी। लेकिन इस बात को स्वीकार कर लेने पर भी कि “अवहट्ठ” एक सामान्य काव्य-भाषा के रूप में प्रचलित था, यह मानना होगा कि प्रान्त विशेष की छाप उसपर अवश्य रही है। यही कारण है कि गिवनन्दन ठाकुर, डा० उमेश मिश्र आदि ने कीर्तिलता की भाषा को गौरसेनी अपभ्रंग नहीं माना है^३। साथ ही परवर्ती अपभ्रंग में विभिन्न प्रान्तीय बोलियों की कुछ विशेषता को देखकर उन बोलियों का उस परवर्ती अपभ्रंश से विकसित होने की बात कही जाती है। लेकिन अविकांग विद्वान् अवहट्ठ का मूल गौरसेनी अपभ्रंग में खोजते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इस सम्बन्ध में कहना है^४, ‘प्राचीन आर्यभाषा की भिन्न-भिन्न स्थानों की बोलियों को थोड़ा बहुत समेट कर, पर पश्चिमोत्तर की “भाषा” का ढाँचा आधारवत् रखकर जिस प्रकार संस्कृत खड़ी हुई, उसी प्रकार पीछे से यह काव्य-भाषा भी पछाही बोली (ब्रज से लेकर मारवाड़ और गुजरात तक की) का आधार रखकर, और बोलियों को भी थोड़ा बहुत समेटती हुई चली और बहुत दिनों

^१ ओरिजिन एन्ड डेवलेपमेन्ट आफ बेंगाली लैंग्वेज, पृ० १०४ (कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, पृ० १२ पर उद्धृत।)

^२ वही, पृ० ११४।

^३ कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, पृ० १।

^४ बृद्ध चरित की भूमिका, पृ० १।

तक केवल अपभ्रंश या भाषा ही कहलाती रही।" इसी प्रकार से चंद्रघर शर्मा गुलेरी का कहना है कि 'जैसे-जैसे ब्रजभाषा के सब सामान्य भाषापद पर आरूढ़ होने पर उसका प्रयोग प्रत्येक प्रान्त के निवासी करने लगे और अपने प्रान्त के प्रयोग जाने-अनजाने उसमें रस चले पर रूढ़ि ब्रजभाषा ही रही, वैसी ही स्थिति अपभ्रंश की भी थी।"

पूर्वा और पश्चिमी अवहट्ट—

मोटे तौर पर अवहट्ट के दो भेद किए जा सकते हैं—(१) पूर्वी अवहट्ट और (२) पश्चिमी अवहट्ट। इस भेद का आधार पश्चिमी तथा पूर्वी प्रान्ता के प्रयोग विशेष है। हम ऊपर देख चुके हैं कि सामान्य काव्य-भाषा में स्थानीय शब्द का प्रयोग होना रहा है लेकिन यह भी सत्य है कि इन दो भागों को स्वीकार कर लेने पर भी दोनों अवहट्टों के रूप और प्रयोग दोनों अवहट्टों की रचनाओं में मिलते हैं। पूर्वी अवहट्ट की रचनाओं में पश्चिमी अवहट्ट के प्रयोग तथा पश्चिमी अवहट्ट की रचनाओं में पूर्वी अवहट्ट के प्रयोग मिलते हैं। पूर्वी अवहट्ट की रचनाएँ मिथिला, नेपाल आसाम, बंगाल तथा उड़ीसा में मिलनी हैं। इनकी चर्चा हमने 'ब्रजबुलि साहित्य के उद्भव और विनाश' वाले अध्याय में की है। पूर्वी अवहट्ट की प्रमुख रचनाओं में विद्यापति की 'कीर्तिलता', ज्यातिरीश्वर ठाकुर का 'वणरत्नावर' तथा दामोदर पण्डित का "उक्ति व्यवहित प्रवरण" आदि हैं। प्राकृत पैगलम् में भी कुछ पूर्वी प्रयोग पाए जाते हैं। पश्चिमी अवहट्ट की विशेषताएँ सदैव रासक, पुरातन प्रबन्ध, प्राकृत पैगलम्, रणमत्त छंद, पृथ्वीराज रासा, सूरपूर्व ब्रजभाषा, पुरानी राजस्थानी और गुजर वाक्य सग्रह की रचनाओं आदि में पायी जाती हैं।

पूर्वी अवहट्ट की रचनाएँ—

पूर्वी भारत की उस काल की रचनाएँ अधिक प्राचीन और प्रामाणिक हैं। अभी तक उस काल की जितनी भी रचनाएँ मिलती हैं उनमें "वण-रत्नावर" अधिक महत्त्व का है। यह उपलब्ध रचनाओं में प्राचीनतम तथा प्रामाणिक है। इसी के समान "कीर्तिलता" का भी महत्त्व है। "वर्ण-रत्नावर" गद्य में है, वैसे उग्र गद्य में प्रौढ़ता नहीं है। "वणरत्नावर" सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल की रचना है।

^१ पुरानी हिन्दी, बक्तख्य पृ० १।

वैसे सुनीतिकुमार चटर्जी ने “टीका सर्वस्व” ग्रन्थ का जिक्र किया है^१। यह सन् ११५९ ई० की रचना है। बंगला भाषा के “ध्वनि-विचार” की दृष्टि से सुनीति बाबू ने इसे महत्त्वपूर्ण माना है। “वर्णरत्नाकर” भी मैथिली के “ध्वनि-विचार” की दृष्टि से महत्त्व रखता है वर्णरत्नाकर अथवा कीर्त्तिलता में पदों में तुकान्त का प्रयोग मिलता है और कभी-कभी वाक्य के अन्त में भी इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। तत्सम गन्दों का प्रयोग उस काल में उतनी बहुलता से नहीं हुआ है जितना कि बाद में देखने को मिलता है। वर्णरत्नाकर की भाषा बंगला और अवधी दोनों से मिलती-जुलती है। इसमें कीर्त्तिलता की अपेक्षा तत्सम गन्दों का प्रयोग अधिक है। “क्ष” के लिये “ख”, “व” के लिये “व” तथा “ड” के लिये “ल” का प्रयोग मिलता है। “कीर्त्तिलता” में गद्य-पद्य दोनों हैं। यह “वर्णरत्नाकर” से लगभग एक शताब्दी बाद की रचना है। कीर्त्तिलता की भाषा में अव्यवस्था और अनिश्चितता के दर्शन होते हैं। यह उस काल की भाषा सबधी अनस्यैर्य का परिचय देने वाला है।

पश्चिमी अवहट्ट की रचनाएँ—

पश्चिमी अवहट्ट या पूर्वी अवहट्ट की चर्चा करते समय यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि यह विभाजन क्षेत्रीय विशेषताओं के आधार पर किया जाता है और यह भेद पूर्ववर्ती अपभ्रंश पर भी लागू होता है। यह प्रवृत्ति पहले से ही रही है। पश्चिमी अवहट्ट की विशेषताओं का अध्ययन प्राकृत पैगलम्, पृथ्वीराज रासो आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है। “प्राकृत पैगलम्” में छन्दों के लक्षण और उदाहरण संगृहीत हैं। यह ग्रन्थ सभवतः सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी का है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी इसका रचनाकाल सन् ९०० ई० से लेकर सन् १४०० ई० के बीच में मानते हैं। उनके मतानुसार इसके अधिकांश पद्य गौरसेनी अपभ्रंश या “अवहट्ट” के हैं^२। तेसीतोरी के मत से इसकी भाषा सन् ईसवी की दसवीं से लेकर सन् ईसवी बारहवीं शताब्दी की भाषा के स्वरूप का परिचय देती है।^३ “पृथ्वीराज रासो” से भी इस काल की भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश

^१ ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेंट आफ वेगाली लैंग्वेज, पृ० १०९, ११०, ११२।

^२ वही, पृ० ६४।

^३ इंडियन ऐण्टीक्वेरी (१९१४), पृ० २२।

पड़ता है। लेकिन इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसके काल आदि को लेकर बहुत ही मतभेद है। फिर भी रासा में ऐसे बहुत से छन्द हैं जिनसे तत्कालीन ब्रजभाषा के स्वल्प का परिचय मिल सकता है।

“ब्रजभाषा” की भाषा सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ—

इसके पहले कि हम ब्रजभाषा-साहित्य के श्रमिक विकास पर विचार करें ‘ब्रजभाषा’ की भाषा-सबधी कुछ विशेषताओं की मोटे तौर पर कुछ जान बारी प्राप्त कर लेना समाचीन होगा।

(१) प्राचीन ब्रजभाषा में मनाए स्वरान्त होती है। जैसे सौहि, मायो आदि।

(२) ओकारान्त सज्ञाए ब्रज की एक प्रमुख विशेषता हैं।^१ डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने बतलाया है कि खड़ी बोली के पुर्लिंग सज्ञा शब्द ‘आकारान्त’ होने हैं वहा ब्रजभाषा में साधारण सज्ञा शब्द और विशेषण ओकारान्त या ‘ओ-कारान्त’ हान है।^२ ब्रजभाषा के पुर्लिंग शब्दों के अन्त में प्रायः ओ जोड़ते हैं।^३ इसा प्रकार से केलग ने भी कहा है कि ब्रजभाषा में पदान्त का “ओ” विशेषणा और क्रियाओं में प्रायः ‘ओ’ ही जाता है। “आ” वारान्त के स्थान पर ‘ओ’ वारान्त का प्रयाग सूरदास के बाद प्रायः ही देखने को मिलता है।

(३) प्राचीन ब्रजभाषा में “ण” के स्थान पर ‘न’, ‘व’ के स्थान पर ‘व’ और ‘ग’ के स्थान पर “स” का प्रयोग मिलता है।

(४) ब्रजभाषा में द्वित्वो का अभाव है। यह प्रवृत्ति कोमलता के अनुराध से समवत् ब्रजभाषा में दीव पड़ती है जैसे ‘बहिज्जइ’ वा ‘बहीजे’ दृश्यते वा ‘दीसइ’ आदि।

(५) पिगल में ङ और ‘ल’ अगर किसी शब्द के अन्तिम अक्षर हो ता प्रायः वे “र” ही जान है जस ‘पनाले’ वा ‘पनार’, मिडे’ वा ‘मिरे’ आदि। ङ’ वा पिगल में ‘छ’ वर दत है जस ‘मिति वा ‘छिति’ “क्षमा वा ‘छमा”।

^१ पारद्वर्मा ब्रजभाषा पृ० ५७।

^२ भारतीय भाषाभाषा और हिन्दी, पृ० १८४।

^३ मिर्जा खानसू ग्रामर आफ ब्रजभाषा (जिवाउद्दीन) पृ० ४७।

^४ ग्रामर आफ दि हिन्दी लंग्वेज, पृ० १२८।

(६) पुल्लिग सज्ञा शब्दों के समान विशेषण, आकारान्त साधारण क्रियाएँ, भूतकालिक कृदन्त तथा सवध कारक के सर्वनाम धीर परसर्ग, ओकारान्त होते हैं। जैसे गयो, देतो, मेरो, आछो, आदि।

(७) अनुस्वार के ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति भी ब्रजभाषा में पाई जाती है, जैसे "पक्ति" का "पाँत"।

(८) प्राचीन ब्रजभाषा में बहुवचन बनाने के लिये "न" का प्रयोग करते थे। उसके पूर्व का स्वर अगर दीर्घ हो तो वह ह्रस्व हो जाता है, वैसे कभी-कभी ह्रस्व, दीर्घ भी हो जाता है। मूल शब्द अगर इ, ई में अंत होते हो तो प्रत्यय लगाने के पहले "य" जोड़ा जाता है। वैसे "न" के स्थान पर 'नि' और 'नु' का भी प्रयोग करते हैं।

(९) सर्वोचन बहुवचन के लिये व्यजनान्त मज्ञाओं में 'औ' जोड़ते हैं लेकिन अगर सज्ञाएँ स्वर में अन्त होती हो तो 'औ' जोड़ने के पहले ई और ऊ को ह्रस्व कर देते हैं। आ, ए या जो अन्त में हो तो उनके स्थान पर 'औ' जोड़ते हैं। जैसे ब्राह्मनी, बहुओ, भइओ।

(१०) ब्रजभाषा के प्राचीन लेखकों ने 'हं' का प्रयोग समान रूप से किया है वैसे 'मे' का भी प्रयोग प्राचीन ब्रजभाषा में मिलता है। इनके अलावा हो, हूँ तथा मे का भी प्रयोग देखने को मिलता है।

(११) प्राचीन ब्रज में सवध वाचक सर्वनाम के नियमित रूप जो, जै, जा, जिन मिलते हैं।

(१२) जाहि, जिहि का प्रयोग सभी कारकों में बिना परसर्ग के होता है।

(१३) ब्रजभाषा-समूह में विभिन्न सर्वनामों के तिर्यक् रूप ता, वा, या, जा, का, साधित हैं, जबकि खड़ी बोली-समूह में वे 'तिस' उस, जिस, किस आदि को लेकर बनते हैं^१। खड़ी बोली में जिसने, उसको, किसने आदि बनते हैं और ब्रजभाषा में वानै, जाकौ आदि।

(१४) पिंगल में निर्विभक्तिक पद प्रायः कम देखने को मिलते हैं।

(१५) ब्रजभाषा की असमापिका क्रियाओं की विशेषता समुक्त पूर्वकालिक

^१ भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ०-१८४।

क्रियाया के प्रयोग में है। जैसे, भई जुरी व खरी, इसमें पूर्वकालिक क्रिया के साथ कृ घातु का पूर्वकालिक रूप दखने को मिलता है।

(१६) 'हो' घातु का ब्रजभाषा में 'हुतो' और 'हुतो' या 'हो' होता है, वैसे चलती दोली में हुतो और हुते, का हा' और 'हे रूप प्राय दखने का मिलता है।

(१७) आज्ञा और विधि में ब्रजभाषा घातु में 'इयो लगता ह। जैसे जाइयो, रहियो आदि।

(१८) अधिकरण का चिह्न प का प्रयोग करण और आपादान व अर्थ में भी ब्रजभाषा में मिलता है जैसे 'तू अलि। काँप कहत बनाय।'

प्राचीन काव्य भाषा का रूपान्तर—

हम यह स्पष्ट चुके हैं कि काव्य भाषा के रूप में एक ऐसी भाषा का ध्वनहार था जो प्रायः समस्त उत्तर भारत में फैली हुई थी तथा उस काव्य भाषा में ब्रजभाषा के पूर्व रूप को ढूँढा जा सकता है। इसका ढाँचा मुख्य रूप से पश्चिमी था, वस क्षेत्रीय भाषाया का रण इसमें कभी-कभी इतना गाढ़ा हो गया है कि एव ही उदाहरण में काइ गुजराती के पूर्व रूप बूढता है तो काई राजस्थानी के। इसी प्रकार से 'बौद्ध गान और दोहा' के प्रकाशित होने पर किसी ने उममें यगला का पूर्व रूप दूढा ता किमी ने उडिया या असमिया अथवा मथिली का, यद्यपि वह अपभ्रंश की रचनाया का सग्रह है। इन काव्यभाषा में किस तरह परिवर्तन हुए और किस समय से क्षेत्रीय भाषाया का विवास हुआ इसकी निश्चित तिथि बतलाना कठिन है। गुणेश जी ने इसे ही लक्ष्य करके कहा है कि अपभ्रंश वहाँ समाप्त होता है और पुरानी हिन्दी वहाँ आरम्भ हाती है, इसका निणय करना कठिन है, किन्तु रोचक और बड़ महत्व का है। इन दो भाषाया के समय और देश के विषय में स्पष्ट रेखा नहीं खींचा जा सकती।'

आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदय—

इस काव्य भाषा के माल को लेकर भाषा प्रचार के मतभेद हैं। आधुनिक भारतीय भाषा भाषाया की रचनाएँ सन् ११वीं, १२वीं, १३वीं शताब्दी में मिलने लगी हैं। इसका मतलब यह है कि इनके पूर्व ही अपभ्रंश का

१ पुरानी हिन्दी, पृ० ११।

काल समाप्त हो जाता है। तगारे ने अपभ्रंश का अंतिम काल १२०० ई० माना है^१। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में ही 'हिन्दी की काव्य-भाषा के पूर्व रूप' को देखा है^२। गुलेरी जी का कहना है कि 'विक्रम की सातवीं शताब्दी से ग्यारहवीं तक अपभ्रंश की प्रचलना रही और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई^३।' डा० तेजीतारी इन व्यापक काव्य-भाषा को स्वीकार करते हुए अपभ्रंश और पिंगल अपभ्रंश में भेद करते हैं। पिंगल अपभ्रंश का काल तेजीतारी ने मन् ईसवी की दसवीं शताब्दी से सन् ईसवी की बारहवीं शताब्दी तक के काल को माना है^४।

परवर्ती अपभ्रंश में ब्रजभाषा का पूर्व रूप—

ब्रजभाषा के पूर्वरूप को परवर्ती अपभ्रंश की रचनाओं में हम देख पाते हैं। इन रचनाओं में गद्य का अभाव है। अधिकांश रचनाएँ पद्य में हैं। इन रचनाओं में आने वाली आधुनिक आर्य भाषाओं का आभास मिलने लगता है, 'पुरातन प्रवन्ध', 'प्रवन्ध चिन्तामणि', 'प्राकृत पैगलम्' आदि में बहुत से ऐसे पद्य आए हैं, जिनमें भाषा के बदलते हुए रूप पर प्रकाश पड़ता है। हेमचन्द्र के व्याकरण में निम्नलिखित दोहा आया है —

बाह विछोडवि जाहि तुहुँ, हउँ तेवई को दोसु ।

हियअट्ठिअ जइ नीसरहि, जाणउँ भुंज सरोसु ॥

गुलेरी जी इस दोहे को सं० ११९९ से पहले की रचना मानते हैं^५। 'पुरातन प्रवन्ध' में ऐसे छंद हैं जो हिन्दी के निकट हैं। जैसे —

चारि पाय विचि डुडुगुसु डुडुगुसु । जाइ जाइ पुणु रुडुघुसु रुडुघुसु ॥

आगलि पाछलि पूँछे हलावइ । अंधारउँ किरि मूला चावइ ॥^६

^१ हिस्टारिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश, पृ० ४।

^२ बुद्ध-चरित की भूमिका, पृ० ६।

^३ पुरानी हिन्दी, पृ० ८।

^४ नोट्स आन ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी 'इंडियन ऐण्टिक्वेरी (१९१४-१६ ई०)।

^५ पुरानी हिन्दी, पृ० ४५।

^६ पुरातन प्रवन्ध संग्रह, पृ० १०, पद्यांक ८।

मुनि जिन विजय जी का अनुमान है कि इन छत्रों का सकलन जिस प्रति में हुआ है उसका काल सन १४४३ ई० से पहले का है ।^१

नीचे हम 'प्रवच चिन्तामणि' के पद्या को लेकर देखने की चेष्टा कर रहे हैं कि उनमें ब्रजभाषा के पूव रूपा का परिचय हमें किस प्रकार में मिल रहा है। 'प्रवच चिन्तामणि' जन आचार्य मेस्तुग ने सकलित की है। इसका सम्प्रहकाल सन १३०४ ई० है।

अम्मणिओ सदेसडओ तारय कह पहिज्ज ।

फा दालिदिहि डुब्बिउ वल्लिबधणह मुहिज्ज ॥

इसमें 'सदेसडओ' ब्रजभाषा के 'सदेसडो का पूव रूप है तथा 'डुब्बउ' ब्रजभाषा के 'डुब्बा का। एक दूसरे पद्य में ब्रजभाषा के 'ओ वारान्त विशेषण का पूव रूप देखने को मिलता है —

राणा सचे याणिया जसमु वडडउ सेठि ।

काहू वणिजहु माण्डीयउ अम्मीणा गढ हेठि ॥

वडडउ (वडडो—वडा) जैसे विशेषण शब्दों का प्रचलन उस समय हो गया था। 'प्रवच चिन्तामणि' के सकलित पद्य कितने पुरान है, इसका ठीक ठीक ध्यारा बताना कठिन है फिर भी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के मत से 'प्रवच चिन्तामणि' के रचनाकाल से ये पचास-साठ वर्ष पहले के भी हो सकते हैं अथवा 'ऐसे धिसे भिक्के यदि सौ दो सौ वर्ष पुराने भी हैं तो आश्चर्य नहीं ^२।

निम्नलिखित पद में ब्रजभाषा की क्रिया के भूतकाल का रूप दीख पड़ता है

झाली तुटटी कि न मुउ कि हुयउ छार पुज ।

टिडइ दोरी बंधीयउ जिमि भकड तिम मुज ॥

'हुयउ हुओ का तथा 'बंधीयउ', बध्यो का पूव रूप है।

प्राकृत पंगलम् में ब्रजभाषा की क्रियाओं, सज्ञाओं के प्रयोग—

"प्राकृत पंगलम्" में बहुत से ऐसे पद्य आए हैं, जिनमें ब्रजभाषा के रूप प्रकट होने लगे हैं। "प्राकृत पंगलम् सन इसवी की तेरहवीं, चौहवीं

^१ पुरातन प्रवच प्रस्ताविक वक्तव्य प० ११।

^२ पुरानी हिंदा, पृ० २२।

शताब्दी का सग्रह-ग्रन्थ है। इसमें छंदों के लक्षण व उदाहरण दिए हुए हैं। यह ग्रन्थ कई दृष्टियों से अपना महत्त्व रखता है। इसका प्रकाशन सन् १८९४ ई० में "प्राकृतपिंगल सूत्राणि" के नाम से निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से हुआ था। बाद में चलकर इसका प्रकाशन सन् १९०२ ई० में "रायल एशियाटिक सोसाइटी" की ओर से हुआ, जिसका संपादन श्री चंद्रमोहन घोष ने किया है। यह ग्रन्थ अत्यन्त ही लोकप्रिय हुआ। डा० तेनीतरी ने उसकी भाषा के सम्बन्ध में बतलाया है कि इसकी भाषा ईसवी सन् की वाग्द्वी शताब्दी के पहले की नहीं है।^१ वैसे डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या इसका रचना-काल सन् ९००-१४०० ई० के बीच मानते हैं।^२

"प्राकृत पिंगलम्" के नीचे उद्धृत पदों में ब्रजभाषा की क्रियाओं, सर्वनामों तथा सज्ञाओं और परसर्गों आदि के प्रयोग मिलते हैं।

- (क) हहो हजे काहा किज्जउ आओ पाउस कीलताए ।^३
- (ख) अहिगण पापगणो घुअ पचकले पिंगले कहिओ ।^४
- (ग) परिघम्म मआलु मइदो दडो मक्कलु मअणु मरट्ठो ।
वासठो कंठो मोरो ववो भमरो मिण मरट्ठो ॥^५
- (घ) कप्पिअ मेच्छ सरीर पेच्छइ वअणाइ तुमह घुअ हम्मोरो ॥^६
(ब्रजभाषा का 'तुमहि')
- (ङ) संभुहि सउ भण भिग गण चउआलीस मुणेहु ।^७
(ब्रजभाषा का 'सौ')
- (च) वुहअण मण सुहइ जु जिम समि रअणि सोहए ।^८
(ब्रजभाषा का 'जु')

^१ नोट्स आन अील्ड वेस्टर्न राजस्थानी, "इंडियन ऐण्टीक्वैरी, १९१४, भूमिका, पृ० २३ ।

^२ ओरिजिन एण्ड डैवलेपमेण्ट आफ बेंगाली लैंग्वेज, पृ० ६४ ।

^३ ५१६।४ ।

^४ २४।५ ।

^५ १९३।४ ।

^६ १२७।४ ।

^७ १९२।२

^८ २६३।३ ।

पृथ्वीराज रासो और 'ढोला मारू रा दूहा' में ब्रजभाषा का विकसित रूप—

“पृथ्वीराज रासो” की प्रामाणिकता और रचनाकाल को लेकर काफी मतभेद है फिर भी उसके कुछ अंशों को तो प्रामाणिक और पुराना स्वीकार करने के पक्ष में बहुत लोग हैं। पृथ्वीराज रासो की भाषा, ब्रजभाषा के विकास को समझने में अत्यधिक महत्वपूर्ण होगी। ढोला मारू रा दूहा ब्रजभाषा के विकास का समझने के लिए और भी अधिक महत्व का है। इसकी भाषा का वज्जीर की भाषा से अत्यधिक साम्य है। ‘ढोला’ की भाषा का श्री सूर्यकरण पारीक सन् ईसवी की तेरहवीं से सन् ईसवी की पंद्रहवीं शताब्दी के बीच की मानते हैं।^१ इसकी भाषा को वे उस साहित्यिक भाषा का प्रतिनिधित्व करने वाला मानते हैं जो उत्तर भारत में गुजरात से अतर्वेद तक व्यवहार में आती थी।^२ काशी नागरीप्रचारिणा मंडल द्वारा प्रकाशित ‘ढोला मारू रा दूहा’ के संपादक भी इसकी भाषा को ब्रजभाषा मानते हैं। उनका कहना है कि ‘ढोला की भाषा माध्यमिक राजस्थानी है परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिये कि उस समय राजस्थान एवं ब्रजभूमि की भाषा एक थी और इस भाषा को ब्रजभाषा भी बस ही कहा जा सकता है जैसे कि राजस्थानी।^३

अमीर खुशरो की रचनाओं में ब्रजभाषा—

अमीर खुशरो की रचनाओं में ब्रजभाषा का पूरा ढांचा देखने को मिलता है। अमीर खुशरो का काल सन १२५५ ई० से सन १३२४ ई० तक का है। अमीर खुशरो के निम्नलिखित पद्य को देखने से लगता है कि उन्होंने परम्परागत काव्य भाषा (ब्रजभाषा) को अपनाया है।

“अति सुंदर जग चाह जाको । म भी देख भूलानी याको ।

देख रूप भाषा जो दोना । ए सखि ! साजन, न सखि ! सोना ॥ -

सन् ईसवी की १५वीं शताब्दी तक ब्रजभाषा की
रचनाओं का प्रभाव—

अभी तक हमने जिन रचनाओं या कवियों का उल्लेख किया उसे देखकर

^१ हिंदुस्तानी, एप्रिल १९३६ ई०, पृ० ३०१ ।

^२ वही, पृ० ३०१ ।

^३ “ढोला मारू रा दूहा”, भूमिका, १६७-१६८ ।

यह सहज ही समझा जा सकता है कि इस काल में ऐसी कोई रचना नहीं मिलती जो सम्पूर्ण रूप में ब्रजभाषा-साहित्य की सीमा के भीतर निबद्ध की जा सके। कम-से-कम अभी तक उस काल की ऐसी कोई भी रचना उपलब्ध नहीं जिसे विगुह ब्रजभाषा साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सके। सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी तक यह बात दृष्टिगोचर होती है। 'प्राचीन ब्रजभाषा पर प्रकाश डालने वाले किसी महत्त्वपूर्ण शिलालेख अथवा ताम्रपत्र के लेख का भी पता अब तक नहीं चला है'।^१

कवीर की रचनाएँ—

वास्तव में ब्रजभाषा-साहित्य का प्रारम्भ सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी से मानना चाहिये। सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी में कवीर का नाम उल्लेख योग्य है, लेकिन कवीर की रचनाएँ ब्रजभाषा में नहीं लिखी गई हैं। उनमें पंजाबी, राजस्थानी, भोजपुरी, अवधी ब्रज आदि मिश्रित हैं। इसीलिए बहुत लोगो ने कवीर की भाषा को 'मधुक्कड़ी' भाषा कहा है।

ब्रजभाषा साहित्य का प्रारम्भ और वल्लभ संप्रदाय—

डा० धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ सन् १५१९ ई० से मानते हैं।^२ महाप्रभु वल्लभाचार्य ने गोवर्द्धन में श्रीनाथजी के मंदिर को पूरा होने पर मंदिर में कीर्तन की व्यवस्था की। भगवान के विग्रह के सम्मुख विकसित रूप से कीर्तन करने वाले गायको को रखा जो पद की रचना करते और उसी का गान करते। डा० दीनदयाल गुप्त के मत से वल्लभाचार्य सवत् १५४९ में ब्रज गए और वहाँ श्रीनाथजी का मंदिर बनवाया।^३ उसके सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्र वर्मा का मत मुझे अविक यथार्थ प्रतीत होता है। उनके मतानुसार 'सवत् १५५६ वैशाख सुदी ३ आदित्यवार को - गोवर्द्धन में श्रीनाथ जी के विंगल मंदिर की नींव रखी गई थी। यही तिथि साहित्यिक ब्रजभाषा के शिलान्यास की तिथि भी मानी जा सकती है।'^४ ब्रजभाषा के विकास और उत्कर्ष-साधन में कृष्ण भक्ति का बहुत बड़ा हाथ है। वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के शिष्यो ने कृष्ण-भक्ति में विभोर हो पदों की रचना की और

^१ डा० धीरेन्द्र वर्मा, 'ब्रजभाषा' पृ० २०।

^२ ब्रजभाषा, पृ० २१।

^३ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ७१।

^४ ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० ११।

ब्रजभाषा-साहित्य प्रकारान्तर से समृद्ध हुआ। इन भक्ता के गीता में एक अपूर्व माधुर्य और काव्योत्कृष्टता है। इन सभी गुणों के कारण ब्रजभाषा का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

रामानन्द, वल्लभाचार्य और अष्टछाप के कवि—

सन् ईसवी की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही उत्तरी भारत हिन्दू धर्म तथा अर्थात् भारतीय धर्मों और धर्म साधनाओं के अलावा इस्लाम धर्म के सस्पृश में आया। इस नये धर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव मले ही हिन्दू धर्म और समाज पर न पड़ा है। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इसने अवश्य ही अपना प्रभाव डाला। उत्तरी भारत को अत्यधिक प्रभावित करने वाली भक्ति की धारा दक्षिण से आई। इस भक्ति की धारा ने जैसे उत्तर भारत की जनता में नए प्राण का संचार किया। उस काल के दो आचार्यों रामानन्द (सन् ईसवी की पंद्रहवीं शताब्दी) और महाप्रभु वल्लभाचार्य (सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी)—ने भक्ति की प्रबल धारा बहा दी। रामानन्द के शिष्यों में राम के उपासक भक्त थे। राम के उपासकों में दो प्रकार के भक्त थे। एक तो शिष्टता से उपासना करने वाले और दूसरे सगुण भक्ति को अपनाते वाले जिन्होंने राम को अवतार माना। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टिमाग का प्रवर्तन किया। वृष्ण भक्ति का प्रचार महाप्रभु के नाम के साथ जुड़ा हुआ है। इन्होंने भगवान की लीला को ही आश्रय लिया और भगवान के साथ भक्त के निकट-संबन्ध की भावना की पुष्टि की। वल्लभाचार्य का प्रभाव ब्रज, राजस्थान, गुजरात तक बढ़ा। वल्लभ-संप्रदाय के भक्त कवियों ने ब्रजभाषा-साहित्य को विशिष्टता प्रदान की। वल्लभाचार्य के पुत्र विठ्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना की। इनमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य तथा चार विठ्ठलनाथ के शिष्य थे। इनके नाम ये हैं—सूरदास, वृष्णदास परमानन्द दास कुम्भनदास, नददास, चतुर्भुजदास छातस्वामी और गोविन्दस्वामी। इनकी चर्चा आगे अर्थात् अर्थात् में की गई है।

अष्टछाप के इन कवियों का ध्यान बराबर लीलागान की ओर रहा। भगवान् की रूप माधुरी से छत्रे हुए ये भक्त-कवि गान करते रहे और प्रकारान्तर से ब्रज-साहित्य को समृद्ध करते रहे।

वृन्दावन में महाप्रभु चैतन्य के शिष्य —

वल्लभाचार्य के समय में ही चतुर्थ महाप्रभु के शिष्यों ने वृन्दावन को अपना क्षेत्र बनाया। चतुर्थ संप्रदाय में मधुर भाव की भक्ति का प्राधान्य

है। गोपी भाव से भी ये भगवान् को भजते हैं। इस संप्रदाय में परकीया भाव को ही प्रभुसत्ता दी गई है। वृन्दावन में वास करने वाले महाप्रभु चैतन्य देव के गिण्यों में रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और जीव गोस्वामी बहुत बड़े शास्त्रज्ञ थे। उन्होंने भक्ति आदि के सवन्व में एक क्रमबद्ध दर्शन का प्रवर्तन किया। भागवत पुराण इनका उपजीव्य है। इस संप्रदाय का प्रभाव भी ब्रजभाषा के भक्त कवियों पर पड़ा।

कृष्ण भक्ति और ब्रजभाषा साहित्य—

सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी में जो कृष्ण भक्ति का प्रवर्तन और प्रसार हुआ, उसने बड़े व्यापक भाव से अपना प्रभाव-विस्तार किया और ब्रजभूमि कृष्ण भक्तों का केन्द्र बनी। यह भक्ति की धारा आने वाली कई शताब्दियों तक काव्य रचना को प्रेरणा देती रही। इन भक्त कवियों में वल्लभ संप्रदाय के भक्तों का स्थान काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इन्होंने एक अपूर्व साहित्य की सृष्टि की और ब्रजभाषा काव्य को एक अभिनव माधुर्य से परिपूर्ण कर दिया। उपर्युक्त दो संप्रदायों के अलावा गोस्वामी हित-हरिवंश द्वारा प्रवर्तित 'रावावल्लभी संप्रदाय' और गोस्वामी हरिदास द्वारा पोषित 'टट्टी संप्रदाय' का भी महत्व ब्रजभाषा-साहित्य की दृष्टि से उल्लेख योग्य है। इन दोनों सम्प्रदायों के भक्तों और उनके गिण्यों ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना की। यह परम्परा बहुत दिनों तक चलती रही। इसी के साथ 'सखी सम्प्रदाय' का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस सम्प्रदाय के भक्तों में सखी भाव की साधना है। सन् ईसवी की सत्रहवीं शताब्दी के बाद के भक्ति साहित्य में सखी भाव की प्रधानता दी गई पड़ती है। इन सम्प्रदायों के ब्रजभाषा के भक्त-कवियों की चर्चा अन्यत्र की गई है।

तुलसीदास की रचनाएँ और नाभादास का भक्तमाल—

सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी के भक्त कवियों में मीरा का नाम सुप्रसिद्ध है। उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का पुट है वैसे उनके गीतों की भाषा मुख्य रूप से राजस्थानी-गुजराती का मिश्रण है। वृन्दावन के कृष्ण भक्तों में उनका नाम बड़े समादर के साथ लिया जाता है। ब्रजभाषा के कवियों में तुलसीदास, नाभादास और नरोत्तमदास के भी नाम लिये जा सकते हैं। तुलसीदास की ब्रजभाषा की रचनाओं में अवधी का कुछ न कुछ प्रभाव दीख जाता है। नाभादास का 'भक्तमाल' भी ब्रजभाषा में ही लिखा गया है। भक्तों की जीवनी पद्य में लिखी गई है। काव्य की दृष्टि से 'भक्त-

माल' का महत्त्व नहीं है, लेकिन भक्तों के जीवन पर प्रकाश डालने वाला यह ग्रन्थ भक्तों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का एक बहुत बड़ा साधन माना गया है।

नरोत्तमदास का सुदामाचरित तथा वादशाह अकबर की रचनाएँ—

सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी के ही नरोत्तमदास का 'सुदामाचरित' ब्रजभाषा के वाच्य-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। ब्रजभाषा में लिखित यह एक अत्यन्त ही सुन्दर खण्ड काव्य है। ब्रजभाषा का प्रभाव इतना व्यापक हुआ कि राजाओं और वादशाहा के दरबार में भी उसका समादर हुआ। स्वयं अकबर के नाम से भी ब्रजभाषा में लिखित दोहों के उद्धरण इधर-उधर देखने का मिल जाते हैं। जैसे नीचे का एक दाहा —

जाको जस ह जगत में, जगत सराह जाहि।

ताको जनम सफल ह, कहत अकबर साहि ॥^१

रीतिकाल का साहित्य—

ब्रजभाषा-साहित्य का सन ईसवी की पंद्रहवीं शताब्दी से लेकर सन् ईसवी की सत्रहवीं शताब्दी तक का काल भक्ति से ओतप्रोत है। पहले की ऐहिकता परक कविताओं को भी इसने अपने रंग में रंग लिया लेकिन भक्ति का यह वग और प्राण संचार करने वाली प्रेरणा धीरे धीरे क्षीण होती गई और उनके स्थान पर ऐहिकता-परक शृंगारी मनोवृत्ति ने अपना अधिकार जमा लिया। सन् ईसवी की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इस प्रवृत्ति ने अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू किया। सन् ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इसका पूरा आधिपत्य रहा। संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर अथवा उनसे प्रेरणा ग्रहण कर तत्कालीन कवियों ने लक्षण ग्रन्थ लिखे। नायिका भेद पर पुस्तकें लिखी गईं। राधा कृष्ण, गोपियों आदि का नाम ये कवि बीच-बीच में लिया करते थे, लेकिन उनसे काव्य की मूल प्रेरणा शृंगारिकता ही थी। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में यह काल 'रीतिकाल' के नाम से सुपरिचित है। इस काल की कविता का प्रधान लक्ष्य चित्त विनोदन ही रहा।

रीतिकाल के प्रमुख कवि—

'भक्त-माल' के भक्त कवियों के बाद ब्रजभाषा के कवियों में सबसे प्रथम

^१ रामनरुण त्रिपाठी कविता कीमती, भाग १ छटा संस्करण, पृ० ४८-४९।

केशवदाम का नाम महत्त्व का है। उन्होंने अलंकार और रस की विवेचना सुन्दर ढंग से की है। छन्दों के अद्भुत प्रयोग उन्होंने किये हैं। रीतिकाल के प्रमुख कवियों में चिन्तामणि, मतिराम, भूपण, दंब, विहारी, सेनापति, घनानन्द आदि हैं। मन् ईमवी की अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक छन्द, अलंकार, रस मन्वी न जाने कितने ग्रन्थों की रचना रीतिकाल के कवियों ने की। उस समय की यह एक मुख्य प्रवृत्ति थी। कवि को लगता था, जैसे अलंकार, रस आदि के मन्वी में उसने अगर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा तो जैसे कुछ नहीं किया। रीतिकालीन कवियों में होते हुए भी 'भूपण' ने और रस की कविताएँ लिखी हैं। वैसे ही गिवाजी और महाराज छन्दाल के आश्रित थे, इसलिये उनके काव्य में उनकी प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा गया। फिर भी उनकी विशिष्टता इस बात में है कि उनकी कविता में हिन्दू राष्ट्रीयता को ध्यान में रखा गया है। यद्यपि अपने काव्य में भूपण ने परम्परागत रूढ़ियों का पालन किया है। फिर भी उसमें प्राण है और समाज को अनुप्राणित करने की उसमें शक्ति है। विहारी की 'सतमई' का अपना एक विशेष स्थान है। लोकप्रियता की दृष्टि में विहारी अन्यतम है। इस दृष्टि से रीतिकाल के कवियों में विहारी के बाद पद्माकर का स्थान है। रसवान भी इसी काल में हुए। लेकिन उनका अपना एक अलग स्थान है। वे भक्त-कवि थे। वे कृष्णभक्त थे। रीतिकाल के कवियों ने ब्रजभाषा को सुकुमारता और माधुर्य तो प्रदान अवश्य किया लेकिन लोक जीवन में विच्छिन्न होने के कारण उसमें तेज का अभाव ही रहा। वह केवल दरवार में ही पलती रही। धीरे-धीरे समय का परिवर्तन होता गया। नाना प्रकार के राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल हुए। रीतिकालीन मनोवृत्ति भी बदली और समाज में नई-नई प्रवृत्तियों का उदय हुआ।

भारतेन्दु की रचनाएँ—

ब्रजभाषा साहित्य की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जगन्नाथदास रत्नाकर का उल्लेख आवश्यक है। भारतेन्दु के पहले से ब्रजभाषा-काव्य में नई प्रवृत्तियों के दर्शन होने लगते हैं। लेकिन साहित्य की दृष्टि से उनमें वैसे कुछ वैशिष्ट्य नहीं है। नवीन युग के उदय के पहले तक ब्रजभाषा के कवि ब्रजभाषा-काव्य की पुरानी परम्परा का पालन करते रहे। उस काल में फुटकल शृंगारी पद्य थोड़ा-बहुत-प्रबन्ध-काव्य, कथात्मक प्रबन्ध, नाना प्रकार के फुटकल वर्णन, जैसे, दानलीला, मानलीला, नौका-विहार, नख-शिख,

पद्मस्तु आदि के परम्परामुक्त वणन, नीति के फुटबल पद्य तथा उपदेशात्मक पद्य लिखे गए हैं। कुछ ऐसे भी कवि थे जिन्होंने भक्तिमूलक कविताएँ भी लिखी थी। लेकिन यह सब कुछ निष्प्राण और निस्तेज था। भारत-दुःख का आगमन ब्रजभाषा-साहित्य के लिये एक बहुत बड़ी घटना थी। भारतेन्दु ने साहित्य में एक नया प्राण फूक दिया। भाव और भाषा की दृष्टि से उन्होंने ब्रजभाषा-काव्य का परिष्कार किया। कृष्णभक्त कवियों की तरह उन्होंने कृष्ण की लाला विहार आदि का वणन किया। उनके सरस कवित्त और सवयो में उनकी भक्ति के दर्शन होते हैं। ये कवित्त और सवयों उस काल में अत्यन्त ही लोकप्रिय थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं, जिससे उनके भक्त हृदय का पता चलता है।

बह सुन्दर रूप विलोकि सखी, मन हाथ ते मेरे भग्यो सो भग्यो ।
चित्त माधुरी मूरति देखत ही, 'हरिचन्द' जू जाय पाग्यो सो पाग्यो ।
मोहि औरन सो कछु काम नहीं, अब तो जो कलक लग्यो सो लग्यो ।
रग दूसरो और चढयो नहीं, अलि, सावरो रग रग्यो सो रग्यो ॥

इसी प्रकार एक अन्य पद्य में 'चन्द्रावली' के रूप में हरिश्चन्द्र का भक्त-हृदय ही जसे वह उठता है।

सखी, ये नना बहुत बुरे ।
तब तैं भये पराये हरि सो जय तैं जाइ जुरे ।
मोहन के रस-बस ह्व डोलत, तलपत तनिक बुरे ।
मेरी सीख प्रीति सब छ़ाडि, ऐसे ये निगुरे ॥
जग खीक्ष्यो बरज्यो प ये नाहिं, हठ सों तनिक बुरे ।
अमत भरे देखत कमलन -से, धिप के धुते छुरे ॥

उस पियारे की याद कुछ ऐसी सबप्रासिनी है कि ससार के सभी काम, सभी सम्बन्ध, नागा प्रकार की कामनाएँ और सुख का आकांक्षा बराबर के लिये समाप्त हो जाती है।

पियारे, क्यों तुम आवत याद ?
छूटत सकल काज जग के, सब मिटत भोग के स्वाद ॥
× × × ×
तुम जग के सब कामन के अरि, हम यह निहच जान ।
'हरिचन्द' ती क्यों सब तुम्हरे प्रेमाहिं जग में सान ॥

हरिश्चन्द्र कृष्ण भक्त थे, वैसे अन्य सप्रदायो या देवताओं के प्रति उनकी द्वेष-वृद्धि नहीं थी। 'वियोगी हरि' जी के अनुसार वे 'वल्लभ कुल के अनन्य वैष्णव थे।'^१

हम तो मोल लिये या घर के।

दास-दास श्री वल्लभ-कुल के, चाकर राधावर के ॥

माता श्री राधिका, पिता हरि, बंधु दास गुनकर के।

'हरिचंद' तुम्हरे ही कहावत, नाहि विधि के, नाहि हर के ॥

भारतेन्दु ने कविता के लिये ब्रजभाषा को अपनाया और गद्य के लिये खड़ी बोली को। भाषा की दृष्टि से उन्होंने काव्य-भाषा का संस्कार किया। चलते शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। हरिश्चन्द्र के समय तक आते-आते ब्रजभाषा के कवियों में भाषा-सम्बन्धी कई दोष आ गए थे। जैसे, तोट-मरोड़ कर भाषा के विकृत रूप का मनमाना प्रयोग तथा बहुते पहले से आते हुए शब्दों का प्रयोग जो उस समय की लोक-भाषा में अप्रचलित हो गए थे। भारतेन्दु ने इन सभी दोषों को दूर किया।

'रत्नाकर' की रचनाएँ—

ब्रजभाषा—काव्य की परम्परा बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' तक आकर समाप्त हो जाती है। 'रत्नाकर' जी ब्रजभाषा के अनन्य उपासक थे और अन्त तक ब्रजभाषा में ही लिखते रहे, यद्यपि उस समय तक 'खड़ी बोली' ने 'ब्रजभाषा' का पूरा-पूरा स्थान ले लिया था। मन् ईमवी की बीमवी शताब्दी के प्रारम्भ में ही 'खड़ी बोली' का व्यवहार होने लगा था और उत्तरोत्तर वह बढ़ता ही गया तथा उसके साथ ही साथ ब्रजभाषा का प्रभाव क्रमशः कम होता जा रहा था। 'रत्नाकर' जी ने भी परम्परा का निर्वाह किया है, लेकिन उनकी शैली में मौलिकता है। उनकी भाषा में ओज, प्रसाद, गुणों का समावेश है। उन्होंने अपनी कविताओं में भाषा की विशुद्धता पर पूरा ध्यान रखा, साथ ही इस बात को भी उन्होंने आँखों में ओझल नहीं होने दिया कि भाषा की सरसता खर्वित न हो। इनके तीन प्रबन्धकाव्य अत्यन्त सुन्दर हैं : हरिश्चन्द्र 'गगावतरण' और 'उद्धवगतक'। शृंगार और वीर रस की फुटकल रचनाएँ भी उन्होंने की हैं। 'उद्धव शतक' में गोपियों के विरह का सुन्दर वर्णन है। 'उद्धव शतक' से कुछ पद नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं :

^१ ब्रजभाषुरी सार (अष्टम संस्करण, स० २००६), पृ० ३१७।

मोर के पत्नीवनि को मुकुट छबीलौ छोरि,
 श्रौट मनि मडित धराइ करिह कहा ।
 कह 'रतनाकर' त्यों माखन-सनेही विन
 घट रस व्यजन घवाइ करिह कहा ॥
 गोपी ग्वाल बालनि कौं झोकि विरहानल में,
 हरि सुर-बृद को बलाइ करिह कहा ।
 प्यारो नाम गोविंद गुपाल को विहाइ हाय,
 ठावुर त्रिलोक के कहाइ करिह कहा ॥

एक दूसरे पद में गोपिया की आतुरता का कितना स्वाभाविक वणन है
 भेजे मन भावन के ऊधव के आवन को,
 सुधि ब्रज गायनि में पावन जब लगौं ।
 कह 'रतनाकर' गुवालनि की झौरि झौरि,
 दौरि-दौरि नद-पौरि आवन तब लगौं ॥
 उझकि-उझकि पद पजनि के पजनि प,
 पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छव लगौं ।
 हमबौं लिख्यो ह कहा हमकौं लिख्यो ह कहा,
 हमकौं लिख्यो ह कहा कहन सब लगौं ॥

ब्रजभाषा-काव्य की पिछली कई शताब्दिया के इतिहास पर हम विचार करते रहे हैं। वास्तव में ब्रजभाषा के पद्य साहित्य के परिमाण और वैशिष्ट्य की दृष्टि से यह विवेचना अत्यन्त सक्षिप्त है वैसे उसका विनाद विवेचन भी यहाँ अभिप्रेत नहीं है। सक्षिप्त होने पर भी इस विवेचन से ब्रजभाषा के पद्य-साहित्य के क्रमिक विकास पर थोड़ा बहुत प्रकाश पड़ता है। ब्रजभाषा पद्य के बाद थोड़े में इसके गद्य की चर्चा कर लेना भी समीचीन होगा।

ब्रजभाषा के गद्य साहित्य का विकास—

ब्रजभाषा के पद्य-साहित्य की अपेक्षा उसका गद्य साहित्य अत्यन्त अविकसित और अल्प परिमाण है। 'वणरत्नावर' और 'वीतिलता' में भविली गद्य के नमूने देखने को मिल जाते हैं। उनमें भोजपुरी आदि पूर्वी भाषाओं के प्रयोग भी मिल जाते हैं। प्राचीन गद्य के जो नमूने इन दोनों ग्रन्थों में मिलते हैं उनकी बात अगर छोड़ दें तो ब्रजभाषा गद्य का नमूना विश्वनाथ सवत् १४०० के लगभग गोरखपथी ग्रन्थों में मिलता है। एक ग्रन्थ में निम्नलिखित गद्य का नमूना मिलता है

“मैं जू ही गोरिय सो मछन्दर नाय को दखन करत ह्यो।” आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत से यह निश्चित रूप से विक्रमीय गद्य १४०० के आसपास के ब्रजभाषा गद्य का नमूना है^१। नरकान्ठ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने इसमें सन्देह प्रकट किया है। उनका मत है कि यह ग्रन्थ नहुन वाद का लिया हुआ है^२। ब्रजभाषा गद्य का अन्य कोई ग्रन्थ इससे बहुत काय्य वाद तक नहीं मिलता। कम-से कम अर्ध तक नहीं मिला है। उपर्युक्त गोरखपथी ग्रन्थ के बाद दूसरी पुस्तक जो मिलती है, वह है विद्वत्-नाथ लिखित “शृंगार रस मञ्जु।” उन ग्रन्थ की भाषा अन्यव्यञ्जित है। विद्वत्-नाथ, महाप्रभु बलभाचार्य के पुत्र थे। बलभ-प्रसाद के भक्तों ने ब्रजभाषा गद्य में कई भक्तों की “वार्ताएँ” लिखी हैं। उन ग्रन्थों में ब्रजभाषा-गद्य के सुन्दर नमूने देखने को मिलते हैं। उनमें प्रथम ‘चौरासी वाग्वन की वार्ता’ है। यह सभवतः विक्रमीय गद्य की सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की रचना है। इसके और बाद की लिखी हुई दूसरी पुस्तक “दो सौ वाग्वन वाग्वन की वार्ता” है। उन दोनों पुस्तकों की भाषा अत्यन्त व्यवञ्जित और शैली रोचक है। उन ग्रन्थों में जिन भक्तों की “वार्ताएँ” लिखी हुई हैं, उनका चरित्र बड़ी स्पष्टता के साथ हमारी आँखों के सामने आ जाता है। इनसे लिखने वालों की निपुणता का परिचय मिलता है।

ब्रजभाषा में लिखित टीका ग्रन्थ—

ब्रजभाषा के गद्य में लिखित कुछ टीका ग्रन्थ और कुछ स्वतंत्र रचनाएँ भी हैं। साहित्य की दृष्टि से उनका विशेष कुछ महत्त्व नहीं है। इन टीका ग्रन्थों में कुछ के नाम यों हैं— हरिचरनदाम लिखित विहारी सतसई की टीका (१७७७ ई०), कवि प्रिया की टीका (१७७८ ई०), अयोध्या के महत बाबा रामचरन की रामचरितमानस की टीका (१७८४-१७८७ ई०), लल्लू लाल की विहारी सतसई की लाल चन्द्रिका नामक टीका (१८१८ ई०), सूरदास के दृष्टकूट की टीका (१८४७ ई०) आदि।^३ स्वतंत्र गद्य ग्रन्थों में निम्न-लिखित ग्रन्थों के नाम उल्लेखयोग्य हैं।

डाकौर के प्रियादास की सेवक-चन्द्रिका (१७७९ ई०), हित-रूप किशोरी-लाल के एक शिष्य की लिखी हुई श्री नवनीत जी की सेवा-निधि (१७९५ ई०)

^१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०३।

^२ हिन्दी साहित्य, पृ० ३६४।

^३ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी · हिन्दी साहित्य, पृ० ३६६।

लल्लूलाल जी की राजनीतिक (हितोपदेश) का अनुवाद (१८०९ ई०) आदि ।^१ इनके अलावा नाभादास जी का 'अष्टयाम' (संवत् १९६०), नासिवेतोपाभ्यां (स० १९८०), संवत् १८५२ की "आईन अकमरी की भाषा वचनिका" का भी उल्लेख किया जा सकता है^२ ।

ब्रजभाषा गद्य में इन टीकाओं की परम्परा सन् इसवी की उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक पूरी मात्रा में रही । कुछ टीकाएँ धाद की भी मिल जाती हैं । इतना सही है कि ब्रजभाषा गद्य का उतना विकास नहीं हुआ कि वह वाद में गद्य साहित्य का वाहन बने । उमका स्थान 'खड़ी बोली' ने ले लिया । सन् इसवी की उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में सदानुख लाल लल्लूलाल आदि ने जो गद्य लिखा उसमें भी ब्रजभाषा का प्रभाव है । लल्लूलाल की भाषा में तो ब्रजभाषा का पूरा पूरा प्रभाव है । सदानुखलाल की भाषा में भी ब्रज भाषा का प्रभाव पड़ा है वैसे उन्होंने भरसक उससे बचने की काशिश की है ।

ब्रजभाषा के नाटक—

साधारणतः ब्रजभाषा के नाटका का प्रारम्भ सन् ईसवी की सत्रहवी शताब्दी से मानते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'आनन्द रघुनन्दन' को हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं ।^३ वास्तव में यह ब्रजभाषा में लिखा हुआ है । इसके लिखने वाले रीवा नरेश महाराज विद्वनाथ सिंह थे । उनका राज्य काल संवत् १८७० से लेकर १९११ तक का है । बाबू श्यामसुन्दर दास बिसी प्रकार से 'आनन्द रघुनन्दन' को नाटक की कोटि में रखने का तयार है ।^४ डा० दशरथ ओझा 'गयसुकुमार राम' को हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं और हिन्दी नाटक की उत्पत्ति का काल तेरहवी शताब्दी मवत् १२८९ वि० मानते हैं ।^५ डा० ओझा 'रासक' और 'रास' को हिन्दी नाटका का पूर्व रूप मानते हैं ।^६ ब्रजभाषा में रास की परम्परा वैष्णव धर्म के प्रचार और प्रसार

^१ हिन्दी साहित्य (द्वितीय), पृ० ३६६ ।

^२ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०५ ।

^३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२५ ।

^४ रूपर रहस्य पृ० ३८ ।

^५ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ० ९३ ।

^६ वही, पृ० ८७ ।

के साथ प्रारम्भ हुई। डा० ओझा ने दिग्गजाया है कि मन् ईसवी की मंगलहरी घताब्दी में हित हरिवंश जी, श्री बल्लभाचार्य जी तथा गदाधर भट्ट जी तथा अन्य आचार्य महात्माओं ने ब्रजभाषा में सर्वप्रथम वृष्णराम मठल रचाया जिसमें नृत्य, संगीत और नाट्य को भी स्थान मिला।^१

ब्रजभाषा के लीला संबन्धी भक्त कवियों के नाटक—

कहते हैं कि ब्रजभाषा के प्राग्म्भिक लीला-संबन्धी नाटक के रचयिता नन्ददास जी थे। नन्ददास रचित 'स्यामसगार्ड' में नन्ददास की भाषा और उनकी शैली अत्यन्त रोचक है। उस प्रकार के साहित्य की रचना करने वाले भक्तकवि ध्रुवदास, चाचा वृन्दावन दास आदि हैं। ध्रुवदास की 'श्यालीन लीला' की अप्रकाशित प्रति ने डा० दशरथ ओझा ने 'हिन्दी नाटक' (पृ० ११६) में कुछ उद्धरण दिए हैं, उनमें ध्रुवदास (रचनाकाल स० १६६० में १७००) की भाषा का कुछ परिचय मिल जाता है। जैसे निम्नलिखित दोहा :—

दान दान तुम कहत है, सुन्यो न कयहुँ कान ।

इहिठा बिन कुंजेश्वरी, नहिँ काहुँ फौ कान ॥

चाचा वृन्दावन के बाद ब्रजवानी दास की रचनाओं में नाटक के प्रति उनकी अभिरुचि का पता चलता है। उन्होंने 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक का अनुवाद गद्य-पद्य मय भाषा में किया है, वैसे ब्रजवागीदास की भाषा में पहले की स्थापनाओं की अपेक्षा तत्सम शब्द अधिक मिलने हैं। डा० श्यामसुन्दरदास नेवाज कवि कृत शकुन्तला, हृदयराम कृत हनुमत्नाटक और ब्रजवानीलाल कृत प्रबोध चन्द्रोदय को नाटक मानने को तैयार नहीं, क्योंकि उनमें नाटक के नियमों का पालन नहीं किया गया है^२। भले ही वे नाटक-रचना के सभी सिद्धान्तों पर खरे न उतरे, लेकिन हैं वे नाटक ही। इन सभी नाटकों में ब्रजभाषा का प्रयोग है। नाटकों में ब्रजभाषा का कम या बेसी प्रयोग भारत-तेन्दु हरिश्चन्द्र के काल तक होता रहा।

^१ हिन्दी नाटक०, पृ० ९९-१००।

^२ वही, पृ० १०५।

तीसरा अध्याय

ब्रजभाषा साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव

ब्रजभाषा साहित्य के उद्भव और विकास के क्रमिक इतिहास का देखते हुए हमने लक्ष्य किया है कि भक्ति-आन्दोलन से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ है। इस अध्याय में भक्ति से अनुप्राणित ब्रजभाषा साहित्य के नवोत्थान पर विचार करेंगे।

ब्रजभाषा साहित्य और भक्ति-आन्दोलन—

ब्रजभाषा-साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी से होता है। सूरदास की प्रौढ़ रचना इस दृष्टि से प्रथम मानी जा सकती है। कम से कम अभी तक ब्रजभाषा का जा साहित्य सूरदास से पूर्व का है उसमें यह बात नहीं पाई जाती जो सूर की रचनाओं में है। लेकिन सूरदास की रचनाओं का देखकर सहसा यह मन में आता है कि उन रचनाओं के पीछे कोई ऐसी परम्परा, चाहे मौखिक ही हो, अवश्य रही होगी जिसकी परिणति उस रूप में हुई।¹ भाषा का चमत्कार भाषा की अभूतपूर्व अभिव्यक्ति तथा भक्ति का चरम निदर्शन जिस प्रकार से सूरदास की रचनाओं में पाया जाता है, उस देखकर पाठक केवल अभिभूत ही नहीं होता, बल्कि उसे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। वास्तव में ईसवी सन् की पंद्रहवीं शताब्दी के भक्ति आन्दोलन की व्यापकता और प्रभावोत्पादकता विद्वानों को आश्चर्य में डाल देती है। पंद्रहवीं शताब्दी के बाद के साहित्य के मूल में यही भक्ति-आन्दोलन है। भक्ति की धारा ने तत्कालीन भारतीय समाज का उत्तर से दक्षिण तक आप्लावित कर दिया था। इसे देखकर यूरोपीय विद्वानों ने आश्चर्य प्रकट किया है और इसके कारण भी बढ़ने की उहाने चेष्टा की है। डा० प्रियसन ने इस आन्दोलन की व्यापकता और क्षमता को लक्ष्य करते हुए कहा है कि सूरदास की पंद्रहवीं तथा बाद की शताब्दियों के भारतीय धार्मिक साहित्य को जा पड़ेगा, वह पुरानी और नयी (भावनाओं) के बीच के व्यवधान को लक्ष्य किए गिना गही रह सकता है। हम अपना जो एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन का सम्मुख पाते हैं जिसे भारतवर्ष ने पहले कभी नहीं देखा है। यह बौद्ध

¹ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी शब्द सागर (आठवां भाग), पृ० १०६।

धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल है, क्योंकि उसका प्रभाव आज तक वर्तमान है। अब धर्म केवल ज्ञान के लिये नहीं रह गया था, बल्कि रस का विषय हो गया था।^१

ब्रजभाषा-साहित्य पर वैष्णवता ने अपने आप को कई रूपों में प्रकट किया। भाव, भाषा तथा शैली तीनों में पहले की अपेक्षा एक बड़ा परिवर्तन दोख पड़ता है। इन तीनों पर अलग-अलग हम थोड़े में प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। लेकिन इसके लिये सबसे पहले तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक अवस्था की जानकारी प्राप्त कर लेना हमारे इस अध्ययन के लिये मुविवाजनक होगा।

तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति—

ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी से भारतीय जनता को इस्लाम का परिचय मिलने लगा था। मुसलमानों के आक्रमण के समय भारतवर्ष की राजनैतिक अवस्था विशृंखल थी। दिल्ली का प्रभुत्व नाममात्र का था। हिन्दू राजा आपस में ही लड़ते रहे और अपने छोटे से दायरे में राज्य-विस्तार के स्वप्न देखते रहे। केन्द्रीय शक्ति के कमजोर होने तथा हिन्दू राजाओं के आपसी वैर के कारण उत्तर भारत के हिन्दू राज्य ईसवी सन् की दसवीं से लेकर चौदहवीं शताब्दी के बीच प्रायः नष्ट हो गए और मुसलमानों का प्रभुत्व उनके स्थान पर हो गया। मुसलमानों के आक्रमण के साथ-साथ उनका धर्ममत भी इस देश में आया। इस धर्म मत का परिचय हिन्दू समाज के भीतर कई प्रकार का परिवर्तन ला देने वाला सिद्ध हुआ। जाति-पाति की कठोरता इसके बाद हिन्दू समाज में अत्यधिक देखने को मिलती है। संभवतः अपनी आत्म रक्षा की भावना से यह समाज अपने में अधिक से अधिक सिमटता गया और जाति-पाति के नाना सामाजिक बंधनों को स्वीकार कर लिया। दूसरी ओर एक अन्य प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। जो लोग हिन्दू समाज में निम्न वर्ग के समझे जाते थे तथा जो लोग उपेक्षित थे, वे नए धर्म मत की ओर झुके। इस्लाम धर्म में उन्हें अपने लिये एक त्राण का रास्ता नज़र आया। सामाजिक समानता उन्हें इस्लाम धर्म में प्राप्त होती दीख पड़ी। इसलिए ये जातियाँ धीरे-धीरे मुसलमान बनती गईं। समस्त हिन्दू समाज में किसी भी प्रकार का उत्साह उस काल में नहीं दीख पड़ता। इस प्रकार से राजनैतिक और

^१ ग्रियर्सन · इन्सायक्लोपिडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स, पृ० ५४८।

सामाजिक क्षेत्र में ह्रास, पराजय सवीणता तथा रुद्धिवादिता का व्यापक प्रभाव उस समय उत्तरी भारत में दीख पड़ता है। अतएव चित्ता-स्वातंत्र्य का भी उस काल में लोप हो गया।

धार्मिक आन्दोलन—

धार्मिक क्षेत्र में इस्लाम धर्म को वह सफलता नहीं मिली जैसी कि इरान, अफगानिस्तान आदि देशों में इसे मिल चुकी थी। अप्रत्यक्ष रूप से इस धर्म ने अपना कुछ प्रभाव यहाँ की सृष्टि पर अवश्य डाला। उस काल के सूफी कवियों ने अवश्य ही हिन्दू धर्म और इस्लाम की कुछ बातों में समानता दिखलाकर दोनों संप्रदायों को निकट लाने की चेष्टा की। उन्होंने 'अद्वैतवाद' में इस्लाम के एकेश्वरवाद को ढंका। इस्लाम धर्म जब इस देश में आया तब भारतवर्ष में जैन बौद्ध शैव और वैष्णव मत के अनुयायी थे। उस समय तंत्र मंत्र, जादू-टोना तथा नाना प्रकार की चमत्कार की कहानियों का पूरा प्रभाव था। नाथ पंथी, मिद्ध, योगी आदि समाज में बहुत आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। इन लोगों ने हिन्दू धर्म के बाह्याचारा तथा रुद्धिवादिता पर करारी चाट की है। ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी में मधुसूदन भारतवर्ष में शैव मत का प्राबल्य था।^१ उत्तर में नाथमत के रूप में इसका परिध्वय हम पाते हैं। पूर्वी भारत में बज्रयान का प्रभाव था, जिसके फलस्वरूप इस अंचल में तंत्र-मंत्र आदि का पूरा प्रसार था। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दिखलाया है कि सेन राजाओं के प्रभाव से उड़ीसा होता हुआ वैष्णव धर्म दक्षिण भारत से बंगाल आदि पूर्वी प्रान्तों में प्रविष्ट हुआ।^२ दक्षिण के वैष्णव धर्म ने उड़ीसा बंगाल आदि पूर्वी प्रान्तों में एक नया रूप ग्रहण किया। शिव और विष्णु का मिश्र रूप उड़ीसा के प्रद्युम्नेश्वर के मन्दिर में दीख पड़ता है। विद्यापति ने भी शिव और विष्णु के रूप का वंशान किया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' नामक पुस्तक में इसपर पूरा प्रकाश डाला है। शंकराचार्य के बाद रामानुज, निम्बार्क, मध्व आदि आचार्यों का प्रभाव धीरे धीरे रूप ग्रहण कर रहा था। सन ईसवी की पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण के भक्ति-आन्दोलन ने पूरे वेग से समस्त उत्तर भारत पर आधिपत्य जमा लिया।

^१ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ३८।

^२ वही, पृ० ३९।

भक्ति-आन्दोलन का साहित्य पर प्रभाव—

उपर्युक्त राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन का प्रभाव ब्रजभाषा साहित्य पर पडा। साहित्य के क्षेत्र में अपभ्रंश का बोलवाला था। उस समय के पद्य की भाषा अपभ्रंश की रूढ़ियों से जकडी हुई थी। छन्द, अलंकार, प्रकाशन-भंगी सभी परम्परा-मुक्त थे। भक्ति-आन्दोलन ने जैसे सब कुछ को बदल दिया और जो साहित्य की भाषा में उस समय संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। सूरदास तथा उनके बाद के कवियों में तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक से अधिक बढ़ता गया। इस प्रकार से तत्सम शब्दों के प्रयोग से भाषा का रूप बदलता गया। भक्ति-आन्दोलन ने लौकिक भाषा के साथ शास्त्र का जैसे गठवधन करा दिया। तुलसीदास आदि भक्ति साहित्य के कवियों ने भक्ति के जन-आन्दोलन को शास्त्रानुगामी बना दिया। शंकराचार्य के मत की प्रतिष्ठा तथा कृष्णभक्त कवियों में श्रीमद्भागवत का प्रभाव अत्यन्त व्यापक रूप से पड़ने के कारण भक्त कवियों में तत्सम या अर्द्ध तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक दीख पडती है। इसके पहले के ब्राह्मणेतर धर्म के अनुयायी कवियों में तत्सम शब्दों के बहिष्कार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यही कारण है कि अपभ्रंश-काल की प्राचीन हिन्दी में तत्सम शब्दों का अभाव है।

तत्सम शब्दों का प्रयोग—

वैसे तत्सम शब्दों के प्रयोग के प्रमाण सन् ईसवी की नवी-दसवी शताब्दी से ही मिलने लगते हैं।^१ उद्योतन सूरि (७७८ ई०) तथा राजशेखर (सन् ईसवी की दसवी शताब्दी) ने इस बात को स्वीकार किया है कि संस्कृत के मिश्रण से अपभ्रंश में लालित्य आ जाता है।^२ “युक्ति-व्यक्ति प्रकरण” (सन् ईसवी की बारहवी शताब्दी) में तत्सम शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। इस ग्रन्थ की भाषा तत्कालीन बनारस की भाषा का परिचय देती है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि तत्सम शब्दों का प्रयोग चौदहवी, पन्द्रहवी शताब्दी के गद्य में पद्य की अपेक्षा अधिक है। इसका कारण यह जान पडता है कि पद्य की भाषा काव्य-रूढ़ियों और परम्परा से चले आते

^१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी . हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० १७।

^२ नामवरसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० ७४।

हुए प्रयोगा से अपने को स्वतंत्र नहीं कर पाती थी। गद्य में लेकिन ऐसी बात नहीं मिलती। पूर्वी अक्षर के तीन ग्रन्थ जो अभी तक मिले हैं और जिनसे तत्कालीन भाषा का कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है वे हैं 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण', 'ज्यातिरीश्वर का 'वण रत्नाकर" (सन् १५०० ई०) और विद्यापति की "कीर्तिलता।" इनमें तत्सम शब्दों का प्रयोग प्राच्य से हुआ है। चन्द्रधर शर्मा ने तत्सम शब्दों के प्रयोग की ओर निर्देश करते हुए बतलाया है कि 'विक्रम की सातवां से ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई।'^१ उन्होंने आगे चलकर यह भी बतलाया है कि 'इसने केवल प्राकृत ही के तद्भव और तत्सम पद नहीं लिये, किन्तु घनवती अपुत्रा मौसी से भी कई तत्सम पद लिये।'^२ तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ती ही गई और भक्ति आन्दोलन ने इसको और भी गति दी। बहुत लोग इसे मुसलमानी शासन की प्रतिश्रिया मानते हैं। लेकिन महापंडित राहुत्र साम्बुत्यायन इससे सहमत नहीं।^३ उनके विचार में समय की मांग ऐसी थी कि लोगो ने तत्सम का पल्ला पकड़ा। समाज का विकास हो रहा था और नए-नए भाषा को रूप देने के लिये उसे शब्दों की आवश्यकता की पूर्ति संस्कृत के तत्सम शब्दों को अपना कर की।^४

भक्ति-काल के पूर्व का इतिहास—

इसवी सन् की सातहवीं शताब्दी के पूर्व की तीसरी शताब्दियों में काव्य का यह उत्तरक नहीं दीया पड़ता जो भक्ति-काल में देखने का मिलता है। इस काल में मुख्यतया सिद्धा का रहस्यात्मक रचनाएँ तथा दरबारी कवियों की वीर तथा शृङ्गार रस की कविताओं के दशन होते हैं। उस काल के मुक्तक काव्य में कृत्रिमता है और साथ ही वह अलङ्कृत करने की प्रवृत्ति का बोधिल हो उठा है। इस प्रकार के दरबारी काव्य दोना प्रकार के हैं फुटकल तथा प्रबन्ध-काव्य। फुटकल काव्य में ऐहिक जीवन के वीर शृङ्गार रस आदि के वर्णन हैं। कहने के ढंग में इन मुक्तक काव्यों में घमत्कार है। वचन की भंगिमा में एक वशिष्ट है। फिर भी ये वर्णन परम्परा-मुक्त

^१ पुरानी हिन्दी पृ० ८।

^२ वही, पृ० ८-९।

^३ हिन्दी काव्य धारा पृ० १०।

^४ वही, पृ० ११।

है। इनमें पुरानी काव्य-रूढ़ियों का पालन है। प्रदग्ग-काव्य राजसूक्ति परक है। राजसूक्ति परक चरित-काव्यों में चारण कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा या नामन्त के जीवन, प्रेम, युद्ध आदि को लेकर अनिशयांभितपूर्ण वर्णन किए हैं। उन काल की रहस्यमय रचनाओं में नाय-गिटो तथा जैन मुनियों के उपदेश तथा हठयोग आदि का प्रचार किया गया है। उन रहस्यमय रचनाओं का उद्देश्य काव्य का प्रणयन नहीं था बल्कि विभिन्न नायनाओं की महिमा को प्रकाश करना था। अतएव उन रचनाओं में काव्य की चारीकियों को हँडना गलत होगा। वैसे इन रचनाओं का महत्त्व नत्कार्य भाषा और समाज के अध्ययन की दृष्टि में बहुत अधिक है। उनमें भी अधिक उन रचनाओं का मूल्य इस बात में है कि उनके द्वारा भक्ति के भक्ति-आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हो गया। उन रचनाओं में रूढ़िवादिता तथा हिन्दू समाज में फैले नाना प्रकार के कुमस्कारों पर कगरी चोट की गई है। इन प्रकार से इन रचनाओं ने जन-चित्त को उदार बना दिया और उन बातों के लिये प्रस्तुत कर दिया कि वे भक्ति-आन्दोलन को, जो मूलतः लौकिक था, सहज भाव से ग्रहण कर सकें।

सूरदास के पहले की रचनाएँ—

सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा-प्रदेश की हिन्दी विशेष रचना का ठीक पता नहीं चलता, जिनसे यह अनुमान किया जा सके कि सूरदास से पूर्व ब्रजभाषा साहित्य की स्थिति क्या थी। उस काल की जो भी रचनाएँ उत्तर भारत में मिलती हैं उनकी प्रकृति पर अगर ध्यान दें तो हम पाते हैं—कि पूर्वी प्रदेशों और पश्चिमी प्रदेशों की रचनाओं में प्रभेद है। पूर्वी प्रदेशों की रचनाएँ रहस्यात्मक नायनाओं का परिचय देने वाली हैं और पश्चिमी प्रदेशों की रचनाएँ ऐहिकता परक शृंगार और वीर रस की हैं। इनके बाद का भक्ति-साहित्य अपूर्व है। उस साहित्य में एक ऐसी व्यापकता और उदारता है कि उसने पूर्वी और पश्चिमी प्रान्तों की उपर्युक्त प्रवृत्तियों को अपने में समाहित कर लिया। सन् ईसवी की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में एक प्रकार के और काव्य की रचना हुई जिसे हम सूफी-साहित्य कहते हैं। यह साहित्य अवधी भाषा में ही लिखित मिलता है।

ब्रजभाषा-साहित्य में लीला वर्णन—

सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी का ब्रज-भाषा-साहित्य भगवान् की विभिन्न लीलाओं के वर्णनों से भरा हुआ है। इस काल का भक्त-कवि

भगवान की लीला का वणन, उनका गुणानुवाद, उनका स्मरण केवल इसी उद्देश्य से करता है कि उसे भगवान का अनुग्रह प्राप्त हो उनकी भक्ति का वह अधिकारी हो। इस काल में भगवान केवल भक्ता का प्राण करने और दुष्टा का दहन करने के लिये ही अवतार नहीं लेते बल्कि भक्ता को अपनी लीला द्वारा सुख देने, वृत्तकृत्य करने के लिये लेते हैं। इन अवतारों के सहारे भक्त नाना रूप में भगवान् के साथ अपना सबंध स्थापित करते हैं। उनके साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार के भक्तों में राम भक्त और वृष्ण भक्त कवियों ने अपूर्व साहित्य की सृष्टि की।

लीलागान की परम्परा—

लीलागान की परम्परा सूरदास से पूर्व की ही है। सूरदास से पहले के तीन भक्त-कवि जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास का नाम इस सम्प्रदाय में लिया जा सकता है। जयदेव का गीतगोविन्द सभक्त संस्कृत में लिखे जाने के कारण अधिक व्यापक हुआ। कहते हैं जयदेव जयपुर और वृन्दावन भी आए थे।^१ सूरदास पर गीतगोविन्द का प्रभाव पड़ा था, इसका प्रमाण सूरसागर से मिल जाता है। 'सूरसागर' के निम्नलिखित पद से इस बात की पुष्टि हो जाती है —

गगन घहराइ जुरी घटा कारी ।
 पौन झकझोर चपला चमकि चहूँ ओर ।
 सुवन तन चित नद डरत भारी ॥
 कह्यो वृषभानु की कुवरि सो थोलि क
 राधिका काह घर लिये जा री ।
 दोउ घर जाहु सग नभ भयो
 न्याम रग कुंजर गह्यो वृषभान धारी ।
 गये यन ओर नवल नवकिंगोर
 नवल राधा नये कुज भारी ॥
 अग पुलकित भये मदन तिन तन
 जये सूर प्रभु श्याम श्यामा बिहारी ॥^२

इस पद की तुलना 'गीतगोविन्द' की निम्नलिखित पंक्तियाँ से की जा सकती है —

^१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरा भारत सन परम्परा पृ० ९७ ।

^२ सूरसागर, पद सख्या १३०२ ।

मेघमँदुरमंवरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमं—
 नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ।
 इत्थं नदनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्यकुंजद्रुमं
 राधामाधवयोर्जयन्ति यमुना कूले रहः केलयः ॥^१

चडीदास और विद्यापति का प्रभाव सूरदास पर संभवतः प्रत्यक्ष नहीं पड़ा है। भागवत-पुराण में भगवान् की लीलाओं का वर्णन है। उसका भी आश्रय कवियों ने लिया। वैसे गीतगोविन्द की लीला भिन्न प्रकृति की है। संभवतः भागवत-पुराण से भिन्न कोई लीला गान की लौकिक परम्परा थी। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने लीलागान का पूरा प्रचार किया है।

मधुर रस की भक्ति और ब्रजभाषा-साहित्य—

सूरदास तथा अन्य ब्रजभाषा के भक्त-कवियों ने मधुर रस की भक्ति पर जोर दिया है। मधुर रस की इस प्रकार की भक्ति का पारचय पश्चिमी प्रान्तों की रचनाओं में नहीं मिलता। सूरदास से पहले पूर्वी प्रान्तों में इस तरह की प्रौढ रचनाएँ मिलती हैं। उनका प्रत्यक्ष प्रभाव सूरदास पर पड़ा या नहीं कहना कठिन है। लेकिन इतना सही है कि चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन आए थे तथा वृन्दावन उनके अनुयायियों का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी और सनातन गोस्वामी, महाप्रभु चैतन्य के प्रमुख शिष्यों में थे जिन्होंने मधुररस की शास्त्रीय आलोचना की थी। सन् ईस्वी की सोलहवीं शताब्दी के श्री चैतन्य के दीक्षा प्राप्त एक दक्षिणी ब्राह्मण गदाधरभट्ट का भी नाम इस प्रसंग में लिया जा सकता है। ये संस्कृत के एक बहुत बड़े पंडित थे, लेकिन ब्रजभाषा में मुन्दर कविता लिखा करते थे^२। श्रीनाथ जी के मंदिर में बगाली ब्राह्मणों के पुजारी होने के भी प्रमाण मिलते हैं। इन सब प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान करना अनुचित नहीं होगा कि गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय की मधुर भक्ति का प्रभाव ब्रजभाषा के वैष्णव कवियों पर पड़ा। वैसे परम्परा तथा वातावरण के अनुकूल सूरदास आदि ने राधा का चित्रण स्वकीया के रूप में किया है, जबकि गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में वे परकीया हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है^३ कि 'ग्यारहवीं से

^१ गीतगोविन्द—१।१ ।

^२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० २०० ।

पंद्रहवीं शताब्दी तक उत्तर भारत के जनसाधारण में एक साधना विवसित होती जा रही थी। पंद्रहवीं शताब्दी में वह एकाएक पूट उठी।

गेय-पदों की परम्परा—

ब्रजभाषा में गेय पदों का बाहुल्य है। गेयता पर इस साहित्य में जोर दिया गया है। सूरदास ने राग रागिनिया के आधार पर पद रचना की है। यह परम्परा बाद के भक्त-कवियों तक चलती रही। श्रीनाथ जी के मंदिर में एक ऐसे भक्त गायक को बराबर नियुक्त किया जाता था। अष्टछाप के कवियों में अधिकांश ऐसे थे जो पद रचना कर श्रीनाथ जी के सामने गाया करते थे। गेय पदा की परम्परा पुरानी है। सूरदास के बहुत पहले से ही इस परम्परा का पता चलता है। श्रीदत्त सिद्धों के गेय पदा का पता बहुत पहले से चलन लगता है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि जयदेव (बारहवीं शताब्दी) के पहले से ही उड़ीसा और बंगाल में वृष्ण-लीला गान करने की प्रथा बलवत्मान थी। इन पदों में मात्रिक छंदा का व्यवहार है। जयदेव के सरस पदा के समान गेय पदा की सूचना भी इधर मिलने लगी है। पश्चिमी भारत में निर्मित मानसोल्लास ग्रंथ के तीसरे भाग में ऐसे गेय पद पाए गए हैं^१। यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। ग्रंथ के इस तीसरे भाग में अपभ्रंश के कुछ नारायण गीत भी हैं डा० वासुदेव शरण अप्रवाल का अनुमान है कि 'गुप्तकाल' में जो शृंगार रस के नारायण गीत गाए जाते थे, उनकी भाषा उस समय की बालचाल की भाषा रही होगी^२। सूरदास के पहले लाज भाषा में गेय पदा की रचना करने वाले कवियों में विद्यापति और चंडीदास का नाम लिया जा सकता है।

काव्यत्व और भक्ति का योग—

वृष्ण भक्त कवियों ने राधा, वृष्ण तथा गाधिया का लीला के वणन में शृंगार की विभिन्न चेष्टाओं एवं मनोदशाज्ञा का सविस्तार वणन किया है। सयोग और विप्रलभ शृंगार दोनों का पूण रूप से वणन इस काल के वृष्ण काव्य में मिलता है। नायक-नायिका का वर्गीकरण, रसा का विवेचन इस

^१ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (चौथीं वर्ष) अधिवेशन इन्दौर का भाषण हिन्दा पर वृष्णव घम का प्रभाव।

^२ डा० वासुदेव शरण अप्रवाल मध्यदशीय भाषा (ग्वालियरी) की भूमिका, प० ९।

काल की एक प्रमुख विशेषता है। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि इस काल के कवियों ने काव्यत्व और भक्ति का सुन्दर संयोग कराया। भक्त कवियों के लिए भक्ति का ही महत्त्व था और कविता उनके लिये साधन मात्र थी। लेकिन यह बात बाद के ब्रजभाषा के कवियों में नहीं रही। रीतिकाल के कवियों के लिए भक्ति प्रधान नहीं रह गई, वैसे वे राधा-कृष्ण का नाम अव्यय बीच-बीच में ले लेते हैं। रीतिकालीन कवियों में शृंगार की प्रधानता, दरवारीपन आदि ही प्रमुख रूप में देखने को मिलते हैं।

कृष्ण-भक्त कवि और नायिका भेद—

ब्रजभाषा के भक्त कवियों में नन्ददास ने नायिका-भेद पर पुस्तक लिखी है। इसमें उदाहरण के लिये राधा-माधव की लीलाओं का वर्णन किया गया है। नायिका-भेद सम्बन्धी ब्रजभाषा की सबसे पुरानी पुस्तक कृपाराम की 'हित तरंगिणी' कही जाती है। इसकी रचना सन् १५४१ ईसवी की है।^१ इसके पहले की ब्रजभाषा की कोई पुस्तक अभी तक ऐसी नहीं मिली है, जिसमें नायिका-भेद पर प्रकाश डाला गया हो। नायिका-भेद और रसों के सागोपाग विवेचन की पुस्तक बंगाल में सर्वप्रथम रूपगोस्वामी की लिखी 'उज्ज्वल नीलमणि' है। रूपगोस्वामी महाप्रभु चैतन्य के प्रमुख शिष्य थे। उन्होंने यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में यह ग्रन्थ अत्यन्त समादर पाए हुए है। 'उज्ज्वल रस' ही 'मधुर रस' है। इन सम्प्रदाय में मधुर रस की भक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। भक्ति रस की जो व्याख्या इस ग्रन्थ में उपलब्ध है, वह नवीन ढंग की है, फिर लगता है कि इस विषय की चर्चा पहले से ही चली आ रही होगी। इस ग्रन्थ का भले ही सीधा प्रभाव ब्रजभाषा के कवियों पर न पड़ा हो, लेकिन इतना मानने में संकोच नहीं हो सकता कि इस ग्रन्थ का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। चैतन्य महाप्रभु तथा अन्य गौडीय भक्तों से वृन्दावन में रहने वाले भक्तों का परिचय था। इस सम्प्रदाय के बहुत से भक्त परवर्ती काल में ब्रजभाषा के कवि भी हुए।

भक्ति आन्दोलन और ईसाई धर्म—

वैष्णव-भक्ति और विगेष रूप से कृष्ण भक्ति में शृंगार की प्रधानता का

^१ डा० वासुदेव नरण अग्रवाल मध्यदेशीय भाषा (बालियरी) की भूमिका पृ० १०।

^२ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी . हिन्दी साहित्य, पृ० २९५।

कारण डूटना कुछ कठिन नहीं जान पड़ता । कुछ यूरोपीय विद्वान भक्ति का सम्बन्ध ईसाई धर्म से जोड़ते हैं ।^१ उनके अनुसार भगवान् और भक्त के बीच व्यक्तिगत रागात्मक सम्बन्ध ईसाई धर्म से ही हिन्दू धर्म में आया ।^२ ईसाई धर्म के साथ वणव धर्म की समानता का उल्लेख हापकिन्स ने भी किया है ।^३ वृष्ण के साथ क्राइस्ट का सम्बन्ध भी जोड़ने का प्रयत्न यूरोपीय विद्वानों ने किया है^४ । इस प्रकार से यूरोपीय विद्वानों ने वणव भक्ति, भक्ति का आदर्श, 'गाम सकीतन' आदि का ईसाईमत की देन धतलाया है । यूरोपीय विद्वानों को भारतीय परम्परा और विचारधारा का उतना परिचय नहीं था, समस्त इसीलिये कुछ समानताओं का देख कर उन्होंने ऐसे निष्कर्ष निकाले हैं । उनके विचारों का सुन्दर टग से प्रत्याख्यान डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'सूर साहित्य' में किया है ।

मधुर रस की भक्ति और महायान—

भक्ति के सम्बन्ध में यूरोपीय और भारतीय विद्वानों ने काफी छानबीन की है । भक्ति पर महायान का प्रभाव बहुत लोग स्वीकार करते हैं । डा० वन का कहना है कि वणव भक्ति के विकास में महायान का हाथ है ।^५ सकीतन की प्रथा भी महायानिया में है । बौद्ध धर्म का ह्रास जब हुआ तब उसके नाना संप्रदाय और उप-संप्रदाय हो गए । उनमें से बहुत से पथ वणव संप्रदायों में अन्तर्भुक्त हो गए । सहजिया मत के बहुत से अनुयायी जो प्रेमसाधना और परकीया प्रेम को मानने वाले थे नित्यानन्द के साथ हो गए । ये नित्यानन्दवाद में चलकर महाप्रभु चतुर्थ के साथ हो गए । इसके फलस्वरूप गौडीय वैष्णव मत का एक विशिष्ट ढंग से विकास हुआ । सन १९३० की

^१ कनेडी जनरल रायल एशियाटिक सोसायटी (१९०१) पृ० ९५१ तथा प्रियसन इन्सायक्लोपीडिया आफ रिलिजन एंड एथिक्स (मड २) पृ० ५५० ।

^२ दी रिलीजस आफ इंडिया पृ० ३८९ ।

^३ हापकिन्स इंडिया, ओल्ड एण्ड न्यू पृ० १६७ ।

^४ प्रियसन माडर्न हिन्दुइज्म एण्ड नेस्टोरियम (जनरल रायल एशियाटिक सोसायटी) ।

^५ डी० सी० मेन बगात्री लम्बज एण्ड लिटरचर, पृ० ४०१ ।

^६ वही, पृ० ४०३ ।

ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दी के मदिरो पर अकित, अग्लील मूर्तियाँ उन काल की मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। उड़ीसा में पुरी तथा कोणाकं के मदिरो में भी इस प्रकार की मूर्तियाँ अकित हैं। मधुर रस की भक्ति के उद्भव को समझने में ये सभी बातें सहायता करती हैं।

ब्रजभाषा की रचनाओं में कृष्ण-रास—

इस काल में कृष्ण-रास का भी प्रणयन हुआ। नन्दाम ने रासलीला-सर्वधी ब्रजभाषा-नाटक लिखे हैं। इन रासों के नायक श्रीकृष्ण हैं। श्रीमद्-भागवत में कृष्ण लीला के रास का वर्णन है। ब्रजभाषा में रासलीला की परम्परा उसी समय प्रारम्भ हुई जब वैष्णव धर्म की चर्चा सर्वत्र हो रही थी। चैतन्य महाप्रभु के द्वारा कृष्णलीला का यह रूप वृन्दावन तक पहुँच गया था।^१ इस रास का उल्लेख भोज के 'मग्ग्वती कठाभरण' में है

मंडलेन तु यत्स्त्रीणा नृत्यं हल्लीसक तु तत् ।

तत्र नेता भवेदेकी गोपस्त्रीणां हरिर्यथा ॥२११५६॥

हल्लीसक नाम के इस मडल नृत्य को गोपाल गूजरी नृत्य या रास भी कहते थे।^२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि 'कम से कम हल्लीसक रास या तालक और लकुट रासों के गोपाल गूजरी नृत्यों के साथ गाए जाने वाले जो नृत्य थे, वे देगी भाषा में ही थे।'^३ इससे यह अनुमान करना कठिन नहीं होगा कि देगी भाषा में रासों का प्रारम्भ बहुत पहले से ही गया था। जैन-रास भी कृष्ण-रास की तरह प्रचलित थे। जैन-रासों के नायक जैनी साधु, दानी सेठ आदि होते थे और उनमें तीर्थंकर के चरित्र का प्रदर्शन किया जाता था।^४ सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी में कृष्ण-रास की परम्परा खूब जोरो से चली जो आज भी वर्तमान है।

भक्ति-काल के चरित-काव्य—

भक्ति-काल के चरित-काव्य, पहले के चरित-काव्यों में भिन्न थे। पहले के चरित-काव्यों में चरित नायक कवि का आश्रयदाता राजा होता था, जिम्मे

^१ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक . उद्भव और विकास, पृ० ९७-९८ ।

^२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल मध्यदेशीयभाषा (ग्वालियरी), भूमिका, पृ० ७ ।

^३ वही, पृ० ९ ।

^४ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक . उद्भव और विकास, पृ० १०५ ।

युद्ध विवाह आदि के वणन उसमें भरे रहते थे। ऐहिकता परक इन चरित काव्या में वीर और शृंगार का प्राधान्य रहता था। भक्त-कविया ने भगवान् की लीला का वणन ही अपने चरित-काव्या में किया। अपने उपास्य के ऐश्वर्य शील और सुन्दर रूपा का वणन कर भक्त आनन्द पाता था। इस प्रकार के काव्य की रचना का उद्देश्य भगवान् का गुणानुवाद था वैसे ब्रजभाषा में मुक्तक काव्य का ही बाहुल्य है। भक्त कविया ने ब्रजभाषा-काव्य के लिए पद सर्वथा और कवित्त को अपनाया। इन छंदा का सहारा लेकर अपनी भक्ति का निवेदन करते हुए इन भक्त कवियो ने जो रस माधुरी बहाई, वह अपूर्व है। ब्रजभाषा-साहित्य इन भक्त-कविया की रचनाओं के कारण अमर रहेगा।



चौथा अध्याय

ब्रजभाषा साहित्य के विभिन्न सम्प्रदायों के दर्शन और सिद्धान्त

(क) वल्लभ सम्प्रदाय—

१५ वी १६ वी शताब्दी में विष्णुव समृद्ध युग के प्रभाव स्वरूप ब्रजभाषा साहित्य का जो पूरा बाया पलट हुआ पिछले अध्याय में उसका विस्तार से विचार हो चुका। वस्तुतः ब्रजभाषा साहित्य का मरदण्ड बल्लभाचार्य प्रवर्तित बल्लभीय-दर्शन और सिद्धान्त ही है। अतएव ब्रजभाषा के कविया तथा उनके काव्य ग्रन्थों के विस्तृत परिचय से पहले साहित्य की पीठिका स्वरूप बल्लभीय-दर्शन की रूपरेखा समझना आवश्यक है इस ज्ञान के अभाव में साहित्यालोचना एकांगी होगी। एक बात और—ब्रजभाषा-साहित्य को समृद्ध और सम्पन्न करने में ब्रज के निम्बाक सम्प्रदाय राधा बल्लभीय सम्प्रदाय तथा सभी-सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध ब्रजभाषा-कवियों की मधुर रससिक्त ललित रचनाओं का महत्व भी कुछ कम नहीं है। अत उक्त तीनों सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की चर्चा भी संक्षेप में इसी अध्याय में की जाएगी।

वल्लभ मत के प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य—

विष्णुव धर्म के माननीय प्रवर्तकों में से बल्लभाचार्य अन्यतम है। कहा जाता है कि विष्णुस्वामी प्रवर्तित प्राचीन रत्न सम्प्रदाय की १५ वी शताब्दी में बल्लभाचार्य ने पुनः प्रतिष्ठा की। विष्णुस्वामी का आचार्य रूप से केवल अभिधान ही अवशिष्ट है, इस सम्बन्ध में पुष्ट प्रमाणा का सबधा अभाव ही है अतः इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना अत्यन्त कठिन है। पहले कहा जा चुका है कि "श्रीधरी टाका" में विष्णु स्वामी के आभासित सिद्धान्त और बल्लभाचार्य के सिद्धान्तों में पर्याप्त भेद है। और जो कुछ भी हो पर यह तो निर्विवाद ही है कि बल्लभाचार्य द्वारा 'वल्लभ सम्प्रदाय' प्रवर्तित हुआ, चाहे यह विष्णु स्वामी के रत्न-सम्प्रदाय का प्रसार ही अथवा स्वतन्त्र सम्प्रदाय, यह दूसरी बात है।

वल्लभ-मत की अन्य संज्ञाएँ—

शकराचार्य के “कैवलद्वैत” या “मायावाद” के खडन तथा विरोध में ही वल्लभाचार्य ने “शुद्धाद्वैतवादी” दर्शन की स्थापना की। वल्लभीय सिद्धान्तानुसार ब्रह्म माया से सर्वथा निर्लिप्त अत्यन्त विगुड्र है, शकर से अपने मत की भिन्नता दिखाने के लिए वल्लभ ने “अद्वैत” से पूर्व “शुद्ध” विशेषण के योग से इसे “शुद्धाद्वैत” नाम दिया। शकर के मत में शुद्ध ब्रह्म निर्गुण, निवर्णक, निरजन और केवल मात्र ज्ञेय है, सगुणत्व, सर्वशक्तित्व, कर्तृत्व आदि गुण माया आच्छादित ब्रह्म के हैं। ब्रह्म की अनिर्वचनीय माया ही सम्पूर्ण प्रपञ्च का कारण है, माया-रचित होने के कारण ही सृष्टि की अनेकरूपता और अनेक जीवत्व मिथ्या, मायिक तथा आभास मात्र है, केवल एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। इसके विपरीत वल्लभ ने जगत् को ब्रह्म का विकार रहित परिणाम माना, इसी कारण वल्लभ-सम्प्रदाय को “अविकृत-परिणामवादी” भी कहते हैं। वल्लभ के दर्शन में “ब्रह्म” अत्यन्त पुष्ट है, जीव जगत् सब ब्रह्ममय हैं, अतएव इन दोनों की सत्ता भी सत्य है, ब्रह्म-पक्ष की प्रधानता के कारण वल्लभ-सम्प्रदाय “ब्रह्मवादी” कहलाया।

वल्लभाचार्य का साधन-पञ्च “पुष्टि-मार्ग”—

वल्लभाचार्य का साधन-पक्ष “पुष्टि-मार्ग” कहलाता है। यह श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तों की उगली पकड़ कर चलने वाला मार्ग है। “पुष्टि” शब्द भी भागवत से ही उधार लिया हुआ है, “पुष्टि” का अर्थ भगवान् का अनुग्रह, अनुकम्पा, कृपा है।^१ पुष्टि का प्रधान साधन है भक्ति और प्रपत्ति। यह भक्ति भी परम भक्तवत्सल भगवान् के अनुग्रह से ही साध्य है।^२ अतएव स्नेह पूर्वक भगवान् की सेवा तथा पुष्टि-जन्य प्रेम ही इस सम्प्रदाय की साध्य वस्तु है। यही कारण है कि इस सम्प्रदाय में उपास्य स्वरूप वाल-कृष्ण की सेवा-पद्धति का जैसा विस्तृत और व्यवस्थित विधान हुआ है, वह अन्य मन्त्रप्रदायों में दुर्लभ ही है। वल्लभाचार्य ने भक्ति मार्ग का ही विशेष प्रकार से प्रचार किया। अब वल्लभीय दर्शन, सिद्धान्त और साधना-पद्धति पर विचार किया जाएगा।

^१ “पौषण तदनुग्रहः ।” —श्रीमद्भागवत, २।१०।४।

^२ पुष्टिमार्गोऽनुग्रहैकसाध्यः । —अणुभाष्य, ४।४।९।

वल्लभ सम्प्रदाय में ब्रह्म या श्रीकृष्ण—

ब्रह्म का स्वरूप—वल्लभ मत में माया से रहित "विगुण" ब्रह्म^१ को जगत् का कारण माना गया है^२ । ब्रह्म ही एकमात्र जगत् की सत्ता होने के कारण सब कुछ ब्रह्ममय है^३ और नाम रूप गुण भेद से बही जीव-जगत् रूप में प्रकट हुआ^४ । इस ब्रह्म का स्वरूप मच्चिदानन्दमय है, वह व्यापक, अनश्वर सव्यक्तिमान, सतत, सव्य और गुणा (प्राकृतिक) से रहित है । वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के निराकार-माकार दाना स्वरूप का माने हैं उनके अनुसार ब्रह्म सम्पूर्ण विरुद्ध धर्मों का आश्रय है । कहने का मतलब यह है

१ "हो प्रभु मुद्ध तत्त्वमय रूप, एक रूप पुनि नित्य अनूप ।"

—नन्ददास (शुक्ल), २७ वा अ० पृ० ३१५ ।

२ मायामय्यवरहित गुद्धमित्युच्यते बुधे ।

कायकारणरूपं हि मुद्ध ब्रह्म न मायिकम् ॥

—शुद्धादित मातण्ड, २८ ।

३ आगे कृष्ण, पाछे कृष्ण, तत् कृष्ण, उन कृष्ण,

नित देवा नित कृष्ण मई । —छीतस्वामी (पद सग्रह), ११५ ।

पुनि प्रणऊ परमानम जाई,

घट घट, विघट पूरि रह्यो मई ।—नन्ददास (शुक्ल) रूपमन्तरी पृ० १ ।

४ नाम रूप गुण भेद ज, साई प्रकट सज और ।

ता विन तव जु आन कछु कह सा अति कह बीर ।

—मानमजरी, परमजरा बलदेवदास करमनदास, पृ० ६९ ।

तुमही जीवन तुमही जीव, सब ठा तुम बाठ अवर न बीच ।

—नन्ददास (शुक्ल) दसवा अन्त्राय, पृ० २४१ ।

५ मच्चिदानन्दरूप तु ब्रह्म व्यापकमज्ययम ।

सव्यक्तिम्वान च सतत गुणवर्णितम् ॥

—तत्त्वनीप निबन्ध, शास्त्राचार्य प्र० पृ० २०१ ।

परमहम तुम सबो गग,

तुम अतुन अविगत अविनासो परमानन्द मया तुगरागो ।

—गुरुरागर दामम्बय, उत्तराष्ट्र प्र० पृ० ५९४ ।

६ विरुद्धमवपमागमाश्रय गुण्यशास्त्रम् ।

—नन्ददास-निबन्ध, शास्त्राय प्रकरण पृ० २४६ ।

कि ब्रह्म निर्गुण (प्राकृत गुणों से रहित) होते हुए सगुण (दिव्य गुणों में युक्त) भी है^१। उसके साथ ही वह सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद में रहित अद्वैत है^२। चेतन-सृष्टि (सजातीय) उममें अलग नहीं, जड-सृष्टि (विजातीय) भी उमसे अभिन्न है और अन्तर्गामी (स्वगत) रूप भी वही है। थोड़े में यह कह सकते हैं कि बल्लभ मतानुसार ब्रह्म “अणोरणीयान्” तथा “महतो महीयान्” है अर्थात् वह सर्वभाव धारण में समर्थ होता है।

ब्रह्म की लीला-सृष्टिका कारण—

अद्वैत, अखण्ड, अविभक्त ब्रह्म “बहु” होने की उच्छा से अनन्त रूपों में प्रकट होता है।^३ ब्रह्म की “एक” ने “बहु” होने की उच्छा ने या सकल्प ही इस सृष्टि का कारण है अतः भगवान् स्वरूपतः एक होकर भी विभिन्न प्रकार की सृष्टि रचते हैं। कभी तो स्वयं ही प्रपञ्च रूप धारण करके साक्षात् रूप से सृष्टि रचते हैं, कभी परम्परा द्वारा अथवा पुरुष-ब्रह्म आदि

^१ वेद उपनिषद् यज्ञ ऋषिर्निर्गुणहि वतावै,
सोऽसगुण होय नन्द की दावरी वधावै ।

—सूरसागर, वै० प्रे०, प्रथम स्कन्ध, पृ० २ ।

हसन गोपाल नन्द के आगे नन्दस्वरूप न जाने,
निर्गुण ब्रह्म सगुण धरि लीला ताहिव सुन करि माने ।

—परमानन्ददास-पद-संग्रह (श्रीश्रीनन्द्याल गुप्त स०) १७ ।

^२ सजातीयविजातीयस्वगतद्वैतवर्जितम् ।

—तत्त्वदीप-निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, पृ० २२१ ।

^३ ‘हरि अनन्त अरु एक’

—नन्ददास, अनेकार्थमजरी, पञ्चमजरी, बलदेवदान, पृ० १४३ ।

सदा एक रस एक अखण्डित आदि अनादि अनूप ।

×

×

सकल तत्व ब्रह्माड देव पुनि माया सब विविकाल,
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण सब है अद्य गुपाल ॥

—सूर-सारावली, वै० प्रस०, पृ० ३८ ।

^४ एकोऽह बहुस्याम् । —तैत्तिरीय उपनिषद् २।६ ।

द्वारा सृष्टि करवाते हैं।^१ तो कभी ऐन्द्रजालिक के समान मायिक सृष्टि करते ह। मायिक सृष्टि के अतिरिक्त अन्य सभी सृष्टि में भगवान् प्रविष्ट रहते हैं।

ब्रह्म के आविर्भाव तिरोभाव की अवस्था—

ब्रह्म में जा आविर्भाव तिरोभाव का गति है, उसी के कारण वह एक से अनेक में प्रसारित होकर सृष्टि रचना ह^२ फिर प्रलय काल में अपने को समेट कर वह मे एक हो जाता ह। भगवद्गीता में भी भगवान् ने बारबार इसी बात का दाहराया है कि मैं ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति तथा नाश का कारण हूँ^३। ब्रह्म ही से सभी वस्तुओं का आविर्भाव और उसी में उनका तिरोभाव होता रहता है।^४ वस्तुतः जगत् में कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता उनका केवल रूपान्तर होता ह। एक रूप से दूसरे रूप में परिणति ही वल्लभ मतानुसार आविर्भाव तिरोभाव है उनके दार्शनिक सिद्धान्त में यह विनोय महत्व रखता है।

ब्रह्म के तीन प्रकार—

तारतम्य और बोधगम्यता की दृष्टि से ब्रह्म तीन प्रकार का माना गया है—१-परब्रह्म-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, २-अपारब्रह्म और ३-अन्तर्यामी रूप^५। असल में अक्षर-ब्रह्म और अन्तर्यामी रूप पुरुषोत्तम-ब्रह्म के ही स्थिति भेद ह।

पुरुषोत्तम परब्रह्म अप्राकृत रूप-गुणा से युक्त निज लोक में एक रस आनन्द में मग्न रहता ह।^६ इसी ब्रह्म को छोला के लिए सृष्टि रचने की

^१ पुराण और पाचरात्रा में इसी प्रकार सृष्टि वर्णित है।

^२ आविर्भावतिरोभावेर्मोहन बहुरूपत।

—तत्त्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, ७६।

^३ १०।८, २० ३४।

^४ आविर्भावतिरोभावो पदार्थानां यास्तत।

—तत्त्वदीप निबन्ध।

^५ अन्तर्याम्यक्षर कृष्णा ब्रह्मभेदाभावात् परे।

—तत्त्वदीप निबन्ध मन्निर्णय प्रकरण ११९ पृ० ३१५।

^६ अविगात आत्ति ब्रह्मन्त आरूपम अल्प्य पुरुष अविगाती।

पूरुष ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम निज निजशक्त विद्यामी।

—गूर-गारावली, ४० प्रे० पृ० २।

इच्छा हुई और उसने "एक" में "वह" में आने परम्परा का विस्तार किया। वही अक्षर-ब्रह्म बना और उसी में विभिन्न रूप-नामात्मक नृत्ति की उत्पत्ति हुई। जिम समय अक्षर-ब्रह्म उस जगत् को धारण करता है उस समय वह विष्णु स्वरूप हो जाता है, तिममें नन्दगुण की प्रतापता है, ब्रह्म का स्वरूप रजोगुणमय है। रुद्र का स्वरूप तमोगुण प्राण्य है। ये तीनों स्वरूप अक्षर-ब्रह्म के ही गुणावतार हैं।^१ अक्षर-ब्रह्म का स्वरूप परब्रह्म के समान सच्चिदानन्दमय ही है। पर वह है गणितानन्द। सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के सत् और चिद् दो धर्म जीव में प्रकट हुए, जस नृत्ति में तत्काल ब्रह्म ही का आविर्भाव है। ब्रह्म का आनन्दान् अन्तर्यामी रूप में प्रत्येक जीव में अवस्थित है, जैसे जीव अग्न्य है वैसे अन्तर्यामी भी अग्न्य है।

भगवान् की शक्ति-माया—

पहले ही कहा जा चुका है कि यह जगत् परब्रह्म की स्रष्टा में किया गया लीला-विलास है। भगवान् की यह उच्छाशक्ति बल्लभ-मत में माया है। भगवान् की अनन्त अचित्य शक्तियों में से माया भी एक है, अताएन जकर के मत के समान माया की सत्ता यहाँ उठी नहीं मानी गई। ब्रह्म के समान ही

^१ खेलत-खेलत चित में आर्द्र नृत्ति करन विस्तार।

अपने आप करि प्रकट कियो है हरी-पुरुष अवतार।

—सूरनारायणी, वी० प्रे०, पृ० २।

^२ जगत्तु त्रिविध प्रोक्त ब्रह्मविष्णुशिवारतत।

देवतारूपवत् प्रोक्ता ब्रह्मणीह्य हरिर्मत ॥

—सिद्धान्त सुवनावलि (पौडश गन्ध संग्रह) १०।

स्वभावकर्मकालाद्य च रुद्रो ब्रह्मा हरिस्तथा।

—तत्त्वदीप-निबन्ध, सर्वनिर्णय प्रकरण, ११९।

विष्णुरुद्र विधि एकहि रूप, इन्हें जान मत निन्न स्वरूप।

—सूरभागर, चतुर्थस्कन्ध वी० प्रे०, पृ० ४६।

परम पुरुष सवहिन के कारन, प्रतिपालत तारत सधारन

—नन्ददाम (शुक्ल) दशम स्कन्ध, दशम अ०, पृ० २४१।

ब्रह्म-रूप उत्पत्ति करो, रुद्र-रूप संहार।

विष्णु-रूप रक्षा करो, सो मैं ही नन्द-कुमार।

—कुभनदास (पद संग्रह), २२, पृ० १४।

उसके नाम, रूप, गुण, कम सभी नित्य और चिन्मय हैं। असी जीव-जगत् परब्रह्म के अंश हैं, इसलिए जीव, जगत् माया सभी की सत्ता साथ है। तथा ब्रह्म के साथ उनका 'अद्वैत' सम्बन्ध है।

रसरूप श्रीवृष्ण ही परब्रह्म—

वल्लभ-सम्प्रदाय में श्रीवृष्ण ही पूण पुरुषोत्तम परब्रह्म माने गये हैं।^१ श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान ने श्रीमुख से अक्षर से परे अपने 'पुरुषोत्तम स्वरूप का वर्णन किया है^२। पुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीवृष्ण अप्राकृत पद्मगुणा— ऐश्वर्य वीर्य, योग, श्री, ज्ञान, वराग्य से पूण है।^३ पूण पुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीवृष्ण परमानन्द तथा रस स्वरूप हैं।^४ परब्रह्म श्रीवृष्ण जैसे रस-स्वरूप हैं, वैसे ही सज रसा के भोक्ता भी है। रसमय आनन्दाकार पुरुषोत्तम,

^१ परब्रह्म तु वृष्णोहि सच्चिदानन्दकं बृहत् ।

—सिद्धान्त मुक्तावली (पोढाग्रयसग्रह) ३

नमो भगवते तस्मै वृष्णायाऽभुतकर्मणे

रूपनामविभेदेन जगत्प्रीडति यो यत ।

—तत्त्वदीप निबन्ध, शास्त्राय प्रकरण, १ ।

अपने अस्त आप हरि प्रगटे पुरुषोत्तम निज रूप ।

—सूरसारावली सूरसागर, व० प्रे०, पृ० ६ ।

प्रकट ब्रह्म-धनीभूत पूत की पकरि अगूरिया लाये ।

—नन्ददास-ग्रन्थावली ४२, पृ० ३३९ ।

साहन उदराय कुमार ।

प्रकट ब्रह्म निकुञ्ज नाथ भक्त हत अवतार ।

—परमानन्द पत्र संग्रह (दीनदयाल गुप्त संग्रह) ३

^२ यस्मात्परमतीनां ज्ञानमनरात्पि चोत्तम

—अतोऽस्मि लावे वदे च प्रथित पुरुषोत्तम ।—१५।१८ ।

^३ पद्म गुण अवतार धरा नागइन जाई

गयवो आश्रय अवधि भूत जन्मना साई ।

—नन्ददास (शुक्ल) सिद्धान्तपचाध्यायी, पृ० १८३ ।

^४ नमो नमो आनन्दधन मुन्दर उन्दकुमार ।

रसमय रस कारण रमित जग जाक आधार ।

—वही, रसमञ्जरी, पृ० ३९ ।

परब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी आनन्द-प्रसारिणी शक्तियों के प्रसार से अपने लोक में नित्य-लीला में मग्न रहते हैं^१। बल्लभ-मत में यह लोक विष्णु के वैकुण्ठ से भी ऊपर अवस्थित है, अतः इसकी महत्ता वैकुण्ठादि लोको से कहीं अधिक है^२।

लीला के लिए श्रीकृष्ण का परिकरों के साथ अवतरण—

अखिल रसामृत मूर्ति आनन्दकन्द श्रीकृष्ण भक्तों को असीम-रस-माधुर्य का आस्वादन कराने के लिए नर-रूप में लोक के बीच अवतरित होते हैं। भगवान् का अवतरण भी लीला-हेतु है^३। परब्रह्म श्रीकृष्ण अकेले ही ससार में अवतार नहीं लेते वरन् क्रीडा के लिए समस्त लीला परिकरो और अपने लोक (अक्षर-वाम) के साथ अवतरित होते हैं। तब उनका लोक (अक्षर धाम) ही गोकुल तथा स्वभूत आनन्द प्रसारिणी शक्तिया ही श्रीस्वामिनी, चन्द्रावली, यमुना आदि के रूप में प्रकट होती है। यह समस्त लीला नित्य रूप से चलती रहती है। ब्रह्म मायातीत है अतः उसका अवतार भी चाहे किसी रूप में हो माया से निर्लिप्त है। कहना न होगा कि उसका लीलाधाम भी माया के स्पर्श से अछूता है। ब्रजभूमि रस-रूप भगवान् के

^१ अवगति आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी ।

पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निजलोक विलासी ।

जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहाँ कुज-लता विस्तार ।

तह विहरत प्रिय-प्रीतम दोल निगम भृगु गुजार ॥

—(सूर-सारावली) वै० प्रे०, पृ० २ ।

^२ प्रकृतिकालाद्यतीते वैकुण्ठादप्युत्कृष्टे श्रीगोकुल एव सन्तीति शेष ।

—अणुभाष्य, ४।२।१५ ।

अस अद्भुत गोपाल वाल, सब काल वसत जहा ।

याही तै वैकुण्ठ-विभौ कुठित लागत तहां ।

—नन्ददास (शुक्ल) रासपचाध्यायी, पृ० १५९ ।

^३ ब्रह्म अगोचर मन, वानी ते अगम अनन्त प्रभाव ।

भक्तन हित अवतार धारि जो करि लीला ससार ।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वै० प्रे०, पृ० ३९ ।

आनन्द की निधि नन्दकुमार ।

परब्रह्म भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार ।

—परमानन्ददास-पद सग्रह (दीनदयाल गुप्त-सग्रह) १२६ ।

लीलाधाम गोलोक का अवतार होने का कारण पुष्टि भक्ता ने उसे इस जगत से परे का लोक माना है। वल्लभ-भक्त की साधना में इसी अगणितानन्द रसमय पूण पुरुषोत्तम के सामीप्य तथा उसकी नित्य-लीला में प्रवेश करने का अर्थात् अणु-जीव का अशी-परमात्मा से मिलने का साधन बताया गया है।

कृष्ण अवतार के दो रूप—

वल्लभ सम्प्रदाय के उपास्य देव सगुण रस रूप पुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीकृष्ण ही हैं। परब्रह्म, श्रीकृष्ण ने लोक रजनवारी अनेक रसमय लीलाएँ कीं। वल्लभ-सम्प्रदाय में कृष्ण अवतार के दो रूप माने गए हैं—मधुरा, द्वारिका, कुम्भेश्वर वाला भगवान् का ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप जिस रूप में उन्होंने ब्रज के अनेक दुष्टों का सहार किया, यह देवकीनन्दन वासुदेव का धर्म-संस्थापक स्वरूप है, दूसरा यशोदा नन्द के रिझावनहार, ग्वाल-बाला के बाल-मुल्लम क्रीडा के सहचर, गोपियों के साथ क्रीडामत्त रसिक राज कृष्ण का रूप पूण रमात्मक है। वल्लभ भक्ता की प्रेमाभक्ति के अलम्ब के लिए बाल, पीण्ड और विशोर लीलाधारी रसमय कृष्ण ही उपयुक्त जान पड़े।

वल्लभ सम्प्रदाय में राधा—

राधा स्वरूप—

राधा कृष्ण की लीला तथा कृष्ण भक्ता की मधुर रस की भक्ति का समझने के लिए यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि कृष्ण भक्ता के लिए राधा क्या है और कृष्ण के साथ उनका किस प्रकार का सम्बन्ध है। इन प्रश्नों का गान्धीय और दार्शनिक विवेचन ही "गद्यतत्त्व" है। रसरूप भगवान् अपनी आनन्द-शक्ति या प्रसार कर अपने आप रसते हैं। अपने आनन्द के लिए ही अपनी शक्तियाँ वा के प्रसार करते हैं। ये शक्तियाँ अनन्त हैं लेकिन भगवान् से भिन्न नहीं हैं। इन शक्तियों में बारह प्रमुख हैं। ये बारह शक्तियाँ श्री, पुष्टि गिरा कान्या आदि हैं। ये ही शक्तियाँ भगवान् की नर-लीला की गिनी हैं। जब भगवान् पृथ्वी पर अवतार धारण करते हैं तब ये श्री स्वामिनी, चन्द्रावली, यमुना आदि के रूप में प्रकट होती हैं। वैसे इन शक्तियों के साथ गोलोक में भगवान् की नित्य लीला चलती रहती है।^१ इन शक्तियों में जो इस जगत में प्रकट होनी हैं

^१ जहाँ वृंदावन आदि अजिर जहाँ बुज-रता विस्तार।

तह विहरत प्रिय प्रातम दाऊ निगम भूग गुजार।

राधा रम की निद्र-शक्ति स्वामिनी स्वरूपा है^१। वे रम को आदि-शक्ति है तथा सर्वानन्द की पूर्ण निद्र-शक्ति स्वरूपा है^२। भगवान् पूर्ण रम-शक्ति स्वरूपा राधा ही के वश में रहते हैं^३। उनके साथ उनकी नित्य लीला चलती रहती है उनके साथ क्रीडा करने हुए वे आत्मानन्द में मग्न रहते हैं। ये शक्ति अम स्वरूपा है और अमी श्रीकृष्ण से अभिन्न है।^४

जिन तरह से भगवान् की रम-शक्ति आदि-शक्ति राधा है उन्ही प्रकार से गोपियाँ अम रम-शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। कृष्ण अगर चाँद है तो राधा चाँदनी है और चाँदनी को प्रसार देने वाली किरणों जैसी गोपियाँ हैं। इससे यह समझा जा सकता है कि वास्तव में भगवान् अपने आनन्द के लिए ही अपने आनन्दाय का प्रसार इन रम-शक्तियों के रूप में करने हैं और उनका इन शक्तियों में रमना अपने आप में रमना है।

राधा स्वामिनी और स्वकीया—

वल्लभाचार्य ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम और 'त्रिविध नामावली' में राधा का उल्लेख किया है पर उनका उल्लेख स्वामिनी रूप में नहीं किया है, विद्वानों का अनुमान है कि वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीराधा को स्वामिनी पद पर

जहाँ गोवर्द्धन पर्वत मनिमय. मयन कदरा नार ।

गोपिन मङ्गल मध्य विराजत निमि दिन कर्त विहार ।

—सूर-नारावली, सूरसागर, वं० प्रेस, पृ० २ ।

^१ जग नायक जगदीश पियारी जगत जननि जगरानी ।

—सूरसागर दशम स्कन्ध, वं० प्रे०, पृ० ३४५ ।

^२ भगतनि को गति भक्तन की पति श्रीराधा पद मगल दानी,

अकरण शरनी, भव भय हरनी वेद पुरान ब्रह्मानी । ……

कृष्ण भक्ति दीजै श्रीराधे, सूरदाम बलिहारी ।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वं० प्रे०, पृ० ३४६ ।

^३ मोहन की मन यो अम कीनो ज्यो चकई सग डोर ।

—नन्ददामग्रन्थावली, ५६, पृ० ३३५ ।

रस ही में बग कीने कुँवर कन्हई ।

—चतुर्भुजदास-पदसंग्रह (दीनदयालगुप्त का संग्रह) ११९ ।

^४ प्रगटे पुरुषोत्तम श्री राधा द्वे विध रूप बनाई री ।

—छीतस्वामी (जीवनी और पद संग्रह) मंगलाचरण २ ।

प्रतिष्ठित करने वाले विट्ठलनाथ ही ह। उन्होंने राधा-स्तुति विषयक दो ग्रन्थ स्वामिन्याष्टक तथा 'स्वामिनी स्तोत्र', भी लिखे विट्ठलनाथ जी के समय से ही सम्प्रदाय में राधा का महत्त्व बना और वे परब्रह्म श्रीकृष्ण की 'सर्वभवन समथरूपा प्रमुख शक्ति रूपा मानी गइ। सम्प्रदाय में राधा की प्रतिष्ठा में गोस्वामी विट्ठलनाथ पर पूर्ववर्ती वष्णव कवि जयदेव विद्यापति तथा श्री चैतन्यदेव तथा उनके वृन्दावनस्थित शिष्यों का प्रभाव मानना अनुचित न होगा। वल्लभ मत में स्वामिनी राधा स्वकीया मानी गई है।^१

वल्लभ सम्प्रदाय में गोपी—

गोपी-स्वरूप—

'एकाह बहुस्याम' अर्थात् "म एव हूँ अनेक हो जाऊ सच्चिदानन्द परब्रह्म की यही इच्छा स्रष्टि के मूल में है। परब्रह्म की इसी इच्छा, शक्ति के फलस्वरूप अक्षर ब्रह्म के सत चित्त, आनन्द से स्रष्टि के भिन्न भिन्न रूपा और शक्तियों की स्रष्टि हुई। सत का प्रकाश जगत के रूप में हुआ और चिद रूप) देवता-जीव जादि स्रष्ट हुए। गोप-गोपी गोलोक आदि आनन्द रूप शक्तियों की उत्पत्ति स्वयं जानन्द स्वरूप पूण पुरुषोत्तम" रूप में हुई।

^१ जाका व्यास वर्णित रास,

ह गायव विवाह चित्त दे सुनो विविध विलास।

वियो प्रथम कुमारि यह व्रत धरया हृदय निवाम,

नन्द सुत पति दव देयी पूज मन की आस।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, व० प्र० पृ० ३४८।

दूल्ह गिरिधर लाल छयालो दुलहिन राधा गोरी जू।

व्याह भयो मोहन की जबहा यगोमति दत्त बघाई।

चिरवाया भूतल यह जारी नददास बलि जाई।

—नन्ददास (गुवल), परिशिष्ट ३७ पृ० ३७४-७५।

कीरति गोलि सब ब्रज-नारा व्याह के गीत गवाए।

नेति असाम मय मिलि जुवती-सुवस बसो ब्रज राई।

चिरजावा वृषभान-मुता अह स्यामसुन्दर सुन्ददाई।

—कुभनदास (जीवनी, पट सग्रह) श्याम-सगाई १०, पृ० ७।

वल्लभ दर्शन के अनुसार गोपिया शुद्ध प्रेममय रम-शक्ति स्वरूपा है।^१ इनके बिना पूर्ण पूरुपोत्तम श्रीकृष्ण का रम-रूप अपूर्ण है। ये गोपिया भगवान् की नित्य लीला की सहचरी है। तथा उनकी आनन्द प्रसारिणी सामर्थ्य शक्ति है।^२ उस प्रकार से भगवान् और गोपियां अभिन्न हैं, उनमें अभेद है। गोपिया धर्म है और श्रीकृष्ण धर्मों।

गोपियां रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्ति—

वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तों के लिए ब्रज की गोपिकाएँ रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्तियों के प्रतीक हैं।^३ भजानन्द से सर्वेन्द्रियान्वाय रस की अनुभूति अर्थात् रसात्मकपुरुषोत्तमस्वरूप के गीन्द्रयों की अनुभूति दिव्य स्त्री देह द्वारा ही संभव है, पुरुष देह द्वारा नहीं। श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम-पुरुष-स्वरूप तो हैं ही, साथ ही वे नदानन्द-स्त्री-पुरुषमय-द्विविधा रसान्मक स्वरूप भी हैं।^४ जब केवल ब्रजगोपिया ही द्विविध रस को पान करने में समर्थ हैं। उस रसपान के साथ ब्रह्मानन्द की कोई तुलना ही नहीं हो सकती, यह परम अनुभूति है। इसीलिए श्रीवल्लभाचार्य ने रामलीला के पांच अध्यायों को फल-प्रकरण के अन्तर्गत माना है अर्थात् चरम फल प्राप्ति इसी लीला में होती है।

^१ शुद्ध प्रेममय रूप, पंचभौतिक तै न्यायी।

तिर्नाहि कहा कोऊ गहँ जोति नी जग उजियारी।

—नन्ददास (शुक्ल), रासपञ्चाध्यायी प्रथम खंड अध्याय, पृ० १६०।

^२ गोपी प्रेम की ध्वजा,

जिन जगदीश किये ब्रज अपने उर घरि ध्याम भुजा।

सिब विरच प्रससा कीनी, उधो संत सराहीं।

धन्य भाग गोकुल की वनिता अति पुनीत मुख माही।***

—परमानन्ददास-पद-संग्रह (दीनदयालगुप्त संग्रह), २७९।

^३ धन्य कहत भई ताहि, नाहि कछु मन में कोपी।

निरमत्सर जे सत, तिन की चूडामनि गोपी ॥

—नन्ददास (शुक्ल), रासपञ्चाध्यायी, द्वितीय अध्याय, पृ० १७०।

^४ द्वै तनु जीव एक हम तुम दोऊ मुख कारन उपजायो।

ब्रह्म रूप द्वितीया नाहि कोई तव मन त्रिया जनायो।

—मूरसागर, दशम स्कन्ध, वै० प्रे०, पृ० २६२।

सर्वात्मभाव और उसने पांच सोपान—

स्त्री का भाव और देह (त्रिज्य देह) धारण करने वाले भक्त में ही भगवान् अपना रसात्मक स्वरूप प्रतिष्ठित कर सकते हैं अथवा नही। रासलीला के पांच अध्यायो में इसी सर्वात्मभाव-सपादन व पांच सापान वर्णित है। यथा—

- (१) आत्मानन्द द्वारा लिंग शरीर का जीवन-दान, यह स्वरूपस्थिति हुई।
- (२) मानसीलीला, जब कि भक्त के माँ में भगवत्सम्बन्ध रहता है।
- (३) वाणी आर प्राणबल द्वारा लीला।
- (४) इन्द्रिया द्वारा लीला।
- (५) शरीर लीला, इस अवस्था में भगवान् का रसात्मक स्वरूप पूण रूप से भक्त में प्रतिष्ठित होता है।

गोपियाँ सर्वात्मभाव का पूर्ण प्रतीक—

“सर्वात्मभाव” का अर्थ है कि भगवान् भक्त के अन्तर और बाह्य दाना में उपस्थित हैं। उस अवस्था में भक्त का अपना पृथक् स्वरूप तब का प्राप्त हो जाता है। उस सर्वात्मभाव का पूण प्रतीक हैं गोपियाँ जिन्होंने चरम भजनानन्द की अनुभूति पाई थी। हरि जीवात्मा में तभी तब रमण करते हैं जब तक कि आन्तरिक शरणागति रहती है। शरणागति का यूनता होत ही भगवान् चाहत तिराहित हो जाते हैं किन्तु पुन शरणागति की पूणता लाने के लिए भक्त के अन्त करण के साथ सम्बन्ध बनाए रखते हैं। भगवान् के वेणुनाद से जीवों के पूर्वदेहादिप्रपञ्च का न्य होना है। इस फलात्मक निरोध कहते हैं। इससे अलौकिक देह मिलती है जिसके द्वारा रामलाला में प्रवेश किया जा सकता है। इसी लीला में पूण स्वरूपानन्द की प्राप्ति होती है।

गोपियाँ सर्वश्रेष्ठ भक्त—

गोपियाँ और भगवान् का भक्त—भगवान् का एकमात्र गंगा सम्बन्ध है जिसमें दोनों पूण रूप से एक दूसरे का भजन कर सकते हैं। उन दोनों का यह परस्पर भजन विषयवस्तु नही है इसमें काम भाव को म्यान नहीं। इसमें केवल भावप्रधान रसरीति से ही परस्पर भजन होता है। इन प्रकार से गोपियाँ का ही पूण फल प्राप्ति होती है और वे ही सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। अत आनन्द की प्राप्ति का अभिलाषा भक्त गोपी स्वरूप धनन का कामना करता है।

^१ भागवत के दशम स्कन्ध का गुवाधिनी टाका के आधार पर लिखित।

गोपी आत्मा और श्रीकृष्ण परमात्मा—

कृष्णलीला को प्रतीक रूप मानने वालों के लिए गोपी (राधा) आत्मा और श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। अर्थात् परमात्मा में मिलने के लिए अर्थात् आत्मा नदा व्याकुल रहती है। निकुंज लीला में श्रीकृष्ण मिलन ही आत्मा का परमात्मा से मिलन, भक्त की साधना का चरम माध्य है।

गोपियों के तीन प्रकार—‘अन्य पूर्वा’, ‘अनन्यपूर्वा’, ‘सामान्या’—

वल्लभ-नमप्रदाय में भक्ति की भिन्न-भिन्न कोटियों की दृष्टि में गोपियों के भेद किए गए हैं। भक्ति की चरमावस्था तथा उच्चतम कोटि की प्रतीक वे गोपियाँ थी जो विवाहिता तो थी परन्तु कृष्ण के प्रति उनकी परम आसक्ति थी। यह परकीया-भाव की भक्ति है और भक्त इसे नर्वश्रेष्ठ मानते हैं। परकीया-भाव की इन भक्ति में सब कुछ को आप्लावित कर देने वाला अनुराग था। इस कोटि में जिन गोपियों को रखा गया है, वे ‘अन्यपूर्वा’ कहलाती हैं। उनके लिए लोक-लाज, कुल-मर्यादा, समाज के सभी बन्धन नगण्य हैं, उनके लिए इनका कोई अर्थ नहीं।^१ समाज के लिए भले ही इस अनन्य प्रेम, रस सब कुछ को आत्मसात् करने वाली आमक्ति का रूप गृहित माना जाता हो लेकिन भक्तों के लिये यही सब कुछ है तथा इससे बढकर काम्य और कुछ नहीं।

गोपियों की एक दूसरी कोटि है जो ‘अनन्य पूर्वा’ कहलाती है। वे ‘अनन्य पूर्वा’ गोपिकाएँ भी दो भागों में विभक्त की जाती हैं। एक में तो वे गोपिकाएँ हैं जो कुमारिकाएँ हैं और जो कृष्ण को पति रूप में पाने के

^१ कहत ब्रज नागरी ।

हम अहीरि गृहनारि लोक लज्जा के जेरो ।
तादिन हम भई वावरी, दियो कण्ठ ते हार ।
तव ते घर घेरा चलयो, व्याम तुम्हारो जार ।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वै० प्रे० पृ० २५३ ।

वर्म कर्म लोक लाज मुत पति तजि वाई,
चत्रभुज प्रभु गिरिवर मैं जाचे गी माई ।

—चतुर्भुजदाम—पद-मग्नह (दीनदयाल गुप्त का संग्रह) ५८ (अ)

लिए नाना प्रकार क व्रत, पूजा उपासना आदि करती ह।^१ ये गोपिकाएँ कृष्ण के ध्यान में ही अविवाहिता रहकर समस्त जीवन मिना देती ह। 'अनय पूर्वा' का दूसरा भेद यह है जिसमें गोपिकाएँ कृष्ण की परिणीता ह वृष्ण उनके पति ह। ये अनय पूवा स्वकीया ह। ये समाज के बचन का स्वीकार करती ह लकिन उनकी एक यह विशेषता रही ह कि पूव राग का उत्कट अवस्था में समाज के बचन को ठुकरा कर वे कृष्ण से जा मिली थी। चूकि भगवान के प्रेम के लिए उन्होंने समाज के बचन का 'ना कर लिया था इसलिए भक्ता के लिए इनका भी बहुत बड़ा महत्व है वैसे 'अनय पूवा' की दष्टि से इनका स्थान नीचे है।

तीसरे प्रकार की गोपिकाएँ वे ह जिनका कृष्ण में वात्मल्य भाव ह। ये गोपिया यशोदा की तरह कृष्ण के लिए प्रेम की आतुरता का अनुभव करती ह। ये 'सामाया' कही गई ह और इनका स्थान अनय पूर्वाआ से भी नीचे का ह। भक्ति के माग में वल्लभ सम्प्रदाय वाले इन्हें तीसरी कोटि में रखत है और इने पहली सीढी मानत ह। यही कारण ह कि वल्लभ सम्प्रदाय क मन्दिरो में बाल भाव से ही भगवान की सेवा विधि का आयोजन होता है।

इस प्रकार से गोपिकाओ के तीन भेद अनयपूर्वा आय पूर्वा और सामाया वल्लभ-सम्प्रदाय में गृहीत ह।

अष्ट सखा सखी—

वल्लभ-सम्प्रदाय क अन्तगत सखा भाव से भक्ति करने वाले भक्त आठ प्रकार के माने गये है। इसी तरह से मधुर भक्ति करने वाले भक्त सखी भाव से भक्ति करत ह। इनके भी आठ प्रकार बहे गय ह। अष्ट सखाओ क बार में कहा जाता ह कि इनम दोना रूपा का समावेग ह। दिन क समय ये सखा, गौचारण जादि में कृष्ण क सखा रूप में विद्यमान रहते ह और रात्रि में सखी भाव से उनका आगुरजन करते है। बुज-खीग में इन सखिया का अपना स्थान ह।

^१ महादेव पूजनि मन बच क्रम करि सूर स्याम की आस।

—सूरमागर ळगम स्वच व० प्रे०, पृ० १९६।

उठ प्रवेग करि मज्जन लागीं प्रायम हेम के मास।

हमार प्रीतम हाय नद सुन तब टान्यो इह आस।

—परमानन्दास—पद-सग्रह (दीनन्पाल गुप्त का सग्रह) ९१।

अनन्य भक्त गोपियों ने मासारिक बन्धन को तृणवत् मान श्रीकृष्ण चरण में पूर्ण आत्मसर्पण किया। कृष्ण भी उम पत्रिव्र प्रेम के वश हैं, इसलिए भक्तों के लिए वे आदर्श बनी।^१ बल्लभाचार्य ने गोपियों को गुरु मान कर उनके प्रेममूलक साधनों को ही पुष्टि भक्तों के लिये मुख्य साधन माना।

वल्लभ सम्प्रदाय में जीव-जीव का स्वरूप—

वल्लभ-मत में परब्रह्म ही रमण की इच्छा से 'एक' से बहु जीव रूप में प्रकट होता है। अतः ब्रह्म और जीव में अशी-अश की अद्वैतता है। जब सच्चिदानन्द अक्षर-ब्रह्म जीव रूप ग्रहण करता है, तो उसमें आनन्दाग का तिरोभाव हो जाता है और उपनिषद् में दिए गए रूपक 'अग्नि से स्फुलिंग' के समान उसके चिद् अश से असंख्य जीव उद्भूत होते हैं।^२ जीव चित्रवान ब्रह्माश होने के कारण नित्य और सनातन है। यद्यपि आकार में जीव अणु है और शरीर के अश विगेष में ही उसकी अवस्थिति है, पर स्वरूप तथा धर्म दोनों से ही वह चैतन्य है, इस चिन्मय गुण के व्यापकत्व के कारण अन्धकार में दीपालोक और गन्ध के समान सम्पूर्ण शरीर पर उसका गुण प्रसरित रहता है।^३ सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ अशी भगवान का अश होने के कारण जीव अल्पशक्ति और अल्पज्ञ है। भगवद्गीता में भी भगवान ने जीव की यही परिभाषा दी है।^४

^१ प्रेम-मई तुम्हरी माया मो मोहिं मोहति है।

तुम जो करी सो कोउ न करै, सुनि नवल किसोरी।

लोक-भेद की मुदृढ मृखला तून सम तोरी।

—नददास (शुक्ल), रासपचाव्यायी, चतुर्थ अ० पृ० १७५।

^२ विस्फुलिंगा इवाग्नेर्हि जडजीवा विनिर्गता। —अणुभाष्य, २।३।४३।

जीवस्य हि चैतन्य गुण स सर्वशरीरव्यापी-वही २।३।२५, २६

^३ जीवस्त्वाराग्रमात्रो हि गववदव्यतिरेकवान्।

व्यापकत्वश्रुतिस्तस्य भगवत्वेन युज्यते।

—तत्त्वदीप-निबन्ध, नास्त्रार्थ प्रकरण ५७, पृ० १५६।

चेतन घट घट है या भाई, ज्यो घट घट रवि प्रभा समाई।

—सूरसागर, तृतीय स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ४३।

^४ ममैवागो जीवलोके जीवभूत सनातन।

मन षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ —भगवद्गीता, १५।७

माया का जीव पर प्रभाव—

बल्लभाचार्य ने सृष्टि प्रसार के लिए ब्रह्म की शक्ति स्वरूपा माया के दो रूप माने हैं—विद्या माया और अविद्या माया।^१ अविद्या माया ही जीव के ससार बंधन का कारण है और विद्या माया जीव को इस ससार-बंधन से मुक्त कराती है। ब्रह्म की शक्तिरूपिणा अविद्या माया ब्रह्म को व्याप नहीं सकती, जीव का दुःख देखकर उसे पूरी तरह घेर द जाती है। सर्वप्रथम ब्रह्म के जीव स्वरूप में परिणति के समय ही उसमें आनन्दाग का लोप हो जाता है फिर भी ब्रह्माक्ष होने के कारण जीव में भगवद्गुण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वराग्य आदि रूप में अवशिष्ट रहते हैं। पर अविद्या माया के प्रभाव के कारण जीव में से भगवद्गुणा का तिरोभाव होने लगता है जो जीव में सामारिक बंधन और विषय का कारण बनता है। ऐश्वर्य के तिरोभाव से जीव में दीनता और पराधीनता, वीर्य के तिरोभाव से अनेक दुःख यश के चले जाने से हीनता, श्री के छिपने से जन्म-मरण आदि अनेक दुःख, ज्ञान के अभाव में देहात्म बुद्धि तथा अर्थ पदार्थों में विपरीत बुद्धि का उदय और वराग्य के न रहने से विषया शक्ति जगती है।^२ इस प्रकार अविद्या, माया और भ्रम के फँदे में फँसा हुआ जीव अपने धर्मानुसार अनेक योनियों में भ्रमता फिरता है। भगवान् स विमुख जीव अनेकानेक कष्ट भोगता रहता है।

भगवान् के अनुग्रह से जीव का ब्रह्मभाव—

दयालु भगवान् जीव पर द्रवीभूत होते हैं और भगवान् अनुग्रह से ही भक्ति और सेवा द्वारा जीव में तिराहित आनन्दाग का पुन आविभाव होने लगता है।^३ त्रमग उममें पूण सच्चिदानन्द का भाव प्रकट हा जाता है यही जीव का

^१ विद्याविद्ये हरे शक्ती माययव विनिर्मिते ।

त जीवस्यैव नायस्य दुःखित्व चाप्यीगता ॥

—नरवदीप निबंध शास्त्राय प्रकरण, ३४ ।

^२ अणुभाष्य, ३।२।५ ।

^३ तमो नमो वरुणानिधान,

चितवन कृपा कटाश तुम्हारी मित्रि गयो तम अज्ञान ।

माह निगा को लेग रह्या नहि भया विवेक विहान

आतम रूप सकल घट दरस्या उर्य किया रवि नान ।

—गूरमागर, द्वितीय स्वध, वें० प्रे०, पृ० ३८ ।

ब्रह्माम्य या ब्रह्मभाव है। अग्निव्याप्त लोहे के गोले से जैसे दाहकता आदि धर्म की अभिव्यक्ति होती है, वैसे ही ब्रह्मभूत जीव के शरीर से जीवगत चिदानन्द का आविर्भाव होता है। तब जीव शरीर में न तो जड़ता का भाव ही रह जाता है और न तो त्रिगुणात्मिका गुण ही शेष रह जाते हैं। उस समय देही जीव कर्मों का भोक्ता नहीं रह जाता, जीव उस समय ब्रह्मरूप से प्रकाशित होता है। तिरोहित आनन्दो का प्रकट होना एकमात्र भगवान् की इच्छा पर ही निर्भर है, उनकी इच्छा स्वतन्त्र है। भगवान् जीव के प्रमुक्त और अव्यक्त आनन्दाग को उद्बुद्ध कर किसी को ब्रह्म-भाव देते हैं तो किसी को अक्षर-सायुज्य।

जीव के प्रमुख तीन प्रकार—

वल्लभ-मत में जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं (१) पुष्टि (२) मर्यादा और (३) प्रवाही। ये तीनों ही स्वभाव से पृथक् और इनका उद्भव और चरम लक्ष्य भी भिन्न-भिन्न हैं।^१ इस प्रकार पारस्परिक भेद को लिए हुए सभी भगवान् से ही उद्भूत हैं और जीवनारम्भ से जीवनान्त तक उनमें स्वभावभेद बना ही रहता है। प्रादुर्भाव के समय से ही जीव का स्वभाव साथ ही भाग्य भी निर्धारित रहता है। वल्लभ मतानुसार भगवान् ही जीव के स्वभाव का निर्मायक है, अतः स्वभाव भेद के अनुसार कार्य करने के लिए जीव टोपी नहीं है।

पुष्टि जीव—

पुष्टि जीव पूर्ण पुरुषोत्तम के श्री अंग से उत्पन्न होने के कारण सर्वोत्तम और सर्वोच्च हैं। इनकी सृष्टि भगवान् की स्वरूप-सेवा के लिए हुई है।^३ ये अपने स्वभाव के कारण साधना के चरम लक्ष्य परब्रह्म श्रीकृष्ण सानिध्य

^१ पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक्-पृथक्।

जीवदेहक्रियाभेदै प्रवाहेण फलेन च ॥

—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद (पोडगग्रथ सग्रह) १।

२ पुष्टि कायेन निश्चय।

—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद वही, ९।

३ भगवद् सेवार्थं तत्पुष्टिनित्यथा भवेत्।

—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद (पोडगग्रथ सग्रह), १२।

और साहचय को प्राप्त कर लेते हैं। और भगवान् के लोक में लीला आस्वादन द्वारा पूण आनन्द प्राप्त करते रहते ह, यही उनकी मुक्ति ह। पुष्टि जीव पूणतया भगवान् की कृपा पर ही आश्रित होने के कारण क्रमश सच्ची भक्ति का प्राप्त कर लेते हैं जो साधन और साध्य रूपा हैं। ये यथाय में भगवद् अनुग्रह पात्र हैं।

मर्यादा जीव—

दूसरे प्रकार के मर्यादा जीव भगवान् के वाच से उत्पन्न हुए^१। ये विधि नियम को मान कर चलने के कारण पुष्टि जीव से पथक ह। वेद प्रतिपादित विधि नियमों का अशरद पालन करने के कारण ये वैदिक-जीव भी बहलात ह।^२ इन जीवों को पुरुषात्तम की स्वरूप सेवा का अधिकार नहीं ह। ये स्वर्गादि की कामना से प्रेरित होकर ही उत्साह पूर्वक काम करते रहते ह। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बहुत दिनों तक फल की वासना से किए गए कर्मों की ओर से इन मर्यादा जीवों का मन उचटने लगता ह और तब वे स्वाथ रहित फलासक्ति हीन काम की ओर उमुख होते ह। इस प्रकार निष्काम भावना के कारण उनकी बुद्धि और मन का परिष्कार हो जाता है। यदि वे इसी प्रकार निरन्तर इसी माग पर चलते रहें तो अक्षर-धाम को प्राप्त करते ह और फिर अक्षर ब्रह्म में अपनी सत्ता का लय कर देते ह। यदि भगवान् चाहे तो अक्षर-सायुज्य से निकाल कर अपनी लीला का भागी बना सकते ह पर अपने मूल स्वरूप में मर्यादा जीव होने के कारण इस विकास क्रम के लिये उन्हें विशेष भगवद अनुग्रह की आवश्यकता ह और तब ये मर्यादा जीव पुष्टि जीव की कोटि में आ जाते ह।

प्रवाही जीव—

प्रवाही जीव भगवान् के मानस से आविर्भूत हुए।^३ ये ससार के प्रवाह में निरन्तर प्रवाहित होने वाले जीव ह। स्वनिर्मित माया के समार में आवद्ध स्वाथ और ममत्व बुद्धि से प्रेरित होकर सासारिक विषय-वामना का

^१ वचमा वदमाग हि।

—वही ९।

^२ वेदोक्त यदिक्वेषि च।

—पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद, १०।

^३ इच्छामात्रेण मनसा प्रवाह सृष्टवान् हरिः।

—पुष्टि प्रवाह-मर्यादा भेद (षोडश प्रथ सग्रह), ९।

भोग करते रहते हैं। अविद्या और मोह के कारण ही ये नमर चक्र में अग्रने रहते हैं। प्रवाही जीवों को अमृगी मृष्टि भी कहते हैं, ये सबके द्वेषी, क्रूर और अधम जीव हैं।^१ प्रवाही जीवों के दो प्रकार हैं.—(१) अज्ञ तथा दुर्ज।^२ अज्ञ जीवों का यदि भाग्यवश अज्ञान हट गया तो उद्धार होता है, पर दुर्ज जीव घोर आगुरी, दुष्ट प्रकृति के होते हैं जिनका इस नमर चक्र से कभी मोक्ष नहीं होता।

मुख्य तीन प्रकार के जीव के भेद-उपभेद—

उपरोक्त तीन प्रकार के जीवों के फिर बहुत से भेद-उपभेद हैं। अमिश्रित-शुद्ध-अनुग्रह पात्र शुद्ध-पुष्टि जीव कहलाते हैं। ये जीव पूर्णतया भगवद् अनुग्रह पर ही आश्रित रहने हैं, उन्हें स्व-भामर्त्य की आवश्यकता नहीं रहती। भगवद् अनुग्रह के बिना अमूल्य वस्तुएँ भी उनके लिए निस्कार हैं। स्वर्ग भी उनके लिए तृणवत् है, यदि भगवान् उन्हें नरक में डालकर प्रमत्त हैं, तो वे वहाँ भी परम सुखी हैं, क्योंकि भगवान् सुख से ही वे सुखी हैं। आपत्तियों का पर्वत टूट पड़े, दुःख झट्टी लगाकर बरमने लगे, पर वे उसे भगवदिच्छा जानकर उस दयनीय दशा में भी सुखी और मन्तुष्ट रहेंगे। उनका भगवान् में यह दृढ विश्वास कभी अडिग होने का नहीं, उनकी यह बद्धमूल धारणा है कि भगवान् जो कुछ करता है उनके कल्याण के लिए ही करता है। भगवान् के प्रति उनकी भक्ति और निष्ठा शुद्ध निष्काम भाव की है, अतः वे जीवों में श्रेष्ठतम हैं।

दूसरे प्रकार के जीव हैं पुष्टि-पुष्टि। प्रथम प्रकार से इन जीवों में यही भेद है कि यद्यपि इनके जीवन में भी भगवद् अनुग्रह का बहुत बड़ा हाथ है पर ये पूर्णतया भगवान् के पदाश्रय में अपने को डाल नहीं देते। बल्लभ मतानुसार इसीलिए उनमें एक प्रकार का अभाव बना रहता है, जिसके कारण जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति उन्हें नहीं हो पाती, अतः साधना के अन्त में उन्हें केवल पूर्ण ज्ञान की ही प्राप्ति होती है।

इसके बाद पुष्टि-मर्यादा वाले जीवों की श्रेणी है। ये अनुग्रह और विविध के बीच आवद्ध हैं। अतएव भक्ति और कर्म दोनों पर ही उनकी आस्था

^१ जीवास्ते ह्यासुरा सर्वे प्रवृत्ति चेति वर्णिताः ।

तानह द्विपतो वाक्ययाद्भिन्ना जीवा प्रवाहिणः ।

—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद, ११ ।

^२ ते च द्विवा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्जविभेदतः ।

रहती है, इसी कारण जीवन के धरम प्राप्तव्य को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें क्रमशः भगवद् गुणों का ज्ञान होने लगता है पर भगवान् के साक्षिण्य सुख से वे वंचित ही रह जाते हैं।

फिर है पुष्टि प्रवाह जीवों की श्रेणी। यद्यपि भगवान् का अनुग्रह उनमें रहता है पर वे तीर्थादि नाना धार्मिक क्रिया का अनुष्ठान करते रहते हैं।

अब है मर्यादा पुष्टि जीवों की श्रेणी। वे सासारिक क्रियाकर्मों के त्याग से भगवान् के ध्यान में निरत रहते हैं। भगवान् के अनुग्रह के कारण भक्ति का अंश उनमें रहता है।

इसके बाद है मर्यादा-मर्यादा श्रेणी। ये स्वयं प्राप्ति की इच्छा से धार्मिक कृत्य करते रहते हैं।

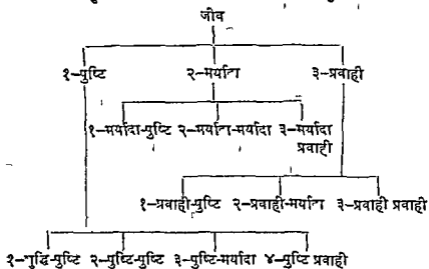
इसके बाद स्थापित है मर्यादा प्रवाह जीवों का जो धार्मिक क्रियादि सासारिक सुख की प्राप्ति के लिए करते हैं।

फिर है प्रवाह-पुष्टि जीवों की श्रेणी। भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करने पर भी ससार में ही रत रहते हैं।

प्रवाह-मर्यादा स्तर वाले जीव विभिन्न प्रकार के वर्गों में डूबे रहते हैं।

सबसे अन्तिम है प्रवाह प्रवाह जीव। ये भगवद् अनुग्रह और विधि की सीमा से बाहर ही रहते हैं। अतः उनका स्वभाव, क्रियादि सभी आसुरी वृत्ति से प्रेरित है।

बल्लभ मतानुसार जीवों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हुआ —



जीवों के वर्गीकरण की विशेषता—

वल्लभाचार्य ने इस वर्गीकरण द्वारा जगत् में आविर्भूत जीवों के स्वभाव भेद से जितने भी प्रकार संभव हैं—भगवद् अनुग्रह पात्र, विधि-नियम धारित, दोनों की सीमा ने परे घोर संसारी—उन सभी का विवरण दिया है।

जीव का ब्रह्मभाव—

वल्लभ-मत में दुःख की पूर्ण निवृत्ति से नित्यानन्द की प्राप्ति मोक्ष मानी गई है। जीव के प्रकार, माघनाभेद, भगवत् कृपानुरूप मोक्ष की भी भिन्न अवस्थाएँ मानी गई हैं। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और मायुज्य इन चार प्रकार की मुक्ति के साथ ही वल्लभ मत के एक और सायुज्य-अनुरूप-मुक्ति-अवस्था मानी गई है, सब में से इसे श्रेष्ठतम कहा गया है। यह मुक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम की लीला में प्रविष्ट होकर उसका पूर्ण आनन्द लेना है। जीवन मुक्त अवस्था में जीव भजनानन्द में लीन रहता है और फिर प्रभु कृपा से ही भगवान् की लीला का अनुभव करता है। यह मुक्ति स्वरूपानन्द कहलाती है। वल्लभ-संप्रदाय में मोक्ष की उच्च अवस्था में भी जीव और ब्रह्म का तारतम्य बना रहता है, क्योंकि अभेद होने से जीव को आनन्दानुभव नहीं हो सकता। इसलिए ब्रह्मभाव प्राप्त करके भी ब्रह्म से भेद रहे यही इस मत की श्रेष्ठ अवस्था है। ब्रह्म भाव को प्राप्त करने पर जीव में परब्रह्म के सब गुण आ जाते हैं केवल परब्रह्म की आधीनता के कारण उसमें कर्तृत्व भाव नहीं आता।

वल्लभ संप्रदाय में जगत्—

जगत-ब्रह्म का अधिकृत परिणाम—

वल्लभ मत में सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के सत् अंग से जड़ जगत् अग्नि से चिन्तारी के समान उद्भूत हुआ^१, उसमें भगवान् के चिद् और आनन्द अक्षर का तिरोभाव रहता है। ब्रह्म की इच्छा से ही संपूर्ण मृष्टि का विस्तार हुआ। अतः भगवान् की कृति और स्वरूपात्मक होने के कारण यह जगत् सत्य है। जगत् रूप में परिणति से निर्गुण ब्रह्म किसी प्रकार विकार ग्रस्त नहीं होता, वह पहले ही जैसा शुद्ध निर्विकार बना रहता है।^२ जैसे कंकण,

^१ विस्फुलिग इवाग्नेस्तु सदशेन जडाऽऽपि ।

—तत्त्वदीप निबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक ३२ ।

^२ ब्रह्म निरीह ज्योति अविकार, सत्तामात्र जगत्-आधार ।

कुडल आदि विभिन्न गहना के रूप में परिणत सोने में कोई विकार नहीं आता और गलाने के बाद पुन खरा सोना ही बन जाता है, ठीक उसी प्रकार यह जगत् भी ब्रह्म का अविकृत परिणाम है।^१ प्रलय काल में यह पुन शुद्ध ब्रह्म के स्वरूप में ही तिरोभाव हो जाता है। वल्लभ मत जगत् की उत्पत्ति के सबध में अविकृत परिणामभाव के सिद्धान्त को मानता है।

ब्रह्म जगत् का निमित्त और उपादान कारण—

एकमात्र ब्रह्म ही इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण है।^२ जैसे मकड़ी अपनी इच्छानुसार अपने मुख से तन्तु निकाल कर उसे जाके के रूप में बुन देती है और उसी में रमण करती है और फिर तन्तु को अपने ही मुख में समा लेती है। उसी प्रकार ब्रह्म भी लीला के लिए स्वेच्छा से इस जगत् का प्रसार करता है और फिर लीला के बाद अपनी ही इच्छा से जगत् को समेट कर अपने में अन्तर्हित कर लेता है।

ब्रह्म-कृत 'जगत्' और जीव-कृत 'ससार'—

ब्रह्म अपनी माया शक्ति के प्रभाव से विभिन्न आकार ग्रहण करता है, वही ब्रह्म जगत् (प्रपञ्च) के रूप में भी प्रतिभासित होता है। वस्तुतः माया निर्मित जगत् (प्रपञ्च) भगवान् का ही आत्म रूप है। इसी माया की अविद्या

^१ एवै वन्तु अनेक ह्य जगमगात् जगधाम ।

जिमि कचत तै विविणी करुण् शुडल नाम ॥

—अनेकाथ मजरी (नददास) दोहा २, पृ० ९८ ।

^२ जगत् समवायि स्यात् तदेव च निमित्तवम् ।

—तत्त्वदीप, निवध, शास्त्राथ प्रकरण पृ० २३३ ।

ननु ब्रह्म जगत्कारणमिति सिद्धम् । तच्च समवायि निमित्त चेति च कारणधम । एव हि कार्ये भवन्ति

—अणुभाष्य, ३ अध्याय, २ पाठ १७ सूत्र पृ० ९१० ।

प्रपञ्चो भगवत्वायास्तद्रूपो माययाभवत् ।

तच्छब्दस्याविद्याया त्वस्य जीव-ससार-उच्यते ।

—तत्त्वदीप निवध, शास्त्राथ प्रकरण, श्लोक २६ पृष्ठ ७५ ।

शक्ति के सहारे जीव ससार का निर्माण करता है।^१ 'मैं और मेरा' यही ससार का वास्तविक स्वरूप है। अज्ञान, भ्रम आदि शब्द ससार की विभिन्न मनाएँ हैं।

जगत् और संसार में भेद—

जगत् (प्रपञ्च) और ससार एक वस्तु नहीं है। जगत् ब्रह्मात्मक होने के कारण कभी अज्ञान कल्पित और भ्रात नहीं हो सकता। भगवान् रमणेच्छा और रसास्वादन के लिए ही प्रपञ्च रूप से आविर्भूत होते हैं। जगत् के अन्तर्गत जीव, जीव-कृत विभिन्न कर्म और उनके फल सभी भगवान् के विभिन्न रूप हैं। पर जब भगवत् सत्ता से पृथक् होकर जीव में अपने वास्तविक स्वरूप और स्वभाव की विस्मृति जगती है, तभी अज्ञान और भ्रमवश जीव अपने को ही सब कर्मों और फलों का भोक्ता नमसने लगता है। इसीमें 'मैं' और 'मेरा' रूप भ्रान्तिजन्य ससार का उदय होता है।^२ यह ससार जीव की स्वार्थवृत्ति और अविद्याजन्य भ्रम का परिणाम है। भगवान् से स्वतंत्र कर्तृत्व ज्ञान और संपूर्ण संसार की स्थिति ही भ्रामक और मायिक है। सुख-दुःख संसार के साथ लगे रहते हैं, जगत् के साथ नहीं। अविद्या के कारण ही जीव ससार-चक्र में अहता-ममता, राग-द्वेष, जन्म-मरण आदि विभिन्न दुःख-शोक से जकड़ा हुआ घूमता फिरता है।

भगवान् की भक्ति और कृपा से संसार की निवृत्ति—

भगवद् भक्ति और कृपा द्वारा जीव इस अविद्या से मुक्ति पाकर पुनः अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है। तत्त्वज्ञान के आविर्भाव से जीव को सब कुछ ब्रह्ममय ज्ञात होने लगता है और यह इस मायिक ससार से निवृत्त हो जाता।^३ जीव के जीवन्मुक्ति के समय संसार की निवृत्ति हो जाती

^१ मिथ्या यह ससार और मिथ्या यह माया ।

मिथ्या है देह कहो क्यों हरि विमराया ।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० १५८ ।

^२ नमो नमो करुणा निधान,

चितवत कृपा कटाक्ष तुम्हारी मिटि गयो तम अज्ञान ।

मोहनिगा को लेश रह्यो नहीं भयो विवेक विधान,

आतम रूप सकल घट दरस्यो उदय कियो रविज्ञान ।

मैं मेरी अब रही न मेरे, छूट्यो देह अभिमान ।***

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० ३९ ।

^३ वही ।

है, किन्तु ब्रह्मात्मक जगत् की निवृत्ति नहीं होती।^१ ब्रह्म वं समान ही जगत की सत्ता नित्य और सत्य है, आविर्भाव और तिरोभाव उसकी वेदल यही दो अवस्थाएँ हैं। जीव कितनी ही सत्ता में मुक्त क्यों न हो जाएँ, पर जगत् या प्रपञ्च का लोप, नहीं होता। जगत् का आविर्भाव तिरोभाव तो वेदल भगवदिच्छा पर निर्भर है। भगवान् जब आत्मारामरूप से अपनी आत्मा में ही रमण करता है तब जगत उसी के स्वरूप में विलीन रहता है। ऐसी दशा में जीव विश्राम सुख का अनुभव करता है पर यह जीव की मुक्ति नहीं है।

विद्या द्वारा अविद्या का उपशमन—

विद्या के उदय से अविद्या की निवृत्ति होती है और अविद्या के विनाश से ससार से जीव की मुक्ति हाती है। - विद्या से अविद्या का विनाश हाता अवश्य है, पर वह मय्यव विनाश नहीं, इसी कारण यह मुक्ति यथाथ मुक्ति नहीं है। समवायी के नाग से ही काय का सबया निनाश होता है। विद्या सात्विक है, उसके द्वारा स्वजन माया का विनाश नहा होता और जब तक माया है, सूक्ष्म रूप में अविद्या भी अवश्य बलमान रहती है। अतः विद्या का परिणाम अविद्या का अभिभव मात्र है वास्तविक विनाश नहीं। अविद्या के कारण देह, इन्द्रिय आत्मा में जा भ्रान्ति उत्पन्न होती है, विद्या केवल उसी का उपशमन करती है इसलिए जन्म-मरणदि के दुःख से उसे मुक्ति मिलती है। भ्रान्ति भले ही न रहे, पर देहादि की स्थिति जगत में होने के कारण उससे स्वरूप का लोप नहीं होता। यह स्थिति भी एक प्रकार का माक्ष ही है इसे वध निवृत्ति कहते हैं। वस्तुतः जगतमायानिवृत्ति ही यथाथ मुक्ति है विद्या से उसकी प्राप्ति संभव नहीं। बल्लभ मत में माया ही देह निर्माता है और माया में अविद्या की सूक्ष्म अवस्थिति के कारण देहादि की भ्रान्ति न रहने पर भी जीव के अन्तःकरण में विचित अविद्या का विकार रह ही जाता है।

जीव की चरम फल प्राप्ति 'ब्रह्मभाव'—

जीव में जब तक जीवत्व है तब तक शरीर के लय होने पर भी उनमें पुनरुद्भव की संभावना बनी हा रहती है। क्योंकि ऐसी दशा में देहादि केवल पञ्चतत्व को प्राप्त हाती है मूल कारण में विलीन नहीं होती। किन्तु जीव भाव की

^१ ससारस्य लयो मुक्तौ न प्रपञ्चस्य कश्चित् ।

कृष्णस्थात्परतो त्वस्य लयः सबसुखावहः ॥

—तत्त्वदीप निबन्ध, शास्त्राय प्रकरण, श्लोक २७, पृ० ८४ ।

निवृत्ति से अर्थात् जीव ब्रह्मभूत होने या अक्षर ब्रह्म में लीन होने पर गरीर पूर्ण रूप से मूल कारण में लीन हो जाता है। पुष्टिमार्गीय भक्तों का चरम फल यही है कि वह स्थूल लिंग-शरीर को छोड़ भगवत्लीलोपयोगी देह पाने के बाद ब्रह्म के साथ आनन्द रस ले।^१ पूर्ण पुरुषोत्तम के लोक में पहुँच कर पूर्ण पुरुषोत्तम की आनन्द लीलाओं का आनन्द विग्रह से अनुभव करना ही वल्लभ संप्रदायी भक्त का एक मात्र लक्ष्य है। जिस समय पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म अपनी लीला का संवरण करते हैं, उस समय लीला-मग्न जीव की पृथक् सत्ता नहीं रहती। परब्रह्म के आनन्दाश में उसकी सामुज्य मुक्ति हो जाती है।

वल्लभ संप्रदाय में भक्ति का स्वरूप—
माहात्म्य ज्ञान और प्रेम ही भक्ति है—

वल्लभाचार्य ने भक्ति विषयक कोई स्वतंत्र ग्रंथ की रचना नहीं की, परन्तु उनके विभिन्न ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर भक्ति के स्वरूप का बहुत सुन्दर विवेचन हुआ है। अपने पूर्ववर्ती भक्तिशास्त्र के मुख्य प्रणेताओं की भक्ति-संवादी मान्यताओं^२ का महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सुन्दर समन्वय किया और भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की—“माहात्म्य ज्ञान के साथ भगवान् के प्रति सुदृढ़ और सतत् स्नेह ही भक्ति है।” मुक्ति का इससे अविक सरल उपाय

^१ अग्ने प्राप्या लौकिकदेहाद्भिन्ने स्थूललिंगगरीरे क्षपयित्वा दूरीकृत्य, जय भगवत्लीलोपयोगिदेहप्राप्त्यनन्तर भोगेन सम्पद्यते। सोऽस्तुते सर्वान् कामान् सहब्रह्मणा...।

—अणुभाष्य, ४।१।१९

^२ 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' —गाडिल्य, भक्ति सूत्र, २
सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा। अमृत स्वरूपा च। यल्लद्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किञ्चिद्वा छति, न द्वेषि, न रमते, नोत्साही भवति। —नारद-भक्ति-सूत्र २, ३, ४, ५।

देवाना गुणलिंगानामानुश्रविककर्मणाम्।

सत्त्व एवैकमनसोवृत्ति स्वाभाविकी तु या ॥

अनिमित्ता भागवती भक्ति सिद्धेर्गरीयसी।

जरयत्याशु या कोश निगीर्णमनलो यथा ॥

—श्रीमद्भागवत ३।२५।३२-३३।

नही ह ।”^१ इस प्रकार से वल्लभीय मत में माहात्म्य नाम से ही भक्ति का उदय होता है । भगवान् में दृढ और गाढ स्नेह विशेष ही भक्ति है ।

पुष्टि और भक्ति—

वल्लभाचार्य प्रवर्तित ‘पुष्टि भक्ति’ के नाम से सुपरिचित है । ‘पुष्टि-भक्ति’ में प्रेम की प्रधानता है । इसमें प्रेम के द्वारा ही सब कुछ संपन्न होने की बात कही जाती है, इसलिये इसे प्रेम लक्षणा भक्ति या रागात्मिका भक्ति कहते हैं । विशुद्ध प्रेम के द्वारा ही भगवान् की प्राप्ति सम्भव है, ऐसा मानकर इस सम्प्रदाय वाले इसी माधना का अवलंबन करते हैं । विशुद्ध प्रेम को लल्लभाचार्य ‘विशुद्धपुष्टि’ मानते हैं और गोपिया को विशुद्ध प्रेम का प्रतीक समझते हैं ।^२ प्रेम-लक्षणा भक्ति को अष्टछाप के भक्त-विवियाने बहुत बड़ा स्थान दिया है । सबत्र उनके पत्रों में भगवान् के प्रति इस मधुर प्रेम का वर्णन किया गया है ।^३

^१ माहात्म्यनामपूवस्तु सुदृढ सवतीधिक ।

स्नेहा भक्तिरिति प्रोक्तस्तथा मुक्तिन चाथथा ॥

—तत्त्वतीपनिग्रह शास्त्राय प्रकरण, श्लोक ४६ ।

^२ गोपी प्रेम की ध्वजा ।

जिन जगदीश किये बस अपने उर धरि स्याम भुजा ।

सिख विरचि प्रससा कीनी ऊधो सन सराहि

धन्य भाग गाकुल की बनिना अति पुनीति मुख भाहि ।

कहा विप्र घर जमहि पाये हरि सेवा विधि नाहि

सहि पुनीत दास परमानद जे हरि सम्मुख जाहि ॥

—परमानन्द, (अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५४१ पर उद्धृत)

^३ प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होइ, नाथ कृपा बरि दीज सोइ ।

और सकल हम देनौत जोइ तुम्हारी कृपा होइ मा हाइ ॥

—मूरसागर, नाम स्वयं, राग त्रिलासल ४९१९ ।

नित्य आमानन्द अलङ्क मन्त्र उदार ।

केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परवार ।

—नान्दास (मुक्त) मिद्वान पञ्चाध्यायी, पृ० १९१ ।

प्रीतम प्रीत ही तैं पय ।

जल्पि रूपगुण सीत सुधरता इन वातति न रिषये ।

मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति—

वल्लभाचार्य भक्ति के दो भेद बतलाएँ हैं (१) मर्यादा भक्ति, (२) पुष्टि-भक्ति। मर्यादा-भक्ति में भगवान् मर्यादा के पालन करने वाले होने हैं तथा इस भक्ति में भक्त भजन, पूजन आदि साधनों का सहारा लेता है, विधिनियमों को मानकर चलता है। मर्यादा का पालन करता हुआ, साधन में-लगा हुआ, साधक इस बात की आकांक्षा करता रहता है कि उसे नायुज्य की प्राप्ति हो। इस प्रकार से मर्यादा-भक्ति में फल की आकांक्षा बनी रहती है। मर्यादा-भक्ति को बहुत लोगो ने वैधी भक्ति भी कहा है। शास्त्र में बताया हुए नियमों और विधियों का पालन उम भक्ति का साधन है।^१ पुष्टि भक्ति में प्रेम ही प्रधान रहता है। यह निस्साधन भक्ति है। उममें भक्त को किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं रहती। इस भक्ति में भक्त भगवान् का प्रेम पाकर एक अपूर्व आनन्द और परम शान्ति का अनुभव करता है।

भगवान् के अनुग्रह से पुष्टिभक्ति की प्राप्ति—

वल्लभाचार्य ने बतलाया है कि पुष्टि-भक्ति या प्रेम-लक्षणा-भक्ति भगवान् के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है।^२ भगवान् की कृपा में यह स्वत उत्पन्न होती है। इसमें किसी साधन की अपेक्षा नहीं रहती। भगवान् जीवों पर दया कर अपने अनुग्रह की अभिव्यक्ति करते हैं। भक्त अगर चाहे कि अपने पुरुषार्थ अथवा किसी साधन का अवलम्बन लेकर इसे प्राप्त करे तो यह संभव नहीं। उसे भगवान् की दया पर ही इसके लिए निर्भर करना पड़ेगा। यह भी कहा गया है कि पुष्टिमार्गीय भक्त के सभी कार्यों का नियामक भगवान् का अनुग्रह ही है।^३ पुष्टि-भक्ति में भगवान् के साथ भक्त का अभेद-बोधन

सतकुल जनम करन सुभ लच्छन वेद पुरान पढैये,

'गोविन्द' प्रभु विना स्नेह सुवा लीं रसना कहा नचैये ॥

—गोविन्द स्वामी (पद संग्रह), ३४३।

^१ शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते।

इत्यसौ स्याद्विधिनित्य सर्ववर्णाश्रमादिषु।

—भक्तिरसामृतमिधु, पूर्व भाग, लहरी २, श्लोक ४।

^२ 'पुष्टिमार्गीज्जुग्रहेक साध्यः।' —अणुभाष्य, चतुर्थ अध्याय, चतुर्थ पाद, सूत्र ९ टीका।

^३ अनुग्रह पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः।

सिद्धान्त मुक्तावली (पोडश ग्रन्थ), श्लोक १८।

सपन्न होता है। महाप्रभु बल्लभाचाय ने बतलाया है कि कलि-काल के जीवों के लिये यही एकमात्र सुलभ माग है। इसमें वण देश अथवा जाति के भेद का विचार नहीं है। अतएव सबके लिए यह कल्याण माग खुला हुआ है।

भगवान् के अनुग्रह का तात्पर्य—

भगवान् जो जीवों पर अनुग्रह करते हैं उसका तात्पर्य क्या है? इसमें भगवान् का कौन सा प्रयोजन सिद्ध होता है? कहते हैं कि जीव मात्र को अनुग्रहपूर्वक निरपेक्ष, स्वरूपापत्तिरूपी मुक्ति प्रदान करना ही भगवान् का एकमात्र प्रयोजन है।^१ इसी हेतु वे अवतार धारण करते हैं। इस अवस्था में आनन्द स्वरूप भगवान् जीव के अतःकरण इन्द्रिय अवस्था देह में आनन्द का स्थापन कर अपने स्वरूप में स्थित कर देते हैं। इस प्रकार से आनन्द रूप से, स्वरूप से अवस्थान करना ही जीव की मुक्ति है। इस अवस्था में अन्यथा भाव नहीं रहता।

लीला—

भगवान् अनुग्रह कर मुक्ति प्रदान करने के लिए जो अवतार धारण करते हैं उसका एकमात्र हेतु उनकी लीला है। लीला के लिये ही वह सत्र कुछ की सृष्टि करते हैं। इस लीला का उद्देश्य लीला है। अपनी नानाविध लीलाओं को प्रकट करने के लिये ही वे अवतार धारण करते हैं। यह लीला अपन आप में पूरा है। इसमें कोई काय सपन्न नहीं होता केवल व्यापार मात्र रहता है। जैसे कोई काय सपन्न हो जाय तो हो जाय, लेकिन उससे उस लीला का कुछ लेना-देना नहीं है। इस लीला में कत्ता का कोई उद्देश्य निहित नहीं है। आनन्द स्वरूप, लीला पुरुषोत्तम लीला व द्वारा अपने आनन्द को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार से उनका अनुग्रह भी उनकी लीला में ही समाहित है।

‘सर्वभावेन’ भगवान् का भजन—

यह सही है कि बिना भगवान् के अनुग्रह के रागानुगाभक्ति का आविर्भाव नहीं होता, लेकिन इस अनुग्रह की सिद्धि के लिए शुद्ध अनुराग, एकांत निष्ठा की आवश्यकता है। इसीलिये महाप्रभुबल्लभाचाय ने भक्ति के लिए जहाँ

^१ नृणा नि श्रेयसाधायव्यक्तिभगवतो भुवि ।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निगुणस्य गुणात्मन ॥

भगवान् के प्रति दृढ़ और उत्कट प्रेम की बात कही है। वहाँ भगवान् की महत्ता के ज्ञान और सतत ध्यान का भी निर्देश किया है। इससे जीव की अविद्या का नाश होता है और भगवान् के प्रेम की प्राप्ति होती है। इन अविद्या के विनाश हेतु दृढ़ विश्वास के साथ श्रवणादि द्वाग हरि का भजन करना चाहिए^१। इनके सिवा सबका परित्याग करना चाहिए। भगवान् का भजन जीव का एकमात्र धर्म पुष्टि मार्ग में माना गया है। मदानन्ददा चाहे जिस भाव से हो भगवान् का भजन करना चाहिए।^२ अपने आप को पूर्णरूप से भगवान् की दया पर छोड़ देना चाहिए। श्रीमद्भागवत में कहा है 'जो कोई भगवान् में काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य अथवा सौहार्द भाव रखता है, वह भगवान्मय हो जाता है।'^३ आचार्य ने 'सुबोधिनी टीका' में भागवत की इस उक्ति की समीक्षा की है और बतलाया है कि काम स्त्री भाव में, भय अधिक भाव में, स्नेह सबधियों में, ऐक्य ज्ञान-श्रवणा में तथा सौहार्द सत्य भाव में विद्यमान रहता है। अतएव किसी भी भाव में भगवान् का भजन करना जीव के लिए फलप्रद है।

नवधा भक्ति तथा दसवीं प्रेम लक्षणा भक्ति—

वल्लभाचार्य ने नवधा भक्ति को तो स्वीकार किया ही है, इसके अलावा दसवीं प्रेमरूपा को भी माना है। वास्तव में सत्सार के बंधनों तथा माया-मोह से मुक्त नहीं होने पर जीव के लिए भक्ति का मार्ग अपनाना कठिन है। भगवान् को अपने भीतर बसाने के लिए अपने अतःकरण को सभी ढोपों से मुक्त करना चाहिए। आचार्य ने बतलाया है कि नवधा भक्ति के माधन-क्रम को अपनाने से प्रेम की परिपूर्णता होती है, जिसके फलस्वरूप श्री, वैराग्य

^१ तस्मात्सर्वं परित्यज्य दृढ विश्वासतो हरिम् ।

भजेत श्रवणादिभ्यो यद्विधातो विमुच्यते ॥

—तत्त्वट्टीप निबंध, आचार्य प्रकरण, श्लोक ५३, पृ० ११४ ।

^२ सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिप

स्वस्यायमेव धर्माहि नान्यं क्वापि कदाचन ॥

—चतु श्लोकी (पोडश ग्रथ) श्लोक १ ।

^३ काम क्रोध भय स्नेहमैक्य सौहृदमेव च । नित्यं हरी विदधतो यान्ति तन्मयता हि ते ।

आदि भगवद धर्मों का प्रादुर्भाव होता है।^१ नवधा भक्ति ये हैं श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, मन्थ्य तथा आत्म-निवेदन। इनसे द्वारा हृदय में भक्ति भाव बढ़ता है। इससे लिये कोई जबरूरी नहीं है कि गृहस्थाश्रम को त्याग लिया जाय। बल्कि आचार्य जी ने बतलाया है कि गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए प्रेमपूर्वक भगवान् का पूजन तथा उनके चरित्र और गुणा का श्रवण और कीर्तन करना चाहिए।^२ ऐसा करने से भगवान् का प्रेम बीज रूप में हृदय में जमता है।

दसधा भक्ति और अष्टछाप के कवि—

दसधा भक्ति का वर्णन अष्टछाप के कविया की रचनाओं में मिलता है। सूरदास ने प्रेम-लक्षणा भक्ति का दसवीं भक्ति कहा है।^३ इसी प्रकार से नन्ददास ने भी श्रवण, कीर्तन आदि का जिक्र किया है और इन्हें वे साधन मानते हैं।^४ वास्तव में नवधा भक्ति का प्रेम भक्ति के लिए साधन माना गया है। परमानन्द दास के एक पद में इन सभी प्रकार की भक्तियाँ और भक्तों के नाम बतलाये गए हैं।^५ इसी प्रेम का उल्लेख श्री हरिराय जी ने

^१ साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमागतं

प्रेमपूर्वत्वा स्फुरद्धर्मा स्पन्दमाना प्रवर्तिता ।

जलभेद (पाडश प्रथ, श्लोक १०)

^२ बीजदाढभप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधमत

अध्यानृतो भजेत कृष्ण पूजया श्रवणादिभि ।

—भक्तिवर्धिनी (पोडश प्रथ) श्लोक २ ।

^३ श्रवण कीर्तन स्मरण पाद रत, अर्चन वदन दास ।

सन्ध्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास ॥

—सूरसागर

^४ श्रवण कीर्तन सार, सार सुमिरन को है पुनि ।

ज्ञान सार हरि ध्यान सार श्रुति सार गुहि गनि ।

—नददास (गुक्ल), रास पचाध्यायी, अध्याय ५, पृ० १८२ ।

^५ ताते दसधा भक्ति भली ।

जिन जिन बीनी तिनके मन ने नेकु न अनत चली ।

श्रवण परीमत तर राजरिपि कीर्तन करि शुक्देव

सुमिरन करि प्रह्लाद निभय भयो कमला करी पद सेव ।

प्रभु अर्चन सुफलक सुत बदन दास भाव हनुमन्त ।

किया है। वे कहते हैं, 'श्री आचार्य जी के मारग को स्वरूप कहा है। जो माहात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ स्नेह सो सर्वोपरि है सो ठाकुर जी को बहुत प्रिय है, परन्तु जीव माहात्म्य राखे। सो काहे ते। जो माहात्म्य विना अपराध को भय मिट जाय तासो प्रथम दशा में माहात्म्य युक्त स्नेह आवश्यक कहिए ... सो ठाकुर जी भक्तन के स्नेह वग होय भक्तन के पाछे पाछे डोलत है सो जहाँ ताई ऐसो स्नेह वग नाही होय तहाँ ताई माहात्म्य राखनो ... तासो माहात्म्य विचारै और अपराध सो डरपै तो कृपा होय। जब सर्वोपरि स्नेह होयगो तब आपहीते स्नेह ऐसो पदार्थ जो माहात्म्य कू छुड़ाय देयोगो।'^१

प्रेम की तीन अवस्थाएँ—

वल्लभाचार्य ने इस प्रेम की तीन अवस्थाएँ कही हैं—स्नेह, आसक्ति और व्यसन।^२ प्रेम की इन तीनों अवस्थाओं की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है, क्योंकि इनने भगवान् के प्रति दृढ प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इस प्रेम की पहली अवस्था स्नेह है। इस अवस्था में भक्त को जब भगवान् के प्रति स्नेह होता है तब सासारिक विषयो के प्रति वह उदासीन हो जाता है तथा वाद में चलकर लोक से सभी सबध छूट जाते हैं और भगवान् से सबध जुड़ जाते हैं। इस अवस्था में ससार के प्रति राग का नाश हो जाता है। दूसरी अवस्था आसक्ति में मिलन की आकुलता बनी रहती है। घरवार, जगत् के सभी प्रपञ्च वाक्य से प्रतीत होने लगते हैं। यह अवस्था विरह की है। तीसरी अवस्था व्यसन की है। यह अवस्था जब उत्पन्न होती है, तब भगवान् का ही सर्वदा ध्यान बना रहता है, उसे अन्य कोई बात अच्छी नहीं लगती। प्रेम की तन्मयता इस अवस्था में बनी रहती है। इस अनायास प्रेम भाव की प्राप्ति होने पर जीव कृतार्थ होता है।^३

सखा भाव अर्जुन वस कीने श्री हरि श्री भगवन्त ।

वलि आत्म समर्पन करि हरि राखै अपने पास ।

अविरल प्रेम भयो गोपिन को वलि परमानन्द दास ।

—परमानन्द दास (अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५४३ पर उद्धृत)

^१ अष्टछाप वार्ता, काकरौली, पृ० १८ ।

^२ भक्तिवधिनी (पोडग ग्रन्थ), ब्लोक ३ ।

^३ व्यावृत्तोऽपि हरो चित्त श्रवणादी यतेत् सदा ।

तत प्रेम तथासक्तिर्व्यसन च तथा भवेत् ॥

भगवान् की विरहाग्नि में जलते रहना, उनसे मिलने के लिये उत्कट अभिलाषा एवं आतुरता भक्त की सत्रसे अधिक काम्य वस्तु है। भगवान् की जिस पर अत्यधिक कषा होती है उसी के लिये यह बात समभव हो सकती है। भक्तों के हृदय में इसकी कितनी बड़ी आकांक्षा होती है, इसका अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि श्री वल्लभाचार्य जी इस बात की कामना कर रहे हैं कि श्रीकृष्ण के विरह में जो दुःख मन्द, यशोदा और गोपिया को हुआ था वही दुःख उनके हृदय में उत्पन्न हो।^१

ब्रह्म-सम्बन्ध-पुष्टिभाग में भगवान् श्रीकृष्ण परम-आराध्य है। पुष्टि-भक्ति में सेव्य रसरूप श्रीकृष्ण है। वे साक्षात् परब्रह्म माने जाते हैं। सब कुछ को छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण के ध्यान और चिंतन की बात श्रीवल्लभाचार्यजी ने कही है^२। ससार की माया ममता तथा अहं भाव का परित्याग कर तथा अपने-पराये का भेद भाव मुलाकर भगवान् के चरणों में अपने आपको संपूर्ण रूप से समर्पित कर देना पुष्टिमार्गीय भक्ति में एक महत्व का स्थान बनाए हुए है। भक्त से इस बात की अपेक्षा रहती है कि वह इन सब वस्तुओं और प्रलोभना का त्याग तो करे ही, माय ही दीनतापूर्वक भगवान् के अनुग्रह प्राप्त करने की साधना करे। इस ही ब्रह्म-संबन्ध कहा गया है। पुष्टि भाग की भक्ति को व्यावहारिक रूप देने के लिये 'ब्रह्म-संबन्ध' की व्यवस्था है। इस प्रणाली के प्रचलन में श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में आए हुए निम्नलिखित श्लोक को श्री वल्लभाचार्य जी ने प्रमाण माना है

ये दारागार पुत्राप्तप्राणान् वित्तिमिष पर।

हित्वा मा शरण यात कथ तास्त्यक्तुमुत्सहे ॥

स्नेहाद् रागविनाग स्यादासकृत्या स्याद गृहारुचि ।

गृहस्थानो बाधकत्वमनात्मत्व च भासते ।

यदा स्याद व्यसन कृष्णे कृताथ स्यातदैव हि ॥

—भक्तिवर्धिनी (पोडश ग्रन्थ), श्लोक ३,४,५ ।

^१ यच्च दुःख यशोदाया नदादीना च गोकुत्रे ।

गोपिकानां तु यद दुःख तददुःख स्यामम क्वचित् ॥

—निरोध रुग्ण (पोडश ग्रन्थ) श्लोक १

^२ तस्माच्छ्रीकृष्ण मागस्यो विमुक्त सबलोकत ।

आत्मानद समुद्रस्थ कृष्णमेव विचिन्तयेत ।

—सिद्धान्त मुक्तावली (पोडश ग्रन्थ) श्लोक १५,१६ ।

इस संप्रदाय की यह दीक्षा है। 'ब्रह्म-संबंध' मङ्गलार के बाद जब भक्त पुष्टिमार्ग में प्रवेग पाता है, तब उसे वियोग आचार-विचार का पालन करना पड़ता है। इस अनुष्ठान के द्वारा जैसे गुरु उस शिष्य का भगवान् से सबंध स्थापित करा देता है। इस दीक्षा का अभिप्राय यह बतलाया गया है कि जीव अविद्या के कारण परब्रह्म से अपना सबंध भूल गया है और महत्स्रो वर्षों में जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा हुआ है। गुरु जैसे भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण कराता है, शिष्य अपने संपूर्ण ढोंपो को निवृत्ति के लिये श्रीकृष्ण की गरण लेता है। इस प्रकार सबंध-स्थापन, आत्मनिवेदन तथा गरण-नामन के एकीकरण को ब्रह्म-संबंध कहते हैं^१। श्री बालभाचार्य जी का आदेश है कि ब्रह्म के साथ अपना सबंध स्थापित करके जीव हमेशा यह ध्यान करे कि वह सब प्रकार सर्वदा श्रीकृष्ण की ही गरण में है^२।

दीक्षा और ब्रह्म-संबंध

'गरण मंत्र' अर्थात् 'श्रीकृष्ण. गरण मम' बतलाने के बाद गुरु, शिष्य को भगवान् के विग्रह के पाम ले जाते हैं। तुलसी की माला देकर दीक्षा-मंत्र देते हैं। यह आत्मनिवेदन मंत्र^३ कहलाता है। यह मंत्र सबको नहीं बतलाया जाता। इस मंत्र में कहा गया है कि सहस्रो वर्षों में मेरा श्रीकृष्ण से वियोग हुआ है। वियोग जनित ताप और क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है। इसलिये मैं भगवान् श्रीकृष्ण को देह, इन्द्रिय, प्राण, अंत करण और उनके धर्म, स्त्री, गृह, पुत्र, विन और आत्मा सब कुछ अर्पित करता हूँ। हे कृष्ण, मैं आपका दास हूँ, मैं आपका हूँ। इसके बाद भक्त अपना सब कुछ भगवान् को समर्पण किए जाता है। ऐसा विश्वास है कि अग रूप जीव का अशी परमात्मा के साथ प्रेम-भक्ति द्वारा ब्रह्म-संबंध स्थापित होने से सब

^१ प्रभु दयाल मिलल—'अष्टछाप-परिचय', पृ० ६०।

^२ तस्मात्सर्वत्मना नित्यं श्रीकृष्णगरणं मम।

यहभिरेव मतत स्थेयमित्येव मे मति ॥

—नवरत्न (पोडश ग्रंथ), श्लोक ९।

^३ सहस्रपरिवत्सर-भित्त-काल-जात कृष्ण-वियोग-जनित-ताप-क्लेशानन्द-तिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रिय प्राणान्त-करणानि तद्वर्माश्च दारागारपुत्राप्त-वित्तेहापराणि आत्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि ।।

दोषा की निवृत्ति हो जाती है, अन्यथा नहीं। इसलिये भगवान को बिना समर्पण किए कोई वस्तु भक्त के ग्रहण योग्य नहीं है^१।

सम्प्रदाय के सेव्य रूप

श्री वल्लभाचार्य जी ने प्रथमतः वात्सल्य भक्ति का प्रचार किया। वे श्रीकृष्ण के बाल रूप के उपासक थे। श्री वल्लभाचार्य जी तथा श्री विट्ठलनाथ जी के सेव्य स्वरूप नवनीत प्रिय जी हैं। इनके अलावा सम्प्रदाय में और सात स्वरूप मान्य हैं। ये उनके सेवका द्वारा सेव्य सात स्वरूप हैं। ये सातों स्वरूप १—श्रीमधुरेश जी, २—श्री विट्ठलनाथ जी, ३—श्री द्वारिकाधीश जी, ४—श्री गोकुलनाथ जी, ५—श्री गोकुलचंद्रमा जी, ६—श्री बालकृष्ण जी तथा ७—मदनमोहन जी हैं^२। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने सात पुत्रों को सेवा के लिये एक-एक स्वरूप दिया था। बहुतों का अनुमान है कि इस सम्प्रदाय में मधुर रस की भक्ति का प्रवेश का कारण गौडीय वैष्णव मत का प्रभाव है^३। ऐसा संभव हो सकता है। लेकिन इधर श्री वल्लभाचार्य के शृंगार-भक्तियों दो ग्रंथों का पता चला है। ये हैं (१) परवदाष्टक (२) मधुराष्टक। ये ग्रंथ बंबई से गुजराती में प्रकाशित हुए हैं^४। इन पर प्रकाशक का नाम पता नहीं दिया हुआ है। इन दोनों ग्रंथों से इस बात का पता चल जाता है कि श्री वल्लभाचार्य जी को व्यक्तिगत साधना और भगवद भजन के लिए मधुर भाव का उपासना भाव था। लेकिन अपने अनुयायियों तथा सवसाधारण के लिए उन्होंने इस प्रकार की भक्ति का विधान नहीं दिया क्योंकि बद्ध जीव के लिए उस साधना से पतित होने की संभावना अधिक रहती है, इसलिए उनके लिये वात्सल्य भाव की सेवा का ही विधान किया। मधुर भाव की भक्ति में वे भक्ति का चरम विकास मानते हैं लेकिन सवसाधारण को ध्यान में रख कर उन्होंने वात्सल्य भाव में ही सेवा का विधान किया है। उनका कहना है कि भगवान् का

^१ सिद्धांत रहस्य (पोडश ग्रंथ), श्लोक २।४

^२ प्रभुदयार मित्रल अष्टछाप, परिचय, पृ० ५८।

^३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५२८।

^४ इन ग्रंथों का सूचना मधुरा निवासी पंडित शबलकिशोर जी से मिली है जो वल्लभ-वैष्णव के अध्यापक रह चुके हैं। ये वल्लभ-सम्प्रदाय के अच्छे विद्वान और अच्छे वैष्णव हैं।

जिस जीव पर विशेष अनुराग होगा उसे वे स्वयं भी मधुर भाव की भक्ति प्रदान करेंगे। अतः वे मधुर भाव की भक्ति को कृपा-सापेक्ष मानते हैं और इसी कारण से उन्होंने उसका विधान स्वतंत्र रूप से नहीं किया। गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी के समय से युगल-लीला और मधुर भाव की भक्ति का पूरा-पूरा प्रचार वल्लभ-संप्रदाय में हुआ। वल्लभ-संप्रदाय के सात ऐसे पीठ हैं, यहाँ युगल सेवा होती है। इन पीठों में काम्य वन (ब्रज के अतर्गत) का पीठ मुख्य है।

प्रपत्ति

इस संप्रदाय में 'प्रपत्ति' या गुरुणागति को उसी प्रकार से महत्व का स्थान प्राप्त है, जैसा कि अन्य संप्रदायों में। 'प्रपत्ति' में भगवान् ही सब कुछ है। उसकी गुरुणागति ही साधन है। इस प्रपत्ति में भगवान् ही साधन और भगवान् ही साध्य है। यह दो प्रकार की कही गई है, मर्यादिकी प्रपत्ति और पुष्टि-मार्गीय प्रपत्ति। मर्यादिकी में कर्म के अनुष्ठान की व्यवस्था है, लेकिन पुष्टि-मार्गीय प्रपत्ति में भगवान् में आत्यन्तिक विश्वास तथा गुरुणागति रहती है। इसमें किसी कर्म की अपेक्षा नहीं रहती। यह भक्त की एक मानसिक अवस्था है, जिसमें वह अन्य किसी के आश्रय की बात नहीं सोचता। भगवान् को ही अपना आश्रय समझता है और संपूर्ण भाव से अपने आप को उनके चरणों में समर्पित करता है।

सेवामार्ग—

वल्लभ संप्रदाय में 'सेवा' का बहुत बड़ा महत्व है। सेवा से उनका मतलब भगवान् में चित्त को लगाना है। इस 'सेवा' के संबंध में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने कहा है कि भगवान् में चित्त को लगाना ही सेवा है और यह तन और चित्त से की जा सकती है। इस सेवा से अहन्ता-ममतात्मक संसार से निवृत्ति तथा ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है।^१ सेवा के तीन प्रकार बतलाए गए हैं तनुजा, विन्याज और मानसी। तनुजा सेवा वह है, जिसमें भक्त अपने शरीर तथा उसके व्यापारों को भगवान् को समर्पित कर देता है। शरीर को भगवत्कार्य में लगाना ही तनुजा है। वन-संपत्ति से भगवान् की

^१ चेतस्तत्प्रवण सेवा तत्सिद्धये तनुवित्तजा ।

तत ससारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् ॥

सेवा करना पित्तजा सेवा है और मन से भगवान् की सेवा मानसी सेवा है। मानसी सेवा को सवश्रेष्ठ माना गया है। मानसी सेवा को फलप्रदा कहा गया है और सदा कृष्ण की सेवा करने की बात कही गई है।^१

वल्लभ-सम्प्रदाय की विशेषतायें—

वल्लभ-सम्प्रदाय में भक्ति पर अत्यधिक बल दिया गया है। वल्लभ प्रवर्तित पुष्टि मार्ग में भगवान् के अनुग्रह को ही प्रधानता दी गई है। भगवान् के अनुग्रह में ही भक्त के हृदय में भगवान् के प्रति प्रेम उदय होता है। भक्ति मार्ग में भक्त साधना के द्वारा भगवान् का प्राप्त करने का प्रयास करता है। लेकिन पुष्टि में भगवान् की अनुकम्पा द्वारा ही साध्य की प्राप्ति होती है। वल्लभाचार्य ने समत्वारा को ब्रह्म-अवयव का परिचय दिया है। उनकी दृष्टि में उससे भक्त का दृष्टि दूषित होती है अतएव उसका सबया त्याग करना चाहिए। भक्त का अपनी भक्ति तथा साधना को किसी पर भी प्रकट नहीं करना चाहिए। यहाँ तक कि सम्प्रदाय में दीर्घित जा गए साधक हैं, उनसे भी उस नहीं बनाना चाहिये। नए साधक उस गूढ़ रहस्य को ठीक-ठीक समझ नहीं सकते, अतएव उन्हें नहीं बतलाने का यह निर्देश दिया हुआ है। अपनी धार्मिक मापताओं अथवा धार्मिक जीवन का जीविका उपाजन का साधन बनाना गहिन माना गया है। पुत्रजन्म की बात सम्प्रदाय में बहुत अधिक महत्व नहीं पाए हुए है फिर भी उस अस्वीकार नहीं किया जाता। सम्प्रदाय में अतमुक्त साधक से भाईचारे का सम्बन्ध रक्षण पर बल दिया गया है, भले ही वह किसी भी जाति का क्यों न हो। वर्णाश्रम धर्म को इस सम्प्रदाय में अस्वीकार नहीं किया गया है। जहाँ तक सामाजिक सम्बन्ध का प्रश्न है, इस सम्प्रदाय बात जाति प्रथा को मानकर चलते हैं, लेकिन भक्ति के लिए वे उसे कोई महत्व नहीं देने। वैसे समाज के विधि निषेधा और कृत्या को मानना और उगी के अनुसार कार्य करना व जरूरी नहीं मानते। इस सम्प्रदाय में साधु-सयामिया के लिए स्थान नहीं। वे यह नहीं मानते कि सयामी होकर ही कोई भक्ति मार्ग का अनुसरण कर सकता है। जाति धर्म निर्विशेष सबके लिए इस सम्प्रदाय का दरवाजा खुला हुआ था, वैसे बाद में चलकर यह बात नहीं रही। जस जैसे इस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा बढ़ती गई और यह समृद्ध होता

^१ कृष्ण सेवा सदा कार्य मानसी सा परा मता ।

श्री राधा सब कामनाओं को पूरा करने वाली है। निम्बार्क मत में श्री राधा को भगवान् कृष्ण की माधुर्य तथा प्रेमशक्ति रूपा कहा गया है।

(ग) सखी सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास-सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक—

स्वामी हरिदास जी, मगधी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। यह सम्प्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय के ही अन्तर्गत है। स्वामी हरिदास जी पहले निम्बार्क सम्प्रदाय के थे। स्वामी हरिदास जी के शिष्य उनके मामा विठ्ठल विपुल जी हुए, तभी से 'दृष्टी सस्यान' के वैष्णवों की शिष्य-परम्परा चली। स्वामी हरिदास जी की जन्मतिथि तथा वे सारस्वत ब्राह्मण थे या मनाढ्य, को लेकर बहुत मतभेद है। 'भक्ति सिन्धु' ग्रन्थ के आधार पर इनका जन्म वृत्तान्त कुछ इस प्रकार बतलाया गया है कि ये मनाढ्य ब्राह्मण थे और कोल के निकट हरिदासपुर के निवासी थे। वद्य-वृक्ष का क्रम इस प्रकार बताया गया है—ब्रह्मघोर, ज्ञानघोर, आगघोर, हरिदास। कहते हैं कि आगघोर का विवाह वृन्दावन के निकट राजपुर गाव के निवासी गगाधर की पुत्री से हुआ था^१। इसी प्रकार से कोई इनकी जन्मतिथि भादो सुदी अष्टमी सं० १४४१ मानते हैं तो कोई सं० १४८५^२ लेकिन इतना निश्चित है कि अकबर के बादशाह होने के पहले से ही इनकी स्याति चारों ओर फैल चुकी थी।^३ इसी प्रकार से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि वे मनाढ्य ब्राह्मण थे क्योंकि इनके मामा विठ्ठल विपुल जी मनाढ्य थे जैसा कि सह-चरिशरण जी ने लिखा है :

वोठल विपुल मनाढ्य मनाढ्य धन-धर्म पताका।

श्री गुरु अनुग अनन्य अनूपम जनु ससि राका।^४

सहचरिशरण जी की 'गुरुप्रणालिका' के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि 'आसघोर' इनके गुरु थे। सहचरिशरण जी लिखते हैं—

^१ बलदेव उपाध्याय—भागवत संप्रदाय (प्रथम संस्करण) पृ० ३५१।

^२ वही, पृ० ३५१।

^३ ब्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण) पृ० ९२।

^४ वही, पृ० ९२।

आसधोर गम्भीर विप्र सारस्वत मुति पर ।
जनम अलीगढ मध्य मधुर वानी प्रमोद कर ।
गुरु अनुकूल अतूल बूल धन निधिवन माहा ।
सत्तर लों सनु राखि साखि जा की मित नाहीं ॥

स्वामी हरिदास जी के जीवन के सम्बन्ध में नाभादास जी के 'भक्तमाल' में निम्नलिखित छप्पय मिलता है —

भक्तमाल में वर्णित हरिदास जी का परिचय—

'आसधोर' उद्योत कर 'रसिक' छाप हरिदास की ।
जुगल नाम सा नेम, जपत नित कुज बिहारी ।
अवलोकत रह केलि, सखी सुख के अधिकारी ।
गान कला गधव, स्पाम स्पामा को तोष ।
उत्तम भोग लगाव, मोर मरकट तिमि पोष ।
नृपति द्वार ठाढ़े रह, दरसन आसा आसपी ।
'आसधोर' उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की ॥

आसधोर का वातिव तिलक बार ने इनका पिता बतलाया है।^१ हम ऊपर देख चुके हैं कि सहचरिषरण जी ने उन्हें गुरु कहा है और संभवत यही ठीक भी है। ऊपर के छप्पय से पता चलता है कि ये 'रसिक जी' के नाम से प्रसिद्ध थे। 'वातिव तिलक' के अनुसार यह नाम भगवान् का दिया हुआ था। उसमें कहा गया है कि श्रीजुगल सरकार के निरय बिहार में सदा भावना से प्रस्तुत रहा करते थे। एक समय जुगल मंत्र का जाप कर रहे थे उसी के मध्य श्री भगवत का वचनामत हुआ कि तुमको 'रसिक' कहकर लोग नाम लिया करेंगे।^३

हरिदास जी के चमत्कारों से सम्बन्धित कहानियाँ—

इनके जीवन के सम्बन्ध में नाना प्रकार की चमत्कार की कहानियाँ प्रचलित हैं जिनसे उनका अनन्य भक्ति और निस्पृहता का पता चलता है।

^१ नाभा जी वृत 'भक्तमाल' (लखनऊ, सन् १९२६ ई०) छप्पय मध्या ३८६, पं० ६०७-६०८ ।

^२ नाभा जी वृत भक्ति माल, पृ० ६०८ ।

^३ वही, पृ० ६०८-६०९ ।

कहते हैं कि एक समय उनके किन्नी भगत ने उन्हें इत्र दिया। उम समय वे यमुना जी के किनारे रेत पर बैठ कर ध्यान में भगवान् के साथ हीन्दी गेल रहे थे। इत्र की शोभी को उन्होंने वहीं उठेल दिया, जहा वे बैठे हुए थे। उस भक्त को इससे पेद हुआ। उसके मन की वान को जान कर उन्होंने अपने एक दास को आदेश दिया कि उस व्यक्ति को ले जाकर 'श्री वाके विहारीलाल जी के दर्शन कराओ।' जब पट खोला गया तो उमने देखा कि श्री विहारी जी का वस्त्र इत्र से जराबोर था।^१ इन्नी प्रकार से उनके पाम कोई शरणागत होने आया और उन्हे एक पारस मणि भेंट दी। उमने पत्थर कह उन्होने यमुना जी में फेंक दिया तब उमे शिष्य बनाया।^२ कहते हैं कि वेप बदल कर ब्रादशाह अकबर तानसेन के साथ उनके दर्शन से कृतार्थ हुआ था।^३ तानसेन इन्ही हरिदाम जी का शिष्य था।^४

टट्टी संस्थान के महन्त—

'टट्टी सस्यान' के स्वामी जी सस्थापक थे। उमकी गद्दी आज भी वृन्दावन में वर्तमान है। इम सप्रदाय के महन्तो की सूची एफ० एम० ग्राउस ने दी है, वह इस प्रकार है स्वामी हरिदाम, विट्ठलविपुल, विहारिनि दास, नागरीदास, भरमदाम, नवलदास, नरहरदाम, रमिक दाम, ललित किशोरी। ललितकिशोरी जी को ललित मोहनीदास भी कहते हैं। बलदेव उपाध्याय ने भी एक सूची दी है जो इस सूची से लम्बी भी है तथा इमसे थोड़ी भिन्न भी है। वे ललितकिशोरी तथा ललितमोहिनी को एक नही मानते, जसा कि ग्राउस की सूची में दिया हुआ है। बलदेव उपाध्याय ने गद्दी की परम्परा का जो उल्लेख किया है, वह 'ब्रजमावुरी सार' के आधार पर है। श्री विद्योगी हरि ने निम्नलिखित सूची दी है—

श्री स्वामी हरिदास जी, श्री विट्ठलविपुल जी, श्री विहारनिदेव जी, श्री सरसदेव जी, श्री नरहरिदेव जी, श्री रसिकदेव जी, श्री ललितकिशोरी जी, श्री ललित मोहिनी जी, श्री चतुरदास जी (भगवत रमिक जी इनके गुरुभाई थे)

^१ नाभा जी कृत 'भक्तभाल' (लखनऊ सन् १९२६ के) छप्पय सत्या ३८६ पृ० ६०९।

^२ वही, पृ० ६०९।

^३ वही, पृ० ६०९।

^४ मथुरा एडिस्ट्रिक्स मैम्मोयार (तृतीय संस्करण, सन् १८८३) पृ० २२१।

श्रीठाकुर दास जी, श्री राधिका दास जी, श्री सखी-गण (सहचरिधारण)
श्री राधा प्रसाद जी, श्री भगवानदास जी ।^१

सरसी सम्प्रदाय में गोपी भाव से उपासना—

इस सम्प्रदाय में दशन के गूढ तत्त्वा के विवेचन की ओर ध्यान नहीं दिया गया है जितना कि एकमात्र आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति आत्तरिक प्रेम के निवेदन की ओर। इस सम्प्रदाय के भक्त साधका की एकमात्र साधना सखी भाव से युगल स्वरूप की उपासना और सेवा है। वास्तव में इसे भक्ति-सम्प्रदाय का एक साधन माना जा सकता है। भगवान् को पाने का एकमात्र उत्तम साधन इस सम्प्रदाय वाले गोपी भाव से उनकी उपासना मानते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवक्तव्य स्वामी हरिदास जी की साधना-पद्धति पर प्रकाश डालते हुए नामा जी ने लिखा है—

जुगल नाम सों नेम, जपत नित कुज बिहारो ।

अवलोकन रहे केलि सुखी सुख को अधिकारो ॥^२

इस प्रकार से स्वामी हरिदास जी तथा उनके अनुयायी, राधाकृष्ण के युगलस्वरूप के उपासक थे। उनकी मनोमुग्धकारिणी लीलाओं का सखी भाव से अवलोकन करते हुए आनन्द तथा भक्ति का सागर में डूबे रहते थे। इस सम्प्रदाय के भक्त कविपाने बतलाया है कि भगवान् के प्रति इस प्रेम के मम को वही समझ सकता है, जो भगवत रस का रसिक है। इस सम्प्रदाय के भक्त महात्माओं ने प्रजभाषा-साहित्य का अत्यन्त समृद्ध किया।

(घ) राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय

प्रवर्तक—

राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय का प्रवक्तव्य आदित्य हरिवंश था। इनके आविर्भाव काल के सम्बन्ध में विद्वानों में अभी तक मत भेद ही बना हुआ है। मिथ्य-बुद्धिवादी ने इनका जन्म १५३० सवत् माना है। भगवन् मुदित भक्त द्वारा रचित हित हरिवंश चरित्र ग्रन्थ के अनुसार इनका जन्म समय १५५९ सवत् (१५०३ ई०) है। इन विभिन्न मतों के आधार पर यदि हम इनका आविर्भाव काल १६ वीं शताब्दी का मानें तो अनुचित न होगा। यह सम्प्रदाय ब्रजमठ में उत्पन्न होकर वहाँ फूला-फला।

^१ प्रजभाषागी सार प० २४५ ।

^२ भक्तमाल, छप्पय सख्या ३८६, प० ६०७ ।

राधातत्त्व की प्रधानता—

राधावल्लभीय संप्रदाय में युगल-उपासना होती है। हमने राधा तत्व की प्रधानता है। इस संप्रदाय का मिथ्यान्त किसी गभीर दार्शनिक मतवाद की पृष्ठभूमि पर आधारित नहीं है। नाभाशाम जी ने इस संप्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवंश जी की साधना-प्रणाली की गूढ़ तथा रहस्यमयी कहा है। नाभाशाम जी ने बतलाया है कि उस साधना के अधिकारी सभी नहीं हो सकते।^१ इस साधना-पद्धति में विप्र-निषेध का स्थान नहीं है। विगृह्य हृदय की अनन्य भक्ति ही इस पथ के पथिक के लिये आवश्यक है जिसमें कि वह सही भाव में राधा कृष्ण के केलि-कुज में परिचर्या कर सके। चिन्मय जगत् की माधुर्य-रस-कीटा कोई-कोई ही समझ सकता है। प्रियदास जी ने स्पष्ट ही कहा है—“हित जू की रति काँऊ लखनि में एक जाने।” राधावल्लभीय संप्रदाय में युगल स्वरूप के नित्य-मिलन के अवसर पर भक्त एगुनिष्ठ मेवा में तन्मय रहता है। यही उसका परम कर्तव्य है। इस संप्रदाय में श्री राधा के प्राधान्य और मधुर रस की उपासना के प्रचलन के फलस्वरूप कुछ लोगों ने इसे चैतन्य सम्प्रदाय^२ और कुछ ने निम्बार्क सम्प्रदाय^३ की शान्ता कहा है।

संप्रदाय में श्री राधा का स्थान—

राधावल्लभीय संप्रदाय में राधा, कृष्ण, गोपी, वृन्दावन आदि का विवेचन बड़े विस्तार के साथ हुआ है। राधा, इस संप्रदाय की उपासना के केन्द्र में है। राधा को इस संप्रदाय में सब कुछ माना गया है। श्री राधा, महासुख-रूपा, पराशक्ति, आराध्या, सेव्या और इष्टरूपा है।^४ वह सभी मारों की सार है। हित हरिवंश ने कहा है—

लावण्यसार-रससार-सुखैकसार, करुण्यसार-मधुरच्छवि-रूपसारे ।

वेदरघ्य-सार-रतिकेलि-विलास-सारे, राधानिधे मम मनोजलिलसारसारे ॥

राधानुधानिधि, २५ ।

^१ भक्तमाल, छप्पय स० ९० ।

^२ अक्षयकुमार दत्त—भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय, पृ० २२६ ।

^३ प्रियसैन—इन्सायक्लोपिडिया आफ रेलिजन एन्ड एथिक्स (भक्ति मार्ग), पृ० ५४६ ।

^४ राधामुधानिधि, श्लोक ७८ ।

लेकिन राधा और कृष्ण में अभिन्नत्व है। दोनों एक ही तत्व के प्रतीक हैं। जल और तरंग के बीच जो सम्बन्ध है। इतना ही नहीं, यह सम्बन्ध जगत गोप, गोपी, वृन्दावन, यमुना उस रम-समुद्र के बीच विलास जैसे है। ये नाम के लिये भिन्न ह तत्व रूप में अभिन्न। उनका नानात्व कर्णल प्रतीयमान है और इस नानात्व की प्रतीति का उद्देश्य लाला और रस विलास है। राधा-कृष्ण के पारस्परिक सम्बन्ध पर हितहरिवंश जी ने कहा है

जोई जोई प्यारी कर सोई मोहि भाव
भाव मोहि जोई, सोई सोई कर प्यारे।
मो को तो भावतो ठौर प्यारे के मनन में,
प्यारी भयो चाहे मेरे मनन के तारे।
मेरो तो तन मन प्राण हूँ में प्रीतम प्रिय,
अपने फोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे।
ज श्री हितहरिवंश हस हसिनी साँवर गौर,
कहो कौन करे जलतरंगनि न्यारे।

युगलकिशोर रूप और नित्य विहार लीला—

इस सम्प्रदाय के मतानुसार श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और श्री राधा प्रकृति। श्री राधा भगवान् कृष्ण की निजरूपा प्रेमशक्ति हैं। श्री राधा, उनकी चिद-अचिद विगिष्ट आह्लादिनी शक्ति ह। इस सम्प्रदाय में युगलकिशोर रूप वास्तव में है एक लेकिन दो रूपा में अनन्त सौन्दर्य और माधुर्य को प्रकट कर रहे ह। एक ही प्रेम तत्व एक ही रस, युगल रूप में रूपायित हो रहे हैं। ध्रुवदास जी ने कहा ह

एक प्रेमी एक रस श्री राधावल्लभ आहि।
भूलि कह जो और टा झूठा जानौ ताहि।

यह अद्भुत प्रेम का राज्य है जहाँ विरह-मिलन दोनों मिलकर एक अपूर्व रस की सृष्टि करते हैं। इसमें मिलेहि रहत माना कबहुँ मिल ना" की स्थिति बनी रहती है। इसमें तृप्ति नहीं। यह चिरनतन बना रहता ह। इस प्रेम राज्य में नित्य विहार चलता रहता ह। स्वकीया और परकीया भाव दाना ही मिलकर चरम आनन्द का पूणता का उपलब्धि कराते हैं। स्वकीया और परकीया भाव में एक में केवल मिलन का सुख ह तो दूसरे में विरह ही विरह है। स्वकीया प्रेम में विरह जनित आवुलता का अभाव रहता है और

परकीया प्रेम में मिलन-मुग्ध नहीं रहता । ये दोनों एक दूसरे को परिपुष्टि करने वाले हैं अतएव जहाँ ये दोनों एकाकार हो जाते हैं वहाँ प्रेम की चरम स्थिति आ जाती है । यही राधावल्लभ साधना की "प्रेमविरहावस्था" है । यह स्थिति निराली है । प्रेम विरह की यह नित्य-लीला दिव्य धाम श्री वृन्दावन में चलती है । यह लीला अनादि, अनन्त है । यह नित्य नूतन है, यह नित्य अभिनव है । ध्रुवदान ने इस नित्य-लीला का सुन्दर वर्णन किया है .

न आदि न अंत विहार करे दोऊ,
लाल प्रिया में भई न चिन्हारी ।
नई नई भानि नई नई फाति,
नई नवला नव नेह विहारी ॥

× × × ×

वृन्दावन रस सबको सारा ।
नित सर्वोपरिजुगल विहारा ॥
नित्य किसोर रूप की रामी ।
नित्य विनोद भंद मृदु हामी ॥

× × × ×

नित्य किसोर रूप निधि सीर्वा ।
विलसत सहज मेलि भुज श्रीर्वा ॥
तिन विच अंतर पलको नाहीं ।
तऊ तृपित प्रीतम मन माहीं ॥

× × × ×

या सुख पर नाहिन सुख औरे ।
जेहि उर रचे रसिक सिर मोरे ॥
श्री हरिवंश-चरन उर धारे ।
सो या रस में मन अनुसारे ॥

जीव वास्तव में प्रेम रूपा गोपी है :—

इस संप्रदाय के मतानुसार जीव, प्रेम रूपा गोपी है । उसका स्वरूप नित्यसहचारियों का है । रस-श्रेष्ठ में वह भगवान् की लीला में सहचरी रूप से योग देता है । भक्त की सबसे बड़ी साधना अपने इसी नित्य-सहचरी रूप को जानना है । अपने इस स्वरूप को भूल जाने के कारण जीव जन्म-जन्मान्तर

के चक्कर में पड़ा हुआ दुःख भोगता रहता है। इस संप्रदाय के विश्वाम क अनुसार भक्त की सबसे बड़ा साधना यह है कि वह अपने को भगवान् की नित्य लीला का अंग ममयता रहे अर्थात् अपने का वह उस नित्य लीला में नित्य-सहचरी रूप में देखें। ऐसा करने पर वह आनन्द रूप को पा सकता है। नित्य-सहचरी रूप में देखने की साधना कुछ इस प्रकार से बतलाइ जाती है। साधक अपने को रूप-बोधन सम्पन्न, उपादकारिणी आकृतिमयी किशारी समझता है। इसी रूप में समझता हुआ भवन अपने का नित्य-वदावन में सखिया के बीच नित्य-लीला में योग देने रहने का ध्यान करता रहता है। इस प्रकार से ध्यान करते-करते जब उसकी साधना सफल होती है तब उसे युगलविशोर की रस भावना की अनुभूति होती है। इस साधना में सबसे पहले भक्त को अपने स्वरूप का पहचानना होता है। इसे पहचानने के फल स्वरूप उसके हृदय में युगल स्वरूप की रस-स्फुरण समभव हो पाती है। जब उसके चित्त की यह स्थिति होती है तब वह रस-साधना में दत्तचित्त हो जाता है और उसे सबत्र अपनी आराध्या के दगन हाने लगते हैं^१। सबत्र एक ही प्रेम-तत्व दृष्टिगोचर होने लगता है और फिर तो—

जिन आखिन में वह रूप यस्यो,
उन आखिन सों अब देखिये का ?

इम प्रेमरस से आप्लावित होकर साधक की समस्त द्वैत बुद्धि विनष्ट हो जाती है और इस प्रेमाविष्ट अवस्था में जीव और विभु का तादात्म्य उनकी एकरूपता अपने आप स्थापित हो जाती है। इस प्रेम का ही श्री हित हरिवंश जी ने 'हित' कहा है। उनका कहना है जो कुछ सृष्टि में दीव पड़ता है उसे 'हित' समया।^२

“हित” प्रेम ही परमात्मा—

हितहरिवंश के अनुसार 'हित' अर्थात् प्रेम ही परमात्मा है। यह प्रेम व्यापक है। इस प्रेम की नित्य विहार-केलि सब कुछ को परिध्याप्त किये हुये हैं। इसके चार रूप—प्रिया, प्रियतम मखी, श्रीवन—सभी कहने भर को चार है क्योंकि वही प्रिया है वही प्रियतम है वही सखी है और वही श्रीवन।

^१ सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्य बुद्धिमम ।

—श्री राधा सुधानिधि ।

^२ यत्किञ्चिद्दृश्यते सृष्टौ सब हितमय विदु ।

लाडली दास जी ने कहा है, "जहाँ तक वाम और उनके वामी धामी हैं, सब उसी एक 'हित-मित्र' (प्रेम-देवता) के चित्र हैं"

सब चित्र हित मित्र के जहाँ ली धामी धाम

इसका मतलब यह हुआ कि नवंत्र एक वही प्रेम-रम प्रवाहिन हो रहा है। चराचर व्यापी रस-विलास का पर्यवगान उसी एक प्रेम रम में होता है। श्री वृन्दावन के ऐकान्तिक रस-विलास में नवका उत्स और नवकी गति है। वह प्रेय एक होकर भी अनेक है और अनेक होकर भी एक। वह अनिर्वचनीय है। इसी प्रेम की पाना भक्त का चरम लक्ष्य है और उसकी एक मात्र साधना युगल स्वरूप के तेलि-कुज में नित्य मिलन के अवसर पर एकान्त भाव से उनकी सेवा में लीन रहना है।

ब्रजभाषा और संप्रदाय के भक्त-कवि—

इस सम्प्रदाय के अन्य महात्माओं द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थ जैसे 'सेवक वानी', 'वल्लभरमिक की वानी' आदि भी उपलब्ध हैं। इन भक्त कवियों की प्रतिभा वृन्दावन की अपूर्व माधुरी छटा वर्णन और राधा-कृष्ण की दिव्य लीलाओं के चार चित्रण में खूब निगरी। ब्रजभाषा साहित्य को पुष्ट और समृद्ध करने में इस संप्रदाय के प्रमुख आचार्यगण हैं—हितहरिवंश, हरिराम शुक्ल 'व्यास', और ध्रुवदाम जी, इन लोगों ने अपने सरन पदों और कमनीय कृति द्वारा ब्रजभाषा साहित्य को पूर्ण और सम्पन्न किया। इस रस संप्रदाय का प्रचार केवल वृन्दावन तक ही सीमित रहा।

पाचवा अध्याय

ब्रजभाषा-साहित्य

ब्रजभाषा साहित्य और विभिन्न सम्प्रदाय—

पिछले अध्याय में ब्रजभाषा साहित्य के मेरुदण्ड रूप विभिन्न सम्प्रदायों के दान, सिद्धान्त तथा साधना पद्धति पर विचार किया जा चुका है। बल्लभ सम्प्रदायी अष्टछाप^१ कवि ही ब्रजभाषा साहित्य के सच्च स्रष्टा और साधक हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि इन तमय भवता के लीला गान के अभाव में ब्रजभाषा न तो इतनी गविनशालिनी हो सकती थी और न ही ब्रज साहित्य इतना सम्पन्न और समृद्ध हो सकता था। अतएव ब्रजभाषा साहित्य में बल्लभ सम्प्रदायी कवियों का स्थान निस्सन्देह सर्वोपरि है। निम्बाक सम्प्रदायी, सखी सम्प्रदायी और राधावल्लभी सम्प्रदायी विभिन्न वर्णव कवियों ने भी प्रचुर मात्रा में ब्रजभाषा में ललित पदा की रचना की। ब्रजभाषा साहित्य के लिए इन भक्त कवियों की देन भा कम महत्व की नहीं है। प्रस्तुत अध्याय में ब्रजभाषा के प्रमुख कवियों तथा उनके कवियों का विभिन्न सम्प्रदायों के अन्तर्गत विषय परिचय प्राप्त किया जाएगा।

(क) बल्लभ-सम्प्रदाय के कवि

सूरदास—

ब्रजभाषा के भक्त कवियों में सूरदास के सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं अर्थात् ऐसा कहें तो कोई अल्पयुक्ति नहीं होगी। सूरदास की तमयता उनका बाल मुलम सरल हृदय, भगवान् की माधुरी में सहज ही रम जाने वाला उनका चित्त उनके पदों में इस प्रकार से प्रकाश पाए हुए है कि पाठकों को पद-पद उनका परिचय मिलता है और वह आत्मविभार हो

^१ बल्लभाचार्य के पुत्र विठ्ठलनाथ जी ने अपने पिता के चार प्रमुख भक्त कवि गिण्पा सूरदास, कृष्णनाथ परमानन्ददास, और कुमादास तथा अपने चार भक्त-कवि शिष्या-नन्ददास चतुर्भुजनाथ छोटस्वामी और गोविन्द स्वामी को चुनकर अष्टछाप की स्थापना की थी।

उठता है। अपने सर्वस्व-भगवान्-कृष्ण की विविध लीलाओं का गान जो उन्होंने किया है वह भक्ति-काव्य की एक श्रेष्ठ निधि है। अपने भगवान् के प्रति समग्र रूप से आत्म-समर्पण कर सूरदास ने मानो सब कुछ पा लिया है। लेकिन इस आत्म-समर्पण ने उनकी प्यास और बढ़ा दी है। भगवान् की मूर्ति को सब समय अपने सामने रखने पर भी वह प्यास नहीं मिटती। सूर का भक्त हृदय गा उठता है—

नाहिन रह्यो मन में ठीर ।

नंद नंदन बिना कैसे आनिए उर और ॥

चलत, चितवत, द्यौस जागत, स्वप्न सोवत रात ।

हृदय तें वह मदन मूरति, छिनु न इत-उत जात ॥

कहत कया कनेक ऊधौ, लास लोभ दिताप ।

कहा करौ 'चित प्रेम पूरन', घट न सिधु समाप ॥

स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति, मृदु हास ।

'सूर ऐसे दरश को, ये मरत लोचन प्यास ॥'^१

एक दूसरे पद में सूरदास ने बतलाया है वह नंद का लाल ही उनके लिये सब कुछ है। वे वेद, पुराण, भागवत, गीता आदि के गूढ़ ज्ञान को प्राप्त कर अपना भार नहीं बढ़ाना चाहते।

मिलिबौ नैनन ही कौ नीकी ।

नंद कौ लाल हमारौ जीवन, और जगत सब फीकी ।

वेद, पुरान, भागवत अरु गीता, गूढ़ ज्ञान पोथी कौ ।

खाटी छाछ कहा रचि उपजै, 'सूर' सबैया घी कौ ॥^२

समस्त जीवन अपने आराध्य देव की रूप-माधुरी का वह छककर पान करते रहे और अन्त समय तक अतृप्त ही रहे। उनके अन्त समय का वर्णन 'चौरासी वैष्णव की वार्ता'^३ में दिया हुआ है। उसमें आया है कि 'गुसाई जी ने पूछी जो सूरदास जी नेत्र की वृत्ति कहा है तब सूरदासजी ने एक पद और कही। सो पद—

खंजन नैन सुरंग रस माते ।

अतिसय चारु विमल, चपल ये परांपिजरा न समाते । . . .

^१ भ्रमरगीत सार, पद स० ६५ ।

^२ सूर-निर्णय, स्वरूपासक्ति (२) पृ० २७२ ।

^३ चौरासी वैष्णव की वार्ता (सवत् १९८५) पृ० २८९-२९० ।

चलि चलि जात निक्कट छवननि के, सकि ताटव फँदाते ।
सुरदास अजन गुन अटके, नतद कव उडि जाते ^१ ।

सूरदास पर बल्लभाचार्य का प्रभाव—

सूरदास के जीवन में महाप्रभु बल्लभाचार्य का गऊ घाट' पर आगमन एक युगान्तर उपस्थित कर देने वाली घटना थी। सूरदास ने अपने प्रथम जीवन में दास्य भाव से ही भगवान को स्मरण किया है। भगवान् का 'पतित उधारन रूप ही उनका सामने आता है। उस समय के उनके भजनो में दैत्य भाव की ही प्रधानता है। उनके विनय के पदा से लगता है जैसे सूरदास ने जिस समाज का देखा था वह नाना प्रकार का छलनाओ और बुरा-इया का शिकार था। लोग अत्यन्त ही नीच कम में प्रवृत्त थे। समाज 'यौवनमद, जनमद धनमद और मादकमद से आन्त था। सूरदास के तत्कालीन पदों में वराग्य का सुर प्रधान है। महाप्रभु बल्लभाचार्य के सस्पर्श से सूर ने भगवान् के मधुर रूप का परिचय पाया और उस रूप-रस-माधुरी से मत्त होकर उन्होंने जा गान किए ह वे अनुलनीय ह। भगवान् का वह रूप छिन छिन' में नवीन हाकर भक्त कवि को विभोर करता रहता ह और उसका वणन उसके वग के बाहर की बात हो जाती ह

सखी री सुन्दरता की रग ।

छिन छिन माहि पगत छवि औरे, कमल नयन क अग ।

स्याम सुभग के ऊपर धारो, आली काटि अनग ।

'सूरदास' कुछ कहत न छाव, भई गिरा गति पग ।^२

संभवत इसी रूप को देखकर विद्यापति ने कहा है—

जनम अवधि हम रूप नेहारलू

नयन ना तिरपित भेल ॥

बल्लभाचार्य का प्रथम दर्शन—

'चौरासी वणव की वार्ता^३ से पता चलता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य से मिलने के पहले सूरदास को भगवल्लीला का पता नहीं था। इसका

^१ सूरसागर, पन्सफ्या, पदसख्या ३२८५ ।

^२ वही पद सख्या १२५८ ।

^३ चौरासी वणवन की वार्ता पृ० २७४ ।

रोचक वर्णन^१ वार्ता में मिलता है। जब सूरदास, महाप्रभु बल्कभाचार्य से मिलने गऊघाट गए तब महाप्रभु ने 'भगवद्दयश वर्णन' करने के लिये कहा। 'हो हरि सब पतिन के नायक' तथा प्रभु में मव पतितन को टीकी' "ऐमी पद श्री आचार्य जी महाप्रभुन के आगे सूरदास जी ने गायो सो मुनिके श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कही जो सूर है कें ऐसो विद्ययात काहे को है कछू भगवल्लीला वर्णन करि तब सूरदाम ने कही जो महाराज हों तो समझत नाही तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कही जो जा स्नान करि आउ हम तोको समझावेंगे तब सूरदास जी स्नान करि आये तब श्रीमहाप्रभु जी ने प्रथम सूरदाम जी को नाम सुनायो पाछें समर्पण करवायो और फिर दशम स्कंध की अनुक्रमणिका कही सो ताते सब दोष दूर भये ताते सूरदास जी को नवधा भक्ति सिद्ध भयी तब सूरदास जी ने भगवल्लीला वर्णन करी।" इसके बाद से ही सूरदास के लीला-गान का प्रारम्भ होता है।

सूरदास की जन्मभूमि—

सूरदास के जन्म स्थान तथा उनकी जन्मतिथि को लेकर नाना प्रकार के मत उपस्थित किए गये हैं। 'चौरासी वैष्णव की वार्ता'^२ में सूरदास के जन्म स्थान अथवा जन्म तिथि के सम्बन्ध में कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार से नामादास के 'भक्तमाल' में भी सूरदास के जीवन वृत्तान्त पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। सूरदास के जन्मस्थान के सम्बन्ध में हरिराय जी ने भावप्रकाश वाली '८४ वैष्णवन की वार्ता' में बतलाया है^३ कि उनका जन्म सीही ग्राम में हुआ था। सीही दिल्ली से चार कोस की दूरी पर ब्रज की दिशा में स्थित है। 'साहित्य लहरी' में सूरदास के पिता का स्थान 'गोपाचल' बताया गया है। कुछ विद्वान^४ 'गोपाचल' को 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में उल्लिखित 'गऊघाट' मानते हैं। लेकिन इसे स्वीकार करने में अविकाश लोगो को सकोच है।^५ इसी प्रकार से कुछ विद्वानों ने सूरदास

^१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृ० २७४-७५।

^२ 'लक्ष्मीवैकटेश्वर' छापेखाने की सवत् १९८५ शके १८५० की छपी प्रति।

^३ अग्रवाल प्रेस मथुरा से प्रकाशित।

^४ सूर सौरभ प्रथम भाग, पृ० १८, १९।

^५ सूर-निर्णय, पृ० ५०।

वे जम-स्थान की चर्चा करते हुए कहा है कि उनकी जमभूमि रनवता या रेणुका-क्षेत्र थी।^१ डा० दीनदयाल गुप्त सूर की जीवन-सामग्री के लिये साहित्य-लहरी, आइने-अकबरी मुन्निबिबउत्तवारीख और मुगियात अब्बुल फजल की प्रामाणिक मानने के पक्ष में नहीं हैं।^२ अधिकार विद्वान हरिराय जी द्वारा उल्लिखित सीही' गाव की ही सूरदास की जमभूमि मानने के पक्ष में है।

सूरदास की जन्मतिथि—

सूरदास की जन्मतिथि का उल्लेख हिन्दी साहित्य के कई इतिहासकारा ने किया है। उनके अनुसार सूरदास का जन्म सवत् १५४० में हुआ था। बाद की शोधा से यह तिथि गलत प्रतीत हानी है। बाद के साधकर्ताओं ने वल्लभ सम्प्रदाय की परम्परा का ध्यान में रखने हुए सूरदास की जन्मतिथि निश्चित करने की चेष्टा की है। पुष्टि-संप्रदाय का परम्परा के अनुसार सूरदास, महाप्रभु वल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे। मा सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते^३। इस बात की पुष्टि श्रीगोकुलनाथ जी के कथन से हो जाती है। सो सूरदास जी जब श्रीआचार्य जी महाप्रभु को प्रागट्य भयो है, तब इनका जन्म भयो है। सो श्रीआचार्य जी सो ये दस दिन छोटे हते^४। चाहे जो हो बहुत दिना स चली आने वाली परम्परा को बसे उढाया नहीं जा सकता भले हा उसे एकमात्र प्रमाण न माना जाय। आज अधिकांश विद्वान इस परम्परा का प्रामाणिक ठहराते हुए सूरदास की जन्मतिथि स० १५३५ की वैशाख सुनी पचमी मंगलवार मानने के पक्ष में हैं।^५ सूरदास के

^१ हिन्दी साहित्य का इतिहास (स० १९९०), रामचन्द्र गुवल, उकिन स० १९९७ वाले स० में सूरदास के जन्म-स्थान का जिक्र नहीं है। हिन्दी भाषा और साहित्य में (स० १९९४) डा० श्यामसुन्दर दास ने रनवता गाव का ही उल्लेख किया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने धपन हिन्दी साहित्य (१९५२) में इन दोनों का उल्लेख किया है।

^२ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय (स० २००४), प० १९९।

^३ भाव-संग्रह।

^४ निज वार्ता' सूर निणय प० २२ पर उद्धृत।

^५ सूर निणय (स० २००८) पृ० ५३। अष्टछाप-परिचय (स० २००६) पृ० १२७ तथा अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (स० २००४), पृष्ठ २१२।

देहावसान का समय आज के शोधकर्ता सवत् १६४० मानते हैं यद्यपि अधिकांश हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने संवत् १६२० माना है ।

जीवन वृत्त—

सूरदास का जीवन-वृत्तान्त भी यत्र-तत्र विखरा हुआ मिलता है । - उन सामग्रियों के आधार पर उनके जीवन की कहानी को एकरूप देने की चेष्टा की गई है । कहा जाता है कि सूरदास एक निर्धन पिता के पुत्र थे और जाति के ब्राह्मण थे । छ. वर्ष की आयु में ही वे 'सीही' छोड़कर बाहर चले गए और अट्ठारह वर्ष की उम्र तक सीही के निकटवर्ती एक ग्राम में वास करते रहे । उस ग्राम के तालाब के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे उन्होंने डेरा डाला । उस गाव के जमींदार की उन पर विशेष कृपा थी और उसने उसी पीपल के नीचे उनके लिये एक झोपड़ी बनवा दी । कहते हैं कि सूरदास शकुन विद्या के बड़े अच्छे जानकार थे और उनके बतलाने से ही उस जमींदार की कुछ खोई हुई गायें मिल गई थी । इस कारण से बहुत लोग उनके पास आते और अन्न, वस्त्र आदि उन्हें भेंट करते । वे गायन कला में प्रवीण हो चुके थे और भक्त-मंडली में भजन गाया करते थे । उनके बहुत से सेवक हो गए । उसी काल में (अट्ठारह वर्ष की अवस्था में) उन्हें वैराग्य हुआ और उन्हें लगा कि घर छोड़कर तो वे बाहर आए और फिर उसी माया-जाल में फँस गए ।^१ अतएव सब कुछ छोड़ कर मथुरा होते हुए गऊघाट आए और वही कुछ सेवकों के साथ रहने लगे । वहाँ पर भजन आदि में सूरदास का समय वीतता और सगुण बताने की विद्या तो उनके पास थी ही । फलस्वरूप उनकी ख्याति चारों ओर फैली और वहाँ भी उनके बहुत से सेवक हो गए ।^२

दीक्षा—

इसके बाद ही सूरदास ने वल्लभाचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी । उनके अन्य सेवक भी वल्लभ-संप्रदाय में अन्तर्भुक्त हो गए । गऊघाट पर दो तीन दिन^३ तक विश्राम करने के बाद वल्लभाचार्य ने गोकुल के लिये प्रस्थान किया

^१ अष्टछाप, काँकरीली, पृ० १० ।

^२ वही, पृ० १० ।

^३ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेकटेश्वर छापाखाना स० १९८५) पृ० २७६ ।

और अपने साथ सूरदास को लत गए। वहाँ से फिर वे वल्लभाचार्य के साथ गोवधन गए। और आचार्य जी ने उन्हें श्रानायजी के मंदिर में कीर्तन करने का भार सौंपा।^१ पाछे आचार्य जी आपु कहें, जो सूर! तुमको पुष्टि मारग को मिद्वान्त फलित भयो है। तासा अब तुम श्रीगोवधन के यहाँ समय-समय के कीर्तन करो।” सूरदास ने गोवधन के निकट पारसौली को अपना स्थायी निवास बनाया और वही पर उनका गैप जीवन बीता। ‘चौरासी बष्णव की वार्ता’^२ में आया है कि सूरदास जी स्वार्ति सुनकर ‘देगाधिपति’ (अकबर) उनसे मिला। सूरदास जी ने मनारे तू बरि माघी सा प्रीति’ नाहिन रहौ मन में ठौर’ तत्रा हा जा सूर ऐसे दशका इ मरत लोचन प्यास पद गाए। अकबर उनमे बहुत प्रसन्न हुआ। मथुरा में सवत् १६२३ में अकबर से मिलने की बात कही जाती है।^३

सूरदास के विभिन्न नाम—

सूरदास के कई नामा का उल्लेख मिलता है जैसे सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास, सूर श्याम, सूरसुजान, सूरसरन, सूरजश्याम तथा सूरजश्याम सुजान। इन नामा में प्रथम पांच सूरदास के नाम से प्रसिद्ध जा रचनाएँ हैं उनमें मिलत है। कुछ नामा व सम्बन्ध में विद्वाना में मतभेद है कि उन नामा से पाए जाने वाले पद सूरदास के हैं या अथ किसी व्यक्ति के। डा० जनादन मिश्र सूरमागर में आण हुए सूरज’, ‘सूरजदास तथा सूरश्याम’ नाम से जुड़े हुए पदा को प्रशिष्य मानते हैं^४ लेकिन ऐसा मानने का उन्हाने कोई सतोपजनक कारण नहीं बतलाया है। डा० दीनदयालगुप्त^५ तथा श्री मुगीराम गर्मा इस मत से सहमत नहीं। व विचार, शली आदि को दृष्टि में रखकर उन पदा का भी सूरदास का ही मानते ह।

क्या सूरदास अन्धे थे ?—

सूरदास के अघत्व को लेकर भी कम मतभेद नहीं है। यह मतभेद दो प्रकार का है। प्रथम तो यह कि सूरदास सचमुच में अन्धे थे या नहीं।

^१ अष्टछाप काकरोला पृ० १९।

^२ लक्ष्मी वैकुण्ठेश्वर छापाखाना स० १९८५ पृ० २७९ २८१।

^३ अष्टछाप-परिचय (स० २००६), पृ० १३९।

^४ सूरदास’, डा० जनादन मिश्र पृ० ७।

^५ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, प० १९६ तथा २०५।

^६ सूर सौरभ, द्वितीय भाग, पृ० ५०-५२।

दूसरे अगर वे अन्वे थे तो बाल्यकाल से ही अथवा बाद में हुए। आधुनिक विद्वान प्राय एकमत है कि वे जन्मान्व नहीं थे। “मूरदास का साहित्य कभी जन्मान्व व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता।”^१ मूरदास की रचनाओं में प्रकृति का और मनुष्य के भावों का उतार-चढाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देखकर यह कहने का साहस नहीं होता कि मूरदास ने बिना अपनी आँखों के देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है।^२ डा० दीनदयाल गुप्त उन्हें जन्मान्व तो नहीं मानते लेकिन अधिकांश लोगों की नाई वे स्वीकार करने को तैयार नहीं कि मूरदास वृद्धावस्था में अन्वे हुए। उनका अनमान है कि मूरदास बाल्यावस्था में अन्वे हो गए थे^३। वैसे ‘चौरासी वैष्णवन की वार्ता’ में उनके अन्वे होने का स्पष्ट उल्लेख है लेकिन न जन्मान्व होने का और बाल्यावस्था से ही अन्वे होने का। “देगाधिपति ने पूछी जो मूरदास जी तुम्हारे लोचन तो देखियत नाही सो प्यासे कैसे मरन है और बिन देखै तुम उपमा कों देत ही सो नुम कैसे देत है”^४। लेकिन श्री हरिराय जी वाली भावप्रकाश वाली वार्ता में लिखा है “सो मूरदास जी के जन्मत ही सो नेत्र नाही है।” आधुनिक विद्वानों में प्रभुदयाल मित्तल उन्हें जन्मान्व मानते हैं^५।

चाहे जो हो, अधिकांश विद्वान उन्हें जन्मान्व न मानकर वृद्धावस्था में उनके नेत्रविहीन होने की बात स्वीकार करते हैं। यह मत ही अधिक तर्कपूर्ण और युक्ति-संगत मालूम होता है।

प्रेम का स्वरूप—

मूरदास ने जिस अपूर्व साहित्य की सृष्टि की है वह अद्वितीय है। उनके मधुर, सरस साहित्य को समझने के लिये यह आवश्यक है कि जिस प्रेम की नाना दशाओं का वर्णन उन्होंने किया है उनके स्वरूप को ठीक-ठीक समझे। वह प्रेम चिन्मुख प्रेम है और वह निखिलानन्द संदोह भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति निवेदित है। मधुर रस की भक्ति का रसाम्वादन वही

^१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० १७५।

^२ नददुलारे वाजपेयी, सूर सदर्म, पृ० ३४।

^३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २०२।

^४ ‘चौरासी वैष्णवन की वार्ता’ (लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना) सवत् १९८५, पृ० २८०-२८१।

^५ सूर-निर्णय (म० २००८), पृ० ७६।

कर सकता है जो इस बात को सबदा ध्यान में रखे। भगवद्विषयक इस प्रेम का वणन भी उसी भाषा में किया गया है जिसमें सासारिक प्रेम का वणन करते हैं, क्योंकि भगवान् के प्रति उस प्रेम का वणन करने के लिये दूसरी भाषा मनुष्य के पास नहीं। भगवान् को प्रसन्न करने के लिये भक्त नाना रूप धारण करना है। भक्त सभी प्रकार के स्वागत करने को तैयार रहता है अगर उसे वह पसन्द आवे। भक्त की अपनी कोई पसन्द नहीं भगवान् की पसन्द में ही उसकी पसन्द है।

‘भाव तो चाहि मेरो रसखानि, सो तेरे कहे सब स्वागत भरींगी।’

भक्तमाल में सूरदास का परिचय—

इस प्रेम की एक बार मन में बसा लेने पर भक्त-हृदय मधुर सगीत से गुंजित हो उठता है। उसका आत्म निवदन काव्य के रूप में प्रकट होता है और उस समय उपमाया, उत्प्रेक्षाया की भरमार लग जाता है। भक्त कवि नाना भाव से एक ही वस्तु को बार-बार दुहराता है फिर भी लगता है जैसे उसे तृप्ति नहीं हो रही है। सूरदास के काव्य की विशेषताया का ध्यान में रखते हुए कहा गया है ¹

उक्ति, धोज, अनुप्रास, बरन अस्थिति, अति भारी ।
 बचन प्रीति निर्याह, अथ अदभुत तुक धारो ॥
 प्रतिबिम्बित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी ।
 जनम करम गुन रूप सब रसना परकासी ॥
 विमल वृद्धि गुन और की, जो यह गुन स्रवननि धर ।
 ‘सूर कवित सुनि कौन कवि, जो नहि सिर चालन कर ॥

लीला का स्वरूप—

सूरदास जी के लीलागान में मधुर रस और वात्सल्य रस की प्रधानता है। इसके पहले कि हम उनके काव्य-सौष्टव की चर्चा करें यह समझ लेना आवश्यक है कि सूरदास ने जिस लीला का वणन किया है उसका स्वरूप क्या है। वास्तव में वह नित्य लीला है। उसमें वृन्दावन गाप गापिकाए, कालिंदी सग, मृग पवत आदि सभा उस नित्य-लीला के अंग हैं।

¹ नाभा जी द्वारा ‘भक्तमाल’ नवलविन्डोर प्रेम (सन् १९२६ ई०) छाप्य स० ४३८, पृ० ५६३।

जहाँ वृन्दावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार ।
 तहँ बिहरत प्रिय प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुजार ॥
 रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहाँ नीर ।
 सारस, हंस-चकोर-मोर - खग कूजत कोकिल-कीर ॥
 जहाँ गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरासार ।
 गोपिन मंडल मध्य विराजत निसदिन करत विहार ॥^१
 अमित एक उपमा अवलोकत जिय में परत विचार ।
 नहि प्रवेश अज-सिव गनेस पुनि कितक वात ससार ॥
 सहम रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोष ।
 कुमुद कली विगसित अंबुज मिलि मधुकर भागी सोय ॥
 नलिन पराग मेघ माधुरी, सो मुकुलित अंब-कदव ।
 मुनिमन मधुप सदारस लोभित सेवत अज-सिव-अंब ॥^२
 गोवर्धन गिरि रतन सिंहासन दंपति रस सुख मान ।
 निविड कुज जहाँ कोउ न आवत रस बिलसत सुख मान ॥
 निशा भोर कवहुँ नहि जानत प्रेम मत्त अनुराग ।
 ललितादिक सींचत सुख नैनन दुरि सहचरि वड भाग ॥
 यह निकुंज कौ बरनन करिके वेद रहे पचिहार ।
 नेति नेति कर कहऊ सहस विधि तऊ न पायौ पार ॥^३

ऐसी है वह नित्य-लीला जिमका वर्णन वेद भी नहीं कर पाते और उस लीलास्थली में ससारी जीवों के प्रवेश की बात कौन चलावे ब्रह्मा, शिव और गणेश भी उसमें प्रवेश नहीं पाते । वह लीला एक रम है और नित्य चलती रहती है । अतएव सूरदास अथवा अन्य भक्त-कवियों के लीला-वर्णन का आस्वादन करते समय नित्य लीला के इस स्वरूप को आँखों से ओझल होने देने में पद-पद पर बाधा आ उपस्थित होती है ।

वात्सल्य का चित्रण—

वात्सल्य का चित्रण करने में सभवतः मूर की बराबरी करने वाला ससार में कोई कवि नहीं हुआ । बालकों की विभिन्न चेष्टाओं का मानों सूक्ष्म निरी-

^१ सूर-निर्णय, नित्य लीला वर्णन, पृ० १९१ ।

^२ सूर-निर्णय नित्य लीला का वर्णन, पृ० १९१ ।

^३ वही, पृ० १९२ ।

क्षण कर मूरदास ने अपने वाक्य में रूप देने का प्रयत्न किया है। बाल लीला का अत्यन्त ही स्वाभाविक वर्णन मूरदास ने किया है। एक के बाद एक पद आन जाते हैं और बालकृष्ण की रूप माधुरी, उनकी मनोदगाया उनके खेल-कूद उनके नटसटपन का परिचय दैते जाते हैं। लगता है जैसे मूरदास का एक का वर्णन कर दूसरे का वर्णन किए बिना तृप्ति नही होती। कोई बात इस सवच की उनसे छूटने नही पाइ है। इस वर्णन में बलात्मकता जैसे उनका मुह जोहती रहती है। उपमाएँ उत्प्रेक्षाएँ, रूपक इतने महज भाव से आए हैं कि पाठक उनमें रमता रहता है। लगता ही नही जस सजाने सँवारने के लिए प्रयुक्त हुए हैं सपूण रूप से तमय हाकर अपने आपको मिटाकर मूर ने कृष्ण का लीला माधुरी का साक्षात्कार किया है। मूर का भक्त हृदय कभी ब्रज की स्त्रिया के रूप में कृष्ण के जन्म पर नन्द के द्वार पर भीड़ लगाता है तो कभी ढाढी बनकर अपने को धन्य मानता है।

आजु नद के द्वार भीर ।

इक आवत, इक जात विदा हूँ, इक ठाड़ मंदिर क तीर ॥^१

अथवा

म तेरे घर कौ हौं ढाढी, मो सरि कोउ न आन ।

सोइ लहौं जो मो मन भाव, नद महर की आन ॥^२

सपति देहूँ लेहूँ नहिँ एकाँ, अन्न-वस्त्र किहिँ काज ?

जो मैं तुमसौं माँगन आयी सो लहो नदराज ।

अपने सुत कौ बदन दिखावहु, बडे महर सिरताज ।

तुम साहब, म ढाढी तुम्हरी, प्रभु मेरे बजराज ॥^३

नद और यज्ञाग क रूप में मूरदास का भक्त हृदय बाल्मन्य से परिपूरित है। यज्ञाग पालना गुला कर लोरी गाकर बाल-कृष्ण को मुक्ताने की चेष्टा करती है कभी भगवान् से उनकी मंगल-कामना करती है, नद हाथ पकड कर उन्हें चरना सिखाते हैं कभी उनकी दँतुलियाँ को दाव कर आनदित होत है।

^१ मूरसागर पृ सख्या ६४३ ।

^२ वही पद सख्या ६५४ ।

^३ वही, पदसख्या ६५४ ।

यशोदा हरि पालन झुलावै ।

हलरावै, दुलराइ मलहावे, जोइ-मोइ कछु गावै ।

मेरे लाल काँ आज निदरिया, काहँ न आनि सुवावै ॥

तू काहँ नाहँ वेर्गाहँ आवै, तोकोँ कान्ह बुलावै ।

कवहुँ पलक हरि मूँदि लेते हँ, कवहुँ अधर फरकावै ।

सोवत जानित मौन हूँ कै रहि, करि-करि सैन बतावै ।

इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै ।

जो सुख 'सूर' अमर-मूनि दुरलभ, सो नंद-भामिनि पावै ॥^१

यशोदा की सबसे बड़ी अभिलाषा यह है कि कव कृष्ण घुटनों के बल चलेंगे, कव वे बोलना सीख लेंगे ।

नंद-घरनि आनद भरि, सुत स्याम खिलावै ।

कवाहँ घुटुखनि चलहिंगे, कहिविधिहँ मनावै ।

कवाहँ दँतुलि द्वँ दूच की, देखौँ इन नैननि ।

—कवाहँ कमल-मुख बोलिहँ, सुनिहौँ उन बैननि ।^२.....

'रेनु-तन-मडित' और मुह में दधि लपटाए हुए बालकृष्ण को एक पल देखने में सूर को जो सुख मिलता है वह शत कल्प जीने में नहीं ।

सोभित कर नवनीत लिए ।

घुटुखनि चलत रेनु-तन-मडित, मुख दधि लेप किए ।

चार कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए ।

लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहि पिए ।

कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।

धन्य सूर एको पल इहि सुख, का सत कल्प जिए ॥^३

कृष्ण कभी 'दधि मथन' करती हुई यशोदा की मथानी पकड़ लेते हैं और कभी 'रई' की आवाज के साथ नाच-नाच उठते हैं ।

नंद जू के बारे कान्ह, छाँडि दँ मथनियाँ ।

बार बार कहति मातु जसुमति नैदरनियाँ ॥^४

^१ सूरसागर, पद सख्या ६६१ ।

^२ वही, ,, ६९२ ।

^३ वही, ,, ७१७ ।

^४ सूरसागर, पद सख्या ७६३ ।

अथवा

जसुमति दधि मयन करति, बड़ी घर धाम अजिर,
ठाढे हरि हस्त नाहि बतिपनि छवि छाज ।^१

अथवा

त्यों त्यों मोहन नाच ज्यों ज्यों रई धमरकी होइ ।

कृष्ण चद्रमा को हाथ में लेकर खेलना चाहत है । यशोदा सब प्रकार से मना कर हार जाती है अतः में नई दुग्धिया पाने का आशवासन पाकर ही कृष्ण सन्तुष्ट होते हैं ।

मया, म तो धेड़ खिलौना लहों ।

जहाँ लोटि घरनि पर अवहों, तेरी गोद न ऐनों ।
सुरभी को पय पान न करिहों, बेनी सिर न गूहहों ।
द्वहों पूत नद बाया की, तेरी सुत न कहहों ।
आग आठ, बात सुनि मेरी, बलदेवहि न जनहों ।
हंसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दहों ।
तेरी सौं, मेरी सुनि मया, अबहि विद्याहन जहों ।
सूरदास हूँ बुटिल बराती, गीत सुमगल गहों ॥^२

वाल-लीला—

बाल-बाला के साथ कृष्ण नाना प्रकार के खेल खेलते हैं । कभी हारते हैं कभी जीतते हैं । उस खेल में सभी बराबर हैं । भले ही किसी को कुछ गायें अधिक हों । लेकिन इससे क्या खेल में बड़ा-छोटा कौन । सूरदास का हृदय 'हरि' को सखा रूप में पाकर विभार हो उठता है हरि को खिझाने में हरि के साथ झगड़ने में और फिर एक हावर खेलने में जैसे सूरदास ही श्रोदामा का रूप धारण कर लेते हैं ।

खेलत म को काकी गुसयाँ ।

हरि हारे जीते श्रोदामा घरयस हों बत करत रिसयाँ ।
जाति-याति ह्मते बड नाहीं नाहीं बसत तुम्हारो छयाँ ।
अति अधिकार जनावत यात जात अधिक तुम्हार गया ।
रुहठि कर तासों की खले, रहे बठि जहँ-तह सब मयाँ ।
सूरदास प्रभु खेल्योइ चाहत, दाऊं दियो करि नद-बुहयाँ ॥^३

^१ वही, पद सख्या ७६४ ।

^२ वही पद सख्या ८११

^३ सूरसागर पद सख्या ८६३ ।

वाल-लीलाओं का वर्णन में मृगदाम ने अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। जिस प्रकार ने गोप बालकों के साथ कृष्ण खेल-कूद में निमग्न रहने हैं उसी प्रकार गोप-बालिकाओं के साथ नाना प्रकार की छेड़खानियों द्वारा उन्हें सुख पहुँचाया करते हैं। कभी बवाल-बालों को लेकर ब्रज-मुन्दरियों के घर में जाकर मक्खन चोरी करते हैं तो कभी पनघट और यमुना-नट पर नाना प्रकार से तंग कर उन्हें मृग्य करते हैं और कभी शरद कालीन पूर्णिमा में उनके साथ राम रचाया करते हैं। उस प्रकार के वर्णनों से 'मूरसागर' भर पटा है।

संयोग वर्णन—

शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन मूर के काव्य में अत्यन्त विस्तार वाला है। राधा और कृष्ण के पारस्परिक प्रेम के उत्तरोत्तर विकास तथा उसकी पूर्णता की नानाविध चिन्ताओं का मुन्दर चित्रण मूर-काव्य में मिलता है। पारस्परिक अनुराग के विक्रम मान, उपालम्भ, मिलन, उत्कण्ठा आदि के मजीब वर्णनों में 'मूरसागर' भर पटा है।

इस प्रेम के लिये गोपियाँ नभी कुछ नहने को तैयार हैं, नभी कुछ त्यागने को प्रस्तुत। समस्त ससार विपरीत हो जाय लेकिन उन्हें इसकी परवा नहीं। इस प्रेम के लिये वे जाति, कुल, सगे-मम्बन्धी, पिता-माता सबको छोड़ने के लिये तैयार हैं।

नंदलाल सौं मेरी मन मान्यो, कहा करंगी कोउ ।
 मैं तो चरन-कमल लपटानी, जो भावें सो होउ ।
 वाप रिसाइ, माइ घर मारुं, हँसै विराने लोग ।
 अब तौ स्यामहि सौं रति बाढ़ी, विधना रचौ संयोग ॥
 जाति महति पति जाइ न मेरी, अब परलोक नसाइ ।
 गिरिधर वर मैं नेकु न छाँड़ी, मिली निसान बजाइ ।
 बहुरि कवाहि यह तन धरि पैहाँ, कहँ पुनि श्रीवनवारि ।
 सूरदास-स्वामी के ऊपर यह तन डारौं वारि ।^१

इस प्रकार से अपने-अपने को सम्पूर्ण भाव से देकर ही उन्होंने अपने प्रियतम को सम्पूर्ण भाव से पाया था और यही कारण है कि राधा और गोपियों का प्रेम किसी भी अवस्था में मलिन नहीं हुआ। कृष्ण के प्रति उनका प्रेम एक रूप बना रहा। उन्हें अपने प्रेम पर विश्वास था इसलिये कृष्ण पर

^१ मूरसागर, पद सख्या २२८१।

अविश्वास करने का उन्हें अवसर ही नहीं था। कृष्ण चाहे दूर रहें, चाहे निकट वे उनके हैं और सदब उनके ही बने रहेंगे। चूँकि संपूर्ण रूप से वे उनकी हैं। यही कारण है कि प्रेम के इस सागर में उफान तो आता है लेकिन मर्यादा के बाहर नहीं जाता। राधा भोरी है प्रेममयी है। मान भी करता है परन्तु 'मान' रखना जानती नहीं। अपने मन पर उनका बग नहीं। प्रिय के वियोग को वह सहन नहीं कर सकती इसलिए मात कर पीछे पड़ताती है।

भूलि नहिं मान करौं री ।

जातं होइ अकाज आपनी, काह वृथा मरौं री १॥

इस प्रकार से सूरदास की राधा का न खींचने में दर लगती है और न रीझने में। वास्तव में सूरदास की राधा अत्यन्त सरल, निश्चल हृदय वाली है। उनका प्रेम सरल चित्त का प्रेम है, उसमें कही भी अपूर्णता नहीं, कही भी आशंका नहीं, कही भी जटिलता नहीं।

राधा तथा अथ गापिया के साथ वृन्दावन में, कृष्ण ने जितना भी समय बिताया और जितनी भी लाला की वह सब सयाग शृंगार के अन्तर्गत जाता है।

वियोग वरण—

वियाग-पक्ष का वरण भी मूर साहित्य में विस्तृत और व्यापक है। वियाग की भिन्न भिन्न दशाओं का वरण 'सूरसागर' में इतना विंगद है कि लगता है जैसे अथ वरण वरन को कुछ भी बाकी नहीं रह गया है। वियोग में जो टीस, जा पीडा होती है वह प्रिय की स्मृति का ताजी बनाए रहती है। सयोग-काल की छोटी-स-छाटा वस्तु भी वियोग में महत्व की हो जाती है और मधुरतर होकर प्रिय का भूलने नहीं देती। सयाग में प्रिय को निवट पाने से एक आत्म तुष्टि आती है। वियाग में प्रिय का अभाव प्रेम का और तीव्रता प्रदान करता है। सम्भवत यही कारण है कि भक्त-कवि वियाग-पक्ष का वरण अधिक भाव प्रवणता से करते हैं। विरह का अनुभूति भक्त-कवि के लिये सहज हाती है। भगवान से मिलन के लिये वह आनुरता लिये हुए रहता है। उसके हृदय का यह बेचनी, यह वदना विरह जनित नाना मनी दशाओं और चेटाओं को रूपायित करने में सहायक होता है। यही कारण है कि कृष्ण के वन्दावन छोड़कर चले जाने के बाद यनादा-नन्द, गोप, गापिया,

वृन्दावन के जड़-चेतन सभी पदार्थों को मूर ने प्रत्यक्ष किया है और वियोग-पक्ष का उनका वर्णन इतना गरस और द्रावक हो पाया है।

कृष्ण मथुरा चले गए हैं। नद लौटकर आ गए हैं। लेकिन कृष्ण नहीं लौटे। उनके वियोग में समस्त ब्रज व्याकुल है। ब्रज की मारी संपदा कृष्ण के साथ ही चली गई है।

तब तें मिटे सब आनन्द ।

या ब्रज के सब भाग सपदा, ले जू गए नंद-नद ।

विह्वल भई जसोदा डोलति, दुखित और उपनंद ।।

धेनु नहीं पय चरति रुचित मुख, चरति नहि तृण कंद ।^१

यशोदा के दुख का अन्त नहीं। उस ब्रज को लेकर वे क्या करेंगी जहा "गोकुल के राइ" नहीं है।

नंद ब्रज लोजे ठौंकि बजाइ ।

देह विदा मिलि जाहि मधुपुरी, जहें गोकुल के राइ ॥^२

यशोदा को इसी बात का आश्चर्य है कि कृष्ण को मथुरा में छोड़कर नद आ कैसे गए, उनके हृदय की बलिहारी है।

सराहों तेरो नद हियौ ।

मोहन सो सुत छाड़ि मधुपुरी, गोकुल आनि जियौ ॥^३

यशोदा मथुरा में जाकर वसुदेव की दासी होकर रहेंगी, कम से कम वे कृष्ण को देख तो पाएंगी।

हौं तो माई मथुरा ही पै जैहों ।

दासी हूँ वसुदेव राइ की, दरसन देखत रहौं ॥^४

लेकिन चाहकर भी वह कहा जा पा रही है। यशोदा के हृदय का दुख अपनी विवशता के कारण अत्यन्त करुण हो उठा है।

संदेसों देवकी सों कहियौ ।

हौं तो घाई तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ ॥

जदपि देव तुम जानति उनकी, तऊ मोहि कहि आवैं ।

प्रात होत मेरे लाल लडैत, माखन रोटी भावैं ॥

^१ सूरसागर, पद सख्या ३७७५ ।

^२ सूरसागर, पद सख्या ३७९६ ।

^३ वही, पद सख्या ३७९३ ।

^४ वही, पद सख्या ३७८८ ।

तेल उबटनी अरु ताती जल, ताहि देखि भजि जाते ।
जोइ जोइ मागत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि क हाते ॥
सूर पयिक सुनि मोहि रनि दिन, बढपी रहत उर सोच ।
मंरी अलक लइती मोहन, ह्वह कर सकोच ॥^१

गोपी ग्वाल बाल समी कृष्ण के विरह में व्यथित है। सबसे उदासीन है। कृष्ण के रहत सुख और आनंद देने वाली बन्धुए आज दुख का बडा रही हैं। सारी प्रकृति जैसे उनकी दुश्मन बन कर उन्हें कष्ट पहुँचा रही है। कभी वही प्रकृति उनके समान ही दुखी होकर कष्ट पा रही है। गोपियों का कृष्ण के बिना एक पल भी चैन नहीं। कभी उन्हें लगता है जैसे दन से कौटकर कृष्ण धा रह है—

इहि विरिया बन त भ्रज आवत ।
दूरिह त वह बेनु अपर धरि, बारबार बजावत ।^२

लेकिन दूसरे ही क्षण उनका भ्रम दूर हो जाता है और उनकी व्याकुलता बढ़ जाती है। उन्हें कहीं से भी सहानुभूति नहीं मिलती। उन्हें न घर में चैन है और न बाहर। सब लग उनकी हसी उडा रहे हैं लेकिन व विरह कातर होकर अपने को समाल नहीं पा रही है।

अब हों कहा करों रो माई ।
नंद नदन देख बिनु सजनी, पल भरि रह्यो न जाई ॥
घर के मात पिता सब प्रासत, इहि कुल लाज सजाई ।
बाहर के सब लोग हंसत ह काट सनहिनि आई ॥
सदा रहत चित चाप चढपी सो, गूह अगना न सुहाई
सूरदास गिरिधरन लाडिले हंसि करि कठ लगाई ॥^३

भ्रमरगीत—

सूरदास का 'भ्रमरगीत' विद्याग शृंगार के वणना में बेजाड है। उद्धव को देखकर गापियाँ उठती सीधी सब सुनाती है। कृष्ण के सखा होने के नाते उद्धव गापियों के लिये भी प्रिय है। कभी वे उन्हें वनाती है कभी अली-कटी सुनाती है और कभी अपनी दयनायता पर रो पडती है।

"ऊधो अब नाह स्पाम हमारे ।^४

^१ वही पद संख्या ३७९३ ।

^२ मूरसागर पद संख्या ३८१९ ।

^३ वही, पद संख्या ३८१८ ।

^४ वही, पद संख्या ८३६४ ।

उद्धव की बात मानने को वे तैयार हैं। उनके ब्रह्म को वे अगीकार करने की तैयार हैं। शर्त यही है कि वह मुकुट और पीताम्बर धारण कर उनके सामने आवे।

तो हम मानें बात तुम्हारी।

अपनी ब्रह्म दिलावहु ऊर्ध्व, मुकुट पिताम्बर धारो ॥^१

कृष्ण के प्रति गोपियों का अनन्य प्रेम सदा-सर्वदा एक प्रकार का बना रहता है। वे उनके वियोग से कष्ट पाती हैं, उन्हें फिर निकट पाना चाहती हैं, केवल एक बार और देख लेना चाहती हैं। वियोग-व्यथा की असह्य पीडा से कातर होकर कभी नाना प्रकार की कटूकितियाँ मुनाती हैं और कभी विगलित हो उठती हैं लेकिन सब समय उनके मन में रहता है कि जहाँ भी वे रहें, उन्हें (गोपियाँ) याद करें या न करें वे सुखी रहें।

जहँ जहँ रही राज करी तहँ तहँ, लेहु कोटि सिर भार।

यह असीस हम देति सूर सुनु न्हात तसँ जनि धार ॥

अथवा—

रहुरे मधुकर मधु-मतवारे।

कौन काज या निरगुन तो चिरजीवहु कान्ह हमारे ॥^२

गोपियों के इस आत्म-समर्पण में भक्त-कवि ने जैसे अपने आत्म-समर्पण का ही निवेदन किया है। भक्ति को ही उन्होंने सब कुछ माना है। जोग और निर्गुण का तिरस्कार तो नहीं किया है लेकिन भक्ति को ही वे सीवा मार्ग समझते हैं। कृष्णोपासना, कृष्ण की अनन्य भक्ति द्वारा ही वे सब कुछ पाने के अभिलाषी हैं।

काहे को रोकत मारग सूधो।

सुनहु मधुप निरगुन कटक तै, राज पंथ क्यो रुंधो ॥^३

सूरदास की रचनाएँ—

कहते हैं कि सूरदास ने "सवालाख भजन (पद) का अपने मन में संकल्प किया था, पर लाख ही बना के शरीर त्यागा, श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं पच्चीस सहस्र कहके उस ग्रन्थ को और अपने भक्त की वासना को पूरा कर

^१ सूरसागर, पद संख्या ४४२२।

^२ सूरसागर, पद संख्या ४१२२।

^३ वही, पद संख्या ४५०८।

दिया^१।” भक्तमाल की टीका के इस उद्धरण से कम से कम इस बात का पता चल जाता है कि मूरदास ने बहुत से पद लिखे थे वैसे प्रामाणिक रूप से कुछ भी कहना कठिन है। भक्तमाल के ‘मनिसुधास्वाद’ वार्तिक तिलकवार के अनुसार ‘जो पच्चीस सहस्र भजन श्रीकृष्ण भगवान ने कृपा करके रचा है उन भजना में मूरदास की छाप दी है।^२’ इस परम्परा के अनुसार यह समझना कठिन नहीं है कि भक्ता में मूरदास का क्या स्थान है लेकिन इससे यह भी पता चलता है कि मूरदास के नाम से प्रचलित पदा में ऐसे भी पद अन्तर्भूत किए गए हैं जिनकी रचना मूरदास ने स्वयं नहीं की है। मूरदास के नाम से प्रसिद्ध निम्नलिखित पच्चीस ग्रन्थों के नाम बताए जाते हैं

मूरसारावली, साहित्य लहरी, मूरसागर, भागवत भाषा, दशमस्कन्ध भाषा, मूरदास के पद, नागलीला, मान लीला, मूर रामायण मूरसागर सार, राधारस केलि कौतूहल, मूर पचीसी, गावधन लीला व्याहलो मूरदास प्राणप्यारी, भवरागत मूरसागर सार मूरसाठी, मूरपचीसी, हरिवंश टाका, एकादशी माहात्म्य सेवाफल, दृष्टिकूट के पद, नल-दमयन्ती।

उपर्युक्त ग्रन्थों में सभी ग्रन्थ मूरदास कृत नहीं माने जाते। वस इन्हीं में भी मतभेद है कि किन किन ग्रन्थों का प्रामाणिक और किन किन को अप्रामाणिक माना जाय। डा० दीनदयाल गुप्त नल-दमयन्ती, हरिवंश-टीका, राम-जन्म तथा एकादशी माहात्म्य का मूर की अप्रामाणिक रचनाओं में गणना करते हैं।^३ द्वारकादास परीक्ष और प्रभुदयाल मिश्र भी उन चार ग्रन्थों का मूर का नहीं मानते।^४ डा० दानदयाल गुप्त ने प्राणप्यारी को सन्दिग्ध रचना की श्रेणी में रखा है।^५

परमानन्ददास

परमानन्ददास का परिचय भक्तमाल में—

परमानन्ददास का परिचय दते हुए नामदास जी कृत भक्तमाल में कहा गया है।^६

^१ भक्तमाल (नवलविशार प्रेस, लखनऊ सन् १९२६) पृ० ५६४।

^२ वही, पृ० ५६४।

^३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (स० २००४), पृ० २९८।

^४ मूर निणय (स० २००८), पृ० १०५।

^५ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय (स० २००४), पृ० २९८।

^६ श्री नामा जी कृत (नवलविशार प्रेस, लखनऊ सन् १९२६ ई०) छाप संख्या ४३७ पृ० ५६५।

पौगंड, बाल, कँशोर, गोपलीला सब गाई ।
 अचरज कहा यह बात हुती पहिलौ जु सखाई ।
 नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन ।
 गद गद गिरा उदार श्याम शोमा भीज्यौ तन ।
 'सारंग' छाप ताकी भई, श्रवण सुनत आदेश देत ।
 ब्रजबधू रीति कलियुग विषे 'परमानंद' भयो प्रेमकेत ॥

'भक्ति सुधास्वाद तिलक'^१ में ऊपर की पंक्तियों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि "द्वीपर में जिस प्रकार गोपी जनो की रीति थी, उसी प्रकार कलियुगविषे श्री परमानन्द जी प्रेम के स्थान हुए । श्रीकृष्णचन्द्र के जन्म से पाँच वर्ष तक की बाललीला, तथा १० वर्ष तक की पौगंड लीला, और दस से सोलह वर्ष के भीतर की कँशोर लीला, ये सब गोप्य चरित्र गान किये । सो इस वार्ता का क्या आश्चर्य है, क्योंकि ये श्री नन्दनन्दन के प्रथम के सखा ही तो हैं । आपके नेत्रों से प्रेमवारि का प्रवाह तथा शरीर में रोमांच, रात्रि दिन बना रहता था । और आपकी उदार वाणी सदा गद्गद् रहती थी । श्री श्यामसुन्दर की शोभा से तन मन भीगा रहता था । आपने अपनी कविता में 'सारंग' छाप दी है । आपकी कविता सुनते मात्र में प्रेमावेश देती है ।"

'सारंग' छाप—

भक्तमाल में श्री परमानन्द जी का जो परिचय दिया गया है उससे उनकी भक्ति तथा लीला गान का पता चलता है । उन्होंने कृष्ण की बाल तथा किशोर लीला का वर्णन किया है । उनकी भक्ति उच्चकोटि की थी । भक्तमाल से यह भी सूचना प्राप्त होती है कि उनकी कविता में 'सारंग' छाप दी हुई है । वैसे 'सारंग' छाप वाले उनके बहुत ही कम पद मिलते हैं ।^२ डा० दीनदयालगुप्त का कहना है कि आवे से अधिक पद उनके सारंग राग में लिखे हुए हैं ।^३ सम्भवत इसी आधार पर भक्तमाल में 'सारंग' छाप की बात कही गई है ।

^१ वही, पृ० ५६५ ।

^२ डा० दीनदयालु जी गुप्त (अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ११३-११४ ।

^३ वही, पृ० ११४ ।

भक्तमाल में वर्णित चार परमानन्द—

उनके पदों में उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। 'भक्तमाल' और 'चौरासी वृष्णव की वार्ता' उनके जीवन-वृत्त की कुछ जानकारी प्राप्त होती है। लेकिन 'भक्तमाल' में चार परमानन्दों का जिक्र है। एक स्वामी परमानन्द जी श्री श्रीधरस्वामी के गुरु सयासी हैं।^१ ये सुकवि, भजन प्रवीण शान्त श्री बन्दावन के सयासी सवस्वत्यागी थे।^२ दूसरे 'श्री परमानन्द जी सारंग' थे,^३ जिनके सम्बन्ध में भक्तमाल में पूरा प्रकाश डाला गया है। उनके काव्य, उनकी भक्ति आदि की बात उसमें कही गई है। तीसरे परमानन्द की चर्चा करते हुए भक्तमाल में कहा गया है कि वे 'टीला' जी के अगज (पुत्र) थे और जगत में विख्यात योगी हुए।^४ और चौथे परमानन्दजी औली के थे जिनके द्वार पर भागवत धम का दूध ध्वजा गड़ी थी।^५ इन चारों परमानन्दों में श्री परमानन्द सारंग को ही अष्टछाप का परमानन्द दास कहते हैं।^६

जन्मतिथि—

श्री परमानन्द जी वायकुज ब्राह्मण थे। चौरासी वृष्णवन की वार्ता में इसका उल्लेख है। उसमें उनका परिचय कान्यकुज ब्राह्मण कह कर दिया गया है, 'परमानन्ददास कन्नौजिया ब्राह्मण तिनकी वार्ता।' वार्ता में और भी कहा गया है कि परमानन्ददास जी का जन्म कन्नौज में है कन्नौजिया ब्राह्मण के घर भयी।^७ उनके माता पिता निधन थे। वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रचलित परम्परा के अनुसार परमानन्ददास श्री वल्लभाचार्य जी से १५ वर्ष

^१ श्री नामा जी कृत भक्तमाल, पृ० ३७३।

^२ वही, पृ० ५६५।

^३ नामा जी कृत भक्तमाल पृ० ८४३।

^४ वही, पृ० ८७८ ८७९।

^५ ध्रुवदास की 'भक्त नामावली' में उन्हें अष्टछाप का ही माना गया है।

^६ चौरासी वृष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वैकटेश्वर छापाखाना बम्बई स० १९८५) पृ० २९०।

^७ वही पृ० २९०।

छोटे थे^१। इसको न्वीकार कर विद्वानो ने श्री परमानन्द जी का जन्म सं० १५५० के मार्गशीर्ष शु० ७ दिन सोमवार को माना है^२। 'भाव प्रकाश' के अनुसार जब इनका जन्म हुआ तो किसी सेठ ने इनके पिता को बहुत द्रव्य दान किया। ब्राह्मण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन्होंने इनका नाम 'परमानन्द' रखा। 'भाव प्रकाश' में आया है कि "तब वा ब्राह्मण ने बहोत प्रसन्न होइके कह्यो जौ श्री ठाकुर जी ने मोको पुत्र दियो, और धन हू बहोत दियो। तासो यह पुत्र बडो भाग्यवान है, जाके जन्मत ही मोको परम आनन्द भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम "परमानन्ददास" ही धरूंगौ।

ब्याह का प्रसंग—

परमानन्द जी 'वाता' के अनुसार अत्यन्त "योग्य भये और कवि भये भगवत् कृपा के पात्र भये कीर्तन बहुत आछौ गावते।" इस प्रकार से उनके साथ बहुत लोग रहने लगे और वे "आप स्वामी कहावते आप सेवक करते।" 'भाव प्रकाश'^३ के अनुसार एक समय नत्नीज में अकाल पडा और दडस्वरूप वहाँ के हाकिम ने उनके "पिता को सब द्रव्य लूटि लियो।" माता-पिता दु खी होकर परमानन्द दास से बोले कि सब द्रव्य वैसे ही चला गया और वे लोग उनकी शादी भी नहीं कर सके। परमानन्द दास से उन्होंने उपाजन करने के लिये कहा लेकिन उन्होंने कहा कि उन्हें ब्याह तो करना नहीं है इसलिये द्रव्य की क्या आवश्यकता है? माता-पिता के खाने का उपाय वे करते रहेंगे और इसलिये उन्हें निश्चिन्त होकर भगवद्भजन करना चाहिए। पिता को इन बातों से सन्तोष नहीं हुआ और द्रव्य अर्जन करने के चक्कर में एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकते रहे। परमानन्द दास अपने घर में ही कीर्तन-भजन करने लगे और उनकी ख्याति चारो ओर गाँव-गाँव में फैल गई।

प्रयाग में परमानन्द दास—

कहते हैं कि २६ वर्ष की अवस्था में मकर सक्रान्ति के अवसर पर परमानन्ददास प्रयाग गये। प्रयाग में ही वे रम गये। वहाँ रहते उनके भजन कीर्तन की ख्याति चारो ओर फैली। उस समय यमुना के दूसरे पार अडेल

^१ अष्टछाप (काकरीली, द्वितीय संस्करण), ऐतिहासिक दृष्टि, पृ० ५।

^२ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (प्रथम भाग) पृ० २०९ तथा अष्टछाप-परिचय पृ० १७७।

^३ अष्टछाप (काकरीली, सं० २००९) पृ० ११२।

नामक ग्राम में महाप्रभु वल्लभाचाय का निवास था। परमानन्द जी एकांशी को रात्रि-जागरण कर भजन-कीर्तन किया करते थे। यह सुन कर महाप्रभु वल्लभाचाय का सेवक जलधरिया कपूर क्षत्री भी रात में सब काम समाप्त कर अटेल से प्रयाग जाने को प्रस्तुत हुआ लेकिन उस समय नाव नहीं थी अतएव वह यमुना नदी तर कर पार कर गया और परमानन्द जी के स्थाप पर गया। वहाँ लोग ने बतलाया कि वह महाप्रभु वल्लभाचाय का सेवक है। परमानन्द जी ने उस समय कइ विरह के पद गाए। 'चौरासी वृष्णवन की वार्ता' में जो चार पद दिए हुए हैं उनसे परमानन्द दास की वृष्ण भक्ति का पूरा परिचय मिलता है।

ब्रज के विरही लोग बिचारे

बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े अति बुबल तनहारे ॥

मात जसोदा पय निहारत निरखत सास सकारे ।

जो कोई बाह बाह कहि बोलत अँखियन बहुत पनारे ।

नीचे के पदों में भक्त-हृदय की आतुरता का जैसे चित्र-सा चित्र जाता है।

अथवा

माई को मिलवै नद किसोरे ।

एक बार को नन दिखावे मेरे मन को चोरे ॥

दीक्षा—

बहते हैं कि उस रात्रि को सब लोग के चले जाने पर परमानन्द दास को निद्रा आ गई और उन्होंने सपने में देखा 'जैसे रात्रि के जागरण में श्री आचाय जी महाप्रभुन के सेवक जलधरिया क्षत्री बठे हैं और उनकी गोद में श्री नवनीत प्रिया जी के दशन भये।' ^२ परमानन्द दास को अडेल जाकर 'जलधरिया क्षत्री से मिलने' की प्रेरणा हुई जिसमें कि वे फिर श्री नवनीत प्रिया जी के दशन पा सकें। वहाँ पर उन्हें महाप्रभु वल्लभाचाय जी के दशन हुए और श्री आचाय जी महाप्रभुन ने अपने श्री मुख सो बहो जा परमानन्द कछु भगवदीय अस वणन करि। तब परमानन्द स्वामी ने विरह के पद गाये। ^३ उन पदों में एक पद निम्नलिखित है

^१ 'लक्ष्मी वैकुण्ठेश्वर छापाखाना (संवत् १९८५), पृ० २९३-२९४।

^२ 'चौरासी वृष्णवन की वार्ता' लक्ष्मी वैकुण्ठेश्वर छापाखाना (सं० १९८५) पृ० २९६।

^३ वही, पृ० २९७-९८।

जिय की साधन जिय ही रही री ।

बहुरि गोपाल देखि नाही पाए विलपत कुंज अही री ।.....

वाद में ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के साथ ब्रज में आए और वही पर भजन-कीर्तन में अपना शेष जीवन विताया । वे प्रति दिन श्री नाथ जी के मंदिर में जाकर कीर्तन किया करते थे । ९१ वर्ष की उम्र में उन्होंने शरीर त्याग किया । इनकी मृत्यु सं० १६४१ भाद्र पद कृष्ण ९ के मध्याह्नकाल में हुई ।^१ डा० दीनदयालु गुप्त उनके परलोकवास की तिथि सं० १६४० के लगभग मानते हैं ।^२

रचनाएँ—

परमानन्द दास के नाम से प्रचलित सभी रचनाओं में (१) दानलीला (२) ध्रुव चरित्र (३) परमानन्द दास जी का पद (४) वल्लभ-सम्प्रदायी कीर्तन सग्रहों में पद तथा (५) हस्तलिखित परमानन्दसागर तथा परमानन्द दास जी के पद-कीर्तन सग्रह को डा० दीनदयालु गुप्त प्रामाणिक नहीं मानते । उनके मतानुसार उनकी एकमात्र प्रामाणिक रचना परमानन्द सागर है ।^३

दास्य भाव—

परमानन्ददास के पदों में कुछ दास्य भाव वाले पद भी हैं :

ताते तुम्हरो मोहिं भरोसो आवैं,
दीनदयालु पतित पावन अस वेद उपनिषद गावैं ।
जो तुम कहो कौन खल तारे तो हों जानों साखि,
पुत्र हेत हरिलोक चलयो द्विज सक्यो न काहू राखि ।
गनिका कहा कियो व्रत संयम शुक हित मनहिं खिलावैं,
कारन करि सुमिरैं गज वपुरो ग्राह परमगति पावैं ।
अभय दान दीवान प्रकट प्रभु साचो विरद बुलावैं ।
कारन कौन दास परमानंद द्वारे दाद न पावैं ॥^४

^१ अष्टछाप-परिचय, पृ० १८० ।

^२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २३० ।

^३ वही, पृ० २९९-३११ ।

^४ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६०८ ।

बाल-लीला—

परमानन्द दास ने बाल-लीला का वणन जमकर किया है। बाल-लीला में जैसे उनका मन रम जाता है। कृष्ण के नटखटीपन का चित्रण उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से किया है।

राग धनाश्री

जसोदा चचल तेरी पूत ।
आनछौं मज भोतर डोले करै अटपटे सूत ।
बह्यौ बूध घत ल आगें करि जहँ जहँ धरौं दुराई ।
अधियारे घर कोउ न जान तहाँ पहल हीं जाई ।
गोरस के सब भाजन फोरे माखन खाइ चुराई ।
लरबन्ह केकर कान मरौरे तहँ ते चले पराई ।^१

बच्चे गुट बनाकर किसी एक बच्चे को भय दिखाते हैं। कृष्ण को इसी प्रकार से बलदेव ने भय दिखाया है, इसकी गिवायत वे रोहिणी भया से कर रहे हैं।

देखिरो रोहिनी भया, ऐसे ह बलभया, यमुना के तीर मोको चुचुकाय गुलाओ, सुबल श्रीदामा साय, हसि हंसि मिलवें बात, आपु डरायो मोहँ डरपायो । जहाँ तहाँ बोले मोर, चितवे तिनकी ओर, भाजो रे भाजो भया उहि देखो आयो, आपु घड़े तर पर, मोहि छाडियो घर तर, घर घर छातो कर घर हँ को घायो । लपकि लियो उठाय, उर सों रँही लगाय, मेरो री मेरो, कहि हियो भरि आयो, परमानन्द बोले द्विज, वेद मत्र पढ़ि पढ़ि बडिया के पूछ सो हाय दिवायो ।^२

विरह के पद—

इस प्रकार के अनेको पद बाल कृष्ण की लीला के सम्बन्ध में उन्होंने गाए हैं। अन्य भक्त कविया की नाईं इनके भी विरह-सम्बन्धी पदा में इनकी तमयता का परिचय मिलता है।

मोहन वह क्यों प्रीति बिसारो,
कहत सुनत समुझत उर अंतर दुख लागत ह भारी ।^३

^१ पोटार अभिनन्दन ग्रन्थ-परमानन्द सागर परमानन्ददास (ले० ललित कुमार दव), पृ० २३४ ।

^२ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय पृ० ७५० ।

^३ अष्टछाप परिचय, विरह पद सख्या ९७ ।

वियोग की अवस्था में वे सभी वस्तुएँ और भी अविक्त आकर्षक हो जाती हैं जिनका प्रिय से सम्बन्ध हो और प्रिय जब कृष्ण हो तब तो कुछ कहना ही नहीं। उनके बिना रस का मर्मज्ञ कौन है ? उनके बिना कौन गोपियों के अन्तर की व्यथा को समझ सकता है ?

कौन रसिक है इन बातों को ।

नन्द नंदन बिन कासों कहिए, सुन रो सखी ! मेरे दुखियामन की ।^१

संयोग के पद—

कृष्ण के साथ नाना प्रकार के विहार गोपियों ने किए हैं। गायें दुहवाई हैं। गगरी उठवाई है, 'ओषट घाट' पर बाँह 'टैकने' को कहा है, हिंडोल पर झूली हैं आज वे नहीं हैं। परमानन्द दास ने उन विविध लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया है।

बलि गई मेरी गंग्या दुहि दीजँ ।

बार बार कहि कुँवरि राधिका, स्याम निहोरी लीजँ ।

वह देखो घटा उठी बाहर की, वेग स्याम घर लीजँ ।

बूंद परे रंग फीकी हुई है, लाल चूनरी भीजँ ।

परमानन्द स्वामी मन मोहन, कह्यो हमारो कीजँ ॥^२

अथवा

ललन ! उठाय देहु मेरी गगरी

जमुना तीर अकेली ठाढ़ी, दूसर नाहिन कोऊ ।

जासों कहों स्याम घन सुन्दर संगहि नाहिन कोऊ ॥^३

शृंगार करते समय कृष्ण आ गए हैं। उनके रूप पर मुग्ध होकर वह अपने आपको भूल गई है। परमानन्द दास का भक्त-हृदय उस रूप-भावुरी का प्यासा है, गोपी के वहाने उनका हृदय उस रूप पर अपने आपको न्योछा-वर कर दिए हुए है।

औचकहि हरि आय गये ।

हों दरपन लै माँग सँभारत, चार्यो हू नैना एक भये ।

^१ वही, विरह, पद सख्या ९० ।

^२ अष्टछाप परिचय, रूपासक्ति, पद सख्या ६३, पृ० १९६ ।

^३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ७४६ ।

नक चित मुसिब्याए जू हरि, मेरे प्राण चुराई ल्ये ।
 अब तो भइह चाप मिलन की, बिसरे देह सिंगार ठये ॥
 तब तें कछु न मुहाय विकल मन, ठगी नव-सुत स्याम नये ।
 परमानन्द प्रभु सों रति बाढी, गिरिधर लाल आनद भये ।^१

आज वे ही दूर चले गए हैं फिर भी गोपियों का दृढ़ विश्वास है कि उनकी दयनीय अवस्था का समाचार पाकर कृष्ण अवश्य आएंगे। वास्तव में खबर पहुँचाने वाले ही उन्हें सच्ची बात नहीं बतलाते। भक्त परमानन्द का अटल विश्वास है कि प्रभु उनके हृदय की व्यथा को जानने वाले हैं और किसी भी हालत में उन्हें असहाय नहीं रहने देंगे।

जो प कोउ माधो मो कहें ।
 तो कत कमल नन मयुरा में एको घरी रह ।^२

परमानन्द दास ने एक पद में माना मधुर भक्ति के स्वरूप का निरूपण किया है। कृष्ण के प्रति यह प्रेम अपने आप में पूरा है। सासारिक प्रेम को सामने रखकर उसे समझने का प्रयास व्यर्थ है। उस प्रेम के अपने विधि निषेध हैं, उसे अन्य की अपेक्षा नहीं।

म तो प्रीति स्याम सो कीनी ।
 कोऊ निदो कोऊ बवो, अब तो यह घरि दीनी ।
 जो पतिव्रत तो या छोटा सों इन्हें समर्प्यो देह ।
 जो ध्यभिचार तो नन्दन-दन सों बाढयो अधिक सनेह ।
 जो व्रत गह्यो सो और न भायो, मर्यादा को भग ।
 परमानन्द लाल गिरिधर को पायो मोटो सग ।^३

कृष्णदास—

जीवन धृत्त—

कृष्णदास अष्टछाप के उन भक्त कवियों में हैं जिनका जीवन नाना प्रकार की परस्पर विरोधी बातों से भरा हुआ है। सम्प्रदाय में इनके महत्व का पता इसी से चल जाता है कि वे 'अष्टछाप' में अन्तर्भुक्त हैं। दूसरी ओर

^१ अष्टछाप परिचय, रूपामक्ति ७४, पृ० १९८ ।

^२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, राग सारंग, पृ० ७२३ ।

^३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६९५ ।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में इनके जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उसने इनके सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट धारणा नहीं बनाई जा सकती। उनके जीवन की घटनाओं में बगाली पुजारियों को अपमानित कर श्रीनाथ जी के मंदिर से निकालना, भीरावाई की गेट का अन्वीकार कर उनका असम्मान करना तथा गोसाईं विट्ठलनाथ जी को श्रीनाथ जी के मंदिर में जाने से रोक देना, उनका बेर्यासक्त और पर-द्वारा-प्रेमी होना तथा अर्थ लोलुपता का परिचय देना आदि ऐसी घटनाएँ हैं जिनपर सहमा विश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी इन बातों को एकदम उड़ाया भी नहीं जा सकता क्योंकि चौरासी वैष्णवन की वार्ता में इनका समावेश संप्रदाय में प्रचलित विश्वासों के आधार पर है। वैसे 'अष्टछाप' में इनका अन्तर्भूक्त किया जाना, गोसाईं विट्ठलनाथ जी का इनके प्रति बराबर सदैव रहना आदि इनके महत्व को प्रकट करते हैं। कहने हैं कि जब उन्होंने गोसाईं विट्ठलनाथ जी को श्रीनाथ जी के मंदिर में जाने से रोक दिया^१ तब राजा वीरवल ने पाँच सौ आदमियों को भेजकर कृष्णदास को पकड़वा मंगाया और बदीखाने में डाल दिया।^२ श्री विट्ठलनाथ जी को जन्म-दुःख मालूम हुआ तब उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया^३ और कृष्णदास को मुक्त^४ करा कर फिर से श्रीनाथ जी मंदिर का अधिकारी^५ बनाया। इससे पता चलता है कि कृष्णदास की श्रीनाथ जी के प्रति कितनी निष्ठा थी तथा वे कितने विश्वास पात्र थे कि इतना सब करने पर भी श्री विट्ठलनाथ जी ने उनका सम्मान ही किया।

भक्तमाल में उल्लेख—

भक्तमाल में कृष्णदास नाम के छ. भक्तों का उल्लेख है। उनमें अष्टछाप के कृष्णदास सभवतः श्री बाल कृष्ण (कृष्णदास) जी हैं।^५ उसमें कहा गया है कि कृष्णदास वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में जो भजन-रीति प्रचलित थी उसमें 'पूरे और गुणागार' हुए। आपकी कविता निर्दोष, अलंकृत तथा श्रीगोपाल

^१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (सं० १९८५), पृ० ३५८।

^२ वही, पृ० ३६०।

^३ वही, पृ० ३६०।

^४ वही, पृ० ३६३।

^५ श्रीभक्तमाल, (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सन् १९२६ ई०), पृ० ५८२।

जी के सुयस से भूपित होती थी।' आप सदा सता के सग में रहा करते थे तथा भगवत चिन्ता ही आपके लिए एकमात्र वस्तु थी और इनकी अनन्य भक्ति को दम्बर "गिरिघरन रीझि कृष्ण कौ नाम भाझ साझी दियौ।' अर्थात् 'गिरिघारी श्रीकृष्णचन्द्र जी श्री कृष्ण दास जी पर रीझ क अपने नाम में साझी किया अर्थात् आपका नाम 'कृष्ण' (बालकृष्ण वा कृष्णदास) रखवाया और आपके नाम का पद बनाया।'^१

वार्ता का विवरण—

मूल चौरासी वार्ता में उनकी प्रारम्भिक जीवनी के सम्बन्ध में बहुत कम कहा गया है। वार्ता के अनुसार वे गूढ़ थे।^२ हरिराय जी कृत 'भावप्रकाश' में बतलाया गया है^३ कि कृष्णदास गुजराती थे तथा चिलोतरा गाँव के 'बुनवी पटेल' के घर जमे। इनका जन्म लगभग स० १५५४ में हुआ तथा वल्लभ सम्प्रदाय में ये स० १५६७ में दीक्षित हुए।^४ इनकी मृत्यु सवत १६३८ में हुई।^५ श्रीनाथ जी के मंदिर के वे अधिकारी थे।

रूप-माधुरी के पद—

कृष्णदास की कविता अत्यन्त रमणीय है। भगवान की रूप-माधुरी को लेकर वे भक्त रहते। भगवान् के सौंदर्य से अभिभूत उनके चित्त को और अथ किसी ओर जाने का अवकाश नहीं।

मो मन गिरघर-छवि पर अटक्यो ।

ललित प्रभगो अगन पर चलि, गयो तहाँ ई ठटक्यो ॥

सजल श्याम घन चरण मोल ह्व फिर चित अनित न भटक्यो ।

कृष्णदास कियो प्राण योछावरि यह तन जग सिर पटक्यो ॥^६

गिरिघर ही उनके सब कुछ हैं। उनके प्रति ही कृष्णदास की अनन्य भक्ति है। उनका रूप सवदा उनके चित्त में बसा हुआ रहता है। उन्हें और कुछ नहीं चाहिए, चाहिए केवल अपने परम-आराध्य का चरण रेणु'।

^१ वही पृ० ५८२।

^२ चौरासी वृष्णवन की वार्ता (स० १९८५), पृ० ३४३।

^३ अष्टछाप (विद्याविभाग काकरीजी, द्वितीय संस्करण) पृ० ३३१।

^४ वही, (भूमिका भाग), प० ८९।

^५ वही, (भूमिका भाग) पृ० १०।

^६ चौरासा वृष्णवन की वार्ता (स० १९८५), पृ० ३५४ ३५५।

मेरी तो गिरिधर ही गुणगान ।

यह मूरत खेलत नैनन में, यही हृदय में ध्यान ।

चरन-रेनु चाहत मन मेरी, यही दीजिए दान ।

‘कृष्णदास’ को जीवन गिरिधर, मंगल रूप निधान ॥^१

शृंगार रस के पदों को उन्होंने अधिक मात्रा में रचना की है । राम-लीला, हिंडोरा आदि के नानाविध वर्णनों ने उनका भक्ति-काव्य भरा पड़ा है ।

हिंडोरे माई झूलत लाल बिहारी ।

संग झुलति वृषभानु-नंदिनी, प्रानन हूँ तें प्यारी ।

नीलांबर पीतांबर की छवि घन दामिनी मनुहारी ।

बलि-बलि जाय जूगल चंदन पर, ‘कृष्णदास’ बलिहारी ।^२

अथवा

झूलं मेरी प्यारी हिंडोरे, गोपाल लाल झुलावत हं रे ।

× × × ×

काजर रेष वनी नैनन में पीतम की चित चोरे ॥

ललितादिक झुलवति आनंद भरि, छवि की उठत झकोरे ।

‘कृष्णदास’ प्रभु गिरिधर की छवि, सदा रही मन मोरे ॥^३

कृष्ण के कमल-मुख को बराबर देखते रहने पर भी कृष्णदास की आँखें अतृप्त ही बनी रहती हैं । उनके अंग-अंग की छवि पर उनका भक्त-हृदय न्योछावर है ।

कमल मुख देखत कौन अधाय ।

सुन री सखी ! लोचन अलि मेरे, मुदित रहे अरुझाय ।

मुक्तामाल लाल उर ऊपर जनु फूली बन जाय ।

गोवर्धन के अंग-अंग पर, कृष्णदास बलिजाय ।^४

वार्ता में कहा गया है कि ‘कृष्णदास’ के पदों में सूरदास के पदों की छाया आती है । ‘एक समै सूरदास ने कृष्णदास से कह्यो—जो तुम पद करत हो, तामे मेरी छाया आवत है’ ।^५

^१ अष्टछाप-परिचय, विनय ७४, पृ० २४० ।

^२ वही, छवि-वर्णन १३, पृ० २२८ ।

^३ अष्टछाप-परिचय, छवि-वर्णन ९, पृ० २२८ ।

^४ अष्टछाप परिचय, रूपासक्ति ३२, पृ० २३२ ।

^५ अष्टछाप (काकरोली, द्वितीय संस्करण, सं० २००९), पृ० ३७७ ।

खडिता नायिका—कृष्णदाम ने खडिता नायिका के भी बहुत से वणन किए हैं ।

तुम सों बोलिये की नाहीं ।

घर घर गवन परत हों सुंदर, पिय चित नाहीं एक ठाहीं ।^१

अथवा

बौन के भुराये भोर आए हो भवन मेरे,

ऊँची दृष्टि क्यों न करयो, कौन से लजाने हो ।

भौरी भौरी बतियान भोर वन लागे मोहि,

श्री गिरघारो तुम तौ निपट समाने हो ।

‘कृष्णदास’ प्रभु छोडो, अटपटी रहे हो लाल,

आज ही तुम्हें म नीके करि जाने हो ॥^२

इस प्रकार से उनसे गावरघनघारी नित्य नव-नव रगो से रजित उनके हृदय को आनन्द से अनुरजित करत रहते ह ।

गोवरन घारी लाल नित्य नव रग ।^३

रचनाएँ—

कृष्णदास के नाम से कई रचनाएँ प्रसिद्ध हैं जैसे जुगलमान-चरित्र, भागवत भाषानुवाद, भ्रमरगीत, प्रेम सत्व निरूपण, भक्तमाल पर डीका, प्रेमरस रास कृष्णदास की बानी हिंडारा लीला, दान लीला, वष्णव वदन, आदि । श्री प्रमुदपाल मितल इन्हें प्रामाणिक नहीं मानते । उनका कहना है कि कृष्णदास ने केवल स्फुट पदा का रचना की थी ।^४ डा० दीनदयालु गुप्त भी इन सभी रचनाओं का कृष्णदास अधिकारी की लिखी हुई रचनाएँ नहीं मानत ।^५

^१ अष्टछाप (कावरीली द्वितीय संस्करण, स० २००९), पृ० ३७७ ।

^२ अष्टछाप-परिचय पद सख्या ६१, प० २३८ ।

^३ वही पद सख्या ५९ पृ० २३७ ।

^४ अष्टछाप-परिचय (द्वितीय संस्करण पीप २००६) पृ० २१७ ।

^५ अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय पृ० ३१५ ३१९ ।

कुंभनदाम—

भजनानंदी कुंभनदाम—

कुंभनदास भी अष्टछाप के भवन-कवियों में हैं। कुंभनदाम गृहस्थ थे, भजनानंदी, भगवान् के रूप पर भुंग्य।

(नट)

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं।

गोवर्धन-घर अंग-अंग प्रति जहाँ ही परति दृष्टि रहती तहाँ-तहाँ ॥^१

समस्त जीवन उमा रूप को लेकर वे रहे। श्रीनाथ जी के यहाँ भजन-कीर्तन वे किया करते थे। मूरदान जी के पहले वे ही उन काम पर नियुक्त थे। श्रीनाथ जी का वियोग वे थोड़ी देर के लिये भी मग्न नहीं कर पाते थे। एक बार गोन्वामो विट्ठलनाथ जी ब्रज से द्वारिका जा रहे थे। उन्होंने कुंभनदास जी को अपने साथ ले लिया। लेकिन श्रीनाथ जी की जब याद उन्हें आई तो उनकी आँगो से जाँसू बहने लगे और वे सटे-भटे कीर्तन गाने लगे।^२

(सारंग अठताल)

किते दिन हूँ गए विनु-देखे।

तरुन किसोर रसिक नंद नंदनु कछुक उठति मुख रेखें ॥

उवह चित्तवनि उवह हान मनोहर उवह बानिक नट-भेखें।

उवह सौभग उह कांति बदन की कोटिक चन्द-बिसेखें ॥

म्याम मुन्दर-संग मिलि खेलन को आवति जियआ पेखें।

‘कुंभनदास’ लाल गिरिघर-विनु जीवन जनमअलेखें ॥^३

गोस्वामी जी ने जब उनकी यह दशा देखी तब उन्हें लौट जाने के लिये कहा। लौटने के बाद वे श्रीनाथ जी के मंदिर में गए और निम्नलिखित पद गाया, जिससे कुंभनदाम की भगवान् के प्रति अगाध आसक्ति का पता चलता है—

^१ कुंभनदास (जीवनी, पद संग्रह), पद संख्या २३२।

^२ अष्टछाप (काकरौली, द्वितीय संस्करण,) पृ० २६४।

^३ कुंभनदास (जीवनी, पद संग्रह), पद संख्या ३३७।

(सारंग)

जो घें चाप मिलन की होइ ।
 तो कत रह्यो परे सुनि सजनो ! लग्न करे जो कोई ।
 जो प विरह परस्पर व्याप तो इहु बात बन ।
 डह अर लोक-लाज अपकोरति एकी चित न गन ।
 'कुभनदास' जो मन माने तो कत जिय और सुहाइ ?
 गिरिधर लाल रसिक विनु-देखे छिनु भर कल्प विहाइ ॥^१

कुभनदास के पदों में मधुर रस की प्रधानता—

कुभन दास ने वात्सल्य रस क पद नहीं लिखे हैं । युगल-रूप की जाकी और नाना विध लीला का वणन उन्होंने किया है । इनके पदा में मधुर रस की प्रधानता है । वार्ताकार ने उनके पदा के सम्बन्ध में लिखा^२ है कि 'सा कुभन दाम सगरे कीतन युगल स्वरूप सबधी कीये । सा बघाई, पलना बाल लीला गाई नाही ।' माधुर्य भक्ति के उनके पद अत्यन्त ललित और हृदय प्राही हैं । मिश्रबन्धु विनोद^३ में इन्हें 'साधारण कोटि का कवि माना गया है ।^३ लेकिन इनके पदा के देखने से यह धारणा भ्रान्त मालूम होती है । प्रेम की आत्म विभार अवस्था का सुन्दर वणन नीचे के पद में है—

देखो माइ ! देखहु उलटी रई ग्वालिन रीती मयनिपन (दही) बिलीब ।
 विनु हि नन कर चचल, पुनि तजि नवनीत हि टकटीब ॥
 देखत रूप चिह्नरि चित लाग्यो इक^४कु गिरिधर मुख जोष ।
 'कुभनदास' विसरयो बधि अकबक, औरे भाजन घोष ॥^४

प्रेमासक्ति के मुदर वणन वाले उनके पद हैं । आसक्त मन की अवस्था का चितना मुदर वणन है । गिरि-गावरथन रैया के बिना मुन्दर ढग से कौन गाय टूट सक्ता है ?

(देव गधार)

तुम नीकें दुहि जानत गईयाँ ।
 चलिये कुवर रसिक नदनदन ! लागों तुम्हारे पईयाँ ॥

^१ कुभननाम (जीवन, पद संग्रह), पद संख्या २२१ ।

^२ अष्टसंगान की वार्ता पृ० ६२ ।

^३ मिश्रबन्धुविनायक, प० २६७ ।

^४ कुभनदास (जीवन पद-संग्रह), आसक्ति-वणन पद संख्या २०१ ।

तुम हि जानिके कनक-दीहिनी घर में पठई मईयाँ ।
 निकटिहिं हें इत खरिक हमारी नागर ! लेऊँ बलईयाँ ।
 देखि परम सुदेस सुदरी चितु चिहुस्याँ सुंदरईयाँ ।
 'कुंभनदास' प्रभु मानि लई मन, गिरि गोवर्धन-रईयाँ ॥^१

अथवा

(मलार)

सारी भींजि हें नई ।
 अवाहि प्रथम पहरि आई हो पिता वृषभान दई ।
 अपनों पीताम्बर मोहि उड़ावहु वरिखा उदित भई ।
 सुन्दर स्याम ! जाइगौ इह रगु बहु विध चित्र ठई ।
 कहि हों कहा जाइ घर मोहन डरपति हों इतई ।
 'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-पर मुदित उछंग लई ॥^२

प्रीति ही एकमात्र काम्य—

इस प्रीति और आसक्ति की पराकाष्ठा इन भक्त कवियों में देखने को मिलती है । उनके लिये प्रेमाराध्य का ध्यान, प्रेमाराध्य के लिये सब कुछ करना ही एकमात्र सत्य वस्तु है । ससार के अन्य कर्म, ससार की रीति, ससार के अन्य व्यवहार इन भक्तों के लिये कुछ अर्थ नहीं रखते । ऐसा है उनका प्रेम । ससार चाहे हँसे, चाहे निन्दा करे, चाहे जो भी करे भक्त के मन की 'हिलगिति' (प्रीति, लगन) ज्यो की त्यो बनी रहती है ।

(सारंग-इकताल)

हिलगिति कठिन है या मन की ।
 जाके लयें देख मेरी सजनी ! लाज जात सब तन की ।
 धर्म जाउ अरु हंसो लोक सब अरु, आवौ कुल-गारी ।
 सो क्यो रहै ताहि विनु देखें, जो जाकौ हितकारी ॥
 रस लुबधक एक निमिख न छांडत ज्यों अधीन भृगु गाने ।
 'कुंभनदास' सनेह-मरमु इहि गोवर्धन-धर जानै ॥^३

^१ कुंभनदास (जीवनी, पद संग्रह) ब्रज-भक्त-प्रार्थना, पद संख्या १३६ ।

^२ वही, वर्षाऋतु-वर्णन, पद संख्या ९२ ।

^३ कुंभनदास (जीवनी, पद संग्रह) आसक्ति-वचन, पद संख्या २१३ ।

कीर्तन की रचना—

कुभनदास रचित किसी भी ग्रन्थ का अभी तक पता नहीं चला है। वैसे उनके बहुत से फुटकर पद मिलते हैं। डा० दीनदयालु गुप्त ने उनके पदा के सग्रह की सूचना दी है^१—काकरौली विद्या विभाग में १८६ पदा का सग्रह नाथद्वारा निज पुस्तकालय में ३६७ पदा का सग्रह तथा वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन सग्रह भाग १, २ तथा ३ में छपे पद।

परम सतोपी कुभनदास—

कुभनदास का आर्थिक कष्ट था लेकिन वे परम सतोपी थे। बादशाह अकबर, राजा मानसिंह तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उनकी सहायता करनी चाही लेकिन उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। अकबर ने उन्हें बड़े सम्मान से पतहपुर सीकरी बुलवाया था। लेकिन इससे कुभनदास को कष्ट ही हुआ। बादशाह का उन्होंने जा पद चुनाया उससे उनके वैराग्य तथा अनन्य भक्ति और सतोप का परिचय मिलता है

भक्त की कहा सीकरी काम ?

आवत जात पहया दूदों विसरि गयो हरिनाम ।

जाको मुझ देखत बुझ उपज ताको करनी परी प्रनाम ।

'कुभनदास' लाल गिरिधर विनु यह सब झूठी धाम ॥^२

जगत की किसी भी वस्तु की साधकता उनकी दृष्टि में तमा थी जब वह भगवान् के किसी काम आ सके। श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पूछने पर उन्होंने बतलाया कि उनके डेढ बेटे हैं, एक पूरा तो चतुभुजदास और आधा कृष्णदास। उनका कहना था कि चतुभुजदास भगवान की सेवा भी करता है और गुणगान भी करता है इसलिये वह एक पूरा है और कृष्णदास केवल सेवा करता है इसलिए आधा।^३ वैसे कुभनदास के सात पुत्र थे। चतुभुजदास, 'अष्टछाप में सम्मिलित हैं।

जन्म और मृत्यु तिथि—

कुभनदास जी गौरवा क्षत्रिय थे। वार्ता में उन्हें 'कुभनदास गौरवा कहा

^१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (स० २००४), प० ३१५।

^२ कुभनदास (जीवनी, पद सग्रह) पद सख्या ३९७।

^३ चौरासी कृष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वैकटेश्वर, स० १९८५) पृ० ३३७।

गया है। इनका जन्म स० १५२५ की कार्तिक कृष्णपक्ष ११ को हुआ था। और मृत्यु स० १६४० के लगभग हुई। गोवर्धन में कुछ दूर जमनावती ग्राम के ये रहने वाले थे। उन पर इनके चाचा घर्मदाम का पूरा प्रभाव पड़ा था जो स्वयं भक्त थे। वाद्यकाल से ही उन्हें मगीत और काव्य रचना में प्रेम था।

नंददास—

नंददास का जीवन-वृत्त और भक्तमाल—

नंददास, अष्टछाप के भक्त-कवियों में थे। ये अत्यन्त ही प्रतिभाशाली थे। इनके काव्य को देखने से इनकी शिक्षा, इनके पाण्डित्य तथा जीवन के नानाविध अनुभवों का परिचय मिलता है। इन्होंने अपने काव्य में अथवा अन्य कहीं अपने जीवन के सम्बन्ध में बहुत ही कम कहा है। इनका जीवन वृत्तान्त बहुत कुछ अन्वकार में ही है। विद्वानों ने इनके जीवन-वृत्तान्त आदि को लेकर बहुत मतभेद है। 'दो मी वायन वैष्णवन की वार्ता' तथा अष्टछाप की वार्ता (काकरोली) में उनके जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ मिलता है वह पर्याप्त नहीं है। नाभा जी कृत भक्तमाल में भी इनके जीवन वृत्तान्त का थोड़ा-सा उल्लेख है।

अष्टछाप^१ (काकरोली) में नन्ददाम को सनौडिया ब्राह्मण तथा तुलसीदास का छोटा भाई कहा गया है। यह विवादास्पद है। भक्तमाल में उन्हें सुकुल कुल का कहा गया है और इन्हें चन्द्रहास का अग्रज बताया गया है। भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय दिया हुआ है।

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर ।

सरस उक्तिजुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर ।

प्रचुर पयव लीं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी ।

सकल सुकुल सबलित भक्त पद रेनु उपासी ।

चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम तै मैं पगे

(श्री) नददास आनंद निधि रसिक सु प्रभुहित रंगमगे ।^२

^१ द्वितीय संस्करण, पृ० ५२५ ।

^२ भक्तमाल (लखनऊ, द्वितीय आवृत्ति सन् १९२६ ई०) छप्पय सख्या ११० पृ० ७०२-७०३ ।

अर्थात् "श्रीनन्दगम जी आनन्दनिधि रसिक प्रभु के प्रेम में मिले हुए थे, श्रीयुगल लीला रसरीति पर ग्रन्थ की रचना में बड़े प्रवीण हुए, तथा भक्ति रसयुक्त भरस उक्ति युक्त कथन और गीत में अति उजागर थे। आप 'श्रीरामपुर ग्राम के निवासी थे, ममुद्र पयत आपका सुयोग विख्यात हुआ और सम्पूर्ण सुन्दर कुलवाले ब्राह्मणों में उत्तम ब्राह्मण होने हुए भी भगवद्भक्ता के चरण रेणु की उपासना सेवा किया करते थे। श्री चन्द्रहास जी के बड़े भ्राता श्री नन्ददास जी अति सुहृद परम प्रेम रूपी जल में मोन के समान पगे रहते थे।"

रचनाएँ—

"दो सौ बावन बणवन की वार्ता के अनुसार इन्होंने श्रीमद्भागत की भाषा करने का विचार किया।^१ इसमें इनके सस्कृत के ज्ञान का पता चलता है। इनका काव्य अत्यन्त मधुर और कोमल है। इनके नाम से प्रचलित २८ ग्रन्थों का उल्लेख डा० दीनदयालुगुप्त ने अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय^३ में किया है। इन रचनाओं में रासपचाध्यायी रूप मजरी रस मजरी, अनेकाधमजरी, विरह मजरी, नाम मजरी अथवा नाममाला, दाम स्वध भागवन श्याम भगार्ई सुदामा चरित, गोवधन लीला, सिद्धान्त पचाध्यायी रुक्मिणी मंगल, भवरगीत को प्रामाणिक माना है।

कोमल कान्त पदावली—

फ्रान्सीसी विद्वान् गार्सा द तामी का कहना है कि नन्ददास ने जयदेव के गीत गोविंद के अनुकरण पर रचना की है।^४ इसका मतलब यह है कि नन्ददास की रचनाएँ श्रुतिमयूर, कामल और मनाहारिणी हैं। कामलकान्त पदावली इनके काव्य की विशेषता है।

सांघरे पिय-सग नित्तत चचल श्रज की बाला ।

जनु धन-मडल मज्जुल खलति दामिनि-माला ॥

छधिली तियन के पाछे, आछे बिलूलित बनो ।

चचल रूप-स्तन-सग डोलत जनु अलि-सनी ॥

^१ वही वार्तिक तिलक पृ० ७०३ ।

^२ लक्ष्मी वैकुण्ठेश्वर प्रेस सवन् १०८८ पृ० ८० ८१ ।

^३ प्रथम मस्वरण पृ० ३२५ ।

^४ उमाङ्कर गुक्ल नन्ददास (प्रथम भाग) प्रथम सस्वरण, भूमिका पृ० १११ ।

नोहन पिय की मल्लकनि, ढलकनि मोर मुकुट की ।
सदा बसहु मन मेरे, फहरनि पियरे पट की ॥^१

नंददास की गोपियाँ तथा भ्रमरगीत—

नंददास के काव्य से उनके शास्त्रीय ज्ञान का पता चलता है। 'भ्रमरगीत' की गोपिकाएँ 'सूरदास' की गोपियो जैसी सरल और बात-बात पर अश्रु-मिक्त हो जाने वाली नहीं हैं बल्कि उद्धव की बातों का जवाब देने में वे तर्क का सहारा लेती हैं। फिर भी उनके लिये तर्क और सूया ज्ञान प्रधान नहीं हैं, भक्तिभावना और प्रेमाधिक्य ही प्रधान है।

कोऊ कहै, रे मधुप कहा तू रस को जानै ।
बहुत कुसुम पै वैठि सबै आपन सम मानै ॥
आपन सम हमको कियो, चाहत है मतिमंद ।
दुविध ज्ञान उपजाय कै, दुवित प्रेम आनद ॥
कपट के छंद सो ॥^२

नंददास के इस प्रेम में रूप की परमासक्ति है। कृष्ण की रूप मावुरी से वे आत्मविभोर हो उठते हैं।

कोटि काम-लावन्य-धाम, अंग सांवरे पिय के ।
जे जे जाकी दृष्टि परे, ते भये तितही के ॥
कोउ जो अलक छवि उरझे, अजहूँ नाहिँ न सुरझे ।
ललित लटपटी पगिया, तकि तकि तहँ तहँ मुरझे ॥^३

कृष्ण के भेजे हुए सन्देश, उद्धव के ज्ञान की बातें गोपियो के लिये कोई अर्थ नहीं रखती। कृष्ण के सन्देश में वे कृष्ण का रूप मात्र देखती, सदेश का मर्म नहीं समझती। उद्धव कृष्ण के भेजे हुए हैं, सन्देश उनके हैं बस इतना ही वे जानती हैं। और कृष्ण से सम्बन्धित ये दोनों हैं इसलिये कृष्ण का स्मरण उन्हें ही आता है। वे आनन्द से पुलकित हो उठती हैं, वेसुध होकर गिर पडती हैं। उस रूप को देखने के बाद उन्हें और कुछ देखने या समझने को नहीं रह जाता।

^१ ब्रजमाधुरी सार (अष्टम सस्करण), पृ० ५५ ।

^२ ब्रजमाधुरी सार (अष्टम सस्करण), पृ० ५९ ।

^३ उमाशंकर शुक्ल, नंददास (प्रथम भाग) प्रथम सस्करण, पृ० १४९ ।

सुनि मोहन सदेस, रूप सुमिरन ह्वै आयी ।
 पुलकित आनन अलक, अग आवेस जनायी ॥
 बिह्वल ह्वै धरनी परी, अजबनिता मुरझाइ ।
 द जल छोट प्रबोधहाँ, ऊयी बात बनाइ ॥
 सुनौ अजबासिनी ॥^१

विरह की विशेषता—

विरह के कई प्रकार नददास ने बतलाए हैं लेकिन सब कुछ कहने पर भी, सब तरह की चेष्टा करने पर भी वह विरह समझ में नहीं आता ।

निपट अटपटी, छटपटी, अज कौ प्रेम वियोग ।
 अजहूँ नहिँ सुरसो जहाँ उरसो बड़े बड़े लोग ॥^२

वह प्रेम और विरहावस्था कुछ ऐसी है कि वियाग में सभी इन्द्रियाँ प्रियतम कृष्ण के साथ चली जाती हैं और शरीर में 'थाड़ा सा प्राण' रह जाता है और वह भी इसलिये कि प्रियतम के फिर से आने की आशा है ।

मन, बँन, अयन, सब, जाइ रह पिय पास ।
 तमक प्राण घट रहत न, फिरि आवन की आस ॥^३

उस विरह मिलन का मम सभी नहीं समझ सकते । यह भक्त हृदय ही अनुभव करता है और उसे समझ सकता है ।

परम दुसह श्रीकृष्ण विरह-दुख व्याप्यो जिन में ।
 कोटि बरस लगि नरक भोग-अघ भुगतो छिन में ॥
 पुनि रचक घरि ध्यान पियहिँ परिरम वियोजब ।
 कोटि-स्वग-सुख भुगति, छीन कीने मगल सब ॥^४

सयोग शृंगार का वर्णन—

नददास न सयोग शृंगार के सुन्दर वर्णन किए हैं । सयोग पक्ष के सुन्दर चित्रों से उनका काव्य भरा पटा है ।

^१ वही, प० १२४ ।

^२ उमागकर गुल नददास (प्रथम भाग) प्रथम सस्वरण, प० ३० ।

^३ वही, प० २९ ।

^४ वही, प० १६१ ।

आज आये मेरे घाम श्याम साईं नागर नंद किशोर ।
 चंदा रे तू थिर हूँ रहियो होन न पावे भोर ॥
 दादुर चकोर पपैया बोले और बोले बन के सब मोर ।
 नंददास प्रभु वे जिन बोले वारो तमचर चोर ॥^१

अथवा लज्जा के कारण प्रियतम का देखना संभव नहीं हुआ । अपनी ओर से उसने कोई कसर नहीं रखी । पूरी चेष्टा की लेकिन लाज, को क्या करें !

जर जाओरी आज मेरे ऐसी कौन काज आवे
 कमल नयन नीके देखन न दीनें ।
 बन तें आवत मारग में भेंट भई
 सकुच रही इन लोगन के लीनें ॥
 कोटि यतन कर रही री निहारवे कूं
 अंचरा के ओट दे दे कोटि श्रम कीनें ।
 नंददास प्रभु-प्यारी ता दिनु तें मेरे नयना
 उनहीं के अंग अंग रस भीनें ॥^२

नंददास का काव्य परिमाण और महत्त्व की दृष्टि से अष्टछाप के भक्त-कवियों के काव्य में सूरदास और परमानंददास के बाद ही आता है ।

जीवन-वृत्त—

नंददास का जन्म स० १५९० के लगभग हुआ था तथा मृत्यु स० १६४० के लगभग हुई । इनका जीवन-वृत्त बहुत कम मालूम है वैसे 'वार्ता' से पता चलता है कि वे एक खत्री के स्त्री पर आसक्त थे और श्री विट्ठलनाथ जी की कृपा से उनका मोह छूटा और वे भगवान् की भक्ति में लग गए । संप्रदाय में प्रचलित धारणा के अनुसार नंददास दीक्षित होने के बाद कुछ समय तक गोकुल, गोवर्द्धन रहकर फिर गृहस्थाश्रम में चले गए थे बाद में विरक्त भाव से लौटकर गोवर्द्धन में रहने लगे ।

कहते हैं कि सूरदास के सत्सग से उनका विद्याभिमान तथा अहंकार दूर हुआ और भगवान् के प्रति भक्ति प्राप्त हुई । अहंकार दूर होने से उनमें दैन्य भाव आया । 'अष्टछाप' में इनका एक महत्त्व का स्थान है ।

^१ उमागकर शुक्ल, नन्ददास (प्रथमभाग) प्रथम संस्करण (परिशिष्ट ३) पृ० ४२१ ।

^२ नंददास (द्वितीय भाग) संपादक उमागकर शुक्ल, परिशिष्ट पृ० ४१५ ।

पूर्वानुराग के पद—

उनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं जिनसे इनकी सरसता, इनकी वाच्य-कुशलता का पता चलता है। नन्ददास ने 'पूर्वानुराग तथा राधाकृष्ण विवाह' का वणन नीचे लिखे पद में किया है

कृष्ण नाम जब तें सवन सुयोरी आली,
भूली री भवन हों तो बावरी भई री ।
भरि भरि आव नन, चितरू न परे चन,
मुखरू न आवे यन, तन को बसा कुछ और भई री ।
जेतक नेम घरम किए री म यहू विधि,
अग अग भइ हों तो सवन मई री ।
'नन्ददास' जाके नाम सुगत ऐसी गति,
माधुरी मूरति ह धों कसौ बई री ॥^१

एक दूसरे पद में भी इस पूर्वानुराग का एक चित्र है
चचल, ल घली री चित घोर ।
मोहन को मन धों बस कीतो ज्यों चकइ सग डोर ॥
जो ली नहि देखत तब मूरति तो ली पलवन लागत और ।
नन्ददास प्रभु प्रेम मगन भये नागर नद किनोर ॥^२

छोत स्वामी—

जीवन वृत्त—

अष्टछाप के भक्त-श्रवियों में छोत स्वामी का जीवन-परिचय बहुत कम मिलता है। 'दो सौ बावन यणवन की वाता तथा नागरीदास कृत पद-प्रमगमाला' से इनका थोड़ा-बहुत परिचय मिल जाता है।

इनका जन्म अनुमानत सन् १५७२ में मधुरा में हुआ था और मृत्यु सन् १६४२ ई० में हुई।^३ गास्वामी विटठलनाथ जी से इन्होंने दीक्षा ली थी और वही हैं कि उनकी मृत्यु की खबर मुनकर इन्हें इतना श्रष्ट हुआ कि इन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

^१ नन्ददास श्रियावन्दी (सापादक बजरत्नादास), पूर्वानुराग ५४ पृ० ३४४।

^२ नन्ददास प्रन्धावन्दी राग विभास ५७, पृ० ३४५।

^३ कल्याणनि गान्धी, अष्टछाप (बाकरीगे) भूमिका भाग, पृ० १४।

तानसेन भी उनका गाना सुनने आया करते थे तथा इनने शिक्षा ली थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण में आने के पहले ही वे उनके लिए परिचित हो गए थे।

दीक्षा तथा जन्म और मृत्यु की तिथियाँ—

सं० १५९२ में वे पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित हो गए।^१ कण्ठमणि शास्त्री के अनुसार उनका जन्म अनुमानत. सं० १५६२ में हुआ और मृत्यु सं० १६४२ में हुई।^२ कहते हैं कि गोस्वामी विट्ठलनाथ के देहावसान पर गोविन्ददास गोवर्धन की कदरा में प्रवेश कर अतर्वात हो गए।^३

जीवन-वृत्त—

वार्ता में उनकी लडकी का उल्लेख है। उसका मतलब यह है कि वे विवाहित थे। गोविन्द स्वामी सनाह्य ब्राह्मण थे। अष्टछाप (काकरौली) में इनके बारे में प्रथम ही कहा गया है कि “श्री गुमाई जी के सेवक गोविन्द स्वामी सनोडिया ब्राह्मण, महावन में रहने जिनकी वार्ता।” ये भरतपुर राज्य के आंतरी ग्राम के थे। इनके साथ इनकी बहन ‘कान्हवाई’ रहती थी। वे भी गोस्वामी विट्ठलनाथ की शिष्या थी।

ये बड़े ही विनोदी प्रकृति के थे। आंतरी में वे भी सेवक बनाया करते थे और गोविन्द स्वामी के नाम से सुपरिचित थे। जब वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए तब गोवर्धन जाकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद आंतरी से कुछ लोग इन्हें खोजते हुए आए। ये यशोदा घाट पर बैठे हुए थे। लोगो ने उन्हें पहचाना नहीं और उन्हीं में उनका पता पूछा। “तब गोविन्ददास ने कही जो—ये तो मुए बोहोत दिन भए”। जब वे लोग उनके घर पहुँचे तो उनकी बहन कान्हवाई ने कहा कि गोविन्द दास वहाँ आ रहे हैं। उन लोगो ने कहा कि ‘स्वामी, तुमने ऐसा क्यों कहा कि वे (गोविन्द स्वामी) मर गए।’ उन्हीने बतलाया कि ‘स्वामी’ तो मर गए अब वे ‘दास’ हैं। यमुना जी को ‘स्वामिनी जी’ मानकर वे पैर नहीं डालते। किनारे पर ही लौटते और ‘अँजुली भरि के जल ले लेते।’

^१ अष्टछाप (काकरौली, द्वितीय संस्करण) भूमिका भाग पृ० १५ पर उद्धृत।

^२ वही, पृ० १५-१६।

^३ वही, पृ० १६।

रचनाएँ—

गोविन्द स्वामी की भक्ति सम्बन्धी और मधुर दोना प्रकार की थी। वाता में श्री नाथ जी के साथ उनके खलने और झगडने के कई प्रसंग आए हैं। उन्होने फुटकल पदा की रचना की है। अभी तब ६०० पदा का पता चल पाया है। इनके काव्य में राधा-कृष्ण की लीला का मधुर वर्णन है। बाल-लीला के पद भी उन्होने रचे हैं।

बाल-लीला—

(रामकली)

हों बलि बलि जाउ क्लेषा लाल कीजे।

खीर खाड घृत अति मीठो ह, अब कौ कौर बच्छ लीजे।

बेनी बडे सुनो मनमोहन, मेरो कह्यो जु पतीज।

औंटयो दूध सम्ब धौरी कौ, सात घूट भरि पीज ॥

बारनें जाऊँ कमल मुख ऊपर, अचरा प्रेम जल भीज ॥

✓ धौहीरयो जाइ खेली जमुना तट, "गोविन्द" सग कर लीज^१।

इस प्रकार से बाल चरित्र और माता की ममता के चित्र उनके पदों में मिलते हैं।

(गौरी)

कदम चढ़ काह बुलायत गया।

मोहन मुरली कौ गबद सुनत ही जहां तहां त उठि धमा ॥

आबो, आबो सखा सिमिटि सब पाई ह एक ठया।

"गोविन्द" प्रभु बल दाऊ सों कहन लाग अब घर कौ बगदया^२ ॥

बालका का दल लेकर कृष्ण ग्वालिन्या के घर जाकर दूध दही चोरी कर लेते हैं। ग्वालिनें यशोदा से निवारण करती हैं।

(सारंग)

अब हों या डोटा सा हारी।

गोरस लेत अटक जब कीनी तबहो देत फिरि गारी ॥

^१ गोविन्द स्वामी (साहित्यिक विश्लेषण, वार्ता और पद-संग्रह) पद संख्या २३४।

^२ वही ३६५।

निसि दिन घर घर फेरो करत हँ बालक जूय मंझारी ।
 'गोविन्द' प्रभु हम कहति पियारी ए बातें कैसे जात सहारी ॥^१

मधुर रस के पद—

मधुर रस की धारा भी गोविन्द स्वामी ने जूब बहाई है । कृष्ण के रूप उनकी नानाविध लीला, उनके प्रति भक्त हृदय की आसक्ति सबका मुन्दर वर्णन उनके काव्य में मिलता है । कृष्ण का वह मुन्दर मधुर रूप एक क्षण भी नहीं भूलता । ससार के सभी सबब जैसे तुच्छ हो जाते हैं जब वांसुरी की आवाज सुनाई पडती है ।

(फेदारो)

अब कहा करों मेरी आली री अँखियन लागई रहत ।
 निसु दिन फिरत रूप रस माती आवे नहीं गृह काज करत ॥
 जदपि मात पिता पति सुख देखत तो हू न धोरज धरों मोहत बेन सुनत ।
 'गोविन्द' प्रभु' कों हों जो लो न देखी आली तौलो छिन-छिन कैसे मेरे-
 प्रान रहत ॥^२

भक्त कवि को स्वर्ग की कामना नहीं है, क्योंकि वहाँ न कुज-लता है, न चसी की आवाज है और न जहाँ सारस, हंस और मोर ही बोलते हैं । ब्रज की शोभा वहाँ कहाँ ? गोपी, नद तथा माता यशोदा तो वृन्दावन में ही हैं उन्हें छोड़कर स्वर्ग में पाने लायक और है ही क्या ?

(गौरी)

कहा करों बैकुंठे जाइ ।
 जहाँ नहीं बंसीवट जमुना गिरि गोवर्धन नंद की गाँइ ।
 जहाँ नहीं ए कुजलता द्रुम मंद सुगध बाजत नहिँ वाइ ।
 कोकिल मोर हंस नहिँ कूजत ताको बसिवो काहिँ सुहाइ ।
 जहाँ नहीं बंसी घुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाइ ।
 प्रेम पुलक रोमाचय उपजत मन क्रम वच आवत नहिँ दाइ ।
 जहाँ नहीं ए भुव वृन्दावन बाबा नंद जसोमति माइ ।
 'गोविन्द' प्रभु तजि नंद सुख को ब्रज तजि वहाँ बसत बलाइ ॥^३

^१ गोविन्द स्वामी (साहित्यिक विश्लेषण, वार्ता और पद-संग्रह) पद सख्या ४६ ।

^२ वही, ४५३ ।

^३ वही, पद सख्या ५७४ ।

उस प्रियतम कृष्ण का पाने का एकमात्र साधन प्रेम है। प्रेम के द्वारा ही उसे पाया जा सकता है। रूप, गुण, शील, चातुरी, विद्या, बुद्धि, सद्भाव आदि व्यर्थ हैं अगर हृदय प्रेम से सिकता न हो। उन सभी के द्वारा उसे पाने की आशा दुराशा मात्र है।

प्रीतम प्रीत ही ते पये ।

जदपि रूप गुन शील सुधरता इन बातनिन रिखये ।

सतकुल जनम, करम सुभ, लच्छन वेद पुरान पठये ।

‘गोविन्द’ प्रभु बिना स्नेह सुबाली रसना कहा नचये ॥^१

चतुर्भुज दास—

संप्रदाय में विशिष्ट स्थान—

चतुर्भुज दास कुमनदास के सात पुत्रों में सबसे छोटे थे। पिता-पुत्र दोनों ही अष्टछाप में अन्तर्भुक्त थे इसी से पता चल जाता है कि चतुर्भुज दास का कितना महत्व था। बचपन से ही उन्होंने पिता से भगवान् की भक्ति पाई थी और ‘पुष्टिभाग’ के रहस्य को समझा था। पिता की नाई वे भी श्रीनाथ जी के अनन्य भक्त थे। कुमनदास अपने बड़े पुत्र हाना ही बतलाते थे। चतुर्भुज दास को एक पूरा इसलिये कहते थे कि वे भजन-बीतन भी करते थे और श्रीनाथ जी की सेवा में भी लगे रहते थे और आधा इनमें बड़े कृष्णदास थे जो श्रीनाथ जी की गायों की निगरानी करते थे। इन्हीं सब कारणों से कम उम्र में ही वे संप्रदाय में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सके। ये गौरवा क्षत्रिय थे। इनका जन्म जमुनावती में हुआ था।

जीवन-वृत्त—

‘वार्ता’ आदि से इनके जीवन-वृत्त पर बहुत प्रकाश नहीं पड़ता जैसे इनके चमत्कार की कहानियाँ उनमें दी हुई हैं। संप्रदाय-वन्दन के आधार पर बठमणि नाथजी इनका जन्म स० १५९७ में मानते हैं^२ लेकिन प्रभुदयाल मिश्र स० १५८७ मानने के पक्ष में है।^३ इनका मृत्यु सन् १६४२ में गोस्वामी विद्वत् नाथ जी के गोशोक वाग के अनन्तर हुई। गोस्वामी जी

^१ गोविन्द स्वामी (साहित्यिक विन्लेखन यार्ता और पद-संग्रह), पद मन्था ३४३।

^२ अष्टछाप (बाकरीली द्वितीय सम्परण), भूमिका भाग, पृ० १०।

^३ अष्टछाप-परिचय, (द्वितीय सम्परण), पृ० २७२।

की मृत्यु का समाचार उनके लिये अनह्व था। यह समाचार पाकर इन्होंने भी गोस्वामी जी की स्तुति के पद गाते हुए शरीर त्याग किया।

रचनाएँ—

चतुर्भुज दास का कोई ग्रंथ नहीं मिलता। संभवतः उन्होंने किसी ग्रंथ की रचना नहीं की थी, फुटकल पद ही लिखे थे। इनके पद मरस तथा भक्ति-भाव से पूर्ण हैं। काव्य-सौष्ठव इनके पदों में हैं। बाल-लीला, वियोग और सयोग शृंगार के उनके पद अत्यंत ही सुन्दर और ललित हैं।

बाल-लीला—

बाल-कृष्ण का माता यशोदा के प्रति नाना प्रकार के अभियोग हैं। वे न उन्हें गो-दोहन सिखाती हैं और न 'धीरी' गाय का 'औटा' हुआ दूध कटोरा भर पिलाती हैं। और माता यशोदा का सबसे बड़ा अपराध यह है कि उन्हें उनके व्याह की चिन्ता ही नहीं है। अगर चिन्ता होती तो निश्चिन्त सोतीं कैसे ?

भैया मोहि माखन मिश्री भावें ।

मोठी दधि मधु-घृत अपने कर, क्यों नहीं मोहि खवावें ।

फनक दोहिनी दँकर मोको, गो-दोहन क्यों न सिखावें ।

औट्यो दूध घेनु धीरी कौ, भरिकटोरा क्यों न प्यावें ।

अजहूँ व्याह करत नहीं मेरी, होय निसंक नीदं क्यों आवें ॥

'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर की बतियां, लँ उछंग पय-मान करावें ॥^१

बाल-स्वभाव का चित्रण कितना सुन्दर है। चतुर्भुजदास 'श्रीनाथ जी' के खेल के सगी है। उनके साथ खेलते हैं, उनसे झगड़ते हैं, उन्हें 'गिरिधर' की सब बातों का पता है 'चुटिया' की लम्बाई को लेकर सुबल से जो उनका विवाद हुआ था उसका पता क्या चतुर्भुज दास को नहीं है।

चुटिया तेरी बडी कियो मेरी ।

अहो सुबल वैठहु भैयाहो, हम तुम मापे इक बेरी ॥

लँ तिनका मापत उनकी कछु, अपनी करत बडेरी ॥

लेकर कमल दिखावत ग्वालन, ऐसी काहू न केरी ॥

मोकी भैया दूध पियावत, तातें होत घनेरी ।

'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर इहि आनंद, नाचत दँ दँ फेरी ॥^२

^१ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण), पृ० २७८ ।

^२ वही, पृ० २७९ ।

ग्वालिनें कृष्ण के उत्पात में लग आ गई है। दूध-ही-मकन चारी कर के खाते हैं, जरा भी भय नहीं करते। माता यशोदा ने एक ग्वालिन परियाद करती है

जसोदा कहा कहों हों यात ।
तुम्हरे मुत क करतब मों प, बहत कह नाहि जात ।
भाजन फोरि, दोरि सब गोरस, ल माखन दधि खात ॥
जो बरिजो तो आलि दिखाय, रचहें नाहि सकात ।
और अटपटी कब सों बरनो छुवत पानि सा गात ।
दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हों कहत-कहत सकुचात ।^१

माता यशोदा क्या कहें ? गाँव की ग्वालिनें ही ऐसी हैं। कृष्ण जस निपट बालक को चारी लगाती हैं। वह तो दूग्धरे के घर जान नहीं फिर मकन चुराकर खायेंगे कमे ?

ग्वालिनि तोहि कहत क्यों आयो ।
मेरी कान्ह निपट बालक, क्या चोरि माखन लायो ॥
× × × ×
'चतुर्भुज' लाल गिरिधर सों झूठी कहति बनायो ।
मेरी स्याम सकुच को लरिका, पर घर कबहु न जायो ॥^२

रूपासक्ति और सयोग-वर्णन—

भगवान् कृष्ण का सुन्दर रूप उनकी माहिनी छवि, उनकी बाँधी निखन ने कुछ ऐसा जादू कर दिया है कि मकन कवि का हृदय बेमुय सा बना रहता है। आँसों की ऐसी आदत है। गई है कि उन्हें बिना दमे कुछ नहीं सुहाना। उनका धन भर का वियाग एक युग क वियाग जसा लगता है।

मननि ऐसी यानि परी ।
बिन इस गिरिधरन लाल मुख, जुग भरि गान धरी ॥
भारग जान उत्तटि निन चिन्तयो, मोतन दृष्टि भरी ।
तबही तें लागो हू एकदक, निमित्त मरबाद टरी ।
'चतुर्भुजदास' छुड़ावन सों हृदि, म विधि धरन करी ।
त मवगुजरि सों हरि कीनों, बेट-दिगा दिगरी ॥^३

^१ रसिकगणर गुकल अभिनयन पद्य, पृ० १८ ।

^२ अष्टछाप परिचय (द्वितीय गण्डक) पृ० २७१ ।

^३ वही, पृ० २८१ ।

अथवा

तब तैं और कछू न सुहाय ।
 सुंदर स्याम जबाहि तैं देखैं, खरिक दुहावत गाय ॥
 आवति हुती चली मारग सखि, हौं अपने सत भाय ।
 मदन गोपाल देखि कैं इकटक, रही ठगी मुरझाय ॥
 बिसरी लोक-लाज, गृह कारज, बंधु-पिता अरु माय ।
 'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिवर- घर, तन-मन लियौ चुराय ॥^१

प्रेम की नानाविध चेष्टाओं, नाना मनोदशाओं का वर्णन 'चतुर्भुज दास' के काव्य में मिलता है ।

स्याम ! सुन नियरो आयीं मेहु ।
 भोजैंगी मेरी सुरंग चूनरी, ओढ पीत पट देहु ।
 दामिनी तैं डरपति हौं मोहन ! निकट आंपुनी देहु ।
 'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिवर सो, बाढ़यौ अधिक सनेह ॥^२

अथवा

ऐसेहि मोहू क्यो न सिखावहु ।
 जैसे मधुर-मधुर कल मोहन, तुम मुरलिकावजावहु ॥^३

चतुर्भुज दास की भक्ति अपूर्व थी । उनके काव्य में एक तन्मयता पाई जाती है । उनके काव्य से लगता है जैसे उन्होंने संस्कृत आदि की शिक्षा पाई थी ।

दामोदर दास हरसानी

वल्लभ सम्प्रदाय में इनका स्थान—

दामोदर दास हरसानी का स्थान वल्लभ संप्रदाय में बहुत ही महत्व का है । "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में सबसे पहला स्थान इन्हीं को दिया गया है । ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे और वल्लभ-संप्रदाय के रहस्य से पूर्ण परिचित थे । स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्हें पुष्टि मार्ग के सिद्धान्त और भगवत-लीला-रहस्य से परिचित कराया था ।^४ ये वल्लभाचार्य

^१ अष्टछाप-परिचय, रूपासक्ति ५४, पृ० २८७ ।

^२ वही, प्रेमासक्ति ६२, पृ० २८९ ।

^३ वही, प्रेमासक्ति ६३, पृ० २८९ ।

^४ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, सं० १९८५) पृ० ३ ।

के प्रथम और मुख्य शिष्य थे। स० १५४७ में ये महाप्रभु वल्लभाचार्य व
गिष्य हुए।^१ ये महाप्रभु के अत्यंत प्रिय गिष्य थे। महाप्रभु इन्हें 'दमला कहा
करते थे और श्री ठाकुर जी से यही प्रार्थना करते 'जो मरे आगे दामोदर दास
की देह न छूटे।'^२

जीवन-वृत्त—

इनका जन्म स० १५३० के माघ वदी ४ का श्रीरंगपट्टन में हुआ था।^३
व जाति के क्षत्रिय थे। इनके और तीन भाइयें थे। इनके पिता का नाम
वीरदास और इनकी माता का नाम यशादा था। ये आजीवन नष्टिक ब्रह्मचारी
रहे थे। कहते हैं कि इनके पिता वाणिज्य के सिन्धिले में श्रीरंगपट्टन छोड़कर
(वदनगर) गया था वसे थे। वार्ता में इनके जीवन वृत्त व सवध में बहुत कुछ
नहीं मिलता। श्री द्वारकादास पारीस ने 'ब्रजभाषा के कुछ अप्रसिद्ध मुकवि'
शीष्य स ब्रजभारती (आपाड, भाद्र, २००५ वि०) में इनके जीवन पर प्रकाश
डाला है।

गोस्वामी विठ्ठल नाथ और दामोदर दास—

कहते हैं कि जब श्री वृष्णदाम अधिकारी ने गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी
का श्रीनाथ जी के मंदिर में आना बंद कर दिया था तब चंद्र सरावर पर छ
मास तक उनसेसाथ उड़ाने सत्संग किया था। 'वार्ता के अनुसार गोस्वामी
विठ्ठलनाथ जी को सम्प्रदाय के रहस्य सिद्धान्त में परिचित करानेवाक^४
दामोदर दास हरसानी ही थे।

उनके कुछ पद—

इनकी रचनाओं तथा काव्य के सवध वार्ता में कुछ नहीं कहा गया है।
जो कुछ पद इनके मिलते हैं उनमें इनकी रचना भापुरी का परिषय प्राप्त है।
इन्होंने अपने पिता वीरदास के नाम से भी कई सुन्दर पद रचे हैं।
इनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

^१ ब्रज भारती (आपाड भाद्र, २००५ वि० स०, २ वष ६) पृ० ८।

^२ श्रीरंगो वृष्णवन की वार्ता, पृ० २३।

^३ ब्रज भारती (आपाड भाद्र २००५ वि०) पृ० ८।

^४ श्रीरंगो वृष्णवन की वार्ता पृ० ६।

- (१) श्री नाथ जी को ध्यान मेरे निसिदिना री माई ।
 मोहिनी मूरति सोहिनी सूरत चित नियो है चुराई ॥
 लाल पाग लटकि भाल, चिबुर वेसर कंठमाल,
 करन फूल मदहास जोवन मुखकारो ॥
 मोर पोंछ सीस धरै मोतिन के हार गरै,
 बाजूबन्द पहोंची कर मुद्रिका सुहाई ॥
 छुद्र घंटिका जेहरि पग नूपुर विछिया सुरेस,
 अंग अंग देखि उर आनन्द न समाई ॥
 मुरलिका अघर धरे श्याम ठाढ़े ब्रजयुवती,
 मांह मप्त सुरन तीन ग्राम गोधर्मेन राई ॥
 निरख रूप अति अनूप छाके मुरनर विमान
 वल्लभ-पद किकर 'दामोदर' बलि जाई ॥

- (२) नमो नमो श्री भागवत पुरान ।
 महा तिमिर अज्ञान बद्धयो जब प्रकट भये जग अद्भुत भान ।
 जगे जीव निसि सोम अविद्या भयो प्रकास विमल विज्ञान ।
 फूले अम्बुज श्रोता वक्ता मतिकर मंद मदन अभिमान ।
 छूटे कठिन करम बंधन के मिट्यो मोह सूझ्यो सब ज्ञान ।
 'दामोदर' सुर नर मुनि गावत जय जय जय जय कृपानिधान ॥

(३) छप्पय—

कामधेनु की कहा, कहा कल्पद्रुम कीजै ।
 अष्टसिद्धि नवनिद्धि वारि, न्योछावरि दीजै ।
 श्रीकृष्ण भजन निर्माल दान दाता जग विदूठल ॥
 श्रीवल्लभ कुल अवतार नाम जाकी श्री विदूठल ॥
 घर घरनि कहो 'विरदास' मुनि, समुक्षि समुक्षि चित लाइये ।
 द्विजवर नरेन्द्र गिरिवर धरन, श्रीविदूठलेग पै जाइये ॥

रसखानि

जीवन वृत्त—

'रसखानि' हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के लिये अत्यंत सुपरिचित है । रसखानि नामक दो कवि हो गए हैं लेकिन सुप्रसिद्ध रसखानि जो गोसाईं विठ्ठलनाथ जी के कृपापात्र थे वे सुजान रसखान है । दूसरे रसखान,

सैयद इब्राहीम पिहानी वाले थे। रसखान गोसाइ विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। इनके गिप्य होने की बात "दो सौ बावन वण्णवन की वार्ता" में वर्णित है। 'वार्ता' के अनुसार ये एक वनिये के लहके पर आसक्त थे। एक दिन दो वण्णवो की बात सुनकर कि अगर भगवान पर उनकी इतनी आसक्ति होती तो इसका उद्धार हा जाता। इसके बाद ही वे वन्दावन पहुँचे और गोसाइ विट्ठलनाथ जी के गिप्य हो गए।^१ लेकिन मुजान रसखान^२ में वर्णित इनके जीवन चरित्र के अनुसार इनकी प्रेमिका ने व्यग किया था इसी लिये ये वन्दावन आए। 'मुजान रसखान' में एक दूसरी कहानी भी दी हुई है कि कही श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी वही पर इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति देखी और उस पर मुग्ध होकर ये वन्दावन चले आये।^३

जन्मतिथि, वंश-परिचय—

इनके जन्म-काल को लेकर बहुत मतभेद है। वियागी हरि जी इनका जन्म सन् १६१५ के लगभग मानते हैं।^४ 'प्रेम वाटिका' में एक दोहा आया है जिससे उनके जन्म सन् का लोग कुछ अनुमान लगाते हैं।

बिष्णु सागर रस इन्दु सुभ घरस सरस रसखानि ।

प्रमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरगा बावनि ॥^५

इस दोहे के आधार पर प्रमवाटिका का रचना काल सन् १६७१ होता है। किंगोरीलाल गोस्वामी के अनुसार इसी के २५ वष पूर्व इनका जन्म मान लिया जा सकता है।^६ प्रेमवाटिका के दूसरे दोहे से यह पात होता है कि ये दिल्ली के पठान थे और चाल्गाह वंश के थे।

देखि गदर हित साहियो, दिल्ली नगर मसान ।

छिनाहि बावसा-बस की ठसक छाँड़ि रसखान ॥

रचनाएँ—

इन्होंने कितने ग्रंथ लिखे इनका ठीक पता नहीं चलता। इनके दो ग्रंथ 'मुजान रसखान और प्रेम वाटिका' अभी तक प्रकाश में आए हैं। लाल

^१ दो सौ बावन वण्णवन की वार्ता प० २०९ ३०३ ।

^२ मुजान रसखान संपादक किंगोरीलाल गोस्वामी, प० ९ १० ।

^३ वहाँ ।

^४ ब्रजमाधुरी सार, पृ० १४७ ।

^५ मुजान रसखान, पृ० ८ ।

^६ वही, पृ० ८ ।

भक्त राम द्वारा सगृहीत एक और ग्रथ है जिसका नाम 'राग-रत्नाकर' है। इनके कवित्त और सवैया में एक अपूर्व माधुरी है। उनसे एक ओर तो भक्ति से विह्वल इनके हृदय का पता चलता है तो दूसरी ओर इनकी काव्य शक्ति का।

पद—

उनके कुछ पद्य निम्नलिखित हैं।

एक समै मुरली धुनि मे रसखानि लियो कहूं नाम हमारो ।
 ता दिन तें परि वैरि बिसासिनी झांकन देत नहीं हूं दुवारो ।
 होत चावाव बचावो सु करोकर क्यो अलि भेंटिये प्रान पियारो
 दृष्टि परी तवहीं चटको अटको हियरे पियरे पटवारो ।^१
 कान्ह भये बस बांसुरी के अब कौन सखी हम को चहि है ।
 निस छाँस रहै संग साय लगी यह सौतन तापन क्यो सहिहै ॥
 जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखानि सदा हमको दहिहै ।
 मिलि आओ सब सखी भाग चल अब तो ब्रज में बांसुरी रहिहै ॥^२
 आजु सखी नंद नन्दन री तकि ठाढ़ो है कुंजनि की परछाहीं ।
 नैन बिसाल की जोहन को सर वेधि गयो हियरा जिय माहीं ॥
 घायल घूमि सुमार गिरी रसखानि सम्हारत अंगन नाहीं ।
 तापर वा मुसकानि की डौड़ी ब्रज में अबला कित जाही ॥^३
 हेरत बारहीं बार उतै तुव बावरो वात कहा धौ करंगी ।
 जो कबहूँ रसखानि लखै फिर क्यो हू न बीर री धीर धरंगी ॥
 मानि है काहू की कानि नहीं जब रूप ठगी हरि रग ढरंगी ।
 याते कहूँ सिख मानि भटू यह हेरनि तेरे ही पंड परेगी ॥^४
 आली पगे जु रंगे रंग साँवले मोहें न आवत लालची नैना ।
 धावत है उतही जित मोहन रोके रुकें नहि घूँघट ऐना ॥
 कानन कौ कल नाहि परै सखी प्रेम सो भोजे सुनै बिन बैना ।
 भई मधु की मखियाँ रसखानि न नेह को बन्वन क्यो हू छुटैना ॥^५

^१ सुजान-रसखान, सवैया ४ पृ० १४ ।

^२ वही, सवैया ७, पृ० १५ ।

^३ वही, सवैया ३७, पृ० २५ ।

^४ वही, सवैया ५९ पृ० ३१ ।

^५ वही, सवैया ७६, पृ० ३७ ।

मेरो सुभाव चित्तव भों भाइ री लाल निहारि क बसी बजाइ ।
 वा बिन तें मोहि लागी ठगौरी सी लोग कहू कोइ बावरी भाइ ॥
 मा रसखानि धिरयो सिंगरो ब्रज जानत वे कि मेरो जियराइ ॥
 जो कोउ चाह भलो अपनो तो सनेह न काहू सो कौजिये भाइ ^१
 काहू सों भाई कहा कहिये सहिये जु सोइ रसखानि सहाय ।
 नेम कहा जब प्रेम कियो तब नाचिये सोई जो नाच नचावै ॥
 चाहत ह हम और कहा सखि क्यों हू कहू पिय देखन जावै ।
 चेरिय सो ज गुणाल रच्यो तो चलोरी सब मिलि चेरी कहाय ॥^२

मन लीनों प्यारे चित्तै प छटांक नहि देत ।

यह कहा पाठी पढ़ी दल कौ पीछो लेत ॥^३

जेहि पाए बकुण्ठ अरु, हरिहूँ की नहि चाहि ।

सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥

इकअंगी, विनु पारनहि, इपरस सदा समान ।

मन प्रियहि सवस्व जो, सोइ प्रेम प्रमान ॥

लोक वेद-मरजाद सब, लाज बाज सदेह ।

देत बहाये प्रेम करि, विधि निषेध को नेह ॥^४

आस करन

भक्तमाल में वर्णित आमकरन जी का वृत्त—

आसकरन जी नरवरगढ़ के राजा थे । भक्तमाल के वातिवतिलक कार ने बतलाया है कि ये बूमवशी (कठवाह) शत्रिय थे और इनके पिता का नाम भीर्मासह जी था तथा ये स्वामी कील्लहदेव जी के शिष्य थे ।^५ लेकिन 'दो सी बावन बष्णवन की याता' के अनुसार ये गुसाईं विठ्ठलनाथ जी के शिष्य थे ।^६ द्वारकादास परीख ने इसका समाधान किया है । उनका कहना है कि यह संभव है कि वे पहले कील्लहदेव जी के शिष्य रहे हा पर बाद में वे वल्लभ

^१ मुजान रसखान सबया ७८ पृ० ३७ ।

^२ वही, सबया ०६ पृ० ४३-४४ ।

^३ वही दोहा ४६, पृ० २७ ।

^४ प्रेमवाटिका, दोहा २८, २१ ७ ।

^५ नाभा जी वृत्त भक्तमाल, पृ० ८८४ ।

^६ द्वितीय खंड, पृ० १९० ।

संप्रदाय में प्रविष्ट हो गए।^१ 'भक्तमाल' के अनुसार में श्रीगीतार्ति और श्रीरागावर दोनों के परमकर्मियों की नाश कर्माये गये थे।

इनके संबंध में नाभा जी ने लिखा है .

धर्मसी लगनसीय साधुभागीत शक्तिरिपि ।

पृथीराजकुलदीप भीमगुन विदित श्रीहर्मिप ॥

सदाचार अनि समुद, विगत बानी, रचना पद ।

सूर धीर उदार विरत भक्तपन भक्तानि हृद ॥

नीतापति राधासुवर, भजन तेम कर्म धर्यो ॥

(श्री) मोहन मिश्रित पद धमल 'आसकरन' जम विम्वर्यो ॥^२

जीवन-वृत्त और पद—

इनके सवध में बहुत-सहानियाँ प्रचलित हैं जिनमें पता चलता है कि वे संगीतज्ञ तथा समंज थे। इनकी भक्ति अपूर्व थी। इनके यहाँ मगीतों का सम्मान ग्य होना था। तानमेन इनके यहाँ इनकी ग्याति गुनकर गए थे और तानसेन की महायता से ही वे गोरव्यामी विद्वटनाथ जी के यहाँ पहुँचे और उनके शिष्य हुए। शिष्य होने के उपरान्त उन्होंने निम्नलिखित पद गाया था।

जै श्री विद्वटनाथ कृपाल ।

कलि के महापतित अधरामी अपने करिक किये निहाल ॥

पुरुषोत्तम निज कर ले दीने ऐमें दानी महा दयाल ।

'आसकरन' को अपना करिक पुष्टि प्रनेय वचन प्रतिपाल ॥^३

कहते हैं कि एक बार वादगाह नरवरगढ में आया और इन्हें बुला भेजा। उस समय ये पूजा में लगे हुए थे। अतएव किमी ने जाकर इन्हें खबर नहीं दी। कहते हैं कि क्रोध कर वादगाह इनके मंदिर में पहुँचा। उसने देखा कि आसकरन जी पूजा में निरत भगवान् को प्रणाम करने के

^१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (तृतीय खंड) विश्लेषणात्मक अध्ययन पृ० १६ ।

^२ नाभा जी कृत भक्तमाल, पृ० ८८४, तथा पृ० ८५५ ।

^३ भक्तमाल, छप्पय १७४, पृ० ८८३-८८४ ।

^४ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (द्वितीय खंड) पृ० १८९ ।

^५ वही, पृ० १९० ।

झुने हुए हैं। जानने के लिये उसने अपनी तलवार घीरे से चलाई। उससे आसकरन जी की ऐंड़ी थोड़ी सी बट गई लेकिन जस उन्हें कुछ पता नहीं चला। पूजा समाप्त होने पर उन्होंने बादशाह का दस्ता और आवभगत की।

एक बार श्री गुसाइ जी ने आसकरन जी को आज्ञा दी "जो आसकरन ! सेन सम पीढायवे के कीतन तुम करिया।" तब आसकरन जी ने निम्नलिखित कीतन गाया था।

तुम पीढो हों सेज बनाऊँ ।

चापो चरन र्हों पाटीतर मधुरे सु बेवारो गाऊँ ।

सहचरो चतुर सबे जुरि आई दपति सुय ननन दरसाऊ ।

'आसकरन' प्रभु माहन नागर यह सुख श्याम सदा हो पाऊ ॥^१

गदाधर दास द्विवेदी

रचनाएँ—

गदाधरदास द्विवेदी के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। उनके तीनों ग्रन्थों का पता चलता है

(१) सप्रदाय प्रदीपिका (२) हरिभजन मणि मजरी तथा (३) भगवतत्व दीपिका। वाद्यमुक्त के अन्त में गदाधर दास ने मक्षेप में अपना छोटा सा परिचय दिया है। उनकी पुस्तिका के आधार पर उनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

जीवन-वृत्त—

इनके पितामह का नाम प० लक्ष्मण द्विवेदी और पिता का नाम प० श्रीपति द्विवेदी था। इनके जन्म सवत् का ठीक ठीक पता नहीं चलता। ये रातीपुर शाहीय (साचीहर या सम्पीरा) ब्राह्मण थे। इनका निवास स्थान अर्जुनाचल से चालीस बास पर, एकलिंग त्रिवक्षेत्र से नश्चत्य बोण में अधोर गिरि' (?) के समीप था। यहाँ पर 'श्रीश्यामसुन्दर जी का मन्दिर था। यहीं पर गदाधर दास अपने परिवार के साथ रहते थे। उनका जीवन निर्वाह कथा वार्ता (पौराणिक कृति) से ही जाता था। कहते हैं कि यहीं पर उन्होंने 'भगवतत्व प्रदीपिका' की रचना की थी। इस ग्रन्थ की प्राजल लेखन शला के साथ तुलना करने पर

^१ दो सी वादन वणवन की वार्ता, प० २०३।

‘सप्रदाय-प्रदीप’ ग्रन्थकार की प्रथम कृति जैसी मान्य होती है। इसके बाद वाले ग्रंथों में उत्तरोत्तर सुचारुता के दर्शन होते हैं। इनके और अन्य संस्कृत ग्रंथ का पता अभी तक नहीं चला है।

गदाधर नाम के और अन्य भक्त—

गदाधर दास द्विवेदी के अलावा एक और गदाधर का उल्लेख मिलता है। दूसरे गदाधर महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। ये कपिल मारस्वत ब्राह्मण थे और ‘कडा’ ग्राम के निवासी थे। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में १३वीं वार्ता इन्हीं गदाधर की है। इनके कीर्तनों में ‘गदाधर मिश्र’ की छाप है जब कि गदाधर दाम द्विवेदी की रचनाओं में ‘गदाधर दाम’ की छाप है। गदाधर दास का जन्म संभवतः १५७०-८० के बीच है।^१

गदाधर दास द्विवेदी के विद्यागुरु राणा व्यास थे। राणा व्यास के ये सजातीय थे, राणा व्यास, महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे।^२ ‘वार्ता’ में इन्हें राणा व्यास साचीरा ब्राह्मण ‘गोधरा का वासी’ कहा गया है।

दीक्षा—

पुष्टि सप्रदाय की दीक्षा गदाधर दास द्विवेदी ने गोस्वामी विठ्ठलनाथ से ली थी। ये सप्रदाय के कट्टर अनुयायी थे। सप्रदाय में शुद्ध स्वरूप की रक्षा पर पूर्ण जोर देते थे। इनके कीर्तनों का सम्प्रदाय में बहुत समान है। सप्रदाय के प्रचान मदिरो में आज भी इनके कीर्तनों का उमी प्रकार समादर होता है। संभवतः गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी को ये स्वरचित कीर्तनों को गाकर सुनाया करते थे। अष्टछाप के प्रसिद्ध कीर्तनकारों की प्रतिद्वन्दिता में इनके कीर्तनों का समादर होना कुछ कम महत्व नहीं रखता।

इनके काव्य का वैशिष्ट्य—

ये संस्कृत और भाषा-साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। ये प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। पांडित्य के साथ ही साथ इन्होंने भक्त-हृदय भी पाया था। इनके पद अत्यन्त सरस हैं। इनकी वर्णन शैली बड़ी आकर्षक है। इनके काव्य में भाषा-सौष्ठव, भाव-लालित्य तथा अपेक्षित कोमल हार्दिक दृष्टि का सुंदर

^१ सप्रदाय प्रदीपालोक (काकरौली), पृ० ५।

^२ चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० १५६।

सयोग हुआ ह । लगता ह जैसे भाषा-साहित्य पर मस्कृत-साहित्य की अपेक्षा इनका अधिक अधिकार था ।

पद—

इनके निम्नलिखित पद में भगवान् के प्रति इनकी आत्मीयता अत्यन्त सरस ढंग से व्यक्त हुई है ।

सुन्दर श्याम सुजान गिरोमणि देहू कहा कहि गारो जू ।
 बड़े लोग के औगुन बरनत सकुच होत जिय भारी ॥१॥
 को करि सके पिता को निरणय, जाति पाति को जानें ।
 जिनके जिय जसी बनि आव तसी भाति बखानें ॥२॥
 माया कुटिल नटी तन चितयो कौन बडाई पाई ।
 उन बचल सब जगत वियोगो जह-तह भई हसाई ॥३॥
 तुम पुनि प्रगट होइ बारे तें कौन भलाई कौनी ।
 मुक्ति-बधु उत्तम जन लायक ह अधमन को दोनी ॥४॥
 बसि दस मास गभ माता के उन आशा करि जाये ।
 सो घर छांडि जीभ के लालच ह्व गये पूत पराये ॥५॥
 बार ही तो गोकुल गोपिन के सुने गृहत तुम डाटे ।
 ह्व निशक तह पठि रव लो दधि के भाजन चाटे ॥६॥
 आपु कहाय बड़े के डाटा गाल कृपन लें माँग्यो ।
 मान भग कर दूजे पाचक नक सकोच न लाग्यो ॥७॥
 सब कोइ कहत नद बावा के घर भरयो रतन अमोले ।
 गरे गुजा, सिर मोर-पखौआ गायन के सग डोले ॥८॥^१
 राज सभा को बठनहारो कौन त्रियन सग नाचे ।
 अप्रज सहित राजमारग में कुवजा देखत राचे ॥९॥
 अपनी सहोदरा आपुहि छल करि अर्जुन सग भजाई ।
 भोजन करि दासी सुत के घर जादौ जाति लजाई ॥१०॥
 ले ले भजे राजन को कया, यह घी कौन भलाई ।
 सत्यभामा जु गीत में ग्याहीं उलटी धाल चलाइ ॥११॥
 बहनि पिता की सास कहाई नेक हू लाज न आई ।
 एते पर दीनी जू विघाता अखिल लोक ठकुराइ ॥१२॥

^१ सम्प्रदाय प्रदीपालाक, पृ० १० ।

मोहन यशोकरन खट चेटक यंत्र मत्र मव ज्ञाने ।
 ताते भले भले करि जाने भले भले जग माने ॥१५॥
 वरनों कहा ययामति मेरी धेद हें पार न पायें ।
 दास गदाधर प्रभु की महिमा गायत ही उर आवें^१ ॥१६॥

इस पद की मरमना अपूर्व है । इस पर सुभद्रा इन्द्र गोस्वामी श्री ब्रजगय जी महाराज अहमदाबाद वाले ने गन्धर्व-टीका लिखी है जो अभी तक अप्रकाशित है ।

झूलन का भी उतना सुन्दर, नरम वर्णन गदाधर दास ने किया है ।
 झूलत नागरी नागर लाल ।
 मद-मंद मव सपनी झुलावत गावत गीत रनाल ॥१॥
 फरहरात पट नील पीत की अचल कंचल चाल ।
 मानों परस्पर उमगि न्यान छवि प्रकट भये तिहि काल ॥२॥
 अलसलान अति पिय के सोस पर लटकत येनी राल ।
 मानो मुकुट बरहा विरही भये बोली धाक बेहाल ॥३॥
 मोतिन-मालप्रिया के उर की पिय-तुलसी-दल-माल ।
 मानो सुरसरी मिली जमुना तट मानो बिहग मराल ॥३॥
 सावल गौर परस्पर अति छवि सोभा विसद विसाल ।
 निरखी 'गदाधर' कुंवर कुयरी छवि सालो भर्यो रस-जाल^२ ॥५॥

नागरी दास

जीवन-वृत्त—

नागरीदास कृष्णगढ़ के राजा थे । इनका असली नाम महाराज जसवत सिंह जी था । वे अनन्य भक्तों में हुए । वैसे तो "नागरीदास" नाम के और कई भक्त हुए हैं । वे वल्लभकुल के गोस्वामी रणछोड जी के शिष्य थे । बहुत दिनों तक राजकाज के झंझटों को लेकर उनका जीवन अशान्त बना रहा । पिता की मृत्यु के बाद दिल्ली के बादशाह ने इन्हें कृष्णगढ़ का राजा बनाया । दिल्ली से कृष्णगढ़ पहुँचने के पहले ही इनके भाई ने जोधपुर-नरेश की सहायता से राज्य पर अधिकार कर लिया । बादशाह ने इनकी सहायता की लेकिन ये असफल रहे । बाद में मरहटों की सहायता से उन्होंने

^१ सप्रदाय प्रदीपालोक, पृ० १० ।

^२ वही, पृ० ९ ।

राज्य पर अधिकार जमाया। लेकिन यह सब कुछ इनकी प्रकृति के विरुद्ध था। अन्त में राज्य का त्याग कर वन्दावन चले गए। इनके लिये उस राज्य का कोई मूल्य नहीं था। फिर भी राज्य का लोभ इन्हें न घर दबाये इसके लिये सचेष्ट रहते।

म अपने मन-मूढ़ तैं, डरत रहत हौं हाय।

वृन्दावन की ओर तैं, मति कयहू फिरि जाय।

इनकी गादी भावनगर के यशवत सिंह की कन्या से हुई थी। इनकी उपपत्नी बनीठनी जी इनके साथ ही वृन्दावन में रहती थी। और अन्त तक इनके साथ रहीं। वे काव्य रचना में कुशल थीं। उनकी कविताओं में रसिक विहारों की छाप है। कवि आनन्द धन इनके गृह में मित्र थे। इनका जन्म पौष कृष्ण १२ सवत १७५६ में हुआ था।^१

नागरीदास की भक्ति—

वन्दावन के प्रति इनकी बड़ी आसक्ति थी। "कुचविहारों के दशन बिना एक पल के लिये भी उन्हें चन नहीं मिलता। वृन्दावन में जब ये 'नागरी दाम होकर गए तो सन्तो ने कसा कृपा का इसका वणन उन्होंने स्वयं किया है। उनका व्यौहारिक नाम अधान कृष्णगड नरेश महाराजा सावत सिंह, मुनकर कोई नहीं आया।

मुनि व्यौहारिक नाम भों, ठाढ़े डूरि उदास।

दोरि मिले भरि नन मुनि, नाम "नागरी दास" ॥

नागरीदास की रचनाओं का दान्य भगवान् के प्रति उनकी धरम आसक्ति का परिचय सबत्र मिलता है। वृन्दावन जा रसिक विहारों और रसिक विहारिनों का श्रीढास्यल है वह उनके लिये सब कुछ है। स्वयं उनकी क्या समना कर सकता है ?

रचनाएँ—

कहते हैं कि नागरीदास रचित ७५ ग्रंथ हैं। उनमें कुछ के नाम यों हैं गापी प्रेम प्रनाग वृजसार भार-लीला प्रीनिरम-मजरी, जगुग रग माधुरी भजनानन्दायक विहार चन्द्रिका, दोहन-आनन्द, पाग विलास फूल विलास,

^१ ब्रजभापुरी सार (अष्टम संस्करण) पृ० १८३।

ग्रीष्म-विहार, इन्द्र चमन, मज्जिम-मदन, गगन के चञ्चित, रैन स्या रम्य^१ (कृष्णचन्द्र का विद्याम वर्गन), गगन रम लता^२ (कृष्णचन्द्र की गगनरीला विषयक ग्रंथ), भक्तिमग दीपिका, सुगुण भक्ति विनोद, बनजन-प्रसंगा आदि।

सूफी प्रभाव और अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग—

कविता में नागरीदास जी ने कई प्रकार से अपने नाम का उपयोग किया है। कहीं नागरीदास और कहीं नागरी। नागर और नागरिया का भी उन्होंने प्रयोग किया है। उनकी कितनी रचनाओं में सूफियों का प्रभाव परिलक्षित होना है। फारसी अरबी के शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है।

राधाकृष्ण-लीला—

राधाकृष्ण की लीला का स्मरण, उनकी भक्ति के द्वारा ही सब कुछ संभव हो सकता है। वेद, पुराण, गंगास्नान में कुछ नहीं होने का। राधा कृष्ण की अनन्य भक्ति को ही वे सब कुछ मानते हैं।

काहे कोरे नाना मत सुनै तू पुराननके,

तेही कहा तेरी मूट, गूढमति पंग को।

वेद के विवादिनि को पावेगी न पार करै,

छाँड़ि देहि आसा सब दान-न्हान गंग को ॥

और सिद्ध सोचे अब "नागर" न सिद्ध कछू,

मानि लेहि मेरी कही वारता मुदंग की।

नाहि ब्रज मोरे, कोरे मन की रंगाइ लै रे,

बृन्दावन-रैन रची गौर-स्याम-रंग को ॥^३

ब्रजभूमि से प्रेम—

ब्रज के लोगों ने उन्हें ठग लिया। यहाँ ठग ही ठग बनते हैं। यहाँ की भूमि, पेड़ लताएँ आदि सभी ठग हैं। यहाँ जाने पर लोगों के गले में प्रेम का फंदा लग जाता है जिससे यहाँ से दबकर जाना मुश्किल है। अतएव नागरीदास का कहना है कि कोई भूल कर भी यहाँ न आवे।

^१ हिन्दी मैनुस्क्रिप्ट्स (१९०१) पृ० ९४।

^२ वही, पृ० ९६।

^३ ब्रजमावुरी चार, (अष्टम संस्करण) पृ० १८९-९०।

ब्रज के लोग सब ठग भहा ।
 आप ठग, उग के उपासक, अधिक कहिए कहा ॥
 बनक-बीज सी बचन रचना देत तनिक घषाय ।
 बावरी ह्व रहत सो फिरि घाम तन विसराय ॥
 भूमि ठग, द्रुम, देस, ठग दूत, ठगे स्याम सुजान ।
 राखे सयानप सोइय इनके, और कौन समान ॥
 इहाँ आवत ही परत दड़ प्रेम, की गर-पास ।
 भूलि ह्या कौउ आइयो मति कहत "नागरिवास ॥"^१

वांमुरी से उनकी प्रायना ह कि वह मौन होकर रहे नहीं तो बहुता वा
 घर, परिवार छूट जाता है ।

मुख मूदे रहु मुरलिपा, कहा करति उतपात ।
 तेरे हांती घर बसी, औरन के घर जात ॥
 अरो छिमाकर मुरत्रिया, परत तिहारे पाप ।
 और सुखी मुनि होत सब, महादुखी हम हाप ॥^२

इश्क चमन—

इश्क-चमन आदि में मूफी प्रभाव दीप्त पडना ह
 कोई न पहूचा वहाँ तक, आसिक् नाम अनेक ।
 इश्क-चमन के बीच में, आपा मजनू एक ॥
 सब मजहब सब इत्म अरु, सब ऐग के स्वाद ।
 अरे, इश्क के असर बिन, ये सबहीं बरबाद ॥^३

(ख) निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि

श्री भट्ट जी

भक्तमाल में श्री भट्ट जी का वृत्तान्त—

श्री भट्ट जी निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य भक्ता एव आचार्यों में ह । इस
 सम्प्रदाय के भक्ता में इन्होंने सबसे प्रथम ब्रजनाया में काव्य रचना की । यही
 कारण ह कि दादा 'युगल गतक' प्रथ निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्ता में 'आसि'

^१ यही, पृ० १०६-०७ ।

^२ ब्रजभापुरी सार, शृंगार सागर, ५८ ५४ पृ० २०२ ।

^३ यही, दादा ७२, ७० पृष्ठ २०४ ।

वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके 'युगल शतक' ग्रंथ का प्रकाशन म० पं० श्रीब्रजविहारीगरण, मु० सुपरा पो० मऊजि, गया ने विक्रमीय संवत् २००९ में कराया है। इसमें युगल-मूर्ति की लीला का वर्णन है। सप्रदाय के परंपरागत शास्त्रीय भावों को ध्यान में रखकर इस ग्रंथ के पदों की रचना हुई है। इनके सवध में नाभा जी कृत 'भक्तमाल' में निम्नलिखित छप्पय मिलता है :

श्री भट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥
 मधुर भाव संमिलित ललित लीला मुवलित छबि ॥
 निरखत हरखत हृदे प्रेम वरसत सुफलित कवि ॥
 भव निस्तारन हेतु देत दृढ़ भक्ति सवनि नित ।
 जासु सुजस ससि ऊदै हरत अति तम भ्रम भ्रम चित ॥
 आनन्द कन्द श्रीनन्द सुत श्री वृषभानुसुता भजन ।
 श्रीभट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥^१

युगल शतक—

"युगल-शतक" में सौ पद हैं और इनका अर्थ भिन्न-भिन्न रागों में सकलित पदों द्वारा विशद किया गया है। इस ग्रंथ में छ प्रकार के सुखों का वर्णन है— सिद्धान्त सुख, ब्रज-लीला सुख, सेवा सुख, सहज सुख, सुरत सुख, तथा उत्साह सुख। निम्बार्क सप्रदाय के सिद्धान्तों एवं तत्वों को समझने में यह ग्रंथ अत्यंत उपयोगी है।

युगल मूर्ति का सरस वर्णन—

निम्बार्क सप्रदाय में युगल मूर्ति की उपासना का विधान है। युगल मूर्ति की लीलाओं का अत्यंत सुन्दर और सरस वर्णन श्री भट्ट जी ने किया है। युगल-शतक में जिन लीलाओं एवं रसों का वर्णन है उसे समझने के लिये साधक का प्रेमपूर्ण हृदय चाहिए। साधारण पाठकों के लिये वह नहीं है। श्रीभट्ट जी के पदों में एक और काव्य की मधुरिमा है तो दूसरी ओर भक्त हृदय की विह्वलता और रस-स्निग्धता।

चमत्कार की कहानियाँ—

भक्तों में इनका खूब समादर है। ये एक उच्चकोटि के भक्त माने जाते हैं। कहते हैं कि भगवान् इनकी इच्छा पूरी करने के लिये इन्हें नित्य नयी नयी लीलाएँ दिखाया करते थे। कहते हैं कि एक बार भावावेश में वे

^१ नाभा जी कृत 'भक्तमाल' छप्पय संख्या ४३०, पृ० ५७०।

मलार राग अलापो लगे और भगवान् और स्वामिनी जी का भींगते हुए देखा भगवान् ने जैसे उनकी इच्छा पूरी की। इस अवधि में इनका निम्नलिखित पद प्रचलित है।

ठाढ़े गाढ़े कुजतर, बाढे मॅन मरोर ।
भोजत कव इन दगन ते, देखों जुगलकिगोर ।
भोजत कव देखो इन नना ।
स्यामा जू को सुरग चनरी, मोहन को उवरना ॥
जुगल किगोर कुजतर ठाढे, यतन कियो कछु मना ।
उमडो घटा चहू दिसि थोमट जुरि आइ जल सना ॥^१

श्री भट्ट जी के गुरु—

श्री "भट्ट" जी केशव काश्मीरी जी के शिष्य थे।^२ वैसे नागरी प्रचारिणी की ग्योज रिपोर्ट में उन्हें 'निम्बार्क' का गिप्य कहा गया है तथा श्री परगुराम दवाचाय का श्री भट्ट जी का शिष्य बतलाया गया है। स्वाज रिपोर्ट का यह सूचना बिल्कुल गलत है।^३ इनके जन्म काल को ठहर भी बहुत से मनमोद हैं। वैसे अधिकांश लोग मानते हैं कि उनका जन्म विक्रमीय भवत् १५९५ के लगभग हुआ।

पद—

इनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं। इन्होंने युगल मूर्ति को ही अपना आराध्य बतलाया है

जन्म जनम जिनके सदा हम चाकर निर्गि भोर ।
त्रिभुवन पोषण सुधाकर, ठाकुर युगल किगोर ॥

पद—

युगल किगोर हमारे ठाकुर ।
सदा सबदा हम तिनके ह जनम जनम घर जाये चाकर ॥
सूँ परे परिहरौह न कबहू सवही भाँति दया क आकर ।
ज श्री भट्ट प्रगट त्रिभुवन में प्रणतनि पोषण परम सुधाकर ॥

^१ युगल गतक उल्गाह मुष्, वर्षा ऋतु, ८८ ।

^२ भागवत मंत्राय, प० ३२२ तथा ब्रजभाष्यगी मार पृ १०८ ।

^३ काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सब रिपोर्ट (मन् १९३५ ३७ ई०) विवरण पत्र १६१ ।

उनके लिये सबसे बढकर भाग्य की बात यह है कि—

“वृन्दा विपिन विलास” को बराबर देखते रहे ।

जहा जुगल मंगल मयो, फरत निरन्तर वास ।

सेऊ सो सुख रूप श्री, वृन्दाविपिन विलास ॥

सेऊ श्री वृन्दा विपिन विलास ॥

जहां युगल मिलि मंगल मूरति फरत निरन्तर वास ।

प्रेम प्रवाह रसिक जन प्यारे कन्हूं न छाडत पास ।

कहा कहो भाग की (जं) श्री भट, राधाकृष्ण रस चास ॥^१

खोज रिपोर्ट में उनके कुछ पद संगृहीत हैं । संयोग शृंगार के दो पद दिए हुए हैं तथा अन्य तीन पद शृंगार लीला के ही हैं ।

संयोग शृङ्गार—

उठत भोर लाल जू के मग ते,

कंचुकि कसति राधिका प्यारी,

खिसि खिसि परत नीलपट सिरते,

ससि वदन नव जोवन बारी,

मान भावती लाल गिरधर की,

रचि विधाता सुहाय सर्वारी,

जं श्रीभट सुरत रंग भीनौ,

प्रिया सहित देखी निकुंज बिहारी ॥^२

श्री राधा जी के प्रेम का वर्णन कौन करे जिनके वश में भगवान् है ।

श्री राधे तेरे प्रेम की काये कहि आवै,

तेरी श्री गोपाल सौं तों ये बन आवै,

मन वच क्रम दुरगम किसोर ताहि चरनन छावै ।

कहै श्री भट मति वृषभान जे प्रताप जनावै ॥^३

श्री भट्ट जी ने दुलहा-दुलहिन के रूप में कृष्ण और राधा का वर्णन किया है ।

^१ युगल अतक, सिद्धान्त सुख, पद सख्या ७ ।

^२ खोज रिपोर्ट (सन् १९३५-३७ ई०) विवरण पत्र सख्या १६१ राग विभास ।

^३ वही राग विलावल ।

रग रगौले गात के, सग बराती श्वाल ।
 बूलह रूप अनूप ह्व, नित विहरत नदलाल ।
 छल बाली नित विहरत नदलाल ।
 रग रगौले भग अग कोमल, सग बराती श्वाल ।
 बूलह थो ब्रजराज लाडिलो, बुलहिन राधा बाल ॥
 ज श्री भट्टवल्लभी जुग के, गावत गीत रसाल ॥^१

मान—

श्री राधा ने मान किया है । सखी उन्हें समझा रही है ।
 भामिनी तो जु सुभाष की, कछु गति समझी हो न ॥
 पिय तोको सबस दियो, कियो मान विधि कौन ।
 मान अयसान कछु नहीं, भामिनी कसे कौनों ।
 नदलाल गोपाल नें तोहि सबस दीनों ॥
 अब लें कछु न दुरावती कहि का रग भीनो ।
 कह्यो श्री भट्ट कोमल कुवरि, सहचरि सो भीनों ॥^२

रूपासक्ति—श्रीवृष्ण, श्री राधा जी के रूप को देखकर विभोर ह
 हिय के हित साथ सब, बांधे सर आधे जू ।
 नन धरे फल आजु हौं, पाये हरि राधे जू ॥
 नन धरे फल आजु हौ, पाये हरि राधे ।
 तिरछी चितवन काह की, परी रूप अगाधे ॥
 निरखि निरखि बीची झकोर, हिय के हित साथे ।
 ज श्री भट्ट लखि छवि लाडिली बाधे लट आधे ॥^३

वृष्ण, राधा जी का शृङ्गार कर उनकी सेवा में लगे हुए ह
 शोभा निधि मुख सिद्धि रिधि, राधा छवि को घाम ।
 जहाँ हितु हित सज्या सजी, श्री भट्ट निज कर स्याम ॥
 निज कर अपने श्याम सँवारी ।
 सुखद सेज राजा माधव मन्दिर, शोभा निधि रिधि सिद्धि महारी ॥
 हित के हेत हरषि सुन्दर घर अति ही अनूप रचि रचिकारी ॥
 ज श्री भट्ट करत परिचर्या, रिक्तवत प्राण बल्लभा प्यारी ॥

^१ युग शतक, ब्रजलीला के पद राग विहागरो, सख्या १९ ।

^२ वही, पद सख्या २७ ।

^३ वही पद सख्या ३२ ।

^४ वही, ताल चपक सख्या ५० ।

श्री राधा का रूप-वर्णन नहीं हो सकता जिस पर कृष्ण रीझे हुए है :
 राधे तेरे रूप की, पटतर कहिये काहि ।
 सर्वस तजि रसवश भये, नैन कोर तन चाहि ॥
 नैक नैन की कोर मोरि मोहन वश कीनें ।
 (श्री) राधे तेरे रूप की पटतर को दीनें ।
 कमल कोश अलि ज्यो चलै, तारे रंग भीने ।
 (जै) श्रीभट तन अंजन छुवै, लालन लवलीनें ॥^१

हरि व्यासजी

हरिव्यास जी का निम्बार्क संप्रदाय में महत्व—

हरिव्यास जी, श्री भट्ट जी के परम प्रिय शिष्य थे । निम्बार्क संप्रदाय के भक्तों में इनका प्रमुख स्थान है । इनका जन्म चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ था ।^१ इनकी जन्म भूमि मथुरा थी जो इस समय निम्बार्क संप्रदाय का गद्दी स्थान था । ये गौड-ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे । ये संप्रदाय की इक्कीसवीं पीढ़ी में पड़ते हैं । संप्रदाय की दृष्टि से इनका स्थान अत्यन्त महत्व का है । वल्लभ-संप्रदाय में जो स्थान सूरदास का है वही स्थान इनका निम्बार्क संप्रदाय में है । इनके सबब में नाभा जी ने निम्नलिखित छप्पय लिखा है :

खेचर नर की शिष्य, निपट अचरज यह आवै ।

बिदित वात ससार संतमुख कीरति गावै ॥

वैरागि के वृन्द रहत संग श्याम सनेही ।

ज्यो जोगेश्वर मध्य मनो सोभित वंदेही ॥

श्री भट्ट चरण रज परस तैं, सकल सृष्टि जाको नई ॥

हरिव्यास तेज हरि भजबल, देवी को दीक्षा दई ॥^३

भक्तमाल में वर्णित जीवन-वृत्त—

वार्तिक तिलक में बतलाया गया है कि आकाश में चलने वाली देवी मनुष्य की शिष्या हुई, यह अति आश्चर्य की बात है । इसकी टीका में प्रियादास जी ने कवित्त में वह कहानी बतलाई है जिसमें देवी के हरिव्यास जी की शिष्या होने का प्रसंग है । उसके अनुसार हरिव्यास जी अन्य सन्तो

^१ युगशतक, सहज सुख, -राग राम सो, ताल चम्पक सख्या ६५ ।

^२ महावाणी-प्रकाशक ब्रह्मचारी विहारी शरण ।

^३ भक्तमाल, छप्पय सं० ७७, पृ० ५७१ ।

के साथ विचरते हुए 'चटयावल' गाँव में पहुँचे। वहाँ एक सुन्दर वाटिका में स्नान पूजा के बाद इन्होंने रसोई बनाने का विचार किया। इतने में किसी ने उसी वाटिका में देवी के स्थान पर बकरा मार कर देवी का चढ़ाया। यह देख कर सन्ता ने निश्चय किया कि 'यहाँ प्रसाद की ता वात क्या, जल तक भी नहीं पीना चाहिए।' बहते ह कि सन्ता को भूखा-म्यासा देखकर देवी रात में आई और कारण जानकर हरिव्यास जी की शिष्या हो गई। इसके बाद वहाँ के मुखिया आदि बहुत लाग हरिव्यास जी के शिष्य हो गए। एक स्वपच भी उनका शिष्य बना।^१ कहते ह कि आज भी चटयावल ग्राम में वष्णवी देवी का मंदिर ह। बलदेव उपाध्याय ने इसका नाम 'गढयावल' लिखा है^२ और महावाणी^३ में चट-धावर। यह पंजाब प्रान्त में है।

हरिव्यास जी का काल—

इनका समाधि स्थान मथुरा में नारदटीला ह। "महावाणी"^४ के अनुसार नारदटीला पर श्री भट्ट जी तथा इनकी चरण-पादुका हैं। मिश्रबन्धु विनोद में इनका विद्यमान सवत् और ग्रन्थों के नाम अगुद्ध हैं। बर्ई के बेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'भक्तमाल' में भी इनके समय में जो लिखा गया है वह गलत है। उसमें इन्हें गृहस्थ कहा गया है और औडछा वाले हरिराम जी ध्यास से मिला दिया गया ह। श्री हरिव्यास देव जी विज्रमीय सवत् १५२५ तक विद्यमान थे।

काशी सरस्वती भवन (पुस्तकालय) में 'एक पुस्तक श्री नृसिंह परिचर्या है जिसके अन्त में लिखा ह कि इस पुस्तक को वि० स० १५२५ में श्री हरिव्यास देव जी ने अपने हाथ में लिखा था'। अभी तक इनके आधिर्भाव तथा तिराभाव के समय का निश्चय पता नहीं चल ह फिर भी इतना तो निश्चित है कि वि० स० १४५० से लगभग वि० स० १५२५ के बीच श्री हरिव्यास देव जी बतमान थे।

शिष्य-सम्प्रदाय—

इनका बड़ा से शिष्य थे, जिनमें प्रमुख बारह ये हैं

^१ भक्तिमाल, पृ० ५७२ ५७३। ^२ भागवत-सम्प्रदाय, पृ० ३२४।

^३ प्रकाशक ब्रह्मचारी विहारोत्तरण।

^४ महावाणी, प्रकाशक, ब्रह्मचारी विहारोत्तरण।

^५ यह सूचना महामहापाध्याय प० गंगानाथ जी बखिराज के नोटपुस्तक से उद्धृत ह।

(१) श्री स्वभूदेव जी, (२) श्री वीहिनदेव जी, (३) श्री हृतीकेनदेव जी, (४) श्री माघवदेव जी, (५) श्री केजवदेव जी, (६) श्री लामर गोपालदेव जी, (७) परशुराम देव जी, (८) श्री गोपाल देव जी, (९) श्री मदन गोपाल देव जी, (१०) श्री घमंडदेव जी, (११) श्री मुकुन्द देव जी। महावाणी में सिर्फ इतने ही नाम गिनाये गये हैं।^१ वारदेव उपाध्याय^२ ने त्रिन वारह शिष्यों के नाम गिनाए हैं उनमें घमण्ड देव जी का नाम नहीं है। उग्र सूची में उद्धवदेवाचार्य तथा बाह्वलदेवाचार्य के नाम हैं जो 'महावाणी' की उपर्युक्त सूची में नहीं है। वदते हैं कि इस संप्रदाय के ये सर्वप्रथम उत्तर भारतीय आचार्य थे। निम्बार्क संप्रदाय के अलग-अलग से 'रम्बिक-संप्रदाय' के प्रवर्तक थे। यह यात्रा इतनी प्रभावशाली हुई कि इन संप्रदाय के मन्त्र लोग "हरिव्यासी" के नाम से प्रख्यात हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का शृंगारी रूप ही इस संप्रदाय में उपास्य है। इनके वारह शिष्यों ने अलग-अलग अपने नाम से वारह गढ़ियों की स्थापना की। उन गढ़ियों में आठ के पीठ नां उपलब्ध है लेकिन शेष का पता नहीं चलता। इनमें स्वभूदेव जी और परशुराम देव जी के अनुयायी वैष्णव विशिष्ट हैं। उनके द्वारा स्थापित भारत में अनेक मठ-मंदिर हैं।

महावाणी—

इन्की सुप्रसिद्ध रचना "महावाणी" है जो ब्रजभाषा में लिखी गई है। अपने गुरु श्री भट्ट जी के आदेश से उन्होंने "युगल शतक" का भाष्य लिखा, यही 'महावाणी' है। "युगल शतक" में पाँच मुखों का वर्णन है वही ही "महावाणी" में पाँच मुख हैं। "महावाणी" में काव्यत्व है जो युगल शतक में नहीं है। "महावाणी"^३ के संपादकों (श्री निम्बार्कमाधुरी तथा श्री निम्बार्क मयूख) के अनुसार 'युगल शतक में ब्रज रस है, श्री महावाणी में शुद्ध नित्य विहार रस है, ब्रज एवं ब्रज से मन्वदित रात्राकृष्ण का वर्णन नहीं है। ब्रज वृन्दावन घाम पृथ्वी पर अवस्थित रहते हुए भी इसके उत्पत्ति प्रलयादि कारणों से अभिन्न है।' श्री आचार्य पाद ने कई संस्कृत ग्रंथ भी लिखे हैं। उनके नाम यों हैं. सिद्धान्त रत्नांजलि, अष्टयाम, श्री निम्बार्क अष्टोत्तर नाम की टीका, तत्त्वार्थ पचक, पच संस्कार निरूपण। इनमें पिछले दो अमुद्रित हैं।

^१ महावाणी (भूमिका)।

^२ भागवत संप्रदाय, पृ० ३२५।

^३ प्रकाशक—ब्रह्मचारी विहारीशरण।

“महावाणी” के पाँच मुख निम्नलिखित हैं^१

	पृष्ठ संख्या	पद संख्या
(१) सेवा मुख	२४-५०	८४
(२) उत्साह मुख	५१-१२८	१८३
(३) सुरत मुख	१२९-१४९	१००
(४) सहज मुख	१५०-१७०	१०२
(५) सिद्धान्त मुख	१७१-१९४	३८

हरिव्यास जी ने अत्यन्त सुन्दर काव्य की रचना की है। अपना नाम ये हरिप्रिया' रखते थे।

पदों की सरसता—

इनके पदा की सरसता की बानगी निम्नलिखित पदा स मिलती है।

रसिक विहारी लाल को, जीवन प्राण अधारि ।

रसिक रसीली रस भरी, अलबेली सुकुमारि ॥

रसिक रसीली राधा रस ही सों भरी ह ।

रसिक विहारी जू की जीवन की जरी ह ॥

अलबेली जू में ऐसी अधिकता ह कोइ ।

पीवत ही पीवत लाल तपति न होइ ॥

सनी ह मुहाग भाग प्रेमरगमगी ह ।

प्रीतम पियारे सग सब निर्गि जगी ह ॥

कौन कौन अग को अनूपता जू कहिये ।

ध्री हरिप्रिया वासी होइ सदा सग रहिये ॥^२

राधा और कृष्ण के प्रेम का एक दूसरा चित्र

एक रग में रगे दोउ एक प्राण द्व गात ।

बदन विलोक्त परस्पर छिन विछुरे न सुहात ॥

बदन विलोक्न में न अघात ।

पल न लगे पग रहे धक्ति ह्व डग भरि चल्यो न जात ॥

दोउ दोउन के प्राण जीवन धन छिन विछुरे न सुहात ।

एक रग रगिरह रगीले एक प्राण द्व गात ।

^१ प्रकाशक—ब्रह्मचारी विहारीकरण ।

^२ महावाणी सेवा मुख, पद संख्या २, पृ० २४ ।

महा सुकुमार किसोरे किसोरी जोरी अति अवदात ।

निरखत श्री हरिप्रिया सहचरी आनन्द उर न समात ॥^१

फूलों का शृंगार किए हुए आनन्द से भरी हुई श्री रावा झूले पर बैठी है और श्रीकृष्ण उन्हें झुला रहे हैं ।

झूलत फूली लाडिली, किये फूल-सिगार ।

प्रीतम फूल झुलावहीं करि करि बहुत मनुहार ॥

झूलत फूली फूली प्यारी प्रीतम फूले फूल झुलावत ।

फूल डोल पर फूलमई-सी फूल सिगार सिगारी यह सुख देखे

ही वनि आवत ॥

फूल कमल-कर लिये लाडिली पिय मनुहार मनावत ।

श्री हरि प्रिया निरखि न्यौछावर करत फूल बलिहारी

ज्यो ज्यों फूलन अंग समावत^२ ॥

रूपासक्ति—

कृष्ण के त्रिभंगी रूप को देखकर भक्त का हृदय विह्वल हो उठा है :

श्रीव दुरनि कटि की मुरनि घुरनि कवनि छवि-जाल ।

अद्भुत वानिक आज बलि वने त्रिभंगी लाल ॥

अद्भुत वानिक वने त्रिभंगी ।

चरन चरन पर घरे अघर मुरली चितवनि भू भौंह विभंगी ॥

कटि की मुरनि दुरनि श्रीवनि की कच की घुरनि रुरनि रसरंगी ।

श्री हरि प्रिया वसी नित हिय में सहज सेज-सुख-सुरत मुधंगी ॥^३

श्री प्रिया जी का चिंतन, ध्यान सब कुछ का देने वाला है ।

चिन्तन फल देनी प्रिया चिंतामनि चिद्-रूप ।

और न गति तुम बिन जु मोहि अहो स्वामिनी सुख रूप ॥

अहो मेरी स्वामिनी सुख-रूप ।

नाहि गति मोहि जान, तुम बिन सकल-सिद्धि-सह्य ॥

ज्यों ज्यों चाहत त्यों-त्यों पुरवत परम प्रवर अनूप ।

श्री हरि प्रिया चिन्तत फलदेनी चिंतामणि चिद् रूप ॥^४

^१ महावाणी, पद सख्या २३, पृ० ३० ।

^२ वही, उत्साह सुख, फूल डोल, (राग विहागरी) ।

^३ वही, राग अड़ानो, सख्या ८५ । ^४ वही, राग सोरठ, सख्या ९९ ।

श्री कृष्ण, श्री राधा जी से अपनी अधीनता स्वीकार कर रहे हैं
 म आत्मा अनुवर्ति हों अहो निसा आपीन ।
 भरत बिहारीलाल यों विनय बाल रस-लीन ॥
 विनय यों भरत बिहारीलाल ।
 म तिहारो आत्मा-अनुवर्तो हे मन हरनी बाल ॥
 जिहि जिहि भानि चलावति हो मोहिं चालत सोई चाल ।
 श्री हरिप्रिया स्वामिनी तुम मम प्राणि की प्रतिपाल ॥^१
 लाल की लालची आखें और किसी ओर दखना नहा चाहती ।
 रचक इन्हिं न रचहिं कछु बचक विभव बडे जु ।
 ललचोहें लोचन महा अह लाल के ए जु ।
 ललचोह लोचन लाल के ॥
 लगे रहत लालच में निसिदिन पगे प्रेम रस-जाल के ।
 रचक ओर रचत नहिं इनको बचक विभव विनाल के ।
 श्री हरिप्रिया सहज गुण सचि राचे रग रसाल के ॥^२

प्रेम की तन्मयता—

प्रेम उस अवस्था या कितना मुग्ध वृणन है जब प्रेमी और प्रेमिका तन्मय होकर अभिन्न हो जाते हैं

प्यारी वहाँ के प्राण तोहिं प्यारी वहाँ कि जीय ।
 हों हो वहाँ कि हों तूही प्रिया वहाँ अकि पीय ॥
 पीय वहाँ अकि प्रिया वहाँ म प्राण वहाँ अकि प्यारा तोरों ।
 हों हि वहाँ अकि हों तूहीं वहाँ जीय वहाँ अकि प्यारी तोरों ।
 जो जा वहा तो तो सय तूही वहा कि वहाँ महा री तारों ।
 श्री हरिप्रिया धरमन की बानी विषयिन होन वहा री तारों ॥^३

नित्य लीला—

मिथुनान्त गुण के पदा में राधा-कृष्ण और उनकी निरव लीला के स्वल्प पर प्रकाश डाला गया है ।

^१ महावानी महज गुण गण विनायक २१ ।

^२ वही महज गुण पद संख्या ५३ ।

^३ वही महज गुण पद संख्या ७३ ।

प्रिया शक्ति अहलादिनी पिय आनन्द-सरूप ।
 तन वृन्दावन जगमगे इच्छा मखी अनूप ॥
 फोटिन कोटि समूह सुप रूप लिये इच्छा शक्ति ।
 प्राणेशहि प्रमुदावहीं प्रमुदावलि अनुरति ॥
 जवते ए ए तयहि ते ए ए एक अनन्त ।
 श्री वृन्दावन में सदा नित विलास विलसंत ॥
 सरिता-रस-सिगार की बहति मदा चहुं-ओर ।
 इकछत राज करे जु श्री हरिप्रिया जुगलकिमोर ॥^१

महावाणी की कुंजी—

इस स्वरूप को बिना ध्यान में रखे “महावाणी” के असली रस का आस्वादन असंभव-सा है। इसीलिये “महावाणी” के बारे में निम्नलिखित बात ध्यान में रखने के लिये कहा गया है :

महावानी जानी जु यह खरी खंग की धार ।
 जतन-जतन सो राखियो ज्यों पायो सुप्त-सार ॥
 दुर्लभ हू ते दुर्लभ जु सो सुलभ भई तोहि ।
 हित चित हिय नहि धरहि तो अहित इष्ट ते होहि ।
 पंच रतन ये दिव्य महा काढ़े सोधि पयोधि ।
 जा करि श्री हरि प्रिया को पावै यह अविरोध ॥^२

श्री परशुरामाचार्य

वंश परिचय—

ये निम्बार्क सम्प्रदाय के सत हरिव्यास देव जी के प्रमुख शिष्य थे। ‘उदय’ मासिक पत्र (१९४२ ई० संख्या १-३) में उनकी रचनाओं तथा जीवन-चरित पर प्रकाश डाला गया है। उसके अनुसार इनका जन्म जयपुर राज्य के अन्तर्गत एक पचगढ ब्राह्मण कुल में हुआ था। निम्नलिखित दोहे से इनके ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने का संकेत मिलता है

ब्रह्म कर्म करणी गई, गई जनेऊ जाति ।

अब हम हुए रामजन, ‘परसा’ परम सुजाति ॥^३

^१ महावाणी, सिद्धान्त सुख, पद सख्या १६ ।

^२ वही, सिद्धान्त सुख, ३, ४, ५ ।

^३ परशुरामसागर, दोहा सख्या ६५३ ।

काल—

इनका जन्म १५ वीं शताब्दी भाद्रपद कृष्ण ५ को हुआ था।^१ श्री परशुराम देवाचार्य के सम्बन्ध में जो पट्टे आदि मिलते हैं उनसे लगता है कि उनकी उम्र थी। खेजडलारा भारी सरदारन की तवारीख में लिखा हुआ है कि सवत् 'पद्रह सौ पद्रह की साल अजुनजीरा बेटा सावत् सिंह जी कुवर पदे था, मु जमुना जीर तरै माघे सा (स्वामी) परशुराम जी कण्ठी बांधी तहां गाँव मुलेमावाद ताम्बापत्तर सासण करा दियो ने बादशाही नौ मुहरो कराय दियो^२। इसके अनुसार श्री परशुरामदेवाचार्य स० १५१५ में विद्यमान थे। उनके नाम का एक पट्टा भी वि० स० १६६९ का मिलता है। उसकी प्रतिलिपि निम्नलिखित है "श्री घ श्री महाराज राजा श्री विशनसिंह जी वचनायत स्वामी श्री परशुराम जी ती पुष्य अथ एक सा एक बीघा को सेटों १ फस्त्रे सलेमावाद मो० पीगलोद मो० उदीक कर दी घी घरती बजर खीस दु० श्री मुखपरवानगी भाठी भीम जी लिखत वा हेमराज सा० १ माह जिलकाद स० १०१९, स० १६६९ मु० कोमायल^३।' इससे बाद किसी पट्टे में परशुरामदेव का नाम नहीं मिलता केवल 'परशुराम जी रे द्वारे या मन्दिर' आदि का ही उल्लेख है। अब अगर उक्त जोधपुर की तवारीख में विक्रम सवत् का ही उल्लेख हो और उस १५१५ सवत् के समय श्री परशुरामदेव जी की उम्र कम से कम १५ वर्ष की मान ली जाय तो उनकी उम्र १६९ वर्ष की होनी है। सम्भव है कि निष्ठावान सन्त की उतनी उम्र भी आयु हो।

मृत्यु तिथि—

श्री परशुरामदेवाचार्य जी की गुफा के द्वार पर एक गिला लेख मिलता है जिसमें परशुरामदेवाचार्य का नाम आया है। जहाँ श्री परशुरामदेव जी की गुफा है वह स्थान श्री पुष्कर राज के बारह प्राचीन साला (स्थाना) में एक मुख्य स्थान है। इस गिलालेख में लिखा हुआ है कि श्री परशुरामदेव जी के गिण्य श्री हरिवंशदेव जी ने गुफा के निकट एक मन्दिर बनवाया। गिलालेख^४ की प्रतिलिपि— 'श्री गणपाल जी महाराज सत्य पातसाह, श्री

^१ अथ प्रणेता का परिचय उदय मासिक पत्र, पृ० १३।

^२ मुगलशासन भूमिका निम्बाक समय समीक्षा, पृ० ७।

^३ वही पृ० ७।

^४ मुगलशासन, भूमिका निम्बाक समय समीक्षा, पृ० ८।

शाहजहाँ सन् १६८९ वर्षे माघ राजे स्वामी श्री हरिवंश देव, सुदि पूरणमासी सोमवार श्री परशुराम जी का गिष्य साला स्वामी श्री परशुराम जी स्वामी पूरणदास मन्दिर विराजमान, श्री कृष्ण साल मे पुरसद जयति सत्य सखामद स्वामी सेवक रामदास दामोदर दास मथुरावाला।” इस गिलालेख से यह पता चल जाता है कि श्री परशुराम जी वि० स० १६८९ के पहले ही परलोक वासी हो गए थे।

जीवन-वृत्त—

पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे ही इन्हे वैराग्य हो गया।^१ इनके पिता का नाम श्री वासुदेव जी था।^२ बचपन मे ही इनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया और ये हरिव्यास जी की गरण मे आये और बाद मे उनके गिष्य हो गए। उनके बाद ये ही उनके उत्तराधिकारी हुए। हरिव्यास जी के वारह प्रमुख विद्वान शिष्यो मे इनके ऊपर ही श्री सर्वेश्वर जी की सेवा भार सौंपा गया। संभवतः भारतवर्ष भर में २०००० निम्वाकानुयायी स्थान होंगे। वे सभी परशुरामदेव जी को अग्रगण्य मानते हैं।^३ सम्प्रदाय का सर्व प्रधान पीठ “परशुरामपुरी” (सलेमावाद) स्थान है जो किशनगढ राज्य मे है।

सलीमशाह चिश्ती—

परशुराम पुरी (सलेमावाद) के स्थापित करने की एक कहानी प्रचलित है। उस काल में मुसलमान शासको का खूब दबदबा था। अजमेर के आसपास सलीम शाह चिश्ती का स्थान था। उसकी सिद्धियो की चारो ओर स्थाति थी। सलीमशाह इस पन्थ के सन्तो पर नाना प्रकार के अत्याचार करता। यह अत्याचार यहाँ तक बढा कि सन्तो ने उस रास्ते से द्वारका जाना छोड दिया। कुछ सन्तो ने मथुरा में श्री हरिव्यासदेवाचार्य के पास इस फकीर के अत्याचारो की खबर पहुचाई। उन्होने इस काम के लिये परशुरामदेव को भेजा। ये फकीर के निवास स्थान पर पहुचे और उसकी चीजें नष्ट भ्रष्ट कर दी। फकीर ने क्रोध कर नाना प्रकार की सिद्धियो का इन पर प्रयोग किया लेकिन इनके तेज के सामने असफल रहा। अन्त मे हार कर वह इनका

^१ ग्रन्थ-प्रणेता का जीवन चरितः उदय (पत्रिका), पृ० १३।

^२ भागवत संप्रदाय, पृ० ३२९।

^३ ग्रन्थ प्रणेता का जीवन चरितः, उदय (पत्रिका) पृ० १४।

शिष्य हो गया और उससे प्रभावित अनेकानेक मुसलमान उनके शिष्य हो गये । सलीम शाह की इच्छा से उन्होंने "मलेमावाद" को आवाद किया ।

भक्तमाल में वर्णित इनका वृत्त—

भक्तमाल" में इनके सब व में निम्नलिखित छप्पय मिलना है
 ज्यों चदन की पवन नीम्व पुनि चदन करई ।
 बहुत काल तप निविड उद दीपक ज्यो हरई ॥
 शोभत पुनि हरियास सत मारण अनुसरई ।
 क्या कीरतन नेम रसन हरिगुण उच्चरई ॥
 गोविन्द भक्ति गदरोग गति, निल्फ दाम सब बव हृद ।
 जगली देश के लोग सब, "परशुराम" किय पारपद ॥^१

हरिव्यास-छव्वीसी में इनका परिचय—

इनकी भक्ति तथा वैराग्य की बहुत सी कहानिया प्रचलित ह । हरिव्यास-छव्वीसी" नामक हस्तलिखित ग्रंथ में इनके विषय में निम्नलिखित दोहे मिले हैं

आचारज हरिव्यास के, शिष्य सपूत अनन्त ।
 तिन में मुखिया परमुरा, गदीवन्त महत्त ।
 कण्ठमाल हरियास की, पुनि सर्वेश्वर ईश ।
 सो राजत शो मत्प्रभू, परमुराम के शीश ।
 गिष्य सकल हरिव्यास के, और प्रगिष्य अनन्त ।
 परमुराम-वद पातुका, सबही - आन नमन्त ।^२

रचनाएँ—

ब्रजभाषा की इनकी रचनाए अत्यन्त मुन्दर ह । इनका लिखा परशुराम-सागर" प्रसिद्ध है । इसमें इनके २२ ग्रंथ और ७५० के लगभग छुटकर पद संगृहीत ह^३ (१) साखी का जाडा (२) छन्द का जाडा (३) सबया दस अवतार का (४) रघुनाथ चरित (५) श्रीकृष्ण चरित (६) शृगार सुतामा चरित (७) द्रौपदा का जाडा (८) छप्पय गजप्राह की (९) प्रह्लाद चरित

^१ भक्तमाल पृ० ७०१ ।

^२ ग्रन्थ प्रणेता का परिचय उदय पत्रिका, प० २० ।

^३ मनारिया-राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १४२ ।

(१०) अन्तरवोध लीला (११) नामनिधि लीला (१२) शौच-निषेध लीला (१३) नाथलीला (१४) निज रूप लीला (१५) श्रीहरिलीला (१६) श्रीनिर्वाण लीला (१७) समझणी लीला (१८) त्रिषि लीला (१९) नन्द लीला (२०) नक्षत्र लीला (२१) श्री दावनी लीला (२२) विप्रमति । इसका रचनाकाल सवत् १६७७ है ।

रचनाओं की विशेषता—

इनकी भाषा में राजस्थानी भाषा का मिश्रण है । सगुण तथा निर्गुण विचारधारा ने प्रभावित इनकी दोनों प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं । निर्गुण ब्रह्म को लेकर इन्होंने कवीर की नाई कविता की है । इनकी कविताएँ अर्थ-गौरवपूर्ण हैं तथा उनमें उपदेश की प्रवृत्ति मुख्य है ।

इनके कुछ पद नीचे उद्धृत हैं

पद—

‘परसा’ गुरु तर की मिलै, जब छाया तो पोष ।
हरि अमृत फल पाडए, तव हीं मुख सन्तोष ॥
‘परसा’ तन मन निर्मला, जब लीजै जल धोय ।
हरि सुमिरण बिन आतमा, निरमल कमी न होय ॥^१
निगुण सगुण सब प्रीति बस, साखि सुनो मन सुद्ध ।
‘परसा’ प्यायो ‘नाम दे’ हरि मूरत में दुद्ध ॥
कुछळ करो कुछळ कहो, वादि बड़ाई डिभ ।
‘परसा’ इक हरि प्रीत बिन, मिथ्या मव आरम्भ ॥
ताकी हरि मानै नहीं जाके प्रीति न प्रेम ।
‘परसा’ ताकी मानि हरि, जो सेवे घरि नेम ॥^२

रूपासक्ति—

कमल नयन ने भक्त के चित्त को चुरा लिया है और अब वह नेह टूटने वाला नहीं है ।

कमल नैन नैननि चित्त चोर्यो ।

मो देपत मेरो मन मोहन हरि लीयो हरि न बहोर्यो ॥टेक॥

^१ परशुराम सागर, पृ० ६ ।

^२ वही, पृ० ३१-३२ ।

मोहन मोहनी बसि करण बसि करि बलि छलि भुवनि दडोरयो ॥
 लं जु गए सवस बसि अतरि नब मुसकि मुप मोरयो ॥१॥
 निरपत बदन ठगोरी स्त्री परि गई रही चित्र जसैं कोरयो ।
 नंक बूद जल पम सिघु मिलि विछरत नहिन विछोरयो ॥२॥
 अब कहा हा होहि कह काहु क जाणि घूशि जातौ मन जोरयो ।^१
 भयो विवसि परसा प्रभू सौं मन नेह न सूदत तोरयो ॥३॥

गोपियों का विरह वर्णन—

उद्वेग को सदेग देती हुई गोपियाँ कह रही ह

मधुप साल उरि साल मेरे हरि की व घात ॥
 बिलपति चित आनि आनि सुनि त न मुहात ॥टेक॥
 विछुरत पाइ लागि बोलि भेटत भरि चाय ॥
 दलती बेर नक ताकू म पकर्यो नहीं हाय ॥१॥
 सबनि कू सुप देत नागर अनाथनि के नाय ॥
 सोई बिसरत नहीं पलक प्रेम प्रीतम को साय ॥२॥
 पारस को परस पावत पलटौं कुल जाति ॥
 ताको सुप तब न जाण्यो अब न रह्यो जाति ॥३॥
 लोचन हरि दरस कारिण लोचत दिन राति ॥
 परसा प्रभु मिलन की बच आइ ह या घात^२ ॥४॥

एक दूमरे पद म गोपियाँ वर्षा ऋतु में अपने विरह ने दुःख को उद्वेग को
 सुना रही ह

स्याम सघण धरिषा इति आई ॥
 देवि घटा घन घोर चहु दिशि पावसि प्रीनि सुहाई ॥टेक॥
 बोलत मोर बूद विष लागत हरि विण कछु न मुहाई ॥
 कवण अधार जीव हम बिरहनि पतीयाँ ह न पढाई ॥१॥
 तुम अति चतुर सुजाण सिरोमनि हम अधिम अजात कहाई ।
 परस राम प्रभु तजि सब औगुण मिलि मोहन सुपदाई ॥२॥^३

^१ रामसागर, काशी नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ
 संख्या ६८०।४९२ पृ० ८१ अ ॥ राग सारंग ॥

^२ रामसागर, पृ० ८२ अ ॥ राग सारंग ॥

^३ वही, पृ० १०३ अ ॥ राग मलार ॥

इस तरह से और भी इनके अनेक पद हैं जो हिन्दी साहित्य में गुपरिचित भ्रमरगीतो की परम्परा में पड़ते हैं। इन पदों में उद्धव से गोपियाँ अपने विरह-दुख को नाना भाव से सुना रही हैं।

घनानन्द—

जीवन वृत्त—

घनानन्द या आनन्दघन निम्बार्क संप्रदाय में अन्तर्भुक्त हो गए थे।^१ इनका जन्म सवत् १७३० में हुआ था और मृत्यु सवत् १८१७ में। इनके जीवनवृत्त का पूरा-पूरा पता नहीं चलता। कहते हैं कि ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मीरमुशी थे। इनका 'सुजान' नाम की बेंग्या से अत्यन्त प्रेम था। कहते हैं कि ये बहुत बड़े गायक थे। एक बार बादशाह के कहने पर नहीं गाया और बाद में सुजान के कहने पर गाया और समस्त दरवार को बेमुव कर दिया। सुजान के कहने पर इन्होंने गाया तो अवश्य लेकिन बादशाह की ओर पीठ कर सुजान की तरफ मुह करके गाया। बाद में बादशाह ने क्रुद्ध होकर शहर से निकाल दिया। सुजान इनके साथ आने को राजी नहीं हुई। ये अत्यन्त दुःखी होकर वृन्दावन चले गए और भगवान् की भक्ति में समस्त जीवन बिता दिया। विरहिन गोपियों की तरह सर्वत्र कृष्ण के माधुर्य का दर्शन करते हुए घनानन्द अपनी सावना में लगे रहे। ब्रज के घर, वन, वीथियों में वे सर्वत्र कृष्ण को ही ढूँढते रहते थे। कृष्ण का स्मरण, स्वप्न में कृष्ण का दर्शन इन्हें वैचैन कर देता और फिर वे उन्हीं की रट लगाए रहते। वे रीतिकाल में पड़ते हैं लेकिन लक्षण ग्रन्थों को आदर्श बनाकर उन्होंने कविता नहीं की। अपनी कविताओं में ये सुजान-छाप देते थे और बाद में भगवान् के लिये ही सुजान का प्रयोग करने लगे। अभी तक इनके ४१ ग्रन्थ हिन्दी के मिले हैं।^२

काव्य की विशेषता—

इनकी कविता में अकृत्रिमता है और एक अनोखी माधुरी है। इनकी भाषा, विशुद्ध ब्रजभाषा है। बड़ी चलती भाषा में गोपियों के विरह का

^१ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनानन्द कवित्त, प्रस्तावना, पृ० २९।

^२ वही, पृ० २७-२८।

वणन इन्होंने किया है। इनके असली नाम का ठीक पता अभी तक नहीं चला है।^१

विरह के पद—

गोपिया के विरह का सुन्दर वणन नाचे के पद में है

चकोरी थापुरी ये दीन गोपी ।
अहो घनचन्द क्यों पहिचान लोपी ॥
छधोले छल तुम को पीर काकी ।
विया की कया से छतिया जो पाकी ॥
सजीवन स्यावरे कव घों डरोगे ।
मेरे साधा विरह बाधा हरोगे ॥^२

दूसर पदा में अपने विरह के आमुआ का 'सुजान क आगन' में पहचाने के लिये व बादला से प्रायमा करते हैं

पर फार्जाहि देह को धारे किरौ, पर जय जयारय ह्व दरसौ ।
निधि-नीर सुया के समान करौ, सबहीं विधि सज्जनता सरसौ ॥
घनजानन्द जोवन-दायक हो, बछ मेरियो पीर हिये परसौ ।
कवहू था विसासौ सुजान क आगन, मो अमुवानि कों ह घरसौ ॥^३

ठीक उसी प्रकार से उन चरणा की घूल ला देने के लिये गोपियाँ पवन से प्रायना करती हैं

एरे घोर पीन ! तेरो सब ओर गोन घोरो,
सोसा और बौन मन ढरकोंहीं यानि द ।
जगत के प्रान, ओछे-बडे सा समान, घन
आद निमान, सुखदान बुखियानि द ॥
जान उजियारे गुन नारे अत मोहीं प्यारे,
अब ह्व अमोही बडे पीठि पहिवानि द ॥
विरह वियाहि मूरि आंतिन में रासों पूरि
धूरि तिन पावन की हा हा! नेकु आनि द ॥^४

^१ कानीप्रसाद जायसवाङ्-विरह लीला की भूमिका ।

^२ विरह लीला ६० ६१ ६२ पृ० ६ ।

^३ ब्रजमापुरी मार, प० १७८ ।

^४ घनजानन्द—वसिष्ठ प० सख्या ७०, पृ० ४२ ।

भक्ति—

अपनी परम साधना का परिचय देते हुए धनानंद कहते हैं :
 साधन जितेफ ते असाधन के नेग लगी,
 साधन फो महातम-सार गहि ताहि तू ।
 प्रेम सो रतन जातें पाय है सहज ही में,
 वहै नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू ।
 राधिका-चरन-नख-चंद त्यों चकोरकें सु,
 वाढ़त अमंद यो तरंगनि उमाहि तू ।
 बोहित-विसास हू चढाव लैहै सोई हाहा,
 कृस्न-कृपासिवु मेरे मन अक्गाहि तू ॥^१

भगवान् की कृपा ही उनके लिये सब है :

मो-से अनपहिचानि को, पहिचाने हरि कौन ?
 कृपा कान भवि नैन ज्यो, त्यों पुकारि भवि मीन ॥
 हरि तुम सो पहिचानि की, मोहि लगाव न लेस ।
 इहि उमंग फूल्यो रहौ, वसौ कृपा के देस ॥^२

रसिक गोविन्द

रचनाएँ—

रसिक गोविन्द के सबध में ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि उनके लिखे हुए कितने ग्रंथ हैं और इसी प्रकार से इनके गुरु आदि के नाम को लेकर भी नाना प्रकार के मत प्रचलित हैं। इनका एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'रसिकगोविन्दानन्दघन' है। इसका जिक्र खोज रिपोर्ट में आया है। यह ग्रंथ उनके अन्य ग्रन्थों के साथ विजावर निवासी बाबू रामनारायण जी के यहाँ पाया गया है।^३ इसके बाद भी खोज रिपोर्ट^४ में रसिक गोविन्द के इस ग्रंथ का जिक्र आया है जो वृन्दावन निवासी लाला बद्रीदास के पास देखा गया है। इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित

^१ वही, पद सख्या ३५२, पृ० १७९।

^२ ब्रजमाधुरी सार, पृ० १८१।

^३ रिपोर्ट आफ सर्च आफ हिन्दी मैनुस्क्रिप्ट्स, (१९०६-८)।

^४ वही, (१९१२-१४)।

प्रति प० बलदेव उपाध्याय और प० बटुकनाथ शर्मा को 'काशी के रसिकवर प० चुन्नीलाल जी वश से प्राप्त हुई है।'

वश परिचय, गुरु और संप्रदाय—

'रसिक गोविन्दानन्दधन' से इनके जीवन के मघघ में कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है। उससे पता चलता है कि उनके पिता का नाम बालिग्राम तथा माता का गुमाना था। नाराणी जाति के थे। इनके एक बड़े भाई का नाम बालमुकुन्द था तथा मातीराम नाम के एक इनके चाचा भी थे। इनके गुरु का नाम किसी ने हरिव्यास बतलाया है^२ तो किसी ने स्वामी गावधन देव^३ कहा है। लेकिन यह भ्रमात्मक है। इन्होंने स्वयं अपने गुरु तथा संप्रदाय का परिचय दिया है। लछिमन चन्द्रिका में रसिक गाविन्द जी लिखते हैं 'श्रीपरम उदार परमेश्वर सरवस्वर सर्वोपरि विराजमान। तिनकी परम्परा यह। इस वश सनकादिक नारद निम्वादित्य सम्प्रदाय के सिरोमणि आचार्य श्रीहरिव्यास देव जू महाराज की गादी। श्रीपरमराम देव जी। श्रीहरिवश देव जी। श्रीनारायण देव जी। श्रीवन्दावन देव जी। श्रीगोविन्द देव जी। श्रीगाविन्द सरनदेव जी। श्रीसर्वेश्वर सरण देव जी महाराज को शिष्य परम कृपापात्र वैष्णव रसिक गोविन्द कवि^४। इस प्रकार से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये निम्बार्क सम्प्रदाय के थे तथा इनके गुरु का नाम सर्वेश्वर देव जा था। प० बलदेव उपाध्याय ने 'रसिक गोविन्दानन्दधन की जो हस्तलिखित प्रति देखी है उसमें लिखा हुआ है

जीवन हमारी, कुज भवन अधिकारी,
ऐसे सर्वेश्वर सरन सुखकारी गुरुदेव।'^५

रचना काल—

'निर्वसिंह सरोज में कहा गया है कि ये स० १७५० में बनमान थे।' मिश्रवधुआ ने इनका कविता काल स० १८५८ बतलाया है।^६ 'सरोज में

^१ रसिक गाविन्द और उनकी कविता, पृ० ५।

^२ रिपोर्ट आफ सच आफ हिन्दी मनुस्क्रिप्ट्स, (१९०६-८)।

^३ सोज रिपोर्ट, (१९१२-१४)।

^४ रसिक गोविन्द और उनकी कविता, पृ० १३ पर उद्धृत।

^५ रसिक गोविन्द और उनकी कविता, पृ० १४।

^६ निर्वसिंह सरोज पृ० ६८, ३७०। ^७ मिश्रवधु विनोद पृ० ८४८।

वतलाया हुआ काल भ्रमात्मक है। रसिक गोविन्द ने अपने ग्रंथ 'रसिक गोविन्दानन्दघन' में रचना काल इस प्रकार से दिया है :

वसु सर वसु ससि अंक रवि दिन पंचमी वसन्त ।

रच्यो गोविन्दानन्दघन, वृन्दावन रमयन्त ॥

अर्थात् यह ग्रंथ वृन्दावन में वसन्त पंचमी, रविवार मग्व १८५८ में लिखा गया। इसके पहले भी वे कई ग्रंथ लिख चुके थे। 'रसिक गोविन्द' ग्रंथ का रचना काल म० १८९० है। इस प्रकार विक्रमीय उत्तरीमवीं शताब्दी के मध्य से प्रायः अन्त तक इनका रचनाकाल है।

प० बलदेव उपाध्याय ने इनके ९ ग्रंथों का जिक्र किया है। उनके नाम यो हैं : अष्ट देश भाषा, पिगल ग्रंथ, समय प्रबंध, रसिक गोविन्द, रामायण सूचनिका, कलियुग रामो, युगल रस माधुरी, ललितमन चन्द्रिका, रसिक गोविन्दानन्द घन।^१

काव्यत्व—

रसिक गोविन्द ने अलंकार, रस आदि का सुन्दर विवेचन किया है। इनमें पांडित्य के साथ-साथ सहृदयता भी प्रचुर मात्रा में थी। इनकी काव्य-रचना सुन्दर है। इनका काव्य उन रसिकों को आनन्द देने वाला है जो साहित्य के मर्मज्ञ हैं तथा भगवत् रस के रमज। इनके कुछ पद नीचे दिए जाते हैं

होली का एक सुन्दर वर्णन नीचे के पद में मिलता है।

रंगभरि भरि भिजवत मोरि अंगिया

हुइ कर लिहेसि कनक पिचकरवा।

हम सन ठनगन करत डरत नहीं,

मुझ सन लगवत अतर अगरवा।

अस कस वमियत मुनु ननदी हो,

फगुने के दिन एहि गोकुल नगरवा।

मोहि तन तकत बकत पुनि मुमकत

'रसिक गोविन्द' अभिराम लंगरवा।^२

इन्होंने 'प्रेम' नामक एक अलंकार माना है। उसका उदाहरण निम्न-लिखित है :

^१ रसिक गोविन्द और उनकी कविता, पृ० १६-२१।

^२ वही, पृ० ३८।

साँवरे रग रंगे सुरंगे, पुनि प्रेम पगे सो पगे ही पगे ह ।
 रूप अनूप समुद्र अपार, मझार पजे सो पगे ही पगे ह ॥
 और कहा कहिये सजनी सुन रो क ठगे सो ठगे ही ठगे ह ।
 या श्रजघद 'गोविंद' की सन सो नन लगे सा लगे ही लगे ह ॥^१

निम्नलिखित पद में अनुप्रास और शब्दा का चमत्कार दीख पडता है ।

घुघरारी अलक सँवारी अनियारी मोंहें
 कजरारी आखें कजरारी मतवारी में ।
 धारी सारी जरतारी सरस किनारी वारी
 मालनी गृही ह बनो काली सटपारी में ।
 धारी घस रूप उजियारी 'श्री गुविंद' कह
 वारी सुरनारी नरनारी नाग नारी में ।
 मिलन बिहारी सों डुलारी सुकुमारी प्यारी
 बठी चित्रकारी की अटारी सुखकारी में ॥^२

वल्गावन की शोभा तथा युगल-छवि का सुन्दर वणन निम्नलिखित पदा में है ।

श्री वल्गावन सघन सरस सुख नित छवि छाजत ।
 नन्दन वन से कोटि कोटि जिहि देखत लाजत ॥
 जहें लगभूग द्रुम लता घसत जे सब अविश्रुत ।
 काल कम गुन काम श्रेय मद रहित सहित हित ॥
 परम रम्य घन चिदानन्द सर्वोपरि सोहें ।
 तदपि जुगुलरस केलि काज जड ह्व मन मोहें ॥

इसी प्रकार स वृष्ण के सौन्दर्य का सुन्दर वणन उन्हाने किया है
 मुख मुरली धुनि अलकें विधुरी रहें लपटाई ॥
 नील कमल पर अलि अवलिन जनु कलह मचाई ॥
 मकरा वृत्त कुण्डल प्रतिविम्बित ललित कपोलनि ।
 मनु अगाथ जच विमल मध्यवृत्त मकरकपोलनि ॥

^१ रसिक गाविन्द और उनकी कविता पृ० ४४ ।

^२ वही पृ० ४० ।

^३ रसिक गाविन्द और उनकी कविता, पृ० ५६ युगल रस माधुरी ४,
 ५, ६ ।

रुचिर पलक दृग कोर अरुण सितकारे तारे ।
 मनहुं कपल दल नवल जुगल अलि मधु सनवारै ॥
 कुटिल कटाछे भति आछे भुव वक्र वनी अनु ।
 मनमय वरपत वान तानि मनु जुग भरकत घनु ॥^१

(ग) सखी संप्रदाय के कवि

स्वामी हरिदास—

इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त तथा शिष्य परम्परा आदि की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं।^२ यहाँ पर इस सम्प्रदाय के भक्त-कवियों की रचनाओं के सम्बन्ध में प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। हम पहले ही देख चुके हैं कि इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे। उन्होंने अन्य भक्त-कवियों की नाई पद की रचना की है। उनके पद कवित्व प्रदर्शन के लिये नहीं लिखे गए हैं। बल्कि अपने हृदय के उद्गारों को प्रकट करने के लिए लिखे गए हैं। उनमें सरसता है, मार्मिकता है और सबसे बढ़कर स्वामी जी के हृदय का अनुराग है। उनके पदों में भगवान् की लीला के सम्बन्ध में शृंगार परक पद हैं और सिद्धान्त विषयक पद भी हैं। विहार-विषयक इनकी पदावली को 'केलि माला, भी कहते हैं।

स्वामी हरिदास जी की अनन्य-भक्ति तथा अपने भीतर के विकारों को दूर करने के उनके प्रयत्न का सुन्दर चित्रण निम्नलिखित पद में मिलता है।

हे हरि मोसो न विगारन कौं तोसो न
 सम्हारन कौं मोहि तोहि परो होइ ॥
 कौंधों जीते कौंधो हरि परि वदी न छोड़ ॥
 तुम्हारी माया वाजी पसारी विचित्र मोहे मुनि काके भूले कोड़ ॥
 कहि हरिदास हम जीते हारे तुम तहु न तोड़ ॥^३

एक दूसरे पद में स्वामी जी ने बतलाया है कि मसार के इस कठिन बन्धन से छूटने का एकमात्र उपाय भगवान् के चरणों की शरणागति है।

^१ रसिक गोविन्द और उनकी कविता पृ० ६७, युगुल रस माधुरी १२५, १२६, १२७, १२८।

^२ देखिये पृ० २३०-२३३

^३ मयुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर (तृतीय संस्करण, १८८३ ई०) पृ० २२४।

ससार समुद्र मनुष्य मोन नक्र भगर और जीव बहु बढसि ॥

मन बयार प्रेरे सनेह फद पदसि ॥

लोम पिजरा लोभी भरजिया पदारथ चारि पद पदसि ॥

कहि हरिदास तेई जीव पार भये जे गहि रहे चरन आनद नदसि ।^१

भगवान के ऊपर सपूर्ण रूप से निभर रहने में ही स्वामी जी जीव की कृत्पायता समझते हैं। भगवत्कृपा के बिना जीव के लिये कुछ भी करना व समभव नहीं मानत। उन्होंने एक पत्र में अपने इसी मनोभाव को व्यक्त किया है।

ज्योंही-ज्योंही तुम राखत हो,

त्याही-त्याही रहियतु ह, हो हरि ।

और अचरजे पाइ घरों,

सु तो बहों कौन के पड भरि ।

जदपि हों अपनो मायौ वियो चाहों,

कैसे बरि सकौ, सो तुम राखो पकरि ।

कहि 'हरिदास' पिजरा के जनावर लों,

तरफराई रह्यो उडि वे को कितोउ बरि^२ ।

हस्तलिखित प्रति के कुछ पद—

टट्टी सम्प्रदाय के भक्ता की वाणिया की हस्तलिखित प्रति के कुछ पत्र हरिदास जी के सिद्धान्त विषयक तथा कुछ पत्र लीला विषयक हैं। वे सत्री भाव से भगवान् का डाला का रमास्वात्मन किया करते थे।

सिद्धान्त विषयक निम्नलिखित पत्र में भगवान् तथा स्वामिना जी के प्रति पूण रूप से समर्पण का भाव है।

बाहू को बस नाहि सुहारी कृपा तें, सब होय बिहारी बिहारनि ।

और मिथ्या प्रपच बाहू को भाविये, सो सो ह हारनि ।

जाहि तुमसों हित, ताहि तुम हित करौ सब सुख-वारनि ।

धी 'हरिदास' के स्वामी स्यामा बुज बिहारी, प्राननि के आधारनि^३ ॥

^१ मधुग ए टिस्टिक ममावर (तनीय मस्वरण १८८३ ई०) पृ० २२४ ।

^२ काशी नागरीप्रचारिणी में सुरभिज हस्तलिखित प्रति सं० ३७१।२६० सिद्धान्त १ ।

^३ काशी नागरी प्रचारिणा में सुरभिज टट्टी सम्प्रदाय के नकल बरिया की वाणिया का संग्रह, संख्या ३७१।२६९, पद संख्या २ ।

किस किस से प्रेम लगाना चाहिए उनका भी मकेन स्वामी जी ने किया है। उनके लिये वृन्दावन का मय कुछ प्रिय था। नासार्किक वस्तुओं में एक ही वस्तु उनके पास थी और वह था करवा (एक मिट्टी का बर्तन)। उनका कहना है कि—

मन लगाय प्रीति कीजै कर करवा सो ब्रज घोषिनु दीजे सोहनी ।
 वृन्दावन सों, उपवन सों गंज माल पोहनी ।
 गो गो सुतनि सों मृगी मृग सुतनि सों और तन नैकु न जोहनी ।
 श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी मो चित ज्यो सिर
 पर दोहनी^१ ॥

रूपा सक्ति—

स्वामिनी जी के रूप पर मुग्ध हों वे अपने आप को भूल जाते हैं ।
 प्यारी जू जब देलौं तेरो मुख तब तब नयो नयो लागन ।
 ऐसो भ्रम होत कबहूँ न देखौं री दुति को दुति लेखनिन कागता ।
 कोटि चंद तैं कहां दुरामेरी नये नये रागत ।
 श्री हरिदास के स्वामी स्याम कहत काम की सां तिन होइ न होइ ।
 त्रिपति रहूं, नितिदिन लागत^२ ॥

कुंज बिहारी नाच रहे हैं। स्वामिनी जी उन्हें नचा रही हैं। उनकी इस नृत्य-लीला को भक्त का हृदय सुधबुध खोकर देख रहा है।

कुंज बिहारी नाचत नीके, लाडिली नचावत नीके ।
 औंवर ताल धरे श्री स्यामा मिलवत ताता थेई ता थेई गावत संग पीके ॥
 तांडव लासि और अंग को गनें जे जे रुचि उपजत जी के ।
 श्री हरिदास के स्वामी स्यामा को मेरु सरस भयो और रस गुनी
 परे फीके ॥^३

भक्त हरिदास जी को सबसे अधिक अचरज होता है जब भगवान् और स्वामिनी जी की रूपच्छटा एक साथ होकर सौन्दर्य विखेरती है।

यह अचरज देख्यो न सुन्यो कहुँ नवीन मेघ संग वीजुरी एक रस ।
 तामें मोज उठति अधिक बहु भांति लस ।
 मन के देखिये कों और मुख नाहिनें चितवत चितहि करत बस ॥
 श्री हरिदासी के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी बिहारनि जू को पवित्रजस ॥^४

^१ नागरी प्रचारिणी, संग्रह सख्या ३७१।२६९ पद सख्या १५ ।

^२ वही पद सख्या ४ ।

^३ वही, पद सख्या कुंजबिहारी, ८ ।

^४ वही, पद सख्या रागमलार, ४ ।

विठ्ठल विपुल—

जीवनवृत्त—

श्री विठ्ठल विपुल जी के जीवन के सम्बन्ध में इतना ही पता चलता है कि वे स्वामी हरिदास जी के मामा थे और उन्हीं के गिप्य हा गए। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। ये बहुत बड़े भक्त हुए। इनके पद अत्यन्त सरस एवं ललित हैं। नाभा जी के भक्तमाल^१ में इनके सम्बन्ध में कहा गया है कि ये लीला रसिक और गुरु निष्ठ थे। गुरु के परमधाम जाने पर गुरु वियोग से ये अत्यन्त कातर हो गए थे। वही आने-जाते नहीं थे। श्री वन्दावन में एक रात रास के समाज में महानुभावा ने उन्हें बुला भेजा। वे वहाँ गए और श्री युगल सरकार के दर्शन कर तथा गाने बाजे की अपार माधुरी सुनकर बेसुध हो गए। उसी अवस्था में वे श्री गुरु हरिदास जा और श्री युगल सरकार की दिव्य ज्ञाकी पाके रससागर में मग्न हो गए और उन्होंने पंच भौतिक तन का त्याग किया। भक्तमाल में निम्नलिखित कवितें मिलती हैं।

स्वामी हरिदास जू के दास, नाम बीठल ह,
 गुरु से वियोग दाह उपज्यों अपार ह।
 रास के समाज में विराज सब भक्त राज,
 बोलि के पढाये, आये आत्मा बडो भार ह ॥
 युगल सरूप अवलोकि, नाना नृत्य भेद,
 गान तान, कान सुनि, रही न सभार ह।
 मिलि गये बाही ठौर, पायी भाय तन और,
 कहे रस सागर सो ताकें यों विचार ह ॥^२

रस के सागर—

बाणी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित टटटी सम्प्रदाय के भक्ता की वाणिया की हस्तलिखित प्रति में उनकी वाणियाँ दी हुई हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं। उनके पदा को देखकर उन्हें 'रस का सागर' कहना ठीक ही जान पड़ता है। इनकी वाणिया के सग्रह के प्रारम्भ में उस हस्तलिखित प्रति में यो लिखा हुआ है। "श्री कुज विहागी विहारिनि जी। अथ श्री स्वामी जा के गिप्य परम प्रिय श्री बीठल विपुल जी रस के सागर जिनिकी वाणी लिखिते। इस सग्रह में इनकी जो भी वाणिया मिलती हैं उनमें कुज

^१ नाभा जी कृत भक्तमाल (सन् १९२६ ई०) पृ० ६२१-६२२।

^२ वही, पृ० ६२१।

विहारी और स्वामिनी जी की सरस लीलाओं का वर्णन है। झूले का झूलना, मान करना, आपस में होठ लगाना, परस्पर की नाक झोक का अत्यन्त ही ललित वर्णन इनके पदों में मिलता है।

तैं मोह्यौ प्यारी मोरो लाल ।

जिहि गुन सर्वम चोरि लियो नागरि के गुन अब प्रतिपाल ॥

तैं कछू प्रेम ठगीरी भेली तुव मुग जोवत नैन विसाल ।

भामिनी कनक लता हँ लपटी श्री वीठल विपुल उर स्वाम तमाल ॥^१

हिंडोला—

हिंडोले पर युगल-मूर्ति का निष्पन्न जिम प्राकृतिक सौन्दर्य की पृष्ठ भूमि में भक्त-कवि ने किया है वह अत्यन्त मनोरम है।

सजनी नव निकुंज दुम फूले ।

अलिकुल सकुल करत झुलाहल, मोरभ मनमय भूले ॥

हरिष हिंडोरे रसिक रासि वर युगल परस्पर झूले ।

श्री वीठल विपुल विनोद देखि नभ देव विमाननि भूले^२ ॥

हिंडोले का एक दूसरा चित्र—

डोल झूले स्यामा स्याम सहेली ।

नव निकुंज न वरग पिय मग विहरत गर्व गहेली ।

कवहुक प्रीतम रसकि झुलावत कवहु प्रिया नवेली ।

श्री वीठल विपुल पुलकि ललितादि देखत आनन्द केली ॥^३

मान—

सखी मान-भजन मे लगी हुई समझा रही है ।

लालन तेरेई आधीन ।

सुनि रो सखी हो साँच कहत हो तुव जल ए मीन ॥

तेरे रस वस स्याम सुन्दर वर जाचित ज्यो दीन ।

श्री वीठल विपुल विनोद विहारी होत मनावत लीन^४ ।

^१ राग सारंग, पद सख्या १६ ।

^२ राग वसन्त, पद संख्या १२

^३ राग सारंग, पद सख्या १४ ।

^४ राग सारंग, पद सख्या १८ ।

बस सखी जानती है कि यह मान झूठ ही है क्योंकि अन्तर का प्रेम दोनों आँखें प्रकट कर रही है । -

नैना प्रगट करत पिय प्रेमैं

झूठे ही ऊतर करत सखीरी छाडि मान के नेमैं ।

कोप कपट को अधर कप सखी अति हुलास हृदय में ।

थो धोठल विपुल विनोद विहारी नगवर जटित सुतुवत नहे में ।^१

। धोठल विपुल जी जानते है कि इस बन्नावन पर थो 'स्यामा' जी का राज्य है जिनके अधीन वृज के सिरताज है ।

हमारे माई स्यामा जू को राज

जाके सदा आधीन सावरो या वृज को सिरताज ॥

यह जोरी अविचल वृदावन नाहि आन सों काज ।

थो धोठल विपुल विहारनि केवल दिन जलधर सग साज ।^२

विहारनि दास—

पदों की हस्तलिखित प्रति—

विहारनि दास जी के जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता । टट्टी-सम्प्रदाय की शिष्य-परम्परा में ये विद्वल विपुल जी के बाद आते हैं । इनके पदों के सग्रह की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है । उसी सग्रह के कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं । इन पदा में कुछ तो सिद्धान्त विषयक पद हैं और कुछ लीला विषयक ।

सिद्धान्त के पद—

कहा छूटे सों छूटा कहियें । भयो मनिष जनम लहें ।

पसु समान विनु स्याम हि कहें । कहत सुनत उत्तम नरदेह ।

जो न दरयो इत स्याम सनेह । धयन कया न भविन सों हेत ।

भुतक समान जो मत ही प्रेत ॥

साको मांम न कोऊ खाइ । योंही गयो जन्म बहकाइ ॥

जोयत भरत न लाग्यो नेग । योंही शोय जनम अनेक ।

सतनि सेयो साधन करो । प्रमभक्ति भवसागर तरौ ॥

साकत भयत बीच बइ नेवा । थो विहारीदास यों धरनत वेदा ॥^३

^१ गग सारग, पन् सख्या २२ ।

^२ राग सारग पन् सख्या २६ ।

^३ सिद्धान्त क पन्, राग भरा, सख्या ८ ।

एक दूसरे पद में विहारिन दास ने बतलाया है कि बिना भगवान की कृपा के और बिना उनके चरणों की छाया के समार के जीव के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं। भगवान् की शरणागति ही भक्त के लिये सब कुछ है।

मेरी चतुराई कुछ नाही। तुमरी कृपा बिन लागों काही ॥
भला पोच समझी नहीं जाही। बिन विवेक उसारी ठाही।
तुम्हरी अद्भुत कथा अयाही। जात न नो जड पं अघगाही ॥
श्री विहारी दास-चरनन की छाही। अपने करि राखो गहि बांही^१ ॥

विहारिन दास जी ने बतलाया है कि वृन्दावन का सुख और कही नहीं। यह सब कुछ का देने वाला है।

श्री वृन्दावन को सो सुख कछु ना लह्यौ।
धर्म अर्थ कामना मृदित पद भेद भवित बहु भाहि कह्यौ।
परम पवित्र पुलनि सौरभ कन पावन जमुना नीर बह्यौ ॥
तिहि सल्लिता सीतल मन कीनो जिन सतापनि जगत दह्यौ।
और लोक वं कुंठ आदि दै अनन्तन काह कछूव चित्त रह्यौ ॥
काम धेनु गनत न कलपद्रुम सोई दिन देत जोई जु चह्यौ ॥
नित्य नौतन रस छाड़ि विषय रस कितक मान अपमान सह्यौ ॥
परम उदार श्री विहारी विहारनि दास जानि जिय सरन गह्यौ ॥

भक्त विहारिन दास के लिये भगवान है और वे भगवान् के लिये हैं। अब इसमें चाहें किसी को कुछ भी लगे। कोई कुछ भी कहे। उन्होंने प्रभु को सम्बोधन करते हुए कहा है कि—

प्रभु जू हों तेरा तू मेरा।
राजी खसम कहा करै काजी लोक वको बहु तेरा ॥
हो तू एक अनेक गठो गुन दोसन कि सहू केरा।
जल तरंग लो सहज समागम निर्मल साँझ सबेरा ॥
कोई स्वामी कोई साहिब सेवक कोई चाकर कोई मेरा।
बिना ममिता एक तन ऐसा जगत भक्त घनेरा ॥
तन मन प्रान प्रान सो सनमुख अव न फिरं मन फेरा।
श्री विहारीदास हरिदास नाम निजु प्रेम न बेरा हेरा^२ ॥

^१ वही, संख्या १४।

^२ सिद्धान्त के पद राग भैरो, संख्या ८।

अपने मन को समझात हुए वे कहत ह

। मन मेरे अजहूँ होइ समानों ।

हरिपद कमल विसारिविय रति कहा फिरत घोरानो ॥

सोई सोई दाइ उपाइ करत निति जो अपने चित मानों ।

भयो विवस आलस अभिमानी नेकु न इत नियरानों ॥

सेर कहाउ खाल गज दे ठक्इहि ममिता इतरानों ।

ताके हित निति कर द्रपहु अहकार अरुमानो ॥

मुत दारा को निरलि निरखि मुत्त अघम न उविहि अधानो ।

न कछु आहिन ताहि विचारत स्वारय स्वाद विकानों ॥

जोबत मुतक भयो लोगनि सग रहत लोग लपदानों ।

थो विहारीदास बिनु बहुत विमूचे कितेक वरनि बखानों^१ ॥

भक्ति की महिमा—

भक्ति की महिमा बतलाते हुए वे कहत हैं ।

भक्ति में कहा जनेऊ जाति ।

सब भूषन दूषन बिनु, प्राननि प्रति छूब घरनि धिनाति ॥

क्यों साधे चिरपन अभिमानी बड़ी जाति इतराति ।

यासर सों कसैं सरि पाय जदपि उजारा राति ॥

कहा हरे रग भाग विराजित तुलसी में न समाति ।

सोह नहीं सुहागनि के सग सोति सुरेति कुजाति ॥

घरन आश्रम अपने अपने मत तिन तिनहीं सों पाति ।

भगवत घरम सिरोमनि सेवत लालच मति भ्रम जाति ॥

गाइत्री सध्या तप न तजि भजि माला मत्र सजाति ।

श्री विहारीदास को सुख सर्वोपरि वेद विदित विख्याति^२ ॥

लीला विषयक पद—

लीला विषयक उनके पद अनेक ह । उनमें अत्यन्त लालित्य एव सरसता है ।

सिगार करो न करो तो खरो रग यारी व घोष सुहाग की ओरें ।

समुहो चाह्यो न जात अली के हियो हूलतें नव जोवन भोरें ॥

^१ वही सख्या ३ ।

^२ सिद्धान्त पद राग भरो, सख्या ६५ ।

पानिप लोचन ज्यों मुदता दृहि उठि कहुं ठहरात न ठौरें ।
ज्यो ज्यों विहारनि मंद मुरें हसि रूप चुयो परै घूघट ठौरें^१ ॥

स्वामी और न्यामिनी जी के प्रेम को देय कर भक्त-कवि अपने आप का भूला हुआ है ।

नागर नेह निहारत नैननि ।

आतुर ह्वै न चलै चकि चोंप सो चातुर चाहि रहै चित चैननि ॥

मौन ही मौन में मान मनाइ मिलाइ लिये मन सों मन मैननि ।

श्री विहारनि दासि विलोकि वधू वन वृद विनोद वटै विनु बैननि ॥

नित्य नवीन निकुंज में नागरि नागर नेह निहारत नैननि ॥

इसी प्रकार से 'लाल की ललचोही अखिया' पर भक्त कवि रीझा हुआ है ।

अंखिया लाल की ललचोहीं ।

इत उत चितै हसत सकुचित से पुनि बात कहत गहि गोही ।

नैन श्रवन नासा अवलोकत भाल तिलत दरसोही ।

श्री विहारीदासि स्वामिनी रस वरसत यह सुख समझतिहोही^३ ॥

युगलरूप—

'युगल-रूप' का सुन्दर वर्णन निम्नलिखित पद में है :

जोरी अद्भुत आजु वनी ।

वारो कोटि काम नख छवि पर उजल नीलमनी ॥

उपमा देत सकुचित निर उपमा धन दामिनी लजनी ।

करत हासि परिहासि प्रेम जुत सरस विलास सनी ॥

कहा कहों लावनि रूप गुन शोभा सहज धनी ।

श्री विहारनिदासि डुलरावत श्री हरिदास कृपा वरनी^४ ॥

उक्त सग्रह में विहारनि दास के कुछ दोहे हैं जिनमें सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है । सग्रह में उन दोहों के प्रारम्भ करने के पहले "अथ साखी सिद्धान्त लिख्यते" लिखा हुआ है ।

साखी—

गुरु सेवत गोविन्द मिल्यो गुरु गोविन्दहि आहि ।

श्री विहारीदाम हरिदास को जीवत है सुख चाहि ॥

^१ वही, पद संख्या, ३२ ।

^२ वही, पद संख्या १७ ।

^३ वही, राग सारंग, ३ ।

^४ वही, राग केदार, १ ।

भूढ मुढाये कहा भयो जो मन न मुढायो ।
 श्री विहारीदास सत भाइ विनु सतोष न आयो ॥
 पोयो पोयो सब परी कान उठाव भार ।
 श्री विहारी विहारनि दासि उर लिखि लिखि लीना अछिर सार ॥
 बठनि प्रीति रस रोति ह समझि गहो मन माहि ।
 एक चकार पावक चुग सब ही की भल नाहि ।
 जो ह जाति चकोर की सोई पावक खाइ ।
 और पछी छुव चोंच सो छुवत जीभ जरि जाइ ॥

नागरीदासि जी—

गुरु—

जीवन-सत्रयी इनका कोई वृत्तान्त अभी तक उपलब्ध नहीं है। ये 'टूटी सस्यान' की परम्परा के हैं। उनके कुछ पदों की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं। कवित्त और कुडलिया छन्दों में इनके कुछ सिद्धान्त के पद हैं। इन्होंने अपने गुरु विहारनि दास तथा सखी सम्प्रदाय के प्रवक्ता को बार बार स्मरण किया है। मिथ्र बंध विनोद^२ में इन्होंने स्वामी पीताम्बर दास जी का गिप्य बताया गया है। इसका आधार क्या है, कहा नहीं जा सकता।

श्री विहारनि दासि सदा गति मेरे ।

विश्व विलास दास न मानत भक्ति ग्यान बिधि मुक्ति निवेरें ॥

साधिक सिद्ध प्रससित जाके सुता के तिन्हें यलह चित हेरें ।

निकुज भवन रमनरम ज्यों जगल नवल रहें नित्य नेरें ॥

श्री हरिदास भज सुख रासि^३ ॥

कुण्डलिया—

निम्नलिखित पद 'कुण्डलिया' के अन्तर्गत मिलता है

यह जोवन जल बरसि ज्यों नदी उमडि बरारे डाहि ।

जल सूखे जोवन घटें श्या गये आव पछिताहि ॥

गरी आव पछिनाहि किहि पूछ थिन स्यानिहि ।

मिथ्या सब दिन छोड़ जोड़ बारा घन पामहि ॥

^१ वही ३, २४, ५४, ५५ ८५ । ^२ मिथ्र बंधु-विनायक, पृ० ७८९ ।

^३ कवित्त सिद्धान्त, पद संख्या ४ ।

दुलभ तन तू नोधि मन भजि घट अवसप जानि यहै ।

नित कित चूकत तही तू नूनि सठ नागरीदान कहै^१ ॥

एक दूसरे पद में उन्होंने भगवान् के प्रति अपनी आत्मिका का निवेदन किया है।

प्राननि के प्रान मेरे नैननि के तारे हो ।

सहज सनेह निजु सुल घन धारि उर अतर अपने प्रान राति रत्नवारे हो ।

अलक पलक जिनि अंतर अपने सुजान सुनहु मुग जीवत निहारे हो ।

अति ही व्याकुल कित काहे को कुवर तुम तन मन मेरे अनि प्रीतम पियारे हो ।

दासि श्रीनागरी हित तुहि प्रिया मानि चित^२ ॥ प्राननि के.....

रचनाएँ—

मिश्रवन्वु विनोद^३ के अनुगार इन्होंने स्वामी जी (पीताम्बरदान) के पदों की टीका लिखी है और ममय १८२० बताया गया है। यह भी कहा गया है कि इन्होंने स्वामी हरिदान, विहारिनिदास, विट्ठल विपुल, सरमदान, नरहरिदास तथा स्वयं अपने पदों की विस्तृत टीका लिखी है।

सरसदास जी—

‘परम उज्ज्वल रस सिंगार के पद’—

सरसदास जी के पदों के संग्रह की हस्तलिखित प्रति काशी नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। जहाँ से उनके पद आरम्भ होते हैं वहाँ लिखा हुआ है “अथ श्री सरसदास जी की वानी लिख्यते”—इसके बाद ‘परम उज्ज्वल रस सिंगार के पद’ लिखकर तब पद दिए गए हैं।

लाल प्रिया को सिंगार बनावत ।

कोमल कर कुसमनि कच गूंथति मृग मद् आउ रचित सनु पावत ॥

अंजन मन रजन नव वरकर चित्र बनाइ बनाइ रिझावत ।

लेत बलाइ भाइ अति उपजत रोझि रसाल माल फहिरावत ॥

अति आतुर आसक्त दीन भये चितवत कुवरि कुंवर मन भावत ।

नैननि में मुसिकानि जानि पिय प्रेम विवस रस कंठ लगावत ॥

रूप रंग सीवो ग्रीवो भुज हसत परस्पर मदन लजावत ।

सरसदासि सुष निरधि निहाल भई गई निसा नव नव गुन गावत^४ ॥

^१ वही, पद सख्या, १३ ।

^२ रस के सवैया, ४ ।

^३ मिश्रवन्वु विनोद, पृ० ७८९ ।

^४ पद सख्या १५ ।

एक दूसरे पद में इसी तरह से स्वामा-म्बामिनी जी के प्रेम का वगन किया है।

ये बाके थे यावे नैननि प्रतिबिम्ब में तिगार जनावत ।

चतुर एव गुनरासि सुघर दोऊ अपने अपने कर रचि रचि सयोहि दिवायन ॥

इतहि सवारि विलोकत उन तन वे उन तन चिन चिन चिन चाप बड़ावनि ।

सरसदासि सुघरासि प्रिया पिय पुलकि पुलकि हिनिमिन् मधुरें मुर गावत^१ ॥

इस सम्प्रदाय के अन्य भक्ता का तरह इहाने भी सिद्धान्त के पद लिखे हैं।

सिद्धान्त के पद—

माया महामद मोह बिय लिये लोभ की छाठि निरे अररानी ।

बहु धीरज प्रम विवेक रह नहीं मारि बिये सब कीच की घानी ॥

जीव मुरक कहाय पुरासनवादिज नारद हू भयमानी ।

सरस मुदास गरीब भल लीये रावि कृपा बरि कुज की रानी^२ ॥

नवलदाम

रचना—

नवलदाम का जो पद मिलता है वह मन्वी-सम्प्रदाय के भक्त कवियों के पदों के सग्रह में ही मिलता है। इन नवदाम की मुरशिन प्रति नागरी प्रचारिणी गभा में है। इनके दो पद पद सग्रह में हैं जिनमें युगल छवि का वगन है। ये दोनों पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

युगल छवि का वर्णन—

धी विहारनिदासि बियों विहारनि रानी है ।

एक ही तिगार तन एक प्राण एक मन एक ही सहज का प परत बशानी है ।

एक ही बरन धन भूषन चतन मुरण एक ही सुभाव प्रेम रस सना है ।

एक ही मुकुटि सयो नैनन मों मन जोरें एक ही मुमाज राग रग मुरदाना है ।

गवल निहारि दोऊ पद सरन बौन कोऊ था^३ ॥

दूसरे पद में भी इसी प्रकार का पद है।

रग भरयो लास रगोनी मरी राया ।

एक तन एक मन एक ही समान दोऊ मरुं न ग्यारे छु सबन पद आया ।

^१ वही २१ ।

^२ वही २१ ।

^३ गवैया ७ ।

छवि सों छवीली भांति नैननि में मुसकाति
 मुसकाति हूं में छवि बड़ी है अगाधा ॥
 तैसई नवल सषी तैसोई श्री कुंजविहारी
 तैसो मेरी प्रान प्यारी पूजो मन साधा^१ ॥

मिश्रवन्धु विनोद में इनका परिचय—

इनका जीवन-वृत्तान्त नहीं मिलता। मप्रदाय की परंपरा में ये छठी पीढ़ी के हैं। सरसदास के बाद इनका स्थान है। 'मिश्रवन्धु विनोद' में इनका नाम नवलदास वृन्दावन बताया गया है^२ और इन्हे नागरीदास का शिष्य कहा गया है। इनकी वाणियों का रचना काल १८०० है।^३

श्रीकृष्णदास जी

नागरीदास के शिष्य—

काशी नागरीप्रचारिणी मभा में सखी-संप्रदाय के भक्तों की वाणियों की हस्तलिखित प्रति में श्रीकृष्णदास जी के भी कुछ पद मिलते हैं। सखी-संप्रदाय की शिष्य-परंपरा की जो ग्राउस की सूची है उसमें इनका नाम नहीं मिलता और न 'भागवत-संप्रदाय' में दी हुई बलदेव उपाध्याय की ही सूची में मिलता है। काशी नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में इन्हें नागरीदास का शिष्य कहा गया है। काशी नागरीप्रचारिणी वाली प्रति में इनके पदों के प्रारंभ करने के पहले लिखा हुआ है "अथ श्री नागरीदास जी के शिष्य श्रीकृष्णदास जी जिन कृत्य मंगल श्री स्वामी जी को लिपते।" काव्य की दृष्टि से इनके पद बहुत अच्छे नहीं कहे जा सकते। वृन्दावन का वर्णन निम्नलिखित पद में है :

वृन्दावन का वर्णन—

जै जै श्री वृन्दावन सहज सुहावनो ।

नित्य विहार अधार सदासन भावनो ॥

परम सुभग श्री जमुना पुलनि मंजुल जहाँ,

विमल कमल कल हंस सकल कूजि तहाँ ॥

^१ सवैया ८। तथा

एनुअल रिपोर्ट आन दी सर्व फार हिन्दी मैनुस्क्रिप्ट्स फार दि इयर १९०८ (यूनाइटेड प्रेस गवर्नमेंट), सख्या ३८।

^२ मिश्र वन्धु विनोद, पृ० ७५४।

^३ वही।

विमल कमल बल हस कूजित सेवक धग भृग सुय भरे ।
मुदित बन नव मोर नतत राजत अति रुचि सौं परे^१ ॥

भक्ति—

उनकी भक्ति का निम्नलिखित पद में मिलना ह
ओर बहुत अपनाइ जे मन यच प्रम अनसरे ।
मोसे पतित महा सठ ते अपने करे ॥
जसैं पारस परसन कचन जानिये ।
जसैं किये श्री नागरीदास निहच उर आनिये
आनि निहच जोनि यह सुय चरण कमल सेऊ सवा
ज श्री बह बिहारनिदासि प्रगट नित्य सिंधु सुधारस सबदा^२ ॥

नरहरि दास

राजी-संप्रदाय में स्थान—

ग्राउस वाली मखा-संप्रदाय की गिण्य-परपरा की सूची में इनका स्थान नवलदास के बाद ही लेकिन भागवत-संप्रदाय में इनका क्रम सरसनेव जी के बाद ह। भागवत-संप्रदाय में इनका नाम नरहरि देव जी दिया हुआ ह। इनके सवध में और कुछ बात नहा। नागरी प्रचारिणी सभा वाली प्रति में इनक भी पद मिलते ह।

सिद्धान्त के पद—

इनके सिद्धान्त के एक पद से इनकी भक्ति के स्वरूप का परिचय मिलता है। भगवान् के प्रेम को ही के एकमात्र सत्य मानते ह। विधि निषेध के चक्कर में, उनक मत से भगवान् का प्रेमी नहीं पठता।

जाकी मन मोहन दष्टि परे ।

सो तो भयो सावन को अधो सूक्षत रग हरे ।

जड चतय कछू नहि समझन जित देष तित स्याम परे ।

विहवल विकल सभारत तन की घूमत नन रूप भरे ॥

करनी अकरनी दोऊ सुधि भूले विधि निषेध सब रहे परे ।

श्री नरहरिदास जे भये धावरे ते प्रेम प्रवाह परे^३ ॥

^१ मगल, राग सूहा विलावल ५ ।

^२ वही १० ।

^३ सिद्धान्त के पद, राग सारंग १ ।

उनके दो निम्नलिखित दोहों में भी सिद्धान्त की बातें कही गई हैं ।
 नरहरि चाकी ज्ञान की मन मंदा करि पीसि ।
 पाचो इन्नी हाय करि तुरत मिले जगदीस ॥
 नरहरि माला जनेऊ नाव नें बेर केलि को साय ।
 जनेऊ कर्म जु की ये माला जपे जु हाय^१ ॥

रूपासक्ति—

भगवान् के प्रेम में विह्वल हो नरहरिदास उनके अनोखे रूप को देत के सुव-वृष खोए हुए हैं ।

सपी आज बने पिय सांवरे ।

रूप अनूप अधिक छवि राजत कुटिल केस मनों भांवरे ॥

टेढी पाग ग्रीवां कटि टेढी चितवनि को बलि जावरे ॥

श्री नरहरि दासि पिय की छवि निरपत प्यारी रूप समांव रे^२ ॥

एक दूसरे पद में दूल्ह-दुल्हनि के रूप में बैठे राधा-कृष्ण की छवि का रस-पान कर रहे हैं लेकिन उनका मन अतृप्त ही बना रहता है ।

कुंज महल के आगन वाजत सुपद बधाई ।

वीना नाद मृदंग मधुर सुर लागत परम सुहाई ॥

फूली सपी सब मंगल गावत आनन्द जर न समाई ।

करि सिंगार दूल्ह दुल्हनि बैठे उमंगि बड़ी अधिकाई ॥

श्री नरहरि दासि निरपि तून तोरत यह छवि वरनी न जाई ।

नैननि भरि सोभा रस पीवत पीवत मन न अघाई^३ ॥

नरहरिदास के निम्नलिखित पद में काव्यत्व का सुन्दर उदाहरण मिलता है । इन पक्तियों में व्यक्त भाव सूरदास की कविताओं की याद दिलाते हैं—

अरे कारे बदरा तोमें स्याम हिराने ।

ताहीं तें तू अंतर गव्यों विरहनि पीर न जानें ॥

परसि दकूल दामिनि अति चिमकत सत मष सारंग तातें ।

मंद मंद मुरली धुनि गाजत वाजत मदन निसानें ॥

रंग रंग मिलें सुष उपजत आन रंग क्यों वानें ।

श्री नरहरिदास ते अंतर कारे कारे सो रति मानें^४ ॥

^१ सिद्धान्त के पद १, २ ।

^२ राग सारंग ३ ।

^३ राग नट ६ ।

^४ राग नट ४ ।

रसिकदास जी—

नागरीप्रचारिणी वाली सुरक्षित प्रति में इनके भी पद मिलते हैं। इनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

सिद्धान्त के पद—

कल नहीं परत स्याम बिन देपें रहे प्राण चक चूरि ।
 कठनि अजोरन भई रूप की ओपदि लग तन भरि ॥
 भेदत नहीं ज्ञान गीता को सुनो कया भरि पूरि ।
 श्री रसिक विहारी को छवि उपरि किये जनन सब दूरि^१ ॥

काव्यत्व—

इनके पदों में काव्य गुण भी हैं। नाचे के पद में उनकी कल्पना की उड़ान देखने को मिलती है।

हा हा कारे धररा मेरो भरत नन को कजररा ।
 तेरे बरन कहूँ स्याम भुलाने आन कुज के उगरा ॥
 हो भाननि कछू मान कियो आन वान के पगरा ।
 श्री रसिक विहारी विहसि मिले तन युक्ति गई तपसि
 भ्रम गयो सगरा ॥^२

सापी—

उनकी सापी भी इस संग्रह में देखने को मिलती है। हम उनमें से दो को नीचे उद्धृत करते हैं।

मेरे जिय में पिय वसे म पिय के जिय भाहि ।
 यसी अधिको फौन हूँ जो जुगल चित्र पति जाहि ॥
 मो मन मोह सावरो मेरे नहीं विकार ।
 हों तोहि पूछें लाडिली ताको कहा विचार^३ ॥^१

किशोरीदास जी (ललित किशोरी)

सिद्धान्त के पद—

रसिक दास जी के गिण्य किशोरीदास जी के पद भी इस संग्रह में मिलते हैं। सापी व अन्तगत इनके बहुत से पद हैं। उनमें से कुछ नाचे उद्धृत किए जाते हैं।

^१ सिद्धान्त के पद राम विहागरा १।

^२ परम उल्लस शृंगार रस के पद, राग विहागरा ६। ^३ वही, ४, ५।

श्री वृन्दापन वाम, रंग नो जमुना रमहि अहार ।
 ललित प्रेम यो पाइहै, अद्भुत नित्य विहार ॥
 जो फोऊ उनके भये, तिन को मरि नहीं कोइ ।
 ललित किसौरी भाष सो, पावंगे निज मोइ ॥
 तन दोनो हरि मिलन को, ताकों यूया न षोइ ।
 ब्रह्मादिक बछन रहै, मोइ सुलभ भयो तोइ ॥
 जो चाहे हरि मिलन को, में मेरी को छोड़ ।
 में मेरी को चाधिके, बहुत भये है भोट ॥
 मिलत मिलत मित्रियो चहै, छिन छिन प्रीत नवीन ।
 कुंज विहारनि राषिके, ललित केकि लवलोन ॥

उनके त्रिये मुक्ति का कोई अर्थ नहीं, बल्कि वे मुक्ति को भी 'तारने' का तैयार हैं ।

जाऊ मुक्ति तो हूँ क्यों तारों ।
 अंग संग नित्य विहारनि हारों ॥
 गौर स्वाम हीये में धारों ।
 ललित प्रिये पै तन मन वारों ॥^१

गुरु-परिचय—

एफ० एम० शाउम^२ तथा बलदेव उपाध्याय^३ ने 'टट्टी सन्धान' वेदगर्वों की परंपरा वाले भक्तों की जो सूचिया दी है उनमें श्री ललित किशोरी जी के गुरु का नाम रसिकदाम अथवा रसिक देव जी दिया हुआ है । काशी नागरी प्रचारिणी मंडल में मुरक्षित उम संप्रदाय के भक्तों की वाणियों के संग्रह की जो हस्तलिखित^४ प्रति है उसमें लिखा हुआ है, 'अथ श्री स्वामी रसिकदाम जी के परम प्रिये नित्य श्री किशोरीदाम जी जिनकी बानी लिख्यते ।' संगृहीत पदां में 'ललित किसौरी' नाम है, जो और बाद में लिखा हुआ है 'अथ श्री ललितकिशोरी दास जी के परम उज्ज्वल निगार रस के पद लिख्यते ।'

^१ सिद्धान्त के पद : राग विहागरी, ९२ ।

^२ मयुरा : ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर (तृतीय संस्करण, मनु १८८३ ई०) पृ० २२१ ।

^३ भागवत संप्रदाय, पृ० ३५७ ।

^४ संख्या ३७१२६९ ।

इससे यही पता चलता है कि वे रसिकदास जी के शिष्य थे। लेकिन श्री वियागी हरि ने लिखा है 'इनके गुरु श्री राघारमणीय गोस्वामी राधा गोविन्द जी थे।' पता नहीं, श्री वियोगी हरि के ऐसा मानने का आधार क्या है।

जीवन-वृत्त

ब्रजमाधुरी सार^१ में इनका जीवन वृत्तान्त दिया हुआ है। उसके अनुसार ललित किशोरी जी का वास्तविक नाम साह बुदन लाल जा था जो साह विहारी लाल जी अग्रवाल के पुत्र थे। साह विहारी लाल जी नवाब के जौहरी थे और लखनऊ के रहने वाले थे। ललित किशोरी जी के पिता की दो स्त्रिया थीं। पहली से साह रघुवर दयाल जी और साह मकबूलाल जी दो पुत्र हुए और दूसरी से कुन्दनलाल जी और उनके भाई फुन्दनलाल जी हुए। इन दोनों भाइयों में बहुत प्रेम था। इन दोनों भाइयों ने गहकलह के कारण लखनऊ छोड़ दिया और वृन्दावन में आ बसे। इन दोनों भाइयों के सबब में गोस्वामी श्री राधाचरण जी लिखते हैं

छोड़ि बादागाही बभय लक्ष्मणपुर त्याग्यो ।

श्री वृन्दावन वास दृढ़व्रत, अति अनराग्यो ॥

'ललित निकुञ्ज' बनाय राधिका रमन विराजे ।

रास बिलास प्रकाश लच्छपद रचना भ्राजे ॥

ब्रजराज मध्म समाधि लिय, जुगल भ्रात निभय निपुन ।

श्री ललितकिशोरी, ललितमाधुरी प्रेम मूर्ति बदाधिपिन^३ ॥

इस प्रकार से कुन्दन लाल जी 'ललित किशोरी' और 'कुन्दनलाल जी' ललित माधुरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन दोनों भाइयों ने लीला सत्रघी अनेक सरस पदा की रचना की है। ललित किशोरी जी के पर अत्यन्त मनोरम और सजीव हैं। प्रेम का सुन्दर चित्रण इनके पर में मिलता है।

'उज्ज्वल सिंगार रस के पद—

बागी नागरीप्रचारिणी मभा वाली हस्तनिमित्त प्रति में "उज्ज्वल सिंगार रस के पर मिलते हैं। उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत किए जाते हैं।

^१ ब्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण) पृ० २६८ ।

^२ वही, प० २६७-६८ ।

^३ नव भक्तिमाल (ब्रजमाधुरी सार पृ० २६७ पर उद्धृत)

सुष कौ सार समूह किसोरी ।

रूप निधान रंग कौ सागर परम विचित्र महा अति भोरी ॥

छिन छिन लाल करत आधीनी सद प्रसन्न रहो तुम गोरी ।

श्री कुंज विहारनि ललित लाडिली तुम बिनु और कहो मेरो कौसोरी^१ ॥

एक दूसरा पद—

हमरें वांट परी मुसिकानि ।

निरषे केलि निकुंज माधुरी अद्भुत रस की खानि ॥

अंग संग श्री हरिदासि रसिक वर सहज सुभाइक वानि ।

अपनी जानि विहारनि दासी दियो प्रेम सुष सानि^२ ॥

रूपासक्ति—

भगवान् की रूप माधुरी से आँखें मत्त बनी हुई घूम रही हैं .

घूमत नैन रूप रस माते ।

चाहत मिल्यो मिलन ही की रति छिन छिन प्रति हलसाते ॥

परम उदार सिरोमनि सुष निधि मंद मंद मुसिकाते ।

अपनो जानि ललित के हित सों इनि ही के रंग राते^३ ॥

श्री राधिका जी ही उनके लिये सब कुछ है ।

स्यामा प्यारी राधिके सुष रासि हमारी ।

रोम रोम तन मन मिली अति ही हितकारी ॥

अद्भुत प्रेम प्रकासिनी निज प्रीतम प्यारी ।

ललित किसोरी प्रान है यह जीव जियारो^४ ॥

लीला के पद—

इनके लीला के पद अनेक हैं और उनमें एक अद्भुत माधुरी है ।

मैं तेरे संग मुरली स्याम बजाऊं ।

ऐसेई पिय सब छेदनि पै, अंगुरी चपल चलाऊं ॥

पंचम रिषभ निषाद सुरनि लौं, संग सग टीष लगाऊं ।

ललित किसोरी ईमन, काफ़ी, सोरठ गाय सुनाऊं^५ ॥

^१ नवभक्तिमाल, राम पूरबी, संख्या २० ।

^२ वही, राग काफ़ी, सत्या ४४ ।

^३ वही, राग, सोरठ, सत्या ६१ ।

^४ वही, पद सत्या १०१ ।

^५ ब्रजमाधुरी सार, ईमन २८, पृ० २७५ ।

भक्ति—

इसी प्रकार से सब कुछ छोड़ कर भगवान् की भक्ति का ही उन्होंने शरीर धारण करने का फल बतलाया है।

लाभ कहा कचन तन पाये ।

भजे न महुल कमल-दल लोचन, बुख-मोचन हरि हरिपि न ध्याये ॥

तन-मन-धन अरपन ना कीहें, प्रान प्राणपति-गुननि न गाये ॥

जीवन, धन, कलघौत धाम सब, मिथ्या आपु गवाम गवाये ॥

ललित किसोरी मिट तापना, विन दुढ़ चितामणि उर लाये^१ ॥

“ललित माधुरी” के पद—

नीचे ललित माधुरी जी के दा पद उद्धृत किये जाते हैं जिनसे इनकी कवित्व शक्ति का पता चलता है।

बाकी अदा प म बलिहारी ।

बाकी पाग, बैस लट बाकी, बाकि मुकुट-छवि प्यारी ।

बांकी धाल, बाकिही चितवनि, बाकि मुरलिका धारी ॥

कह लौ ललित माधुरी धरनी, आपुहि बाके बिहारी^२ ॥

मोहन घोर पकरि बसे पाऊ ।

देखत हौं दुग भरि भरि सजनी, परसन का रहि रहि कलचाऊ ॥

दुरयो निकुञ्ज लता बन-बीषिनि निपट निफट म तोहि बताऊ ॥

ललित माधुरी ही में जो सग, चित घोर हौं आनि मिलाऊ^३ ॥

भगवत रसिक

काळ और गुरु परिचय—

मिश्रवधु विनोद^४ में इनका समय स० १६२७ बतलाया गया है। वियागी हरि जी^५ ने इनका जन्म-संवत् अनुमानत १७९५ बतलाया है। बलदेव उपाध्याय ने भी वियागी हरि जी के मत को स्वीकार किया है और उनका

^१ ब्रजमाधुरीसार विहार २३ प० २७४।

^२ बहा, सारठ ४ प० २७९।

^३ बही जिला ५ प० २७९।

^४ मिश्रवधु विनोद, प० ३६२।

^५ ब्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण), प० २१८।

जन्म स्थान सागर जिले का गढ़नाटा ग्ग्यान बनवाया है^१। ये टट्टी संप्रदाय के अन्तिम आचार्य श्री ललित मोहिनी जी के गिण्य थे। कहते हैं कि पहले ये गणेश जी के उपासक थे। प्रसन्न होकर गणेश जी ने इन्हें श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति "नयी भाव" से करने के लिये उपदेश दिया। निम्नलिखित पद से इस बात का स्पष्ट मिलता है :

हम वर गुरु गनेस हैं दोनो ।

जम भरि मूंड किराय मोम पर नसकार मुभ कीनों ।

आनंदघन को पद दरसायो, दम्पति-रति-रम भीनों ।

'भगवत् रसिक' लहँती-रागलन ललित भुजन भरि गीनों ॥

अनासक्त भाव—

कहते हैं कि टट्टी मन्थान के अन्तिम आचार्य उनके गुरु ललित मोहिनी जी के बाद भक्तों ने भगवन् गनिक ने बहुत ही आग्रह किया कि वे गद्दी का अधिकार लें, लेकिन उन्होंने स्वीकार नहीं किया और निर्लिप्त भाव से भक्ति-भावना में लगे रहे। रात-दिन भगवद् भजन में ही लगे रहे। इनमें अनन्य भक्ति थी।

रचनाएँ—

इनके पद दोनो प्रकार के हैं। एक ओर जहाँ वैराग्य का सुन्दर वर्णन मिलता है तो दूसरी ओर शृंगार का भी सुन्दर वर्णन मिलता है। इनकी पाच रचनाएँ बतलाई जाती हैं (१) अनन्य निश्चयान्मक^३ (लावलऊ निवामी लाल केदार नाथ जी वैश्य ने छपवा कर वितरण किया था), (२) नित्य विहारी युगल व्यान, (३) अनन्य-रसिका-भरण (४) निश्चयात्मक प्रय उत्तराव (५) निर्वोव मनरजन।

भगवद् भक्ति का रस—

भगवद् भक्ति के रस को समझने के लिये वैना ही रसिक होना चाहिए अन्यथा उस रस का आस्वादन संभव नहीं। भगवत् रसिक जी ने कहा है :

^१ भागवत् संप्रदाय, पृ० ३५८।

^२ वही, पृ० ३५८।

^३ ब्रजमावुरी सार, पृ० २२०।

तव मुख-शमल नयन अलि मेरे ।
 पलक न लगत पलकु बिनु देखे
 अरबरात अति फिरत न फेरे ।
 पान करत मकर-द रूप रस
 मूल नहीं फिर इत-उत हरे ।
 भगवत रसिक भये मतवारे ।
 घूमत रहत छके मद तेरे ॥^१

इस रहस्य को मय लोग नहीं समझ सकत
 'भगवत रसिक' रसिक की बानें
 रसिक बिना कोउ समझि सक ना ॥^२

क्योंकि भगवान् की कृपा से जिहें यह वस्तु प्राप्त हो जाती है उनका हृदय पवित्र प्रेम से भर जाता है और उनके लिये स्त्री-पुरुष का भेद मिट जाता है

यह दिव्य प्रसाद प्रिया प्रिय की ।
 बरसत हों मन भोव बढ़ावत परसत पाप हरत हिय की ।
 पावन परम प्रेम उपजावत, भुलवत भाव पुरुष तिय की ॥
 'भगवत रसिक' भाव तो भूपन, तिहि छन टोन जुगुल जिय की ॥

भगवान् के उस भक्त के लिये उपामना, पूजा-पाठ तीर्थ व्रत विधि निषेध कोई अर्थ नहीं रखते ।

सखी जिन लाल की मुसवमान ।
 तिनहि बिसरो वेद विधि, जप, जोग, सयम ध्यान ।
 नेम, शत, आचार, पूजा पाठ, गोता - ज्ञान ।
 'रसिक भगवत' दूग बई अस्ति, ऐंचिके मुख म्यान ॥^४

वृन्दावन—

भगवत रसिक जी ने बतलाया है कि उनका वृन्दावन उनके हृदय में है और वही भगवान् की नियम विहार-लाला चली रहती है ।

^१ अन्वय निश्चयात्मक प्रथम लीटी २ ।

^२ वही, टीटी ३ ।

^३ वही, पद ३ ।

^४ वही, पद ४० ।

हमारो बृन्दावन उर और ।

माया काल तहा नहिं व्यापै, जहां रसिक सिर मौर ।

छूटि जाति सत-वसत-वासना, मन की दौरादौर ।

‘भगवत रसिक’ वतायो श्री गुरु, अमल अलौकिक ठौर ॥^१

सिद्धान्त के पद—

कोई राधा को स्वकीया, कोई परकीया कहता है लेकिन वे भूल करते हैं। वह सहज प्रेम है। वहाँ स्वकीया-परकीया दोनों कोई भी अर्थ नहीं रखते। ॥

कोउ सुकिया कोउ परकिया कल्प किये मतवादि ।

जोरी भगवत रसिक की नित्य अनन्त अनादि ॥

नित्य अनन्त अनादि लोकतें रीति विलच्छन ।

श्रुति सुमृति विलगाइ देखि अनुभव के अच्छन ॥

सहज प्रेम माधुर्य रहत अनुरागे दोऊ ।

ललिता सखी प्रसाद बिना तहं जात न कोऊ ॥^२

इन्होंने कुडलिया छद भी बहुत से लिखे हैं। एक कुडलिया नीचे उद्धृत कर रहे हैं जिससे इनकी उदार मनोवृत्ति का पता चलता है :

जाको जैसी लखि परी तैसी गावै सोय ।

बीथी भगवत मिलन की, निहचय एक न होय ॥

निहचय एक न होय, कहै सब पृथक् हमारी

स्रुति स्मृति भगौत, सखि गीतादिक भारी ॥

भूपति सवनि समान, लखै निज पर जा ताको ।

जाको जैसे भाव, सुभासै तैसी ताको ॥^३

श्री राधिका की चरणों की शोभा अपूर्व है। वह भक्त के हृदय को सौन्दर्य से भरती जाती है।

जावक युत युग चरण लली के ।

अद्भूत अमल अनूप दिवाकर मोहन मानस कंजकली के ।

मंजुल मृदुल मनोहर सुखनिधि सुभग सिंगार निकुंज गली के ।

सुरतरु कामधेनु चिन्तामनि भगवत रसिक अनन्य अली के ॥^४

^१ अनन्य निश्चयात्मक ग्रथ, पद ४१ । ^२ वही, कुण्डलिया ४, पृ० ८० ।

^३ वही, कुण्डलिया १६ ।

^४ वही, राग काफी, ३३ ।

सहचरी शरण

गुरु परिचय तथा रचनाएँ—

सहचरिणरण जी सखी सम्प्रदाय के एक बहूत बड़े महात्मा हा गए हैं। टट्टी सम्थान की गुरु-परंपरा में इनका स्थान बारहवा है। ये श्री राधिका दास जी के गिष्य थे और इनका असली नाम सखीगरण था। बियोगी हरिजी इनका जन्म-बाल विभ्रमीय सवत उन्नीसवी गताब्दी का उत्तराय मानते हैं।^१ इस सम्प्रदाय के महता और महात्माआ के सबध में उन्होंने 'ललित प्रकाश' ग्रंथ की रचना की है जिससे इस सम्प्रदाय की बहुत-सी बातों की जानकारी प्राप्त होती है। 'गुरुप्रणमणिया' ओर 'आचार्योत्सव सूचना' दोना ललित प्रकाश में वर्णित हैं और इस सम्प्रदाय की दृष्टि से ये अग बड़े महत्व के हैं। स्वामी हरिदास जी से लेकर श्री ललित भोहिनी जी तक का ही वर्णन अपने ग्रंथ में किया है। लगता है जैसे इन्ही अष्टाचार्यों के साथ टट्टी सम्थान के महत्व को वे समाप्त मानते हैं। इनकी फुटकल रचनाएँ भी मिलती हैं। ललित प्रकाश के अलावा इनका दूसरा नाम स्वतंत्र ग्रंथ 'सरसमजावली है। इनके काव्य की विशेषता—

इनकी रचनाएँ अत्यन्त सुंदर हैं। उनमें काव्य का चमत्कार देखने को मिलता है। इनकी भाषा में ब्रजभाषा फारसी पंजाबी खड़ी बोला आदि सभी के दान हाते हैं। भगवान् से प्राथना करत हुए वे कहते हैं

निरदय हृदय न होहु मनोहर सदय रही मनभावत ।
नवल मोहिला मोहि तज जिनि, तोहि सौह प्रिय पावन ॥
रसिक 'सहचरी सरन' स्याम धन रस बरसावन सावन ।
बरस देहु घर बदन-चंद्रमा, छल चकोर विलसावन ॥^२

भगवान् के सौन्दर्य पर मुग्ध हुए बिना भक्त हृदय रह नहीं सकता।

दृग जलजात रसिले हसि हसि ललचत नहि मन का के ।
उर चटपटी लगावत छिन छिन यन मन भय ताक ॥
बरवस प्रान हरत निरखौरी भुल बिलास मधु छाके ।
सहचरिणरण दीरि कोउ राकी डारत फड प्रभा के ॥^३

^१ ब्रजमाधुरी सार, (अष्टम संस्करण), पृ० २४५।

^२ सरसमजावली, पद सख्या १५, पृ० १०।

^३ वही, पद सख्या ४८, पृ० २९।

रूपासक्ति—

भगवान् की त्रिभग-मूर्ति उनके हृदय में बसी हुई है ।

कटि किंकिनि, सिर मोर मकुट वर, उर वनमाल परो है ।

करि मुसिवयान चकाचौंधी चित, चितवनि रंग-भरी है ॥

‘सहचरिसरन’ सुविस्व-विमोहिनी, मुरली अघर घरी है ।

ललित त्रिभगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरी है ॥^१

(घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कवि

हितहरिवंश—

उपासना में श्री राधा की प्रधानता—

हित हरिवंश जी श्री प्रिया प्रियतम के चरणों के उपासक थे । श्री राधा जी को प्रधान मानते थे । ये रामकृष्ण जी की उपासना किया करते थे और उन्हीं का ध्यान करते, लेकिन प्रधान श्री राधा जी को ही मानते थे । कहते हैं कि स्वप्न में श्री राधाजी से उन्होंने मंत्र ग्रहण किया था ।

भक्तमाल में वर्णित इनका परिचय—

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के ये प्रवर्तक थे । राधावल्लभीय सिद्धान्त का प्रवर्तन कर उन्होंने भक्ति की एक नई धारा चलाई । नाभा जी के “भक्तमाल” में इनका परिचय देते हुए कहा गया है ।

(श्री) राधाचरण प्रधान हृदं सुदृढ उपासी ।

कुज केलि दंपति, तथा की करत खवासी ॥

सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी ।

विधि निषेध नहिं, दाम अनन्य उतकट व्रतधारी ॥

व्यास सुवन पथ अनुसारै, सोई भले पहिचानिहै ।

(श्री) हरिवंश गुसाई भजन की, रीति सकुत कोउ जानिहै ॥

इसकी व्याख्या में चार्तिक तिलककार ने लिखा है कि ‘गुसाई श्री हित-हरिवंश जी के भजन की रीति विरला ही कोई जान सकता है । ये श्री प्रिया प्रियतम के चरणों के उपासक थे । श्री राधा जी को प्रधान मानते थे ।

^१ सरस मञ्जावली, मज ३८ ।

^२ भक्तमाल (लखनऊ, दूसरी बार प्रकाशित) सन् १९२६ ई० छप्पय-सं० ९० पृ० ६०३-४ ।

आपके हृदय में अति सुदृढ भक्ति थी। दम्पति के कुजकेलि की विशेष ककय-भावना सखी भाव से किया करते थे। श्री महाप्रसाद में आपका विश्वास प्रसिद्ध है, उसके बड़े अधिकारी थे क्योंकि महाप्रसाद का अपना मवस्व जाते थे। 'विधि निषेध (सामान्य घम) पर चित्त न देकर भावित घम (विशेष घम) मालाकठी अनन्य भक्ति का उत्कट व्रत मन में रखकर श्री राधाकृष्ण की बड़ी भाग्यवती दासी रह। श्री व्यास सुवन (श्री १०८ शुक्रदेव जी) के तथा आपके माग पर चलन वाला ही भाग्य भाजन इस पय का पहिचान सकता है और प्रायः प्रेमी रसिक जन कोई-काई जानते हैं।'

भक्तमाल से पता चलता है कि 'विधि निषेध' को मानकर चलना वै आवश्यक नहीं मानते थे उनके लिये अनन्य भक्ति ही सत्र कुछ थी। सखी भाव से ही उन्होंने राधाकृष्ण की सेवा की। श्री राधा को ही प्रधान स्थान उन्होंने दिया।

जीवन-वृत्त—

ये गौड़ ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम व्यास जी और माता का नाम श्री तारान्देवी था। इनके पिता 'बादगाह के नौकर भारी अधिकार वाले थे'। इनका जन्म विक्रमो सवत् १५५९ में हुआ^१। श्री राधावल्लभीय पंडित गोपाल प्रसाद ग्राम ने इनका जन्म सवत् १५३० माना है। लेकिन वियोगी हरि जी ने दिखलाया है कि सवत् १५३० को उनका जन्म सवत् मानना ठीक नहीं बैठता। उनका लीला-सवरण स० १६५० के लगभग वियोगी हरि जी मानते हैं^२। इनके पिता देवनन्द (सर्कार सहारनपुर) के वासी थे। श्री वियोगी हरि का कहना है कि श्री हितहरिवंश जा का जन्म बाद ग्राम में हुआ था। यह ग्राम भयुरा स चार मील दक्षिण है। यहाँ प्रति वर्ष उनकी जयन्ती मनाई जाती है।

गोसाइ हित हरिवंश जी के चार पुत्र और एक कन्या थी। सबसे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी वे अनासक्त थे। कहते हैं कि सवत् १५८२ में इन्होंने

^१ भक्तमाल पृ० ६०४-५।

^२ वही, प० ६०६।

^३ वही, प० ६०६।

^४ ब्रजमाधुरी-सार (अष्टम सस्वरण), प० ६४।

^५ वही प० ६४।

^६ वही प० ६३-६४।

श्री राधावल्लभ जी का श्री विग्रह वृन्दावन में स्थापित किया^१। इन्हें श्रीकृष्ण की वशी का अवतार मानते हैं। इन्होंने राधा-कृष्ण के त्रिशुद्ध शृंगार का वर्णन किया है। सस्कृत और ब्रजभाषा की उनकी रचनाएँ अपूर्व हैं।

भगवत्प्रेम का सरस वर्णन—

उनके पदों में उनकी दृढ़ भक्ति का सुन्दर मरस वर्णन है। कोई कुछ भी कहे, वे तो अच्छी तरह से समझ कर प्रकट रूप में अपने प्रियतम के प्रेम में वेसुव हैं। उन्हें छिपने-छिपाने की आवश्यकता नहीं। आखिर उन्हें भय ही किस बात का है।

मोहन लाल के रंग राची ।

मेरे रयाल परी जिन कोऊ, बात दसौं दिमि माची ॥

कन्त अनत करो कि न कोऊ, नाहिं धारना साची ।

यह जिय जाहु भले सिर ऊपर, हौं तु प्रगट ह्वं नाची ॥

जाग्रत सयन रहत ऊपर मनि, ज्यो फचन सग पांची ।

“हित हरिवंस” डरौं कामे डर, हौं नाहिन मति काची^२ ॥

प्रेम में वेसुव होकर प्रेमी को मनाए, समाज के नियमों की चिन्ता ही क्या? उनके लिये प्रियतम ही सब कुछ है। हित हरिवंश जी को इस बात की चिन्ता नहीं कौन किसमें मन लगाए हुए है। उनके लिए तो राधा कृष्ण ही सब कुछ है।

रहौं कोऊ काहू मनहि दिये ।

मेरे प्राननाय श्री त्यामा, सपय करौं तिन छिये ।

जे अवतार कदंब भजत है, धरि दृढव्रत जु हिये ।

तेऊ उमगि तजत मरजादा, वन-विहार-रस पिये^३ ॥

राधावल्लभ के मुख-कमल, उनकी रूप-माधुरी के दर्शन ही उनके लिये सब कुछ है। उनका ध्यान उनके नाम का जाप और वृन्दावन का वास ही ‘हित हरिवंश’ जी के लिये अभिलषित वस्तु है।

निकसि कुंज ढाढ़े भये, भुजा परस्पर अंस ।

राधा बल्लभ-मुख-कमल, निरखत ‘हित हरिवंस’ ॥

^१ ब्रजमाधुरी-सार (अष्टम सस्करण), पृ० ६५ ।

^२ वही, सिद्धान्ती पद, विलावल ६ ।

^३ वही, भैरवी ७ ।

सब सौं हित निहकाम मन, बूदायन बिलाम ।
 राधावल्लभ लाल को हृदय ध्यान, मुख नाम ॥
 रसना कटौ जु अन रटौ, निरखि अन फुटौ नन ।
 खवन फुटौ जो अन सुनौ, विनु राधा जसु बन^१ ॥

रूपासक्ति—

श्री राधा जी की छवि पर, उनके अग-अग की माधुरी पर कृष्ण मुग्ध हैं ।
 अप्रुव है वह मौन्द्य । हित हरिवंश जी ने इस रूप माधुरी का जा वणन
 किया है वह अत्यन्त कोमल और मधुर है ।

ब्रज-नवतरुनि-कदव मुकुट-मनि स्पामा आजु बनी ।
 नख सिख लौ अग-अग माधुरी मोहे स्पाम धनी ॥
 यों राजन कबरी गूयित कच बनक कञ्ज बदनी ।
 चिकुर चद्रकनि धोच अरथ बिपु मानों प्रसत फनी ॥
 सौभग रम सिर खयत पनारी पिय सौमत ठनी ।
 भ्रकुटि काम को दड, नन सर, कञ्जल रेख बनी ॥
 भाल तिलक, ताटक छड पर नासा जलज मनो ।
 बसन कुन्द, सरसाधर पल्लव पीतम-मन-समनी ।
 चिद्रुक मध्य अनि चार सहज सखि सामल बिदु बनी ।
 प्रीतम प्राण रतन सपुट कुच कचुकी कसि बननी ।
 भुज मुनाल धल हरित बलय जुत परस सरस श्रवनी ॥
 न्याम सौस तर मनो मिड वारी दचि हचिर खनी ।
 नानि गभीर मोन मोहन मन खैलन को हूवनी ।
 कृष्ण कटि पृष्ण निनव किकिनि बत बदलि खम जयनी ॥
 पद अगुज जावक जुम भूपन प्रीतम उर बवनी ।
 नव नव भार विलोभ भासगम विहरत धर करनी ॥

(ज धी) 'हित हरिवंश' प्रससित स्पामा को रनि बिसद धनी ।

गावत खवननि गुनन मुखाशर विस्व-धुरित-बवनी ॥^२

इस रूप पर भला कौन मुग्ध न हो । सभी माहित हा जान है । पगु
 पगी, देवताया की स्त्रियाँ, तारागण, कराडा कामन्व सनी का मा लुट
 जाता है ।

^१ सिद्धान्तो पन् दाहा १०, ११ १२ ।

^२ हितचौरामा दव गपार २९ ।

देवत मधुकर कोरी । मोहे लग मगवेली ।
 मोहे मृग धेनु गहिन मुर सुन्दरि प्रेम मगन पद छूटे ॥
 उडगन चकित थकित सति मउल कोटि मदन मन छूटे ॥
 अधर पान परिरंभन थति रस आनन्द मगन सहेली ॥
 जे श्री हित हरिवंश रमिन मनु पावन देवत मधुकर केली ॥^१

रचनाएँ—

हित हरिवंश जी की सुप्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं ।

(१) राधा मुधानिधि,^२ (२) हित चौरासी,^३ (३) आशागन्ध (४) चतुश्लोकी (५) श्री यमुनाटक (६) राधा-नाग^४ (७) वृन्दावन मतक,^५ हित मुग्धनागर।^६ इन रचनाओं में राधा मुधानिधि और हित चौरासी को ही अधिक ग्याति मिली। राधा मुधानिधि में २७० मंत्रान के श्लोक हैं। इसमें श्री राधा की प्रयम्नि, उनका मोन्दर्य एवं भेदाभाव का विन्तार से वर्णन किया गया है। हित चौरासी में ८४ ब्रजभाषा के पद हैं जिनमें सिद्धान्त मवधी पद, तथा युगल-रूप की रूप-माधुरी तथा भेवा-माधुरी का सुन्दर कवित्वमय वर्णन है। इनके अन्य ग्रंथों में हृदय पक्ष को प्रधानता होती हुए भी कला-पक्ष की अवहेलना नहीं हुई है। अव्यात्म-पदा का विवरण इन ग्रंथों में कम है। भवत हृदय को मुग्ध करने वाली राधाकृष्ण की कुज-केलि और वन-विहार के ही ललित वर्णन हैं।

हरिराम शुक्ल 'व्यास'—

इनकी भक्ति का स्वरूप और जीवन-वृत्त—

ये राधावल्लभीय सम्प्रदाय के थे लेकिन अन्य सम्प्रदायों के प्रति इनकी समादर की दृष्टि थी। मन्तों के सेवक थे। इनके सम्बन्ध में नाना प्रकार की कहानियाँ प्रचलित हैं जिनसे पता चलता है कि उनमें अनन्य भक्ति थी,

^१ हित चौरासी, सारंग ६३।

^२ हिन्दी अनुवाद के साथ बाबा हितदान ने वाद ग्राम, पोस्ट बरारी, जिला मथुरा से इसका प्रकाशन किया है।

^३ ब्रजभाषा में निवद्ध चौरासी पद।

^४ यह ग्रंथ भी इनके नाम से प्रसिद्ध है।

^५ लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण १८९४।

^६ श्री नारायण अलीगढ़, १९३६।

विधि निषेध का उनकी दृष्टि से कोई मूल्य नहीं था, तथा जात पात के पसंदा से वे बरी थे। श्री राधा जी की रूप-माधुरी तथा उनकी लीला में ही मस्त रहते हुए उन्होंने सारा जीवन वन्यावन में बिता दिया। वैसे वे ओरछा के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम सुमोहन गुल था। पैतालीम बप की अवस्था में आरछा छोड़कर वृन्दावन आए। यह घटना सन् १६१२ की है।^१

वृन्दावन तथा भक्तों का महत्व—

ये हितहरिवश जी थे अनन्य भक्त थे। वृन्दावन में आपकी विरोध निष्ठा थी। वे न स्वयं वन्यावन छोड़ने की बात सोचते और न दूसरे सता को सोचने देते। भक्ता का स्थान उनकी दृष्टि में भगवान् स भी बन्द कर था, फिर भक्ता की जाति देखने का प्रश्न वहाँ उठता।

‘व्यास’ कुलीननि कोटि मिलि, पडित लाख पचीस ।

स्वपक्ष भक्त की पानहीं, तुल न तिनक सौस ॥

‘यास’ मिठाई बिप्र की, तामें लाग आगि ।

वृन्दावन के स्वपक्ष की, जूठनि खये मागि ॥^२

भक्तमाल में वर्णित इनका परिचय—

हरिराम जी हरिभक्तों को अपना इष्ट मानते। ‘भक्तमाल’ में कई प्रसंगा का उल्लेख है, जिनमें इनके दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण हो जाता है। भक्तमाल के अनुसार कई भगवान के मत्स्य, कई वाराह कोइ गृसिह तथा वामन परशुरामादि अवतारा की आराधना करते हैं लेकिन व्यास जी महाराज सन्ता की ही आराधना किया करते थे। कहते हैं कि एक रात घरद् पूना के राग रहस्य ममाज के समय श्री प्रिया जी का नूपुर टूट गया वही उसी क्षण अपन बध का नवगुण अर्थात् (मनापवीत) तोड़कर उसी स श्री पद पवज व घुघरु का गूष कर आपने ठीक कर पहना दिया।^३

बाहू के आराध्य मच्छ बच्छ, नरहरि सूकर ।

धामन, फरसापरन, सेत बघन, जु सलकर ॥

^१ भक्तमाल, पृ० ६११ ।

^२ भक्त कवि व्यास जी साक्षी हरिजन महिमा २३, २५ ।

^३ भक्तमाल (लग्ननऊ दूमरी बार प्रकाशित, सन् १९२६ ई०), छप्पय रां० ९२ पृ० ६१० ।

एकन कॅ यह रीति नेम नवधा नो लायें ।
 सुकुल सुमोसन मुवन अच्युत गोत्री जू लड़ायें ॥
 नौगुण तोरि नूपुर गुह्यी महत सभा मधि रास के ।
 उतकर्प तिलक अरु दाम की, भवत इष्ट अति 'व्यास' के ॥^१

रचनाएँ—

हरिराम शुक्ल 'व्यास' जी की दो कृतियों का पता चलता है (१) व्याम वाणी (ब्रजभाषा के लगभग ७०० पद, इमे आचार्य राधाकिशोर गोस्वामी ने सं० १९९४ मे प्रकाशित किया है, (२) नव रत्न, यह संस्कृत में मप्रदाय के सिद्धान्तों का निदर्शक ग्रंथ है जो अभी तक अप्रकाशित है ।

संयोग-वर्णन—

इनके पद अति भाव-पूर्ण तथा ललित हैं, स्वामिनी (श्री राधा) पिय (श्रीकृष्ण) नाचना सिखा रही हैं । इधर रस की स्रोतस्विनी में प्रियतम गोता लगा रहे हैं । उधर मान के 'लकुट' का ध्यान उन्हें भयभीत कर रहा है :
 (राग कैदारी)

पिय को नाचन सिखावत प्यारी ।

वृन्दावन में रास रच्यो है, सरद-चन्द-उजियारी ।

मान गुमान लकुट लिये ठाढ़ी, डरपत कुंजबिहारी ।

'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, हंसि-हंसि दै करतारी ॥^२

उनकी स्वामिनी ऐसी है जिनका नाम मुरली में ले लेकर श्याम वरावर याद किया करते हैं । उन्होंने करोड़ो रूप (छद्म वेश) धारण किया लेकिन पार नहीं पाते ।

(राग कान्हरी)

परम धन राधा नाम अघार ।

जाहि श्याम मुरली में टेरत, सुमिरत चारंवार ।

जंत्र-मंत्र अरु वेद-तंत्र में सर्व तार की तार ।

श्री सुक प्रगट कियो नहिं यातें जानि सार की सार ॥

^१ भक्तमाल (लखनऊ, दूसरी बार प्रकाशित, सन् १९२६ ई०) छप्पय सं० ९२ पृ० ६०९-६१० ।

^२ भक्त कवि व्याम जी (सम्पादक वासुदेव गोस्वामी), सरद रासोत्सव ६२२ ।

फोटिन रूप धरे नद-नदन तऊ न पायो पार ।
व्यासदास अब प्रगट बलानत, डारि भार में भार ॥^१

ब्रज के प्रति भक्ति—

ब्रज के प्रति उनकी भक्ति घरम तक पहुंच गई थी। बन्दावन में रहने के लिये वे सब कुछ सहने का तैयार थे। साधुआ के पत्तल चुन चुन कर जूठे भात से पट भरकर घूर के चीयडा से शरीर की रक्षा कर के बन्दावन में रहने के अभिलाषी थे।

ऐसे हीं बसिए ब्रज-बोधिनि ।

साधुन के पनवारे चुनि चुनि, उदर पोषियत सोयिन ।

घूरनि में के बीन चिनघटा रखया बीज सीतिति ।

बुज-कुज प्रतिलता लोटि उड, रज लागे अगो यिनि ।

नितप्रति दरस स्याम-स्यामा कौ, नित जमुना-जलपोतिनि ।

ऐसेह 'व्यास' होत तन पावन, ईहि विधि मिलत अतीतिनि ।^२

ध्रुवदास—

रचनाएँ—

ध्रुवदास जी के चालीस ग्रंथों की मूची श्री वियोगी हरि जी ने दी है^३। उनमें कुछ के नाम या हैं बन्दावन-सत, सिंगार-सत रस रत्नावली, नेह मजरी रतिमजरी, वन-विहार रग विहार, रस विहार, भारत-लीला प्रेमलता, प्रेमावली, भजन-कुडलिया, भक्त नामावली, प्रीति चौबनी रमानद लीला हित सिंगार लीला, ब्रज लीला, जीव-दशा, वैद्य लीला, दान लीला आदि। मन गिह्या स्याल हुलास लीला तथा बयालीस बानी भी ध्रुवदास के नाम से प्रसिद्ध हैं वैसे यह सदेहास्पद है कि ये ग्रंथ उन्हीं के द्वारा रचित हुए या नहीं। ऐतिहासिक दृष्टि से 'भक्त-नामावली' अधिक महत्व की रचना है।

गुरु परिचय—

कहते हैं कि स्वप्न द्वारा ये हिन हरिविग जी के गिह्य हुए। गुरु के प्रति इनकी बड़ी भक्ति थी। ये बन्दावन में बहुत काल तक रहे। उनका

^१ भक्त कवि व्यासजी (सम्पादक वासुदेव गोस्वामी) सिद्धान्त, नाम की स्तुति, ३१।

^२ भक्त कवि व्यास जी, सिद्धान्त ९७।

^३ ब्रजमाधुरी सार (जन्म सस्करण) प० १६०।

वारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। 'रास मर्वम्ब' में यह लगता है कि ये रामलीला के बहुत बड़े अनुरागी थे और करहलां ग्राम के ये वासी थे। संभवत इनका जन्म स० १६४० में हुआ और गोलोक वान मवत् १७४० के लगभग है।

माधुर्य-भाव—

कृष्ण की मधुर लीला के ये अनुरागी थे। इनके काव्य में उनके माधुर्य भाव की उपामना का पता चलता है। इनका काव्य अत्यन्त सरम और मधुर है। वृन्दावन इनको अत्यन्त प्रिय था।

वृन्दावन—

यह वृन्दावन सब लोको में अलग है।

न्यारी है सब लोक तें वृन्दावन निज गोह।

लसत लाडिली लाल जह भीजे सरस मनेह ॥

गौर स्याम तन मन रगे प्रेम स्वाद रस सार।

निकसत नहि तिहि ऐन तें अटक सरम विहार ॥^१

रूपासक्ति—

स्वामिनी (श्री राधा) जी के रूप को देग कर भक्त कवि का हृदय विभोर हो उठा है। विचित्र है वह शोभा।

बड़े बड़े उज्ज्वल सुरंग अनियारे नैन अंजन की रेख हेरे हियरो सिरात है।

चपलाई खंजन की अरुनाई कंजन की उजराई मोतिन की पानिप लजात है।

सरस सलज्ज नये रहत हं प्रेम भरे चंचल अंचल में कैसे हूं समात है।

हित ध्रुव चितवनि छटा जिहि कौद परं तिहि ओर वरवा सो रूप की हूं जात है^२।

उस रूप का वर्णन करना असंभव है चूकि क्षण क्षण में ही वह और का और हो जाता है।

कुंवरी छविली अमित छवि छिन छिन औरे और।

रहिये चितवन चित्र से परम रसिक सिरमौर ॥^३

^१ वृन्दावन शतक, पृ० ४।

^२ श्रृंगार शतक, पृ० ९।

^३ वही, पृ० २०।

प्रेम वर्णन—

प्रेम की प्यास ऐसी होती है जिनका कुछ नहीं कहना । वह प्यास मिटने वाली नहीं । आरों पीती जाती है, लेकिन उनकी प्यास मिटती कहा है ?

प्रेम तथा की तप ध्रुव कसेहू कही न जात ।

रूप नीर छिरकत रह तऊ न नन अघात ॥^१

राधा और वृष्ण की प्रेम-श्रीला देखकर भक्त कवि आत्म विभोर हो उठता है ।

अलबेली सुकुमारी ननन के आगे रह,

तब लगि प्रीतम के प्रान रह तन में ।

यह जिय जानि प्यारी पलहू न होत यारी,

तिन्हों के प्रेम रग रगी रही यन में ।^२

अथवा

प्रेम रासि दोउ रसिधर, एक बस रस एक ।

निमित्त न छूटत अत सग यह ब्रह्मनि की टेक ॥^३

चाचा हित वृन्दावन दास

'चाचा' शब्द का प्रयोग—

इनके चाचा जी कहलाने का कारण यह था कि ये श्री राधावल्लभीय गारुडामा हितरूप जी के शिष्य थे और तत्कालीन गुसाइ जी के पिता जी भी इन्हीं के शिष्य थे ।^४ इसलिये गुसाइ जी इन्हें 'चाचा' जी कहते थे और इसीलिये ये 'चाचा' हित वृन्दावन दास के नाम से प्रसिद्ध हो गए ।

काल निर्णय—

इनके जीवन वत्त के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त नहीं है । किशोरीशरण अली जी ने 'लाड सागर' में इनका परिचय दिया है । अली जी के अनुसार इनका जन्म स० १७४४ अथवा इससे पूर्व ही है । प० रामचन्द्र

^१ नेह मजरी, प० ८ ।

^२ आनंद दसा विनोद, प० ११९ ।

^३ रग विहार, प० ११० ।

^४ ब्रजमाधुरी मार (अष्टम संस्करण) प० १५ ।

^५ प्रकाशक, लाला जुगलकिशोर काशीराम रोहतक मण्डी (पूर्व पंजाब) अक्षयतृतीया सवत् २०११ (प्रथम संस्करण) ।

शुक्ल ने इनका जन्म संवत् १७६५ माना है और मिश्र बन्वुओ ने संवत् १७७०। लेकिन श्री किशोरीधरण जी ने चाचा हित वृन्दावनदास के वाणी के आधार पर इन सवतो को ठीक नहीं माना है।

जीवन-वृत्त—

श्री अली जी ने बतलाया है कि चाचा जी की वाणियों से यह संकेत तो अवश्य मिलता है कि वे ब्राह्मण थे, लेकिन यह पता तो नहीं चलता है कि वे गौड़ ब्राह्मण थे, जैसा कि श्री वियोगी हरि जी ने लिखा है।^१ ये किस ग्राम या नगर के थे यह भी पता नहीं चलता। उनका बचपन कष्ट में बीता। ये बचपन में ही पिता माता के साथ वृन्दावन चले आए थे और वही इनकी शिक्षा दीक्षा हुई। बहुत दिनों तक गृहन्याश्रम में रहकर इन्होंने वैराग्य लिया था। महाराजा नागरीदास के भाई बहादुर सिंह इनके आश्रय-दाता थे। गृह-कलह को देखकर ये वृन्दावन चले आए।^२

रचनाएँ—

इनके पदों की संख्या एक लाख से भी ऊपर है। परम्परागत विषयों पर इन्होंने अत्यधिक लिखा है। रसास्वाद के नये प्रचारों की भी खोज की है। सूरदास जी की तरह इन्होंने भी कृष्ण की बाल लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया है। 'लाट सागर' में इन्होंने राधा और कृष्ण के विवाह का वर्णन किया है। लीला गान के अलावा उपदेशात्मक पद्यों आदि की भी रचना की है। उनकी रचनाओं में उत्तम काव्य के नमूने मिलते हैं। प्रेम की स्वाभाविक दशा तथा अनन्य प्रेम का चित्र नीचे के पद में है।

प्रेम का स्वाभाविक चित्रण—

प्रोतस, तुम मो दृगनि बसत हो।

कहा भरोसे हूँ पूछत हो, कै चतुराई करि जु हंसत हों ?

लीजँ परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन में तुमहीं जू लसत हो ॥

वृन्दावन हित रूप, रसिक तुम, कुजलड़ावत हिय हुलसत हो ॥^४

^१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०९।

^२ ब्रजमाधुरी सार, पृ० २१५।

^३ वही, पृ० २१५।

^४ वही, पृ० २१६।

बाल लीला—

कृष्ण की बाल-लीला का सुन्दर घणन इनकी रचनाओं में मिलता है ।

बवारो रहणी तू लला ।

को करगो ब्याह इन गुन भयो अति ल चला ॥

फटि न बांधी हो लगोटो तब त सीख्यो कला ।

अब कर सो न्याइ गिरिधर हमनि समझी भला ॥

घर घर तें सब हँसति आइ जुरी बहू अबला ।

सजन घर के चाटिह कब महरि हांडो डला ॥

अरी आखि बचाय मेरी चोरि लायो छला ।

म घरो गिरि भोग मेवा यह न छोडो गला ॥

निस्ति अघेरी जन्म स्मरण चोर ह घर चला ।

बुन्दावन हित रूप यदो बाम पद इहि तला ॥^१

कृष्ण यगोना से कह रहे हैं कि वे उनके लिये भगवत का 'लीला' अलग दे दें जिससे वे मा पीकर मोटे हो जाय और सब लाग रीय कर उनका ब्याह करने आवें ।

भया हों माखन लौंदा लहों ।

भरि द पारो मोहि कटोरा बलिदाऊ नहि दहों ॥

मोटी रोटी सानि सानि क कूदि कूदि हों लहों ।

रीक्षि रीक्षि सब ब्याह करेगे जय मोटो ह्व जहों ॥

बुहती बार हाय बाबा के घर सु दूप अघहों ।

रानी बडी बेगि द ह्वहों गाइनि वन जु घरहों ॥

बौन कर मेरी सर बज में सब तें बली बहहों ।

दहों दण्ड दुष्ट धेनुक जो आजा तातहि पहों ॥

जम्प्यो बही बासा में तावे ऊपर की जु अचहों ।

पय औटत जो पर मलाई ब्याह सा जु करहों ।

बाली बहों बेग निचारी यावी गनत न भ हों ।

हों गिरिराज कृपायल गाओं सबसों नाच नचहों ॥

असी ब्याह बुल्हिना लाऊं भया मन सरसहों ।

यदावन हित रूप आगरो जा पद सबनि नचहों ।^२

^१ श्री लाड सागर (प्रथम संस्करण, संवत् २०११), पृ० १५ ।

^२ यही पृ० १९ ।

वृन्दावन की शोभा—

वृन्दावन की शोभा का वर्णन करने में जैसे वे अपने को असमर्थ मानते हैं ।

कहा कहीं वानिक वृन्दावन की ।

ठौर ठौर तरुवर अरु सरवर देखि बड़ी रुचि मन की ।

गोवर्धन की मुभग कंदरा आवनि त्रिधिधि पवन की ।

तहां अधिक रुचि मानी जननी शुकनि मुलकित लतन की ॥

हरे हरे तृण शोभित अवनो तहां चरन गोवन की ।

गिरि पूजन आई नृप कन्या सो शोभा त्रिभुवन की ।

मैं जु दूरि तैं कौतिक देख्यौ भौर तहां अलिंगन की ।

वृन्दावन हितरूप सगाई वह लै बड़े सजन की ॥^१

तथा राधा और कृष्ण की शोभा का वर्णन वे कैसे करें । उनकी इतनी बुद्धि कहाँ, उन्हें इतनी शक्ति कहाँ जो उस लावण्य माधुरी का वर्णन करें ।

शोभा केहि विधि बरनि मुनाऊं ।

इक रसना, मोउ लोचन-हानी, कहीं पार क्यों पाऊं ॥

अंग-अंग लावन्य-माधुरी बुधि-बल कितो बताऊं ।

अतुलित सुनति कहि गये क्यों, दृग पल रजि धरि जु उचाऊं ॥

लोक न चुनी दृगन नहि देखी, ऐसी रूप-निकाई ।

मेरी तेरी कहा चली, लग-मृग-पति प्रेम बिकाई ।

सुन्दरता की हृद मुरलीधर, बेहद छवि श्री राधा ।

गावै वपु अनंत धरि समुद, तरु न पूजै सावा ॥^२

चाचा हित वृन्दावन दाम की कुछ रचनाओं के नाम यों हैं । ब्रजप्रेमानंद सागर, छद्म लीला, रास-रस, भक्त प्रार्थनावली, श्रीहितरूप-चरितावलि ।

छद्म लीला का वर्णन—

छद्म-लीला का रोचक वर्णन चाचा हित वृन्दावन दास ने किया है । कृष्ण स्त्री के वेश में नद ग्राम से आते हैं और रात भर ठहरने का वाश्रय चाहते हैं । ललिता उन्हें राधिका के पास ले जाती है । आने का कारण पूछने पर स्त्रीवेश धारी कृष्ण कहते हैं कि नदग्राम में कृष्ण ने उपद्रव मचा

^१ लाडसागर—श्रीकृष्ण बालविनोद-विवाह उत्कण्ठा, राग विहागरी, पद १२१ पृ० ६१ ।

^२ ब्रजमाधुरीसार, वीणावारी लीला ४, पृ० २१७ ।

रखा है। होली में आकर मुझे रग से सराबोर कर दिया और मेरे ऊपर मुरली की चोरी लगा दी। इसने बाद सत्वा सहित बाहराम मचा दिया। इसे सुनकर सास बगैरह फन्कारने लगी और मेरी सब निन्दा की। इसके बाद कृष्ण तग आकर अपन आने की बात कहने ह। बाता ही बाता में कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम प्रकट हाना है इसपर कृष्ण कहते ह—

तू कारी करीजु नदसुत कसे प्रीति घटाई ।
 उनके मन में की हा परखत तें कर्षों जुगति घनाई ॥
 वे मो दूग पुतरीन बसत हों उन दूग मांहि समाई ।
 यह तो बात अटपटी भामिनि सुनिहों सोच बवाई ।
 मुरलीघर ब द्रत अनय मो बिन ओर मन भाई ।
 कहत कहत ही हिय भरि आयी नवन नीर बहाई ।
 नदपाम ते सुनि मन लरजो तोसों करो भलाई ।
 छोटी बात कहीं प्रीतम की हों हिय जिय अनलाई ।^१

इनके तेरहो समय प्रबंध, पद बंध' (कृष्ण लीला) की हम्नलिखित प्रति (सत्या २८८०।१७६७) काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। उससे कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

आनंद के बिरवा बयेरी पिय हिय हरित भये ह ।
 पावत पोप अमोरस चित्तबनि घाहत नित जू नए ह ॥
 तेरी भाग लिख्यो जस प्यारी सुघर सिरोमनि हू रिसवे ह ।
 यबाबन हित रूप मनोरय ह धन पूज बय ह ॥^२

श्री राधा की शोभा पर कृष्ण मुग्ध हाते रहते हैं ।
 अरी तेरी चलनि लटक परी लाल के नन भावरे भरत ।
 सोभा घटक हियें लटकत जो पलनि अटक अर भरत ॥
 चित्तबनि ब भूखे रह अति आतुर धार न धरत ॥
 धुन्दाबन हित रूप इत मूरि' बेसि अघीनी बरत ॥^३

श्री राधा की इस गाना की धार पाता कठिन है

^१ रामबिलास अर्थात् श्रीबीम छान्म गीने की लीला, राग बापा २८, २९
 ३०, ३१ ।

^२ पद गम्या, पूरबी-नाल अक्षयारी ९८ ।

^३ माका मारंग-नाल मूल ७३ ।

लटती तेरे रूप गह की याह न काहूँ पाई ।
 लाल दृग गोता लँ लँ हारे धरि चित चौप महाई ॥
 अंग अंग भौर परत हँ तिनमें उछरत पैरत रहत सदाई ।
 वृन्दावन हित रूप सुनि तेरी विधि भूल्यो चतुराई ॥^१

श्री राधा, मुरलीधर का शृंगार कर रही है :

सिंगारति राधा मुरलीधर कौं ।
 इत सोभा कौं सोभा देनी उत पिय स्याम सुधर कौं ॥१॥
 पट भूषन रुचते पहिराये स्यामा सुन्दर वर कौं ।
 कुसुम रचित आसन वैठारे नागरि पुनि नागर कौं ॥२॥
 अगर धूप करि सौरभ चरचति सुख सोभा आगर कौं ।
 वृन्दावन हित रूप देति कर दर्पन गुन सागर कौं ॥^२

हठी—

गुरु—

‘हठी’ जी, श्री हित हरिविग जी के द्वादश मुख्य गिप्यो में थे, वैसे श्री वियोगी हरि इसे स्वीकार नहीं करते ।^३ ‘हठी’ जी स्वामिनी जी (श्रीराधा) के अनन्य उपासक थे ।

राधा सुधा शतक—

इनके एक ग्रन्थ ‘श्री राधा-सुधा-शतक’ का पता चलता है । इस ग्रन्थ को बाबू अमीरसिंह ने हरिप्रकाश यत्रालय में मूद्रित कराया । यह ‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’ से उद्धृत किया गया है तथा श्रीभारतेन्दु जी ने इसे देखकर शुद्ध किया था । उही की आज्ञा लेकर यह ग्रन्थ अलग मुद्रित हुआ । यह ग्रन्थ सन् १८३७ में समाप्त हुआ था ।

रिपी सुदेव बसु ससि सहित, निरमल मधु को पाय ।

माधव तृतिया भृगु निरखि रच्यो ग्रन्थ सुखदाय ॥^४

^१ राग तोड़ी-तिताल ४५ ।

^२ रागनट-ताल आड चौताल ९४ ।

^३ ब्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण), पृ० २३६ ।

^४ श्री राधा सुधा शतक, पृ० १ ।

श्री राधा की भक्ति—

‘हठी’ जी के लिये श्री राधा जी का अनन्य प्रेम और उनकी भक्ति ही काम्य थी। उनके लिये वही सबस्व है।

धौ वृषभानु कुमारि के पग बंदों कर जार ।
जे निसि वासर उर घर अज बसि नदविशोर ॥
कीरति कीरति कुवरि की कहि कहि थके गनस ।
दस सतमुख बरनन करत पार न पावत सेस ॥
जब सिब सिद्ध सुरेस मुख अपत रहत निसि जाम ।
बाधा जन की हरत है राधा राधा नाम ॥^१

श्री राधा से उनकी प्रार्थना है

हीन हों अधीन हों, तिहारो अज-साहिबनो !
हिय में मलीन कथना की ओर धरिए ।
भारो भवसागर तें बोरत बचावो मोहि,
काम क्रोध लोभ मोह लागे सब अरिए ।
बुरो—भलो, जसो, तेरे द्वार परयो हों तो,
मेरे गुन-औगुक तू मन में न धरिए ।
कीरति किशोरी, वृषभानु को दुहाई तोहि,
लच्छि-लच्छ भाति सो ‘हठी’ को पच्छ करिए ॥^२

रूपासक्ति—

वृषभानु-मुता के परा की तुलना नहीं। उनमें अगर मन रम जाय तो मनुष्य सत्र कुछ पा सकता है वह सहज स्वभाव से ही हृदय के बरा हाता है।
नवनीत गुलाब तें कोमल है हठी कज की मजुलता इनमें ।
गुल लाला गुलाल प्रवाल जपा छधि एसी न देखी ललाइन में ।
मुनि मानस मन्दिर मध्य बस बस होत है सूषे सुभाइन में ।
रहरे मन तू चित चाइन सो वृषभानु कुमारि के पाइन में ॥^३

^१ श्री राधामुखा गतक दो० १।२।३।

^२ वही, कवित्त ५० ।

^३ वही, सबया, ४९ प० १४ ।

वृन्दावन के प्रति आसक्ति—

अतएव 'हठी' जी की एकमात्र अभिलाषा है वृन्दावन, गोवर्धन के आश्रय में रहने की । अतएव महाराज (श्रीकृष्ण) से उनकी प्रार्थना है ।

गिरि कीजे गोधन मयूर नव कुंजत को, पसु कीजे महाराज नन्द के नगर को ।
नर कीजे तौन जौन रावे राधे नाम रटै तट कीजै बर कूल कार्लिदी कगर को ॥
इतने पै जोई कछु कीजिये कुंवर कान्ह राखिये न आन फेर हठी के अगार को ।
गोपी पद पंकज पराग कीजे महाराज तृन कीजे रावरेई गोकुल नगर को ॥^१

अलवेली अली-संप्रदाय और गुरु परिचय—

अलवेली अलि को वियोगी हरि जी विष्णु संप्रदाय का मानते हैं^१ लेकिन इनकी रचनाओं को देखने से लगता है जैसे ये राधा वल्लभी सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे । कहते हैं कि इनके गुरु वशी अलि जी ललिता जी के भक्त थे और उन्हीं के संग में इन्हें स्वामिनी जी के दर्शन हुए ।^२ श्री राधाचरण गोस्वामी के मतानुसार, 'इनका जन्म विक्रम की अठ्ठारहवीं शताब्दी के आदि में हुआ ।' गोस्वामी जी ने इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय लिखा है ।

श्री वरसाने वास वरस द्वादस दूढ कीनों ।

श्री ललिता-संग आयु लाडिली दरसन दीनों ।

रहस-केलि-माधुर्य मधुर पद लीला गायी ।

प्रेम-मय अति गूढ, तामु पदवी दरसायी ।

श्री रासेस्वरी-कृपा-कुसल निज परिकर में अपनाई ।

श्री वंसी अलि आचार्य श्री ललिता जिमि सहचरि भई ॥^३

संस्कृत की रचना—

अलवेली अलि को जीवन के सम्बन्ध में अधिक कुछ ज्ञात नहीं । इनके पद अत्यन्त सरस हैं । इन्होंने संस्कृत में श्लोक लिखे हैं । ये संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे । गुरु-परम्परा का वर्णन इन्होंने संस्कृत में किया है । इनका निम्नलिखित श्लोक, संस्कृत में इनकी रचना-शक्ति का परिचय देता है ।

श्री राधिकां ललिताया सहितां प्रसन्नां,

या लालयत्यतिसुभाषित चारुहासैः ॥

^१ ब्रजमावुरी सार, पृ० २०९ ।

^२ वही, पृ० २०८ ।

^३ नवभक्तमाल (ब्रजमावुरीसार, पृ० २०८ पर उद्धृत) ।

नि श्रेयसे समभवप्रति मामराणाम,
सा यगिवा स्फुर मे हृदि सुदरास्या ॥^१

गुरु भक्ति—

अपने गुरु बसो अलि जी के प्रति अपनी भक्ति का परिचय उठोने बहुत से पदों में दिया है। एक पद में वे कहते हैं

श्री बसो अलि की बलि जाऊ ।

जाको धरन-सरन किरपा तें, वदावन धन पाऊ ॥

नवनागरि-अलिकुल घूणामणि, रहसि रहसि बुलराऊ ।

अलबेली, अलि हिम की गहिनो, प्रेम-जराइ जराऊ ॥^२

लीला के पद—

भगवान की विभिन्न लीलाओं का अत्यन्त सरस और हृदयग्राही वर्णन इन्होंने किया है।

लला, तू अनोखे ख्याल परयो ह ।

अति ही नौदर मन उनीवे, आरस रग भरयो ह ।

अति आसक्ति भर्यो, नहीं जानत, पुहुप प्रभाव करयो ह ।

'अलबेली अलि' तृपति न मानत, किंहु रस रग डर्यो ह ।^३

एक दूसरे पद में भी इसी सरसता का परिचय मिलता है

देखु सखी, इनकी नव नेह ।

उमडि डेर धन रूप के मानों, धरसत रस की मेह ॥

खान पान बसनन कल भूषन, भूले सब सुधि देह ।

'अलबेली' नहीं जानति निसिदिन, परे प्रेम के गोह ॥^४

वदावन में वे अपने जीवन की सायबता समझते हैं।

लीनों वदावन वास लह्यो ।

सेवा टहल महल की निसि दिन, यह जिय नेह निबाह्यो ।

अभुत प्रेम बिहार चार रस, रसिकनि विनु किनु चाह्यो ।

'अलबेलि अलि' सफल कियो सब, जिन यह रस अयगाह्यो^५ ॥

^१ ब्रजमाधुरी सार प० २०८ ।

^२ वही, पद ५, पृ० २१० ।

^३ वही, ललित ४, प० २११ ।

^४ वही, सारठ ७, प० २१३ ।

^५ वही परज ९, पृ० २१४ ।

(ह) चैतन्य सम्प्रदाय के कवि—

गदाधर भट्ट का जीवन वृत्त—

गदाधर भट्ट, राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनकी रचनाएँ अत्यन्त सरस हुआ करती थी। ये चैतन्य महाप्रभु के आश्रित थे और उन्हें भागवत सुनाया करते थे।^१ ये दक्षिण भारत के किसी ग्राम के रहने वाले थे। वृन्दावन में आने की इनकी कहानी यो बतलाई जाती है। अपने घर में ही रह ये सरस पदों की रचना किया करते। उनके निम्नलिखित पद को वृन्दावन में जीव गोस्वामी के सामने दो साधुओं ने गाकर सुनाया :

सखी, हों स्याम-रंग रगी ।

देखि विकाय गयी वह मूरति, सूरति माँह पगी

संग हृतो अपनो मपनो सो, सोइ रही रस खोई ।

जागेहुं आगे दृष्टि परे मखि, नैकुन न्यारी होई ॥

एक जु मेरी अंतियन में निसिद्यौम रह्यौ करि भौन ।

गाइ चरावत जात सुन्यो सखि, सो धौ कन्हैया कौन ?

कासो कह्यौ, कौन पतियावै, कौन करे बकवाद ।

कैसे कं कहि जान 'गदाधर' गूंग कौ गुर-स्वाद ॥^२

इस पद को सुन श्री जीव गोमाई जी ऐसे मोहित हुए कि एक पत्र लिखा कि 'रैनी (रगने वाले के म्यान) बिना ही आपको ग्याम रग कैसे चढ़ गया ? मेरे मन मे बड़ा ही सोच है।'^३ इस पत्र को जीव गोस्वामी ने दो साधुओं के हाथ उनके पास भेजा। उसे मुन वे मूर्च्छित हो गए और वृन्दावन चले आए और फिर अन्त तक वृन्दावन वाम में रहे। वियोगी हरि जी के अनुसार जीव गोस्वामी ने निम्नलिखित श्लोक गदाधर भट्ट के पास भेजा था—

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्ममनाश्रित्य वृन्दाट्वीतत्पदाकाम् ।

असंभाव्य तद्भाषगंभीरचितान् कुतः ग्यामसिधौः रसस्यावगाहः।^४

भक्तमाल में इनका परिचय—

ये बहुत बड़े भक्त हुए। ये अत्यन्त निरीह और दयालु थे। नामा जी के भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में कहा गया है कि वे सुन्दर गुणों वाले थे और

^१ ब्रजमाधुरी सार, पृ० ७५ ।

^२ वही, पृ० ७५-७६ ।

^३ नामा जी कृत भक्तिमाल, पृ० ७९४-७९५ ।

^४ ब्रजमाधुरी सार, पृ० ७६ ।

सभी सता को सुख देने वाले थे। 'सज्जन, मुहूद सुशील श्रेष्ठो के वचन प्रतिपालक, निमत्सर निष्काम और वृषा वरुणा के निधान थे। भगवद्भक्त का भजन में दृढ़ कराने के लिये उन्होंने गरीर धारण किया। वृन्दावन में श्रीमद्भागवत की कथा कहते और सभी को सुख पहुंचाते। ये उत्कृष्ट कवि थे। चैतन्य सम्प्रदाय के होते हुए भी इन्होंने ब्रजभाषा में कविता लिखी है—

सज्जन, मुहूद, सुशील, वचन आरज प्रतिपाल्य ।
निमत्सर, निष्काम कृपा वरुणा कौ आलय ॥
अन्य भजन दृढ़ करनि धरयो वपु भवितनि काज ॥ -
परम धरम कौ सेतु, विदित वृन्दावन गाज ।
भागोत सुधा यरय बदन, काहू कौ नाहिन दुखद ।
गननिकर 'गवाधर भट्ट' अति, सबहिन कौ लाग सुखद ।^१

रचनाएँ—

इनके पद अत्यन्त सुन्दर हैं। वैसे इनके किसी स्वतंत्र ग्रंथ का पता नहीं चलता। इनके पदा में अनुराग, भक्ति का अत्यन्त ही सुन्दर रूप दर्शने को मिलता है। उनके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं

झूलत नागरि नागर लाल ।
मद मद सब सखी झुलावति, गावति गीत रसाल ॥
फरहराति पटपोत नील के, अचल चचल, चाल ।
मनहु परस्पर उमगि ध्यान-छवि, प्रगट भइ तिहि काल ।
सिलसिलात अति प्रिया-सीस तें लटकति येनी नाल ।
जनु पिय-मुकुट-वरहि भ्रम बस तह, ध्याली बिरल बिहाल ।
स्यामल गौर परस्पर प्रति छवि सोमा प्रसद विसाल ।
निरलि 'गवाधर' रसिक कुवरि-भन परधौ मुरस जजाल ॥^२

कृष्ण के रूप पर भक्त का हृदय अत्यन्त लुब्ध बना हुआ है।

आजु ब्रजराज को कुधर बनतें बयो,

देखि, आवत मधुर अघर रजित येनु ।

मधुर कल गान निज नाम सुनि श्रवण पुँट,

परम प्रमुदित बदन फेरि हकति घेनु ।

^१ नामा जी वृत्त भक्तमाल छप्पय स० १३८, प० ७९३ ।

^२ ब्रजमाधुरी सार पृ० ८५ ।

मद विघ्नित नैन मन्द त्रिहंमनि वैन,
 कुटिल अलकावलि ललित गोपद-रेनु ।
 न्वाल बालनि-जाग करत कोलाहलनि
 सृग दल ताल धुनि रञ्जत संवत चैनु ।
 मूकुट की लटक, अर चटक पटपीत की
 प्रगट अंकुरित गोपी मनाहिं भैनु ।
 कहि 'गदाधर' जु इहि न्याय-ब्रज-सुन्दरी
 विमल बनमाल के बीच चाहुन ऐनु ॥^१

सयोग शृंगार का निम्नलिखित पद अपने आप में सुन्दर है—
 जम्हाई रिझाई सारग-नैनी ।

अति रम काननि अमरत बरषत,
 अंखियां जल झलमलाय आई तन पुलकनि-सेनी ।
 आयु तकति करताल देत दीनो न जाइ,
 मुरझाइ भाइ-भीनी गज गैनी ॥
 प्रेम-पाणि उर लागि रही 'गदाधर'
 प्रभु के पिय अंग-अग-मुख वंनो ।^२

दैन्य-भाव के भी पद इनके मिलते हैं—

करै हरि, कृपा करिही सुरति मेरी
 और न कोऊ कारन को मोह-बेरी ।
 काम-लोभ आदि ये निर्दय अहेरी
 मिलकं मन-मति-मृगी चहुंधा घेरी ।
 रोपी आय पास पासि दुरासा केरी
 देत वाही में फिरि-फिरि फेरी ।
 परी कुपय कटक आपदा घनेरी ।
 नेक हों न पावति भजि भजन सेरी ।
 दंभ के आरंभ ही सत संगति डेरी
 करै क्यों 'गदाधर' विनु करुना तेरी ॥^३

^१ ब्रजमाधुरी सार, पृ० ८७ ।

^२ वही, पृ० ८७-८८ ।

^३ वही, पृ० ८१ ।

प्रियादास और चैतन्य के प्रति उनकी भक्ति—

प्रियादास जी, नाभादास के शिष्य थे और उन्हीं के आदेश पर उन्होंने 'भक्तमाल' की टीका लिखी है। भले ही ये चतन्य संप्रदाय में अन्तर्भुक्त न हा लेकिन 'महाप्रभु 'कृष्ण चैतन्य' के प्रति उनकी अनन्य भक्ति अवश्य थी। टीका लिखने के पहले ही मंगलाचरण में उन्होंने श्रीचतन्य के प्रति अपनी भक्ति निवेदित की ह —

महाप्रभु 'कृष्ण चतन्य', मनहरन जू के चरण को

ध्यान भेरे, नाम मुख गाइये।

ताही समय 'नाभाजू' ने आज्ञा बड़,

लइ धारि, टीका बिस्तारि भक्तमाल का सुनाइये ॥

बीजिये कबित्त बड छद अति प्यारो लग

जग जगमाहि कहि, षाणो विरमाइये।

जानों निजमति ऐ पै मुन्यों भागवत,

शुक हुमनि प्रवेग कियो, ऐसेइ कहाइये ॥

समय ह कि चैतन्य संप्रदाय के अथवा उससे प्रभावित अन्य भी ब्रजभाषा के कवि हो, लेकिन अभी उनकी रचनाए प्रकाश में नहीं आई ह। इस दृष्टि से अभी कोई काम भी नहीं हुआ है।

(च) कुछ अन्य कवि :

तुलसीदास—

श्रीकृष्ण गीतावली—

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरित सम्बन्धी केवल एक ही ग्रन्थ लिखा ह। कम-से-कम अभी तक अन्य किसी ग्रन्थ का पता नहीं चला ह। 'श्रीकृष्णगीतावली' की रचना उन्होंने विगुद्ध ब्रजभाषा में की ह। इसमें ६१ पद हैं। कुछ पद श्रीकृष्ण की बाल-लीला सम्बन्धी हैं और कुछ पद भ्रमर-गीत की परंपरा के हैं जिनमें गोपियाँ उद्धव से अपने हृदय के उदगार प्रकट कर रही हैं। कहते हैं कि इस ग्रन्थ की रचना उस समय हुई थी जब तुलसीदास जी ने वृंदावन की यात्रा की थी।^१ लेकिन बाबा बंनारामाधव दास ने बतलाया ह कि यह ग्रन्थ चित्रकूट में लिखा गया था जब सूरदास जी तुलसी-

^१ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० १४५।

दास जी से वहा मिलने गए थे।^१ लेकिन 'मूल गोसाईं-चरित' की सूचनाएं अत्यन्त भ्रामक हैं। उन्हें प्रमाण नहीं माना जा सकता।

वाल-लीला—

वाल-लीला के कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं :

कवहु न जात पराये धामहि ।

खेलत ही देखौं निज आंगन सदा सहित बलरामहि ॥

मेरे कहां थाकु गोरस, कौ नवनिधि मंदिर यामहि ।

ठाली ग्वालिन ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहि ॥

हौं बलि जाउं जाहु कितहूं जनि मातु सिखावति स्यामहि ।

बिनु कारन हठि दोष लगावति तात गए गृह तामहि ॥

हरिमुख निरखि, पुण्य वानी सुनि अधिक अधिक अभिरामहि^२ ॥

एक ग्वालिन यशोदा से कृष्ण की शिकायत कर रही है—

महरि तिहारे पांय परौं अपनो ब्रज लीजै ।

सहि देख्यो, तुम्हसो कह्यो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छोजे ?

ग्वालनी तौ गोरस सुखी ता बिनु क्यो जीजै ।

सुत समेत पाउं धारिये, आपुहि भवन मेरे देखिये जो न पतीजै ।

अति अनीति नोकी नहीं अजहूं सिख दीजै ।

तुलसिदास प्रभु सौं कहैं उर लाड जसोमति ऐसी बलि कबहूँ न कीजै^३ ॥

कृष्ण को बंधा हुआ, भय से सकुचा-सहमा देखकर ग्वालिन यशोदा को शान्त होने के लिये कह रही है।

हा हा री महरि वारो, कहा रिसबस भई, कोखि के ।

आए सौं रोषु केतो बड़ो क्रियो हूं ।

ढीली करि दांवरी, बावरी सावरेहि देखि,

सकुचि सहमि सिसु भारी भय भियो है ॥

दूध दधि माखन भो, लाखन गोघन

जवते जनम हलधर हरि लियो है ।

^१ मूले गोसाईं चरित, पृ० १५ ।

^२ तुलसी ग्रन्थावली (दूसरा खंड) सन् १९८० ई० श्रीकृष्णगीतावली, राग आसावरी, ना० प्र० समा०, पृ० ४३८-४३९ ।

^३ वही, राग केदारा, ७, पृ० ४३९ ।

झायो, क एवायो, क विगारयो द्वारयो लरिकारी, ।
 ऐसो सुत प कोह बसो तेरो हियो ह ।
 भुनि कह सुवृती न नव जसुमति सम,
 न भयो, न भावी, नहि विद्यमान बियो ह ।
 कौन जान कौनो तप, कौने जोग जाग जप
 । काह सो सुवन तोको महादेव दियो ह ॥
 इहहीं वे आए ते यघाए ब्रज नित नए,
 नादत चाढ़त सब सब मुख जियो ह ।
 नदलाल-बाल-जस सत-सुत-सरवस
 गाइ सो अभिय रस तुलसिहु पियो ह ॥^१

गोपिया की विरह-रगा का वणन भी तुलसीदास जी ने अथ कृष्ण भक्त
 कवियों की नाइ किया ह ।

गोपी विरह—

विछुरत श्रीब्रजराज आज इन नयनन की परतीति गई ।
 उडि न लगे हरि सग सहज तजि, हूँ न गए सखि स्याममई ॥
 स्परसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौन भई ।
 साचेहू कूर कुटिल, सित मेचक, बूया मीन छवि छोन लइ ॥
 अथ काहे सोचत मोचत जल, समय गए चित मूल गई ।
 तुलसिदास तब अपहु से भए जड, जब पल्कनि हूठ बगा बइ ॥^२

वियोग की दगा में मुख देने वाली बन्तुए दु ख का कारण बन गई है ।
 ससि तें झीतल मोको लग माई री । तरनि ।
 माके उर बरति अधिक अग अग बध, बाके उए मिटति रजनि जनित जरनि ।
 सब विपगीत भए मायव बिनु, हित जो करत अनहित की बरनि ।
 तुलसिदास श्याम सुबर विरह की कुसह दसा सो मोप परति नहीं बरनि ॥^३

उद्धव और गोपिया—

उद्धव जोग का संदेग देने गए हूण ह । गापिया उन्हें ब्रज की दगा देखने
 को बह रही ह ।

^१ कृष्ण गीतावली, राग केदारा १७ प० ४४१ ४४२ ।

^२ वही राग विलावल २४ प० ४४५ । यही पद सूरसागर, पद सख्या
 ३६१४, में मिलता ह ।

^३ वही, राग धनाश्री, ३०, प० ४४७ ।

ऊधो या ब्रज की दशा विचारो ।

ता पाछे यह सिद्धि आपनो जोगकथा विस्तारो ॥

जा कारन पठए तुम भावव सो सोचहु मन माहीं ।

केतिक बीच गिरह परमारय जानत हौ कियो नाहीं ।

वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारो ॥

जोग जुगुति अर मुकुति विविध विधि वा मुरली पर द्वारो ॥

जेहि उर वसत स्याम सुदर धन तेहि निर्गुन कम आवैं ।

तुलसिदास सो भजन वहाओ जाहि दूसरो भावैं ॥^१

कृष्ण को निकट पाने के लिये वे सब कुछ मङ्गने को तैयार हैं, यहाँ तक कि कूबरी को भी वृन्दवन में ला सकती है, जिसमें कि कृष्ण मयुरा छोड़कर यहाँ आवें:

सब मिलि साहस करिय सयानी ।

ब्रज भानियहि मनाइ पांय परि कान्ह कूबरी रानी ।

वसैं सुवास, सुपास होहि सब फिरि गोकुल रजधानी ।

महरि महर सुख-जीवन खुलहि मोद-मनि-दानि ।

तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिवर बानी ।

देखियो दरस दूसरेहु चौथेहु बड़ो लाभ, लघु हानी ॥

पावक परत निषिद्ध लाकरो होति अनल जगजानी ।

तुलसी सो तिहुंभुवन गाइवी नंदसुवन सनमानी^२ ॥

सब कुछ करने पर भी उन्हें जिस टीस का अनुभव होता है वह उन्हें व्याकुल कर देती है :

ऊधो ! प्रीति करि निरभोहियन सो को न भयो दुखदीन ?

सुनत समुझत कहत हम सब भई अति अप्रवीन ।

अहि कुरंग पतंग पंकज चारु चातक मीन ।

बैठि इनकी पाति अब सुख चहत मन मतिहीन ॥

निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न ।

दास तुलसी सोच नित निज प्रेम जानि मलीन^३ ॥

^१ वही, राग सोरठ, ३३, पृ० ४४८ । यही पद सूरदास के भ्रमरगीत (भ्रमरगीत सार पद सख्या १०९, पृ० ४५-४६) में कुछ पाठ भेद तथा कुछ अधिक पक्तियों के साथ मिलता है ।

^२ श्रीकृष्ण गीतावली राग मलार, ४९, पृ० ४५३ ।

^३ वही, राग केदारा, ५५, पृ० ४५५ ।

बिहारी—

दोहों की विशेषता—

बिहारी किसी सम्प्रदाय में अन्तर्मुक्त थे ऐसा उनके दोहा से नहीं लगता । वैसे वियोगी हरि जी ने बतलाया है कि उनका सम्बन्ध हितकुल^१ से था । ये मुख्यतः कवि थे और जयपुर नरेश के आश्रित थे । उन्हें ही प्रसन्न करने के लिये इन्होंने दोहा की रचना की । कही वही उन दोहा में राधा और कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है । केवल उन कुछ दोहा को देखकर इन्हें किसी सम्प्रदाय का समय लेना भ्रान्तिपूर्ण है । इनके दाहे अपने-आप में बेजोड़ हैं । पहले ही उन्होंने श्री राधा को स्मरण किया है । समवत इसी आधार पर बहुत लोग ने इन्हें निम्ब्याक सम्प्रदाय का माना^२ है । लेकिन यह बात बहुत दूर तब जँचती नहीं । बहुत से सस्वरणा में दोहों का यह क्रम ज्यों का त्यों नहीं है । यह काव्यम या जिससे प्रभावित होना किसी कवि ने लिये आश्चर्य का वान नहीं है ।

कुछ दोहे—

उनके कुछ दाहे नीचे उद्धृत किए जाते हैं ।

मेरी भव-आधा हरी, राधा नागरि सोय ।

जा तन की शाह पर, स्याम हरित दुति होय ॥

तजि तीरथ, हरि राधिका-तन दुति करि अनुराग ।

जिहि अज-केलि निकुञ्ज-मग, पग पग होत प्रयाग ॥

मोहन मूरति स्याम की, अति अदभुत गति जोय ।

बसति सुचित अतर तऊ प्रतिर्विवित जग होय ।

सीत मुकुट, शक्ति काछनी, कर मुरली, उर माल ।

यह धानिक भो मन यसी, सदा बिहारीलाल ॥

अपर धरत हरि के परत ओठ दीठि पट जोति ।

हरे बांस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष-भो होति ॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुक्त नहिं जोय ।

ज्यों-ज्यों बूडे स्याम रग त्या-त्यो उज्जल होय ॥

^१ अजमाधुरीसार प० २८५ ।

^२ भागवत-सम्प्रदाय प० ३३३ ।

करी कुवत जग कुटिलता, तर्जो न दीनदयाल ।
 दुखी होहुगे सरल चित, वसत त्रिभंगीलाल ॥
 वत्तरस-लालच लाल की मुरली घरी लुकाइ ।
 सौंह करै, भौंहनु हंसै, दैन कहै, नटि जाइ ॥
 सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर ।
 मनु ह्वै जात अजौ वहै वा जमुना कै तीर ॥^१

देव—

काव्य की विशेषता—

देव भी ब्रजभाषा के ऐसे कवियों में है जो किसी संप्रदाय में अन्तर्भुक्त नहीं थे। इन्हें भी वियोगी हरि 'हितकुलावली'^२ मानते हैं। ये ब्रजभाषा के सिद्ध कवियों में थे। शृंगार और शान्तरस दोनों ही का वर्णन इनके काव्य में मिलता है। अभी तक इनके २७ ग्रन्थों का पता चला है^३। ये कई आदमियों के आश्रित रहे।

इनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

कुछ पद—

पायन नूपुर मुंज बजै, कटि किकिनि में धुनि की मधुराई ।
 साँवरे अंग लसै पटपीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई ॥
 माये किरिटी वड़े दृग चंचल, मंद हंसी मुखचंद-जुहाई ।
 जै जग-मंदिर-दीपक सुन्दर, श्रीब्रजदूल्ह देव सहाई ॥^४

कृष्ण के प्रेम में विह्वल नायिका का सुन्दर वर्णन इनके नीचे के पद में मिलता है।

जब तैं कुंवर कान्हू रावरी कला निवान
 कान परी बानी आके सुजस कहानी सी ।
 तबही ते 'देव' देवी देवता सी हंसति सी,
 लीझति सी, रीझति सी रसती रिसानी सी ॥

^१ विहारी-रत्नाकर—१, २०१, १६१, ३०१, ४२०, १२१, ४२५, ४७२,

^२ ६८१। एक ब्रजमाधुरी सार, पृ० २९९।

^३ वही, पृ० २९९।

^४ देव-दर्शन, पृ० १८६।

छोही सी छलो सी छीन लीनी सी छकी सी छीन
जकी सी, चकी सी, लागी थकी बहरानी सी ।

बीची सी बघी सी विष बूडी सी विमोहित सी,
बठी बाल बकति बिलोकत बिकानी सी ॥^१

एक पद में उन्होंने कृष्ण के प्रति अनुराग का सुन्दर निश दिया है
कोऊ कहीं कुलटा, कुलीन, अकुलीन कहीं,

कोऊ कहीं नकनि कलकिनि कुनारी हों ।

कसो परलोक, नरलोक, बर लोकन में,

सीहो म अलीक लोक-लीकन में न्यारी हों ।

तन जाहि, मन जाहि, 'देव' गुहजन जाहि,

जीब क्यों न जाहि, टेक टरति न टारी हों ।

बृन्दावनवारी बनवारी के मुकुट पर,

पीत पदवारी यहि मूरति प घारी हों ॥^२

देव अपने अन्तर में बृन्दावन को बसाए हुए है । उसी अन्तर के पृथ्वी
में भगवान् की लीला चल रही है ।

होही अजबूदायन मोही में बसत सवा

यमुना तरंग श्याम तरंग रंग अवलीन की ।

देख' बई सुबर सधा बन देखियत,

कुजन में मुनियत गुजनि अलीन की ।

बसीबट तट नट नागर नचत मोये,

रास के विलास की मधुर धुनि बोन की ॥

भरि रही भनक बनक ताल तान की

तनक तनक तामें शनक घुरीन की ॥^३

इसी प्रकार से कृष्ण को गोपिया की नाइ अपनी आँखा में बसा रखा
चाहते हैं

'देव' म सीस बसायी सनह सों, भाल मृगम्मद बिन्दु ब भास्यो ।

कुचुकी म चपरयो करि घोवा, लगाम लियो उर सा अभिलास्यो ॥

ल मस्ततूल गुहे गहने रस मूरतिवत सिगार ब चास्यो ।

सांबरे लाल को सांबरो रूप, म ननि को बजरा करि रास्यो ॥^४

^१ देव दान पृ० १०३ ।

^२ वही, पृ० १४१ ।

^३ वही, पृ० १६१ ।

^४ वही, पृ० १४६ ।

गुणमंजरीदास—

जीवन वृत्त—

गुणमंजरीदास एक अनन्य भक्त थे। उनका स्वभाव अत्यन्त सरल और मन्दुर था। अपने पदों में उन्होंने अपना नाम 'गुणमंजरि' रखा है लेकिन उनका असली नाम गोस्वामी गल्लू जी था। इनके पिता का नाम गोस्वामी श्री रमणदयालु जी था। गुण मंजरीदास की पहली पत्नी का जब देहान्त हो गया तब उनकी दूसरी शादी हुई। श्री राधाचरण गोस्वामी उनके पुत्र थे और दूसरी पत्नी से हुए थे। श्री राधाचरण जी ब्राह्मणेन्दु हरिश्चन्द्र के परम मित्रों में थे। गुणमंजरीदास फारसी शब्दों का एक प्रकार में बहिष्कार करते थे। उन्होंने अपना मंत्र उपासित घन भगवत् मेवा में लगा दिया। इनके पदों से लगता है कि ये गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय से अत्यधिक प्रभावित थे। इनका जन्म मक्त् १८८४ वि० में हुआ और मृत्यु स० १९४७ में हुई।^१ इनके कुछ पद नीचे दिये जाते हैं।

हमारे घन स्मामाजू को नाम।

जाकों रटत निरतर मोहन, नंद नंदन घनस्याम।

प्रतिदिन नव-नव महामाधुरी, बरसति आठों जाम।

गुन मंजरि नवकुंज मिलावै, श्री बृन्दावन धाम ॥^२

चैतन्य महाप्रभु के प्रति भक्ति—

एक पद में उन्होंने चैतन्य महाप्रभु और श्री अद्वैत प्रभु का नाम लिया है। चैतन्य प्रभु के प्रति इन्होंने अपनी भक्ति प्रदर्शित की है—

देखो आली, गौर-मेघ-उल्लास।

श्री अद्वैत-पवन पुरवाई, करुना विजुरि बिलास^३ ॥

इस पद में 'गौर' शब्द का प्रयोग 'गौरांग' अर्थात् चैतन्य के लिये किया गया है। अद्वैत उनके प्रमुख अनुयायियों में थे।

रूपासक्ति—

एक दूसरे पद में स्वामिनी जी के सौंदर्य का सुन्दर वर्णन है।

प्यारी-चरनन में नव-बसंत। बस नख ससि-किरननि नित लसंत ॥

^१ ब्रजमाधुरीसार, पृ० २५३-२५४।

^२ वही, मलार, २, पृ० २५५।

^३ वही, पृ० २५५।

अरुनित अगुरो ह नय प्रयाल । विद्युदा घुघरु भुकुलित रसाल ॥
 मँहदी-दुति फेसू कौ प्रकास । जावण नव-बेली कर विलास ।
 छिप बोहत स्यामल गति सल्प । कोकिल कुहवति हँ अति अनूप ॥
 वामन-लामन मलय ससोर । सुरभित चहुदिसि मिलि हरत धीर ॥
 बेसर उर की प्रिय लली आय । गुनगन गुन मजरि भयुष घाय ॥^१

नारायण स्वामी—

जीवनवृत्त और रचनाएँ—

नारायण स्वामी पञ्जाब के थे । इनकी ब्रजभाषा की रचनाएँ अत्यन्त सरल हैं । ये सारस्वत ब्राह्मण थे । वंशान में लाला बाबू के मंदिर में दफ्तर की नौकरी कर ली । धीरे धीरे इनका मन ससार से उचट गया और इन्होंने सन्यास ले लिया । इनका जन्म सन् १८८५ या ८६ में हुआ और मृत्यु फाल्गुन कृष्ण ११ स० १९५७ में हुई । 'ब्रजमाधुरी सार' में श्री वियोगी हरि जी ने इनकी जीवनी पर प्रकाश डाला है । इनका 'ब्रजविहार' ग्रन्थ अत्यन्त सुन्दर है । 'ब्रजविहार' का एक सस्वरण ग्रन्थ के वैकटेश्वर यशालय में छप कर सन् १९५० में प्रकाशित हुआ । उसमें २११ पृष्ठ हैं । इस ग्रन्थ में भावान की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है जैसे माखन चार लीला, उराहना आँसु मिचौनी, खण्डिता मान लीला, युगल छप लाला, होरी लीला सती अनुराग लीला साझी लीला आदि ३२ प्रकरण हैं ।

विरह के उनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं

पद—

सखि, मेरे मन की को जाने ।
 कासाँ बहोँ, सुने जा चित ध, हित की यात बखान ।
 ऐसे को हँ अतरजामी, सुरत पीर पहिचान ।
 'नारायण' जो बोल रही हँ कब कोई सच माने ।^२
 बँदरदी, तोहि दरद न आय ।
 चितवन में चित बस करि मेरी, अब काहे कौँ आल चुराव ॥

^१ ब्रजमाधुरी सार प० २५६ ।

^२ वहा, पृ० २६२ ।

काच सो परी द्वार पै तेरे, बिन देगे जियरा घबरावै ।
 'नारायन' महबूब साँवरे, घायल करि फिर गँल बतावै ॥^१
 करु मन, नंदनन्दन को ध्यान ।
 यहि अवसर तोहि फिरि न मिलंगो, मेरो कह्यो अब मान ।
 धूँधर वारी अलकै सुत पै, कुडल झलकत कान ।
 'नारायन' अलसाने नैना, झूमत रूप-निधान ॥^२

एक पद में इन्होंने सगुण, निर्गुण रूपों के अभेद पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है ।

निर्गुण-सगुण का अभेद—

देखि चरित मोहि अचरज आवै ॥ आस्ताई ॥
 जो कर्ता जगपालक हर्ता, सो अब नंद की लाल कहावै ॥
 बिन कर चरण श्रवण नाशा दृग, नेति नेति जाको श्रुति गावै ॥
 ताकूँ पकरि महरि अंगुरीतें, आंगन में चलिबौ सिलरावै ॥
 ब्रह्म अनादि अलक्ष अगोचर, ज्योति अजन्म अनंत कहावै ॥
 सो शशि वदन सदन शोभा को, नंदरानी निज गोद खिलावै ॥
 जाके उर डोलत नभ घरनी, काल कराल सदा भय पावै ॥
 सो ब्रजराज आज जननी की, भौंह चढी को निरख डरावै ॥
 जाके सुमरण ते जीवन को, भवबंधन छिन में छुटि जावै ॥
 सोई आज बंध्यौ ऊलल ते, निरखन को सगरी ब्रज धावै ॥
 पूरण काम दारि सागर पति, मागि मागि दधि माखन खावै ॥
 भक्ताधीन सदा नारायण, प्रेम की महिमा प्रगट दिखावै ॥^३
 बहुत गई थोरी रही, नारायण अब चेत ।
 काल चिरैया चुग रही, नितदिन आयू खेत ॥
 धन जोबन यो जायगौ, जा विधि उड़त कपूर ।
 नारायण गोपाल भजि, क्यो चाटे जग धूर ॥
 चार दिन की चादनी, यह संपति संसार ।

^१ ब्रजमाधुरी सार, पृ० २६३ ।

^२ वही, पृ० २६५ ।

^३ ब्रजविहार-वधाई के भजन, वधाई राग शहानो, पृ० ७ ।

नारायण हरि भजन करि, जा सों होय उवार ॥
 यह शोभा सतार की, ज्यों टेसू के फूल ।
 नारायण फल आस तजि, ललित देख जिन भूल ॥
 कोऊ नहीं अपनी सगो, बिन राधा गोपाल ।
 नारायण तू घुसा मति, पर जगत के जाल ॥^१
 अति कृपाल सतोष वृत्ति, जगल घरण में प्रीति ।
 नारायण ते सन्त घर, कोमल यचन विनीत ॥^२
 रति पति छवि निन्दित यदन, नील जलज सम ग्याम ।
 नव योवन मद्गु हास घर, रूपराशि मुख घाम ॥^३
 लगन लगन सबही कह, लगन कहाव सोय ।
 नारायण जा लगन में, तन मन दीज खोय ॥
 रूप छके झूमत रह, तन कौ तनक न ज्ञान ।
 नारायण दग जल भरे, यही प्रेम पहिचान ॥^४

सत्यनारायण 'कविरत्न'—

जीवन-वृत्त—

सत्यनारायण जी ब्रजभाषा के चाटी के कवि थे। ये अत्यंत सरस और भावुक थे। शांत प्रकृति के सरल हृदय के सत्यनारायण जी कविना पाठ द्वारा लोगों का मुग्ध कर देते थे। इनका देहाती पहनावा इनके आन्धवादी दृष्टिकोण की प्रकट करता है। इसी पहनावे के कारण उन्हें इल्लौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पडाल में स्वयंसेवका ने घुसने नहीं दिया। इसका दाम्पत्य अत्यंत दुःखद रहा। बहुत ही कम उम्र में उनकी मृत्यु हुई। इनका जन्म संवत् १९४१ माघ शुक्ल ३ का हुआ और मृत्यु १६ अप्रैल सन १९१८ को।^५ ये शृष्णभक्त थे। स्वर्ग प्रेम इनमें पूर्ण रूप से भरा हुआ था। देग और जाति का मुधार होना आवश्यक है यह दृष्टिवाण इनका रहा है। इन्होंने 'उत्तर रामचरित' और 'मालती-माधव' का सुन्दर अनुवाद किया है।

^१ ब्रजविहार बघाई के भजन, अनुराग रस, पृ० २२२-२२४ ।

^२ वही, अनुराग रस, पृ० २२२ ।

^३ वही शृष्णानिधान की शोभा, पृ० २२८ ।

^४ वही, प्रेम लक्षण पृ० २३२-२३४ ।

^५ ब्रजमाधुरी नार पृ० ३६४-६५ ।

भ्रमर दूत—

अपने 'भ्रमर-दूत' में इन्होंने देश और समाज की दुर्दशा का वर्णन किया है

नारी सिच्छा निरादरत जे लोग अनारी ।
ते स्वदेश-अवनति-प्रचंड-पातक अधिकारी ॥
निरखि हाल मेरा प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ ।
विद्याबल तहि मति परम, अबला सबला होइ ।
लखो अजमाइ कै ॥^१

'भ्रमर-गीत' की परंपरा में इनका 'भ्रमरदूत' पड़ता है। उसी प्रकार की व्यजना इनके पदों में भी है। देश और समाज सुधार की बातें कह उन्होंने अपने 'भ्रमर दूत' में नवीनता ला दी है। नीचे लिखे पदों में भक्त कवियों की तरह वे भी कहते हैं—

नास होइ अकूर कूर तेरो बजमारे ।
वातन में दै सबनि, लै गयो प्रान हमारे ॥
क्यो न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम ।
कहं भूरति रमनीय दोउ, श्याम और बलराम ।
रही अकुलाइ मैं ॥^२

'तेरो तन घनस्याम, स्याम घनस्याम उतै सुनि ।
तेरी गुंजन सुरलि मधुप, उत मधुर मुरलि घुनि ॥
पीत रेख तव कटि बसति, उत पीतांबर चारु ।
विपिनविहारी दोउ लसत, एक रूप सिंगार ॥
जुगुलरस के चखा ॥^३

इनके दोहे भी अतीव सुन्दर हैं।

वह मुरली अधरान की, वह चितवन की कोर ।
सधन कुंज की वह छटा, अरु वह जमुन-हिलोर ॥
पीतपटी लिपटाय कै, लै लकुटी अभिराम ।
बसहु मंद मुसिक्याय उर, सगुन-रूप घनस्याम ॥^४

^१ ब्रजमाधुरी सार, भ्रमरदूत, २५, पृ० ३७५ ।

^२ वही, भ्रमरदूत २७, पृ० ३७६ ।

^३ वही, भ्रमरदूत ३०, पृ० ३७६ ।

^४ वही, दोहा ५१, ५२ पृ० ३८१ ।

छठवाँ अध्याय

ब्रजबुलि का उद्भव और विकास

ब्रजबुलि—

अभी तक हम ब्रजभाषा-साहित्य का अध्ययन विभिन्न दृष्टियाँ से करते रहे हैं। इस अध्याय से ब्रजबुलि-साहित्य के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। उत्तर भारत की वृष्ण भक्ति धारा को समझने में 'ब्रजबुलि' साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्त्व का है। 'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिये किया जाता है जिसमें बंगाल के वृष्णव कवियों ने पद रचना की है। 'ब्रजबुलि' का साहित्य अत्यन्त विंगाल, मारम और हृदयग्राही है। इसके पदा में जो माधुम और लालित्य है वह शतान्तियाँ से महदया को मुग्ध करता आ रहा है। सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिना से इन वृष्णव गीति कविताओं की, जिन्हें पद की सजा प्राप्त हो गई थी, वह बाल शैत्य महाप्रभु के आविर्भाव का है। श्री चतन्य के आविर्भाव के पूर्व के बंगाल वृष्णव ग्रन्थों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सन् ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी तक के बंगाल के सकलित पद-संग्रह-ग्रन्थों में स्पष्ट ही दो प्रकार की भाषा का निदशन मिलता है। इनमें एक तो विगुद बंगाल है और दूसरी मैपिली के अनुकूल भाषा है जिसे 'ब्रजबुलि' कहते हैं।

'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग—

'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग बहुत हाँ से हाँ लगा है। इसका प्रथम प्रयोग सन् ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी के ईश्वरचन्द्र गुप्त की रचना में मिलता है। उस समय इतिहास इतना अर्थाधीन नहीं है। डा० सुकुमार सेन का अनुमान है कि 'ब्रजबुलि' शब्द का 'ब्रजबुलि' बना है।

¹ विद्वत्सूची पत्रिका (बंगाल) (जातिर-मीय, १३६०), पृ० ११२।

ब्रजबुलि और ब्रजभाषा में प्रभेद—

कुछ लोगो ने 'ब्रजबुलि' को ब्रज की बोलनी अर्थात् ब्रज की भाषा मान लिया है।^१ सम्भवतः इस अनुमान का आधार यह है कि ब्रजबुलि के बहुत से शब्दों का बंगला की अपेक्षा हिन्दी से अधिक साम्य है तथा 'ब्रजबुलि' शब्द में 'ब्रज' शब्द का प्रयोग हुआ है। लेकिन ब्रजबुलि और ब्रजभाषा की भाषागत प्रवृत्तियों पर विचार करें तो यह धारणा भ्रान्त मिथ्य होगी। लेकिन एक बात यहाँ कह रखना ठीक होगा कि भाषा तत्त्व की दृष्टि से ब्रजबुलि और ब्रजभाषा का संबंध है। भाषा तत्त्वविदों ने इस बात को स्वीकार किया है।^२ ब्रजबुलि में ब्रजभाषा के शब्दरूपों का समावेश है। वैसे इसकी मात्रा के संबंध में मतभेद अवश्य है। ब्रजभाषा के शब्दों के ब्रजबुलि में पाए जाने के कई कारण बताए जाते हैं। गौड़ीय वैष्णवों की एक बृहद् शाखा ब्रजमण्डल में जाकर बस गई। इस प्रकार से दोनों का संबंध स्थापित हुआ। ब्रजबुलि में, ब्रजभाषा के कुछ प्रादेशिक शब्द इसलिये लिए गए कि उनसे भाषा का माधुर्य बढ़ता था जैसे वशी के स्थान पर 'वांशुरिया' आदि शब्द। साहचर्य के कारण भी अनायास बहुत से शब्द ब्रजबुलि में आ गए। इतना सही होते हुए भी दोनों को एक नहीं कहा जा सकता। दोनों के व्याकरण में पार्थक्य है उसी तरह से दोनों के उच्चारण में भी भेद है।

ब्रजबुलि की उत्पत्ति के संबंध में डा० मुकुमार सेन का मत—

हम पहले ही देख चुके हैं कि डा० मुकुमार सेन ने ब्रजबुलि की उत्पत्ति के संबंध में अपना पुराना मत छोड़ कर नये मत को स्वीकार किया है। उनका कहना है कि मैथिल पदावली के अनुकरण पर तिरहुत प्रत्यागत बंगाली कवियों की पद रचना के फलस्वरूप ब्रजबुलि की उत्पत्ति मानना केवल मिथ्या-अनुमानमात्र मात्र है। डा० सेन का अब यह मत है कि ब्रजबुलि की उत्पत्ति अवहट्ट से हुई है^३। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि मैथिली आदि स्थानीय भाषारूपों का प्रभाव इस पर पडना स्वाभाविक ही था। अतएव

^१ प्रभात मुखर्जी दी हिस्ट्री आफ मिडिएवल वैष्णविज्म इन उडिसा, पृ० ७१।

^२ डा० सुनीतिकुमार चटर्जी : दी आरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ बंगाली लैंग्वेज, पृ० १०३।

^३ विश्वभारती पत्रिका (बंगला) (कार्तिक-पीप १३६२), पृ० ११५।

डा० मन का कहना है कि ब्रजबुलि किसी प्रदेश विशेष की सम्पत्ति नहीं बरन् वह आयभाषा की सर्वसाधारण सम्पत्ति है और इस दृष्टि से वह कनिष्ठतम सबभारतीय आयभाषा है।^१ सबभारतीय आयभाषा होने के कारण समसामयिक रूप से ब्रजबुलि का प्रचार तिरहुत नेपाल, मारग तथा उड़ीसा में हुआ। बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा के उतने प्राचीन ब्रजबुलि के पत्र अभी उपलब्ध नहीं हुए हैं तथापि सन् ईसवी के चौदहवीं शताब्दी से ही ब्रजबुलि की रचनाएँ इन प्रदेशों में प्रचलित रही होंगी। डा० मन का यह अनुमान है।

वैष्णव पदावली का वष्य विषय—

ब्रजबुलि की उत्पत्ति के संबंध में डा० मुकुमार सेन की आधुनिकतम मायता पर विचार करना आवश्यक है। गया-वृष्ण शीघ्र ही वैष्णव पदावली का मुख्य वष्य विषय है। यह विषय-वस्तु मयिनी या बंगाल किसी भी साहित्य की निजी सामग्री नहीं प्रत्युत् सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश (अवहट्ट) से हाते हुए उत्तराधिकार सूत्र से लौकिक साहित्य का प्राप्त हुई। विषय-वस्तु सबका पर्याप्त अर्थात् 'साहित्य और गीत में राधाकृष्ण-कथा का स्वरूप' वाल अध्याय में ही चुकी है।

अवहट्ट और आधुनिक लोकभाषाएँ—

सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की कड़ी को धार कर एक भाषाभाषा का उदय हुआ। साहित्यारूढ़ अपभ्रंश भाषा से प्राचीन भाषाभाषा का निश्चित स्वरूप प्राप्त करने में लगभग दो सौ वर्ष लग गए। इस शत्रान्ति काल में भाषा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं था। एक ओर साहित्य की भाषा अपभ्रंश की और दूसरी ओर लोकभाषा का भी प्रादुर्भाव हो चला था। फलतः उन शत्रियों के मिथण से विलग्न प्रकार की अपभ्रंशाभाषा जन भाषाभाषा का साहित्य तयार हो रहा था। इस अपभ्रंशाभाषा भाषा को अवहट्ट नाम दिया था। वास्तव में यह अवहट्ट अपभ्रंश और लोकभाषाओं के बीच से नु रूप था। इस अवहट्ट में जहाँ लोकभाषाभाषा का बीज निहित है वहीं लोकभाषाभाषा में वर्णित राधाकृष्ण लीला के पूर्व सूत्र का भी मधान मिलता है। प्राकृत पगलम् में उल्लिखित अवहट्ट में रचित राधाकृष्ण की नौशालीला मयिनी एक उल्लिखित है। इस इतिहास में राधा की स्पष्ट उल्लेख नहीं है फिर भी अनुमान

^१ विश्व भारती पत्रिका (बंगाल) (वार्तिक-श्री १३६०) पृ० ११५

होता है कि राधा, कृष्ण की नौका पर नदी पार हो रही है। कृष्ण मझार में नाव को डगमगा कर राधा को डराते हैं। राधा भयभीत होकर कहती है :

अरे रे बाहहि काणह णाव
छोटि डगमग कुगति ण देहि ।
तइ इत्थि णइहि सन्तार देइ
जो चाहहि सो लेहि ॥^१

(हे कृष्ण, नाव ठीक से खेवो, उसे डगमगाना छोड़ दो, नदी में डुबाकर मेरी दुर्गति न करो। तुम इस नदी को पार करा दो फिर जो कुछ चाहो लो ।)

अवहट्ट में वर्णित राधा-कृष्ण लीला—

राधा-कृष्ण की लीला के सवध में एक दूसरी अवहट्ट की रचना मिलती है जो वैष्णव पदावली के पूर्व की है।

राइ दोहड़ी पढ़ण सुनि हसिउ कान्ह गोआल ।
वृन्दावन घन कुंज घर चलिउ कमण रमाल ॥

राइ (राधा) का दोहा पढ़ना सुन कर ग्वाल कृष्ण हसे। वृन्दावन के किसी निभृत कुंज की ओर चले।

चर्यागीति में वैष्णव पदों के प्रेमरस का आभास—

चर्यागीति में एक उसी प्रकार का पद आया है जिसमें मानिनी राधा का स्थान निरजन, शून्य ने ले लिया है और अनुनयशीला योगिनी ने अनुनयशील कृष्ण का स्थान ले लिया है। यह रचना अवहट्ट भाषा में है। तांत्रिक बौद्ध साधक का यह साधन-संगीत है। इसे वे वज्रगीति कहते हैं। इस पद में भी वैष्णव पदों की तरह प्रेमरस की पूर्ण झलक मिलती है। इसमें योगिनी उदासीन-प्रणयी प्रभु को प्रसन्न करने के लिए अनुनय कर रही है।

किच्चे णिच्चअ विसाअ-गउ
लोअ णिमन्तिअ काइ
तह वत्ता ण जइ सम्भरसि
उट्ठहि सकल विसाइ ।

^१ 'प्राकृत पैगलम्'—९ ।

कज्ज अप्पाण वि करिअ पिअ
 मा कर सुन्न विछित्त
 भय भअ पडिआ सक्कल जनु
 उट्टहि जोहणि मित्त ।
 पुट्ठ-पइज्जइ सम्भरसि
 मा कर काज्ज विसाउ
 तइ-अय मित्त सअल जणु
 पतिअउ जग अबसाउ ।
 मिच्छे भाणवि मा करेहि पिअ
 उट्टहि सुन्न - सहाय
 कामहि जोइनि विद तुइ
 फिट्ठउ अहया भाव ।^१

(काम निश्चित करके, लोक निमंत्रित करके तुम नित्य वृत्त में विपादगत क्या हुए वह बात यदि स्मरण नहीं करते हो तो सब विपाद से उठ जाओगे। हे प्रिय, अपना काम तो करना ही हागा इसलिए गूण्य विक्षिप्त न करा। सब लोग भय भय से भीत ह, हे योगिनी मित्र, तुम उठो। पूव प्रतिज्ञा स्मरण करा काम से विमुख न हा। तुम्हारे लिये सब राग मिलित हुए ह अब जग का अवसाद दूर हो। प्रिय व्यथ मान न करो, गूण्य स्वभाव उठो। यागिनी-वन्द की शुभ कामना करो अभय भाव दूर हा।)

उमापति ओझा की रचनाएँ—

दमी प्रकार से विद्यापति के पहले के कवि उमापति ओझा की रचनाएँ ब्रजबुलि-साहित्य के नम विकास का समझने में सहायक हागी। उमापति की रचनाएँ अत्यन्त सरल ह। ऐसा भी हुआ है कि बाद में चलकर इनकी कई कविताया को लोगों ने भ्रमवश विद्यापति की कविता समझ ली। उमापति ओझा सन् इसवी की चौहवी गनाली में वतमान थे। ये मिथिला के अन्तिम स्वाधीन राजा हरि (हर) सिंह के मंत्री थे। उन्होंने महाराज की विजय के उपलक्ष में पारिजात-भगल नामक एक गीतिनाट्य लिखा था। इसके गीता की भाषा मिथिला है। उनका निम्नलिखित पं

^१ डा० सुकुमार सेन चर्यागीति पदावली पृ० २२ पर उद्धृत, ब्रजगीति माधन माला २५४।

से उनकी सरसता का पता लग जाता है। उम पद में मानिनी सत्यभामा की विरहावस्था का वर्णन कृष्ण ने कर रही है।

कि कहव माघव तनिक विशोपे, अपनह तनु धनि पाव कलेशे ।
 अपनुक आनन आरसि हेरि, चाद क भरम कांप कत बेरि ।
 भरमहु निय कर उर पर आनि, परसह तरस परसो रह जानि ।
 चिफुर निकर निय नयन निहारि, जलघरजाल जानि हिय हारि ।
 अपन वचन पिकरव अनुमाने, हरि हरि तेह परितेजय पराने ।
 माघव आवसु करिअ समधाने, सुपुरुष निठुर न रह्य निदाने ।
 सुमति उमापति भन परमाने, माहेशरि देह हिन्दुपति जाने ।^१

एक दूसरे पद में मानिनी का चित्र है जिसका मान कठिन रूप धारण किए हुए है -

अरुण पुरुष-दिसि वहल्लि सगरि निसि गगन-मगत भेल चन्दा ।
 मुनि गेलि कुमुदिनि तह ओ तोहर धनि मुनल मुख-अरविन्दा ।
 कमल बदन कुबलय दुहु लोचन अघर मधुरि - निरमाणे
 सगर सरोर कुसुम तुअ सिरिजल किए तु अहृदय परवाने ।
 असकति करकंकण नहिं परिहसि हृदय हार भेल भारे
 गिरि-सम गरुअ मान नहिं मुचसि अपरुव तुअ बेवहारे ।
 अवगुन परिहरि हरखि हेरु धनि मानक अवधि बिहाने ।
 हिमगिरि - कुमरि - चरण हृदय धरि सुमति उमापति भाने ॥^२

ब्रजबुलि की उत्पत्ति के संबंध में

डा० सुकुमार सेन के मत की आलोचना—

उमापति ओझा तथा विद्यापति के पद को ब्रजबुलि का जनक रूप माना जा सकता सकता है। अतः ब्रजबुलि की उत्पत्ति के सबब में यह कहा जा सकता है कि पूर्वी अवहट्ट के वीज को मैथिली के वारि-सिचन द्वारा पनपाया गया और यही कारण है कि मैथिली के साथ ब्रजबुलि का योग इतना घनिष्ट है। अतएव डा० सुकुमार सेन के इस मत को स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि ब्रजबुलि की उत्पत्ति अवहट्ट से हुई और प्रान्तीय भाषाएँ मैथिली आदि प्रभावित हुईं। लेकिन डाक्टर सेन के उम मत को ब्रजबुलि

^१ विद्यापति गोष्ठी, पृ० ६३ ।

^२ वही, पृ० ६५ ।

अन्तिम भारतीय आयभाषा ह' मान लेना कठिन है। अगर ब्रजबुलि ही अन्तिम भारतीय आयभाषा होती तो सम-सामयिक रूप से समस्त प्रान्ता में ब्रजबुलि का एक ही रूप दिखाई देता पर जो सामग्री उपलब्ध है वह इस तथ्य के विपरीत है। मिथिला में सन् ईसवी की तेरहवीं शताब्दी के अन्त से ही ब्रजबुलि का परिचय मिलने लगता है। नेपाल मार्ग में १४वीं शताब्दी से नाटका के गीता में ब्रजबुलि के दशन हाते ह बगाल, उड़ीसा, आसाम में पंद्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिना के पूर्व के किसी भी ब्रजबुलि पद या खडित अंग की उपलब्धि अभी तक नहीं हुई है। ब्रजबुलि ने विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न समय में विभिन्न कारणों से प्रवेश पाया अतएव केवल अनुमान के आधार पर उसे सब शेष भारतीय आयभाषा मानना ठीक नहीं प्रतीत होता। भिन्न प्रदेशों में भिन्न कारणों से विकसित ब्रजबुलि के स्वरूप को पृथक् रूप से विवेचन करना ही अधिक उपयुक्त होगा।

ब्रजबुलि का व्याकरण और भाषागत विशेषताएँ—

ब्रजबुलि पर भाषातत्त्व और व्याकरण की दृष्टि से डा० सुकुमार मन ने सुन्दर ढंग से विचार किया है। इस अध्ययन में उनसे काफी सहायता मिली है। यहाँ पर ब्रजबुलि की कुछ विशेषताया तथा व्याकरण मवधी कुछ नियमा पर प्रकाश डाला जाता है।

(१) ब्रजबुलि का छन्द मात्रिक है। छन्द-वचिष्य की दृष्टि से ब्रजबुलि साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। पदान्त में अ-कार का लोप नहीं होता। सस्कृत के तत्सम शब्दा का व्यवहार पर्याप्त मात्रा में मिलता है। साथ ही लौकिक साहित्य हाने के कारण अप-तत्सम शब्दा का प्रयोग खूब हुआ है।

(२) अरबी-फारसी के शब्द ब्रजबुलि में उतने नहीं मिलते। कुछ शब्द जो मिलते हैं वे इस प्रकार हैं आतर (इत्र), औयाज (आवाज), कागज, कलम, किताब (किताब), गुलाब, दालाल (दलाल), नालिग, बाजार, महल, माफ, साहब, सरम (शम) जीह (जिह) आदि।

(३) ब्रजबुलि में अ-कार का उच्चारण साधारणतः विवृत्त है। बगला के प्रभाव से कभी-कभी सवन भी देखने को मिलता है और छन्द के अनुरोध से कभी-कभी अत्यन्त ह्रस्व भी हुआ है। इ ई उ ऊ का उच्चारण सस्कृत की तरह ही है वस छन्दानुरोध से इसमें व्यतिक्रम भी हुआ है। इसी प्रकार से छन्द के अनुरोध से ए और ओ का उच्चारण भी ह्रस्व या दीर्घ होता है।

स्वरव्यनियो के परिवर्तन और विप्रकर्ष के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

आपाढ > असाढ; कान्त > कन्त, मथुरा > माथुर, मुजान > सुजन, लावण्य > लावनि, स्नेह > सनेह, प्रात > परात, लुव्व > लुवुध, भस्म भसम, हर्ष > हरिख, लक्ष्मी > लखिमी, लखिमी, कीर्ति > किरिति; प्रीति > पिरिति ।

(४) सयुक्ताक्षर व्यजनो में से अगर एक लुप्त हो जाय तो भी पूर्ववर्ती स्वर, दीर्घ नहीं होता । जैसे उच्च > उच, उन्मत > उनमत, उमत ।

(५) म के अलावा किसी भी स्पर्शी वर्ण के पूर्व में रहने पर ञ, प या स का लोप हो जाता है । जैसे—निञ्चय > निचय, निञ्चल > निचल, दृष्टि > दिठि, ओष्ठ > ओठ, अस्थिर > अथिर ।

(६) कही-कही छन्द के अनुरोध से भी अक्षर लोप हो जाते हैं । अवगाहन अवगान, आनन्दे > आन्दे, प्रियतम > प्रीतम ।

(७) ख, छ, थ, घ, और भ अगर पद के मध्य में हो तो बहुत बार इनके स्थान पर ह हो जाता है । जैसे मेघ > मेह, नाथ > नाह, विधि > विहि, गोभा > गोह, दुर्लभ > दुलह, लघु > लहु ।

(८) अगर “स” आरम्भ में न हो तो कभी-कभी “स” के स्थान पर “ह” हो जाता है । जैसे मास > माह, उच्छवास > उछाह ।

(९) स्वर-मध्य-स्थित स्पर्शी वर्ण का कही-कही लोप हो जाता है और उसके स्थान पर य-श्रुति का आगम होता है । जैसे कनक > कनय, सागर > सायर, नागर > नायर, रजनी > रयनी, वदन > वयन ।

(१०) ब्रजबुलि में प-कार का प्राय ही ख-कार हो जाता है । दोप > दोख, रोप > रोख ।

(११) कही-कही र-कार का तथा छन्द के अनुरोध से कही-कही न (ङ ञ) का अगर अन्य वर्णों से सयुक्त हो तो लोप हो जाता है । जैसे चद्र > चद; प्रयाग > पयाग, अन्यत्र > अनत, प्रहरी > पहरी, कान्ति > काति, अङ्ग > आग, प्रान्तर > पातर, सञ्चार > सँचार ।

(१२) ब्रजबुलि में बहुवचन का स्वतन्त्र रूप नहीं है बहुवचन करने के लिये साधारणतः ‘सब’ शब्द का प्रयोग होता है जैसे सखी सब, हाम सब (हम सब); अथवा बहुवचन वाले किसी तत्सम शब्द के साथ समास करना होता

है। जैसे, सो कि बहव इहि सतिनि-समान, घाम-बुल (घम विदु सकल), रगिनी-यूय, भ्रमर जाल, काकिल-चन्द, अलि-भुज।

(१३) कारक

प्रथमा (वर्ता) की विभक्ति ए हू लकिन प्राय ही इसका लोप हो जाता है। जैसे—चकोर अमिया विनु तिरे व ना पीर (विभक्तिहीन)

रमनि-समाजे ताहारि गुण घापइ (विभक्तियुक्त)

ततीया की विभक्ति—ए, हि, हिं, मे में (बहु वार प्रथमा में भी प्रयुक्त होते हैं) जस—

भक्तहि भेलि । बाहिरे तिमिरे ना हरि निज देह ।

करहि निवारत गौरि ।

भरभर घेद न भरमहि जानत ।

कानु से प्रेम बादाइ ।

द्वितीया—चतुर्थी की विभक्ति—ए व, व, कि (इन विभक्तिया का लोप भी विरल नहा हू)। व कि, के अचतन पदाय के साथ प्रयुक्त नहीं होते।

जसे—रे मन, बाहे करसि अनुनाप,

तो सोंपल राइ (विभक्ति हीन), (राइक परिहरि,)

बहल खलिमोकि बान ।

गोवि ददास के बाहे उपेलि ।

पचमी—हि, हिं, से मा ते (त)। वनी-वमी विभक्ति का लोप भी दवा जाता है। -

कुज से निबसे बहार (बाहर) ।

कुजहि बाहरि भेल ।

पठ्ठी—व (का), कि, के, को, वा, र ।

हायक दरपन भायक फूल

धेणिके लावणि, प्रिया को

दो म्याना में हू विभक्ति भी मिलती है जसे मुनिहूक मानस निबिहूक वपन ।

सप्तमी—ए हि हिं भी, म, मि। (विभक्ति का लोप भी विरल नहीं है)।

मनहि ना भावत आन बालिद-बूल में ।

(१४) सर्वनाम

(क) उत्तम पुरुष

प्रथमा—हाम (हम), हामि (हमि)

निसि जागरि हामि ।

हमि पलटि बँठव ।

हामें—काम नायने मरव हामें (मुझे)

मुझे—मुझे कयल

मुंह—मुंह जानलुं

मो—कहल मो तोय

द्वितीया } मोय—अकपटे कहवि न वचवि मोय

चतुर्थी } मुझे—चचल नयने हेरि मुझे नुदरि

मोहे—मजानि काहे विनती गर मोहे

हामें—कान्दायमि हामें

हामा—कटाक्षे नेहारत हामा

तृतीया—मोय—मिलव मोय

मोहे—यदि मोहे ना मिलव सो वर रामा

हमे—ओहि दिवम हमे मयुरा—समागम—पथहि दरम न भेल

पष्ठी—मझु—

मेरे—मदिरे अबतुह चल मेरे कान

मोर, मोहर—ऐछन व्याम विनु मोहर पराण मोरि, हामार(हमार),

हमारी (हमारी), मोहरि, मोय (मोयि)

मर्मक वेदन जानसि मोय

तै खने हरव मो चेतने

हामक मदिर जव आबोव कान

सप्तमी—मोहे (?)—ए सखि हेरि रहल मोहे धन्द

(ख) मध्यम पुरुष

प्रथमा—तुहु, तुहु, तो, तोह, तु

अकपटे एक वात मुझे कहवि तु ।

द्वितीया—चतुर्थी—तोव, तोइ, तोहे, तुहे

तृतीया—तोहे—तोहे मिलायलु

तुया—पन्थ मिलव तुया कान

पष्ठी—तुया, तुय-विद्यने तुय सने ल्ह परल्ह ताह तुयाक, तुद्वक तुहार,
ताहार, तुद्वकर तुद्व पर रोतहि भीत अब पाओल
तोरा—सुन्दरि देहि पन्डिटि दिठि तारा तग, तरि, तर—तेर बघु
हाय भिस हाम लेयव

सप्तमी—तोहे—धिव रह सा पनि ताह अनुराग
तुहे—सुन्दरि, मायव तुह अनुरागी ताहारि (?)

(ग) अन्य पुरुष (साधारण)

प्रथमा—स मो, सेह सहि सोय ताह (?)

द्वितीया—चतुर्थी—मो सोइ, तहि—नहि पुन हरि साह, ताह—अनए मापल
तनु साह

तृतीया—ताय

पष्ठी—ताक ताकर, तछु तह्लिनक तिल्लिक ताहार अनुषन तह्लिक
समाधि

सप्तमी—ताह तछु, ताहि, तहि, साह

अपपुरुष (दूरस्थ)

प्रथमा—उह, आ, ओइ ओहि, उनिह (भम्मानमूचक—उनि) ओय

द्वितीया—चतुर्थी—उह

तृतीया—उनने

पष्ठी—ओर, उह्लक, उह्लिक, उह्लक उाकि—उन्कि शाहे गले
वनमाला

सप्तमी—उनहि उनने

अपपुरुष (निकटस्थ)

प्रथमा—ए इह एह एतहु एतनि (?) इये (?) ।

द्वितीया—चतुर्थी—एतहु

पष्ठी—अछु अछुव, हहिंनक, इनक इनकि ।

(घ) सम्बन्धवाचक सबनाम

प्रथमा—जे जेह, जो, जोहि जाइ

पञ्चमी—जहाँसे

पष्ठी—जहु, जहुका जाक जाके, जाक जाके, जाकर जाहे

(८) प्रश्नवाचक सर्वनाम

प्रथमा—केह, केहु, को, कोइ, कोने, कोन, कि, किये (कीये) ।

द्वितीया—चतुर्थी—कि (द्वितीया में अचेतन वस्तुओं के लिये),

काहु—काहु का उपेखि

काहुके, काहि, काहे, काह, काय

तृतीया—काहाँ—उपमा देयव काहाँ ।

पष्ठी—काह—सजनि ऐछन होये जनि काह

काय, काहु, काहुक, काहुके, कन्हुक (?), का, काहे सप्तमी- काहा, काहें

(१५) सर्वनाम—क्रियाविशेषण

उत्तम और मध्यम पुरुष को छोड़कर सभी सर्वनामों से क्रियाविशेषण-पद बनते हैं ।

‘अतएव’ के लिये ... तें, तेजि, ह्ये

तहा (वहा) ,, ... तहि, ततहि, ताहा, तथि, ततिहुं, तांहि

‘इस समय’ ,, ... अव, अवहि

‘इस स्थान’ ,, ... इये, इह

‘जिम स्थान’ ,, ... जाहा, जाहि, जहि, जथि

इमलिये ,, ... जाहे, जथि

जिस समय ,, ... जव, जैखने

उस समय ,, ... तव, तैखने, तहि

जव से...तव से ... जव (जा) वरि...तव (ता) वरि,

जव तवहु

किसलिये के लिये ... काहे कथि, किये

अथवा ,, ... किये

कहा ,, ... कथि, कथिहु, काहां काहु

किस समय ,, ... कव

(१६) स्त्री-प्रत्यय

ब्रजबुलि में दो स्त्री-प्रत्यय हैं - इनी (इनि) तथा ई (इ) । इनी (इनि) का ही व्यवहार अधिक है ।

विशेषणों में स्त्रीलिंग बनाने के लिये ई (इ) प्रत्यय का व्यवहार करते हैं जैसे आकुलि—

—इना (इनि)—चकोरिनि, सौतिनि, आहिरिनि, पुलकिनि

—ई (इ) —उमति, पुतली, अवनत नयनी, पिक बचनी

ए प्रत्यान्त भूतकाल का क्रियापद विशेषण जस व्यवहृत होता है। स्त्री-लिंग होने पर उसमें ई (इ) प्रत्यय लगाते हैं।

मुरछलि गौरी, लाजे लाजायलि गौरि।

ब्रजबुलि में स्त्रीलिंग व्याकरणानुगत नहीं है स्वभावानुगत है। जो शब्द स्त्रीलिंग हैं उन्हें छोड़कर और सभी पुलिंग ह।

(१६) क्रिया

क्रिया के तीन काल होते हैं भूत, भविष्यत, वतमान। तीना पुरुषो के भिन्न भिन्न रूप हैं लेकिन एक वचन और बहुवचन में भेद नहीं है। वतमान और भूतकाल में प्रत्येक पुरुष के लिये कई प्रत्यय ह।

(क) वतमान काल में उत्तम पुरुष के प्रत्यय—हु (हु), उ ओ (ओ) मो वैं, इ इये अत। जैसे—प्राथहु, साधहु कटा पूछमो, जाइ अनुमइ अनुमानिये, मागत, जान नह, घुचाव जाव सोवरि।

वतमानकाल में मध्यम पुरुष के प्रत्यय—सि इ उ अ ह, जैसे जानसि, कादायसि अनुमानि, जाइ, कर रह जान, वाडह।

वतमान काल में अय पुरुष के प्रत्यय—अइ, इ, अये, ओये, ए, अत, त, अ अहु, उ अन्त ति

जैसे—करह हमइ, मनइ, जाइ, कापि हासि, वैठये, इछे चले, नृत्यत, दत देत अक्काह चलु लिखु जाति, मिलाति मीलति, नटति।

(ख) भूतकाल में अल (ल) प्रत्यय लगाते ह। यह मूलतः विशपण प्रत्यय है इसलिये अगर ऋण पद स्त्रीवाचक हो ता क्रियापद में स्त्री प्रत्यय का व्यवहार करत ह।

ओ प्रत्यय का भी प्रयोग भूतकाल में हाता ह—जसे—गेओ, भेओ भवो, लियो।

उ-प्रत्यय का भी प्रयोग मिलता ह—जैसे हेरु, घरु, करु।

अल का व्यवहार भूतकाल के उत्तम पुरुष में करते ह। जैसे अछल, कयल।

लिं मध्यम पुरुष भूतकाल में व्यवहृत होता है। जैसे आओलि, आछलि।

अन्य पुरुष भूतकाल में ऐसा कोई प्रत्यय नहीं लगता । जैसे आच्छल । स्त्रीलिंग में आच्छलि होता है ।

तीनों पुरुषों में कहीं कहीं 'ल' प्रत्यय मिलता है । जैसे भुल्ला, कह्ला ।

'अल' भूतकाल के प्रत्यय में 'निश्चय' वा 'न्वार्य' में हि और हु का न्योग मिलता है । चलन्हि, भेलहि ।

वर्तमान काल के क्रियापदों का भूतकाल के लिये भी प्रयोग हो जाता है ।

(ग) भविष्यत् काल, उत्तम पुरुष में व, वि (स्त्रीलिंग में) प्रयुक्त होते हैं । करव, बोलव, देवि, नेदि ।

भविष्यत् काल, मध्यम पुरुष में वि प्रयुक्त होता है । बैठवि, कहवि । भविष्यत् काल के अन्य पुरुष में व, वि का प्रयोग करते हैं । मिलायव, हव, घरवे, करवे ।

(१७) अनुजा

अनुजा के दो रूप हैं . साधारण और भविष्यत् ।

(क) साधारण अनुजा, मध्यम पुरुष के प्रत्यय—अ, इ, जैसे गह, कर, चल हेरह ।

साधारण अनुजा के अन्य पुरुष के प्रत्यय—अउ, जैसे मेटउ, हसउ, रहु, गहुक ('क' स्वार्थिक) कर ।

(ख) भविष्यत् अनुजा प्रत्यय (केवल मध्यम पुरुष में ही प्रयुक्त होता है) इह जैसे जाइह, करिह ।

(१८) कर्मवाच्य का प्रयोग निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा । जतो विछुरिये ततो विछुर न जाइ । एमन पिरिति आर कयिहु ना पेखिये । कछु ना दीसइ ।

(१९) णिजन्त क्रिया

धातु में आय (आओ) प्रत्यय योग करने से यह क्रिया बनती है । जैसे [सिखायव, पठायोल । बाढायसि । जानायइ ।

(२०) नाम-धातु

ब्रजबुलि में नाम-धातु का प्रयोग अत्यधिक है । इसका कोई विशेष प्रत्यय नहीं है । जो भी कोई तत्सम या अर्ध तत्सम शब्द ब्रजबुलि में क्रिया

रूप में प्रयुक्त हो सकता है। जैसे अनुमानल, सवादल, (प्रलाप) परलापसि, (विलम्ब) विलम्बायन, (विपाद) विपादइ।

(२१) असमापिका

इसके दो प्रत्यय ह, इ (अइ), अ। इनमें से प्रथम ही अधिक प्रयुक्त हो सकता है। जैसे—रगि, भोरि, रापाइ, अलसाइ परबाधिया (आ-स्वाधिक), गुनइ क्षाप, जाग, जान।

अन्य क्रियापद भी असमापिका के अर्थ में कभी-कभी प्रयुक्त होते हैं जैसे—राइ मुखे गुनलहि ऐछन बोल। बरइते गमन भेल उपनीत। ज्ञादास कह ओ रूप हेरिइते का घनि घर निज देह।

(२२) तुमय भाव वचन में कई प्रत्यय हैं अइत अत अइ, उ। जैसे चण्डत, अगोरत, सहइ, पिबइ, सह।

(२३) गतबोधक असमापिका

इसके प्रत्यय ये हैं अत। अइते (अइत) भी होता है। जपत, चलत, उठत।

(२४) ब्रजबुलि के समास संस्कृत जैसे ही ह। जैसे छन्द के अनुरोध से कहा-वही व्यतिश्रम भी हो जाता है। जैसे ना बुझलु अन्तर-नारी (=नारी-अन्तर), तुह बही हृदय-भाषाण (पाषाण-हृदय) बविगना चमकये चित (=बविगण चित), हार-उर (=उर-हार)

(२५) संस्कृत इमन् प्रत्ययान्त शब्द ब्रजबुलि में विशेष रूप से व्यवहृत होते ह। जैसे मधुरिमहास, गुनहि गरिम, रगिम, भगिम, नयन नाचनिया, बरिम भगा, चतुरिम वाणी।

(२६) संस्कृत क प्रत्यय (विशेषण) के अर्थ में ब्रजबुलि का 'अ' प्रत्यय व्यवहृत होता है। स्त्रीलिंग विशेषण में स्त्री प्रत्यय 'इ' होना है। जैसे छुटल बाण फुटल हिय भोरि। मुरछलि गारि।

(२७) तद्धित प्रत्यय पा और आइ का व्यवहार होता है। जैसे रसिक पन, गठपन निठुराह, चतुगण लुपुपाण मपराह।

(२८) जनि—निषेधापत्त अव्यय है।

जैसे मूरह जनि पांग बाण। मजनि ऐछन हाये जनि बाहे।

जु—उपमाशोभ अव्यय ह। जैसे बेसरि जु गत्र कुंभ जिगारि।

(क) नेपाल

पहले कहा जा चुका है कि मिथिला में १४ वीं शताब्दी के आरम्भ में राजा हरि (हर) सिंह के मन्त्री उमापति ओजा की रचना में सर्वप्रथम ब्रजवृत्ति का प्रयोग मिलता है। उसके बाद १५ वीं शताब्दी में मिथिला में विद्यापति के द्वारा ब्रजवृत्ति का पोषण और प्रचार हुआ। मिथिला में पनपने के साथ ही १४ वीं शताब्दी में हरिसिंह देव के सूत्र से ब्रजवृत्ति ने नेपाल में प्रवेश पाया। श्री सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय का अनुमान है कि तुर्कों के द्वारा मगध-गौड़ विजय के पहले ही से गौड़ देश के साथ नेपाल राज्य का सम्बन्ध बना हुआ था। यदि ऐसा न होता तो पालवश के राजाओं के समय में हस्तलिखित ग्रन्थ, पत्र आदि नेपाल में नहीं पहुँचते। वस्तुतः नेपाल का गिल्प-मगध गिल्प का ही रूपान्तर है।^१ तुर्कों आक्रमण के परिणाम स्वरूप कुछ समय के लिए दक्षिण विहार और बंगाल की राजसभा में साहित्य-चर्चा रुक-सी गई और वहाँ के पंडित कवियों ने नेपाल, तिरहुत, मोरग राजसभा में जाकर आश्रय लिया। इस प्रकार हरिसिंह देव के बाद से मोरग अर्थात् नेपाल की तराई और नेपाल में विष्णुदत्त मैथिली और ब्रजवृत्ति के पदों की रचना की रीति चल पड़ी। पहले इन पदों की रचना 'नाट्य गीति' के लिए ही होती थी फिर पदावली के रूप में लिखे जाने लगे। नेपाल की राजसभा में पदावली की चर्चा १५ वीं-१८ वीं शताब्दी के बीच तक चलती रही, फिर मल्ल-वंश के राज्य के साथ ही यह धारा भी क्षीणतर होती गई।

नेपाल के पदावली साहित्य का विकास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित—

नेपाल में पदावली—साहित्य का विकास वहाँ की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर ही आधारित है। अतः वहाँ के साहित्य-पोषक राजवंशों के ऐतिहासिक परिचय के साथ ही उस साहित्य की क्रमिकवारा की भी चर्चा की जायगी।

हरिसिंह देव तथा नेपाल-मोरंग का नाट्यगीति और पदावली साहित्य—

निरन्तर पूर्व-पश्चिम के मुसलमानों के आक्रमण को रोकते हुए अन्त में हार कर सन् ईसवी के १३२४ में हरिसिंहदेव को मिथिला त्यागना ही पड़ा।

^१ सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय "नेपाले भाषा-नाटक" के संबंध में वक्तव्य, पृ० १८४ (साहित्य-परिषद् पत्रिका, ३६ वां भाग।)

और अपने राज्य के उत्तर भाग मारग में जाकर उन्होंने आश्रय लिया। हरिसिंहदेव स्वयं विद्वान और विद्योत्साही थे। जिस मिथिला का छोड़कर उन्हें आना पड़ा वह उस समय विद्या का स्मरणीय केंद्र थी। अतः उन्होंने नेपाल को भी मिथिला का-सा ही रूप रंग देने की चेष्टा की। हरिसिंहदेव के उत्तर प्रदेश में आने के बाद से ही नेपाल-भारत में 'नाट्यगीति' और 'पदावली-साहित्य' फल्लवित-भुषित हा चला। इन माहित्य प्रेमी विद्वान राजाओं की रुचि नाटक में विशेष थी इसलिए नेपाल में नाटका का एक विंगारद भण्डार तैयार हुआ।

नेपाल के मल्ल-राजा जयस्थिति का धर्म शास्त्र संपादन करवाना—

हरिसिंह देव की मृत्यु के कुछ दिनों के बाद ही उनको पानी जगतसिंह की कन्या राजल देवी का विवाह नेपाल के प्राचीन मल्लवंश के वंशज जयस्थिति मल्ल के साथ हुआ। विवाह के बाद जयस्थिति का नेपाल की राजगद्दी मिली। उस समय से मल्लवंशीय राजाओं का पुनरुत्थान आरम्भ होता है। जयस्थिति मल्ल का राज्यकाल सन् ईसवी का १३८०-१३९४ है। राजा होने पर जयस्थिति ने भी हरिसिंह देव के ही भाग का अनुगमन किया और हरिसिंह देव के अधूरे काम को यथाशक्ति पूरा करने की चेष्टा की। भारतवर्ष से पांच ब्राह्मण-कीर्त्तिनाथ उपाध्याय रघुनाथ झा, श्रीनाथ भट्ट महानाथ भट्ट और रमानाथ झा-का नेपाल में लाकर इनके ऊपर नए धर्म शास्त्र का भार सौंपा। इन ब्राह्मणों में अधिकांश मिथिला के थे। इससे मिथिला नेपाल का सबंध और भी दृढ़ और घनिष्ठ हुआ। मिथिला की राजमन्त्रा उस समय विद्यापति के पदा से मुबारक हा रही थी, धीरे धीरे उन पदा की गूज नेपाल की राज-समा तक पहुंची।

जयस्थिति के सभाकवि के पुत्र मणिक के दो नाटक—'अभिनव राघवानन्द' और 'भैरवानन्द'—

जयस्थिति मल्ल के सभाकवि नाट्य कवि विंगारद 'राघवदत्त के पुत्र मणिक ने राजा की आज्ञा से दो नाटक 'अभिनव राघवानन्द' और 'भैरवानन्द' लिखे। प्रथम का विषय रामायण की कथा और दूसरे का विषय पुराण के

^१ कश्मिरज हस्तलिखित ग्रंथ संख्या १६५८ (अ० सुकुमार सन बंगला साहित्य-इतिहास, पृ० ३९७-३९८ पर उद्धृत।)

^२ नेपाली भाषा-नाटक (साहित्य परिषद् पत्रिका, ३६वां भाग), पृ० १७१।

समान ही एक प्रेम कथा है। राजकुमार के विवाह के अवसर पर 'भैरवानन्द' नाटक अभिनीत हुआ। नेपाल में लिखी हुई घर्मगुप्त की रामाक नाटिका सबसे पहली नाटक-कृति है।^१ उनका दूसरा नाटक रामायण नाटक है।^२

नेपाल में ब्रजबुलि रचना का आरम्भ—

१५वीं शताब्दी के आरम्भ में ही नेपाल राजसभा में पदावली-साहित्य की चर्चा गुरु हो जाती है। इस साहित्य चर्चा का कारण स्पष्ट है क्योंकि उस समय मिथिला में विद्यापति और बंगाल में जयदेव-चण्डीदास ने साहित्य में नवोन्मेष ला दिया था। नेपाल के साथ मिथिला के सवध की चर्चा तो पहले ही की जा चुकी है इसलिए यह मानना अनुचित नहीं कि इन युग-प्रवर्तकों की रचनाओं से ही अनुप्राणित होकर नेपाल के कवियों ने उन रचनाओं के अनुकरण से मैथिली और ब्रजबुलि में रचनाएँ आरम्भ की।

पांडव-विजय नाटक—

१५वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में जयस्थिति के वंशधर जययस मल्ल देव की मृत्यु के बाद उनके तीन पुत्रों के बीच राज्य बँट गया। बड़े लड़के पुरानी राजधानी भातगाँव में राज्य करते रहे। छोटे दोनों की राजधानी क्रमशः काठमांडु और वनेपा थी। वनेपा के राजा जयरणमल्ल रचित 'पांडवविजय' नाम का एक नाटक प्राप्त हुआ है, इसका रचना-काल १४९५-९६ मन् ईसवी है।

विद्या-विलाप नाटक—

भातगाँव के राजा विश्वमल्ल और उनके पुत्र त्रैलोक्य मल्ल १६वीं शताब्दी के बीच से अन्तिम दिनों तक नेपाल में राज्य करते रहे। नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में विश्वमल्ल के समय का लिखा हुआ, 'विद्या-विलाप' नाटक सुरक्षित है। यह नाटक असमाप्त है। ननीवाबू को जो 'विद्या-विलाप'^३ नाटक प्राप्त हुआ है वह परवर्ती काल के भूपतीन्द्र मल्ल द्वारा रचित है। हो सकता है कि भूपतिमल्ल ने पुराने 'विद्या-विलाप' नाटक के अनुकरण पर ही अपना नाटक लिखा हो। त्रैलोक्य मल्ल के राज्यकाल

^१ वागला साहित्येर इतिहास, पृ० ३९७।

^२ नेपाल दरवार का हस्तलिखित ग्रंथ।

^३ ननीगोपाल बन्दोपाध्याय : नेपाले वागला नाटक, पृ० १३३।

(अन्तिम १६वीं शताब्दी) में लिखे गए एक कृष्ण-लीला नाटक के कुछ पद मिले हैं^१।

नेपाल के नाटकों में केवल गीत—

नेपाल में जितने भी नाटक अब तक मिले हैं, उसमें से अधिकांश हस्तलिखित ग्रंथों में केवल नाटक के गीत ही लिखे हुए मिले हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अभिनेताओं का केवल नाटक के गीत ही कठस्य करने होते थे और गद्यांश को अभिनय के साथ-साथ उसी समय मन से बनाकर कहना पड़ता था। ये सभी नाटक गीत प्रधान थे, कहना या चाहिए कि ये एक प्रकार के 'गीतिनाट्य' थे।

कृष्ण-लीला विषयक नाटक में गेय पद—

त्रलोक्य मल्ल के समय में लिखे गए कृष्ण-लीला विषयक नाटक में जो गेय पद हैं उनमें से कुछ पदांशों में रामभद्र और वीर नारायण की छाप मिलती है। ऐसा अनुमान होता है कि इसका रचयिता कवि जयदेव और विद्यापति द्वारा प्रभावित था क्योंकि इसमें जयदेव का एक सम्पूर्ण पद 'श्रितकमलाकुच मण्डलघतकुण्डलम्' उद्धृत है। इन गीतों में जो दो चार ब्रजयुक्तियों के पद हैं उनसे सुन्दर कवित्व-शक्ति का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए नीचे दो पद उद्धृत किए जा रहे हैं। विरहिणी नायिका (सम्भवतः राधा) अपनी विरह-जन्म-दशा का वर्णन सखी से कर रही है—

कमल भयन मोहि विसारन
 मुन मधुरिका सखि ।
 बसन्त दारुण, काल गमाउब
 कसेन जीवन राखि ।
 बक्षिण पथन मेघ सुपाकर
 भेल सभ किछु आनि ।
 घदन गीतल, बोलिले गावलू
 रेणु उडे लह लागि ।
 घेवनिहे हरि विनु बड हय कुल ।
 चरण कमल जदि छाडल ता दिन गयल सुल ।

^१ डा० प्रबोधचन्द्र शर्माजी 'नेपाले भाषा नाटक' (साहित्य परिषद पत्रिका, ३६वां भाग) पृ० १७३।

सकल रथनि, जागि गमावलि
न छाड़े नीर नयान ।
अवश्य आवत हरि महागुणी
वीरनारायण भान^१ ।

विरह दुःख का वर्णन करते हुए नायिका पुन कहती है—

सघन वरिसे मेहा
सुमरि सुबंधु नेहा
जीव-चुटपुट नोद न आए विरह दगध देहा ।
मन पक्षि हया जावो
जाहा गिया (लाग) पायिवो
हाते धरिया पाय पड़िया, गलाय तुलिया लयिवो ।
चन्दन चिर न भाए
कुसुम साज सुखाए
अंग मोड़ि-मोड़ि अंगन ठाढ़ि मन चौदिके घाए^२ ॥

नेपाली भाषा की रचनाओं में वंगला का मिश्रण—

उपरोद्धृत पद में वंगला का प्रभाव स्पष्ट है । यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि नेपाल में जिस ब्रजबुलि का विकास हुआ उसमें नेवारी (नेपाली) का मिश्रण न होकर वंगला का मिश्रण क्यों हुआ ? नेपाल-मोरंग में वंगाली पंडित कवियों का आना-जाना बहुत दिनों से जारी था । वंगला भाषा की प्राचीनतम चर्यागीति (वौद्धगान व दोहा) का हस्तलिखित ग्रंथ नेपाल के पर्वतो के बीच ही सुरक्षित था । १३वीं-१४वीं शताब्दी से नेपाल के मल्ल राजवंश के गुरु वंगाली ब्राह्मण ही होते आ रहे थे ।^३ इस प्रकार उन वंगाली पण्डितों का बहुत दिनों से नेपाली राजवंश के साथ ही साहित्य पर भी जड़ जम चुका था । अतः इन अप्रान्तीय भाषाओं ने साहित्य-क्षेत्र से नेवारी (नेपाली भाषा) को विल्कुल ही खदेड़ दिया, फिर संस्कृत, मैथिली तथा ब्रजबुलि के प्रभाव से क्रमशः नेवारी भाषा की साहित्य रचना-शक्ति दुर्बल होती गई ।

^१. डा० प्रबोधचन्द्र वाग्वी : नेपाले भाषा नाटक—(साहित्य परिषद् पत्रिका, ३६वाँ भाग), पृ० १७३ ।

^२. डा० सुकुमार सेन · विद्यापति गोष्ठी, पृ० ४८ ।

^३ ननीगोपाल बन्दोपाध्याय : 'नेपाले वागला नाटक' भूमिका, पृ० ३ ।

हरगौरी विवाह नाटक तथा कुजविहारी नाटक—

त्रैलोक्य मल्ल के पुत्र जाज्योति मल्ल देव (अन्तिम १६वीं शताब्दी— १७वीं शताब्दी का आरम्भ) ने सस्कृत और लौकिक माहित्य का खूब पापण किया। इनके नाम से बहुत सी गीतिकविताएँ^१ तीन चार भाषा नाटक, मगीत गान्त्र का अनुवाद और टीका^२ तथा कुछ निबंध-ग्रन्थ^३ प्राप्त हुए हैं। सन् ईसवी के १६२९ में जगज्योति न 'हरगौरी विवाह' नाम का नाटक लिखा। इसमें ५५ पद हैं, यह भी 'गीतिनाट्य'^४ है। जाज्योति का लिखा हुआ दूसरा 'कुजविहारि नाटक' है। लगभग सन् ईसवी १६२९ के आसपास ही यह भी लिखा गया। इस नाटक का वष्य विषय है राधा-कृष्ण और गोपिया की लीला। भाषा के उदाहरण के लिए एक पद नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

सत्रघार यह बहकर चला गया—

कुज विहार हरि छाज रे,
गोपा सबे हरसित आज रे

इतने में राधा और कृष्ण ने साथ ही यह गाते हुए प्रवेश किया—

जाहि यह जमुनातीर, शीतल सुरहि समीर ।
नवदले तदअरे सोह, मधुकर धुनि सब मोह ॥
ताहि विदिरा बन भास, हमर हृदय गुण वास ।
ताहा गए करिए बिलास जाया पहुडुरावए आस ॥
नप जा ज्योतिमल्ल बाणी, मोर गति एके भवानी ।^५

उसके बाद पञ्चमृतु वणन, गोपियों की उक्ति, राधा की उक्ति आदि हैं।

^१ नेपाल दरबार का हस्तलिखित ग्रन्थ, गीत पचासिका (रचनाकाल सन् १६२८ ई०)।

^२ वही 'मगीत चन्द्र' का अनुवाद। मूल पुस्तक द्वारात दक्षिण दक्षान लाई गई थी।

^३ वही, सन १६२७ ई० में नारायण सिंह द्वारा संकलित 'दलाकगार सग्रह' और सन् १६१७ ई० का 'नरपरिषया टीका'।

^४ डा० सुशुमार सन विद्यापति गोष्ठी प० ४०।

^५ वही पृ० ४९।

^६ डा० प्रबोधचन्द्र वागची, नेपाले भाषा-नाटक (साहित्य परिषद् परिषदा, ३६वां भाग) पृ० १७४।

मुदित कुवल्याश्व नाटक—‘मुदितकुवल्याश्व’ नाटक मैथिल कवि पंडित रामचन्द्र शर्मा और जयमती के पुत्र वंशमणि आज्ञा द्वारा रचित है।^१ यह नाटक सन् ईसवी के १६२८ में लिखा गया था। यूरोपीय पंडितों ने इस नाटक का बराबर उल्लेख किया है, इसका कारण यह है कि इस नाटक में मल्ल राजवंश की परम्परा के सवंध में बहुत आवश्यक जानकारिया मिलनी है। यह नाटक संस्कृत-नाटको के अनुकरण पर लिखा हुआ नहीं है, इसको ‘गीतिनाट्य’ ही कहना अधिक उचित होगा। हस्तलिखित प्रति में केवल गीत ही मिलते हैं। पदों और वार्तालापमें मैथिली और बगला का ही प्रयोग हुआ है।

मलयगन्धिनी तथा मदनचरित नाटक—

जग ज्योति मल्ल के बाद राजा जगत् प्रकाश मल्ल की भी थोड़ी कुछ रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। इनका राज्यकाल १७वीं शताब्दी का मध्यभाग है। जगत् प्रकाश रचित ‘मलयगन्धिनी’^२ नामक पुष्पिकाहीन एक असम्पूर्ण नाटिका मिली है। इस नाटिका का जगत् प्रकाश की रचना होने में किसी भी प्रकार सन्देह की गुन्जाइश नहीं। नान्दी में है—“जगत प्रकाश भने नाटक नाये” और सूत्रधार भी कह रहा है—“श्रीश्री जयजगतप्रकाशमल्लक आज्ञा भेलच्छ.....मलयगन्धिनी नाटक अभिनय करू।” जगत् प्रकाश का लिखा हुआ दूसरा नाटक ‘मदन चरित’^३ मिला है। यह नाटक सन् ईसवी के १६७० में लिखा गया।

कवीन्द्र प्रतापमल्ल देव की रचनाएँ—

भातगाव के जगत् प्रकाश मल्ल के प्रतिद्वन्दी थे काठमाडु के प्रतापमल्ल देव और ललितापुर के सिद्धिनर सिंह देव।

‘कवीन्द्र’ प्रतापमल्ल देव के नाम से बहुत सी रचनाएँ मिलती हैं जैसे—‘वृष्टि चिन्तामणि’ अवलोकितेश्वर स्तवराज’, ‘स्वयंभूभट्टारकस्तोत्र’, ‘अविद्याघरीगीतस्तव’, ‘हरमेखला टीका’, ‘सगीततारोगयचूडामणि’ आदि।^४

^१ डा० सुकुमार सेन, ‘विद्यापति गोष्ठी’, पृ० ४९।

^२ डा० प्रबोध चन्द्र वागची, नेपाले भाषा-नाटक (साहित्य परिपद् पत्रिका, ३६ वाँ भाग), पृ० १७५।

^३ वही, पृ० १७५।

^४ डा० सुकुमार सेन . विद्यापति गोष्ठी, पृ० ४९-५०।

गीत दिगम्बर, हरकेलि तथा चतुरग तरगिणी नाटक—

कवि वसन्तमणि प्रतापमल्ल देव की सभा में भी थे। प्रतापमल्ल देव के तुलापुष्पदान-महोत्सव के अवसर पर वसन्तमणि ने मन् ईसवी के १६६५ में 'गीत-दिगम्बर' नाटक लिखा था। 'गीत-दिगम्बर' जयदेव के 'गीत-गाविन्द' के अनुकरण पर लिखा गया है। ध्यान देने की बात है कि इस नाटक में एक पद तुलसीदास की अवधी भाषा के अनुरूप भाषा का मिलता है। वसन्तमणि ने 'हरकेलि'^२ नाम का एक महाकाव्य भी लिखा था। वसन्तमणि की और एक रचना 'चतुरग तरगिणी'^३ मिली है।

गोपीचन्द्र नाटक और हरिश्चन्द्र नाटक—

सिद्धनरसिंह देव (मृत्यु १६५७ मन् ईसवी) के राज्यकाल में 'गोपीचन्द्र नाटक' और 'हरिश्चन्द्र-नृत्य' (अर्थात् हरिश्चन्द्र नाटक) लिखा गया। गोपीचन्द्र नाटक का अधिकांश भाग पद्य में है और उसकी भाषा प्राचीन बगला है। 'हरिश्चन्द्र-नाटक' के रचयिता रामभद्र हैं। सिद्धनर सिंह मल्ल के पुत्र श्रीनिवासमल्ल देव की आजा से कवि रामभद्र ने 'ललितकुवल्यावमणालमा-नाटक' ('गिणपावनी महिमानृत्य') लिखा। यह नाटक १६६५ मन् ईसवी में लिखा गया।^४

श्रीनिवास मल्ल का ब्रजबुलि का पद—

स्वयं श्रीनिवास मल्ल रचित एक ब्रजबुलि का पद मिला है—

उपमिअ आतन नीरज-पकज गगधर दिवस-मलीने
भीह अनुपम अधर सोहायन नवपल्लव रचि छीने ।
सुन वेयसि की मोर परल गदअ अपराये
वह मलयानिल जाद क्लेशर न कर मनोरय बाये ॥^५

^१ नेपाल दरवार का हस्तलिखित प्रथम ।

^२ एगिमाटिक सोमायटी (इडिया गवर्नमेन्ट हस्तलिखित प्रथम) प्रथम संख्या ८१४८) ।

^३ नेपाल दरवार का हस्तलिखित प्रथम ।

^४ डा० सुकुमार मन विद्यापति गाष्ठी ५० ५० ।

^५ रागतरगिणी, ५० ४८ ।

अश्वमेध नाटक और मदालसा हरण नाटक—

भातगाँव के जगत् प्रकाश मल्ल के पुत्र जितमित्रमल्ल देव के उद्योग से सन् ईसवी के १६९० में 'अश्वमेध-नाटक' लिखा गया। और एक 'मदालसा हरण' नाटक की हस्तलिखित प्रति मिली है जो सन् ईसवी के १६८७ में लिखा गया है।

भूपतीन्द्रमल्ल की रचनाएँ—

जितामित्र के बाद १८वीं शताब्दी के आरम्भ में उनके पुत्र भूपतीन्द्र मल्ल भातगाँव के सिंहासन पर बैठे। इन्होंने सन् ईसवी के १६९५-१७२२ लगभग ३० वर्ष तक राज्य किया। भूपतीन्द्र के लिखे हुए बहुत से गीत (पद) और नाटक प्राप्त होते हैं।^३ उनकी रचनाओं से रचयिता के मुन्दर कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। भूपतीन्द्र का लिखा हुआ 'माधवानल', 'रुक्मिणी परिणय' और दो नाटकों को असम्पूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थ (शेष पृष्ठ के न रहने के कारण नाटकों का नाम ज्ञात न हो सका) नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। ननीवावू ने भूपतीन्द्र के और दो नाटक 'विद्याविलाप' और 'महाभारत' प्रकाशित किए हैं। उन्होंने 'विद्याविलाप' को काशीनाथ रचित और 'महाभारत' को कृष्णदेव कृत कहा है। 'विद्याविलाप' में दो पद और 'महाभारत' में एक पद छोड़कर सभी पद लालमती देवी—सुत, विश्वलक्ष्मी देवी-पति भूपतीन्द्र की ही भणिति में हैं। अपनी राजधानी में गुणों का वर्णन स्वयं करना शोभनीय नहीं, शायद राजा को ऐसा लगा इसलिए इन दोनों नाटकों के तीन पदों में भूपतीन्द्र की छाप नहीं है। इन नाटकों की भाषा भी अन्य नाटकों के समान ही है अर्थात् गद्यांश प्राचीन बगला और पद्यांश ब्रजबुलि में है।

भाषा संगीत में ब्रजबुलि के पद

भूपतीन्द्र की आज्ञा से १७१३ सन् ईसवी में, भैरवाप्रादुर्भाव, नाटक लिखा गया। नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में "भाषा संगीत" नाम का एक

^१ नेपाल—दरवार का हस्तलिखित ग्रन्थ।

^२ डा० प्रबोधचन्द्र वागची नेपाले भाषा नाटक (साहित्य परिषद् पत्रिका) पृ० १७६।

^३ डा० मुकुमार सेन : विद्यापति गोष्ठी, पृ० ५१।

हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित है। इसका गीता को भूपतीन्द्र ने स्वयं सकलित किया था किसी सभा कवि से सन ईसवी के १७०५ में कराया इस सम्बन्ध में प्रमाण के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इसमें १३९ गीत हैं और गीता की भाषा अत्यन्त सरल है। उदाहरण के लिए एक गीत नीचे दिया जा रहा है। राधिका का विरह वृणन —

कि माघघ न तेजह अवलाज आमि । ध्रु० ।
 शरद जामिनी हमे हरिलो हे चञ्चलशे
 देखि गनि दाह पराण ।
 नाह अपनहि कर मने भाविय ।
 मलय पवन हन घान ॥
 मधुकर भमि भमि विपिन कुसुम रमि
 धुरि पिवय कर राय ।
 युवति हृदय दल, प (र) म कठिन मन,
 पाहन तह अति भाव ।
 सरसिज सखरे द्रुम भय पिक दुनि
 सुनि जिय कापय मोर ।
 भवन आसन घन, भल न सभायय
 खने खने चिति यिति मोर ।
 बचन गुणे परयस, रयनि गयाओल ।
 आतुरे अघिर गेयान,
 भुपतीन्द्र नरपति भण सुन मातिनि
 रति रस होयत निदान ॥

भूपतीन्द्र मल्ल की रचनाओं के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये संगीत और नाट्य शास्त्र के विशेष जानकार थे। आज तक उनके गीत सम्मानित हाते आ रहे हैं।

रणजीतमल्ल की रचनाएँ—

भूपतीन्द्र के बगैर रणजीत मल्ल सन् ईसवी के १७२२ के कुछ पहले ही भातगाव के मिहासन पर बसे। साहित्य ममता में वे अपने पूर्व पुत्रों से किसी प्रकार कम नहीं थे। उन्होंने लगभग ५० वर्ष तक राज्य किया। इन ५० वर्षों में उन्होंने बहुत से नाटक लिखे। इन नाटकों में से बहुत कम ही

अभी तक मिले हैं। नगीत-शास्त्र में भी उनका अच्छा अधिकार था और गीतों के बीच-बीच में सुन्दर पदों के भी नमूने मिल जाते हैं।

रामचरित्र और माधवकामकन्दला—

ननीबाबू द्वारा प्रकाशित “रामचरित्र” और “माधवकामकन्दला” नाटक रणजीत मल्ल द्वारा ही रचित हैं^१। इनमें दो पदों के अतिरिक्त सपूर्ण पदों में नृप रणजीत मल्ल की छाप मिलती है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये दोनों नाटक रणजीत मल्ल द्वारा ही लिखे गये होंगे। इन दोनों नाटकों की भाषा में मैथिली की अपेक्षा वगला का ही अधिक प्रभाव है। “रामचरित्र” नाटक की भाषा यद्यपि अधिकांश वगला के ही निकट है फिर भी उसमें यदाकदा ब्रजबुलि का भी अंश है। उदाहरण के लिए एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

हरये वृन्दावने जाय देखब ।

कोकिल धुनि शुनि वेनु वजाव ।.

मिलत गोपिनी सवे आय ॥

रणजीत मल्ल रचित नाटक—

श्री प्रबोधचन्द्र वागची महाशय को रणजीत मल्ल रचित और ६ नाटक प्राप्त हुए हैं—“उपा-हरण नाटक,” “अन्वकासुर वधोपाख्यान नाटक,” कृष्ण-चरित नाटक,” “मदन चरित कथा नाटक,” “कोलासुर वधोपाख्यान नाटक,” और रामायण नाटक”^२। इन सब नाटकों की भाषा भी अन्य नाटकों के समान ही है। इनके अतिरिक्त श्री प्रबोधचन्द्र वागची महाशय को रणजीत मल्ल द्वारा रचित नेवारी भाषा का “गोरखोपाख्यान कथा” नाम का एक नाटक मिला^३। गोरखनाथ का कीर्तिकलाप ही इस नाटक का वर्ण्य विषय

^१ इन दोनों नाटकों में राज्यवर्णन और देशवर्णन के अंश में “गणेश” और “धनपति” के नाम की छाप मिलने के कारण, ननीबाबू ने “नेपाले वागला नाटक” और श्री मुकुमार सेन महाशय ने “विद्यापति-गोष्ठी” में “रामचरित” को गणेश और “माधवकामकन्दला” को धनपति रचित माना है।

^२ नेपाले भाषा नाटक, (साहित्य परिपत् पत्रिका ३६ वा भाग), पृ० १८०।

^३ वही।

है। नेवारी भाषा में होने पर भी यह नाटक अथवा नाटका का अनुकरण पर ही लिखा गया है।

नाटकों में ब्रजबुलि—

भूपतीन्द्र मल्ल के पुत्र रणजीत मल्ल दश भागवाव के अन्तिम नेपाली राजा थे अतएव इनकी राज्य समाप्ति के साथ ही नेपाल के नाटक-साहित्य का प्रयोग भी समाप्त होता है। नेपाल में ब्रजबुलि साहित्य बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा के स्वतंत्र पदावली के रूप में विकसित न होकर नाटका के २०० वर्षों की साहित्य धारा के बीच ही पनपा। मिथिला में जिन ब्रजबुलि का बीज बोया गया था वहीं नेपाल-मौरंग राजसभा में नवीन पौधे रूप में अंकुरित हुआ।

(ख) बंगाल

ब्रजबुलि की व्यापकता—

ब्रजबुलि-साहित्य ईसवी सन् की पंद्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिना सं लेकर ईसवी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी तक सम्पूर्ण बंगाल का रम से आप्लावित करता रहा है। इसके बहुत प्रसार और विकास का श्रेय चतुर्थ महाप्रभु का है। उनके अनुगामियों ने राधाकृष्ण के लीलाविषयक ब्रजबुलि पदा की प्रचुर मात्रा में रचना की। उनके अनुयायी उन्हें राधा कृष्ण का अवतार मानते हैं और उसी रूप में उनकी शोभा का भी वर्णन उद्दान किया है। ब्रजबुलि के प्रसार और उसके व्यापक होने में उसका मरलता गेयता तथा उसके माधुर्य का बड़ा हाथ नहीं है।

बंगाल में ब्रजबुलि का प्राचीनतम उदाहरण—

बंगाल में ब्रजबुलि का प्राचीनतम उदाहरण यगाराजधान रचित निम्न-लिखित पत्र है। ये हुमेनगाह के आश्रित थे। इस पत्र में मन्वी मित्रनानुरा राधिका की दशा का वर्णन कृष्ण में कर रही है—

एक पयोपर चन्दन लेपित आर सहइ गौर ।

हिम धरापर बनक भूपर बीजे मिलल जोर ।

माधव तुआ दरान काजे

- आप पदचारि श्रिया मुदरी बाहिर देहली माते ।

बाहिन लोचन काजरे रजित धवल रहल वाम ।

हेरइते रूप नयनयुग क्षापलु
 तव मोहे रोखलि भोर ।
 सुन्दरि, तेखने कहल को तोय ।
 भरमहि ता संये नेह बाढायवि
 जनम गवायवि रोय ।
 विनुगुण परखि परक रूपलाल से
 काहे सोपलि निज देहा ।
 दिने दिने ज्योयति इह रूपलावणि
 जीवइते भेल सन्देहा ॥
 जो तुहुं हृदये प्रेम तरु रोपलि
 श्यामजलद रस-आशे ।
 सो अब नयन-नीर देह सोचह
 कहतहि गोविन्द दासे । (पदकल्पतरु, मरस्या ४३५)

शत्रहवीं शताब्दी के बाद का ब्रजबुलि-साहित्य—

इसवी सन् की सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों से बगाल के ब्रजबुलि साहित्य के रूप में परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है जिससे पदों की भाषा और छन्द में नवीनता का समावेश होता है। साहित्य-रचना की दृष्टि से इन पदों की सृष्टि नहीं हुई, भक्ति-निवेदन ही उनके मूल में था। इन पदों की सृष्टि से कीर्तन की प्राचीन प्रणाली में नये रस का संचार हुआ। दृष्टान्त के लिये शशिशेखर का निम्नलिखित पद उद्धृत किया जाता है :

विरहिणी राधा की दशम दशा का वर्णन है ।

अति शीतल मलयानिल मन्द मधुर बहना
 हरि वैमुखि हामारि अंग भदनानले दहना
 कोकिल कूल कुह कुहरइ अलि झंकर कुसुमे
 हरि लालसे तनु तेजब पावब आन जनमे ।
 सब संगिनी घेरि बैठलि गावत हरिनामे
 जैतने शुने तैखने उठे नवरागिनी गाने ।
 ललिता कोरे करि बैठत विशाखा घरे मटिया
 शशि शेखर कहे गोचरे जावत जिउ फाटिया^१ ॥

^१ अप्रकाशितपदरत्नावली, सख्या २५७ ।

शत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं-शताब्दी में ब्रजबुलि-साहित्य—

सप्तदश शताब्दी की यह रचना प्रणाली अष्टदश शताब्दी की सीमा को पार करते हुए उन्नीसवीं शताब्दी तक क्रमिक धारा में चलती आई। उन्नीसवीं शताब्दी में जनमेजय मिश्र, वकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, राजकृष्ण राय, गुरुप्रसाद मनगुप्त त्रिपुरा के महाराज बीरचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर (भानुसिंह के उपनाम से) ने ब्रजबुलि में कुछ पदा की रचना की। ब्रजबुलि साहित्य की मधुरिमा और रसालता ने उदीयमान बंगला साहित्य को भाष्य प्रधान किया। बंगला-साहित्य को इसने अत्यधिक प्रभावित किया। उन्नीसवीं शताब्दी में आकर, जब नये नये विचारा और आधुनिकता का प्रवेश बंगाल में हो रहा था, ब्रजबुलि साहित्य की धारा क्षीण हो गई और उसका स्थान आधुनिक बंगला-साहित्य ने ले लिया।

परवर्ती काल के ब्रजबुलि के कुछ पद—

उस काल की ब्रजबुलि की रचनाओं के स्वरूप को निम्नलिखित दो-चार पदा में देखा जा सकता है। मयुरा प्रवासी प्रिय कृष्ण के वियोग राधा व्याकुल है। विरह की अगह्य पीडा में तडपती हुई राधिका सोचती है सयाग दशा में कृष्ण-सानिध्य में ही मने प्राण क्या नहीं त्याग दिया, यह तिल-तिल कर दुःख सहते हुए जीने से तो सयोग की दगा में मृत्यु वहीं भली थी।

पराण ना गेलो ।

जो दिन पैलनु सह जमुनावि सोरे,
गायत नाचत सुबर धीरे धीरे,
ओहि पर पिय सह, बाहे कालो नीरे,
जीवन ना गेलो ?

फिरि घर आयनु, नाबहनु बोलि,
तितायनु भाखि नीरे आपना आँचोलि
रोइ रोइ पिय सह बाहे लो पराणि,
सइखन ना गेलो ?

गुनहु धवण-मये मयुर बाजे,
'राये' 'राये' 'राये' राये विपिन मासे,
जब गुननु लागि सह, सो मयुर बोलि,
जीवन ना गेलो ?

घायनु पिय सह, मोहि उपकूले,
 लुटायनु कादि सह श्यामपद मूले,
 सोहि पदमूले रह, काहे जो हमारि ।
 मरण ना भेल ?^१

बादलो के बीच से छन-छन कर आती हुई भीनी चाँदनी, रह-रह कर विजली की चमक और मेघो की मृदु ललक से वर्षाकालीन रात्रि की शोभा अद्भुत रमणीय हो रही है । उस कमनीय मोहक वातावरण में युगल किशोर झूलन और विहार के विलास रंग में तन्मय है—

देख रे ए सखि, आजु कि भिनि भिनि चाँदनी राति,

चादिके सारी चुक पिक कुल गावत,

देख रे सति..... ।

पापिया वादुरीगण भदन जागायति

देख रे सखि..... ।

घन घन सौदामिनी क्षलकत, ललकत

गरजत गंभीर निनादे रे,

देख रे ।

रिमि क्षिमि बरखत मलय पवन साय,

युवक युवती चित भदन माताय रे,

ऐछन समये, विहरत नवल किशोर,

जमुना पुलिने कुंज सुशोभने, शोभन हिन्दोल माझ रे,

नाचत गावत रंगिनी जोड़, विहरइ कानने जुगल किशोर रे ।

ऐछन निरुपम झूलन विलास

आनन्दे हेरत वीरचन्द्र दास ।^२

इस कठिन भव-बन्ध मोचन में एकमात्र गुरु का ही सहारा है, अतएव कवि गुरु की अपार महिमा की वन्दना करता है—

पामर-जन-नाण-परम सुहृत् धन

गुरु पदे मझ परणाम ।

कोमल-नीरज पटल-कलेवर

सरस प्रेममय धाम ॥

^१ वकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय 'मृणालिनी', पृ० ८४ ।

^२ महाराज वीरचन्द्र, झूलन गीति, २६; पृ० २८-२९ ।

को जाने तौंहारि कृपा-बल लेग ।
 देह करुणा करि भूतल अवतारि
 भव-तरि सम उपदेग ॥
 जो जन सो तरि बहि बहि आवत
 मिलत जुगल-निधि-पादो ।
 सुखमय-युगल-बेलि रस रजन
 निति निति निरख उलासे ॥
 स्मरण मनन करि हुजा पद-पकज
 प्रसाद-दास रस गाव ।
 वचित भवित दुरित-मति जानिए
 नाहि करुण विछुरव ॥^१

सावन की काली घनघोर रात्रि है । कृष्ण भादव षष्ठी के स्वर में राधा को बारबार बुला रहे ह । कृष्ण—प्राणा राधा भला कैसे वह प्रिय आह्वान अनमुनी कर सवती ह तभी तो अभिसारोचित वगभूषा की रचना के लिए सखिया से अनुराध करती हो—

सजनि गो—सावन गगने घोर घनघटा
 त्रिशीय जामिनी रे ।
 कुज पये सखि सखि वसे जावव
 अवला कामिनी रे ।
 उन्मद पवने यमुना तर्जित
 घन घन गर्जित मेह ।
 दमकत विद्युत पयतर लुण्ठत,
 धरधर कम्पत देह ।
 घन घन रिम शिम रिम शिम रिम शिम,
 धरधत नीरव पुज ।
 घोर गहन घन ताल तमाले
 निविड तिमिरमय कुज ।
 बोलत सजनी ए दुरुजोगे
 कुजे निरदय फान
 दाहण बागी बाह यजापत
 सकरण राधा नाम ।

^१ प्रसाद दास पद-चिन्तामणि-माला ।

सजनि—

मोक्षिम हारे वेदा बना दे
 सीथि लगा दे भाले ।
 ऊरहि विलोलित शिथिल चिकुर मम
 बाधह मालत माले ।
 खोल दुआर त्वरा करि मलि रे,
 छोड़ नकल भय लाजे,
 हृदय, विहगसम क्षटपट करतहि
 पंजर-पिजर माले ।
 गहन रयनमे न जाव वाला
 नवल किशोर-क पाश
 गरजे घन घन, बहु डर सावव
 कहे भानु तव दास ।^१

अंतिम पक्तियों में जीव की ब्रह्म मिलन की आतुरता स्पष्ट ध्वनित है ।
 अलौकिकता के बाने में उपरोद्धृत पद का सौन्दर्य अपूर्व है ।

इसी भाव की व्यञ्जना कितने मुन्दर रूप में इस अन्य पद में प्रकट हुई है ।
 मरणासन्न जीव 'उम पार नियति का मानव से जाने क्या क्या व्यवहार होगा'
 कि अज्ञात—भीति के कारण ही इतना भयभीत होता है । पर कवि की यह
 अभय वाणी कितनी आश्वासनपूर्ण है—मरण श्याम तुल्य और जीव कृष्ण—प्रिया
 राधिका के समान है, ऐसे परम प्रिय से मिलन के लिए जाते हुए कैना भय
 और कैसी बाधा ?—

मरण रे,
 तुहं मम श्याम-समान ।
 मेघवरण तुझ, मेघ जटाजूट,
 रक्तकमल कर, रक्त अघर पुट,
 तापविमोचन करुण कोर तब
 मृत्यु-अमृत करे दान ।
 तुहं मम श्याम-समान ॥
 मरण रे,
 श्याम तोहारइ नाम ।

^१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर . (भानुसिंह-पदावली), ७ ।

चिर विसरल जब निरदय माघव
तुह न भइयि मोय वाम ।

आकुल राधा रिझ अति जरजर,
झरइ नयन-दउ अनुखन झरझर,
तुह मम माघव, तुह मम दोसर,
तुह मम ताप घुघाव ।

मरण तु आय रे आव ॥

भुजवाने तव लह सम्बोधयि,
आलिपात मनु आसव मोदयि,
फोर-उपर तुझ रोदयि रोदयि
नीव भरव सव देह ।

तुह नहि विसरवि, तुह नहि छोडवि,
राधा हृदय तु कवहु न तोडवि,
हिय हिय राखवि अनुदिन अनुसन
अतुलन तोहार लेह ॥

दूर सयें तुह वाणि यजावसि
अनुसन डाकसि, अनुसन डाकसि
राधा राधा राधा,

दियस फुरावल, अचहु न जावव,
विरहताप तव अचहु घुचावव,
कुजवाट-पर अचहु म घावव,
सब कहू टूटइव वाधा ।

गगन सघन अब, तिमिर मगन नव,
सङ्कित चकित अति, घोर मेघरव,
गाल ताल तरु समय-सवय सय,
पय बिजन अति घोर ।

एकलि जावल तुझ अभितारे,
जाय विधा तुह कि भय साहारे,
मय-वाधा सब अमय मूर्ति धरि,
पय देलायव मोर ।

भानुसिंह कहें, छिये छिये राधा,
चंचल हृदय तोहारि,
माधव पहु मम, पिय स मरणसे
अब तुहं देख विचारि ॥^१

वगाल में ब्रजबुलि का इतिहास पाच सौ वर्षों के सुदीर्घ क्षेत्र के बीच विकसित रहा, अतः ब्रजबुलि के पद रचयिताओं की सूची भी उसी अनुपात से विस्तृत है। इसीलिए ब्रजबुलि के उन वैष्णव पदकर्ताओं की चर्चा आगे स्वतंत्र अध्याय में की जायगी।

(ग) आसाम

शंकरदेव और असमिया संस्कृति—

असमिया साहित्य के आदि युग (१२०० स० ई०-१६५० स० ई०) को भक्तिकाल की आख्या दी जा सकती है। भक्तिमूलक उस साहित्य के शंकरदेव अग्रदूत हैं। कट्टर शाक्त उपासक आसाम प्रान्त में शंकरदेव ने १५वीं शताब्दी में वैष्णवता की विपुल बाढ ला दी, यह कोई कम श्लाघनीय कार्य नहीं। किसी आलोचक की यह उक्ति 'आसाम प्रान्त में जो नहीं था और उसे जिन-जिन चीजों की आवश्यकता थी, वह सब कुछ शंकरदेव ने देकर उसका मुख उज्ज्वल किया', अति उपयुक्त है। वस्तुतः असमिया साहित्य, समाज, धर्म, संस्कृति के पुनरुत्थापन में शंकरदेव का स्थान अद्वितीय है।

आसाम का वैष्णव साहित्य—

महाकवि शंकरदेव, उनके प्रमुख शिष्य माधवदेव तथा उनके शिष्य-उप-शिष्य वर्ग—विष्णुपुरी, कवीर, वृन्दावनदास, परमानन्द, पुरुषोत्तम ठाकुर, रामचरण ठाकुर, दैत्यारि ठाकुर, नारायणदास, गोपाल आता और भागीरथ के उद्योगों के फलस्वरूप आसाम में भी वगाल का सामयिक वैष्णव साहित्य प्रस्तुत हुआ। यह कहना किसी प्रकार भी तर्कसंमत नहीं कि आसामी भाषा वगाली आसामी भाषा परिवार के अन्तर्गत होने के कारण आसाम के

^१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर . भानुसिंह -पदावली, ९।

^२ श्री कमलनारायण . 'असमिया साहित्य में वरगीत' (हिंदुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९४३) पृ० ३।

ब्रजबुलि को भी बगला से पूषक करके विचारने की आवश्यकता नहीं।^१ आसामी ब्रजबुलि साहित्य तथा बगला ब्रजबुलि साहित्य में मौलिक भावगत भेद स्पष्ट है, आगे चल कर आसामी साहित्य सवधी विचार विवचन के समय इस पर आवश्यक प्रकाश डाला जाएगा।

आसाम में ब्रजबुलि साहित्य का प्रवर्तन—

आसाम में ब्रजबुलि के प्रभुत्व का कारण था—पहल ही से कामरूप के लोगो का विदेह के लोगो के साथ सम्पर्क और स्वयं गकरदव का मैथिली बोलनेवाला स प्रत्यक्ष सबध १४४९ १५६८ की प्रथम तीस यात्रा के समय गकरदव ने देना कि बण्णव घम प्रचार में ब्रजबुलि तथा मधुच भाषा का बहुत बडा हाथ है, अत आसाम में बण्णव घम के प्रचार के लिए उहान भी ह्ना का आश्रय लिया। इस प्रकार प्रमुख घम सुधारक तथा साहित्यसेवी शरदव तथा उनके सहचराने आसाम में एक बहू ब्रजबुलि साहित्य की सृष्टि की। जिनके कुछ अप्रमुख भाग ही अब तक प्रकाश में आए है।^२

आसामी साहित्य और ब्रजबुलि—

आसामी साहित्य का एक बहुत बडा भाग ब्रजबुलि साहित्य है। यह कहना अनुचित न होगा कि ब्रजबुलि गीत ही आसामी साहित्य का मेरुदण्ड है। विद्यापति के अनुकरण पर रची गई आसामी ब्रजबुलि के गीतों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(१) वरगीत (भगवत्विषयक गीत) और (२) अकरा गीत (अविया नाटा या गीत)^३। ये गीत भी बहुत कुछ विद्यापति के ब्रजबुलि गीतों से मिलते जुलते हैं। इन गीतों की विषयवस्तु श्रीकृष्ण और उनकी लीलाए हैं। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि विषय का दृष्टि से बगाली ब्रजबुलि कवियों की तुलना में आसामी ब्रजबुलि कवियों पर श्रद्धा का सीधा और स्पष्ट प्रभाव है।

आसामी ब्रजबुलि और जनभाषा—

आसामी ब्रजबुलि में भी ब्रजभाषा के गुरु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं जिनका कारण स्पष्ट है—गकरदव अपने प्रथम १२ वर्ष कालीन साथ यात्रा

^१ इच्छय—मुकुमार सन हिन्दी आफ ब्रजबुलि लिटरचर प० १।

^२ इच्छय 'ब्रजबुलि आर कामरूप अनुसंधान समिति (८) प० १०४।

^३ शरदर जयवन्त मिश्र हिन्दी आर मैथिली लिटरचर, प० १०३।

के समय विभिन्न घर्म और मस्त्रुति के केन्द्रस्थलों पर रुकते चले। उन्हें विभिन्न सम्प्रदायों के आचार विचार के अध्ययन का पूरा मौका मिला। उस समय उत्तर प्रदेश में, राम, कृष्ण और राधाकृष्ण विषयक तीन वैष्णव संप्रदाय प्रचलित थे। ब्रजभाषा में प्रस्तुत उक्त संप्रदायों के साहित्य तथा सिद्धान्तों का शंकरदेव ने गभीर अध्ययन किया। विद्यापति का प्रभाव तो बीजरूप में अप्रत्यक्ष भाव से हृदय में छिपा ही था, अब ब्रजभाषा साहित्य की प्रेरणा से ब्रजबुलि के वरगीतों के स्रोत फूट चले जिसकी भाषा में मैथिली तथा ब्रजभाषा के साथ ही कुछ आसामी पदों और मुहावरों का भी प्रवेश हो गया। इन कारण आसाम प्रान्त में विकसित ब्रजबुलि साहित्य में बंगला ब्रजबुलि साहित्य से स्वतन्त्र विशेषताएँ हैं। प्रत्येक प्रान्त में विकसित ब्रजबुलि में प्रादेशिक विशेषताओं के पुट के कारण सर्वत्र ही वह कुछ पृथक रूप में दिखाई पड़ी।

असमिया ब्रजबुलि पर ब्रजभाषा साहित्य का प्रभाव—

यात्रा से पूर्व शंकरदेव की रचना की भाषा शुद्ध असमिया थी, इसका पुष्ट प्रमाण मिलता है आसामी भाषा और साहित्य के इतिहास लेखक श्री देवेन्द्र नाथ वेजवर्मा की पुस्तक में 'शंकरदेव की भाषा शैली दो प्रकार की थी। एक तो शुद्ध असमिया की भाषा शैली, दूसरी ब्रज और मैथिली मिश्रित असमिया थी। तीर्थ यात्रा के पहले की रचनाओं की भाषा असमिया है और यात्रा के बाद दूसरी शैली की भाषा का प्रयोग किया है^१।' इस प्रकार आसामी साहित्य के साथ ब्रजभाषा साहित्य का केवल भागवत ही नहीं भाषागत मेल भी हुआ। उदाहरणस्वरूप माधवदेव का यह पद है—

राग—अशोचारी

गोविन्द दीनदयाशील स्वामी । तुहु मेरि सायेब चाकर हामि ॥ध्रु०॥
 काकु करिया तुवा चरणे लागो । अरुण चरणे चाकरी मागो ॥
 तेरि चरणे मेरि परणाम । चाकरी मागो नाहि आन काम ॥
 आपुन करमे जनम जाहा होइ । ताहा तुवा चरणे चाकरी रहू मोइ ॥
 माधवदास कहय मति हीना । गति मेरि नहि तुआ पद बिना ॥^२
 यह प्रार्थना विषयक पद मीराबाई के प्रसिद्ध पद^३ का स्मरण दिलाता है।

^१ श्री कमल नारायण . 'असमिया साहित्य में 'वरगीत' पृ० १० पर उद्धृत (हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९४३) ।

^२ वङ्गीत—७२, पृ० ४८ ।

^३ 'महानि चाकर राखो जी—गिरिधारी लाल ।

बढगीतो के रचयिताओं में महाकवि शंकरदेव तथा माधव देव ही अग्र-गण्य हैं। इनके अनुगामी तथा सहचरो ने भी पूण उत्साह के साथ बष्णव साहित्य सृजन में सहयोग दिया। परम्परा से बढगीता की संख्या २४० मानी जाती है परन्तु प्राप्त गातो की संख्या केवल २०७ ही है, जिनमें ४१ शंकरदेव १५४ माधवदेव, १ रामचरण ठाकुर १ ईत्यारि ठाकुर और १० पुरुषोत्तमठाकुर द्वारा लिखे गए हैं।

आसाम के बढगीत—

बढगीता के कवित्व पर विचार करत हुए डा० काकति^१ ने अपना अभिमत प्रकट किया है—‘जसे तूफान वन में लगी हुई दावाग्नि को प्रज्वलित करने में सहायक होता है उसा प्रकार साहित्य जातीय एवं महाजातीय आन्दोलन को उत्साहित और प्रेरित करता है। नाटका गीतो और पदा ने ही शंकरदेव के बष्णव आन्दोलन को इस गानक प्रदेश में इतना व्यापक और लोकप्रिय बनाया। तृपित जनता, मरुभूमि की ऊट की तरह पानी का गधसूत्र पकड कर जला शय दूढ़ने जस बरगीता के सौरभ से आवृष्ट होकर गकर माधव के गणपन्न हुई थी।’ बरगीता में वाध्यात्मक सौन्दर्य, भावा की कोमलता और विचारा की उच्चता है^२। मध्ययुग के आसामी साहित्य में इन गीतो ने क्रांति मचा दी। निम्नलिखित कुछ थोड़े से गीतो के उदाहरणा से इस कथन की सत्यासत्य की परीक्षा हो जावेगी।

इन पदो में भक्ति के निमल प्रकाश में दास के हृदय का सच्चा दाय टपक रहा है —

राग—सुहाई

श्री राम ! मइ अति पापी पापर तेरि भावना नाइ ।
जनम चिन्तामणि काहे गयो जब काचक लाइ ॥ध्रु०॥
दिवसे विषय विद्याकुल निगि गयने गावाइ ।
मने धन खोजि विमोहित तेरि आरति न पाइ ॥
हृदय कमले हरि बढह चिन्तो चरण ना तेरि ।
करल गरल जय भोजन हामो अमिया हेरि ॥

^१ ‘पुराणि असमिया साहित्य’।

^२ बरमा ‘दी हिस्ट्री आफ आसामी लिटरेचर’।

परम मूरख माधव एकु भक्ति ना जाना ।
दास दास वुलि तावहु एहु शंकर भाणा ॥^१

राग—अशोवारी

कँछे गोविन्द सेवहों तोइ ।
चंचल मन मेरि थिर नाहि होइ ॥ध्रु०॥
जैचे पंकजदलगत नीर ।
विषय लुब्ध मन तँछे अस्थिर ॥
छोड़ि पामर मति रति तुवा पाय ।
रूप रस परश शब्द गन्वे धाय ।
कहय माधव हरि करु मेरि दया ।
चरणे शरण लेहो छोड़ह माया ॥^२

राग—माहुर घाचि

राम तेरे चरण कमले रति लागो, मागों भक्ति गोसायि ।
हामो अनाय, नाथ तुहु गोविन्द, अगतिक गति आवरि कोइ नाइ ॥ध्रु०॥
निरमल भक्ति राज तुवा नाम गुण
ता बिने पतित तारक नाहि कोइ ।
हामू पतित तुमहि एकु पालक
इबेरि गोसायि वंचवि नाहि मोइ ॥
तब निज दास संगति रति भक्ति
तृण दशने मागोहो प्रभू राम ।
तब निज दासकु दासक लेवना
माधव कहय आवरि नाहि काम ॥^३

अब बाल गोपाल के मनोहारी रूप की एक झाकी देखिए.—

राग—माहुर धनश्री

साजेरे सखि नन्दकूवाला ।
नवघन जिनि शोहे तनु काला ॥ध्रु०॥

^१ बडगीत—१४, पृ० ९ ।

^२ बडगीत—६१, पृ० ४१ ।

^३ बडगीत—६८, पृ० ४६ ।

अघर सुधाकर पूरित धेनु ।
 अग विभूषित गो पद रेणु ॥
 झलमल मयूर पुच्छ शोहे माये ।
 कोटि मदन जिनि गोपिनि नाये ॥
 निदि इन्दु कोटि हरि साजे ।
 झलकित किंकिणी मञ्जीर बाजे ॥
 कण्ठे बेलि कदम्बकु माला ।
 कहत माधय गति बाल गोपाला^१ ॥

वन में गाचारण के लिए जाते हुए विशोर कृष्ण का जग माहन रूप बणन—

राग धनश्री -

हरहु माय, चललि विपिने मघाई ।
 धेणु विषाण, निशाने आवत, हरये धेनु धाय ॥ ध्रु० ॥
 उहि जग मोदन कचे दधि उदन
 गोधन आगु बुलाय ।
 वकिम नयन सरोरुह हासि
 हेरइते भुवन भुलाय ॥
 मदन मदनरूप पेखि पुनु पुनु
 सुशचि पडय मुरनारी ।
 सोहि जगजीव वियोग अब सहधि
 कचन चित्त हामारि ॥
 हरि-विरहानल आकुल गोपिनी
 दरशन दिवसे नपाय ।
 हरिगुण कहि रहि प्रेमे भुरय नीर
 शकर एहु रस गाय^२ ॥

गापिया के आगे कृष्ण हाथ पसार करके नव नीत माग रहें ह—

राग-कामोद

नन्देर नदन गोपिनी आगे ।
 कर पासि हरि लवणु मागे ॥ ध्रु० ॥

^१ बढगीत-१२९ पृ० ९१ ।

^२ बढगीत-२२, पृ० १५ ।

द्योलत वाणी गोवारीक चाया ।
 नवीन लवणु देहु गोपजाया ॥
 जो हरि दाता पदारय चारि ।
 मागत लवणु सोहि मुरारि ॥
 शिव विरंचि करु जाक सेवा ।
 लवणु मागि फिरय सोहि देवा ॥
 सनक सनातन जाकु धियार्द ।
 सोहि लवणु मागे गोपिनीक ठाइ ॥
 अभय दान करु जेहि हाते ।
 गोपिनीक आगे सोहि कर पाते ॥
 मुकुति मिलावत जाकेरि नामे ।
 मागय लवणु गोवारिक ठामे ॥
 जोहि थिक निजानन्द सुखे ।
 सो हरि लवण मागय कोन दुखे ॥
 करत भक्ति हरिको अधीना ।
 उहि रस गावत माधव दीना ॥

इन पदों का सा लालित्य, छन्दों की मधुरता, भाषा का अविराम प्रवाह और उनके क्रोड से बहती हुई भक्ति की उच्छ्वन्नित निर्मल भावधारा जन समाज को लोकोत्तर सदेश देती है। 'वहुगीत' शकर तथा माधवदेव के भक्त हृदय के निचोड़ हैं, उनके भक्तिपूर्ण शरणागत जीवन की सगीतात्मक अभिव्यक्ति है।

आसामी के नाटक—

अब आसामी नाटो (नाटको) पर भी थोड़ा विचार करना होगा। शकरदेव और माधवदेव द्वारा लिखित 'अकीया-वरनाट' १३ नाटको का संग्रह है। वे नाटक ये हैं— 'कालीय-दमन', 'पत्नी-प्रसाद', 'रस-क्रीड़ा', 'रुक्मिणी-

^१ बहुगीत—९५, पृ० ६५-६६ ।

रसखान का यह पद तुलनीय है—

सेस गहेस गनेम दिनेश, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
 जाहि अनादि अनन्त अखड, अछेद अभेद सुवेद बतावै ॥
 नारद से सुक व्यास रटै, पचिहारे तऊ पुनि शर न पावै ।
 ताहि अहीरकी छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥

विजय', 'श्रीराम विजय', 'पारिजात-हरण', 'अजुन भजन', 'चारघरा', 'सुमरा', 'भूमि-लौटावा पिपरा गुचुआ', 'भोजन-व्यवहार' और धीकृष्ण जम ।

आसामी नाटकों की भाषा—

इन नाटकों की भाषा में ब्रजबुलि और आसामी का अद्भुत मिश्रण है । आसामी वैष्णवीय नाटकों के लिए ब्रजबुलि का माध्यम बनाने का यह कारण हो सकता है— पौराणिक कथाओं से ही नाटकों के लिए विषय चुना गया, उन पौराणिक पात्रों के चरित्र की पवित्रता की रक्षा आवश्यक थी, परंपरा से ब्रजभाषा का ही भाषा श्रीकृष्ण महत्ता प्रदर्शन के लिए अपनाई जाती रही थी । अत आसामी तथा बंगाली कवियों ने भी बंगला, आसामी और ब्रजभाषा के योग से 'ब्रजबुलि' का ही कृष्ण की महिमा गान के लिए अति उपयुक्त समझा क्योंकि जन साधारण के लिए भी ये भाषा अधिक बोधगम्य थी आसामी नाटकों में सूत्रधार कथन व समान सब पात्र अभिनय करते हैं । इसलिए ये 'नाट' या 'यात्रा' (जात्रा) सस्वृत भाषा के समान ही हैं । इनमें ब्रजबुलि के गेय पद भी यथेष्ट मात्रा में हैं । सस्वृत श्लोकों के द्वारा कहानी आगे कहती है ।

आसामी ब्रजबुलि के गद्य—

आसामी-ब्रजबुलि के दो एक उद्धरण देखिए— मनुष्य चप्टा दरशिये श्री गोपाल दुह दण्ड सपक बधे परि रहल । तदनन्तर गोप गोपी सबक परम विपाद दुख देखिय श्रीकृष्ण आश्चोटकय उर फाल देलह । कालि सप परम चोट पाया । कृष्णक चारि उफरि परल हाजाग्व फणा तुलि कृष्णक चाइ फाफाइ कापचशु यारकज जिहवाये कवारि चेलकय । नाक मुखे विप बहि बाज हय । पति श्रीकृष्ण परम आटोपे कालिक हाम्फोल, ताहेव वेडि चत्राकारे धमत्कारे पाव पूरिस्ते लागल ।

('कालीय-मन' नाट पृ० ११)

'हाहा हमार स्वामी परम गुडुमार नवान बपस । ब्रजाधिक कटिन महेगक धनु इहान गुण दित स्वामी जानो नाहि पारय । हाहा पिता नि दारुण कम्म करलि । ह माता धमुमति । तुहु गिर हुया रहब । ह पिता अनन्त । तुहु मान् कये पुषिबी धनब । (श्रीराम-विजय नाट पृ० १९)

आसाम में इन वैष्णवीय नाटकों की प्रगति आज तक अपनी आ रही है ।

पौराणिक निबन्ध—

इन 'वज्रगीत' तथा नाटो के अतिरिक्त शंकरदेव तथा माधवदेव ने कुछ बड़े छोटे पौराणिक निबन्धों की भी रचना की है। शंकरदेव द्वारा 'भागवत-पुराण'^१ 'अनादिपातन'^२ (उसमें मृष्टितत्त्व वर्णित हुआ), 'भक्तिप्रदीप'^३ (गरुण-पुराण के कृष्णाज्जुन सवाद के आधार पर) रचा गया। माधवदेव ने 'भक्तिरत्नावली'^४, 'श्रीकृष्ण-गृहस्य'^५ और 'गजनीय'^६ की रचना की। माधवदेव के शिष्य तथा सवधी रामचरण ने 'भक्ति रत्नाकर'^७ (शंकरदेव के 'भक्ति रत्नाकर'^८ के आधार पर) और 'कसवध-जात्रा'^९ (यात्रा) लिखा। जात्रा (यात्रा)—पाला की रचना पद्धति बहुत कुछ शंकरदेव 'नाटपाला' के समान ही है। इसमें बहुत से पद हैं, उदाहरण स्वरूप एक उद्धृत किया जा रहा है।

॥ राग सिन्धुरा ॥ एकताली ॥

आवत राम कानु गोप शिशु संगे ।

शिगा शख वेणु पारु गाए मन-रंगे ।

चन्दने लेपित अंग वनमाला गले

जुड़य नूपुर द्वन्द चरण कमले ।

^१ कोचविहार के दरवार में ये हस्तलिखित ग्रन्थ हैं—प्रथम स्कन्ध (५), अष्टम स्कन्ध (९), एकादश-स्कन्ध (१२), हरिश्चन्द्र-आत्यान (१४) और उद्धव-सवाद (१६३)। द्वितीय संस्करण का मुद्रण गौहाटी में (१८७९) हुआ था।

^२ द्वितीय मुद्रण कलकत्ता पटलडागा में (१८९९)।

^३ लिपिकाल सन् ईसवी १६४५-४६।

^४ प्रथम मुद्रण (?) गौहाटी १८७७।

^५ कोचविहार—दरवार का हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या १५७।

^६ प्रथम मुद्रण (?) नवगा १८८५।

^७ द्रष्टव्य—श्री तारकेश्वर भट्टाचार्य लिखित 'आसामे प्राप्त प्राचीन भाषा पुथिर विवरण' (सा० प० प० २७, पृ० ७४-७७)।

^८ ये निबन्ध संभवतः संस्कृत श्लोको का संग्रह हैं।

^९ द्रष्टव्य—श्री तारकेश्वर भट्टाचार्य लिखित 'आसामे प्राप्त प्राचीन भाषा पुथिर विवरण' (सा० प० प० २७, पृ० ७७-८०)।

गाये पौतवस्त्र शोभे माये मोर-मेखि
मोह होए मनमय वानु-रूप-देखि ।
उमके चलय दुहो अरण चरण
एष्ये रहोक रामचरण रमन ॥

आसामी तथा बंगला के ब्रजबुलि साहित्य में प्रभेद—

आसाम में बङ्गीत तथा 'नाटा' द्वारा ब्रजबुलि साहित्य का बहुत विकास और प्रसार हुआ। पहले ही कह चुके हैं कि आसामा तथा बंगला ब्रजबुलि साहित्य में भाव तथा प्रादशिक भाषागत भेद होने के कारण एक ही साहित्य के अन्तगत नहीं आ सकते। वह भिन्नता उन विषयों में है—

- (१) आसामी-ब्रजबुलि साहित्य में 'राधा' को स्थान नहीं उसका कारण है।
- (२) आसामी-ब्रजबुलि साहित्य में दास्यभाव की ही प्रधानता है जबकि बंगला ब्रजबुलि साहित्य माधुय भाव से ही आतप्रोन है। मधुर भाव की उपासना के अभाव के कारण युगल स्वरूप स्थापन की आवश्यकता नहीं हुई और परब्रह्म कृष्ण ही उपास्यत्व के रूप में प्रतिष्ठित हुए। भाववदेव ने कृष्ण व श्रीडामय शशव रूप का बहुत ही सजीव और आकर्षक चित्र उपस्थित किया।
- (३) 'बङ्गीतो' में श्रीकृष्ण के साथ ही राम की भी वन्दना है। अतः यह स्पष्ट ही है कि उन भक्त कवियों की दृष्टि में राम तथा कृष्ण में कोई भेद नहीं दोनों एक ही परब्रह्म स्वरूप हैं। जहाँ हिन्दी तथा बंगला साहित्य में राम भक्ता तथा कृष्ण भक्तों में पारस्परिक मतभेद है वहाँ आसामी-ब्रजबुलि साहित्य ने दोनों भक्ति धाराओं का मधुर समन्वय किया।
- (४) आसामी-ब्रजबुलि साहित्य के नाटा का बंगला-ब्रजबुलि साहित्य में सवया अभाव रहा। नेपाल और तिरहुत के नाटकों में इस प्रकार की नाट्य पद्धति का अनुगोलन मिलता है।

(घ) उड़ीसा

उड़ीसा में वैष्णव धर्म—

१६वीं शताब्दी में चतन्यदेव के साथ ही गौडीय वैष्णव-धर्म प्रान्ति उड़ीसा में भी पहुँची। जिससे वहाँ का प्रचलित प्राचीन यष्णव धर्म लुप्त हो

चला अथवा यो कहना चाहिए कि उम अप्रान्तीय वैष्णव धारा में उगने अपना अस्तित्व अन्तर्निहित कर दिया। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि गौडीय वैष्णव धर्म ने उड़ीसा के नवीन वैष्णव धर्म को जन्म दिया। और फिर उड़ीसा के गौडीय वैष्णवों ने ब्रजबुलि में रचना आरम्भ कर दी। अतः यह स्पष्ट है कि उड़ीसा के ब्रजबुलि साहित्य का सीधा सम्बन्ध वगला के ब्रजबुलि साहित्य से है, मिथिला में अकुरोदित ब्रजबुलि ने नहीं।^१

उड़ीसा में ब्रजबुलि साहित्य—

महाप्रभु चैतन्य के उड़ीसा आगमन के पहले से ही उड़ीसा में ब्रजबुलि में रचना हो रही थी जिसका प्रमाण उड़ीसा के प्रमुख कवि और नाटककार राय रामानन्द का ब्रजबुलि का प्रसिद्ध यह पद है—

पहिलहि राग नयन भंग भेल ।
 अनुदिन बाढल अवधि ना गेल ॥
 न सो रमण न हाम रमणो ।
 दुहुं मन मनोभव पेशल जनि ॥
 ए सखि सो सब प्रेम-कहानी ।
 कानु-ठामे कहवि विछुरह जानी ॥
 न खोंजलूं दोति न खोजलूं आन ।
 दुहुक मिलने भव्यत पांच वाण ॥
 अब सो विरागे तुहु भेलि दोति ।
 सुपुरुख-प्रेमक ऐछन रीति ॥
 वर्द्धन रुद्र-नराधिप मान ।
 रामानन्द-राय कवि भाण^२ ॥

इस पद को कवि ने उड़ीसा के राजा प्रताप रुद्र देव (१५०४-१५३२ सन् ईसवी) को समर्पित किया था। प्राचीनता में वगाल के यशोराज खान के ब्रजबुलि के पद^३ के बाद ही राय रामानन्द का यह पद है। ब्रजबुलि में ब्रजभाषा की भ्रान्ति से कुछ लोगो ने यशोराज खान और रामानन्द के पद की

^१ द्रष्टव्य-श्री सुकुमार सेन . दी हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर; पृ० १।

^२ पदकल्प तरु—५७६।

^३ देखिए पृ० ४०९ पर यशोराज खान का पद।

भाषा को ब्रज की प्राणैगिक भाषा माना है।^१ सन ईसवी के १५११ या १५१२ में गोदावरी-तीर स्थित विद्यानगर में रामानन्द राय चैतन्य देव से पहली बार मिले। उस अवसर पर रामानन्द राय ने महाप्रभु को ब्रजबुलि का उपराद्धित पद सुना कर अभिभूत किया। अनुमान होता है कि रामानन्द राय का जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास के पदा स इस प्रकार की रचना के लिए प्रेरणा मिली और इन्हीं त्रयी से रामानन्द ने 'राधा भाव' भी श्रीचतन्य से पूव ही ग्रहण किया।

“राय-रामानन्देर भणितायुक्त पदावली”—

हाल ही में श्री प्रियरजन सेन ने 'राय रामानन्देर भणित युक्तपदावली' प्रकाशित की है। इसमें राय रामानन्द के कृष्ण अनुराग सवधी १०० से अधिक सुन्दर पद संगृहीत हैं। ब्रजबुलि साहित्य में इन पदा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इन पदा की भाषा ब्रजबुलि है पर उसमें ब्रजभाषा, उड़िया तथा बंगला के भी बहुत से शब्दा का मेल हुआ गया है। उदाहरण के लिए नीचे एक पद दिया जा रहा है—

सभ सखागणे कृष्ण बोलए घसन ।
 स्नाहान बढ़ाआ मोरे मिलब अखन ॥
 सुरेशर्मादरे विजे हरि हलघर ।
 गोपाल छलेन घरे स्नाहाने तत्त्वर ॥
 नित्यकम सारिसरे भेटल मोहन ।
 घबन घोषाछ केह दिख्ताए दपण ॥
 मलय कुसुम मधुश्री अगे मगल ।
 रामानन्द चिन्ति रूप आनदे झुडल ॥

श्री सुकुमार सेन ने इस सग्रह को १६वीं शताब्दी के उड़ीसा के प्रतिद्ध कवि रामानन्द राय का नहीं माना है। उनके मातानुसार आनुमानिक अष्टादस शताब्दी में किमी बंगाल उड़ीसा प्रान्तवासो कवि ने राय रामानन्द की छाप से कृष्णदाम कविराज के 'गोविन्दलीलामृत' क अनुकरण पर इस कृष्णलीला विषयक पदावली की रचना की थी।^२

^१ द्रष्टव्य—श्री प्रभात मुखर्जी की हिस्ट्री आफ मेडिवल वैष्णविज्म इन उड़ीसा, प० ७१।

^२ द्रष्टव्य—श्री सुकुमार सेन 'बांगला साहित्येर इतिहास', प० १००८।

सोलहवीं शताब्दी में उड़ीसा के ब्रजबुलि के कवि—

१६वीं शताब्दी के उड़ीसा के ब्रजबुलि के अन्य कविगण ये हैं—चम्पति राय, महाराज प्रतापरद्र देव, माधवी दासी, बान्द्राम और मुरारी ।^१ ये ब्रजबुलि साहित्य के नाधारण कवियों में से हैं । उनमें में बड़े एक ने कुछ बंगला के भी पद लिखे हैं । रामानन्द राय के तो बहुत से बंगला पद मिलते हैं ।

बृद्ध चम्पति राय और दामोदर चम्पति राय —

उड़ीसा के साहित्य में 'चम्पति राय' नाम के दो कवि हुये हैं । प्रथम बृद्ध चम्पति राय (१४७९-१५३२ सन् ईसवी) के राजा प्रताप रद्रदेव के महापात्र थे । द्वितीय दामोदर चम्पति राय या राय दामोदर दाम (१५७०-१६०९ सन् ईसवी) पुरी के गणपति रामचन्द्र देवप्रथम की गमा में समानित थे । दोनों कवियों में अन्तर को स्पष्ट करने के लिए पहले की बृद्ध चम्पति राय और दूसरे की राय दामोदर दाम नाम से चर्चा की जाएगी । बृद्ध चम्पति राय के ब्रजबुलि रचना के नमूने के लिए नीचे एक ब्रजबुलि का पद दिया जा रहा है—

राधाकु विरह दगा वर्णना (राधा की विरह-दगा का वर्णन)—

(मठा)

गरद राति कुन्द कान्ति केतकी कान्ति शोभितुआ ।
मल्लिका कुल माधवी फूल मन्द गन्ध भ्रमरआ ॥
नुरभि सुन्दर शशी विपसत्र बहति मलय पवनुआ ।
विसरि नेले च्यूतबलि जीमूतान्त दहुनुआ ।
अवधि पूर्ण नकरि क्षीण युग शशी प्राय दीनुवा ।
चम्पति राये स्वामी विरहें निश्चये जीवन न रहेआ^२ ॥

सत्रहवीं शताब्दीके तीन प्रमुख कवि—

१७ वीं शताब्दी में उड़ीसा साहित्य में तीन अग्रगण्य कवि हुए—चान्द कवि (१५७०-१६०९ सन् ईसवी), राय दामोदर दास (१५७०-१६०९ सन्

^१ इनके कुछ पद 'पदकल्पतरु', 'क्षणदा-गीत-चिन्तामणि', 'पद-सग्रह' (अप्रकाशित वैष्णव पदावली, विज्वभारती का हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या २३४६) में संगृहीत हैं ।

^२ प्राचीन गद्य पद्यादर्ग, पृ० ९८ ।

ईसवी) और यूपति दाम (१६०५-१६२५ सन् ईसवी) । प्रथम दोना पुरी के गणपति रामचन्द्र दव प्रथम की सभा में और अन्तिम कवि उड़ीसा के राजा नरसिंह दवकी सभा में थे । इन त्रया ने उड़िया ब्रजबुलि साहित्य को सुन्दर पदा द्वारा समृद्ध किया । अभी तत्र उड़ीसा के विद्वानो में इन कविया की भाषा के सवध में भ्रात धारणाएँ बनी हुई ह । श्रीमहन्त जी का इम विषय में कहना है कि इनकी भाषा ब्रजभाषा स प्रभावित ह^१ । साथ ता यह ह कि इन कविया की भाषा ब्रजबुलि होने में किसी भी प्रकार सन्देह नहीं । इन कविया के ब्रजबुलि के दा चार पद उदाहरण के लिए नाच उद्धृत किये जा रहे ह ।

कृष्णावनार के^१ गौय पक्ष का वणन—

आभोग

पूतनादि चक्र-गकट षण्ड दनुज कुल निवारिले ।
 यामलाजुन आदि पतिन कुल अबहेले तारिले ॥
 गोपरक्षने गिरि उभारि मुरपति गव इपिते गजिले ।
 गोपे गोपीमन गजिले ।
 विपिने भोजन विनोदे चतुरानन भ्रम नजिले ।
 मोहमरेण गरण जनर तदुपरिरे चारपणे छिन्नमनि ।
 चाद भणिले आ^२ ।

वषा की घनधार गत्रि में विरहिणी का विग्ध निवदन —

आदि

घन घन गजन अम्बर घोर
 घोदिगे घमबइ विजुरि ओर
 अहनिनि मप्पइ मत्त मपोर
 ध्वनि गूनि रिजरा बम्पइ मोर
 अबहु बिसरि गए नागर भोर ।

सबो मानिनी राधा का मान भजन कर रही है —

^१ राय साह्य महन्ती 'टाइम्स आफ एन्ग्लिषेट उड़िया प्रोज एण्ड पायट्री' पृ० १३ ।

^२ प्राचीन ग्य पद्यादग, (मातवल्ग्न महन्ती द्वारा सपाग्नि) चाद कवि पृ० ११७ ।

शुन सखि चरण धराउणि तोर ।
 कराउणि मिलिबे नन्दकिशोर ॥
 से मुख शशीमुधा तो नेत्र चकोर ।
 पान करबहुं सखि करबहुं कोर ॥
 दामोदर दास कहे दुख नाहि ओर ।
 अवधि मिलिबे सखि नन्दकिशोर^१ ॥

एकतालि

सर्व अवनीपति विक्रमं शक्ति विविधरग रति विहरतिआ
 लावण्ये गजति लाख रजनीपति गौरवे औरकि गिरिपतिआ
 देवी भानुमती रसवती संगति विधिय रग रति विहरतिया
 नीलगिरिकोपति चरणकमले मति विजयतु नरमिह नरपतिया ।

उदिनले नृप नरमिह घरणीतल ।^२

उड़ीसा का ब्रजबुलि-साहित्य बहुत कुछ अनुपलब्ध—

अभी तक उटीमा के ब्रजबुलि साहित्य की बहुत अल्प सामग्री ही उपलब्ध हुई है। अत अनुमान होता है कि उटीसा का पर्याप्त ब्रजबुलि साहित्य अभी प्रकाश में नहीं आया है। इस अनुमान का कारण यह है कि "उड़ीसा में गौडीय वैष्णव धर्म ने इतनी गहरी जड़ जमा ली थी कि वगाल की तुलना में आज भी चैतन्य को श्रद्धाजलि चढानेवाले व पूजा करने वाले की सख्या वहाँ बहुत अधिक है^३।" अतएव चैतन्यदेव के १२००० शिष्यों^४ में ब्रजबुलि में लिखने वालों की सख्या इतनी अल्प होगी यह विश्वास नहीं होता। महाप्रभु चैतन्य के १८ वर्ष तक पुरी-निवाम काल में वगाल से चैतन्य देव के शिष्य प्रायः उड़ीसा में आते-जाते रहते थे, अत यह स्वाभाविक है कि उड़ीसा के भाव-प्रवण चैतन्य देव के अनुगामी वैष्णवों ने उनसे प्रेरणा पाकर ब्रजबुलि में

^१ प्राचीन गद्य पद्यादर्श, (आर्त्तवल्लभ महान्ती द्वारा संपादित) राय दामोदर दास, पृ० ११८ ।

^२ वही, यदुपति दास, पृ० १२० ।

^३ कैनेडी 'दी चैतन्य मुवमेंट', पृ० ३५ ।

^४ प्रभात मुखर्जी 'दी हिस्ट्री आफ मैडिबल वैष्णविज्म इन उड़ीसा' पृ० १२३ ।

अत्यधिक सख्या में रचना की है^१। प्रत्यक्ष प्रमाणा के अभाव में इसकी केवल कल्पना मात्र की जा सकती है।

पंच सखा—

उड़ीसा के वैष्णव कवियों के उल्लेख के साथ यदि 'पंचसखाजा' की चर्चा नहीं की गई तो प्रसंग अधूरा ही रह जावेगा। चतुर्थशतक के प्रभाव से उत्कल साहित्य में पांच बड़े वैष्णव कवि हुए जो 'पंचसखा'^२ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पांचों की भगवद्भक्ति विषयक विचारधारा में बहुत ही अधिक साम्य है। ये हैं बलराम दास, जगन्नाथदास, अच्युतानन्द यशोवन्त और अनन्तदास। उड़ीसा के वैष्णवों का विश्वास है कि जिस प्रकार द्वापर के कर्ण कल्पियुग में महाप्रभु चैतन्य रूप में अवतरित हुए उसी प्रकार ये 'पंच-मखा' अच्युत, बलराम, जगन्नाथ, अनन्त और यशोवन्त भी त्रयश मुदाम, सुवल, श्रीवत्स श्रीदाम तथा सुबाहु के अवतार हैं^३। अब पर्यक् रूप से इन पर थोड़ा विचार करना होगा—

बलराम दास—

उत्कल के १६वीं शताब्दी के प्रमुख वैष्णवों में से हैं। देवकीनन्दन ने बलराम दास के सम्बन्ध में कहा है—

‘बद उडिया बलरामदास महागय

जगन्नाथ बलराम धार वस हय^४ ॥

^१ राधा मोहन ठाकुर का कथन तब सगत है 'श्रीमहाप्रभुर उडिस्यार नीलाचले दीघकाल अवस्थानेर फले सेखाने असख्य बागाली भक्त दिगेर यातायात औ अवस्थान हेतु ब्रजवुली औ बागला कीतन पदावली बहूल प्रचार एव प्राचीन उडिया भाषा सहित प्राचीन बागलार अधिकता सादृश्य हेतु महाप्रभुर भक्त उडिस्यावासा कवि चम्पतिर पक्षे खाटि बागला ओ बागला मिश्रित ब्रजवुलि भाषाम पद रचना कराछमन असभव मने हय ना।

^२ तुग्नाय है— ममसामयिक ब्रजमण्डल के बल्लभाचाम के 'अष्ट-छाप' कवियों के साथ।

^३ अच्युतानन्द का 'नूय-साहिता और 'गुरुभक्ति गीता'।

^४ वैष्णव-वन्दन।

पुराणपण्डा उनके पिता और पद्मावती उनकी माता ह। पुरी के समीप कपिलेश्वर-पुर में राधा अष्टमी के दिन उनका जन्म हुआ। जगन्नाथ के मन्दिर में इनके पिता पुराण पाठ करते थे। जगन्नाथदास ने भी पिता का ही अनुकरण किया। 'जगन्नाथ चरितामृत' में उल्लेख मिलता है कि जगन्नाथ के मन्दिर के दक्षिण-दिशा के बट वृक्ष के नीचे बैठ कर वे पुराण की व्याख्या करते थे।

१८ वर्ष की अवस्था में महाप्रभु चतन्य से उनका प्रथम साक्षात्कार हुआ। चैतन्य देव अपने सखाजा के साथ उस स्थान पर आए जहाँ पर बैठ कर जगन्नाथ पुराण पाठ कर रहे थे। चैतन्य देव वहाँ कुछ दूर खड़े हुए और पुराण की इतनी सुन्दर व्याख्या सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुए^१। पुरी में महाप्रभु प्रथमवार १५१० म गए। अतः अनुमान होता है कि जगन्नाथ का जन्म १४९१ के लगभग कभी हुआ होगा^२।

चैतन्यदेव के अनुगामियों में बहुत से जगन्नाथ दास हुए। ब्रजबुलि साहित्य के कवि जगन्नाथदास के सत्रघ में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता फिर भी इन कवियों में से दा जगन्नाथ अधिक विख्यात हुए।

(१) उद्दीप्ता के जगन्नाथदास जिनके सत्रघ में देवकी नन्दन बाबू ने कहा है—

जगन्नाथ दास बंदों सगेते पढित ।

बार गीत गुनिया श्रो' जगन्नाथ मोहित ॥

(२) काष्ठ-बाटा के जगन्नाथदास जिनकी गणना कृष्णदास कविराज ने गदाधर पढित के गिण्या में की है।

जगन्नाथदास ने कुछ बगला और ब्रजबुलि के पत्र चैतन्यदेव के पारिवारिक जीवन सबधी लिखे हैं। उनके बगला और ब्रजबुलि के अर्थ पद 'पदकल्पनह' सिद्धांत चंद्रोदय' 'दास पोषी', 'पदसंग्रह'^३ में संकलित है। इन सगृहीत पदा से अनुमान होता है कि जगन्नाथदास ने पदावली में क्रमिक रूप से ब्रजलीला का

^१ एहि समये श्री चतन्य सगेते घेनि सखागण
बट तलेण विजे कले पुराण गुणि ताप हेले ।

जगन्नाथ चरितामृत' द्वितीय अध्याय ।

^२ अच्युतानन्द की उक्त कहानी ग्रन्थ के आधार पर इनका जन्म १४७६ ई० के आस-पास है ।

^३ विश्व भारती की पाथी गाला में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ, संख्या २३४६ ।

वर्णन किया था। जगन्नाथदास की पदावली की कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं है, पर कान्दी अचल की खटित हस्तलिखित ग्रंथ में इनके द्वारा रचित १२३ पद थे^१।

निश्चित रूप से कहना तो कठिन है कि ये जगन्नाथदास कौन थे पर अनुमान होता है कि सगीत मर्मज्ञ कवि ने गाने के लिए ही इन स्वरचित पदों की रचना की होगी। इन पदों से यह भी आभास मिलता है कि 'चैतन्यदेव के साथ इनका केवल साक्षात्कार मात्र नहीं हुआ था वरन् साहचर्य भी था। अतः अनुमान होता है कि ये पद रचयिता उड़ीसा के ही जगन्नाथदास रहे होंगे क्योंकि पुरी में रहते हुए महाप्रभु का इनके साथ घनिष्ठ योग रहा। इनकी रचना के उदाहरण स्वरूप ब्रजवृत्ति का एक पद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

यमुना के तट पर गोपियों के साथ लीलारत कृष्ण का एक अपूर्व चित्र—

जमुनाक तीरे, धीरे चलु माधव
मन्दमधुर वेणु वाअइ रे ।
इन्दीवरनयनी वरजवधू कामिनी
सदन तेजिया बने धावइ रे ॥
असित-अम्बुधर-असित सरसि रह
अतिस कुसुम-अहिमकर सुतानीर-
इन्द्रनीलमणि - उदारमरकत
श्रीनिन्दित वपु-आभारे ।
शिरे शिखण्डदल नवगुंजाफल
निरमलमुकुतालम्बि नासातल
नवकिशलय-अवतंस गौरोचन-
अलकतिलक मुख शोभा रे ॥
श्रीणि पीताम्बर वेत्रवामकर
कम्बुकण्ठे वनमाला मनोहर
घातुराग वैचित्र्य कलेवर
चरणे चरण परि शोभा रे ॥
गोधूलि घूसर विशाल वक्षस्थल ।
रग भूमि जिनि विशाल नटवर ॥

^१ श्री सुकुमार सेन 'वागला साहित्ये इतिहास' पृ० ३०६ ।

गोछादनरजुविनिहित कपर ।
 रूपे भुवनमन लोभा रे ॥
 ब्रह्म पुरंदर दिनमणि शकर ।
 जो चरणाम्बुज सेवे निरन्तर ॥
 सो हरि कौतुक ब्रजवालक-साये ।
 गोपनागरी-अभिलाषा रे ॥
 सो पहू पदतल राग घूसर ।
 मानस मम कह आश निरन्तर ।
 अभिनवसतकवि दास-जगन्नाथ ॥
 जननी जठर भय नाशा रे ॥^१

उपर्युक्त पद में अनुप्रास अल्कार का वैशिष्ट्य है। पद के भावों में विशेष उत्कण्ठ नहीं पर इतना तो अवश्य है कि वह साधारण से अच्छा माना जाए।

कवि की अथ रचनाएँ यह हैं—‘कमल लोचन चौतिगा’, वेदापरिग्रमा’ ब्रह्म गीता’, भागवत का अनुवाद ‘तुला भिणा, गजनिस्तारण गीता’, ‘कालिय-दलन’ तथा अथ कोडलि’^२।

अच्युतानन्द—

अच्युतानन्द के पिता आनन्द^३ मोहन्ती महाराज के कमचारी थे और राजा की ओर से उन्हें खुष्टिया की उपाधि मिली थी^४। अच्युतानन्द का जन्म बटक जिले के त्रिपुर या तिलकना में हुआ था। इनकी लिखी हुई ‘उदय बहाणी’ के अनुसार इनका जन्मबाल १४८९ ई० है^५। कोई उन्हें जाति का गोप बताता है तो कोई गौड़ परन्तु वे स्वयं लिखते हैं कि उनके पितामह करण थे और राज दरबार में नवलनवीस का काम करते थे। बाद की

^१ ‘पदकल्प तर्क’ पद सख्या १३२३।

^२ प्रभात भुषर्जी ‘दी हिस्ट्री आफ मडिबल बण्णविज्ज इन उडिस्सा’ पृ० ७८८१।

^३ ‘सूय-सहिता’ के अनुसार अच्युतानन्द के पिता का नाम दीनबधु’ है।

^४ खुष्टिया सगिया राजा देड। राजार पात्र अटे सहि ॥

ताहार पुत्र ये अच्युत। ईश्वरदास भागवत’ ४६।

^५ बल्देव उपाध्याय, भागवत सप्रदाय पृ० ५३५।

रचनाओं^१ में भी उनकी जाति करण उल्लेखित है, अतः पुष्ट प्रमाणों के अभाव में उनकी जाति करण मानना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

चैतन्यदेव के साथ प्रथम साक्षात्कार के समय उनकी अवस्था बहुत छोटी थी। बाल्यकाल ही से सांसारिक विषयों की ओर उनकी विरक्ति थी। प्रथम साक्षात्कार के पश्चात् वे ११ वर्ष तक घर ही पर रहे। तत्पश्चात् पुरी जाकर महाप्रभु की आज्ञा से सनातन द्वितीय के पास से दीक्षा ली, उसके बाद से निरन्तर वह महाप्रभु के साथ ही रहे। किंवदन्ती है कि अच्युतानन्द की मृत्यु १०८ वर्ष की आयु में हुई। इससे इतना तो निश्चित है कि वे दीर्घायु रहे होंगे।

उनकी रचनाएँ ये हैं—‘शून्य संहिता’, ‘अणकार संहिता’, ‘ब्रह्म शकुलि लेखन’, ‘निराकार-संहिता’, ‘नवगुञ्जरि’ और व्याल्लिस चौपदी’ ‘हरिवंश का अनुवाद’, ‘ब्रह्म-विद्या-तत्त्व-ज्ञान’, ‘गुरुभक्ति गीता’ तथा ज्ञान-सागर^२। इनकी रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट है ‘शून्य संहिता’।

किसी भी पद सग्रह में इनका रचा हुआ ब्रजबुलि अथवा वंगला का पद अब तक उपलब्ध न हो सका। अतः संभव है इन्होंने ब्रजबुलि के पद न लिखे हों।

यशोवन्त मल्लिक—

जिला कटक के आडंग ग्राम के जगुमल्लिक और रेखा देई के पुत्र थे। इनकी जाति महानयक या क्षत्रिय थी^३। इनका जन्मकाल १४७६ ई० है^४। सुदर्शनदास के ‘यशोवन्त दासक चौरासी आज्ञा’ में यशोवन्त का प्रारम्भिक जीवन वर्णित है। यशोवन्त के पिता बहुत दरिद्र थे। अभाव ने यशोवन्त को अन्न चुराने के लिए बाध्य किया। वह चोरी करते हुए पकड़ा गया और आडंग के सामन्त प्रमुख के समुख उपस्थित किया गया। उसे वहीं पर विधवाने

^१ ईश्वर दास ‘भागवत’ ४६, ‘आवतर मलिक’ और ‘यशोवन्त’ की ८४ कलाएँ अध्याय प्रथम।

^२ प्रभात मुखर्जी. ‘दी हिस्ट्री आफ मेडिवल वैष्णवविज्म इन उडिस्सा’ पृ० ८४-८५।

^३ ‘चद्रवशेर जात यशोवन्त क्षत्रिय कुल से। कले पवित्र’—आवतर मलिक।

^४ अच्युतानन्द की लिखी हुई ‘उदय कहाणी’ नामक ग्रंथ के आधार पर।

का दण्ड मिला। अपनी जीवन रक्षा के लिए जगन्नाथ से उसने प्रायना की। कहा जाता है जगन्नाथ ने उसकी प्रायना सुनी और स्वयं यशोवन्त का शरीर धारण करके दण्ड लिया। इस दृश्य को केवल रघुराम ने देखा और तभी से उसने अपना स्त्री तिलोत्तमा के साथ यशोवन्त का शिष्यत्व ग्रहण किया। यशोवन्त की अलौकिक शक्ति की चर्चा के कारण बहुता ने उसका शिष्यत्व ग्रहण किया, उनमें से प्रमुख हैं सुदशनदास तथा साल्वेग। इन अलौकिक घटनाओं से इतना सत्यास ग्रहण किया जा सकता है कि जगन्नाथ दब उनकी दुस्साध्य मनोकामनाएँ भी पूरा कर देते होंगे।

इनकी रचनाएँ ये हैं—‘प्रेम भक्ति’, ‘ब्रह्म-गीता’, गाविन्द चन्द्र टीका तथा ‘गिव सर्वोदय (शैव तंत्र का अनुवाद)।

वगीय वृष्णव पद-संग्रहों में यशोवन्त के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। समभव है इन्होंने विशेष साहित्य चर्चा न की हो क्योंकि इनकी उपलब्ध रचनाओं की संख्या भी बहुत अल्प है।

अनन्तदास—

अंतिम पंच सखाओं में जिनके जीवन का विषय में सबसे कम जानकारी प्राप्त हुई है वह है अनन्तदास। इनकी जन्मभूमि है मेहपुर और जन्म काल है १४०५ ई०^२। ये जाति का वर्ण थे^३। बाद में ये पुरी जिले के कोठदेस परगने के वालिपातन में जा बसे।

अनन्तदास की एक भी रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। वे अप्रकाशित ग्रंथ ये हैं—‘रास’, ‘गूय नामभेद’ तथा ‘हितु-उदय भागवत’^४।

अद्वैत आचार्य के अनन्त नाम के दो गिण्य थे। एक कवि अनन्तदास दूसरे अनन्त आचार्य। उनमें से कवि अनन्तदास ही अधिक प्रसिद्ध हुए, जिनका ब्रजबुलि तथा बगला के बहुत से पद विभिन्न वृष्णव पद संग्रहों में संगृहीत हैं। उड़ीसा के पंचसखा के अनन्तदास और ब्रजबुलि के पद रचयिता अनन्तदास के बीच कोई सादृश्य नहीं मिलता, जिससे वे एक समझे जाएँ।

^१ प्रभात मुखर्जी दी हिस्ट्री आफ मेडिवल वृष्णविज्म इन उडिस्ता पृ० २६।

^२ अच्युतानन्द की लिखी हुई ‘उदयकहानी’ ‘नामक ग्रंथ के आधार पर।

^३ इन्दरदास भागवत अध्याय ४६।

^४ श्री प्रभात मुखर्जी दी हिस्ट्री आफ मेडिवल वृष्णविज्म इन उडिस्ता पृ० ८७।

ब्रजबुलि साहित्य को पंचसखाओं की देन—

पुष्ट प्रमाणों के अभाव में यह कहना अति कठिन है कि इन 'पंच-सखाओं' ने ब्रजबुलि साहित्य को कितनी देन दी। 'पंच-सखाओं' में से तीन बलरामदास, जगन्नाथदास तथा अनन्तदास की छाप से रचित बहुत से ब्रजबुलि पद भिन्न-भिन्न पद-संग्रहों में सकलित हैं। आज तक के उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि 'पंच-सखाओं' में जगन्नाथदास को छोड़कर ब्रजबुलि में किसी ने भी पद रचना नहीं की है, अन्य कवियों ने उनका केवल नाम साम्य मात्र है। संभव है कि भविष्य में उत्कल के बलरामदास के कुछ ब्रजबुलि के पद प्रकाश में आ जाएँ। इन 'पंच-सखाओं' ने वैष्णव दर्शन सबधी बहुत से ग्रंथ रचे, अतः इसमें कोई सदेह नहीं ब्रजबुलि साहित्य को न सही उत्कल के वैष्णव साहित्य को तो अवश्य गौरवान्वित किया।

विभिन्न प्रांतों में विकसित ब्रजबुलि के भिन्न स्वरूपों का पर्याप्त विवेचन हो चुका। ब्रजबुलि ने सर्वाधिक विकास और स्थायी रूप वैष्णव धर्म के गढ़ रूप बंगाल में पाया। अतः आगे पृथक् अध्याय में बंगाल के सुप्रसिद्ध पद रचयिताओं की जीवनी तथा काव्य-विषयक समीक्षा की जाएगी, पर उसके पहले 'बंगाल साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव' और 'गौड़ीय वैष्णव दर्शन' का संक्षेप में परिचय प्राप्त करेंगे।

सातवा अध्याय

बंगला-साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव—

चैतन्य का युगान्तरघाती प्रभाव—

बंगला साहित्य, समाज और धर्म के क्षेत्र में श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव एक युगान्तरकारी घटना थी। उस काल में मुसलमानी शासन का प्रभाव हिन्दू समाज के ऊपर बाहर से पड़ रहा था और भीतर से श्रीचैतन्य महाप्रभु का व्यक्तित्व तथा उनकी भावधारा उम एक नया रूप दे रही थी। इसी सन् की सालहवीं शताब्दी से बंगला-साहित्य का एक विशिष्ट रूप देखने का मिलता है और इसके मूल में चैतन्य का प्रभाव था। चैतन्य प्रवर्तित वैष्णव-धर्म की मधुर धारा ने सम्पूर्ण बंगाल को आप्लावित कर दिया। एक समय था जबकि बंगाल के वैष्णव धर्म ने बंगाल के साहित्य का समय कर रखा था। इतनी शताब्दियाँ के बीत जाने पर भी आज का पाठक उस साहित्य का मुख्य दृष्टि से देखता है और उसके रस-माधुर्य से अभिभूत है।

वैष्णव भावधारा का व्यापक प्रभाव—

वैष्णव भावधारा आधुनिक काल में रवीन्द्र-साहित्य में एक अभिनव रूप में प्रकट हुई। कवि ने अपने आरम्भिक जीवन में वैष्णव-कविता के अनुसरण से 'भानुसिंहेर पद्मवली' लिखी थी। वैसे यह अनुसरण रवीन्द्र-साहित्य का बाह्य पक्ष मात्र था। उपनिषद् के दान के साथ वैष्णवों की नित्यलीला को मिलाकर रवीन्द्र दान का आत्मविमोह करने वाला रूप प्रकट हुआ। इसी लिये रवीन्द्र-काव्य में ब्रजधाम में निरन्तर चलनेवाला नित्यलीला का नूपुर-ध्वनि शण-शण में सुनाई पड़ती है। रवीन्द्रनाथ का प्रेम वृन्दावन की प्रेमलीला में अन्तर्हित होता है—

आजि सेह प्रेम अवसान लभियाछे

राशि राशि हये तोमार पावेर काछे ।

निखिलेर सुख निखिलेर दुख निखिल प्राणेर प्रीति

एकटि प्रेमेर भासारे मिले छे सकल प्रेमेर स्मृति

सकल कालेर सकल कबिर गीति ।

(आज उम प्रेम ने तुम्हारे चरणों पर राशि-राशि होंकर धक्कान प्राप्त किया है। समस्त मुग्ग, गमग्न दुःख और गमग्न प्राणों की प्रीति, सभी प्रेम-भृतियाँ तथा सभी कवियों की भीतियाँ एक ही प्रेम में अर्पित हुई हैं।)

निम्नांकृत पंक्तियों में स्वयंभवाय ने वैष्णव-दर्शन को मुग्ग रूप में अभिव्यक्त किया है—

प्रणये मृजने न जानिए फार मुक्ति
भाव हते रूपे अविश्राम जावा-आमा
बन्ध फिरिछे मुंजिया आपन मुक्ति,
मुक्ति मागिछे बांधनेर भासे बासा ।

(न-जाने यह किसकी मुक्ति है जो प्रणय-मृजन में भाव और रूप का यह निरन्तर आना-जाना लगा हुआ है। बन्धन अपनी मुक्ति कोजना फिर रहा है और मुक्ति बन्धन के बीच अपना आश्रय टूट रही है।)

साहित्य पर चैतन्य का प्रभाव—

इस प्रकार ने यह सहज ही देगा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव अत्यन्त व्यापक रहा। यह प्रभाव कुछ ऐसा था कि इसने नमाज के किसी भी अंग को अछूता नहीं छोड़ा। साहित्य के क्षेत्र में गीतिकाव्य की धारा प्रबल हो उठी। साहित्य में जहाँ पहले अलौकिक चरित्रों की ही अवतारणा की जाती थी वहाँ अब देवोत्तर लौकिक मानव को भी स्थान मिलने लगा। ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी का साहित्य मुख्य रूप से वैष्णव-भक्ति का साहित्य है। इसके पहले का अर्थात् ईसवी सन की तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी का बंगला भाषा का साहित्य कुछ लौकिक कहानियों तथा पौराणिक चरित्रों तक ही सीमित था। वैसे उन शताब्दियों का ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं जिसके आवार पर तत्कालीन बंगला-साहित्य की रूपरेखा निर्धारित की जा सके। मनसा, चण्डी की लोक प्रचलित कहानियाँ तथा रामायण-महाभारत एवं अन्य पुराणों के विभिन्न चरित्र ही उम समय के लोक-साहित्य के उपजीव्य थे।

चैतन्य-पूर्व वैष्णव भाव धारा—

ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी के बंगला के भक्ति-साहित्य के लिये पहले से आती हुई वैष्णव-भावधारा तथा अन्य धर्मों की चिन्ताधारा के साथ ही तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति को भी ध्यान

में रखना आवश्यक है। महाप्रभु से पहले बगाल के वष्णव धर्म के स्वरूप के विषय में निश्चित रूप से कुछ बहना बठिन है। फिर भी यह ठीक है कि ईसवी सन की मोलहवी दाता-दी के पूर्व से ही भक्ति सबधी कुछ रचनाएँ मिलने लगती हैं।

बगाल में वैष्णवता—

बगाल में वैष्णव धर्म का प्रभाव समस्त बहुत पहले से ही पडने लगा था। गुप्तकाल में वष्णव धर्म का जो प्रसार और व्याप्ति हुई उससे बगाल भी अछता नहीं रहा। ईसवी सन् की चौथी शताब्दी के शशुनियाँ पवत लिपि में चन्द्रवर्मण को चक्रस्वामी या विष्णु का उपासक कहा गया है^१। इसी प्रकार में ईसवी सन की ग्यारहवी शताब्दी के बेलार के शिलालेख में भी वृष्ण को गोपीशत केलिकार^२ कहकर उल्लेख किया गया है पर इस शिलालेख के अनुसार वृष्ण केवल अगावतार मात्र हैं। पहाडपुर में मिली हुई युगल-मूर्ति के सम्बन्ध में नाना प्रकार के मत उपस्थित किये गए हैं। डा० सुशीलकुमार दे इस युगल-मूर्ति को राधा-वृष्ण की मूर्ति समझने के पक्ष में है।^३ डा० प्रबोधचन्द्र बागची का अनुमान है कि वह युगल-मूर्ति या तो कृष्ण-सत्यभामा की है अथवा वृष्ण-रुक्मिणी की^४। अतः इसके सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। ये मूर्तियाँ मन्दिर की घोमा वृद्धि के उद्देश्य से उत्कीर्ण की गई थी। संभव है कि पहाडपुर के मन्दिर की दीवारा पर उत्कीर्ण युगल-मूर्ति में उड़ीसा के मन्दिरों की दीवारा पर उत्कीर्ण योग शृंगारिक मूर्तियों का ही अनुकरण किया गया है।

बगाल के वैष्णव सेन राजा—

पाल के समय पाल चन्द्र और काम्बोज राजा लोग बौद्ध-धर्म के अनुयायी थे। सेनो के समय सेन वर्मण और देव राजागण ब्राह्मण धर्माश्रयी थे। इस समय बगाल का सर्वव्यापी धर्म ब्राह्मण धर्म था। वर्मण वर्ग के सभी राजा परम विष्णु भक्त थे। रुद्रमण सन परम वष्णव और तरसिह के भक्त थे।

^१ हिमांशुचन्द्र चौधरी वष्णव साहित्य प्रवेशिका पृ० १४।

^२ वही, पृ० १४।

^३ अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव पेय एण्ड मूवमेन्ट पृ० ७।

^४ हिस्ट्री आफ बगाल (एड १) पृ० ६०१ तथा बागालीर इतिहास (आन्ध्रपथ) डा० नीहागरजन राय, पृ० ६०१।

भोज वर्मा के वेङ्कट और लक्ष्मण सेन के तर्पण-दीपि-शासन में विभिन्न अवतारों की बात मिलती है। वहीं श्रीकृष्ण की प्रेमलीला और विष्णु के कृष्ण, नर्मिह और परमनाम अवतार की भी बातें हैं।^१ डा० मोहाररजन राय का अनुमान है कि लक्ष्मीनारायण के सुगल स्वल्प या प्रारम्भ दक्षिण भारत में ही अधिक या वीर सेन राज्याङ्ग में दक्षिण में ही यह पूजाविधि बंगाल में आई।^२ घोषी कवि ने लिखे हुए पवनदहन के एक श्लोक में यह अनुमान होता है कि सेन राजाओं के बृहद देवता लक्ष्मीनारायण थे। बंगाल में वैष्णव-धर्म का प्रतिष्ठान दो ग्रन्थों में विकसित हुआ। (१) विष्णु का दशावतार समन्वित रीतिचक्र रूप और (२) राधाकृष्ण के ध्यान और रूप की कल्पना।

तत्कालीन साहित्य की दो धाराएँ - -

लगता है जैसे बंगाल के तत्कालीन साहित्य पर दो प्रकार की विचारधारा का समान रूप में प्रभाव पड़ा है। उस समय का जो साहित्य मिलता है उसमें एक तो रामायण-महाभारत में प्रभावित उच्चस्तर का साहित्य था और दूसरा लोक-साहित्य था जिसमें कृष्ण की ब्रज-लीला आदि का वर्णन होता था। कृष्ण के लिये कानाइ, कानु, राधा के लिये राद, गोपी के लिये गोइ, गुइ, गब्दो का प्रयोग इस बात को सूचित करता है कि ये शब्द लोक-साहित्य में प्रचलित थे।^३ रामायण का आश्रय लेकर भी साहित्य की रचना बंगाल में हुई है लेकिन कृष्ण-नया पर आधारित साहित्य के समान वह लोकप्रिय नहीं हो सका। कृष्ण लीला को आधार मानकर रचे जाने वाले साहित्य पर भागवत-पुराण, विष्णु पुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि का प्रभाव पड़ा है। राधा-कृष्ण का जो स्वल्प कल्पित हुआ उसका मुप्रतिष्ठित और प्रचलित रूप समभवत कवि जयदेव के 'गीत गोविन्द' में मिलता है। जयदेव अन्तिम सेन राजा लक्ष्मणसेन के दरवारी कवि थे; लक्ष्मणसेन का काल ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। ईसवी सन् की बारहवीं, तेरहवीं शताब्दी से ही श्रीकृष्ण की ब्रजलीला का काव्य में वर्णन होने लगा था इसका अनुमान और अन्य दो ग्रन्थों के आधार पर किया जा सकता है। इनमें एक

^१ बांगालीर इतिहास (आदि पर्व), पृ० ६५९।

^२ वही, पृ० ६६०।

^३ डा० सुकुमार सेन : बांगला साहित्येर इतिहास, पृ० ६५।

ता 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' है। सम्भवत यह चारहवीं गताब्दी का संकलित ग्रन्थ है। इस प्रकार का दूसरा ग्रन्थ 'सदुक्तिवृणामृत' है जो सम्भवत तेरहवीं गताब्दी में संकलित हुआ था। प्रथम अध्याय में इन ग्रन्थों के कुछ पदा की चर्चा की गई है जिनसे 'वृष्ण-लीला सम्बन्धी वणनो के रूप का कुछ आभास मिल जाता है। इसी सन की चौदहवीं शताब्दी में चढीदास ने राधा-वृष्ण की लीला को अपने ललित पदा द्वारा अधिक से अधिक व्यापक बना दिया।

राधा के विकास में शाक्त धर्म का प्रभाव—

गीतगोविन्द में राधा का जो स्वरूप पाया जाता है वह अत्यन्त स्पष्ट और निखारा हुआ है। वैसे हाल की सप्तशती में राधा का उल्लेख है लेकिन उसमें गीत गोविन्द के जसा राधा के उस रूप का निखार नहीं है। भास के बालचरित में ब्रह्मा, विष्णु और भागवत में श्रीवृष्ण की प्रेमलीला वर्णित हुई है लेकिन उनमें राधा का उल्लेख नहीं है। इसके पहले भोजवम्मा की बलाव लिपि का उल्लेख हम कर चुके हैं। उसमें सैकड़ा गापिया के साथ वृष्ण की विचित्र लीला की बातें मिलती हैं पर वहाँ भी राधा का कोई उल्लेख नहीं है। इस पर विद्वानों का अनुमान है कि सना के राजत्व काल में किसी समय शाक्त धर्म के प्रभाव से राधा का स्वरूप स्वीकार कर ली गई।^१ हिन्दू तंत्र के प्रभाव से ही शिव और शक्ति के रूप में राधा और वृष्ण को ग्रहण किया गया।^२ श्रीरूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि में कहा है—

यथा राधाप्रिया विष्णोरतस्या कुण्ड प्रिय तथा ।

सर्व गोपीषु सधका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ।

ह्लादिनी या महान्विता सर्व शक्तिवरीयसी ।

तत्सार भाव रूपेणमिति तत्रे प्रतिष्ठिता ॥^३

रूपगोस्वामी के कथन द्वारा राधा और वृष्ण सम्बन्धी उपर्युक्त मत की पुष्टि हो जाती है। ब्रह्म संहिता के पाचवें अध्याय में सहस्रार चक्र का गात्रुल कहा गया है।^४ ब्रह्म संहिता का बणवो में अत्यधिक समादर है। कहा

^१ डा० नीहार रजन राय—बागालीर इतिहास (आदि पत्र) पृ० ६६४ ।

^२ डा० शनिभूषण दास गुप्त, आन्ध्रपुर रैलिजस कन्टस प० १४९ ।

^३ उज्ज्वल नीलमणि राधा प्रकरण ३ ४ ।

^४ डा० शनिभूषण दास गुप्त आन्ध्रपुर रैलिजस कन्टस प० १४९ ।

जाता है कि स्वयं श्री चैतन्य इस ग्रन्थ को दक्षिण भारत से ले आए थे। बंगाल के वैष्णव धर्म पर तन्त्र का प्रभाव पड़ा है इसका अनुमान इन सब बातों से सहज ही लगाया जा सकता है। राधा को शक्तिरूपिणी मानने के साथ ही साथ गौडीय वैष्णवों ने काम गायत्री को भी ग्रहण किया है।^१

गीत गोविन्द की राधा—

सामान्य रूप से लोगों की धारणा है कि कवि जयदेव परम वैष्णव थे किन्तु वास्तव में वे पंचदेवोपासक स्मार्त ब्राह्मण थे। हर प्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि विद्यापति भी पंचदेवोपासक और स्मार्त ब्राह्मण थे। अर्थात् स्मृति की व्यवस्था मानकर चलते थे और गणेश, सूर्य, शिव, विष्णु और दुर्गा इन पांच देवताओं की उपासना करते थे।^२ जयदेव की प्रेममूलक ललित पदावलि का प्रभाव भी श्रीचैतन्य पर अधिक पड़ा है। इसी तरह से विद्यापति और चण्डीदास के पदों ने भी श्रीचैतन्य को प्रभावित किया है। वास्तव में जयदेव के 'गीत गोविन्द' की धारा विद्यापति के पदों में अक्षुण्य है और बाद में चलकर विद्यापति के रागात्मक पदों के अनुकरण पर वैष्णव पदावलि की रचना हुई। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि गौडीय वैष्णव धर्म ने भागवत के आधार पर माना, पर जयदेव ने भागवत का अनुसरण नहीं किया। भागवत में शरदकालीन रास का वर्णन हुआ है पर जयदेव में वसन्तकालीन रास वर्णित है। 'गीत गोविन्द' में नन्द के आदेश पर राधा, कृष्ण को घर ले जा रही हैं। और उसी समय दोनों का मिलन होता है। भागवत पुराण में यह बात नहीं मिलती है। वास्तव में गीतगोविन्द की यह घटना ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुरूप है।

बहु चण्डीदास का श्रीकृष्ण कीर्तन—

श्रीचैतन्य से पूर्व का 'बहु चण्डीदास' रचित 'श्रीकृष्ण कीर्तन' मिलता है। इसकी पर्याप्त चर्चा हम पिछले पृष्ठभूमि वाले अध्याय में कर चुके हैं।^३ इस ग्रन्थ का प्रभाव जयदेव की वैष्णव पदावली पर पड़ा है। पर चैतन्य-युग और उसके बाद के वैष्णव पदकर्ताओं के पदों में जिस विशुद्ध भक्ति और आवेग

^१ डा० सुशील कुमार दे अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव फेथ एन्ड मूवमेन्ट, पृ० २१-२२।

^२ हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संपादित 'कीर्तिलता' की भूमिका।

^३ देखिये पृ०-१२१-१३९

का परिचय मिलता है वह 'श्रीकृष्णकीर्तन' में नहीं है। 'श्रीकृष्णकीर्तन' के कृष्ण अपनी विभूति और ऐश्वर्य से राधा को लुभाने का बार-बार प्रयत्न कर रहे हैं। 'पराणे पराण वाधा आपना आपनि' का कोई परिचय इस ग्रंथ में नहीं मिलता।

मालाधर बसु का 'श्रीकृष्ण विजय'—

श्रीचैतन्य से पूव का वैष्णव भावापन्न दूसरा ग्रन्थ मालाधर बसु रचित 'श्रीकृष्णविजय' है। मालाधर बसु की उपाधि 'गुणराज खान थी'। गौड़ देश के नवाब ने उन्हें यह उपाधि दी थी। चैतन्य चरितामृत में इसका उल्लेख है। श्रीचैतन्य ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में जो कहा है उससे पता चलता है कि इसके प्रति उनकी कितनी भक्ति थी और वे इसमें कितना अधिक प्रभावित हुए थे। श्रीचैतन्य ने कहा है

गुणराज खान कल श्रीकृष्णविजय
ताहा एक वाक्य तार आछे प्रेममय ॥
'नन्दे नन्दन कृष्ण मोर प्राणनाय'
एह वाक्येबिबाइनु तार घशेर हाय ॥^१

(गुणराज खान ने श्रीकृष्ण विजय लिखा जिसमें उनका एक प्रेममय वाक्य 'नन्द का नन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाय है। इसी वाक्य पर उनके वग के हाथ बिक गया।)

यह ग्रन्थ इसवी 'सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी के शेषार्ध में लिखित माना जाता है।^२ इस ग्रन्थ में भागवत में वर्णित कहानों का अनुसरण किया गया है। विष्णु पुराण और हरिवंश का भी जगह-जगह अनुसरण मिलता है। सगेन्द्रनाथ मित्र का कहना है कि उत्तर भाषा-साहित्य में जो कृष्ण-चरित विषयक काव्य लिखे गए उनमें रचना काठ और प्राचीनता की दृष्टि से श्रीकृष्ण विजय' प्रथम रचना है।^३

^१ चैतन्यचरितामृत, २।१५।१०० १०१।

^२ डा० मुकुमार सेन—बंगला साहित्ये इतिहास पृ० १०८।

^३ मालाधर बसु श्रीकृष्णविजय (सगेन्द्र नाथ मित्र द्वारा संपादित) की भूमिका।

चैतन्य-पूर्व श्रीकृष्ण का स्वरूप—

चैतन्य-युग से पहले बंगाल में वैष्णव धर्म का गया स्वल्प था उसका कुछ पता 'श्रीकृष्ण विजय' में चल जाता है। चैतन्य युग ने पूर्व वैष्णव धर्म की प्रधान धारा श्रीकृष्ण ऐश्वर्य, विभूति और भागवत् नस्व विषयक थी। श्रीकृष्ण ही परमतन्त्र है, इसे मान्यार अनु ने अपने ग्रंथ में प्रतिपादित किया। श्रीकृष्ण विजय की वृन्दावनीय लीला में शृंगार लीला की धारा अन्यन्त क्षीण थी। 'श्रीकृष्ण विजय' में शृंगार लीला का आभास मात्र है। उन ग्रन्थ में गोपियो का उल्लेख तो है लेकिन गया का उल्लेख बहुत कम है। चैतन्य के बाद की वैष्णव भावापन्न रचनाओं में श्रीकृष्ण में आत्म-समर्पण की भावना का निदर्शन मिलता है। 'श्रीकृष्ण विजय' में आत्म-समर्पण का यह भाव इतने प्रत्यक्ष रूप में नहीं मिलता। वेगे एकाग्र पंक्ति ऐसी भी था गई है जिनमें उन भाव का आभास अवश्य मिलता है : जैसे 'वामुदेव नुत कृष्ण मोर प्राणपति'।

चैतन्य की समसामयिक राजनैतिक परिस्थिति—

चैतन्य के बाद में जो मधुर रम की धारा प्रवाहित हुई उसका उत्स नहीं था इसे समझने के लिये गौड या बंगाल की तत्कालीन राजनैतिक और धार्मिक अवस्था का कुछ परिचय प्राप्त कर लेना ठीक होगा। ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दी की बंगाल की राजनैतिक अवस्था सुव्यवस्थित नहीं थी। चौदहवीं शताब्दी से ही दिल्ली के पठान राज्य की नींव डिल उठी और क्रमशः उनकी शक्ति और क्षमता का ह्यम होने लगा। मुल्तान मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पहले ही सन् १३३९ ई० में गौड के शासनाधिकारी मारे गए और मालिक फकरुद्दीन नाम के एक सेनानायक ने अपने को बंगाल का स्वाधीन शासक घोषित किया। पर दिल्ली की शासन-शृंखला से मुक्त होकर भी गौड मुल्तान से राज्य न कर सके। गौड के हिन्दू जमीन्दारों ने तब तक पूर्ण अधीनता नहीं स्वीकार की थी। ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में भातुरिया परगना के जमीन्दार राजा गणेश ने गौड के सिंहासन पर अधिकार जमा कर पुन हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठा की। राजा गणेश के पुत्र ने इस्लाम धर्म को ग्रहण किया और उसरावों ने राजागणेश के पौत्र की हत्या करके इलियास शाह के एक वंशधर को गद्दी पर बिठाया। पर इलियास शाह के वंशधरों ने ऐसा अत्याचार करना प्रारम्भ किया और सर्वत्र

ऐसी अगान्ति और अराजकता फँती कि उससे घबडा कर हिन्दू समाजपतिया और मुसलमान उमरावो ने मिलकर अलाउद्दीन होसेन शाह का नवाब निर्वाचित किया। यह घटना एमवी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की है। गौड देश के सुल्तान यद्यपि मुसलमान थे फिर भी उच्च पदा पर हिन्दुओं को वे रखे हुए थे। इन्होंने बंगला-साहित्य और सस्कृति के विकास में बहुत बड़ा भाग लिया। कहा जा सकता है कि इसी सन् की पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी के पूवाघ का बंगला-साहित्य इन्हीं का ऋणी है। गौड देश के इन मुसलमान सुल्तानों ने साहित्य और सस्कृति के क्षेत्र में कितना हाथ बटाया इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि होसेन शाह के एक सेनापति लस्कर परागल खान के आदेश से कवाटर परमेश्वर ने बंगला में महाभारत काव्य की रचना की थी।^१ लस्कर परागल चटग्राम को जीतकर वहाँ का पासव बन गया था। उसने पुत्र छुट्टि खान की आज्ञा से श्रीकर नन्दी ने जमिनि संहिता के अश्वमेध-पर्व का अनुवाक किया था।^२ होसेन शाह के ही शासन काल में गौड शहर के निकट राम कल्पिग्राम था जो ब्राह्मण सस्कृति का एक विशिष्ट केन्द्र था। इस सस्कृति के केन्द्र में ही रूपगास्वामी और सनातन गोस्वामी का काम स्थान था और वे दोनों हासेन शाह के अत्यन्त विश्वस्त मंत्री थे।^३ ये दोनों श्री चैतन्य के दाहिने हाथ जस थे।

इस्लाम का प्रभाव—

इस्लाम के मपक ने तत्कालीन विचारधारा को और अन्य प्रकार से भी प्रभावित किया। मध्ययुग की चिन्ता धारा की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई थी। उसके पहले देख चुके हैं कि भारतवर्ष में भक्तिमूलक धर्ममत प्रचलित था। उत्तर भारत के आर्यों में यथा आदि क्रिया का प्रचार था तथा वे ब्रह्मज्ञान की ओर अधिगम्य चुके हुए थे। दक्षिण की द्राविड जाति भक्ति धर्म के प्रति अधिगम्य अनुरक्त थी। क्रमशः आर्यों की ज्ञानधारा के साथ द्राविडों का भक्तिधारा का मेल हुआ। इस मिलन के फलस्वरूप नए आस्था और नई बल्पना का उद्भव हुआ। इसका बाद इस्लाम धर्म के सघात से इस धर्म को नया उद्दीपन मिला। मुसलमान लोग अपने साथ दुःख निवृत्ति

^१ डा० मुसुमार सेन बांगला साहित्येय इतिहास, पृ० ७४।

^२ बंगला साहित्येय इतिहास पृ० ७४।

^३ वही पृ० ६८।

करता है कोई बहुत धन खर्च कर मूर्ति बनवाता है, समस्त सत्कार व्यावहारिकता में लगा हुआ है। कृष्ण पूजा, कृष्ण भक्ति किसी को रुचती नहीं, नाना उपहार देकर कोई बाशुली की पूजा करता है, मद्य-भास के द्वारा कोई यक्ष की पूजा करता है, सबदा नृत्यगीत, वाद्य की धुन में लगे रहते हैं और परम मंगलमय कृष्ण का नाम नहीं सुनते।)

चैतन्य के समसामयिक बंगाल में रघुनन्दन ने अष्टविंशति तत्त्व' लिखकर समाज-वर्धन को और भी दृढ़ किया। कृष्णानन्द ने आगम पद्धति तथा तार्त्रिक साधन के समान क्रिया बहुल तार्त्रिक ग्रन्थ की रचना की।^१ उसी समय पूर्णानन्द ने व्यक्तिगत साधना के लिये 'पटचक्रानिरूपण' और याग आदि का प्रचार किया।^२

नवयुग का उदय—

कहा जा सकता है कि उत्तर भारत में रामानन्द से नवयुग का आरम्भ होता है क्योंकि भक्ति धर्म को वही दक्षिण से लाए। उन्होंने लोक भाषा में विना जाति-पाति, ऊँच-नीच का भेद भाव किए समान रूप से सबको भक्ति का उपदेश दिया। इस सम्बन्ध में तत्र के प्रभाव का भी मुलाया नहीं जा सकता। व्यय के सामाजिक वर्धना का तोड़ कर तत्र ने जाति निर्विरोध सब नरनारी को समान अधिकार दिया और धर्मसाधना का एक नया आदर्श उपस्थित किया। लेकिन बंगाल में जा विभिन्न सस्कृतियों का मेल हुआ वह बुद्धि का मेल नहीं था। बंगाल में आदर्शों का समन्वय नहीं हुआ बल्कि आवेगों का समन्वय हुआ। गौडीय वैष्णव धर्म में आवेग और प्रेम का मुख्य स्थान है। पंचम पुरपाथ रूप भक्ति का धर्म जिसे श्री चतन्य ने जन्म लिया वह है गौडीय वैष्णव धर्म। बंगाल का महायान, सहजयान, बच्चयान, शिवमत, तत्रमत सभी आवगा की बाड़ में वह गए। गौडीय वैष्णव धर्म ने कोई विधिनिषेध नहीं माना। इस महान् प्रेमधर्म की स्थापना में सवीतन का बहुत बड़ा हाथ है। श्री चतन्य ने सवीतन द्वारा अपने धर्ममत का प्रचार किया। अय-अय सम्प्रदाय के प्रवक्तव आचार्यों के समान उन्होंने अपने सिद्धांतों के प्रचार अथवा प्रतिपादन के लिये किसी ग्रन्थ की रचना

^१ हिमांगु चन्द्र चौधरी वैष्णव साहित्य प्रवर्गिका, पृ० १९।

^२ वही—पृ० १९।

नहीं की।^१ भले ही गौडीय वैष्णव समाज कीर्तन का जन्मदाता न हो लेकिन यह सही है कि कीर्तन की प्रभावोत्पादकता की कल्पना कर श्री चैतन्य ने अपने मत के प्रसार के लिये इसका प्रयोग किया।^२ कीर्तन का उल्लेख श्रीमद्भागवत में भी मिलता है।^३

चैतन्य-पूर्व मधुर रस की साधना—

गोपीभाव प्रधान वैष्णव साधना न रामानुज संप्रदाय में गृहीत था और न माध्व संप्रदाय में। ऐसा भी कोई प्रमाण नहीं मिलता जिसे यह कहा जा सके कि चैतन्य से पूर्व निम्बार्क तथा विष्णुस्वामी सम्प्रदायो ने उक्त साधना को ग्रहण किया था। बगाल में चैतन्य से पूर्व मधुररस के अनुकूल किन्ही प्रकार की साधना प्रचलित थी इसका पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। महामहोपाध्याय पंडित प्रमथनाथ तर्क भूषण का कहना है कि राधातंत्र, विष्णु जामल आदि तंत्र में इस प्रकार के मधुर भाव की साधना की बात आलोचित हुई है लेकिन यह कहना कठिन है कि इस प्रकार की साधना की कोई सुश्रुतल प्रणाली चैतन्य युग से पूर्व थी या नहीं।^४ इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। जयदेव के समसामयिक घोषी, उमापतिचर आदि ब्रह्मो ने राधा कृष्ण की प्रेमलीला का गान किया है पर श्रीचैतन्य की वैष्णव साधना-प्रणाली अथवा भाव-सम्पद का परिचय उनलोगों की रचनाओं में नहीं मिलता।

प्रेम रस के आदि प्रचारक-माधवेन्द्रपुरी—

विष्णु के प्रति भक्ति और श्रद्धा की एक धारा श्री चैतन्य से पहले ही से बगाल में प्रवाहित होती आ रही थी। आभिजात्य कुल की चाटुकारिता और इन्द्रिय विलास के वातावरण में रग कर वह प्रकट हुई है और श्रीचैतन्य प्रवर्तित प्रेम का यही अग्रदूत है। गौडीय वैष्णव धर्म में माधवेन्द्रपुरी को प्रेम रस का आदि प्रचारक कहा गया है :

^१ महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्क भूषण—वैष्णव धर्म (अधर मुखार्जी वक्तृता), पृ० ५४।

^२ डा० सुशीलकुमार दे अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव फेथ एन्ड मूवमेन्ट, पृ० ३३५, फुटनोट २।

^३ ११।५।२९।

^४ बागालर वैष्णव धर्म (अधरचन्द्र मुखार्जी वक्तृता), पृ० ४७-४८।

भक्ति रसे आदि माघवेद्र सूत्रधार ।

गौर चंद्र महा कहियाछन बारवार ॥^१

(गौरचंद्र (चतन्य) ने बार-बार कहा है कि भक्ति रस के आदि सूत्रधार माघवेद्र थे) ।

शेखर के पद से मालूम होता है कि नरहरि सरकार ने श्रीचतन्य के आविर्भाव के पूर्व ही ब्रजरस गाया था

गौरांग जमेर आगे विविध रागिणी रागे

ब्रज रस करिलेन गान ।

हेन नरहरि सग पाया चापु श्रीगौरांग

वड सुखे जुडाइल प्राण ।^२

(गौरांग के जन्म के पहले ही विविध राग रागिनिया में उन्होंने ब्रज रस गाया ऐसे नरहरि को पाकर अत्यधिक प्रसन्नता से श्री गौरांग का मन उनसे जा मिला) ।

नवद्वीप का वैष्णव समाज—

श्रीधरस्वामी और माघवेद्र पुरी द्वारा अनुप्राणित होकर नवद्वीप में एक छोटा-सा वैष्णव समाज तैयार हुआ और अद्वैताचार्य उससे गिरोमणि थे । श्रीधर स्वामी और माघवेद्रपुरी की भावधारा का अनुसरण करके ही संभवतः अद्वैताचार्य अपने आरम्भिक जीवन में पानमिश्रित भक्ति का अनुशीलन करते थे ।^३ वेदाती होने पर भी अद्वैताचार्य भक्तिधर्म के अनुरागी थे और श्रीवास आचार्य आदि ने उनके माथ मिलकर महाप्रभु श्रीचतन्य के आगमन की सूचना दी और बाद में महाप्रभु को ही नेता रूप में स्वीकार किया । इस प्रकार से यह सहज ही दखा जा सकता है कि चतन्य के पूर्व यद्यपि मधुर रस की वैष्णव-साधना नहीं थी फिर भी लोक-साहित्य तथा भिन्न भिन्न मत-मतान्तरों का विकास इस प्रकार से हो रहा था जिससे चतन्य प्रवर्तित मधुर रस की साधना के लिये लोक चित पर अधिकार करना सहज हो गया ।

^१ चतन्य भागवत आदि खड छठा परिच्छेद ।

^२ गौरपदतरगिणी, प० ३०२ ।

^३ डा० मुनीलकुमार दे अर्ली हिस्ट्री आव वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेण्ट इन बंगाल पृ० २३ तथा ३५ ।

गौड़ीय वैष्णव काव्य साहित्य और गाथा सप्तशती—

यहा इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है कि गौड़ीय वैष्णव काव्य-साहित्य का ऐहिकतापरक शृंगारी साहित्य ने कम योग नहीं रहा। गाथा सप्तशती से उन पद कर्ताओं का परिचय अवश्य ही था, इसका पता निम्नलिखित उद्धरण से चल जाना है।

विरहे विसं व विसना अमअ मआ होइ संगमे अहिअम् ।

किं विहिना समअं किअ होहिं वि पिया विनिस्मिअ आ ॥

इसके साथ चण्डीदास के निम्नलिखित पद्यांशों से तुलना की जा सकती है—

१—निमे सुधा दिया एकत्र करिया

ऐछन कानुर लेह ।

(कानु का प्रेम ऐसा है जैसे नीम और मुधा को एकत्र कर दिया हो) ।

२—कानुर पिरोति बाहिरे सरल

अन्तरे गरल ह्यु ।

(कानु की प्रीति बाहर से सरल लेकिन अन्तर में विष जैसा दग्ध करती है) ।

३—कानुर पिरोति चन्दनेर रीति

घषिते सौरभमय ।

घषिया आनिया हियाय लइते

बहन द्विगुण ह्यु ॥

(कृष्ण की प्रीति चन्दन की रीति वाली है जो घिसने पर तो सौरभ फैलाती है। पर घिसकर हृदय पर लगाने से दुगुनी जलन होती है।)

कविराज गोस्वामी के मत से प्रेम 'विषामृते एकत्र मिलन' है। विद्यापति ने भी इसी के अनुरूप कहा है —

तोंहे बड़ नागर ओ बड़ भोरी ।

अमिय पियओ लट विष सौ घोरी ॥

वैष्णव सहजिया मत और गौड़ीय वैष्णव साधना—

अन्त में वैष्णव सहजिया मत की चर्चा किए बिना यह अध्ययन अधूरा रह जायेगा। संभवतः वैष्णव सहजिया मत ने चैतन्य प्रवर्तित वैष्णव साधना को अत्यधिक प्रभावित किया। वैसे यह बात भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि गौड़ीय वैष्णव साधना ठीक वही नहीं है जो वैष्णव सहजिया मत वाले मानते

है। लेकिन यह भी ठीक है कि दोनों में इतना साम्य है कि बहुत लोग दोनों को अभिन्न मानते हैं। वृष्णव सहजिया मत वाले प्रायः सभी प्रमुख गौड़ीय वृष्णव संप्रदाय के भक्त कवियाँ और साधका को अपने मत के अन्तर्गत रखते हैं। वृष्णदास, विद्यापति, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, नरहरि लोचन, कृष्णदास कविराज, वंदावन दास आदि सभी को वे अपने मत का अनुयायी मानते हैं। उनके मतानुसार जितने प्रमुख गौड़ीय वृष्णव भक्त थे सभी ने सहज साधना की थी। अकिंचनदास के 'विवत विलास' में कहा गया है—

श्रीरूप करिला साधना मीरार साये ।
 भट्ट रघुनाथ कला कण-वाई साये ॥
 लक्ष्मी हीरा सने करिला गौसाई सनातन ।
 महामत्र प्रेमे सेवा सदा आचरण ॥
 गोसाई लोकनाथ चण्डालिनी कया सगे ।
 दोहा जन अनुराग प्रेमेर तरगे ॥
 गोयालिनी पियला से ब्रज देवी सम ।
 गोसाइ कृष्णदास सदाइ आचरण ॥
 श्यामा नापितानीर सगे श्रीजीव गासाई ।
 परम से भाव कइला यार सोमा नाई ॥
 रघुनाथ गोस्वामी पिरिति उल्लासे ।
 मीरा चाइ सगे तेह राधा कुण्ड बासे ॥
 गौरप्रिया सगे गोपाल भट्ट गोसाइ ।
 करये साधन अथ किछु नाई ॥
 राय रामानंद यजे देव-कया सगे ।
 आरोपेते स्थिति तेह क्रियार तरगे ॥^१

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वृष्णव सहजिया मत के साथ गौड़ीय वृष्णव मत का अत्यधिक साम्य है और यही कारण है कि दोनों को अभिन्न मान लिया जाता है।

सहजिया मत और 'चैतन्य चरितामृत'—

सहजिया मत वाले 'रस का ही अवलम्बन कर चलते हैं। वे लोग रूप धर्मी हैं। इस मत वालों के अनुसार 'रस' का सम्बन्ध मन में है। इसलिये

^१ बग साहित्य परिवर्ध, खण्ड २, पृ० १६५० ।

वे मानते हैं कि जो सच्चे रसिक हैं उन्हें द्रष्टा का स्थान ग्रहण करना पड़ता है, भोक्ता का नहीं। वैष्णव-पदावली-साहित्य की रचना गदा कृष्ण-लीला रस का आस्वादन करने के लिये हुई थी। महजिया मतवालों ने इसमें ने बहुत कुछ अपना लिया। यहा तक कि अपने मत की स्थापना के लिये उन्होंने 'चैतन्य चरितामृत' का आधार लिया।^१

सहज मत की देहाश्रित प्रेम साधना—

सहजिया कहते हैं कि जन्मगत जो स्वाभाविक भाव है वही महज है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है प्रेम। इस प्रेम की मार्थकता इन्द्रियातीत होने पर भी देह के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। सहज भजन का मार है—देहाश्रित प्रेम साधना। गौडीय वैष्णव मिद्धान्त के अनुमार वृन्दावन में राधाकृष्ण की लीला अनन्तकाल से चली आ रही है। महजिया मतानुसार ये अप्राकृत युगल नरनारी में ही अपनी प्राकृत लीला कर रहे हैं। उनके मतानुसार प्रत्येक नारी राविका-महज का आस्वाद्य रूप रति और प्रत्येक पुरुष श्रीकृष्ण है—सहज का आस्वादक रूप रम। महज मत वालों के लिये यह जड देह ही सर्वोत्कृष्ट है और इस देह के सम्यक् तत्त्व की प्राप्ति ने मन का निर्विकारत्व प्राप्त होता है। यह जड देह ही परम तत्त्व है और इस जड देह और प्राकृत प्रेम के आस्वादन द्वारा ही सच्चे प्रेम की प्राप्ति होती है। नरनारी के मिलन का जो आनन्द है उसी आनन्द द्वारा परम आनन्द का आस्वाद मिलता है। किन्तु इन मिलन के स्वरूप की व्याख्या इस प्रकार से की गई है—

नीर ना छुंइबि सिनान करिवि

भाविनी भावरे देहा ।

(विना जल का स्पर्श किए स्नान होगा जैसे भाविनी और भावदेह में सबव है।) सहजिया मत वालों ने मनुष्य को ही प्रेमास्पद माना था और लौकिक प्रेम के बीच से ही परम प्रेमास्पद भगवान् के प्रेम का पता पाया था, इसीलिए उन लोगो का कहना है—

मानुष रतन मानुष जीवन

मानुष पराण घन ॥

^१ मनीन्द्रनाथ वसु . सहजिया साहित्य, भूमिका ।

पर यह बात उन लोगो ने सामान्य मनुष्य को ध्यान में रखकर नहीं कही थी, 'सहज' मनुष्य को ही लक्षित करके कही थी—

जे जना मानुष से जाने मानुष
मानुषे मानुष चिन ।

(जो मनुष्य है वही मनुष्य को जानता है, मनुष्य ही मनुष्य को पहचानता है ।) उन्होंने जिस प्रेम का उल्लेख किया है वह काम-गंध हीन है—

हियार भितरे जाहार बसति
ताहार उपरे के ।
ताहार उपरे प्रेमेर बसति
से क्या बुझिबे के ॥

(हृदय के भीतर जिसकी बस्ती है उसके ऊपर कौन है । उसके ऊपर प्रेम की बस्ती है इस बात को कौन समझेगा ।)

देह की साधना द्वारा परम तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है, यही सहजिया मतवाद है । इस देह-साधना के गूढ़ तत्त्व को जो जानते हैं वही केवल सहज साधना के उपयुक्त हैं । उस गोपनीय तत्त्व के सम्बन्ध में उनका कहना है—

भरम ना जाने धरम बक्षाने
एमेन आछये जारा ।
काज नाइ सखि तादेर कयाप
बाहिरे रहुन तारा ॥

(बिना मम जाने जा धम बखानते है ह मखि उनस कोई मनलब नहीं वे बाहर ही रहें) ।

सहज साधना अतर्मुखी है—

इस सहज साधना में बाह्य जगत् का कोई विरोध महत्त्व नहीं है । यह अन्तर्मुखी धम है वहिमुखी नहीं । इसलिये केवल अन्तरंग ही सहजिया प्रेमतत्त्व के मम को समझ सकते हैं—

आमार बाहिर दुयारे कपाट लेगेछे ।
भितर दुयार खोला ॥
तोरा निसाडा हइया आयलो सजनि ।
आधार पेरिया आला ॥

इसी सखी' या 'सखी' को लेकर सहजिया मत वालों ने प्रेम तत्त्व का अनुशीलन और प्रचार किया।

सहजिया मत का प्रेम-तत्त्व—

सहजिया मत का प्रेम तत्त्व, परकीया प्रेम तत्त्व है। सहजिया सम्प्रदाय वालों ने स्वकीया और परकीया को हमरे अर्थ में लिया है। उन लोगों ने स्वकीया से नक्राम साधना और परकीया से निष्काम साधना का अर्थ लिया है। साधना के उद्देश्य को ध्यान में रख कर वे कहते हैं कि बाहर देवता (मूर्ति) की पूजा करने की अपेक्षा आत्मोपलब्धि के लिये साधना करना ही श्रेष्ठ मार्ग है।^१ पर परकीया प्रेम के साथ सखी-साधना का तत्त्व अंगंगी भाव से जुड़ा रहने के कारण सहज साधना के लिये नारी को लेकर साधना अति आवश्यक है। इस सखी-साधना के मूल में मनवत तांत्रिक प्रभाव पड़ा है।^२ तत्र मत में देह साधना के पाँच कुल हैं—ब्राह्मणी, चाण्डाली, रजकी, डोम्बी और जवरी। ये मानवी नहीं हैं। बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय वालों ने जिस डोम्बी, चाण्डाली और सहजिया चण्डीदास ने जिम रजकी को सम्बोधन करके अपना साधन-तत्त्व विश्लेषण किया है, वे लोग उनके कुल हैं।^३

चैतन्य साधना और सहजिया साधना में अन्तर—

श्रीचैतन्य की साधना से सहजिया साधना का मौलिक अन्तर है। चैतन्य में गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय वाले राधा और कृष्ण को एकाकार देखते हैं। वही द्रष्टा हैं, वही भोक्ता हैं, वही रति हैं, वही रस हैं। वैसे उनमें राधा-भाव का ही प्राधान्य है। उन्हें 'राधाभाव द्युति भुवलित' कहा गया है। वैष्णव कवियों में चाहे वे चैतन्य-पूर्व के हो या चैतन्य के बाद हुए हों सखी-भाव की प्रधानता रही, राधा-भाव की नहीं। बंगाल के वैष्णव साहित्य के विकास में वैष्णव सहजिया साधना तथा काव्य का प्रभाव गौडीय वैष्णव साधना और साहित्य पर पड़ा है उन्नी प्रकार से गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय ने वैष्णव सहजिया मत और काव्य को प्रभावित किया है। इन दोनों के पारस्परिक प्रभाव को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

^१ मनीन्द्र मोहन वसु : सहजिया साहित्य, भूमिका।

^२ डा० नीहारंजन राय, बांगालीर इतिहास, आदि पर्व, पृ० ६३९।

^३ वही, पृ० ६३९।

आठवा अध्याय

चैतन्य सम्प्रदाय के दर्शन और सिद्धान्त

गौडीय दर्शन और सिद्धान्त—

पिछले अध्याय में वैष्णवता के कारण बगल साहित्य के परिवर्तित स्वरूप पर विचार किया जा चुका है। अब बगल में विकसित ब्रजबुलि साहित्य के परिचय से पहले उसके मूल प्रेरक और गति प्रदान करने वाले गौडीय वैष्णव दर्शन के सिद्धांतों की जानकारी बहुत आवश्यक है। अतः प्रस्तुत अध्याय में गौडीय वैष्णव दर्शन और उसके मूल सिद्धांतों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

गौडीय वैष्णव मत के प्रवर्तक—

गौडीय वैष्णव दर्शन के सिद्धांत तत्व की दृष्टि से प्राचीन होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से यह चार सौ वर्षों से कुछ पहले ही आविर्भूत हुआ। महाप्रभु चैतन्य के मौलिक उपदेश और साधना के आधार पर ही यह विनिष्ट दार्शनिक धारा प्रवर्तित हुई। गौडीय वैष्णव धर्म के दार्शनिक सिद्धांत और उसके अनुसार साधना दीक्षा तथा नियम विधान आदि के सवध में चतन्यदेव ने स्वयं कुछ नहीं लिखा। पर उनसे मौलिक उपदेश पाकर रूपगोस्वामी और सनातन गोस्वामी ने बहुत से ग्रंथ लिखे। बाद में इन दोनों की प्रेरणा में जीव गोस्वामी ने काफी ग्रंथ लिखे। इन तीनों के द्वारा लिखे गए ग्रंथों के अनिश्चित गौडीय वैष्णव धर्म के तत्त्वा का प्रचार करने वाले और दूसरे ग्रंथ सम्प्रदाय में नहीं लिखे गए। जीव गोस्वामी रचित पद-सद्वचन में ही मुख्य रूप से गौडीय वैष्णव धर्म के दार्शनिक तत्त्वा का विस्तृत विवेचन हुआ है। इतना होने पर भी महाप्रभु श्री चैतन्य को गौडीय वैष्णव धर्म का आदि आचार्य मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

गौडीय वैष्णव मत का स्वावलम्बन—

अधिकांश विद्वान् ऐतिहासिक सन्नद्धता के कारण चैतन्य मत को माध्वमत

की ही शाखा विशेष मानते हैं।^१ परन्तु दार्शनिक सिद्धांत की दृष्टि में दोनों संप्रदायो में बड़ा भारी अन्तर है, माध्वमन द्वैतवाद का समर्थक है वहाँ चैतन्य मत अचित्य-भेदाभेद-सिद्धान्त का स्थापक। इसी कारण कुछ विद्वानों को अचित्य-भेदाभेद-सिद्धान्त निम्बार्क के भेदाभेद-सिद्धांत के अनुकूल जान पड़ा अतः उन्होंने चैतन्य मत-को निम्बार्क संप्रदाय के अंतर्गत माना पर सच तो यह है कि गौड़ीय वैष्णव दर्शन के सिद्धान्त, उपासना-पद्धति, साधना का जादर्श सर्वथा पृथक् ही है। गौड़ीय-वैष्णव-दर्शन के सिद्धान्तों तथा साधना पद्धति के वैशिष्ट्य के कारण यदि वैष्णव संप्रदाय के इतिहास में चार प्रधान वैष्णव संप्रदायों के अतिरिक्त चैतन्य-मत को एक पांचवें स्वतंत्र संप्रदाय रूप से माना जाय तो अनुचित न होगा।

चैतन्य मन और अचित्य भेदाभेदवाद—

चैतन्यमतानुसार भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र परमतत्व है और उनकी सूर्य और किरण, अग्नि और स्फुलिंग में जो भेदाभेद संबंध है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण का जीव के साथ अक्षित अंश में भेद और चैतन्य अंश में अभेद है; प्रकृत रूप में जीव भगवाम का ही भेदाभेद प्रकार है। यह भेद और अभेद की स्थिति तर्क द्वारा अचित्य होने के कारण चैतन्य मत की प्रसिद्धि 'अचित्य-भेदाभेद' के नाम से भी हुई।

चैतन्य संप्रदाय में ब्रह्म या श्रीकृष्ण—

एक ही तत्व—“ब्रह्म”, “परमात्मा”, भगवान्—भक्त भगवान् को नाना रूपों में देखता है। भक्त अपने भाव के अनुरूप भगवान का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार से भिन्न-भिन्न साधक भिन्न-भिन्न रूपों में भगवान् को देखते हैं। भगवान् एक है, वह अखण्ड है, वह चिदानन्द स्वरूप है। गौड़ीय सिद्धांत के अनुसार एक ही ईश्वर, एक ही विग्रह भक्तों के भाव के अनुरूप नाना प्रकार के रूप धारण करता है। चैतन्य चरितामृत में कहा गया है :

एकह ईश्वर भक्तेर भाव अनुरूप । एकह विग्रहे धरे नानाकार रूप ।^२
एक दूसरे स्थल पर चैतन्य चरितामृत में कहा गया है .

^१ प्रथम अध्याय में 'गौड़ीय संप्रदाय' की चर्चा के प्रसंग में इस संबंध का उल्लेख किया जा चुका है।

^२ चैतन्य चरितामृत २।९।१४१

एकह विग्रह तार—अनन्त स्वरूप ।^१

अर्थात् उनका एक ही विग्रह है लेकिन वे अनन्त रूप धारण करते हैं। अतएव गौडीय सिद्धांत के अनुसार एक ही अद्वय पानत्व के अलग-अलग नाम—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् हैं। नारद पाचरात्र में इसी बात को एक अत्यन्त सुन्दर उपमा द्वारा समझाया गया है। उसमें कहा गया है कि मयूरखडी (धूपछाह) साठी विभिन्न ब्यक्तियों को विभिन्न स्थानों से विभिन्न रंग वाली दीखती है लेकिन उसका एक ही प्रमुख रंग है और अन्य सभी रंग उसी में समाये हुये हैं। इसी प्रकार से अब्युत (श्रीहरि) भिन्न भिन्न प्रकार के भक्ता को भिन्न भिन्न रूपों में दिखलाई पढते हैं। वह एक ही तत्व, पानमार्गों के लिये निर्विशेष ब्रह्म और मागपयी उपासक के लिये परमात्मा तथा भक्ति का अवलम्बन लेने वाले भक्त के लिये भगवान् हैं।

श्रीकृष्ण ही परब्रह्म —

चैतन्य मप्रणय में श्री कृष्ण ही परम तत्व परब्रह्म हैं। वे पूण पान हैं। वे पूणानन्द हैं। गविन सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्य का पूणतम विकास उन्हा में हुआ है। चतन्य चरितामृत में कहा गया है

स्वयं भगवान् कृष्ण, कृष्ण परतत्व ।

पूणज्ञान, पूर्णानन्द, परम महत्व ॥^२

एक जगह और चैतन्य चरितामृत में आया है।

ईश्वर परम कृष्ण स्वयं भगवान् । सख्य अवतारो, सख्य-कारण प्रधान ।

अनन्त बहुषुष्ठ आर अनन्त अवतार । अनन्त ब्रह्माण्ड इहा सवार आधार ॥^३

इस प्रकार से गौडीय सम्प्रदाय में कृष्ण स्वयं भगवान् हैं, गनगभितमान हैं सबके कारण स्वरूप हैं तथा सबके आश्रय हैं। वे सभी शक्तियों का मूलाधार सवनिष्पन्ना, सर्वेश्वर और सवाश्रय हैं।

कृष्ण एक सर्वाश्रय कृष्ण सवधाम ।

कृष्णेन गरीरे सव विश्वेर विधाम ॥^४

^१ चैतन्य चरितामृत, २।२०।१३७

^२ वही, १।२।५

^३ वही, २।८।१०६-७

^४ वही १।२।७८

गौडीय संप्रदाय के इस मत का समर्थन अनेक श्रुतियों द्वारा हो जाता है। कहा गया है "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।" ब्रह्मसंहिता (५।१ में भी यही कहा गया है ।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

अनादिरादि गोविन्द. सर्वकारण-कारणम् ॥

गीता में भगवान् ने स्वयं ही बतलाया है कि वे ही एक मात्र सर्वकारण है। गीता (अध्याय, ११) में उन्होंने अपने विश्वरूप में अर्जुन को यह दिखाया है कि वे सर्वाश्रय हैं। गीता में अन्यत्र भी (७।६, ७।७, ७।१०) में भगवान् के उस रूप का परिचय मिलता है।

श्री कृष्ण का स्वरूप—श्री कृष्ण, सर्व ऐश्वर्यं, सर्वशक्ति और सर्वरस पूर्ण हैं। वे सच्चिदानन्दविग्रह हैं। कविराज गोस्वामी ने कहा है।

सच्चिदानन्दतनु श्री ब्रजेन्द्रनन्दन । सर्वेश्वर्यं-सर्वशक्ति-सर्वरस पूर्ण ।^१

इस प्रकार से मत्, चित् और आनन्द ही श्री कृष्ण का स्वरूप है। श्रीमद् भागवत (१।३।३८) में कहा गया है कि उनमें ही कला या अग रूप समस्त अवतारों का आविर्भाव होता है। वे अखिल रसामृत मिण्डू हैं। उन्हीं में रस-माधुर्य आदि का पूर्णतम विकास है। वे प्रेममय, आनन्दमय और रसमय हैं। द्विभुज मुरलीधर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही वेदों के ब्रह्म हैं। उनसे आनन्द और प्रेम की अनन्त धारा प्रवाहित हो रही है। अपने ऐश्वर्य और माधुर्य से सबको आकर्षित कर रहे हैं इसी लिये उनका नाम 'कृष्ण' है। लेकिन जब "श्रीकृष्ण के विग्रह" आदि की बात कही जाती है तो वह केवल भाषा का प्रयोगमात्र है, उपचारवगत ऐसा कहा जाता है^२, वस्तुतः यहाँ जो देह है वही देही है। इस देह और देही के अभेद का फल यह होता है कि श्रीकृष्ण के विग्रह का कोई भी अंग किसी भी इन्द्रिय की शक्ति धारण करता है और किसी भी इन्द्रिय की शक्ति को प्रकट कर सकता है।^३ श्रीकृष्ण में आनन्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैसे नमक के गोले में केवल नमक ही नमक है वैसे कृष्ण में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है।^४

^१ श्री मद्भागवत् १।३।२८

^२ चैतन्य चरितामृत, २।८।१०८।

^३ लघुभागवतामृत, ३४।१।

^४ बृहदारण्यक ४।५।१३।

^४ ब्रह्मसंहिता, ५।३२।

श्रीकृष्ण अद्वय ज्ञानतत्व है ।^१ अद्वय अर्थात् द्वितीय से हीन । श्रीकृष्ण ही एव-
मात्र स्वयं सिद्ध तत्व हैं । उनमें सजातीय, विजातीय, स्वगत विन्नी प्रकार का
भेद नहीं । अर्थात् भिन्न भिन्न अवतारादि सजातीय ब्रह्माण्ड आदि विजातीय
तथा देह-देही (जड़, चेतन) स्वगत इन सभी तत्वों की सत्ता श्री कृष्ण की सत्ता
की अपेक्षा रखती है वे श्रीकृष्ण की सत्ता पर ही आश्रित हैं । इसलिये
श्रीकृष्ण के सबध में किसी प्रकार के भेद की बात नहीं बही जा सकती ।

श्रीकृष्ण, सगुण एव निर्गुण—स्वरूप शक्ति की तीन बतियाँ हैं—ह्लादिनी,
सचिनी और सवित । यह स्वरूप शक्ति केवल भगवान में ही है और
इस शक्ति के विलासभूत अप्राकृत गुण सब भगवान् में बतमान है । प्रकृति
भगवान की शक्ति रूपा है इसलिये मायिक प्राकृत गुण (अर्थात् सत्व,
रज, तम) भगवान् में नहीं है । इन गुणा से रहित होने के कारण भगवान्
निगुण है और चिन्मय अप्राकृत गुणा के कारण वह सगुण भी है ।

श्रीकृष्ण में विरुद्ध धर्म—भगवान् का विभुत्व ही उनका स्वरूप धर्म
है । वे सबव्यापक, सबश और अनन्त है लेकिन उनमें अचित्य ऐश्वर्य भी
है इसलिये उनमें विरुद्ध धर्मश्रयत्व संभव है । परिमित शरीर में भी काटि
ब्रह्माण्ड कीटि ब्रजमण्डल, अनन्त भगवद्धाम का धारण किये हुये है । यगोदा
ने इस रूप का देखा था । श्रीकृष्ण विरुद्ध धर्मों के आश्रय है । एक ही समय
में वे सबव्यापक है और अणु से भी क्षुद्र है । अस्थूल होने पर भी स्थूल
अनणु होने पर भी अणु और अवण होने पर भी श्यामवर्ण और रक्तान्तलोचन
है ।^२ अपनी अचित्य शक्ति के कारण ही वे 'अणोरणीयात् महतोमहीयान' ^३
है, नरदेह में भी विभु है ।

श्रीकृष्ण लीलामय—परब्रह्म श्रीकृष्ण लीलामय है । इस लीला का
प्रयोजन लीला है कायसिद्धि नहीं । एक छोटे से बालक के समान वे
श्रीधारत होते हैं । उनकी लीला बबल आनन्द प्राप्ति के लिये है । श्रीकृष्ण
की रसास्वादन की इच्छा ही लीला का प्रवर्तन करती है । आनन्दस्वरूप
श्रीकृष्ण, आनन्द के आस्वादन के लिये आनन्द की प्रेरणा से लीला करते हैं ।
इसी रसास्वादन के लिये अपने स्वरूप और विभिन्न भगवत् स्वरूपा में वे
अनुष्ठित है ।

^१ चतयचरितामृत १।२।५३ ।

^२ भूमपुराण वचन लघु भागवतामृत (९७) में उद्धृत ।

^३ द्येतास्तर ३।२०, कठापनिषद, १।२।२० ।

नरलीला-श्रेष्ठलीला—चैतन्य चरितामृत (२।२१।८३) में कहा गया है कि श्रीकृष्ण की श्रेष्ठ लीला उनकी नरलीला है। उनका गोपवेश, हाथों में मुरली, उनका नित्य-नवकिशोर नटवर रूप ही उनकी नरलीला के अनुरूप है।

कृष्णेर जतेक खेला, सर्वोत्तम नरलीला, नरवपु कृष्णेर स्वरूप।

गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर, नरलीलार ह्य अनुरूप ॥

इसका मतलब यह है कि विभिन्न स्वरूपों में भगवान् की जो लीलायें हैं उनमें नरलीला ही सर्वश्रेष्ठ है। ब्रज में वे कुमार, पौगण्ड और किशोर इन्हीं तीन अवस्थाओं में लीला करते हैं। वे मूर्तिमान् शृंगार हैं और शुद्ध माधुर्य रस के आस्वादन के लिये ही वे पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। राधा के साथ निरन्तर प्रेमक्रीड़ा ही उनका कार्य है। इस प्रकार से नररूप में लीला करने वाले कृष्ण परब्रह्म हैं और नराकृत ही उनका निजस्वरूप है।^१

श्रीकृष्ण में माधुर्य की प्रधानता—श्रीकृष्ण का माधुर्य रूप ही प्रधान है। इस माधुरी की सीमा नहीं। इस माधुर्य से समस्त विश्व, स्वर्गवासी देवता-गण, लक्ष्मी और यहाँ तक कि स्वयंश्रीकृष्ण भी मुग्ध हैं। इस रूप का एक कण समस्त त्रिभुवन को डुबा देता है और सभी प्राणियों का आकर्षण करता है।

जे रूपेर एक कण डुबाय सब त्रिभुवन

सर्व प्राणी करे आकर्षण ।^२

और फिर

श्रवणे दर्शने आकर्षये सर्वमन । आपना आस्वादिते कृष्ण करेन जतन ॥^३

कृष्ण का यह माधुर्य केवल अनुभूति का विषय है इसका वर्णन करना संभव नहीं। भक्त, आत्मविभोर होकर “मधुर-मधुर” कहता अपनी विह्वलता, आतुरता, अतृप्ति तथा अपनी अक्षमता को प्रकट करता है। वह उस मधुरता का वर्णन नहीं कर पाता। वह जब वर्णन करना चाहता है तो इतना ही कहकर रह जाता है कि “वह मधुर से सुमधुर और उससे भी सुमधुर और उससे भी अति सुमधुर है।”

मधुर हैते सुमधुर ताहा हैते सुमधुर

ताहा हैते अति सुमधुर ॥^४

श्रीकृष्णकर्णामृत (९२) में भी हम यही पाते हैं :

^१ यत्रावतीर्णं कृष्णार्थं परब्रह्म नराकृतम्—विष्णुपुराण, ४।११।२।

^२ चैतन्य चरितामृत, २।११।८४।

^३ वही, १।४।१२८।

^४ वही, २।२१।११६—११७।

मधुर मधुर वपुरस्य विभोमधुर मधुर वदन मधुरम
मधुगधि-मधुस्मितमेतदहो मधुर मधुर मधुर मधुरम ॥

श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य-माधुर्य के अधीन—प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में भगवान् के ऐश्वर्य-पक्ष पर अधिक जोर दिया गया है लेकिन चतुर्थ महाप्रभु ने प्रचार किया— माधुर्य भगवत्ता-सार^१ अर्थात् भावत सत्ता का साग माधुर्य ही है। श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य का अणु-परमाणु माधुर्य से सिक्न है अतएव वह ऐश्वर्य भक्त के हृदय में भय का संचार नहीं करता और न गौरवमहिमा के कारण सकोच ही।

श्रीकृष्ण रसिक गिरामणि—श्रीकृष्ण के लिये “रसो व स” कहा जा सकता है। व ऐश्वर्यमय, परममाधुर्यमय और लीला पुष्पोत्तम है लेकिन सजसे बन्दर रसिक गेवर ह। लेकिन यहाँ स्पष्ट समय लना चाहिए कि आस्वादय आस्वादन दोनो ही वह है। राधाकृष्ण की लीला में ही माधुर्य का चरम विकास होता ह। अतएव युगल रूप ही रस-स्वरूप है। इस माधुर्य का स्फुरण वात्सल्य रस में संभव नहीं। यद्योत की गाद में उनके माधुर्य का स्फुरण होता है लेकिन व उस समय ‘साक्षात् ममथ मदन’ नहीं होते। व वृन्दावत के अप्राकृत मदन हैं। भक्त उस रस के आस्वादन के लिये लालायित रहता ह। भगवान् कृष्ण जिस लीला में रत रहते ह उसीके अनुरूप उनमें भगवत्त्व का विकास होता है।

श्रीकृष्ण स्वरूप की श्रेष्ठता—श्रीकृष्ण के माधुर्यमय रूप की परिणति ब्रज लीला में ही हुई। ब्रजलीला में श्रीकृष्ण में रूपमाधुर्य, वेणु-माधुर्य, प्रेम-माधुर्य और लीला-माधुर्य का समन्वित स्वरूप दखने को मिलता ह। यह अर्थ किसी स्वरूप में नहीं है, इसीलिये श्रीकृष्ण स्वरूप की श्रेष्ठता ह।

भगवान् श्रीकृष्ण कर्णामय भक्तवत्सल—चतुर्थ चरितामृत में कहा गया ह कि मायादध्य जीव का निस्तार ही ईश्वर का स्वभाव ह। लोक निस्तारिव एह ईश्वर-स्वभाव^२ अतएव अन्य गुणा के साथ वे कर्णामय भक्तवत्सल ह। व स्वतंत्र होत हुए भी अपनी भक्त वत्सलता के कारण भक्त के आधीन रहते हैं।^३ उनकी कर्णामात्र से जीव का उद्धार होता है। उसी कर्णा के

^१ चतुर्थ चरितामृत २।२१।९२।

^२ यही, ३।३।५।

^३ अह भक्त-नराधीन। श्री मदभागवत ९।४।६३।

द्वारा जीव भगवान् के नाथ मन्व होता है। जीव के लिये भगवान् की करुणा का बहुत बड़ा महान्ग है।

चैतन्य सम्प्रदाय में शक्ति या राधा—

श्रीकृष्ण की तीन मुख्य शक्तियाँ— चैतन्य चरितामृत में कहा गया है कि श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियाँ हैं जिनमें तीन प्रधान हैं। ये तीनों चिच्छक्ति, मायाशक्ति और जीवशक्ति हैं। इन्हें क्रमशः अतरंगा, बहिरंगा और तटस्था भी कहते हैं।

कृष्णेर अनन्त शक्ति ताते तिन प्रधान ।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीवशक्ति नाम ॥
अन्तरंगा बहिरंगा तटस्था कहि जारे ।
अन्तरंगा स्वरूप-शक्ति सभार उपरे ॥^१

इन शक्तियों में चिच्छक्ति, श्रीकृष्ण के स्वरूप में बसी हुई है। श्रीकृष्ण, चित् स्वरूप है। उनकी चित्-स्वरूप शक्ति, चिच्छक्ति है और यही अंतरंगा है क्योंकि इसी चित्शक्ति द्वारा लीला-गुरुपोनम श्रीकृष्ण अतरंग-लीला करते हैं। उनकी मायाशक्ति, बहिरंगा है। उसी शक्ति में ब्रह्माण्ड और जड़ जगत् की उत्पत्ति हुई है। यह इसलिये बहिरंगा कहलाती है कि यद्यपि यह श्रीकृष्ण की ही शक्ति है फिर भी उनकी अचिन्त्यशक्ति के कारण उनसे तथा उनके धाम-परिकरादि से दूर ही बनी रहती है। श्रीकृष्ण की जीव-शक्ति के अंग में अनन्त जीव अस्तित्व वाले हैं। यह तटस्था है क्योंकि श्रीकृष्ण की अन्य दो शक्तियों से यह भिन्न है फिर भी इसे दोनों ही शक्तियों में प्रवेश का अधिकार है।

स्वरूप शक्ति के तीन प्रकार—श्रीकृष्ण, सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत्, चित्, आनन्द के अनुसार उनकी स्वरूप-शक्ति के सधिनी, सवित् और ह्लादिनी तीन प्रकार हैं। सधिनी, श्रीकृष्ण के सत् अंग की शक्ति है। यह आधार शक्ति है। इसीके द्वारा भगवान् स्वयं अपनी तथा अन्य वस्तुओं की सत्ता धारण किये हुए रहते हैं। चित् अंग की शक्ति, सवित् शक्ति है। यह ज्ञान-शक्ति है। भगवान्, इसी शक्ति द्वारा स्वयं ज्ञान प्राप्त करते हैं और अन्य को ज्ञान प्रदान करते हैं। आनन्द अंग की शक्ति ह्लादिनी शक्ति है। इसके द्वारा भगवान् स्वात्मभूत आनन्द का अनुभव करते हैं और दूसरों को आनन्द देते हैं।

^१ चैतन्य चरितामृत, २।८।११६-११७।

श्री राधा का स्वरूप—श्री राधा, भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति की सार-स्वरूपा है। वे भगवान् का प्रधान शक्ति हैं। चतुर्थ चरितामृत में कहा गया है।

ह्लादिनीर सार अण-सार प्रेमनाम ।
आनन्द चिन्मय रस-प्रेमेर आख्यान ॥
प्रेमेरे परम सार-महाभाव जानि ।
सइ महाभाव रूप राधा ठाकुरानी ॥

(२।८।१२२ १२३)

ह्लादिनी का सार प्रेम है और प्रेम का सार भाव और इस भाव का चरम उत्कृष्ट महाभाव में है। इस महाभाव के भी मोदन और मादन का प्रकार है। वास्तव में महाभाव की चरमावस्था मान्न में ही है। इसी मादन महाभाव की विग्रह रूपा श्री राधा हैं और केवल मात्र वही है अथ बोर्ड नहीं। यहां तक कि श्रीकृष्ण में भा इसका प्रकाश नहीं है। श्रीकृष्णके रसास्वादन की चरम परिणति मादन महाभाव में ही है। राधा प्रेममयी है चिर माधुयमयी प्रेम की अधिष्ठाया देवी है तथा नित्य नव किंगोरी है। श्रीकृष्ण का इच्छाया की पूर्ति ही इनकी आराधना है इसलिये ये राधा है।

कृष्णवाछा पूतिरूप करे आराधने ।
अतएव राधिका नाम पुराणे व्याख्याने ॥^१

राधिका कृष्णमयी है। वे कृष्ण को भुग्घ और आनन्दित करती रहती है। वे वात्ता गिरामणि है। उनके लिये कृष्ण ही सब कुछ है। किसी वस्तु की सायकता व कृष्ण-सयोग से ही माननी है। उनकी वाणा में उनके नेत्र में, उनकी नासिका में उनका श्रवण में, उनका बाहर उनके भीतर सबत्र कृष्ण का स्फुरित हो रहे है।

कृष्णमयी कृष्ण जार भीतरे बाहिरे ।
जाहां जाहां नेत्र पडे ताहां कृष्ण स्फुरे ॥^२

कृष्ण राधा के वशावर्ती—

कृष्ण राधा के प्रेम के वशावर्ती है केवल राधा ही उनकी वशावर्तिनी नहीं। समस्त जगत को मोहने वाले कृष्ण है और उन्हें राधा ने माह रसा है वे सर्वेश्वरी है।

^१ चतुर्थ चरितामृत, १।४।७५ ।

^२ वही १।४।७३ ।

जगत मोहन कृष्ण-साहार मोहिनी ।

अतएव ममन्तेर परा ठाकुराणो ॥

कृष्ण ने स्वयं स्त्रोकार किया है कि "मैं पूर्णानन्द, चिन्मय, पूर्ण तत्व हूँ (लेकिन) मुझे राधिका का प्रेम उन्मत्त करता है। न-जाने राधा के प्रेम में कितना बल है जो मुझे सदा विह्वल करता है।"

पूर्णानन्दमय आसि, चिन्मय पूर्णतत्व ।

राधिकार प्रेमे आमाय कराय उन्मत्त ॥

ना जानि राधार प्रेमे आछे कन बल ।

जे बले आमारे करे सर्वदा विह्वल ॥

राधा-मूल कान्ता शक्ति—नारदपत्रराज (६०, ६१, ६०-६५) में महा-देव की उक्ति है कि राधा मूल कान्ता शक्ति है। ब्रज की गोपिकायें, द्वारका की राजमहिषिया, वैकुण्ठ की लक्ष्मी सभी उनकी अग्र रूपा हैं। वे राधा की विलास मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार से जैसे श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं वैसे श्रीराधा स्वयं शक्ति रूपा मूल कान्ता शक्ति है। श्री राधिका, कृष्ण की पद्मिनी ऐश्वर्य की अविष्टानी देवी है। वे समस्त मोन्दर्य-भाव्युं और कान्ति की मूल आवार हैं।^३

राधा-लीलारस आस्वादन की आवार—श्री राधा में चरम प्रेम की अभिव्यक्ति है। हम यह देख चुके हैं कि मादन-महाभाव की अभिव्यक्ति उन्हीं में हुई है। वे श्रीकृष्ण को लीलारस-आस्वादन करा रही हैं। इनमें उनका आत्म सुख नहीं बल्कि प्राणप्रिय श्रीकृष्ण को सुखी करने के लिये ही वे प्रेम क्रीडा में विभोर हैं। इसी लीला-रस के आस्वादन के लिये वे भिन्न स्वरूप में अनादिकाल से विराजमान हैं अन्यथा वे अभिन्न हैं। श्री राधापूर्ण शक्ति है और श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान।

राधा पूर्णशक्ति, कृष्ण पूर्णशक्तिमान ।

दुइवस्तु भेद नाहि शास्त्र-प्रमाण ॥

मृगमद, तार गन्ध—जँछे अविच्छेद ।

अग्नि-ज्वालाते जँछे नाहि कभु भेद ॥

^१ वही, ११४।८२ ।

^२ वही, ११४।१०६-८ ।

^३ चैतन्य चरितामृत, ११४।७८-७९ ।

राधाकृष्ण ऐसे सदा एक ही स्वरूप ।

लीलारस आस्वादिते धरे दुइरूप ॥^१

प्रेम का स्वरूप तथा राधा-कृष्ण की युगल उपासना—हम यह देख चुके हैं कि परम स्वतंत्र पुरुष श्रीकृष्ण राधा के वनीभूत हैं। हम यह भी देख चुके हैं कि मान्य-महाभाव-स्वरूपा श्री राधा में प्रेम का चरम विवास है। और इसीलिए श्रीकृष्ण उनके सर्वाधिक वनीभूत हैं भक्तों में जिनका ही प्रेम का विवास हाता है उतना ही अधिक कृष्ण उनके वनी में होते हैं। जगत के समस्त सुख-दुःख मान-अपमान स्वजन-परिजन सबका तिलाजलि देकर राधा तथा अन्य गायिका श्रीकृष्ण की सेवा में रत हैं, इसी लिये कृष्ण उनके चिर श्रुणा हैं व उमका प्रतिदान असंभव समझते हैं।^२ राधा के प्रेम से श्रीकृष्ण के माधुर्य का विकास हाता है। जब महाभाव स्वरूप श्री राधा उनके साथ रहती हैं तब माधुर्य का इतना अधिक प्रकाश होता है कि उससे मदन तक माहित हो जाता है।^३ इसीलिये कृष्णव आचार्यों ने राधा-कृष्ण-नत्व का ही सब तत्वाका सार माना है और उनके लिये राधाकृष्ण की युगल उपासना ही परम माध्य है। राधा-कृष्ण के इस प्रेम में, जो महाभाव की दशा है शरीर और आत्मा की अभिन्नता का ज्ञान उत्पन्न हाता है शान्त एक रूप हो जाते हैं। इस प्रेम की दशा में पुरुष-स्त्री के भेद का ज्ञान नहीं रह जाता।

चैतन्य संप्रदाय में श्री गौरांग (महाप्रभु चैतन्य)—

श्री गौरांग के रूप में राधा-कृष्ण का मिलन—मान्य चरितामृत (१।४। ४९५०) में श्री गौरांग-नत्व पर प्रकाश डाला गया है। जगमें कहा गया है कि राधा-कृष्ण एक ही आत्मा हैं लेकिन लीला रस के आस्वादन के लिये अनानि काल से दा पयक स्वरूप धारण कर विलास कर रहे हैं। श्रीकृष्ण और श्री राधा के मेल में उत्पन्न रूप ही श्री गौरांग (महाप्रभु चैतन्य) का स्वरूप है। भाव का आस्वादन करने के लिए दोनों एक ही रूप में आविर्भूत हुए।

राधाकृष्ण एक आत्मा दुइबहु परि । अन्योपे मिलते रस आस्वादन करि ॥

सेइ दुइ एक रूपे चतुर्थ गोमायि । भाव आस्वादिते दंष्टि हला एक ठाई ॥

^१ वही, १।४।८६८५।

^२ वही २।८।३००२१ तथा श्रीमद्भागवत, १०।३२।१२

^३ गोविन्दलक्षणभूत ८।१२

इस प्रकार से इस गौरांग न्यम्प में ही रगराज श्री कृष्ण महाभावमयी श्री राधा के नाय नित्य रमण करते हैं और अपने धारीर-मन को राधाभाव में डालकर अपने माधुर्य रग का स्वयं ही आस्वादन करते हैं। श्री राधाभाव द्युति युक्त नन्दनन्दन श्री कृष्ण ही नवद्वीप के गौर हन्ति हैं। वे अन्त-कृष्ण और वहिर्गौर थे।^१ ब्रजलीला की अपूर्णता को पूर्ण करने के लिये ही भगवान् श्री कृष्ण ने श्री गौरांग रूप में नवद्वीप लीला प्रकट की अथवा श्री राधा ने अपने प्राणप्रिय ध्याम मुन्दर को अनृप्त देवकर ब्रजलीला के बाद इस वर्तमान कलि में उन्हें गौर मुन्दर रूप में मण्डित कर दिया। नवद्वीप लीला को परिनिष्ट लीला भी कहा जाता है।

नवद्वीप लीला—नवद्वीप लीला के रहस्य का उद्घाटन बलराम दास की निम्नलिखित पक्तियों में हो जाता है।

कँछन तुया प्रेम, कँछन मधुरिमा कँछन मुपे तुहुं भोर ।

ए तिन वांक्षित धन, ब्रजे नहिल पूरण, कि कहय ना पाइया ओर ॥

भावि या देखिनु मने, तोहारि स्वरूप विने, ए सुप आस्वाद कनु नय ।

तुया भाव-कान्ति धरि, तुया प्रेम गुरु करि, नजीया ते करब उदय ॥

ब्रजलीला में विभिन्न रस-वैचित्र्य का आस्वादन करने पर भी श्री कृष्ण की तीन वामनाएँ अपूर्ण रह गईं। प्रथम, राधा की प्रेम-महिमा कौसी है? द्वितीय राधा-भोग्य उनका स्वयं का माधुर्य कैसा है? तथा तृतीय उस माधुर्य के आस्वादन से राधा को जो सुख मिलता है उनकी अनुभूति कौसी है? इसके बाद कृष्ण कहते हैं कि “मन में विचार कर देखा कि ये तीनों वामनाएँ विना तुम्हारी (राधा) भावकान्ति ग्रहण किए पूर्ण नहीं हो सकतीं” और इसके लिये ही वे नदिया (नवद्वीप) में अवतरित होंगे। ब्रजलीला में उनका केवल “विषयत्व” ही प्रधान रहा।^२ सादनमहाभाव का आश्रय हुए विना स्व-माधुर्य का आस्वादन संभव नहीं था इसलिए राधा-भावद्युति-सुवलित हो इसलिए श्री कृष्ण ने श्री गौरांग का रूप ग्रहण किया। और इस प्रकार से नवद्वीप-लीला में ब्रजलीला की उनकी अपूर्ण वासना पूर्ण हुई।

गौर-लीला का उद्देश्य—गौर लीला के तीन प्रधान कारणों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इन प्रधान कारणों के अलावा कुछ गौण कारण भी

^१ तत्वसन्दर्भ, ६५ ।

^२ चैतन्य चरितामृत, १।४।११४

नवद्वीप-लीला के मूल में थे। और यह गौण कारण नाम और प्रेम का प्रचार था। जन-साधारण के लिये श्री गौरांग ने नाम-भकीतन का आदेश रखा।^१ मायावद्ध जीव के आधार के लिये 'प्रेम भक्ति' का उन्होंने सुलभ कराया।^२

श्रीकृष्ण और गौरांग में अभिन्नत्व—गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में श्रीकृष्ण और गौरांग अभिन्न ह। ये दोनों एक ही अवतार के दो भाव ह। ब्रज लीला और नवद्वीप-लीला मूल में एक ही लीला प्रवाह ह। ब्रजलीला की अपूर्णता के ही कारण नवद्वीप लीला प्रकट हुई।

चैतन्य संप्रदाय में गोपी—

गोपी का स्वरूप—चैतन्य चरितामृत (२।८।१६९) में कहा गया ह कि राधा का स्वरूप कृष्णगेम-कल्पिता ह और सखिया उसका पत्र-गुण ह। गोपिया, श्री राधा का कायव्यहंरूपा है। इत्यादिना गकित हो असख्य गोपियों के रूप में प्रकट हानी ह, क्योंकि अनेक स्त्रियां क बिना कान्ता रस वचित्री का आस्वादन नहा हो पाता।^३ षगेन्द्रनाथ मित्र ने गापी गण की व्युत्पत्ति 'गुप' धातु से बतलाई ह। उन्होंने बतलाया है कि गुप का अर्थ रक्षा करता ह, अर्थात् गापिया महाभाव को रक्षा करनेवाणी स्त्रिया है।^४ गोपिया, राधा की प्राणप्रिय सखिया ह जा परस्पर कुछ गोपन नहीं रखतीं। इनके द्वारा ही राधा-कृष्ण लीला की पुष्टि हानी है।

सखी बिनु एइ लीलार पुष्टि नाहि ह्य।

सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वाद्य ॥^५

गोपी प्रेम—कृष्ण सदा ही गोपिया का एवमान इष्ट ह। उन्हें मुख पहुँचाना ही उनका काम्य है। अपने मुख की उन्हें बिल्कुल परवा नहीं।^६ उनका बनाव शृंगार इसलिए है कि श्री कृष्ण का उगम मुख मिलता ह। गापिया की कान्ता भावमयी लीला काम त्रीडा नहीं है। काम और प्रेम

^१ चैतन्य चरितामृत, १।३।१७

^२ वही, १।३।२०-२१

^३ वही १।४।६८-६९।

^४ वैष्णव रस साहित्य, प० १३-२२।

^५ चैतन्य चरितामृत २।८।१६४।

^६ वही, १।४।१४९।

में अन्तर है। 'काम में मुग्ध-वामना की गति 'स्व' की ओर होती है और प्रेम में 'पर' की ओर अर्थात् प्रीति के विषय की ओर। काम में निज इन्द्रिय-तृप्ति ही ध्येय रहता है लेकिन प्रेम, त्वादिनी शक्ति की वृत्ति है अनिश्चय उमाहा ध्येय विषय पद के प्रेम की ओर अर्थात् त्वादिन्द्रिय तृप्ति की ओर रहता है।

आत्मेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा, तारे व्रत्ति 'काम'।

कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा, घरे 'प्रेम' नाम।^१

काम, माया-जनित वानना है, प्रेम में माया का रोग भी नहीं। भक्त चाहता है भगवान् का मुग्ध और भगवान् चाहते हैं भक्तों का मुग्ध।^२ इस प्रकार की प्रीति में विषय (अर्थात् पर) के मुग्ध के लिये जो वानना है वही 'प्रेम' है। प्रेम और काम में मूर्ख और अन्यकार तथा मोने और लोहे जैसा अन्तर है।^३

गोपी प्रेम की विशुद्धता—गोपी प्रेम विशुद्ध है। उनकी सेवा निष्काम है। उनमें स्वमुग्ध की छाया तक नहीं है। उनका रूप निर्मल और विमुद्ध है। गोपियों का विशुद्ध प्रेम, स्वरूप शक्ति का स्वाभाविक परम है। इन प्रेम की विशुद्धता की अनुभूति भक्त उद्धव को हुई थी। उन्होंने गोपी-चरग-रज पाने की आशा में वे वन्दावन की लतागुलम होकर जन्म लेने की कामना करते हैं।^४ इसीलिए श्री शुकदेव ने रामलीला-वर्णन के अन्त में कहा है कि इस लीला का कीर्तन या श्रद्धापूर्वक श्रवण करने वाले को परा भक्ति की प्राप्ति होती है और हृदयों में काम विनष्ट होता है।^५

गोपियों के प्रकार—गोपियों के दो प्रकार बताये गये हैं। नित्यमिद्धा और साधन सिद्धा। नित्यमिद्धा वे हैं जो अनादिकाल से वान्ता-भाव से ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की सेवा करती आ रही हैं। ये स्वरूपतः त्वादिनी शक्ति हैं। साधनमिद्धा वे हैं जिन्होंने साधन द्वारा मिद्धि प्राप्त कर ब्रज में गोपीत्व लाभ किया है और नित्यसिद्ध-परिकरो के साथ श्रीकृष्ण की सेवा कर रही हैं। ये स्वरूपतः जीवतत्व हैं। जीव, नित्यसिद्ध भी हो सकते हैं।

^१ चैतन्य चरितामृत, १।४।१४१।

^२ मद्भक्ताना विनोदार्यं करोमि विविधा क्रिया —पद्मपुराण।

^३ चैतन्य चरितामृत, १।४।१४७, १४०।

^४ श्री मद्भागवत, १०।४७।६१।

^५ वही, १०।३३।३९।

सेवा भेद से दो प्रकार की गोपियाँ—मेवा के प्रकार भेद से गापिया के दो भाग किये जाने हैं सखी तथा मजरी । सखी, वे हैं जो राधा के अनुरूप अगदानादि द्वारा कृष्ण का प्रसन्न करती हैं जन्मे रत्निका विगाखा आदि । सखिया, नित्यसिद्धा स्वरूप शक्ति २ । ये स्वातन्त्र्यमयी हैं । लीला विस्तार ही सखित्व का विशेष लक्षण है । मजरी वे हैं जो शरीररत्न द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा न करके राधागाविन्द के मित्र और सेवा आनुकूल्य ही अपना मुख्य कर्तव्य मानती हैं । रूपमजरी अनगमजरी आदि इस काटि में हैं । ये भा स्वरूप शक्तिया ही हैं । ये राधा की विक्रिया या अतरंग सेवा की अधिकारिणी हैं । मजरिया में भी नित्यमिद्ध जीव हैं । साधन सिद्धा सभी गोपिया, मजरिया हैं । वस यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि श्री राधा ही ब्रज की मधुरा रति का मूळ उत्स है तथा राधा के बिना कृष्ण का तपति नहीं ।

चैतन्य संप्रदाय में जीव—

जीव भगवान की शक्ति—श्री कृष्ण की जीव शक्ति में सब जीवों की उत्पत्ति हुई है । भगवान् के दो अंश हैं—स्वांग और विभिन्नांग,^१ लीला चतार-गुणावनारादि भगवान के स्वांग और जीव विभिन्नांग हैं । अखण्ड चतन्य स्वरूप श्री कृष्ण में अनन्त परमाणु रूप जीव समूह प्रकट हुये जन्म अग्नि से स्फुलिंग वण निकलते हैं ।^२ ईश्वर और जीव का संबन्ध उसी प्रकार का है जैसे सूर्य और उसकी किरणें । सूर्य का अंग होते हुये भी किरणें सूर्य मण्डल से बाहर ही रहती हैं । उगी प्रकार ईश्वर का अंग हात हुए भी जीव, ईश्वर के स्वरूप से बाहर रहता है । जीव सभी भा कृष्ण स्वरूप में तदाकार नहीं होता, मुक्तावस्था में भी नहीं ।^३ इमीलिय जाव का विभिन्नांग विशेष रूप से भिन्न अंग कहा गया है ।

ब्रह्म-जीव में भेदाभेद संबन्ध—ब्रह्म और जीव में निर-अभेद और नियम-संबन्ध है । यह संबन्ध उगी प्रकार का है जन्म अग्नि और उष्णता तथा सूर्य और सूर्याशु का संबन्ध है । ब्रह्म और जीव का अभेद उनका चिद्धम को लेकर है और भेद, उनके स्वरूप-स्वभाव को लेकर । स्वरूप में ब्रह्म और

^१ परमात्म सदभ, ४५ तथा चतुर्थ चरितामृत, २।२।५ ७ ।

^२ चतुर्थ चरितामृत १।७।१११ ।

^३ वदान्त सूत्र २।२।३-४ ।

जीव दोनों ही चिद् है। इसलिए दोनों अभेद है। लेकिन चिद् स्वरूप होने पर भी दोनों में भेद इसलिये हो जाता है कि ब्रह्म विभु-चित् और जीव अणु-चित् है। ब्रह्म सर्वज्ञ, शक्तिमान, मण्डिकर्ता, मायातीत, मायापति तथा परमानन्दधन विग्रह है और जीव अल्पज्ञ, नियन्त्रित, माया द्वारा प्रभावित संचालित, वद्ध और अशेष दुःख का आकर है। ब्रह्म में ज्ञान, स्वप्रकाश, परप्रकाश आदि गुणों की पराकाष्ठा है वही जीव में ये सभी गुण उसकी अत्यन्त अल्पशक्ति के कारण अणु रूप में ही हैं। इसीलिये जीव का कर्तृत्व ईश्वर द्वारा प्रवर्तित है।

जीव-तटस्था शक्ति—जीव को तटस्था शक्ति इसलिये कहते हैं कि उसके एक ओर चिज्जगत् है और दूसरी ओर माया रचित प्रपञ्चमय संसार। चिच्छक्ति असीम है लेकिन माया शक्ति भी प्रबल है। जीव दोनों ओर जा सकता है। भगवदुन्मुख होने पर जीव भगवद्गक्ति में दृढ होता है और माया की ओर आकृष्ट होने पर उसी के जाल में जकड़ जाता है। इस प्रकार से वह तटस्थ स्वभाव का है। वैसे जीव चिद्-अणु है और उसमें माया का लेश भी नहीं है, लेकिन उसमें चिद्-शक्ति अत्यन्त दुर्बल है, इसीलिये वह माया से प्रभावित होता है।

जीव के प्रकार—जीव दो प्रकार के हैं (१) नित्य मुक्त जीव (२) वद्ध-जीव।^१ नित्यमुक्त चिज्जगत् में विचरण करता है और वद्ध-जीव इस जड जगत् में आवद्ध है।

नित्यमुक्त जीव—नित्यमुक्त जीव अपने चिन्मय अणु-स्वरूप में रहता है। जड वस्तुओं से वह असम्पृक्त रहता है। ये नित्यमुक्त जीव, कृष्णचरण की ओर उन्मुख रहते हैं और श्रीकृष्ण की अन्तरगा स्वरूप-शक्ति के विलास की कृपा से चिरन्तन काल से नित्य भगवत्-परिकर-स्वरूप बने रहते हैं।^२ इन नित्य मुक्त जीवों के दो भेद हैं—ऐश्वर्यगत नित्यमुक्त और माधुर्यगत नित्यमुक्त। प्रथम परम व्योमपति के पार्षद हैं और दूसरे गोलोक—वृन्दावननाथ के पार्षद।

भगवत् कृपा से भक्ति-प्राप्ति—भगवत्-प्रीति वास्तव में भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिनी-स्वरूप शक्ति की सर्वानन्दातिशायिनी वृत्ति है।^३ भगवान्

^१ चैतन्य चरितामृत, २।२२।८।

^२ वही, २।२२।९ तथा परमात्म सदर्भ, ४५।

^३ प्रीतिसदर्भ, ६५।

भक्त पर अनुग्रह कर इसे भक्त को दान करते हैं जिससे भक्त हृदय उन्मासित हो उठता है। यह प्रीति भक्त में भगवत्-सेवा की कामना जगाती है तथा भगवत् सेवा के उपयागो बनाकर पापदत्त प्रदान करती है। नित्यमुक्त जीव इसे ही पाकर अनादि काल से पापद रूप से श्रीकृष्ण की सेवा करता आ रहा है। यह प्रीति भक्त तथा भगवान् दाना के लिए परमास्वाद्य है।

बद्ध जीव—बद्ध जीव भगवान् का भूते हुये, कृष्ण वहिमुक्त हो चिरन्तन काल से मायाबद्ध है। भगवान् का भूलने का अर्थ अनादि काल से भगवत्-स्मृति का अभाव है। इसी कारण वे माया में जकड़े हुए सत्तार में निबद्ध अपने को अपने कर्मों का भोक्ता मानते हुए जन्म-मरण के चक्कर में पड़े हुए हैं। जब जीव कृष्ण दाम्य विस्मृत होता है तब उसका सत्तारी जावन आरम्भ होना है और उसमें राग-द्वेष, सुख-दुःख, मिथ्याभिमान का उदय होना है। बद्ध जीव दो प्रकार के होते हैं—उदित विवेक और अनुदित विवेक। उदित विवेक बद्ध जीव बद्ध मुक्त-जीव भी बहुरंगते हैं क्योंकि सत्तार में रहते हुये भी वे निर्लिप्त रहकर भगवत् आगमना में स्थान रहते हैं और अपनी साधना के बल से मुक्त हो जाते हैं। साधना भेद से इनके तीन प्रकार हैं ऐश्वर्यगत माधुयगत और ब्रह्मज्योतिगत। ऐश्वर्य प्रिय माधव परव्योमनाय के नित्य पापदा के साथ सालोक्य लाभ करते हैं और माधुयप्रिय साधक माक्ष लाभ कर नित्यवल्गावनादि धाम में सेवा-भुग्न भाग करते हैं। अभेद के साधन में लगे हुए माधव माक्ष प्राप्त कर ब्रह्म मायुज्य रूप में अपना अस्तित्व मिटा देते हैं। पशु-पक्षी आदि अनुदित विवेक बद्ध-जीव की श्रेणी में आते हैं जिनमें किसी प्रकार की परमाद्य चैष्टा नहीं रहती।

जीव की माया निवृत्ति के उपाय—हम यह देख चुके हैं कि भगवत्-विस्मृति ही बंधन का कारण है। यम जीव की मूल सत्ता विमय है और माया उसमें आगन्तुक है स्वरूपगत नहीं। इस विस्मृति को दूर करने के लिये भक्ति-श्रियों में बारबार कहा गया है—सबदा विष्णु का स्मरण करा कभी उनका विस्मरण न करना, जितने भी विधि निषेध के प्रकार हैं वे सभी इसी विधि निषेधा के ही विरुद्ध हैं।^१ एकिन यह इतना महत्त्व नहीं क्योंकि माया भी ईश्वर की ही शक्ति है अतएव अत्यन्त प्रबल है। उससे छुटकारा पाने के लिये भगवान् का गणनापन्न होने का सिवाय दूसरा कोई उपाय

^१ पान्मोक्षर सण्ड, ७२।१००।

से ही मुलभ हो सकती है। किसी प्रकार ही चेष्टा या कौशल इन क्षेत्र में काम नहीं देते। भगवान् की यरणागति, नरक विध्वान, मन्त्री लगन से सेवा अगर ही तो भगवान् भक्त को अपनाकर समतावज उक्त भक्ति प्रदान करते हैं।

प्रेम पंचम पुरुषार्थ—गौडीय वैष्णवों ने श्रीकृष्ण भक्ति या प्रेम-सेवा को पंचम पुरुषार्थ माना है। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में यह उत्तमा शुद्धा भक्ति के नाम से वर्णित है। उगका लक्षण इस प्रकार है 'श्रीकृष्ण की प्रीति के अनुकूल स्मरण कीर्तनादि द्वारा उनके नाम-गुण-लीलादि का अनुशीलन या भजन ही भक्ति कहलाती है। आनुकूलप्रभय यह अनुशीलन अन्वाभिलाषा-रूपा होने पर अर्थात् श्रीकृष्ण की सेवा के अनिश्चित अन्य वस्तुओं के प्रति स्मृहायून्य, माय ही जीव-रह्य का ऐक्य-विषयक शुद्ध ज्ञान और सकाम कर्मादि द्वारा अनावृत, अमिश्रित रहने पर यह उत्तमा या शुद्धा भक्ति कहलाती है।^१ गोपाल तापनी श्रुति में भी भगवान् के भजन को ही भक्ति कहा गया है।^२ श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ दिग्द भक्ति ही शुद्धा भक्ति है। शुद्ध भक्त स्वर्गादि सुगु भोग, पचविव मुक्ति तथा अणिमादि सिद्धि की स्पृहा नहीं करते। मनार में निर्लिप्त नर्वदा श्री कृष्ण की सेवा से जो प्रेमानन्द उन्हें होना है वे उमी में विभोर रहते हैं।

प्रेम का क्रमिक विकास—'भक्ति रसामृतसिन्धु' (१।४।११) तथा चैतन्य चरितामृत' (२।२३) में भगवत्प्रेम के विक्रम क्रम पर प्रकाश डाला गया है। इसमें शवने पहले 'श्रद्धा' का नाम दिया गया है। यह श्रद्धा पूर्वजन्म की सुकृति के फल-स्वरूप साम्य-वर्चा श्रवण से उत्पन्न होती है। श्रद्धा जिनमें होती है उने गुरु, शास्त्रवाक्य, तथा भगवत-लीलादि में दृढ तथा निश्चित विश्वास होता है। इन श्रद्धा के बिना जप, तप सभी व्यर्थ है। श्रद्धा के बिना भक्ति नहीं हो सकती। श्रद्धा, जीव को शान्तिमय आनन्द धाम की ओर ले जाती है।

साधुसग और भजन—भक्ति-लाभ का मुख्य उपाय साधुसग को कहा गया है। इस साधु-सग की बड़ी महिमा गाई गई है। चैतन्य चरितामृत (२।२।३३) में कहा गया है

^१ भक्तिरसामृत सिन्धु, १।१।११ तथा चैतन्य चरितामृत, २।१।१४८।

^२ पूर्वगोपाल तापनी, १५।

‘साधुसग साधुसग’ सवशास्त्रे कथ । लव भात्र साधुसगे सवसिद्धि ह्य ॥

सभी शास्त्रों में भक्ति प्राप्ति का उपाय ‘साधुसग’ कहा गया है लेकिन क्षणभर के श्चि भी साधुसग हा जाय तो सवमिद्धिहो जाती ह । श्रीमद्भागवत^१ में साधुसग के सवध में कहा गया ह कि ‘श्रीकृष्ण-महिमा क जानकार सद्भक्ता का सग करने पर उनके मुखसे हृतवण रसायन ‘हरिगुणकीर्तन’ श्रवण के प्रभाव से हृदय में श्रद्धा का उदय होना ह । साधु सग में रहने से भगवान् के काम रूप-गुणलीलादि के कीर्ता के श्रवण का सुयोग प्राप्त होता है । और इस कीर्तन की महिमा इसी बात से समनी जा सकनी है कि भगवान् ने स्वय कहा है ,

नाह तिष्ठामि चकुष्ठे, योगिनां हृदये न च ।
मदभक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद ॥

इस प्रकार से साधु का सगति और कीर्तन भजन करता हुआ भक्त, भक्ति की ओर अग्रसर हाता ह ।

निष्ठा, रचि, आसक्ति, रति और प्रेम—भक्ति क विकास क लिये चित्त की स्थिरता आवश्यक है और चित्त की यह स्थिरता तभी आती ह जब भक्ति अग में निष्ठा उत्पन्न हाती ह । श्रद्धापूर्वक साधु-सग तथा श्रवण-कीर्तनादि करने से मनुष्य के अन्ध दूर होते ह और वासनाओं से वह मुक्ति पाता है । इसी अवस्था में उसमें निष्ठा उत्पन्न हाती ह । निष्ठापूर्वक भक्ति-अग का अनुष्ठान करत रहने पर भगवान् गुण-लीलादि के श्रवण और कीर्तन में ‘रचि’ उत्पन्न होती ह । उनमें भक्त की अत्यन्त आनन्द आने लगता ह । रचि क माय श्रवण कीर्तनादि करते करत आसक्ति उत्पन्न हाती ह और तब उसे भक्ति-अग के अनुष्ठान के बिना चन नहीं आता । इस आसक्ति की प्रगाढता से श्रीकृष्ण में ‘रति’ हाती ह । कृष्णविषयक अभिलाषा द्वारा चित्त में स्निग्धता भरने वाला भक्ति विशेष ही ‘रति या भाव’ है । यह ह्लादिनी प्रधान शुद्ध सत्व की वृत्ति ह । यही प्रेम की पूर्णावस्था है । रति या भाव की धनीभूत अवस्था को ‘प्रेम’ कहते ह । प्रेम के उदय से कृष्ण अत्यन्त अपने हा जाते है और तब ‘भगवान मेरे ह की भावना उदय होती ह । यह भगवान् की कृपा से ही समभव हो पाता ह । इसमें भगवान् की साधुस-छटा ही विकीर्ण हाती रहता है, उनका ऐश्वर्य प्रदान स्वरूप ओझल हो जाता

^१ ३।२५।२४ ।

है। यहाँ यह याद रखना आवश्यक है कि कृष्ण प्रेम नित्य सिद्ध है, साध्य कभी नहीं।

नित्यसिद्ध कृष्ण प्रेम साध्य कभुनय।^१

भक्त का परम लक्ष्य प्रेम-सेवा द्वारा प्रेमास्पद का सुख-सम्पादन है।

भक्ति के तीन स्वरूप—ऊपर साधना का जो क्रम-विकास दिया गया है उसे ध्यान में रखते हुये रूप गोस्वामी ने भक्ति के तीन स्वरूप बतलाए हैं—साधन-भक्ति, भाव-भक्ति, प्रेम-भक्ति।^२ इन्द्रिय द्वारा अनुष्ठित अर्थात् श्रवण-कीर्तन द्वारा भक्ति की जो साधना की जाती है वह साधन-भक्ति है।^३ साधना द्वारा जब चित्त विमल हो जाता है और चित्त परिशुद्ध हो जाता है तो उसमें पहले भाव-भक्ति और फिर प्रेम-भक्ति का उदय होता है। वास्तव में भाव-भक्ति, प्रेम-भक्ति की पूर्वावस्था है। इस प्रकार से साधनावस्था की भक्ति साधन-भक्ति और सिद्धावस्था की भक्ति प्रेम-भक्ति है।

साधन-भक्ति के चौंसठ अंग—महाप्रभु चैतन्य ने साधन-भक्ति के चौंसठ अंगों के अनुष्ठान का उपदेश दिया है। 'चैतन्य चरितामृत' में "मध्यलीला" के बाईसवें अध्याय में साधन-भक्ति के चौंसठ अंग वर्णित हैं। इन चौंसठ अंगों में प्रथम दस अंग गुरुपदाश्रय आदि ग्रहणात्मक और द्वितीय दस अंग सेवानामापराध आदि निषेधात्मक हैं। ये बीस अंग भक्ति के द्वार कहे गये हैं। ये भक्ति की रक्षा करनेवाले और भक्ति की बाधाओं को दूर रखने के उपाय हैं। इनके बाद के चौवालीस अंग भक्ति की वृद्धि करने के साधन हैं। नवविधा भक्ति इन चौवालीस अंगों का सार कही गई है। नवविधा भक्ति के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, वन्दन, परिचर्या, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन हैं। साधना के चौंसठ अंगों में से साधु-संग, नामकीर्तन, भागवत-श्रवण, मथुरा-वास, और श्रद्धा के साथ श्री मूर्ति की सेवा विशेष रूप से महाप्रभु को मान्य है।^४ और साधन-अंगों में उन्होंने नाम-सकीर्तन को सर्वश्रेष्ठ माना है।^५

साधन-भक्ति के प्रकार—साधन भक्ति दो प्रकार की है वैधी और रागा-नुगा। वैधी भक्ति शास्त्र विधि को मान और शास्त्रशासन से भय करते हुए

^१ चैतन्य चरितामृत, २।२२।५३।

^२ भक्तिरसामृत सिन्धु, १।२।१।

^३ वही, १।२।२।

^४ चैतन्य चरितामृत, २।२२।७५

^५ वही, २।१५।१०८

चलती है। इसमें श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति नहीं होती। इसमें सबक-सेव्य भाव की प्रधानता रहती है। माधुय पान की अपेक्षा भगवान का ऐश्वर्य-पान ही प्रमुख होता है। भगवान् का पाप-गुण्य का फलदाता मानकर भक्त उनकी उपासना की आर उमुख होता है। अपने इस जन्म और परजन्म क दुःखों से छुटकारा पाना उसका काम्य होता है। इस प्रकार की भक्ति का आश्रय करने वाला के लिए चैतन्य चरितामृत (१।८।१८२ तथा १।३।१३) में कहा गया है "विधिमार्ये ना पाइइ ब्रजे कृष्णचन्द्र । वधी भक्ति में भवान का ऐश्वर्य ज्ञान प्रधान होता है इसलिए भक्त का ब्रजेन्द्र-नन्दन की सेवा नहीं प्राप्त होती। ब्रजभाव में माधुय की प्रधानता है। वधा भक्ति की साधना करने वाला भक्त सिद्धि अवस्था में गान्ध भाव का भक्त माना जाता है। इस प्रकार क भक्ता को वैकुण्ठ, कलासादि भगवद लाक प्राप्त होता है।^१ भक्ति वधी भक्ति का अनुष्ठान करत ऐश्वर्य पान अगर अन्तर्हित हो जाय और शुद्ध भक्तिमय श्रीकृष्ण-सेवा का भाव हृदय में जो ता समझना चाहिए कि भक्त के हृदय में रागानुगा भक्ति का उदय हुआ है।

रागात्मिका भक्ति — रागमयी भक्ति ही रागात्मिका भक्ति है। इस भक्ति में राग ही प्रधान है। कृष्ण के दग्गन से नद की आँवों में प्रेमाश्रु आ जाते हैं यथादा एक क्षण भी कृष्ण का आँखा की ओर नहीं हाने दना चाहती। प्रेमाविष्ट गोपिया कृष्ण को दग्ग आत्मविभोर हो जाती है। यह सब रागमयी भक्ति है। ब्रजवासिनी का इस पर एकान्त अधिकार है। इस भक्ति में प्रेमा स्पद श्रीकृष्ण को सुखी करना और उन्हें सुखी दग्ग क्षण-क्षण आनन्द रा भर उठना ही काम्य है। भक्त को अपने लिये कुछ भी नहीं चाहिए। कृष्ण-सेवा रत भक्त को नित नये आनन्द प्राप्त हात है। यह भक्ति श्रवण-वात्तनादि द्वारा नहीं प्राप्त हाती।

रागात्मिका भक्ति के दो प्रकार — रागात्मिका भक्ति दो प्रकार का है कामरूपा और सम्बन्धरूपा। सम्बन्ध रूपा भक्ति में भक्त श्रीकृष्ण क साथ एक सबध स्थापित करता है। श्रीकृष्ण के प्रति पुत्र-मत्ता का भाव सबध रूपा है। 'मैं श्रीकृष्ण का पिता, माता या सगा हूँ' इस प्रकार का अभिमान ही सम्बन्धरूपा भक्ति है। कामरूपा भक्ति ब्रजगापिया का कृष्ण क प्रति प्रेम है। गोपिया का प्रेम अपने सुख के लिए नहीं है अतएव यह रागमय विगुद्ध प्रेम है। काम" यहाँ इसी अर्थ में है। गापिया का प्रेम निष्काम है जिसमें केवल प्रिय

^१ चतुर्थ चरितामृत, १।२।१५

को मुग्ध पहुँचाना ही एकमात्र काम्य है लेकिन यह प्रेम काम क्रीडा के अनु-
रूप है अतएव "काम" के नाम से अभिहित है। इसमें इन्द्रिय-मुग्ध की इच्छा
नहीं। इसमें प्राकृत काम की गन्ध तक नहीं है।

रागानुगा भक्ति :—ब्रजवासी भक्तों की प्रेम-भाव के अनुकण्ण में की गई
आराधना, रागानुगा भक्ति कहलाती है। इस भक्ति में भक्त के हृदय में
ब्रजवासियों के स्वातन्त्र्यमयी रागात्मिका भक्ति के प्रति प्रगाढ प्रेम या लोभ
उत्पन्न होता है और उसका वह अनुसरण करता है। लेकिन रागात्मिका भक्ति
का अधिकार केवल ब्रजवासियों जैसे नन्द, यगोदा, गोपियाँ, राधा, सुन्दल आदि
को है क्योंकि ब्रज का यह परिकर ढल श्रीकृष्ण की स्वरूप-शक्ति है। जिन
साधनों ने ये श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं वह जीव के लिए संभव नहीं क्योंकि
वह स्वरूप शक्ति नहीं है। जीव, स्वरूपतः श्रीकृष्ण का दास है।^१ अतएव
रागानुगा भक्ति, रागात्मिका भक्ति का अनुकरण मात्र है।^२ इसमें कृष्ण की
सेवा के अतिरिक्त अन्य कामना नहीं रहती।

रागानुगा भक्ति रागात्मिका का साधन :—रागानुगा भक्ति, रागात्मिका
भक्ति का साधन है। रागानुगा भक्ति ही परिपक्व अवस्था में रागात्मिका भक्ति
कहलाती है। रागात्मिका भक्ति के विषय ब्रजविहारी श्रीकृष्ण हैं और आश्रय
ब्रजवासी भक्त हैं। रागानुगा भक्ति के विषय गुरुत्त्व में ब्रजवासी भक्त हैं और
आश्रय उनके अनुगत रागानुगा भक्त हैं। लेकिन रागानुगा भक्ति परिपुष्ट होकर
रागात्मिका में पर्यवसित होती है और रागात्मिका भक्ति के विषयाश्रय रूप में
आत्म प्रकाश करती है।

रागानुगा भक्ति के भेद उपभेद :—रागानुगा भक्ति के भी दो भेद हैं।
सम्बन्धानुगा और कामानुगा। कामानुगा भक्ति के भी दो भेद हैं। सम्भोगे-
च्छामयी और तद्भावेच्छामयी। जो द्वारका की राजमहिषियों के भावानुगत
हैं उनकी भक्ति सम्भोगेच्छामयी है और जो लोक-वेदादि धर्म परित्याग करने
वाली, निष्काम प्रेममयी गोपियों का अनुसरण करते हैं उनकी भक्ति तद्भावे
च्छामयी है। सम्भोगेच्छामयी भक्ति में स्व-सुख की इच्छा, महिम-ज्ञान,
लोकधर्म की अपेक्षा आदि भक्ति-अवरोधक भाव हैं। दूसरी में समस्त लौकिक,
पारलौकिक सुखों के त्याग की भावना है।

१ "कृष्णेन नित्यदास जीव"—चैतन्य चरितामृत, २।२२।१७।

"जीवेर स्वरूप हय-कृष्णेन नित्यदास", वही, २।२०।१०।१।

२ भक्तिरत्नामृतसिन्धु, १।२।२७०।

रागानुगा के साधन दो प्रकार — रागानुगा के साधन दो प्रकार के हैं बाह्य या देह साधन तथा अन्तर या मानसिक साधन । बाह्य या देह-साधन में नव विधा भक्ति (या चौनठ प्रकार की साधना भक्ति) का आश्रय लेना है और अन्तर या मानसिक साधन में अपने भावानुसार ब्रज-परिचर की भवा का चिन्तन करना ही मानसिक सेवा है । कहने का तात्पर्य यह है कि जन्म योग्या के वात्सल्य प्रेम का ध्यान कर वात्सल्य रस का आस्वादन सम्भव है उन्नी प्रकार राधा-कृष्ण की प्रेमलीला की कल्पना से ध्यान में श्री राधा कृष्ण के मिलन और सेवा-परिचर्या के भाव से श्रीकृष्णलीला की रस माधुरी का पूरा आस्वादन किया जा सकता है । राग भाग में लीला-स्मरण ही मुख्य साधनाग है यह बाह्य साधन श्रवण-कीर्तनादि से परिपुष्ट होता है । साधना की पूरा परिणति में लीला-स्मरण ही मुख्य रूप से अनुष्ठित होता है ।

मधुर भाव की सेवा श्रेष्ठतम — रागभाग की उपासना मधुर भाव की ही उपामना है । मधुर भाव ही सर्वोत्तम भाव है और ब्रज गोपियाँ इसकी आदर्श स्वरूपा हैं । गायीभाव से लीला-स्मरण के अतिरिक्त युगलविशार की निकुञ्ज सेवा की प्राप्ति नहीं हो सकती । श्री राधा-कृष्ण की प्रेम-सेवा प्राप्ति ही जीव का साध्य और उनका मधुर लीला-स्मरण ही साधन है । दाम्य सग्य वात्सल्य और मधुर भावा में मधुर भाव की सेवा और उपासना का ही गौडीय कृष्णवा ने साध्य गिरोमणि माना है । इसका कारण यह है कि दाम्य की अपेक्षा सख्य, सख्य की अपेक्षा वात्सल्य और वात्सल्य की अपेक्षा मधुर में धनिष्ठाधिक्य और स्वादाधिक्य हाता है ।

बघी और रागानुगा में अन्तर — बघी और रागानुगा में जहाँ तक बाह्य अनुष्ठाना का प्रश्न है कोई अन्तर नहीं । दोनों में ही श्रवण-कीर्तनादि की उपयोगिता स्वीकार की गई है । अगर अन्तर है तो केवल साधक के भाव में । विधि-भाग का भक्त एकात्मता ब्रत करता है नरक-गति की मुक्ति के लिये और रागभाग का भक्त एकात्मता ब्रत करता है क्योंकि उससे श्रीहरि अत्यन्त प्रसन्न होता है । दोनों ही एकात्मता ब्रत करते हैं पर दोनों के भाव में अन्तर है । कहा गया है कि जबतक भक्त रागमया भक्ति का प्रकृत अधिकारी नहीं हो जाता तबतक उसे बघी भक्ति का अनुष्ठान करते रहना चाहिये ।

साधन भक्ति का सार कृष्ण स्मृति—साधन भक्ति में बहुत से विधि निषेधा का अनुष्ठान है लेकिन सब विधिया का सार श्रीकृष्ण का स्मरण^१ है । सब

^१ भक्तिरसामतसिधु १।२।८ ।

समय कृष्ण का स्मरण, उनकी स्मृति को हृदय में जगाये रखना, यही भजन का मूल रहस्य है। सर्वदा उनके स्मरण से माधक की ममस्त वृत्तियाँ भगवान् को ही समर्पित हो जाती हैं। श्रीकृष्ण-स्मृति ही साधन भक्ति का प्राण है।

भाव-भक्ति—साधन-भक्ति ही क्रमशः निष्ठा, रुचि लाभ करने हुये परिष्कृत दशाँ में भगवत्-कृपा से भाव या रति की अवस्था में पहुँचती है। साधन-भक्ति की यह उत्कर्ष-अवस्था भाव-भक्ति कहलाती है।

भाव-भक्ति का स्वरूप—ऊषाकाल में अरुणोदय के समय प्रथम रश्मि की अल्पस्फुरित आभा के समान भाव ही प्रेम का प्रथम प्रकाश है। धीरे-धीरे भाव ही प्रेम में परिणत होता है। भगवत्-प्राप्ति, आनुकूल्य और मोहादूर्यभिलाष द्वारा चित्त की आर्द्रता या स्निग्धता संपादन ही भाव भक्ति है।^१

भगवत्-कृपा से भाव-उत्पत्ति—भावोत्पत्ति के कारण-रूप साधन के बिना ही सहसा जिस भाव का उदय होता है उसे कृष्ण या तद्भक्त का प्रसाद-जनित भाव कहते हैं। थोड़े से साधन के बाद भी यदि भावोद्गम होता है तो उसे भी कृपाजनित ही मानना होगा। कृष्ण-प्रसाद से भाव तीन प्रकार के माने गये हैं: वाचिक, दर्शनदानज और हार्द।^२

भाव के पाँच प्रकार—भक्तों के भेद से भाव के पाँच प्रकार कहे गये हैं: ज्ञान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कान्ता। भक्त जब “भाववलम्बन” द्वारा वैधी मार्ग का अनुसरण करता है तब क्रमशः उनके हृदय में अनुभूति जगती है कि भगवान् प्रकृत ही मेरे प्रभु, सखा, पुत्र अथवा प्रियतम है। इसके बाद उसके भावानुसार भगवान् उसके भाव के विषय बन जाते हैं। इस अवस्था में भगवान् उसके और वह भगवान् का प्रिय बन बैठता है। और अन्त में अपने सभी विहिताविहित कर्म, ज्ञान आदि विषयों को तिलाजलि देकर भगवान् के श्री चरणों में अनन्य निष्ठा से आत्मसमर्पण को ही भगवान्-प्राप्ति का एकमात्र उपाय समझता है और क्रमशः प्रेम भक्ति का अधिकारी होता है।

राग मार्ग का भक्त—रागमार्ग का भक्त भगवान् के माधुर्य-सागर में निमग्न रहकर प्रेमरसास्वादन करता रहता है। इस सुख की तुलना में वह मोक्ष को तृणवत् समझता है उसका मन पल भर के लिये भी विषयातर नहीं होता।

^१ भक्तिरसामृत सिन्धु, १।३।२।

^२ वही, १।३।१६।

प्रेम भक्ति का स्वरूप—भगवन्-कृपा से प्रेम भक्ति का उदय होता है इस विशुद्ध भक्ति को पाने का दूसरा कोई उपाय नहीं। भक्तिरसामृत सिंधु में भक्ति की जो व्याख्या है वह इस प्रकार है, 'जिस भावभक्ति की प्रथम दशा से ही हृदय अत्यन्त आद्र और स्निग्ध हो जाता है, परमानन्द की प्राप्ति हाती है और श्रीकृष्ण में गाढ स्नेह उत्पन्न होता है—इसी भाव को पंडित प्रेम कहते हैं'।^१ चैतन्य चरितामृत (२।९।१५१) में कहा गया है कि साधन भक्ति से रति का उदय होना है और रति की प्रगाढावस्था ही प्रेम है। नारद पाचरात्र में भी यही कहा गया है कि 'जिस भावभक्ति में देह-बोह आदि अन्य विषयो की ममता-परित्याग से केवल श्री विष्णु विषय में ममता प्रयुक्त होती है उसे भीष्म प्रह्लाद, उदधव, नारद आदि भक्त प्रवर प्रेम कहते हैं।

प्रेम भक्ति की परिणति महाभाव—प्रेम भक्ति का चरम लक्ष्य परम आकांक्षा "श्रीकृष्ण प्रेम-सम्पादन" है। अपनी प्रगाढता के क्रमानुसार यह भिन्न भिन्न नाम ग्रहण करता है। इक्षुरस के समान प्रेम भी क्रम-गं गाढ हाते हुये उत्तरोत्तर स्नेह मान, प्रणय, राग अनुराग, भाव और अन्त में महाभाव में परिणत होकर चरम उत्कृष्ट प्राप्त करता है।^२

स्नेह और उसके प्रकार—प्रेम की क्रमिक गाम्ता की प्रथम अवस्था 'स्नेह' है। चित्त की द्रवीभूतता ही स्नेह का लक्षण है। जब चित्त स्नेह से द्रवीभूत होता है तब दर्शन श्रवण या स्मरण से आंसू निकलने लगते हैं। तब प्रिय के दर्शन में तृप्ति नहीं होती पलभर का विरह भी अमह्य हो उठता है। घृत स्नेह और मधुस्नेह ये दो स्नेह के भेद हैं। तुम मेरे हा इस प्रकार का मदीयतामय स्नेह मधु स्नेह है जिस राधा का स्नेह। मैं तुम्हारी हूँ' इस प्रकार का तदीयतामय स्नेह घृतस्नेह है जैसे चन्द्रावली का स्नेह। मधुस्नेह का माधुय स्व प्रकाशित है और घृतस्नेह भावनान्तर के संयोग से प्रकाशित है। तदीयतामय घृतस्नेह में सभ्रम या गौरव जान रहना है।

मान और उसका स्वरूप—प्रेम की गाढतर अवस्था मान है। इसमें प्रेम की गति वक्रता का भाव लिए हुए रहती है। इस अवस्था की विशेषता हृदयगत भाव-संगापन है। इसके द्वारा अभिनव रस माधुय का आस्वादन होता है। कारण-अकारण ही मान का उदय होता है। मान की दशा में बाह्य उपासीता

^१ भक्तिरसामृत, १।४।४१।

^२ चैतन्यचरितामृत २।९।१५२ १५३ तथा उज्ज्वल-नीलमणि १।४।५९ ६१।

रहती है लेकिन हृदय में अनुराग तिल भर भी कम नहीं होता। मान जब गौरव रहित होकर विश्राम्भ भाव धारण करता है तब प्रिय के गाय अभिन्नता स्थापित होती है, यह प्रणयावस्था का परिचायक है।

मान और प्रणय का संघ -साधारण स्नेह ने मान उत्पन्न होता है और वह मान ही प्रणय में परिणत हो जाता है। और फिर स्नेह ने प्रणय और प्रणय ने मान की परिणति होती है। इस प्रकार मान और प्रणय में कार्य-कारण संबन्ध है। श्रीकृष्ण में गौरव ज्ञान न रहने पर विश्राम्भात्मक प्रणय ही राधिका आदि गोपिकाओं के मान का आधार है। राधा के मान में सकोच या गौरव बुद्धि का लेश भी नहीं रहता। मानिनी राधा के चरण छूकर भी कृष्ण उनका मान-भजन नहीं कर पाते हैं। श्रीकृष्ण-मुग्ध-वाग्मता ने ही राधा के प्रणय-रोप या मान की उत्पत्ति होती है। जिस पर पूर्ण अधिकार है, जो विलकुल अपना है उसीमें मान किया जाता है। श्रीकृष्ण के प्रति राधा का प्रगाढ़ प्रणय मान के रूप में यदाकदा झलक जाता है।

प्रणय की परिणति राग में—प्रणय की घनीभूत अवस्था "राग" है। इसमें दर्शन, मिलन की तीव्र आकांक्षा रहती है। मनके भीतर प्रवृत्त तृष्णा उत्पन्न होती है। मिलन के लिये कष्ट सहना परम-सुख मालूम होता है और वियोगावस्था का परम-मुख भी दुःखप्रद प्रतीत होता है।

अनुराग का स्वरूप—राग की प्रगाढ़ अवस्था का नाम अनुराग है। इस अवस्था में प्रिय का निरंतर दर्शन भी नित्य-नूतन प्रतीत होता रहता है। तृष्णा के आविर्भाव से वह प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति ही मालूम होता है।

भाव और महाभाव—अनुराग जब उत्कर्ष को प्राप्त होता है और अस्वा-द्य बन जाता है तब वह भाव कहलाता है। इसके बाद प्रेम का चरम उत्कर्ष महाभाव है। इस महाभाव की एकमात्र अधिकारिणी ब्रज-वनितायें हैं, द्वारका की राजमहिषिया नहीं। रूप गोस्वामी ने भाव और महाभाव को एकार्थ माना है लेकिन कृष्णदास कविराज ने इन्हें दो स्वतंत्र स्तर माना है। रूप गोस्वामी ने मान की प्रथमावस्था को रुढ भाव और परावस्था रूप अधिरुढ भाव को महाभाव कहा है। रुढ और अधिरुढ भाव-रूप महाभाव केवल मधुरा रति में ही प्रकाशित होता है।

भक्तों के प्रेम की श्रेणियाँ—शान्तरति और कुब्जादि की साधारणी रति, प्रेम तक, दास्य रति, राग तक; सख्य रति, अनुराग की पूर्ण मीमा तक; वात्सल्य रति और महिषियों की समजसारति, अनुराग की शेष सीमा तक

विकासशील है। सुवलादि प्रिय-नम-मखात्रा की मध्यरति और ऐश्वर्य श्रेष्ठा रविमणी तथा मौभाग्य-अधिका सत्यभामादि प्रिय महिषिया की रति भाव का प्रथमावस्था रूप रूढ़ भाव तक और ब्रजगोपिया की ममथा रति अधिष्ठ भाव रूपमहाभाव तक विस्तित है।

महाभाव के दो प्रकार—महाभाव के दो प्रकार हैं मादन और भादन। भादन महाभाव प्रेम की चरम उत्कर्षावस्था है। श्री राधिका के लिये कृष्ण का सुख पहुँचाने के सिवाय अन्य कोई आकांक्षा नहीं। कृष्ण के सुख के अतिरिक्त वे न तो कुछ जानती हैं और न कुछ चाहती हैं। मादन महाभाव श्री राधा में ही चरम तक पहुँचा हुआ है अतएव उन्हींमें कृष्ण प्रेम का चरमतम विकास है। श्री राधिका न ही वैकुण्ठ की लक्ष्मी, द्वारका की महिषिया तथा ब्रज गोपिया का विस्तार हुआ।

चरम साध्य-महाभाव—गापिकानिष्ठ समर्पारति प्रीति महाभाव दशा का प्राप्त होने पर प्रेमभक्ति रूप में कीर्तित होती है। उज्ज्वल नात्मणि (१४।५७) में कहा गया है कि यहाँ रति प्रीति होने पर 'महाभाव' दशा को प्राप्त होती है। वह मुक्त पुरुषा और श्रेष्ठ भक्ता की भी अभिलाषा की वस्तु है। इस महाभाव दशा में भक्त चिद्गुणानन्द भगवान् के अनन्त निय लीला-समुद्र में निमग्न रहता है। यही गौडीय वैष्णव साधना का चरम प्राप्ताव्य है।

गौडीय वैष्णव धर्म की विशेषताएँ—गौडीय वैष्णव धर्म की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जिनसे वह अन्य वैष्णव सम्प्रदाया से भिन्न हो जाता है। पहले के धर्माचार्यों ने भगवान् के ऐश्वर्य रूप का ही प्रमुग्धता दी है और उन्हें बठार दण्ड विधायक कहा है। भगवान् का यह गरिमामय रूप भक्त के हृदय में प्राप्त करने वाला था। महाप्रभु चतुर्थ ने भगवान् के माधुर्य-रूप का ही सामने रखा। उन्होंने कहा कि भगवान् श्री कृष्ण अनन्त ऐश्वर्य के अधिपति तो हैं पर उनका ऐश्वर्य अममाद्य माधुर्य के अधीन है। उन ऐश्वर्य की प्रत्येक बणिजायें अणु-परमाणु माधुर्य मण्डित हैं अतः उनमें सबाँध नहीं प्राप्त नहीं। भगवान् का स्मरण हृदय में मभी पापों का दूर कर उस विगुण बना देता है और फिर विमल चित्त में अपने आप कृष्ण प्रेम का आविर्भाव होता है और जीव कृष्ण-सेवा जनित परम आनन्द का अधिकारी हो जाता है। अतएव न जीव के त्रिभय का कोई कारण रह जाता है और न भगवान् के लिये किन्हीं दण्ड विधान का।

गौडीय वैष्णव धर्म में भगवान् के इस माधुर्य का सुन्दर विवेचन है। श्री कृष्ण मे माधुर्य का ऐसा आकर्षण था जिससे पूर्ण काम स्वयं भगवान् के हृदय में स्व-माधुर्य आस्वादन की लालसा जगी और वे गौराग महाप्रभु के रूप में नवद्वीप में अवतरित हुये। इसकी पहले ही चर्चा की जा चुकी है। भगवान् भी जीवो के निस्तार^१ के लिये उतना ही सचेष्ट है जितना भक्त उन्हें पाने के लिये।

गौडीय वैष्णव धर्म में उदारता है। इस संप्रदाय ने अन्य साधना मार्गों की अवहेलना नहीं की है लेकिन भक्ति को ही प्रधानता दी है^२। उन्होंने विभिन्न संप्रदायों में समन्वय-स्थापना की चेष्टा की है। गौडीय वैष्णवों की साधना जातिवर्ण निर्विशेष है। इनके मतानुसार भक्ति-प्रवण चाण्डाल हरिभक्तिविहीन ब्राह्मण से कहीं श्रेष्ठ है—

नीच जाति नहे कृष्ण-भजने अयोग्य ।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य ।
जेइ भजे सेइ बड़, अमल हीन छार ।
कृष्ण-भजने नाहि जाति-कुलादि विचार ॥^३

नीच जाति का होने से ही कोई कृष्ण-भजन के अयोग्य नहीं हो जाता और न अच्छे कुल का ब्राह्मण होने से ही भजन के योग्य समझा जा सकता है। जो भजता है वही बड़ा है। कृष्ण-भजन में जाति-कुल का विचार नहीं।

गौडीय वैष्णव साधना सार्वजनीन है। वह सबके लिये सहज और सुलभ है। सासारिक विषय-वासना भक्ति-अगो के अनुष्ठान से अपने आप ही दूर हो जाती है और कृष्ण-प्रेम का आविर्भाव होता है। अतएव इस संप्रदाय वाले किसी भी प्रकार का प्रयत्न या बलपूर्वक त्याग करने की आवश्यकता नहीं मानते।

साधनागो में नाम-सकीर्तन को ही श्रेष्ठ माना गया है और यह सहज-साध्य अंग है। नाम-कीर्तन के लिये कुछ भी नियम-पालन के विधि-विधान नहीं, किसी भी स्थान में, किसी भी समय, कोई भी व्यक्ति हरि-नाम कीर्तन

^१ चतन्य चरितामृत, ३।२।५।

^२ वही, २।२२।१४-१६।

^३ वही ६२-६३।

का अधिकार प्राप्त कर सकता है। चतुर्थ चरितामृत (३।२०।१४) में कहा गया है

साइते गृडते जया नाम लय । काल-शैश नियम नार्हि, भवसिद्धि ह्य ॥

अथ वैष्णव-संप्रदाय की नाइ गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में भी अष्ट कालीन लीला-स्मरण की बात रही गई है लेकिन उसमें माघुय का ही प्राधान्य है। महाप्रभु चैतन्य ने जीव में भगवान् मन्वी मदीयतामय भाव का स्फुरण किया। 'मै भगवान् का हूँ इस प्रकार के तदीयतामय भाव की अरेशा भगवान् मेरे हूँ' जैसे मदीयतामय भाव ही गौडीय वैष्णव धर्म का प्राण है। मदीयतामय भाव द्वारा भगवान् में अत्यधिक ममत्व तथा एवत्व सबध की प्रतिपादना होती है। इस भाव में अत्यधिक अपनत्व है।

नौवां अध्याय

बंगाल का ब्रजबुलि साहित्य

(१६वीं-१९वीं शताब्दी के प्रमुख पद-रचयिता)

ब्रजबुलि की दीर्घकालीन परंपरा—

पिछले अध्याय में ब्रजबुलि साहित्य के पौष्टिक स्वरूप गौडीय-वैष्णव दर्शन का पूर्ण और विशद विवेचन किया जा चुका है। अब उस दर्शन के पोषक बंगाल के ब्रजबुलि-साहित्य का यहाँ कुछ विस्तार में विचार किया जाएगा। वस्तुतः नगोय वैष्णव पदावली में ही ब्रजबुलि की सबसे अधिक प्रमिद्धि और स्थायित्व मिला। १६वीं-१७वीं सन् ईसवी के बीच ही बंगाल में ब्रजबुलि की वेद मधन रूप में फली-फूली। उसके बाद २०वीं शताब्दी में वह क्षीणकाया होकर विकामशील बंगाल साहित्य के अन्तराल में छिप गई। यदाकदा बंगाल साहित्य के अग्रदूत बकिम चन्द्र, माइकेल मधुसूदन, और रवींद्रनाथ के नाटकों तथा काव्यों में ब्रजबुलि साहित्य के शक्तिहीन अस्तित्व का परिचय मिलता रहा पर वह नगण्य ही है। ब्रजबुलि अपने माधुर्य गुणमयता और धर्माश्रयता के कारण बंगाल साहित्य के इतिहास में अमिट छाप छोड़ गई।

ब्रजबुलि और ब्रजभाषा—

'ब्रजबुलि' नाम के होने तथा ब्रजभाषा के शब्द रूपों को ग्रहण करने पर भी यह भाषा उत्तर प्रदेश के भाषा भाषियों के लिए अपरिचित-सी ही बनी रही। जिस समय पूर्वी भारत के प्रदेशों में ब्रजबुलि विकसित हो रही थी, उस समय उत्तर प्रदेश में समसामयिक रूप से ब्रजभाषा शक्ति सम्पन्न हो रही थी। बल्लभ-सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सम्प्रदाय तथा सक्ती सम्प्रदाय भुक्त ब्रजभाषा के विभिन्न सुप्रसिद्ध कवियों द्वारा ब्रजभाषा साहित्य की समृद्धि व सम्पन्नता की चर्चा की जा चुकी है। अतः जब ब्रजभाषा का भण्डार राधाकृष्ण की मयूर लीलाओं से ही स्वतः पूर्ण ऐश्वर्यशाली था, ऐसी दशा में मुद्गर प्रान्तीय भाषाओं की ओर उसका ध्यान न जाना स्वाभाविक ही था। पर अप्रत्यक्ष रूप से समसामयिक वैष्णव दर्शन तथा साहित्य ने सिद्धान्त, भाव और भाषा में एक दूसरे को प्रभावित अवश्य किया।

इस अध्याय में बगीय ब्रजबुलि-साहित्य के प्रमुख पद रचयिताओं और उनका गिने चुने सुन्दर पदा की चर्चा की जाएगी।

यशोराज खान जीवन-वृत्त—

गौड दरवार के सुल्तान हुसेन शाह (१४०३ १५१० सन् १६वी) के कम-चारी यशोराज खान न एका कृष्ण-भगल काव्य की रचना की थी, जिस काव्य की हस्तलिखित प्रति अब उपलब्ध नहीं है। रामगोपालदास की 'रमकल्प बल्ली' से पता होता है कि यशोराज खान श्रीखण्ड के निवासी और वैद्य थे। 'राजखान' गौड दरवार के विही कमचारिया के उपाधि रूप में ही मिलता है। श्रीखण्ड के बहुत से वैद्य गौड-दरवार में विधेय सम्मानित थे। रघुनन्दन के पिता मुकुन्द दास जो नरहरि सरकार के बड़े भाई और श्री चतुर्थ महाप्रभु के भक्त थे, हुमान शाह के 'अतरंग' अर्थात् माम चिकित्सक थे। मुकुन्द दास के पिता नारायण दास भी राजवैद्य थे। गोविन्द दास कविराज के मातामह 'महाकवि' दामास्त्र भी श्रीखण्ड के निवासी थे। वशावती में यशोराज खान और दामोदर के नाम का जिस रूप में उल्लेख हुआ है उससे दोना व्यक्ति एक ही प्रतीत होते हैं।^१

यशोराज खान का एक रचित पद—

पीताम्बर दास की 'रस मजरी' (अन्तिम १७ वीं गताब्दी) में यशोराज खान रचित एक क्षणित पद (पयार छन्द में) की चार पक्तिया उद्धृत हुई हैं —

गुनि वेणु अपरुष ध्वनि
छुटल कुजरगति वरज रमनी ।
पदे हार परे बेह करेते नपुर
केह आष सोमन्ते लेह न सिद्धर ।

यद्यपि यह पद असम्पूर्ण ही मिला है फिर भी रास के अवसर पर मुरली की अपूर्व ध्वनि द्वारा आमंत्रित की गयी सम्मोहित गोपिया का विकसित दगा वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है।

'रस मजरी' में यशोराज खान का और एक सम्पूर्ण पद भी उद्धृत है।

^१ जसराखा आर श्रीकविरजन (कल्कत्ता विश्वविद्यालय हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ४०५१।२५ ख)

^२ श्री मुकुमार सेन 'बांगला साहित्ये इतिहास' प २०४।

एक और पद—

कोई दूती कृष्ण के दर्शनार्थ राविका की चेष्टाओं का वर्णन श्रीकृष्ण से कर रही है—

अथ राग

एक पयोधर चन्दन-लेपित आरे सहजइ गोर ।
हिमधराधर कनक भूधर कोरे मिलल जोर ॥
माधव तुआ दरशन-काजे
आध पदचारि करत सुन्दरी बाहिर देहली-माझे ॥
दाहिन लोचन काजरे रजित धवल रहल वाम ।
नीलधवल कमल जुगले चाद पूजल काम ॥
श्रीयुत् हुसन जगत भूषण साह ए रस-जान ।
पंच गौड़ेश्वर भोग पुरन्दर भने यशराज-खान ॥

उपरोक्त उपमा निस्सन्देह बहुत सुन्दर है—चन्द्रमुखी (चाद) ने नीले और श्वेत वर्ण के (एक नेत्र काजल रंजित होने के कारण श्यामवर्ण तथा दूसरा विना काजल के होने से श्वेत है) कमलो से कामदेव की पूजा की है। व्यजना है कि मिलनातुर राधा को इस समय कामदेव की ही कृपादृष्टि की कामना है।

ब्रजबुलि पद का प्राचीनतम उदाहरण—

यह दगाल में प्राप्त ब्रजबुलि के पद का प्राचीनतम उदाहरण है। अब तक विद्वान मण्डली रामानन्द राय के प्रसिद्ध ब्रजबुलि पद 'पहिलहि राग नयन भग भेल' को ब्रजबुलि का प्राचीनतम पद मानते आए हैं। पर इस तथ्य के विरुद्ध दो बातें हैं—पहली तो यह कि राय रामानन्द उड़ीसा निवासी थे अतः इस ब्रजबुलि पद की रचना उड़ीसा में हुई होगी। इसलिए यह पद उड़ीसा के ब्रजबुलि पदों में प्राचीनतम हुआ। दूसरी बात यशोराज खान का काव्य हुसेन गाह के राज्यकाल (१४९३-१५१९ सन् ईसवी) में रचा गया अतएव यशोराज खान की रचना १५वीं सन् ईसवी के अन्तिम दिनों की है और राय रामानन्द का ब्रजबुलि का पद १६वीं सन् ईसवी के आरम्भ में रचा गया ऐसा विद्वानों का अनुमान है।^१ ऐसी दशा में भी यशोराज खान की ही रचना कुछ प्राचीन हुई।

^१ श्री सुकुमार सेन : 'हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर', पृ. २३।

रामानन्द राय जीवन घृत्त—

रामानन्द राय या राय रामानन्द उढीमा के गजपति राजा प्रताप रुद्र (नामन काल १५०४-१५३० सन् इसवी) के अधीन गोदावरी-तीर पर बसे हुए विद्या-नगर के स्थानीय शासक थे । रामानन्द के पिता भवानन्द और चारा भाई वाणीनाथ गापीनाथ कलानिधि तथा सुधानिधि आदि सभी राजा प्रताप रुद्र के अमात्य और कमचारी थे ।^१

चैतन्यदेव के साथ साक्षात्कार—

महाप्रभु चतयदेव के दक्षिणात्य जाते समय गोदावरी तीर पर राय रामानन्द के साथ उनकी पहली भेंट हुई । प्रथम दशन से ही दाना एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए । 'चतय चरितामृत' के मध्य-लीला के अष्टम परिच्छेद में यह घटना विस्तार से वर्णित है । दोनों में धम-सब-धी बात-विवाद प्रारम्भ हुआ । महाप्रभु ने प्रश्न किया— बण्णव धम का प्रधान लक्ष्य तथा आदर्श क्या है ? रामानन्द ने स्पष्ट तथा उपयुक्त उत्तर दिया । श्री चतयदेव एक के बात दूसरा प्रश्न करते गए और उन्हें उचित उत्तर मिलता गया । पर उन सच्चे प्रेमी जिनासु भक्त के मन में तृप्ति कहा, बहूता प्रेमभक्ति तरव की अन्तिम बात सुनना चाहते थे । जिसकी प्रथम दो पक्तियां सुनते ही भाव-विह्वलता से महाप्रभु ने रामानन्द का मुह अपने हाथा से ढाक लिया । वह अपूर्व पद निम्नोद्धृत है—

चैतन्य को सुनाया जाने वाला पद—

पहिलहि राग नयन भग भल ।
 अनुदिन बाढ़ल, अबधि ना गल ॥
 ना सो रमण, ना हम रमणो ।
 तुहु मन बनाभव पेगल जानि ॥
 ए सखि ए सब प्रेम कहानी ।
 वानु ठामे कहवि, विछरल जानि ॥
 गा खोजलु दूती ना खोजलु आन ।
 दुहु केहि मिलने मघत पचवान् ॥
 अबसो विराग तुहु भेल दूती ।
 सुपुरख प्रेमक एछन रीति ॥

^१ पद कल्पतरु (पंचम शण्ड), प २०३ ।

वर्द्धन एव-नराधिन-मान ।

रामानन्द-राय कवि मान ॥^१

यह श्रीराय का मधुग के राजमिहानन पर आमीन श्रीकृष्ण के लिए कृती को दिया गया सन्देश जान पड़ता है । प्रथम प्रेम निरन्तर बढ़ता हुआ उस भाव दशा तक पहुँच चुका था जब कि मैं (रमणी) और तुम (रमण) की बोध-वृत्ति भी गुप्त हो गई थी । ऐसी ही वह अभेदत्व की स्थिति जहाँ मिथन के लिए किर्मा भी प्रकार के बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं थी । पर आज स्थानगत दूरी ने तुमने मनोगत दूरी बना ली है निगमे यह बोध पुनः उदित हुआ है कि तुम और मैं पृथक हूँ, हम दोनों के बीच वियोग-मागर की उत्ताल तरंगें लहरा रही हैं । इसलिए अब तुम्हारे और मेरे में मिथन कराने के लिए दूती की आवश्यकता आ पड़ी है ।

अब तक की प्राप्त प्रमाण सामग्री के आधार पर प्राचीनता की दृष्टि में यशोराज खान के बाद ब्रजबुलि साहित्य के इतिहास में इस पद का स्थान है, परन्तु प्रेम व्यजना के अद्भुत चमत्कार के कारण साहित्यिक दृष्टि से इस पद का स्थान अवश्य ही प्रथम है ।

युगल स्वरूप संबंधी पद--

'पदकल्पतरु' में युगल स्वरूप की वन्दना विषयक इस पद में 'राम राय' की छाप मिलती है —

^१ पदकल्पतरु, ५७६, नैतन्य चरितामृत, २।८।१५२।

तुलनीय है अमरुक का यह श्लोक—

तथा ह्यभदन्माक प्रथममविभिता तनुरिय
ततो नु त्व प्रेयानहमपि हताशा प्रियतमा ।
इदानी नाप्यस्त्व वयमपि कलत्र किमपर
मयाप्त प्राणाना कुलिनकठिनाना फलमिदम् ॥

कविकर्णपुर के 'श्री चैतन्यचन्द्रोदय नाटक' में भी इसी भाव की व्यंजना मिलती है—

अह कान्ता कान्तस्त्वमिति न तदानी मतिरभूत

मनोवृत्तिर्लुप्ता त्वमहमिति नो धीरपि हता ।

भवान् भर्ता भार्याहमिति यदिदानी व्यवसिति

स्तथाप्यस्मिन् प्राण स्फुरति ननुचित्र किमपरम् ॥७।१६-१७।

ए दुहु मगल आरति बीज ।
 मगल नयने निरखि मुख लीज ॥
 मगल-आरति मगल-याल ।
 मगल राधा मदन गोपाल ॥
 श्याम गौरि दुहु मगल रागि ।
 मगल-जोति मगल परकागि ॥
 मगल-गजहि मगल निसान ।
 सहचरिगण कह मगल गान ॥
 मगल-चामर मगल उद्गार ।
 मगल-गवदे करये जपकार ॥
 मगल-मुखे केहु बाहु बाखान ।
 कह रामराय तहि भगवान ॥^१

ब्रजभाषा का प्रभाव—

इस पद पर ब्रजभाषा का स्पष्ट प्रभाव है बहुत से ब्रजभाषा के 'गल्हपा' का प्रयोग हुआ है। रामानन्द राय रचित 'सम्भृत के जगन्नाथ वल्लभ नाटक' या 'रामानन्द मगन नाटक' के बहुत से गीतों में 'गम राय' की मक्षिण छाप है, इसका आधार पर श्री मुकुमार सन महाशय ने इसे आलोच्य कवि रामानन्द राय का ही पद अनुमान किया है।^२

परन्तु इने स्वीकार करने में का मुख्य बाधाएँ हैं—सबसे पहिली बात कवि रामानन्द राय बहुत उच्च बाटि के कवि और दार्शनिक थे। इनके 'जगन्नाथ वल्लभ' नाटक में भी सम्भृत काव्य रचना की दक्षता और असाधारण कवित्व शक्ति का परिचाय मिलता है। पर उपरोक्त पद में भाव कवित्व किसी भी दृष्टि से विशेषता नही यह एक अति साधारण बाटि का पद है, इसलिए इसका दार्शनिक प्रौढ़ कवि का कृति मान लेना उम कवि के साथ बहुत बगल अन्याय करना है। दूसरी बात कि पद पर ब्रजभाषा का इतना स्पष्ट प्रभाव भी गल्हपा का कारण है क्योंकि ब्रजभाषा के प्रभाव का कोई सन्तान-जनक उतर नही मिलता।

^१ २८४४।

^२ श्री मुकुमार सन 'हिन्दु आर्य ब्रजबुलि लिटरेचर', पृ० २८।

राम राय कौन ?—

उन सब कारणों से यह अनुमान होना है कि राम राय कोई ब्रजबुलि का अप्रसिद्ध कवि रहा होगा और ब्रजवान या अन्य किसी कारण से ब्रजभाषा का इतना स्पष्ट प्रभाव उस पर है अथवा राम राय ब्रजभाषा का ही कोई अप्रसिद्ध कवि रहा हो और वंगीय टैपण्य पदावली में पद सप्रहीन होने के कारण एक दो ब्रजबुलि शब्दों का प्रक्षेप उसमें हो गया है। द्वितीय अनुमान ही अधिक युक्ति मग्न प्रतीत होता है क्योंकि पद में 'मदन गोपाल' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। गौड़ीय वैष्णवों के उपान्यदेव 'मदन मोहन गोपीनाथ, श्रीगोविन्द' है, 'मदन गोपाल' नहीं, उसने अनुमान होता है कि ब्रजभाषा का कवि 'राम राय' बल्लभ सम्प्रदायी रहा हो।

चैतन्य देव के स्नेहाशील—

चैतन्यदेव से मिलने के बाद रामानन्दराय का भविष्य जीवन निश्चित हो गया। महाप्रभु के अन्नलीला के मुदीर्घ २४ वर्ष में अविकाश समय रामानन्द राय ने महाप्रभु के वामस्थल नौठाचल में दिनाया। श्रीचैतन्यदेव का रामानन्द राय पर अत्यधिक स्नेह था और अपने स्नेहातिशयता को एक बार उन्होंने इन शब्दों के द्वारा प्रकट भी किया था—

'रामानन्द मह भोर देह-भेद मात्र ।'

वासुदेव घोष : जीवन वृत्त—

वासुदेव और उनके दोनों भाई गोविन्द और माधव का जन्म वृद्धना या बुरगी सिलहट में हुआ, बहुत संभव है यहां उन लोगों का निहाल था। उनके पिता कुमारहट्ट में बसे थे परन्तु तीनों भाई नवद्वीप में आकर बसे। ये तीनों ही श्रीचैतन्य के सहचर तथा अनुगामी थे। सभी नुमचुर गायक तथा काव्य-कलाविद् थे। नवद्वीप में गौरांग संगठित तीन मंकीर्तन डल के तीनों ही प्रवान गायक थे; कदाचित् कीर्तनगान में ही वे नवद्वीप में आकर बस गए हो। 'चैतन्य-भागवत' तथा 'चैतन्य चरितामृत' में इन तीनों भाइयों का बहूत बार उल्लेख आया है, इनमें से पदकर्ता की दृष्टि से वासुदेव ही अधिक प्रसिद्ध है।

^१ श्री चैतन्य चरितामृत, १।१०।१३२।

रचनाएँ—

वासुदेव घाप के १५ पद 'पदकल्पतरु' में संगीत हैं इनमें से ब्रजयुगल के १२ ही पद हैं। अभी तक श्रीचैतन्य के दूसरे किसी अनुगामी के इनके पद नहीं मिले हैं। अथ दोनों भाइयों के १३ से अधिक सख्या में पद नहीं मिले हैं। वासुदेव के सभी पद गौराग विषयक हैं। इनके गौराग विषयक पदा का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत मूल्य है क्योंकि महाप्रभु की लाला का उन्होंने प्रत्यक्ष देन कर वणन किया है। तभी तो देवकीनन्दन दाम ने 'वैष्णव वन्दना' में वासुदेव की स्तुति इस प्रकार की—

श्रीवासुदेव घोष बद्धि सावधाने ।

गौर गुण बिना जेह अथ नहि जाने ॥

(सावधान होकर श्री वासुदेव घाप की वन्दना करेगा जिन्होंने गौर गुण बिना अन्य कुछ न जाना) ।

नागरी भाव के पद—

इससे जान पड़ता है कि वासुदेव घोष ने गौराग लीला के अतिरिक्त अथ किसी विषय का वणन ही नहीं किया। चतय देव के जीवन का वणन श्रावृष्ण की जीवन-लीलाओं के अनुकरण पर ही किया। नवद्वीप-लालाओं में ब्रजगापिया का अभाव था अतः नरहरि सरकार के अनुकरण द्वारा वासुदेव ने अपने का तथा अन्याय गौर भक्तों का नदीया-नागरी कल्पना करके 'नागरी भाव' के पदा की एक स्वतंत्र धारा चलाई। श्रावृष्ण की गोपिकाओं के साथ की गई दान-लाला नौवा-लाला के समान अथ लीलाओं की भी उन्होंने उदावना की। नागरी भाव के पद का उदाहरण —

निरमल गौरा-स्तनु क्षयिल काचन जनु ।

हेरइते म गेलू भीर ।

भाग भुजगमे दशल मस्तु मन ।

अन्तर कापइ भीर ॥

सजनि, जब हाम पेखलू गौरा ।

आकुल दिग बिदिग ना पाइए

मदन लालसे मन भीरा ॥

अवणित-नयने तरछ अवलेकने ।

वरिले कुमुमगर सावे ॥

जीवइते जीवने येह नाहि पायनूं ।
 डुयलूं गगा अगाधे ॥
 मंत्र महोपधि तुहुं जानसि जदि ।
 मनु लागि करवि उपाय ।
 वासुदेव-घोष कहे शुन-शुन ए सखि
 गोरु लागि प्राण मोर जाए ॥^१

इस नागरी भाव की उपासना में मनोवैज्ञानिक नय्य है, बराबर से नारी-जाति कोमलता, आत्म-समर्पण और प्रेम-सन्मयता की जीती-जागती आदर्श स्वरूपा मानी गई है। अनाद्य नारी प्रेम को आदर्श मान कर उसी भाव से प्रेमी भक्तगण अपने दृष्टदेव की उपासना में दत्तचित्त रहते हैं।

गौरांग विषयक पदों का वैशिष्ट्य—

वासुदेव घोष के गौरांग विषयक पदों में वर्णन की जां वास्तविकता और आवेगो की अकृत्रिमता है उसी के कारण वे इतने मर्मस्पर्शी हुए हैं। इस विषय में कृष्णदास कविराज की उक्ति अनिश्चयोक्तिपूर्ण नहीं है—

वासुदेव गीते करे प्रभुर वर्णने ।
 काष्ठ-पापाण द्रवे जाहार श्रवणे ॥^२

वासुदेव घोष के वात्मल्य रस विषयक बगला के पदों में चैतन्य देव के बाल्यकाल का सजीव और सुन्दर चित्रण मिलता है।

रामानन्द वसु . जीवन वृत्त—

ये वर्द्धमान जिले के मेमारी स्टेशन के निकटवर्ती कुलीनग्राम के प्रसिद्ध मालाघर वसु (गुणराज खान) के बगवर और महाप्रभु के अनन्य भक्त थे। इनके पितामह मालाघर वसु ने 'श्रीकृष्ण विजय' ग्रंथ की रचना द्वारा गौड़ वादशाह से 'गुणराज खान' की उपाधि पाई थी। 'श्रीकृष्णविजय' महाप्रभु का अन्यतम प्रिय पाठ्य ग्रंथ था। गुणराज के पूर्व बडु चण्डीदास के अतिरिक्त अभी तक दूसरे किसी बगला वैष्णव काव्य की उपलब्धि नहीं हुई है। जनसाधारण के मतानुसार 'सत्यराज' रामानन्द के पिता थे परन्तु

^१ पदकल्पतरु, २८।

^२ चैतन्य चरितामृत, १।११।१६

चनन्य चरितामत^१ के वशावली वणनानुसार रामानन्द वसु और सत्यराज एक ही व्यक्ति थे। बहुत संभव है कि अपने पितामह के समान ही रामानन्द को भी सत्यराज खान' की उपाधि प्राप्त हुई हो। इनके जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में पुष्ट प्रमाणा के अभाव में निश्चिन्त रूप में कुछ कहा नहीं जा सकता परन्तु अनुमान होता है कि वे महाप्रभु के ही समनामयिक थे।

पद—

रामानन्द वसु रचित कुछ वगना तथा ब्रजबुलि के पद विभिन्न वणव पद-संग्रहों में संकलित हैं जिन पदा द्वारा इनकी रचना नपुंस्य का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए ब्रजबुलि का एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है—

मलयज मिलित जमुना जल शोतल
वशीवट निरभाण ।
निःकटहि नोप-कदम्ब तर कुसुमित
कोकिल भ्रमर कर गान ॥
तार लेले तिरिभग तरुणतमाल-तनु
धामे रसयती राइ ॥
एक नव जलघर करे विजुरी यिर
काचन रतन मिंगाइ ॥
दुहें तनु एकमन निविड आलिगन
दुहें जन एक पराण ॥
धमु रामानन्द भने तुलगा ना हय भने
रूपेर निछनि पांचवाण ॥^२

कवि ने केवल सयोगस्थित युगल स्वरूप का सुन्दर और उपयुक्त उपमात्रा द्वारा वणन ही नहीं किया लेकिन चित्र को और भी सजीव करके पाठक के

^१ कुलीन प्रामवासी सत्यराज रामानन्द ।

यदुनाय पुरुषोत्तम शंकर विद्यानन्द ॥

वाणीनाथ धमु आदि जत प्रामी जन ।

सभइ श्रीचतय भूय चतय प्राणघन ॥

चनन्य चरितामत, १।१०।७८ ७९ ।

^२ पत्रालयक ६५२ ।

सम्मुख उपस्थित करने के लिए पृष्ठ भूमि का भी मजीब और गुन्दर चित्रण किया है; उसमें कवि का वर्णन चानुर्य्य प्राप्त होता है।

रचनायें—

वात्मल्य रस के पदों में भी रामानन्द वसु का रचना वैशिष्ट्य प्रकटता है।

चैतन्य देव के प्रधान अनुगामीयों में होने के कारण उन्होंने गौराग विषयक कुछ पदों की भी रचना की है, उन पदों की सरलता तथा सुस्रोयता के गुण को देखने पर अनुमान होता है कि वे कवि के आरम्भिक जीवन की रचनाएँ होंगी। कुछ पद केवल 'रामानन्द' की छाप में विभिन्न प्रबलीसमूहों में संगृहीत हैं, वे अधिकांश श्रीगौराग विषयक हैं। भाव भाषा तो दृष्टि में जाच करने पर वे रामानन्द वसु कृत ही प्रतीत होते हैं।

वृन्दावन दास : जीवन वृत्त -

श्री चैतन्यदेव के प्रधान अनुगामी श्रीवाम पण्डित की भतीजी नागवणी के पुत्र हैं। इनके जन्म के विषय में किवदन्ती प्रचलित है कि नित्यानन्द प्रभु के आशीर्वाद में महाप्रभु द्वारा चवाए गए पान को प्रमादी रूप में ग्रहण करने से विववा नारायणी को व्याम तुल्य पुत्र-प्राप्ति हुई। किवदन्ती में कितना सत्यास है कहा नहीं जा सकता पर पिता के मृत्यु के बाद ही इनका जन्म हुआ होगा, इसमें ऐसा अनुमान होता है। उनके जन्मकाल के विषय में भी बहुत मतभेद है। अधिकांश १५१०-१५२० मन् ईसवी के बीच इनका जन्म सम्य मानते हैं। बहुत वचन से ही ये नित्यानन्द महाप्रभु के अनुगामी हो गए थे। नवद्वीपलीला प्रत्यक्ष देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था, जिसके लिए इनके मन में अत्यन्त पछतावा था।^१ नित्यानन्द प्रभु के तिरोधान के पश्चात् ये वर्द्धमान जिले के देनुड ग्राम में आकर बस गए। वृन्दावन दास खेतरी महोत्सव में उपस्थित थे ऐसा 'भक्ति-रत्नाकर' में उल्लेख मिलता है। अनुमानिक अन्तिम १६ वीं शताब्दी के लगभग इनका परलोक गमन हुआ।

रचनाएँ—

वृन्दावन रचित 'चैतन्य-भागवत' बगला चैतन्यचरित-काव्यों में प्राचीनतम है। ये चैतन्यलीला के व्यासदेव रूप से प्रसिद्ध हैं। कृष्णदास कविराज

^१ 'हइल पापिण्ट जन्म एखन ना हइल,
हेन महामहोत्सव देखिते ना पाइल।'

गोस्वामी रचित 'चतन्य चरिनामृत' और अन्य कुछ वैष्णव ग्रन्थों में 'चतन्य भागवत' का 'चतन्य भगल' नाम से उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि वन्दावन दास की माता नारायणी ने अपने पुत्र तथा लोचन दाम क' ग्रन्थ का नाम एकही होने क' कारण 'चतन्य भगल' नाम बदलवाकर 'चतन्य भागवत' रखवाया, इस बात के लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। इस सम्बन्ध में 'प्रेमविन्दास का कहना है कि 'चतन्य भागवत' का नाम 'चतन्य भगल' था और वृन्दावन के महन्तों ने भागवत नाम दिया, यही ध्यान अधिव' युक्तिसंगत प्रतीत हाती है।

वन्दावन दास ने 'चतन्य भागवत' में बारबार उल्लेख किया है कि नित्या नन्द प्रभु क' उत्साह में ही व श्री चतन्य जीवनी रचने में प्रवृत्त हुए। 'चतन्य भागवत' का रचनाकाल अनिश्चित है। फिर भी ग्रन्थ के वर्णना से ऐसा अनुमान हाता है कि सनातन रूप उस समय जीवित थे। वन्दावन दास में निस्सन्देह एग उच्चकोटि के कवि की प्रतिभा थी। वन्दावन दास ब्रजबुलि के श्रेष्ठ कविया में से थे। इनकी ब्रजबुलि की कविनाएँ विभिन्न सग्रह ग्रन्थों में संकलित हैं। उन सग्रहों में वन्दावन दास रचित शगला पदा में भी ब्रजबुलि के ही शब्दरूप भर पड़े हैं। 'चैतन्य भागवत' में भी स्थान-स्थान पर ब्रजबुलि के शब्द रूपा का यहा तक कि सम्पूर्ण ब्रजबुलि की पक्तियों का भी प्रयोग मिलता है।

पद—

वृन्दावनदास की ब्रजबुलि रचना के उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद उद्धृत किया गया। सखी नायक का पत्र लेती हुई अत्यधिक मान की हुई नायिका का तिरस्कार कर रही है—

कछे चरणे कर — पल्लव ठेललि

मोललि मान भुजगे।

कवले कवले जीउ जरि जव जायव

तबहि देखव इह रगे ॥

मागो किए इह जिह अपार।

को अछु घोर घोर महादल

पागरि उतारव पार ॥

नामर नामर मलिन नलिन मुखर

शरभर नयनक नीर।

रचयिता माधव आचार्य की प्रतिभा अन्य भाववो की तुलना में सर्वोपरि थी अतएव वैष्णव पद संग्रह ग्रन्थो में भाव तथा भाषा की दृष्टि से उच्चकोटि के पदो को हम माधवदास या माधव आचार्य रचित माने तो अनुचित न होगा ।

पद—

निम्नोद्धृत ब्रजवृत्ति का पद कवि के कलात्मक माधुर्य और छन्द नौदर्य का यथार्थ परिचय देगा ।

कवि राधा के अपूर्व रूप का वर्णन कर रहा है—

शारद शशधर किए मुख शोभा ।
 कुंकुम काचन विजुरी गीरोचन—
 चम्पक वरण हरण मन लोभा ॥
 देख देख राधा रूप अपारा ।
 मदन मोहन वाहिते अनुखन
 लावणि प्रेम-अमिभारस धारा ॥
 शिर पर कुसुम खचित वर वेणी ।
 लम्बित हृदि पर मोति माल वर
 सुमेरु भेदिआ जनु वहत त्रिवेणी ॥
 कनक करभकर भुजवर साजे ।
 केशरिखिनकटि मणि किंकिणी तटो
 गति गजराज मनोहर राजे ॥
 थल पंकज पद शोभा ।
 नरवरमुकुरमणि—मंजीर रण रणि
 माधव नयन अमर चित्त क्षोभा ॥^१

पुरुषोत्तम दास : जीवन वृत्त और रचनाएँ—

पुरुषोत्तम दास कुमारहट्ट के रहने वाले सदाशिव कविराज के पुत्र थे । ये जाति के वैद्य थे । पिता पुत्र दोनो ही नित्यानन्द प्रभु के परम भक्त और अनुगामी थे ।^२ 'वैष्णवन्दना' रचयिता देवकीनन्दन पुरुषोत्तमदास के ही

^१ पदकल्पतरु, २४६१ ।

^२ श्री सदाशिव कविराज वड महाशय ।

श्रीपुरुषोत्तम दास ताहार तनय ॥

आजन्म निमग्न नित्यानन्देर चरणे ।

निरन्तर वाल्यलीला कर कृष्ण सने ॥ —चैतन्यचरितामृत, १।१।३५.

गिप्य थे। विभिन्न पद संग्रह ग्रन्थों में पुष्प्योत्तम की छाप के पद आलाच्य कवि की ही रचना अनुमित होती हैं। इन्होंने बंगला तथा ब्रजबुलि दोनों में ही रचना की है। आश्चर्य है कि उपरोक्त पदा में एक भी पद शीघ्रतया विषयक नहीं सभी श्रावण के मयुरा-संगीत पद हैं। कवि की ब्रजबुलि रचनाओं में मौलिकता है। रचना की विशेषता निम्नोद्धृत पदा में देखने को मलेगी।

पद—

श्रावण के मयुरागमन के पश्चात् विरह-मग्न ब्रज का कितना हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है—

गोकुल छाड़ि जवहु तुहु आएलि
तब विहि प्रतिकूल भेल ।
बरजवाति किए थावर जगम
विरह बहने बहि गेल ।
तुआ प्रिय जतहु सुभिकुल आकुल
तण-बयल करि मुखे ।
हेरि मयुरापुर लोचन क्षर क्षर
पानि ना पीवत दुखे ॥
कोकिल भ्रमर सारी गृकवर
रोयत तरु पर बठि ।
तोहारि मयूर मगीकुल लुठए
शक्ति नाहि बने पठि ॥
तरुल पल्लव सबहुं शूलायल
तेजल कुसुम विकाने ।
एतहु बिपदे तोहें बतए निबदब
हुलि पुरुषोत्तम बासे ॥^१

श्रावण विरह की दुःखातिगायता में जब ब्रज की सभी वस्तुओं (स्यावर अथवा जगम) पर जैसे पाठा पड़ गया है तब पुत्र-विरहातुरा विक्षिप्त माता यशाना की दशा कितनी मार्मिक होगी—

गोकुल नगरे भ्रमए जनु बाउरि
उदसल कुन्तल-भार ।

सांहा मज्जु प्राण-तनय ब्रज-नन्दन
 कहइते बहे जलघार ।
 माघव भो जनती नन्दरानी ।
 तुआ विरहानले उमति पागलि जनु
 काहारे कि पुटाए वागी ॥
 अब काहे वेणु-जवद नाहि शुनिए
 कौन कानन-माहा गेल ।
 बुलि बलराम संगे नाहि गेयल
 को परमाद आजु भेल ॥
 ऐछे विलाप शुनइ पुर सहचरि
 रोइ भावत तछु पाश ।
 बहु परबोध-बचने गूटे आनत
 कह पुरुपोत्तम दास ॥^१

पदो मे मर्मग्यर्धी व्यजना हैं, वर्णन की सजीवता है, साथ ही कवि प्रतिभा की मौलिकता है ।

ज्ञानदास : जीवन वृत्त—

ज्ञानदाम वर्तमान जिले से उत्तर की ओर कांदड़ा गाव के रहने वाले थे । इन्होंने १५३० सन् ईसवी में ब्राह्मण कुल में जन्म लिया । कहा जाता है कि कांदड़ा में ज्ञानदास का एक मठ अब भी सुरक्षित है जहां पौष-पूर्णिमा के दिन प्रतिवर्ष वैष्णवों का महोत्सव और तीन दिन के लिए मेला लगता है । नित्यानन्द प्रभु की पत्नी जाह्नवीदेवी से ज्ञानदास ने दीक्षा ली इसी कारण ये नित्यानन्द प्रभु के शाखाभुक्त माने जाते हैं । खेती के उत्सव में ये उपस्थित थे अतएव गोविन्ददाम, बलरामदास के समकालीन हुए ।

काव्य का वैशिष्ट्य—

ज्ञानदास बगला तथा ब्रजबुलि साहित्य के श्रेष्ठ कवियों में से हैं । बगला की अपेक्षा इनके ब्रजबुलि पद अधिक हैं । रसानुभूति की तीव्रता और भावों की अकृत्रिम सरलता के कारण ब्रजबुलि-साहित्य में ज्ञानदास के पदों का गोविन्ददास के पदों के बाद ही स्थान है । 'रूपानुराग', 'रसोद्गार' और

^१ पदकल्पतरु, १७५६ ।

माथुर विषयक पदों में जानदास की कवि प्रतिभा पूर्ण रूप से निम्बर आइ है। ये पद भाव तथा रचना नैर्गमि में चण्डीनास के पदानुकरण-सं प्रतीत होते हैं। इसी कारण परवर्ती युग के कौतन-नाथका तथा लिपिनारा क इच्छाकृत प्रयास अथवा अनिच्छाकृत अमनकता के कारण जाननाम के उत्कृष्ट बंगला पद चण्डादास की रचनाओं में प्रक्षिप्त कर लिए गए हैं।

जानदास की भ्रजवुलि रचनाओं की उत्कृष्टता का नमूने के लिए यहां दो चार पद उद्धृत किए गए।

मुग्धावस्था का प्रेम—

मुग्धावस्थाजय अत्यधिक लज्जा का कारण राधा ने श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनुराग का मस्तिष्क से छिपा रखा था पर उनकी चेष्टाओं से वह गुप्त प्रेम मस्तिष्क पर प्रकट हो जाता है जिससे मस्तिष्क राधा को छेड़ती है—

लहु लहु मुचकि हासि चलि आबोलि
 पुन पुन हेरसि फरि ।
 जनु रतिपति सये मिलन रग भूमे
 ऐछन कएल पुछेरि ॥
 धनि हे बुझलू ए सय बात ।
 एतदिन तुहुक मनोरथ पूरल
 भेटलि कानुक साय ॥
 जब तोहे सखीगण निरजने पूछल
 तय तुहु छापलि काए ।
 अब विहि सो सय देवन कयल सखि
 कछन गोपबि ताए ॥
 चोरिक वचन कहत सय गुहजन
 सो सय पाएलू सखि ।
 दशदिन दुरजन एकदिन सुानक
 आजु देखलू परतखि ॥
 हाम सब निजजन कहसि रातिदिन
 सो सय बुझलू आज काजे ।
 जानदास कह सखि तुहु विरमह
 राइ पाएल बहु लाजे ॥^१

^१ पञ्चवल्पर २३० ।

सखियों के महज छेड़छाड़ में कवि का वर्णन चातुर्य प्रकट होता है।

रूपानुराग—

राधा कृष्ण के प्रथम दर्शनमात्र में उनके प्रेम में डूब जाती है। कृष्ण के मन मोहक रूप-दर्शन में उनकी क्या अवस्था हो जाती है इसी का वर्णन सखी से कर रही है—

रूप देखि आखि नाहि नेउटइ
मन अनुगत निज लाभे ।
अपरशे देखे परग-मुख-सम्पद
श्यामर सहज स्वभावे ॥
सखि हे मुरति पिरिति-मुखदाता ।
प्रति-अंग अखिल-अनंग-मुख-सायर
नायर निरमिल घाता ॥
लीला लावनि अबनि अलंकरू
कि मधुर मंथर गमने ।
लहु-अवलोकने कत कुल गामिनी
शूतल मनसिज शयने ॥
अलखिते हृदयक अन्तर अपहरू
विछुरन ना हय सपने ।
ज्ञानदास कहे तव कैछन हए
तनु तनु जब हब मिलने^१ ॥

यह पद राधा के 'रूपानुराग' का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।

राधा का मान—

राधा कृष्ण से मान किए वैठी है। क्रोधावेश में वे कृष्ण को कपटी, छली आदि बहुत कुछ अपगव्द कह डालती है। सखी उन्हें सब प्रकार से समझाने का प्रयत्न करती है पर वे एक नहीं मुनती—

पहिलहि चांद करे दिल आनि ।
शापल शैल शिखरे एकपाणि ॥
अब विपरीत भेल सो सब काल ।
बासि कुसुमे किए गांयइ माल ॥

^१ अप्रकाशित पद रत्नावली, १३५।

ना बोलह सजनि ना बोलह जान ।
 की फल आछए भेटव कान ॥
 अन्तर बाहिर सम नह रीत ।
 पानि तल नह गाढ़ पिरीत ॥
 हिया सम कुलिश बचन मधुघार ।
 विष घट उपरे दुध उपहार ॥
 चातुरि बेचह गाहक-ठाम ।
 गोपत प्रेम-सुख रह परिणाम ॥
 तुहु किए गठि निक्कपटे कह मोए ।
 ज्ञानदास कह समुचित होय^१ ॥

मानिनी का मान बहुत सुन्दर रूप में व्यक्त किया है ।

चैतन्य सम्बन्धी पद--

चैतयदेव पर रचे गए पद का एक उदाहरण --

हेम-वरण बर-सुन्दर विग्रह
 मुर-तद-वर-मरकाश ।
 पुलक पत्र-नव प्रेम पक्व-फल
 कुसुम मन्द-मदु-हास ॥
 नाचत गौर मनोहर अदभुत ।
 राजित मुरघुनि धार ।
 त्रि-जगत-लोक ओक भरि पाओल
 भक्ति रतन-भणिहार ॥
 भाव विभवमय रसरूप अनुभव
 सुबलित सुखमय अग ।
 द्विरद-मत्त-गति अति सुमनोहर
 मुरछित लाख-अनग ॥
 धनि खिति-मण्डल धनि नदीया-मुर
 धनि-धनि यह कलि-काल ।
 धनि अवतार धनि रे धनि कीतन
 ज्ञानदास नह धार ॥^२

^१ पदकल्पतरु ४९६ ।

^२ वही २०६२ ।

रचनाएँ—

महाप्रसू विषयक ज्ञानदाम के लिखे पदों में नरहरि, यदुनन्दन और वामुदेव के पदों जमी प्रत्यक्षानुभूति नहीं और उनमें रंग मिलना संभव भी नहीं, उन कवियों की तुलना में ज्ञानदाम के पदों में भाषा तथा शैली का वैशिष्ट्य अवश्य है।

ज्ञानदाम की छाप में 'यद्योदा की ब्रान्मन्वलीला' नामक बीस पदों का संग्रह एक हस्तलिखित ग्रन्थ में मिलता है।^१ इन पदों में ज्ञानदास-भा रचना कीगल नहीं है। पर वे आलोच्य ज्ञानदास कृत नहीं ऐसा कहने के लिए भी कोई प्रमाण नहीं। 'ज्ञानदाम' की छाप में एक वैष्णव-आगम-निबन्ध 'भागवत तत्वलीला' या 'भागवतोत्तर' मिला है।^२

अनन्तदास जीवन वृत्त और रचनाएँ--

कवि अनन्तदास अद्वैत-आचार्य के शिष्य थे। अनन्तदास कटवा के उत्तम में उपस्थित थे।^३ अनन्त आचार्य नाम के भी अद्वैत आचार्य के एक शिष्य थे, संभवतः उल्लेखित कवि और ये अभिन्न रहे हों परन्तु इन दोनों के जीवन-सम्बन्धी विशेष विवरण न मालूम होने से निश्चित रूप में कुछ कहा नहीं जा सकता। अनन्त आचार्य रचित एक बगला पद प्राप्त है। 'राय अनन्त' की छाप से भी दो बगला पद मिले हैं। ये दोनों पद अत्यन्त साधारण कोटि के हैं अतएव अनुमान होता है कि ये 'राय अनन्त', आलोच्य कवि तथा अनन्त आचार्य से स्वतंत्र हैं। राय अनन्त तथा अनन्त आचार्य कृत कोई भी ब्रजबुलि पद उपलब्ध नहीं, अतएव उन दोनों की चर्चा यहाँ नहीं की जा रही है।

अनन्तदास की छाप में २१ ब्रजबुलि पद मिले हैं। उनमें से निम्नोद्भूत पद ब्रजबुलि पदों में अन्यतम हैं।

^१ श्रीसुकुमार सेन, 'बागला साहित्ये इतिहास', पृ० ३०३।

^२ ब्रजसुन्दर सान्याल 'शिव रहस्य' प्रबन्ध, 'प्रदीप' १३१० वंगान्द, पृ० २६८-७१।

^३ 'भक्तिरत्नाकर', नौवा अध्याय, पृ० ५८९।

^४ पदकल्पतरु, २२८५।

^५ वही, २३२८, २३३७।

कृष्ण के रूप लावण्य का वर्णन—

कृष्ण के अपूर्व रूप-लावण्य का वर्णन है—

विक्च-सरोज भान मुखमण्डल

दिठि भगिम नट-खजन-जोर ।

किये महु माधुरि हास उगारइ

पो पी आनन्दे आखि पडलहि भोर ॥

वरणि ना हय रूप वरणचिकनिया ।

किये धनपुज किये कुबलय दल

किये फाजर किये द्वन्द्वनीलमणिया ॥

अगद वलय हार मणिकुडल

धरणे नूपुर कटि किकिणी-कलना ।

अभरण-वरण किरणे अग डर-डर

कालि-दीजले जठे चादकि चलना ।

कुचित-केग वेग कुसुमावलि

गिर-पर शोभे गिति चादकि छादे ।

अनन्तदास-पहुँ अपरूप-लावणि

सबल जुवति-मन पडि गय फादे ॥^१

रूप के यथाय परिरम्कृतन के लिए कवि ने चुन-चुनकर उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है। भाव तथा भाषा वैगिष्ठ्य के लिए कवि की प्रतिभा अवश्य ही सराहनीय है।

वलराम दास जीवन वृत्त—

बंगीय वृजगुलि साहित्य के अन्तगत वलराम दास नाम से बहुत से पद रचयिता हुए। वे निम्नलिखित हैं—

- (१) वलराम दास नित्यानन्द प्रभु के गिष्य थे जोर बटवा तथा खेतरी के उत्सव (१५८०-८३ सन ईसवी) में उपस्थित थे।
- (२) प्रेम विलास के रचयिता नित्यानन्द दास का दूसरा नाम वलराम दास था। यह श्रीवृण्ड के आत्माराम दास के पुत्र और ज्ञानदेवी देवी के गिष्य थे। ये भी खेतरी के उत्सव में उपस्थित थे।
- (३) कविपति वलराम बुधारी के निवासी और रामचन्द्र कविराज के गिष्य थे।

^१ पदकल्पतरु, २६८।

(४) बलराम वसु नाम के भी एक पद रचयिता थे,^१ जिनका कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं है ।

उनमें से पहले वाले ही श्रेष्ठ और प्राचीनतम 'सगीतकारक' बलरामदास नाम से देवकीनन्दन के 'वैष्णव-वन्दना' में उल्लेखित हैं । ये वर्द्धमान जिले के दोगाछिया गाँव के रहने वाले और जाति के ब्राह्मण थे ।

रचनाएँ—

बलरामदास ने बगला तथा ब्रजबुलि दोनों में ही रचनाएँ की हैं । बलरामदास श्रेष्ठ पद रचयिताओं में से हैं । ब्रजबुलि साहित्य में गोविन्ददास, ज्ञानदास के बाद बलरामदास का ही स्थान है । हानुराग और रमोद्गार वर्णन में इन्होंने अपूर्व चमत्कार दिखाया । उनकी भाषा अत्यन्त प्राजल है । गोविन्ददास के समान ही बलराम भी छन्द-शास्त्र में कुशल थे और आलंकारिक पद रचना में तो इन्होंने अपना पूर्ण कला-चमत्कार दिखाया । निम्नलिखित ब्रजबुलि पद में प्रत्येक पक्ति का प्रथम अक्षर 'व' है । राधा के विरह में व्याकुल कृष्ण की अवस्था का वर्णन दूती राधा से कर रही है :—

राधा के विरह में कृष्ण की अवस्था—

विरह वैयाधि-वैयाकुल सो पहुँ
 बरजल धरज लाज ।
 वासर जामिनी विलपि गोवांघइ
 वसि घसि विपिनक माझ ॥
 विघु-मुखी वेदन कि कहव आज ।
 विपम-विशिल-शर बरिखने जरजर
 विकल बरजजुवराज ॥
 बहु बँदगाँघ बिबिघ गुण चातुरि
 बिछुरल सबहुँ सुरारि ।
 बरिखक ठामे बोल तोहे पावइ
 बाउर भेल बनमाली ॥
 बेशविलास विशेषहि बिरमल
 बिरमल भोजनपान ।

^१ वर्द्धमान साहित्य सभा की हस्तलिखित प्रति संख्या ५४०—एक पद ।

घोलइते बदन बचन नाहि निक्सइ
बलराम कि कहव जान ॥^१

इस पद में अलंकार चमत्कार के कारण वही भी भाव पक्ष दबा नहीं है ।
निम्नोदघृत दूसरे पद में प्राकृतिक पष्ठ भूमि के माय रास-श्रीला के अपूर्व दृश्य
का वर्णन है —

रासलीला—

मधुर समय रजनि गेव
शोहइ मधुर कानन देश
गगने उयल मधुर मधुर
विधु निरमल कातिया ।
मधुर-माधवि-केलि निकुञ्ज
फुटल मधुर कुसुम-भुज
गावइ मधुर भ्रमरा भ्रमरि
मधुर मधुहि मातिया ॥
आजु खेलत आदे भोर
मधुर जुवति नव किशोर ।
मधुर वरज रगिणि मेलि
करत मधुर रभस-बेलि ॥
मधुर पयन बहइ मद
कुजये कोकिल मधुर-छद
मधुर विहगि गरद-सुभग
नदहि विहग-पातिया ।
रवइ मधुर गारि कीर
पढ़इ ऐछन अमिया-गीर
नटइ मधुर मउर मउरि
रटइ मधुर भातिया ॥
मधुर मिलन खेलन हास
मधुर मधुर रस विलास
मदन हेरइ धरणि लुठइ
वेदन फुटइ छातिया ।

^१ अप्रकाशित पदरत्नावली, १८३ ।

मधुर मधुर चरित-रीत
 बलराम-चिते फुरज नीत
 दुहुंफ मधुर चरण सेवन
 भावने जनम जानिया ॥^१

चैतन्य संबंधी पद—

बलरामदास ने चैतन्य देव पर भी बहुत सुन्दर पद रचे हैं। उदाहरण के लिए ब्रजवर्णित का एक पद उद्धृत है -

कलियुग-मत्त-मत्तंगज-भरदने
 फुमति-करिणि दुर गेल ।
 पामर दुरगत नाम-मोति दात-
 दाम फण्ट भरि देल ॥
 अपरुष गौर विराज ।
 श्रीनवद्वीप-नगर-गिरि-कन्दरे
 उयल केदारि-राज ॥
 संकीर्तन-रण हृष्टति शुनइते
 दुरित दीपि-भण भागि ।
 भये आकुल अणिमादि मृगीकुल
 पुणवत गरत्र तैयागि ॥
 त्याग जाग जम तिरिनि वरन सम
 शत्रु जम्बुकि जरि जाति ।
 बलराम दास कह अतये से जग माह
 हरि-धनि शब्द खेयाति ॥^२

काव्य का वैशिष्ट्य —

पद की अन्तिम कुछ पक्तियों में मिह (हरि) और भगवान् (हरि) का रूपक अत्यन्त सुन्दर और सार्थक है। इस पद में यह मालूम होता है कि बलरामदास विगुह साहित्य के मर्मज्ञ थे।

१६वीं शताब्दी के पद रचयिताओं में वात्मल्य रस के सुन्दर कृतित्व के लिए ये स्मरणीय हैं। इस क्षेत्र में उन्होंने रामानन्द वसु का ही अनुसरण

^१ पदकल्पतरु, २४९७।

^२ वही, ६१७।

किया। वात्सल्य रस विषयक इनके पद बंगला में ही रचे गए। इनके बंगला पद अत्यन्त सरल और ममस्पर्शी हैं।

गोविन्ददास कविराज जीवन वृत्त—

वृष्णव-साहित्य में गोविन्द नाम के एकाधिक पद रचयिता हुए हैं—(क) गोविन्दनाम कविराज, (ख) गोविन्ददास चन्द्रवर्ती, (ग) गोविन्ददास आचाय। वृष्णव गीति कविया में श्रेष्ठ और ब्रजवृत्ति साहित्य के श्रेष्ठतम पद रचयिताओं में गोविन्ददास कविराज हैं।

इनका जन्म १५३५ सन् ईसवा के लगभग अनुमान किया जाता है। इनके पिता चिरजीव माता सुनन्दा और मातामह श्रीवृष्ण निवासी दामोदर थे। गोविन्ददास के बड़े भाई रामचन्द्र कविराज नरात्मदास के घनिष्ठ मित्र थे। बाल्यकाल में ही पिता के दहान्त हो जाने के कारण दोनों भाई ननिहाल में पले। बाद में पतृव निवास स्थान कुमारनगर और उसके बाद तेलिया बुधरी ग्राम में जाकर बस गए। गोविन्ददास की स्त्री का नाम महामाया और एक मात्र पुत्र का नाम दिव्य सिंह था। दिव्यसिंह के पुत्र घनश्याम दास कविराज १७वीं शताब्दी के श्रेष्ठ कवियों में से हुए।

मातामह के प्रभाव से रामचन्द्र और गोविन्द दोनों ही शक्तमत के प्रति आकृष्ट हुए। संभवतः शक्तमत ही उनके ननिहाल का कुल धर्म था। परन्तु बाद में रामचन्द्र कविराज फिर गोविन्दनाम श्रीनिवास-आचाय से दीक्षा ग्रहण करके वृष्णव ही गए। इनके वृष्णव धर्म परिवर्तन के विषय में 'प्रेम विलास', 'भक्तिरत्नाकर' आदि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि जब रामचन्द्र कविराज विवाह के बाद डोली में लौट रहे थे तो रास्त में श्रीनिवास आचाय ने उनके रूप और व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होकर कहा 'ऐसा सुन्दर पुरुष यदि कृष्णभजन करे तो रूप साधक ही। यह बात रामचन्द्र के मन में चुम्ब गई और दूसरे ही दिन आचाय द्वारा वृष्णव धर्म में दीक्षित हो गए। उसके बाद से ये एक सच्चे निष्ठावान वृष्णव भक्त बन गए और गुरु के साथ खूब तोर्पाटन किया। कहा जाता है कि गोविन्ददास एक बार कठिन रोग ग्रस्त हुए जिसमें उनके बचने की कोई आशा नहीं थी। ऐसी अवस्था में मुमुक्षु गोविन्ददास ने अपनी परम आराध्य देवी भगवती का स्मरण किया। देवी ने आकाशवाणी में कहा— विपत्ति में श्री मधुसूदन का नाम ही सार है। अनन्य वकुण्ठविहारी श्रीगोविन्द का स्मरण करा, वे ही विपत्ति से तुम्हें मुक्ति देंगे। गोविन्ददास

ने सब समाचार भाई को लिख भेजा । दयार्द्र आचार्य ने रामचन्द्र कविराज के साथ याजी ग्राम से वुधरी ग्राम में जाकर गोविन्ददास को श्री श्रीराधाकृष्ण चतुराक्षर मंत्र से दीक्षित किया । अत्यधिक आश्चर्य की बात हुई कि महामंत्र ग्रहण के बाद ही गोविन्ददास रोगमुक्त हो गए । ये खेतरी के उत्सव में उपस्थित थे । इनकी मृत्यु अनुमानत १६१३ सन् ईसवी में हुई । वैष्णव होने के बाद गुरु की आज्ञा से इन्होंने राधाकृष्ण-लीलागीति की रचना आरम्भ की । एकाधिक गोविन्द पद रचयिता के कारण गोविन्ददास तथा 'गोविन्द' छाप वाले विभिन्न पद रचयिताओं के पद परस्पर घुलमिल गए हैं ।

रचना वैशिष्ट्य—

परन्तु ब्रजबुलि के कवि शिरोमणि गोविन्ददास की भाषा में ऐसी विशेषता है कि थोड़े विचार से ही उनके पद अनायास पृथक किए जा सकते हैं और बहुत कुछ इसी आधार पर किए भी गए हैं । गोविन्ददास की भाषा विशुद्ध ब्रजबुलि है, उसमें तद्भव की अपेक्षा तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दों का ही बहुत प्रयोग हुआ है । इनकी रचना शैली में छन्दवैचित्र्य है । अनुप्रास, उपमा, रूपक के प्रयोग में भी कवि अत्यन्त पटु है । शब्द झंकार और पद लालित्य में ये बहुत कुछ विद्यापति के निकट है । यदि यो कहे कि इस क्षेत्र में इन्होंने विद्यापति का ही अनुकरण किया तो अत्युक्ति न होगी । एक बात अवश्य है कि ब्रजबुलि के अत्युत्तम कवि द्वय ज्ञानदास तथा बलरामदास के पदों में जो अतुलनीय मार्मिकता है वह इनके पदों में कम है । कवि भाषा चमत्कार में ही अधिक उलझा, भावों की गहराई में प्रवेश के लिए वह प्रयत्नशील नहीं । कविराज के काव्य का विशिष्ट्य माधुर्य गुण उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

रसनारोचन श्रवणविलास

रचइ रुचिर पद गोविन्ददास ।

गोविन्ददास कविराज के काव्य कला के निदर्शन के लिए कुछ थोड़े पद उद्धृत किए जा रहे हैं—

कृष्ण के अनुपम रूप सौन्दर्य का निम्नोद्धृत दोनों पदों में निस्सन्देह अति सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

नन्दनन्दन-चन्द चन्दन-गांधनिन्दित अंग ।

जलदसुन्दर-कम्बुकन्धर निन्दि सिन्धुर भंग ॥

प्रेम-आकुल-गोप गोकुल-कुलजकामिनीकान्त ।

कुसुमरंजन-मंजुवज्जुल-कुंजमन्दिर सन्त ॥

गण्डमण्डल-वलितकुण्डल उडे चूड गिखण्ड ।
कलिताण्डय-तालपडित बाहुदण्डितदण्ड ॥
कजलोचन कलुपमोचन श्वणरोचन भाय ।
अमलकमल-चरणकिशलय निलय गोवि-दास ॥^१

कृष्ण के रूप का वर्णन—

अरुणित चरणे रणित मणि-मजिर
— आध आध पद चलनि रसाल ।
काचन-वचन वसन-मनोरम
अलिबुल मिलित ललित वन-भाल ॥
भाले बनि आवत मदन-मोहनिया ।
अगहि अग अनग-तरगिम
रगिम भगिम नयन-नाचनिया ॥
माझहि खीन पीन-उर-अम्बर
प्रतार-अरुण किरण मणि राज ।
कुजर-करभ-करहि कर-वचन
मलयज ककण वलय विराज ॥
अघर-सुधा-सर मुरलि-तरगिणि
विगलित रगिणि-हृदय-दुकूल ।
मातल नयन भ्रमर जनु भ्रमि भ्रमि
उडि पडत धृति-उतपल-मूल ॥
रोचन तिलक चूडे बनि चद्रक
वेदल रमणि-मन मधुकर-भाल ।
गोवि-दास चिते निति निति विहरइ
इह नागर-वर तरुण तमाल ॥^२

राधा की कमनीय गामा का वर्णन -

शरद-सुधाकर-मण्डल-मण्डन
सण्डन वदन विकाराग ।
अघरे मिलायत न्याम-मनोहर
चीत-चौरायनि हास ॥

^१ पद बल्पतरु २४१९ ।

^२ वही, २४२४ ।

आजु नव श्याम विनोदिनि राइ ।
 तनु तनु अतनु-जूथ-शत-सेवित
 लावणि वरणि न जाइ ॥
 कवरि-चकुल-कुले आकुल अलिकुल
 मधु पिवि पिवि उतरोल ।
 सकल अलंकृति कंकण झंकृति
 किंकिणि रणरणि बोल ॥
 पद-पंकज पर मणिमय नूपुर
 रणझण खंजन-भाष ।
 मदन-मुकुर जनु नख-मणि-दरपण
 नीछनि गोविन्ददास ॥^१

ध्वन्यात्मक नाद-सौन्दर्य का चमत्कार इन पदों में अपूर्व है ।

लज्जा-वर्णन—

स्वाभाविक लज्जावश राधा ने कृष्ण के प्रति अनुराग को सखियों से छिपा रखा है । अतः सखियों की आख बचाकर अत्यन्त सतर्कता से राधा कृष्ण से मिलने जा रही है, पर इतने पर भी सखियां देख ही लेती हैं—

चौदिके चकित-नयने धन हेरसि
 झांपसि झापल-अंग ।
 वचनक भाति बुझइ नाहि पारिए
 काहा शिखलि यह रंग ॥
 सुन्दरि, की फल परिजन बाचि ।
 श्यामसुनागर-गुपत प्रेमधन
 जानलुं हिय-माहा साचि ॥
 ए तुआ हास मरम प्रकाशइ
 प्रति अंग भगिम् साखी ।
 गांठिक हेम वदन-माहा झलकइ
 एतदिने पेखलुं आखि ॥
 गहन मनोरथे पन्थ ना हेरसि
 जीतलि मनमथराज ।

^१ पदकल्पतरु, २४६३ ।

गोविन्ददास कहइ धनि विरमह
मौनिह समुझल काज ॥^१

राधा कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का लाख प्रयत्न करके भी छिपा नहीं पाती क्योंकि उनके अग प्रत्यग के हाव-भाव उस प्रकट किए दते ह इसे कवि कितने सुन्दर, बलापूण ढग से व्यक्त करता है गाठिक हम बदन माहा झलकइ ।

राधा का श्याममय रूप—

राधा कृष्ण प्रेम में विभार ह । प्रेमाधिक्य के कारण वह श्याममय हो जाना चाहती है, उनकी इस मानसिक अवस्था का कितना यथाथ वर्णन है—

लोचने श्यामर बचनहि श्यामर
श्यामर चारुनिचोल ।
श्यामर हार हृदय मणि श्यामर
श्यामर सखी कह कोर ॥
माधव, इये जदि बोलयि जान ।
अचपल कुलवती-भति उमतायलि ।
किये तुहु मोहिनी जान ॥
मरमहि श्यामर परिजन पामर
झामर मुग-अरवि-द ।
झरझर लोरहि लोलित पाजर
विगलित लोचननि-द ॥
मनमय सागर रजनि उजागर
नागर तुहु किए मोर ।
गोविन्ददास कतहु आशोअसय
मिलवहु नद किशोर ॥^२

अभिसार—

घोर वर्षा की रात को कृष्ण से अभिसार के लिए राधा जाने को तयार ह । सबियाँ विभिन्न प्रकारा से समझाती ह जिससे इम दुदिन की काली रात में राधा घर से बाहर न जाएँ, पर उस प्रेम दीवानी का ससार की कठिन स कठिन बाधा भी रोक नहीं सकती—

^१ पद कल्पतरु, २२७ ।

^२ वही, ४० ।

कुल मरियाद-कपाट उदघाटलूं
 ताहे कि काठ-कि बाधा ।
 निज मरियाद-सिन्धु संयं पंवरलु
 ताहे कि तटिनि अगाधा ॥
 सहचरि मझु परिलखन कर दूर ।
 जंछे हृदय करि पन्य हेरत हरि
 सोवरि सोवरि मन झूर ॥
 कोटि कुसुम-शर वरिषये जछु पर
 ताहे कि जलद-जल लागि ।
 प्रेम-दहन-इह नाक हृदय सह
 ताहे कि वजरफ आगि ॥
 जछ पदतत्वे निज जीवन सोंपलूं
 ताहे कि तनु अनुरोध ।
 गोविन्दवाम कहइ धनि अभिसर
 सहचरि पाओल बोध ॥^१

मुरली-वादन—

शरव की अत्यन्त सुन्दर रात है । पूर्ण चन्द्र के उदित होने से सम्पूर्ण प्रकृति पर अपूर्व सौन्दर्य और मादकता विकीर्ण हो रही है । कृष्ण के मन में रास नृत्य की इच्छा स्फुरित होती है और वे मम्मोहन वांमुरी के स्वर में ब्रज की सुन्दरियों का आह्वान करते हैं, जिस मुरली रव को सुनते ही मुग्ध बुध विसराकर ब्रज रमणिया जिस अवस्था में होती है वैसे ही दौड़ पडती है । उसी चित्रहारी अभूतपूर्व दृश्य का मनोरम वर्णन हुआ है—

शरद-चन्द पवन मन्द
 विपिने भरल कुसुम-गन्ध
 फुल्ल मल्लिका मालति जुधि
 मत्त-मधुकर-भोरणि ।
 हेरत राति ऐछन भाति
 श्याम मोहन मदने माति
 मुरलि-गान पंचम तान
 कुलवति-चित्त चोरणि ॥

^१ पदकल्पतरु ९८८ ।

गुनत गोपि प्रेम रोपि
 मनहि मनहि आपन सोंपि
 ताहि चलत जाहि बोलत
 मुरलिव कल लोलनि ।
 बिसरि गेह निजहु बेह
 एक नयने बाजर रह
 बाहे रजित ककण एकु
 एकु कुण्डल डोलनि ॥
 निधिल-छन्द निबिक बघ
 बेगे घायत जुधतिबद
 लसत यसन रसन चोलि
 गलित घेणि लोलनि ।
 ततहि बेलि सखिनि मेलि
 केहु बाहुक पय ना हेरि
 ऐछे मिलन गोकुल-चद
 गोविन्ददास गावनि ॥^१

कृष्ण के रूप का वर्णन—

जब गोप बालाएँ अधीर हो आगे का बढनी हैं तो श्रीकृष्ण उन्हें बाले बादल के समान प्रतीत होते हैं । इस पूरे पद में सन्नेह अलवार के द्वारा कृष्ण का रूप अत्यन्त सुन्दर ढंग से वर्णित हुआ है—

मुरपति—घनु कि शिखरक चूड ।
 मालति—झुरि कि बलाचिन उड ॥
 माल कि आपल यिपु आप-खण्ड ।
 करिवर—कर बिय ओ भुज-दण्ड ॥
 ओ कि दयाम नट राज ।
 जलद बल्प—तद सधनि—समाज ॥
 हर—किसलय बिये अरुण विकान ।
 मुरलि—मुरलि बिये चानक—भाष ॥
 हास कि झरये अमिया मकरद ।
 हार कि तारक—दोतिब छन्द ॥

^१ पदवलयद, १२५५ ।

पद-तले कि थल-कमल घन-राग ।
 ताहै फलहंस कि नूपुर जाग ॥
 गोविन्ददास कहये मतिमन्त ।
 भुलल चाहे द्विज राय वसन्त ॥^१

कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना—

कृष्ण को बहुत जल्दी ही वृन्दावन छोड़कर मथुरा जाना है। सखियाँ यह समाचार जानती हैं, इस समाचार से राधा पर पाला पड़ जाएगा, जानकर उनसे छिपाए ही रहती है, पर अनन्य प्रेमिका राधा को चैन कहा, उनका अन्तःकरण तो सूचना दे ही रहा है। वे सखियों से कहती हैं—

क्षापल उत्तपतलोरे नयान ।
 कँछे फरत हिया किछुड ना जान ॥
 तुहु पुन कि करवि गुपतहि रासि ।
 तनु मन दुहुं मुझ दैयत साखी ॥
 तव काहे गोपनि कि कहव तोय ।
 वजरक वारण कर—तले होय ॥
 जानलुं रे सखि मानक ओर ।
 पिया परदेश चलव मोहे छोड़ ॥
 गमनक समय विरोध जनि कोय ।
 पियाक अमंगल जँछे ना होय ॥
 समय—समापन की फल आर ।
 प्रेमक समुचित अवहुं निवार ॥
 गोविन्ददास अतये अनुमान ।
 पिया परदेशि काहे रह प्राण ॥^२

वियोग अवस्था की कामना—

कृष्ण मथुरा चले गए, पुन वृन्दावन आने की आशा भी अब रच मात्र शेष न रही। राधा की विरहजन्य पीड़ा तीव्रतम हो उठी है। सयोग की कृष्णमयी राधा वियोग में भी उसी दशा की अनुभूति चाहती है जो इस जड़ शरीर के रहते संभव नहीं। अतः वे कामना करती है—

^१ पदकल्पतरु, १०५० ।

^२ वही, १६०१ ।

आहां पट्ट खरना-खरना खल जात ।
 ताहां ताहां परनि हृदये मनु गात ॥
 जो सरोवरे पट्ट निति निति माह ।
 हाम भरि सक्ति होइ तयि माह ॥
 ए सति बिरह—मरण निरद्वेद ।
 ऐछने मिलह जय गाहुलघर ॥
 जो हरपणे पट्ट निज-मुन चाह ।
 मनु अग जानि होई तयि माह ॥
 जो योग पट्ट बाजइ गात ।
 मनु अग ताहि हाइ महु खात ॥
 जाहां पट्ट भरमइ जउपर-याम ।
 मनु अग गणा होइ सत्त ठाम ॥
 गोविंददास कह बांषन-गौरि ।
 सा मरबत-तनु तोहे किय छाड़ि ॥^१

निसंग्रह यह पद भाव का दृष्टि से विभी भी साहित्य के अन्तर्गत उन्नतम रूपान प्राप्त करेगा ।

सूत्र अन्वय की दृष्टि से भी गाविल्याग ने शुद्ध रस की रचना की है । नीचे के पद में अनुभाग अन्वय का उदाहरण ही बनती है ।

अलंकार की छटा—

हरण के मधुरा खल जात पर इत-बागामा की रस का बन्द है —

जानने कामिना बाह मा आय ।
 बाति-दो-बुल बाण्य तर-नाम ॥
 कुंज कुटीर माता बाइद बोइ ।
 करे गिर हाइ कुलाए पौइ ॥
 मर्मनि—मार्तण्ड मागत अंग ।
 मखिन निहाये मा ओबइ केर ॥
 मकमो-निर्गल मय मय बाता ।
 मागत बिरह-दुखान-बाणा ॥
 मलय नाम गान्त मरि मर ॥
 मरुवर निमित्त मरिदक भग तात ॥

गोकुले गोप-रमणि अछु भेल ।
गरल-गरामने गोविन्द गेल ॥^१

इस एक ही उदाहरण से यह स्पष्ट है कि कवि इस प्रकार की रचना करने में भी कुशल है ।

चैतन्य वन्दना--

गोविन्ददास ने श्री चैतन्यदेव की वन्दना विषयक कुछ पदों की भी रचना की है । उदाहरण के लिए एक पद उद्धृत किया जाता है—

चम्पक सोन-कुसुम कनकाचल
जितल गौर तनु लावणि रे ।
उन्नतगीम-सीम नाहि अनुभव
जग मन मोहिनी भावनी रे ॥
जय शचीनन्दन रे ।

त्रिभुवन मण्डन कलिजुगकाल-
भुजगभयखण्डन रे ॥

विपुल पुलक कुल-आकुल कलेवर
गरगर-अन्तर प्रेम भरे ।

लहलह हासनी गदगद भाषणी
कत मन्दाकिनी नयने झरे ॥

निज रसे नाचत नयन ढुलायत
गायत कत कत भक्तहि भेलि ।

जो रसे भासि अवश मही मण्डल
गोविन्ददास तहि परश ना भेलि^२ ॥

इन दो-चार विभिन्न रचना शैली के पदों के उदाहरण से इतना स्पष्ट है कि शब्द-शंकार और पद-लालित्य में गोविन्ददास कविराज के पद ब्रजबुलि साहित्य में अनुलनीय हैं ।

रचनाएं—

गोविन्ददास कविराज सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे । उन्होंने 'सगीतमाधव' नामक एक सस्कृत नाटक की रचना की थी । नरोत्तमदास के चचेरे भाई

^१ पदकल्पतरु, १७२८ ।

^२ वही, ३ ।

और गिष्य सन्तोपदत्त के अनुगोष से इस नाटक में कुछ संस्कृत तथा ब्रजबुलि के पद लिखे गये ऐसा अनुमान होता है^१। गोविन्ददास के साथ बन्दावनवासी श्रीजीव गास्वामी का पत्र व्यवहार था। इस प्रकार का एक पत्र भक्ति रत्नावर^२ में उद्धृत है। इनकी कवित्व शक्ति से मूग्ध होकर श्रीजीव ने इन्हें कवीन्द्र अर्थात् 'कविराज की उपाधि से भूषित किया था।

कवि शेखर राय जीवन वृत्त एवं रचनाएँ —

कवि शेखर राय १६ वा शताब्दी के श्रेष्ठ ब्रजबुलि कवियों में से थे। ब्रजबुलि तथा बंगला दोनों प्रकार के पदा में ही कवि का रचना नपुष्य प्रकट होता है। काव्य और पदावली की छाप में इन्होंने 'कविशेखर', 'शेखर', 'शेखर राय', 'राय शेखर' इत्यादि का प्रयोग किया है पर इनका असली नाम था देवकीनन्दन सिंह। कवि शेखर राय द्वारा रचित 'गोपालविजय' काव्य में कवि ने अपना चाड़ा कुछ आत्म परिचय दिया है—सिंह बंग में जन्म हुआ पिता का नाम चतुभुज और माता का नाम हीरावती है। नाम देवकीनन्दा है पर लाग श्रीकविशेखरराय कहते हैं। कृष्ण ही जिसके जीवन-सवस्व है^३। इनका आदि निवास स्थान बर्द्धमान जिले का पडान ग्राम था। श्रीखण्ड के रघुनन्दन गोस्वामी के गिष्य थे।

कविशेखर का पदावली संग्रह दण्डारिका लीला नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अष्ट प्रहर का लीला विलास तीस दण्ड में विभक्त हुआ है। कुछ पदा क वणन-कौशल्य में कवि विद्यापति का समकक्षी हैं। उदाहरणाय राधा का निशाभिसार सबधी यह पद—

निशाभिसार—

राजर-रुचि-हर रयनि विगाला ।

तछु पर अभिसार बध ब्रज-बाला ॥

^१ श्रीसुबुमार भट्ट— बंगला साहित्ये इतिहास, पृ० ३३० ।

^२ प्रथम तरंग ।

^३ सिंहवगे जन्म नाम देवकीनन्दन

श्रीकविशेखर राय बङ्ग सध्वजन ।

याप चतुभुज नाम मा हीरावती

कृष्ण जार प्राण धन मुल लील जानि ।

घर संये निकसये जैछन चोर ।
 निशबद पय-गति चर्लाल्ह थोर ॥
 उनमत चित अति आरति बियार ।
 गुरुया नितम्ब नव जीवन-भार ॥
 फमलिनि माझा खिणि उच कुच-जोर ।
 घाघसे चलु कत भावे विभोर ॥
 रंगिणि सगिनि नव नव जोरा ।
 नव अनुरागिणि नव-रसे भोरा ॥
 अगक अभरण वासये भार ।
 नूपुर किंकिणि तेजल हार ॥
 लीला-कमल उपेखलि रामा ।
 मन्यर-गति चलु धरि सखि श्यामा ॥
 जतर्नाहि नि.सरु नगर दुरन्ता ॥
 शेर अमरण भेल बहन्ता^१ ॥

रचना कौशल में विद्यापति से साम्य—

रचना कौशल में विद्यापति जैमी कुशलता के कारण इनके बहुत से पद विद्यापति के नाम से विभिन्न संग्रह ग्रन्थो मे मकलित हैं । निम्नोद्धृत उत्कृष्ट पद के रचयिता कविशेखर हैं परन्तु आज भी वह विभिन्न संग्रह ग्रंथो में विद्यापति की छाप से चला आ रहा है ।

वर्षा-ऋतु में विरहिणी की दशा—

भादो की वरसाती काली अघेरी रात और प्रिय प्रवासी है, शून्य गृह-स्थिता विरहिणी सखी से अपनी व्यथा सुना रही है—

ए सखि हामारि दुखेर नाहि ओर ।

ए भर वादर माह भादर
शून्य मन्दिर भोर ॥

झम्पि घन गर-जन्ति सन्तनि
भुवन भरि बरिखन्तिया ।

कान्त पाहुन काम दारुण
सघने खर शर हन्तिया ॥

^१ पदकल्पतरु, २७०६ ।

11
L
J

v j

T -

T a v

v

v

v

v

v

v

v

v v

v v

v

v

v

v

v

v

v

v

v

v

v

v

v

v

भाव कामान वाण दृगंचल
 चन्दन रेल ताहे गुण ॥
 कम्बु कण्ठे मणि-हारा विराजित
 काम-कलकित शोभा ।
 चरण-अलंकृत-मंजरि शंकृत
 राय शेखर मन लोभा^१ ॥

कविरंजन, कविशेखर, विद्यापति—

एक चैतन्य सम्प्रदायभुक्त बगाल का कवि 'द्वितीय विद्यापति' ^२नाम से प्रसिद्ध था, इस विषय पर सबसे पहले शोरीन्द्र मोहन गुप्त ने गोपालदाम रसिकदास के शाखा निर्णय के अवलम्बन पर प्रकाश जाला है^३ । रसिकदास ने कविशेखर को रघुनन्दन के अष्टम शाखाभुक्त माना है और नवम शाखा में कविरंजन को स्थान दिया जिनकी छोटे विद्यापति रूप से ख्याति थी^४ । कविरंजन के ब्रजबुलि पद विद्यापति के अनुकरण पर रचित होने के कारण सकलनकर्त्ताओं और सम्पादकों की अनभिज्ञता के कारण वे पद इस धारणा-वश कि कविरंजन विद्यापति की ही उपाधि थी, विद्यापति के पदों में सम्मिश्रित कर दिए गए ।

कविरंजन की ब्रजबुलि रचना के उदाहरण के लिए यह पद उद्धृत है—

राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ा—

प्रेम-क्रीड़ा-मग्न राधा-कृष्ण के रूप का वर्णन—

उदसल कुन्तल-भारा ।
 मुरति शिगार-लखिमि अवतारा ॥
 अतिशय प्रेम-विकारा ।
 कामिनि करत पुरुख-बिहारा ॥

^१ पदकल्पतरु, २१५८ ।

^२ 'छोटो विद्यापति' ।

^३ द्रष्टव्य—'समालोचनी' फाल्गुन १३११ बंगाब्द, पृ० ३३६-३८; 'प्रदीप', श्रावण १३१२ बंगाब्द, पृ० १२१-२२ ।

^४ द्रष्टव्य—'समालोचनी' फाल्गुन १३११ बंगाब्द, पृ० ३३६-३८; 'प्रदीप', श्रावण १३१२ बंगाब्द, पृ० १२१-२२ ।

डोलत मोतिम हारा ।
 जामुन-जले जछ दूधक धारा ॥
 कुच-कुम्भ पालटल बयना ।
 रस अमिया जनु ढारल मयना ॥
 प्रियतम कर तहि देवा ।
 सरसिज माहे जनु रहल छकेवा ॥
 ककण किंकिणि बजे ।
 जय जय डिडिम मदन समाजे ॥
 रसिक शिरोमणि कान ।
 कवि रजन रस भान ॥^१

यह एक पद ही कवि का उत्तम काटि का प्रमाणित करने के लिए पयाप्त है । कवि रजन तथा कवि शेश्वर दाना ने ब्रजबुलि तथा बंगला में पदा की रचना की, रचना शैली भी एक ही समान है, दोनों ही जाति के वद्य श्रीखण्ड के रहने वाले और रघुनन्दन के शिष्य थे । अतएव सुकुमार सेन महाराज कविशेखर और कवि रजा दोनों का एक ही व्यक्ति मानते हैं और उनका अनुमान है कि 'कविरजन' का ही 'कविशेखर' नामान्तर या उपाधिभेद है । कम से कम कविरजन छाप के कुछ विगिष्ट पद तो कविशेखर द्वारा ही रचित हैं ऐसा उनका दृढ़ विश्वास है ।

अतएव यदि कवि शेश्वर-कविरजन विद्यापति (बंगाल) का एक ही व्यक्ति मान लें तो अनुचित नहीं ।

रचनाएँ—

कविशेखर संस्कृत व भी प्रकाण्ड विद्वान थे । संस्कृत में 'गोपालचरित' महाकाव्य और 'गोपीनाथविजय' नाटक की रचना की । गोपालविजय के उपक्रम में उल्लेखित कवि की बंगला रचना 'गोपालेर कीर्तन-अमृत' बहुत संभवतः राधाकृष्णलीला पदावली थी ।

वल्लभदास वल्लभ-छाप—

पद-कल्प-तरु में वल्लभदास छाप के बहुत स पद संकलित हुए हैं । वैष्णव साहित्य के पद रचयिताओं में बहुत वल्लभ हुए हैं जैसे आलोच्य कवि

^१ पदकल्पतरु १०७८ ।

^२ श्रीसुकुमार सेन 'बांगला साहित्ये इतिहास' पृ० २१७-२१८ ।

वल्लभ-दास, श्री वल्लभ, कवि वल्लभ, राधावल्लभ, श्रग्वल्लभ आदि । अतएव केवल 'वल्लभ' छाप के पदों को पृष्ट प्रमाणाँ के अभाव में अनिश्चितता के साथ ही किमी कवि विशेष की रचना के अन्तर्गत राखा गया है ।

जीवन वृत्त—

वैष्णव-मठवाली में संगृहीत वल्लभदास की छाप वाले पदों में कवि ने नरोत्तमदास ठाकुर की स्पष्टतया अपने गुरु रूप में स्तुति की है । अनुमान है कि वल्लभदास श्रीनिवानाचार्य, नरोत्तम दास ठाकुर और रामचन्द्र कविराज का नमनामयिक पद रचयिता और नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे । 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ के अनुसार वल्लभदास जाति के वैद्य और कविराज उपाधि में भूषित थे । भक्त प्रयोग होने के कारण ये 'भक्ति-मूर्ति' और 'भक्ति अग्रिकारी' भी कहलाते थे । इन सब जीवनी विषयक विवरणों को मत्स्य मान लेने में कोई आपत्ति नहीं परन्तु इन ग्रन्थ के अनुसार वल्लभदास श्रीनिवानाचार्य के प्रिय शिष्य थे और कवि रचित पदों के साथ में इसमें विरोध है । यह ठीक है कि श्रीनिवानाचार्य के शिष्यों में श्री वल्लभदास थे परन्तु आलोचित पदों के रचयिता वल्लभदास नरोत्तम ठाकुर के ही शिष्य थे इतना तो निश्चित है ।

'वल्लभदास' छाप के २५ वगला तथा ब्रजदुलि पद 'पदकल्पतरु' में संगृहीत हुए हैं । जिनमें में १७ पद 'वल्लभदास' की छाप, ७ पद 'वल्लभ' की छाप और एक 'श्रीवल्लभ' की छाप में मिलता है । श्रीवल्लभ लिखित पद की वल्लभदास छाप के पदों के साथ तुलना से वर्ण्य विषय और रचना शैली की समानता के कारण वे एक ही कवि रचित अनुमित होते हैं । अतएव 'वल्लभदास' और 'श्रीवल्लभ' को एक ही व्यक्ति माना गया । गोविन्ददास कविराज लिखित 'पदकल्पतरु' के दो पदों में गोविन्ददास कविराज के नाम के साथ श्री वल्लभ के नाम के उल्लेख से वल्लभदास गोविन्ददास के मित्र जान पड़ते हैं । वल्लभदास ने भी गोविन्ददास कविराज की प्रशंसा में एक पद लिखा । गोविन्ददास की जीवनी पर विशेष प्रकाश डालने के कारण इस पद का ऐतिहासिक महत्व है ।

^१ सख्या २२५, २३४ ।

^२ गोरपदतरगिणी, पृ० ४८१ ।

युगल स्वरूप—

वल्लभदास की रचना शैली के उदाहरण के लिए निम्नलिखित ब्रजवृत्त का पद उद्धृत किया जा रहा है। राधा-वृष्ण के युगल स्वरूप का अपूर्व सौभाग्य वणन की कुशलता से यह स्पष्ट होता है कि रचनाकार सुकवि है—

ओ मुख शरव सुधाकर-सुंदर
इह नलनि बल गजे ।
ओ तनु नवघन-सुंदर रजित
इह यिर दामिनि पुजे ॥
देख राधामाधव जोरि ।
दुहुक परग रसे दुहु पुलशरत
दुहु दोहा रहल आगोरी ॥
ओ नव नागर सब गुणे आगर
इह से कलावति-सीम ।
ओ अति चतुर शिरोमणि विदग्ध
ए सब गुणहि गरौम ॥
मधुर यदावने श्याम-गौरि-तनु
दुहु नव किगोरि किगोर ।
नरोत्तम दास आश धरणे रहु
थीवल्लभ-मन भोर ॥^१

‘वल्लभ छाप के कुछ ऐसे पद वैष्णव पदावली में अवश्य सगृहीत हाने जा आलाच्य कवि कृत न हाने पर भी उसी की कृति मान ली गई है पर वास्तव में जिसका रचयिता वल्लभ नामान्त हरि-वल्लभ, राधा-वल्लभ आदि हैं, जब तक इसका पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता ।

कवि वल्लभ जावन कृत—

कवि वल्लभ के पिता का नाम राजवल्लभ तथा माता वैष्णवी थी। ये बरखाया नदी के तट पर महास्थान के पास आरोग्य ग्राम के रहते थे। कवि वल्लभ के गुरु उद्धव दास थे। नरहरि-सरकार के विषय ब्राह्मण मुकुट राय कवि वल्लभ के मित्र थे। उन्हीं के अनुरोध से कवि ने ‘रस-बदम्ब’

^१ पदवन्द्यतर, १०२२ ।

रचने की रचना की। कवि कल्लभ का 'रम-नादम्ब' राधा गीताय सिद्धान्त प्रथम ही श्रीर वगीय वैष्णव साहित्य के अन्तगत सैन्यपरिचालामुक्त रचने के बाद इसी प्रथम का स्थान है। यह प्रथम कवि को महद्वयता, विविध युवावृत्ता तथा वर्णन वैलक्षण्य का पूर्ण परिचायक है।

कवि कल्लभ का कथल एत ही पद 'रम-नादम्ब' में उद्भूत हुआ है। अपूर्व भाव-नाम्नीय के कारण यह पद श्रज्जुलि साहित्य में निरन्तर जति उच्च रक्षानागिकारी है।

प्रेम प्रगाढ़ता—

रगिया राधा की प्रेमजन्य अनुभूतियों को जानने के लिए उन्मुक्त है। राधा उस प्रेम प्रगाढ़ता का विना मुन्दर परिचय देती है—

सति है कि पुद्गलि अनुभव मोष ।
सोइ पिरीनि अनु-राग बाष्पानिये
अनुगन नीतुन होय ॥
जनम अचधि हँते ओ रप नेहारलुं
नपन ना तिरपित भेला ।
लास लास जुग हाम हिये हिये मुगे मुहरे
हृदय जुड़ल नाहि नेला ॥
वचन-अनिवा-रस अनुगन शूनलुं
श्रुति-पथे परस ना भेलि ।
कत मधु-जामिनि रभसे गोवांपलुं
ना वुसलुं कँछन केलि ॥
कस विदगय जन रस अनुमोवइ
अनुभव काहु ना पेलि ।
कह कवियल्लभ हृदय जुडाइते
मिलये कोटिमें एक ॥^१

विद्यापति के पदों से साम्य—

अपूर्व उत्कर्ष और व्यजना के 'प्रेम' के भाव के कारण न्वर्गीय शारदा चरण मैत्रा महाशय तथा नगेन्द्रनाथ गुप्त महाशय ने इस पद को विद्यापति के पद-सग्रह में विद्यापति की छाप से सकलित किया। उस पद के विद्यापति कृत

^१ पदकल्पतरु, ९३७ ।

होने का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। स्वर्गीय मतान चन्द्र राय महाराय इस पद का श्रीरूप गोस्वामी के उज्ज्वल-नील-मणि' ग्रंथ की पञ्चवर्ती रचना मानते हैं। इसलिए यह पद विद्यापति रचिन नहीं हो सकता। इसने लिए व भाव-गान्ध्यान्तरीण कारण दते हैं— साईं विपरीत अनुराग वाक्यानि ए अनुखन नौतुन ह्याय' में 'पिरिति और अनुराग' शब्द का पयक प्रयाग कवि ने श्रीरूप गोस्वामी के उज्ज्वल नाकमणि' ग्रंथ में वर्णित 'अनुराग' शब्द के लक्षण विवत के अनुसार ही किया। उज्ज्वल-नील-मणि ग्रंथ में 'प्रेम' या 'पिरिति' की परिणति अनुराग शब्द के लक्षण स्वरूप कहा गया है—

‘सदानुभूतमपि य कुर्म्यान्नवनव प्रियम ।
रागो भवन्नवनव सोनुराग इतीष्यत ॥’

अर्थात् जो 'राग' या 'प्रेम' नव-नव रूप धारण करके सदा अनुभूत प्रियजन को भी नव-नव रूप से आस्वादित कराता है, उसी का 'अनुराग' कहते हैं। श्रीरूप गोस्वामी के पूर्व किसी रम गास्त्रकार ने अनुराग शब्द का विशेष अर्थ में प्रयोग नहीं किया है। यदि 'पिरिति' और 'अनुराग' शब्द का एकायक ही कवि को अभिप्रेत होना तो कवि सहज ही ऐसे प्रयाग करता कि 'साइ पिरिति ही पिरिति अथवा 'साइ अनुराग ही अनुराग' है। दूसरी बात 'पञ्चल्पतरु' तथा 'पदरससार' की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में यह पद कवि वल्लभ की ही छाप से संकलित हुआ है।

रस-नन्ध्व जने प्रौढ वण्णव ग्रंथ का रचयिता ही इस पद का रचयिता होगा ऐसा निस्संकोच माना जा सकता है। संभव है कि कवि वल्लभ के और भी सुन्दर पद विद्यापति की छाप के अंतराल में छिप गए हों।

राधावल्लभ दास जीवन वृत्त—

राधावल्लभ दास (या राधादास) श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। श्रीनिवास के शिष्यों में तान रामवल्लभ हुए उसमें से राधावल्लभ चन्द्रवर्ती ही पद रचयिता अनुमित होते हैं क्योंकि राम गोपाल दास ने 'रसकल्पवल्ली' में 'श्रीराधावल्लभ चन्द्रवर्ती ठाकुर के नाम से पद उद्धृत किया है।

^१ १४। १४६।

^२ पदक-पतरु (पंचम खंड) पृ० २७।

अनुमान होता है कि राधावल्लभ ने क्रमानुसार कृष्णलीला पदावली की रचना की थी। रासलीला मन्वन्वी १८ पदों की एक हस्तलिखित प्रति मिली है।^१ इन पदों में भागवत की कहानी का अनुसरण हुआ है।

रचनाएँ—

'राधावल्लभ' छाप के १७ पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। राधावल्लभ ने वगला तथा ब्रजबुलि दोनों प्रकार के पदों की रचना में ही नैपुण्य दिखाया है। इनके पदों का विषय नानाविध है। ये चार पद^२ ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं।

कवि की ब्रजबुलि रचना के दो एक उदाहरण दिये जाते हैं—

प्रथम दर्शनजन्य प्रेम—

राधा के प्रथम दर्शन मात्र में कृष्ण उनके प्रेमाधीन हो गए हैं। सखी से वह अपनी विरहजनित दगा का वर्णन करके राधा से मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं—

संजनि, अपरूप पेल्लू वाला ।

हिमकर मदन-मिलित मुखमण्डल
ता पर जलधर साला ॥

चंचल नयने हेरि मुझे सुन्दरी
मुचकायइ फिरि गेल ।

तेखने मरमे मदन ज्वर उपजल
जीवइते संगय भैल ॥

अहनिशि शयने सपने आन ना हेरिए
अनुखन सोई घेयाने ।

ताकर पिरीति-कि रीति नाहि समुझिए
आकुर अयिर पराण ॥

मरमक वेदन, तोहे परकाशल
तुहुं अति चतुरी मुजान ।

सो पुन मधुर मूरति दरशायवि
राधा वल्लभ गान ॥^३

^१ वगीय साहित्य परिषद् का हस्तलिखित ग्रंथ संख्या २३५३

(लिपिकाल ११११ बगाब्द)

^२ पदकल्पतरु, २३६१, २३६३, २३६८, २३७० ।

^३ वही, १९६ ।

दूती द्वारा श्रीकृष्ण के रूप-गुण प्रेम का धर्यान—

दूती राधा के पास आकर कृष्ण के रूप गुण की अथक प्रशंसा करते हुए उनकी प्रेम विह्वल दगा का वणन करती हैं। संभव है कि जिसे सुनकर राधा का मन भी कृष्णोन्मुख हो जाए।

सुन्दरि सुषदनि तुह अगेयान ।
 गिरधर पुरुष तरुण नव शशोर
 अनुखन सोहारि घेयान ॥
 जछु मुख कोटिभरदगगिलावणि
 सो तुआ दरगन आणे ।
 जछु रूप ललित मदन मुरसायइ
 सो तुआ परग अभिलाषे ॥
 जछु गुण अखिल नुवन कर कीत्तन
 सुआ गुणे तछु मन भोर ।
 को विहि अपदप तोरे निरमायल
 श्याम हृदय भणिचोर ॥
 सुपुदलपिरीति-अमिया सुत्र सागर
 अतए करबि अवागाह ।
 ताकर बचने जीउ निग्भमह
 लाज धरम गेट नाह ॥
 सो मुकुमार-हृदय भेल आकुल
 मीलह ताते अति साधे ।
 कह राधावल्लभ जयहुं ना मीलहु
 प्रेम करव परमादे ॥^१

रचनाएँ—

राधावल्लभ ने रघुनाथ दास गाम्बामी के 'विलापकुसुमाजलि' का बंगला पद्य में अनयाद किया। उन्होंने कुछ गीत प्रकाशक अर्पान दीनेक पत्र भी लिखे थे।^२ राधावल्लभ दास तत्त्व सवधी निबन्ध सहज तत्त्व^३ के रचयिता

^१ अप्रकाशितपत्ररत्नावली ४३० ।

^२ यद्यमान साहित्य मन्ना की हस्तलिखित प्रथम मस्या २५५ ।

^३ लिपिकाल १९०५ बंगाल साहित्य परिषद पत्रिका ६ पृ० ७६०७ ।

है। हाल ही में श्रीमृगुमार गेन को 'हरिनामार्थ'^१ रचा बल्दमदाम की छाप में मिला है। उनको अपनी रचनाओं में स्पष्ट है कि कवि राधावल्लभ दाम प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।

प्रसाद दास : जीवनवृत्त—

प्रसाद दास विष्णुपुर निवासी कल्याणदास के पुत्र थे। 'मधुमदार' इनकी वरगत उपाधि थी। उनके श्रमज जानकीगण दास भी अच्छे कवि थे। दोनों भाई ही श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।^२ आचार्य प्रभु की कृपा से प्रसाद दास 'कविपति' हो गए।

रचनाएँ—

पदकर्ता प्रसाद दास के केवल ६ पद ही पदकल्पतरु में मन्त्रित हुए हैं। उसमें से तीन वात्मन्वय विषयक^३, दो नित्यानन्द प्रभु की स्तुति विषयक^४ हैं। गोष्ठ-विहार मन्वन्वी ब्रजवृत्ति का एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

गोष्ठ विहार—

सबहुं मिलित जमुना-तीर
अंजलि पुरि पियत नीर
चैठल तहि तरर छाय
घोच नन्द-नन्दना ।

नविन-निरद-चरण जोति
नासाये ललके झलके मोति
उरे विलम्बित कदम्ब-माल

भाले तिलक-चन्दना ।

कुन्द-कलिक-कलित-चूड़े
मन्द पवने वरिहा उडे
कटि-तटे किये पीत वसन
वाहे शोभित कंकणा ।

^१ विश्वभारती का हस्तलिखित ग्रन्थ मख्या, ८४ ।

^२ कर्णानन्द; प्रेम-विलास, २० ।

^३ पदकल्पतरु ३९०, १३२२, २०८५ ।

^४ वही—२७८, २३०५ ।

हसित-रुलित वदन इन्दु
अलपे उपजे धरम बिन्दु
लोल नयन कमल-जुगल
ताहे ललित अंजना ।

नखर उजर गछन चन्द
चकोर निकर लागल छन्द
दुबध हेरि चरणे घेरि
सधने करत चुम्बना ।

अरुण अधरे पुरत वेणु
घनाइया घेरत सबहु घेनु
सहजे सुदरि घिरहे भोर
दूरे धरज-अगना ।

शुनि गुनि गापि हरल बोल
भाये अवश चित निभोर
रहि रहि रहि धमकि उठत
धरहि धरहि कम्पना ।

अनेक जतने चेतन पाइ
चललि जाहा सुदरि राइ
फेरि हेरत बेरि बरि
ऐछन मन रजना ।

दास प्रसाद करत आश
अमिया अधिक मधुर भाष
गुनि तिरपित धवण-मुल
ताप निकर भजना ॥^१

एक ही पत्र कवि की रचना कुशला की रयाति के लिए पयाप्त है ।

चदुनन्दन दास जीवन वृत्त और रचनाएँ—

कटवा के पास मालिहाटि ग्राम में यदुनन्दन का जन्म हुआ । ये वैद्य जाति के थे । ये श्रीनिवाम-आचार्य के अनुचर थे और आचार्य का हेम रता देवी से इन्हाने दीक्षा ली । १७वीं शताब्दी के अनुवाक करने वाले

^१ पत्रकल्पतरु, २५७५ ।

कवियो मे यदुनन्दन दास अग्रगण्य है । यदुनन्दन दास रचित 'रसकदम्ब' या 'राधाकृष्णलीला रसकदम्ब' रूप गोस्वामी के 'विदग्ध माधव' नाटक और 'दानलीलाचन्द्रामृत' 'दान केलिकौमुदी' भणिका का, 'गोविन्दविलास' या 'गोविन्दलीलामृत' कृष्णदास कविराज के 'गोविन्दलीलामृत' तथा 'कृष्ण कर्णामृत' कृष्णदास कविराज के 'सारगरगदा' टीका सहित विल्वमगल के 'कृष्ण-कर्णामृत' काव्य का अनुवाद है । ये सब काव्य इतने लालित्यपूर्ण हैं कि केवल अनुवाद से नहीं लगते । यदुनन्दन के नाम से एक जीवनी विषयक काव्य 'कर्णानन्दरस', या 'कर्णानन्द' भी मिलता है । इनकी प्रतिभा केवल काव्य जगत् तक ही सीमित नहीं थी, दर्शन के क्षेत्र में भी उसका पूर्ण प्रसार था । सभवत वैष्णव-तत्त्व सवधी ग्रन्थ 'हरिभक्तिचन्द्रामृत' के रचयिता भी आलोच्य कवि यदुनन्दन दास ही थे । सहज-साधन सवधी निबन्ध 'हीरावली तत्त्व राय-शेखर की संस्कृत रचना 'हीरावलीतत्त्व' का अनुवाद है । श्रीमुकुमार सेन यदुनन्दन को ही इसका अनुवादक अनुमान करते हैं^१ ।

इतने ग्रन्थों का प्रणेता, अवश्य ही प्रौढ कवि रहा होगा । 'राधा-कृष्ण-लीलारसकदम्ब' और 'कृष्णकर्णामृत' काव्यों के बहुत से पद विभिन्न पद-समूहों में सकलित हैं । कवि ने 'यदुनन्दन', 'यदुनाय', 'यदु' छाप का प्रयोग किया है । वैष्णव साहित्य में 'यदुनन्दन' तथा 'यदुनाय' नाम से और भी कवि हो गए हैं । अत-एव उपलब्ध सभी पदों को आलोच्य कवि की रचना नहीं मान सकते, पर प्रौढ कवि की रचनाओं में प्रतिभा की एक ऐसी विशिष्ट छाप रहती है जिससे वे अलग से पहचाने जा सकते हैं । कवि की ब्रजबुलि रचना का उदाहरण—

कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन—

कृष्ण के रूप सौन्दर्य की अनुपम गोभा का वर्णन है—

सो वर-वर-नागर राज ।

तपनतनयातटे नीप-तरु-निकटे ।

हिलन नटवरसाज ॥

मरकतरतन-मुकुर जिनि लावणि

प्रति तनु पिरीति पसार ।

शारद चांद-फांद मुखमण्डल

कुण्डल श्रवणे विहार ॥

^१ श्रीमुकुमार सेन—'वागला साहित्ये इतिहास', पृ० ४०१ ।

नाचत भांग-भवन धनु भगिन
 बिठि सजन मट जोर ।
 बाधुलि-अधरे मुरली रव माधुरी
 ऊमतापस मन मोर ॥
 ऊडत धूडे धाव निगि चद्रव
 मद पवन तयें मेल ।
 बहे जनुन-दा धवण रसापन
 तनु मन सब हरि मेल ॥^१

अनुप्रास के प्रमाण से भाग्य लालित्य और माधुर्य गुण से परिपूर्ण है । रूपक, उपमा के उचित व सुन्दर प्रयोग स वृत्त का मनमाहन रूप और भी निगम उठा है । अजडुलि साहित्य के सुन्दर पदों में ये यत्र एत पद है ।

कवि वृत्त निम्नोद्धत दूमर पद में रूप गास्वामी गकलित पद्यावली के एक पद्यावली का भाव अनगत हुआ है ।

रूप-सौन्दर्य—

सौन्दर्य की साकार प्रतिमूर्ति धनदयाम के अग प्रयग हाव भाव में सौन्दर्य पिन्गल कर रहा ह । कितनी अपूर्व ह यत्र रूप-शामा—

इ-दीवरवर-उबरसहोदर-मदुरमदहरदेह ।
 आम्बुनदभद-अन्दविमोहित अम्बरवरपरिधेय ॥
 सजनी के मव-नागरराज ।
 मोहन मुरली-सुरलि-दधिरानन दाहन-शुलयतीलाज ॥
 मोतिम-सार हार उर-अम्बर तन्तर-दामक भान ।
 करिकर गरध-कवलपर सुंदर सुवला बाहु सुठाम ॥
 मवगजराज-लाज गति मयर जग भरि भरइ अनग ।
 पदुनन्दन मन सो न-दन-दन चन्दनशीतल-अग ॥^३

^१ अप्रकाशितपदरत्नावली, २६३ ।

^२ इ-दीवरदोदरसहोदरमेदुरधो
 वासोद्रवतकनक्य-दनिभ दधान ।
 आमुक्तमीषितकमनोहरहारयदा
 कोय युवा जगवनगमय करोनि ॥

^३ पद्मामृत समुद्र पृ० ३ ।

उन दो उद्गर्णों में ही स्पष्ट है कि कवि यदुनन्दन ब्रजबुलि के अन्यन्त कुशल रचयिता हैं।

धरणी : पदकल्पतरु में धरणी के पद—

‘पद-कल्प-तरु’ में धरणी छाप के चार पद मगूहीन हैं त्रिगमें में एक बगला और बाकी तीन ब्रजबुलि के हैं। धरणी का एक बगला पद कीर्तनानन्द^१ में भी मालिन है। एक ब्रजबुलि पद^२ में कवि ने श्रीनिवास आचार्य को ‘बहु मोर श्री-श्रीनिवास’ कहकर उनही म्युति की है। उनमें अनुमान होता है कि कवि श्रीनिवास आचार्य के अनुचरों में से था। उनमें अधिक कवि के जीवनो के संबन्ध में किसी ग्रन्थ में और कुछ भी ज्ञान नहीं होता है।

‘धरणी’ छाप के केवल चार पात्र उपलब्ध पद ही उसके प्रमाण हैं कि ये एक श्रेष्ठ कवि ही कृतिया है। उनकी रचना शैली के नमूने के लिए एक ब्रजबुलि पद उद्धृत किया जा रहा है।

राधा का कामदेव को दोषी बनाना—

कृष्ण ने प्रेम करने के कारण राधा को बहुत तृप्त सहना पड़ रहा है। प्रेमजन्य बहु प्रकार के दुःखों में मन्तन राधिका कामदेव को ही दोषी ठहराकर उसका तिरस्कार करती है—

आरे मनमथ नाहि नुया घरम-विचार ।
 को कर दोष रोख कर का संये
 बड़ तुहें मुरख गोवारं ॥
 शनइते रूप कला गुण-माधुरि
 तेयि दिठि हेरल कान ।
 साइ जोय-पति ताहे नाहि पारलि
 हृदये हानलि पांच बाण ॥
 किये गुणे रति तोहे पति करि मानल
 नाम के राखल काम ।
 नाशसि काम कुलटा-पद देखोसि
 अब तोहे चीनलुं हाम ॥

^१ पृ० २६१।

^२ पदकल्पतरु, २३८१।

देवीपति शिव जीव तुआ राखल
 छिये छिये ए बडि डूले ।
 ता सये वाद साधि जँछे घाआलि
 तछे अनल दिस मूखे ॥
 अब हाम शम्भु आरापय तुआ लागि
 पुन तोहे करब विनाश ।
 विरहिणिगण जेन किये घर किये धन
 जाहाँ ताही सुखे षय वास ॥
 धरणि क वाणि मान तुहुँ सुन्दरि
 शम्भु आराधयि काय ।
 मनमय-कोटि मधन कर जो जन
 सो तुआ चरण धेयाय ॥^१

इस पद में उक्ति सौन्दर्य की विशेषता है। राधिका के हृदय की स्वीय कितने मुत्तर रूप में प्रकट हुई है। धारणी व पदों में भाव वचिन्त्य और भाषा चमत्कार का दिग्दर्शन हाता है।

किशोरदास जीवनवृत्त एव रचनाएँ—

कवि के जीवन के सबंध में निश्चित रूप से कुछ भी बात नही है। कवि का समय अन्तिम १७ वा गतादी अनुमित होता है। अप्रकाशित पदरत्नावली में 'किशोर की छाप स दो बगला पद^२ प्राप्त है। किशोर दास छाप ना और एक बगला पद 'कृष्णपदामतसिधु'^३ में मिलता है।

दास-हस्तलिखित ग्रन्थ व प्राचीनतम अंग में छापहीन एउ ब्रजबुलि पत्र ह, उससे अन्तिम भाग में बहा किशोर दास के छाप स मगुहीत हुआ है। कवि की रचना शैली के निदर्शन के लिए वह नीचे उद्धृत किया जाता है।

अभिमार—

गणकागन निमल मुदर, मुगद रात्रि में राग नीउ वस्त्र से सज्जित
 आभूषणों स भूषित कृष्ण स अभिमार व तिए जा रही है—

^१ पत्रालयतह ८५८ ।

^२ सख्या-४८० ४८१ ।

^३ सख्या-१४५ ।

जय जय जय विजइ कुंजे
 कुंजरवरगामिनी ।
 प्रेम तरंगे भरल अंगे
 संगे बरज रमणी ॥
 गगन मण्डल अति निरमल
 शरद सुखद जामिनी ।
 नील वसन हाटकवरण
 झलकत घन दामिनी ॥
 द्विमिकि द्विमिकि खावपाखाज-
 ठाम ठमकि चलनी ।
 रनु रनु रनु झुनु झुनु झुनु
 वाजत नूपुर किंकिणी ॥
 जंत्र तंत्र तरन मान
 धनि धनि नवजीवनी ।
 ताना नाना नाना सुललित वीणा
 वायत सुघड रमणी ॥
 मिलल श्याम कुंजवाम
 अनुपाम सुख शोहिनी ।
 दास किशोर सुखेर नाहि ओर
 हेरि श्याममनमोहिनी

पद का नाद-सौन्दर्य अवश्य ही सराहनीय है। निस्सन्देह यह पद ब्रजबुलि साहित्य के सुन्दर पदों में से एक है।

रचनाएँ—

किशोरदास रचित 'उद्धवसवाद' ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है।^१ यह ग्रन्थ रूप गोस्वामी के 'उद्धवसन्देश' या 'उद्धवदूत' का अनुवाद नहीं, मौलिक रचना है। ग्रन्थारम्भ में कवि ने कुछ श्रेष्ठ वैष्णवों की इस प्रकार स्तुति की है—

^१ वर्द्धमान साहित्य सभा की हस्तलिखित प्रति १२; राजकीय संग्रह ४९४८ (एशियाटिक सोसाइटी) लिपिकाल १२३३ बगान्द ।

जय जय नरोत्तम जय श्रीनिवास
पढित गोस्थामी जय गदाधरदास ।
जय नरहरि जय श्रीरघुनन्दन
विघ्नविनाग हेतु करिया स्मरण ।

वगीय साहित्य परिपद् क २०५० सख्यक हस्तलिखित प्रति में गौर किशोर दाम रचित कुछ पद मिलते ह उनमें स एक पद में 'किशोर दाम की छाप मिलती है । वहाँ ता छन्द सुरक्षा के लिए कवि का नाम का पूर्वांश छोडना पडा । अनुमान होता ह कि आलोच्य कवि और 'किशोर दास या गौर किशोर दास दोना अलग थे ।

नृप वैद्यनाथ—

नरहरि चमवर्ती के 'गात चन्द्रोदय' की हस्तलिखित प्रति में 'नृप वैद्यनाथ' की छाप का एक ब्रजबुलि पद मगहात है । वह पद नीचे उद्धत किया जाता है ।

प्रथम मिलन—

प्रथम मिलन अवगर पर राधा अत्यन्त भयभीता ह अतएव नाना प्रकार से वृष्ण स अनुनय विनय करती ह—

हाम नवनायरी भाषाइ ।
बले जनि परशह मदन दोहाइ ॥
हठ जदि करह हामाए ।
आरतिपरमधन बबहि न पाए ॥
अतिरसे ना हइह भोरा ।
हाम कमलिनी तुठें नुरिबल भवरा ॥
भवरा नागर कुठ सुले ।
मुडुलित कुमुमे सेह नाहि भूले ॥
गुन शुन विनति हमार ।
सहजे भुजब रति हाम नारी अवरा ॥
लठें लठु परगिह मोरे ।
भाग मा मीलए दुलह पियारे ॥
एये नव ऊयल जीवने ।
काँच कनया फल बवरी समान ॥

मिनति करहुँ तुआ पाए ।
 अबला ए बल करिने ना जुआए ॥
 तुहुँ विदगध गिरोमणि ।
 मिनति करिए घोळो हाम ने नविनी ।
 नृप वैद्यनाथ कह भावि ।
 बाला रमणी बहुत पुण्ये पावि ॥

विद्यापति से साम्य—

इस पद में स्पष्ट ही विद्यापति के पद की गृह्य है। 'मंभवत' नृप वैद्यनाथ भी मैथिल रहे हैं। विद्यापति के प्रभाव के कारण ही 'नृप' वैद्यनाथ छाप वाले पद विद्यापति के पदों के मकलन में ही मिला दिए गए। 'पदकल्पतरु' के २३८८ सत्यक पद में वैद्यनाथ का नाम आता है। प्रमाणों के अभाव में नृप वैद्यनाथ के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पर साहित्यिक जाच में वह अवश्य ही ब्रजबुलि साहित्य के सफल कवि मित्र होते हैं।

घनश्याम दास : जीवन वृत्त—

घनश्याम दास या घनश्याम कविराज महाकवि गोविन्द कविराज के पौत्र और दिव्य सिंह के पुत्र थे। इनका समय अनुमानिक १६५३ सन् ईसवी माना जाता है। श्रीनिवास आचार्य के पुत्र गोविन्दगति घनश्यामदास के गुरु थे।^१

नरहरि दास के पदों के साथ पदों का मिश्रण—

ब्रजबुलि साहित्य के श्रेष्ठ रचयिताओं में से घनश्याम दास भी एक हैं। अपने पितामह गोविन्द कविराज के समान इनके पदों में भी अनुप्रास शंकार और अलंकारों की अनुपम उदा है।

घनश्याम दास के बहुत से पद नरहरि दास (चक्रवर्ती)—जिन्होंने घनश्याम दास की छाप से कुछ पदों की रचना की^२—के पदों के साथ घुल मिल

^१ 'कर्णानन्द', पृ० २९।

^२ 'भक्तिरत्नाकर' के रचयिता तथा पदकर्ता नरहरि चक्रवर्ती ने ग्रन्थ के अन्त में अपना परिचय देते हुए इस प्रकार लिखा है—

'ना जानि कि हेतु हँल मोर दुइ नाम।

नरहरि दास आर दास घनश्याम ॥'

गए हैं। सच्चा साहित्यिक भाव तथा भाषागत आभ्यन्तरीण प्रमाण द्वारा घनश्यामदास के पदा को अनायास ही नरहरि चन्द्रवर्ती के पदा से पृथक् कर सकता है।

रचनाएँ—

घनश्याम दास ने 'गोविन्दरतिमजरी'^१ नामक एक वैष्णव रसालंकार विषयक संस्कृत ग्रन्थ की रचना की। इसमें उनका स्वरचित बहुत से पद उद्धृत हैं, संस्कृत श्लोक के स्वप्नसूत्र में ब्रजवृत्ति पदा की मणिमाला गुथित है। पद संख्या ४६ है। उममें नित्यानन्द वन्दना विषयक एक पद बगला में है।

घनश्याम दास के पद—

'रम-मजरी, पदरत्नाकर पदरससार, अप्रकाशित पदरत्नावला पद कल्पतरु' क्षणदागीत चिन्तामणि 'दास-हस्तलिखित सग्रह, सकीर्तनामृत आदि विभिन्न वैष्णव पद-संग्रह-ग्रन्थों में संकलित हैं। घनश्यामदास के संस्कृत तथा बगला पदा की रचना भी अत्यन्त प्रौढ तथा प्राजल है। घनश्यामदास की ब्रजवृत्ति रचना के उदाहरण स्वरूप दो चार पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

वृष्ण स्वरुचि से राधा के अंग प्रत्यङ्ग का शृङ्गार करते हुए उनकी अपूर्व लावण्य माधुरी का निहार रहे हैं—

जयक रचइते सचकित लोचन

पद सये वदन सचार।

अधर राग सये वृत्ति अनुभव कर

कौन अधिक उजियार ॥

देख देख कानुक रग।

राइक येन घनायत अभिमत

निरखि निरखि प्रति-अग ॥

^१ राजकीय सग्रह (एशियाटिक मासाइटी) ३७२५ ४०६६, कल्पतरु विश्व विद्यालय की हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ३२५, बद्धमान साहित्य सभा की हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ५२३ ख। ऐसा प्रतीत होता है कि वेणी माधव दे का प्रकाशित संस्करण विनी नण्डित हस्तलिखित प्रति पर आधारित है।

चरण-विभूषण मणिगण उजर

श्याम मुरति परतेक ।

निरखव लाख नयने हेन मानये

अतये से भेल अनेक ॥

क्रिये प्रतिविम्ब - दम्भ संये निज तनु

चरण - निछनि परकाश ।

सम्बर - बेरी - विजय वेकत भेल

भण घनश्यामर दास ।^१

इस पद के भाव चमत्कार मे कवि की प्रतिभा चमकती है—

वारहमासा—

वियोगिनी राधा की मर्म पीडा को कवि ने वारहमासे में वर्णित किया है । उसके कुछ पद यहाँ उदाहरण स्वरूप उद्धृत किये जाते हैं—

(शिशिर)—

देख शिशिर-निशि बहि गेल ।

मझु पियक दरश ना भेल ॥

मधु-माम पहिलहि नाज ।

हत मदन संये ऋतु राज ॥

हत मदन संये ऋतु-राज आवत ।

भ्रमर गावत मातिया ॥

कुहरे कौकिल सतत कुहु कुहु ।

कुहुलिया उठे छातिया ॥^२

(वैशाख)—

अब भेल माह वैशाख ।

तरु कुसुमे भरु नव शाख ॥

बह मलय - मारुत मन्द ।

झरु माधवी - मकरन्द ॥

झरु माधवी मकरन्द गन्वहि ।

मत्त मधुकर झंकहि ॥

^१ पदकल्पतरु, २७३९ ।

^२ वही, १८१९

टकारि फाम्मुक साधि मनसिज ।
बिधे - मरम निशकहि ॥^१

(जेठ) —

इह जेठ पठल आगि ।
मशु दहत तनु घन लागि ॥
रह वैढ़ि आग ना पाग ।
नहि जोउ हरिणि निकान ॥
नहि जोउ हरिणि निकान दास ना ।
निकसे फाफर धूमहि ॥
हृदय बीवर गेय गगधर ।
सतत लुठत भूमहि ॥^२

(सावन) —

अव भल गावण मास ।
अव नाहि जिवनक आश ॥
घन गगन गरजे गनीर ।
हिया होत जनु चौचार ॥
हिया होत जनु चौ-चौर घोर ना
बाधे पलकाधो आर रे ।
झलके दामिनि खोलि रापसे
मदन लेह तलोपार रे ॥^३

यद्यपि बारह-मासे में कवि ने काव्य रीति का ही पूणतया अनुकरण किया है तथापि वस्तु-स्थापना में कवि का कुछ अपनापन^१ दीखता है। वह अपनापन ही कवि-वशिष्ट्य है।

बक्रोक्ति अलकार का चमत्कार—

सस्यूत श्लोक^२ के अनुकरण पर रचित राधा-कृष्ण की उक्ति प्रमुक्ति विषयक ब्रजबुलि के इस पद में बक्रोक्ति-अलकार का चमत्कार है—

^१ पदकल्पतरु १८२० ।

^२ वही १८२१ ।

^३ वही १८२३ ।

^४ कोऽप्य ह्रुत्सुने हरिगिरिगुहा हित्वात्र हर्म्यं कुत
वान्तेऽहं मधुसूदनस्तदिह किं पचालय गच्छतु ।
कृष्णोऽस्मीति गुणाऽनुवदति किं न दयाममूर्तिं प्रिये
सामामापरिलेदित विमिति सुस्मरो हरिः पातुव ॥

'को इह पुन पुन ऋत ह्यंकार ।
 हरि हाम जानि ना कर परचार ॥
 परहरि सो गिरि कन्दर माझ ।
 मन्दिरे काहे आवब मृगराज ॥
 सो हरि नहों मयू सूदन नाम ।
 चलु कमलालय मयूकरी ठाम ॥
 ए घनि सो नह हाम घनश्याम ।
 तनु विनु गुण किए कहे निज नाम ॥
 श्याम भूरति हाम तुहुं किना जान ।
 तारापनिभये बुझि अनुमान ॥
 घर-माहा रतनदीप उजियार ।
 कंछने पंठय घन-अंधियार ।
 राधारमण हाम कहि परचार ।
 राकारजनि नहे घन-अंधियार ॥
 परिचयपद जव नव भेल आन ।
 तवहि पराभव मानल कान ॥
 तैलने उपजल मनमयसूर ।
 अब घनश्याम-मनोरय पूर ॥^१

वर्षा की अंधेरी रात में राधा की दशा—

वर्षा की भयावनी अंधेरी रात वियोगिनी राधा पर गजब का जुल्म ढाह रही है—

डाके डाहुकि झमके झुमकल
 झिझि झनकत झांसिया ।
 डिण्डिभायित मण्डूकीरव
 मउर नाटक-साजिया ।
 रे घन घननह गहन डूरगह
 गगने घन घन गर्जिया ।
 आवए रतिपति मत्त गजवर
 विरहिणीगण तजिया ।

^१ पदकल्पतरु, ३५० ।

हाने तनु मन पलके पलकन
 झलके दामिनी-जातिया ।
 (खर-) धार खरग उधारि झलकत
 यौरसे भर मातिया ।
 वारिविदु नह पर जिउ सहार
 असम गर-वरखन्तिया ।
 नदन-दन-चरणे मन घन -
 न्यामदास नमन्तिया ॥^१

उपर्युक्त पदों के उदाहरण से स्पष्ट है कि घनश्याम दास ब्रजबुलि पदा की रचना में अति कुशल थे। अपने पितामह गोविन्ददास कविराज के समान रहने पर भी घनश्याम दास के पद ब्रजबुलि साहित्य में यथेष्ट महत्व का स्थान रखते हैं।

सुन्दर दास जीवन वृत्त एवं रचनाएँ—

वृष्णव-माहिय में मुन्दरदास नाम के किसी भी पत्र-कर्ता का उल्लेख नहीं मिलता है। श्रीसुकुमार सेन ने कथानन्द^२ ग्रन्थ के आधार पर अनुमान किया है कि आलाच्य कवि श्रीनिवास आचार्य के पौत्र गोविन्दगति के द्वितीय पुत्र, मुन्दरानन्द ठाकुर हैं।^३ मुन्दरदास का समय लगभग १६०७ सन् इसकी है। पदवल्पर में मुन्दरदास के दो पद^४ मकलित हुए हैं। जिसमें से एक ब्रजबुलि तथा दूसरा बंगला का पद है। ये दोनों ही पद बलराम के गाण्-लीला विषयक हैं। ये पद विशेष महत्व के हैं क्योंकि सारा वृष्णव-माहिय ही या तो वृष्ण-लीला विषयक या गौराग महाप्रभु विषयक पदों से भरा हुआ है, उसमें मुन्दरदास के बलराम विषयक ये दोना पद अपवाद स्वरूप हैं। कवि की ब्रजबुलि रचना के निर्माण स्वरूप एक पद उद्धृत किया जाता है।

गौरा चराने के लिए जाने हुए बलराम का अगूब रूप-गोन्द्य का कथन है—

^१ शीखर के ए मर वापर माह मादर पत्र की स्पष्ट अनुश्रुति प्रतीत होती है।

^२ पृ० २८।

^३ श्रीसुकुमार सेन हिन्दू आर्य ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २३४।

^४ मस्या-१३२७ १३२८।

बलराम का रूप सौन्दर्य—

गलित-रज-गिरि जिति तनु सुन्दर
 जानु-लम्बित वन-भाल ।
 नील-वसन वनि अपरुप-शोमनि
 मग्गने हीर मिशाल ॥
 घायन धवली-पाछे बलराम ।
 चंचल नयन डुलए जनु पंकज
 हेरि मुगध भेल भेकाम ॥
 उभ करे धवली शांवली बलि डकइ
 कोमल-वल्म लेइ कान्घे ।
 सघने खसये शिलि-पिंज मनोहर
 छान्दनटुरि देइ बान्घे ॥
 वयान चांद अघर जनु बान्घुली
 ताहे मधुर मृडु हास ।
 वरिसए अमिया श्रवण भरि पीवइ
 सहचर सुन्दरदास ॥^१

इस पद में वर्णन-लालित्य है। यद्यपि सुन्दरदास रचित दो ही पद उपलब्ध हैं पर ये अल्प उदाहरण ही इस बात के साक्षी हैं कि कवि ब्रजवृत्ति का सफल रचनाकार था। 'अप्रकाशित पदरत्नावली'^२ में 'कवि सुन्दर' की छाप का एक पद मिलता है पर वह सुन्दर कवि ब्रजभाषा का कवि है।

जगदानन्द दास जीवन वृत्त—

जगदानन्द दास श्रीखण्ड के रघुनन्दन के वंशधर थे। ये सेनभूम के जोफलाई ग्राम में बस गये। कवि की जन्मतिथि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। इनकी मृत्यु १७८२ सन् ईसवी में हुई ऐसा इनकी वंश परम्परा में माना जाता है। उनके निवास स्थान जोफलाई ग्राम में प्रतिवर्ष उनका मृत्यु-दिवस मनाया जाता है।^३

^१ पदकल्पतरु, १३२७।

^२ संख्या ४६४।

^३ डा० दीनेशचन्द्र सेन, वग भाषा और साहित्य, पंचम संस्करण।

१६५३ १६५६ सन् ईसवी का एक हस्तलिखित प्रति में जगदानन्द छाप के एक पद की प्राप्ति से विद्वानों के मन में आलोच्य कवि जगदानन्द की मृत्यु तिथि की प्रामाणिकता के सवध में सन्देह जगा।^१ परन्तु प्रेमदास के वशी शिक्षा^२ में वशीवदन क शिष्य जगदानन्द की इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—

‘श्री जगदानन्द बंदो मधुर चरित जिह बरगिला प्रिय वशीलीलामृत।’

इससे यह बात होता है कि १६ वीं शताब्दी के अंत क लगभग वशी वदन के एक जगदानन्द नामक शिष्य हुए जिन्होंने ‘वशीलीलामृत प्रिय और कुछ फुटकर पदों की रचना की थी। इस आलोच्य कवि जगदानन्द की मृत्यु तिथि की प्रामाणिकता के सवध में सन्देह नहीं रह जाता। कालिदास नाय ने जगदानन्द की पदावली का मकलन किया था। उन्होंने ‘श्रीजगदानन्द पदावली’ की भूमिका^३ में जगदानन्द का जावनी विषयक थाडा कुछ तथ्य सगृहीत किया है।

पद—

जगदानन्द ब्रजबुलि के कुशल कवि थे। इनके ब्रजबुलि के बहुत से पद ‘गौरपदतरंगिणी,’ ‘कीतनातल’ ‘अप्रकाशित पत्रलावली,’ ‘पत्रकल्पतर,’ ‘दास हस्तलिखित-संग्रह-प्रथम आदि विभिन्न संग्रह प्रथो में संकलित हैं।

पदों की रचना में इन्होंने गोविन्ददास कविराज का अनुकरण किया। भाषा और छन्द पर इनका पूरा अधिकार था। ध्वनि झकार और गल चित्र उपस्थित करने में कवि का अगिष्ट्य शीघ्रता है।

राधा का कमनीय शोभा—

निम्नोद्धत ब्रजबुलि का पद जगदानन्द के श्रेष्ठ पदा में से है राधिका सधिरौ हुई वस्त्राभूषणो स सुमज्जित कृष्ण से मिलने के लिए जानी हुई रूपसौन्दर्यभूषिता राधिका की मनोहारी कमनीय शोभा का वर्णन है—

मजु विक्रम-कुसुम-भुज

मधुप-गद्द भुज-भुज

कुजर गति गजि यमन मजुल कुल नारी।

^१ श्री सुभुमार सन हिन्द्री आफ ब्रजबुलि लिटररर, पृ० २३७।

^२ पृ० २१।

^३ पृ० १।

घनगंजन चिकुरकुंज,
 मालति-फुलमालरंज,
 अन्जनजुत कंजनयनी खंजन गति हारि ॥
 कांचनरुचिरुचिर अंग,
 अंगे अगे मरु अनंग,
 किंकिणि करकंकण मृदु शंकृत मनुहारी ।
 नाचत जुग भुरु भुजंग,
 कालिदमनदमन रम,
 संगिनि सवरंगे पहिरे रंगिल नील सारी ॥
 दसन कुदुकुसुमनिंदु,
 वदन जितल शरद-इन्दु,
 विन्दु छरम-घरमें प्रेमसिन्धु प्यारी ।
 ललिता धरे मिलित हास,
 देहदीपति तिमिर नाश,
 निरखि रूप रसिक भूप भूलल गिरिधारी ॥
 अमरावति जुवतिवृन्द,
 हेरि हेरि रूप पड़ल धन्द,
 मन्दमन्द-हसना नन्दनन्दन-सुखकारी ।
 मणि माणिक नख विराज
 कनक नूपुर मधुर वाज
 जगदानन्द थल-जलरुह चरणक बलिहारि ॥^१

इस पद में अपूर्व नाद-सौन्दर्य ब्रकृत हो रहा है ।

जगदानन्द रचित तीन चित्रगीत भी मिलते हैं । उदाहरण के लिए उनमें से एक नीचे उद्धृत किया जाता है—

जामिनी दिनपति गगने उदय करु
 कुमुद कमल खिति माझ
 अपरशे डुहुक परश-रस कौतुक
 निति निति जगते विराज ।
 वर-रामा हे
 बुझवि तुहं सुचतुर

^१ कालिदास नाथ सग्रह, पृ० २१, कृष्णपदामृतसिन्धु, पृ० २०९ ।

आपन पराण जाक कर सोंपिए
 सो पुन कमु-नहँ दूर ।
 जीवन अवधि हाम आपना बैचलु
 तन मन एक करि तोए
 किए सुया बलवत प्रेम-पदातिक
 तिल आघ नादेह मोए ।
 काचन धवन कमल लागि सोचन
 मधुकर भरत पिपासे
 लिखनक आदि आवर मेलि समुझवि
 कहे जगदान-ददासे ॥^१

इस पद के आद्याक्षरा में द्वारकाप्रवासी कृष्ण का गधा व लिए भेजा हुआ सन्दर्भ छिपा है— 'जाअब आजी कि कालि' ।

अनुप्रासा की छटा और भाषा साहित्य से जगदानन्द के पद का मिल अवश्य है पर उनमें भाव-उत्कथ का मन्वया अभाव है ।

रचनाएँ —

जगन्नान्द ने 'भाषा शास्त्रणव नामक' एक ध्वन्यात्मक शब्दशास्त्र की रचना का भी प्रयास किया था, यह असमाप्त रचना कालिकास नाम के मकलन में प्रकाशित हुई है । पद रचयिताओं का आशानी में मन्वया मिल जाए' इसा उद्देश्य से इस प्रकार के प्रय की रचना की थीर कवि प्रवृत्त हुआ । 'गीत-गाविन्द के अनुवाद का भी कवि ने प्रयास किया था ।^२

जगन्नान्द नाम के एनाथ कवि का और उल्लेख मिलता है पर वे परवर्तीकाल के थे ।

गोपाल दास . जीवन घृत्त—

रामगोपालदास (गोपालदास) श्रीगण्ड के निवासी थे । य जाति के वैद्य थे । श्रीगण्ड के रघुनन्दन क ब्राह्म रतिकान्त ठाकुर के गिष्य थे । रामगोपाल

^१ दास—हम्नलिरित सप्रह-प्रय ।

^२ बद्यमान साहित्य मन्ना का हम्नलिरित प्रय, संख्या १८५ (कवल एक ही पृष्ठ उपलब्ध है) ।

के पिता श्यामराय, बड़े भाई मदन राय और पुत्र पीताम्बर दास थे। रामगोपाल दास ने १५९५ शकाब्द में 'रसकल्पवल्ली' (या राधाकृष्ण-रसकल्पवल्ली) ^१ की रचना की। इसमें विभिन्न पद रचयिताओं के पद, साथ ही कवि के स्वरचित पद भी संग्रहीत हैं। ग्रंथ में कवि ने आत्म परिचय दिया है जिसमें पता चलता है कि कवि महाप्रभु चैतन्य देव के समसामयिक भक्त श्रीखंड निवासी चक्रपाणि चौधरी के वृद्ध प्रपौत्र थे।

रचनायें—

'रसकल्पवल्ली' में कवि के स्वरचित ६ ब्रजबुलि के पद उद्धृत हुए हैं जिनमें से दो पद 'पदकल्पतरु' में गोविन्ददास की छाप से मिलते हैं। कवि की प्रामाणिक रचना के कारण 'रसकल्पवल्ली' के प्रमाणों को ही अधिक पुष्ट मानना उचित होगा। गोपालदास की छाप वाले ६ पद 'पदकल्पतरु' में सकलित हुए हैं। जिनमें से २९६६ सख्यक पद स्पष्ट ही ब्रजभाषा का है। स्वर्गीय सतीश चन्द्र राय महाशय का अनुमान है कि यह पद वृन्दावन निवासी पद्म-गोस्वामी में से गोपाल भट्ट गोस्वामी रचित है, इस अनुमान का कारण है 'पदकल्पतरु' में संग्रहीत गोपाल भट्ट गोस्वामी के दो पदों ^३ की भाषा से उपरोक्त पद का भाषा साम्य 'क्षणदागीत चिन्तामणि' में गोपाल दास की छाप में एक ब्रजबुलि का पद ^४ उद्धृत है। पीताम्बर दास ने 'रस-मजरी' में अपने पिता रामगोपालदास के बहुत से पद सकलित किए हैं।

गोपालदास निस्सन्देह ब्रजबुलि साहित्य के उच्चकोटि के कवियों की श्रेणी का दावा कर सकते हैं। प्रमाण के लिए दो ब्रजबुलि के पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

^१ रामगोपाल और उनकी रचना 'रसकल्पवल्ली' का विस्तृत परिचय श्रीरीन्द्रमोहन गुप्त के लेख 'श्रीखण्डेर प्राचीन वैष्णव कवि' (प्रदीप, भाद्र १३१२ वगाब्द, पृ. १६२-६७) में सर्वप्रथम मिलता है। बहुत दिनों के पश्चात् श्रीहरेकृष्ण मुखोपाध्याय ने पुनः इस पर प्रकाश डाला (साहित्य परिपद् पत्रिका ३७, पृ. ९९-१२४)।

^२ सख्या—१०५२, १०७६।

^३ सख्या—१०८८, २८३३।

^४ सख्या—२३३।

अभिसार—

शरद पूर्णिमा की रात्रि में अभिसार को जाती हुई राधा के रूप लावण्य का मनोहारी वणन है—

कि कहव राइव हरि-अनुराग ।
 निषधि मनहि मनोभव जाग ॥
 सहजे दचिर तनु साजि वत माति ।
 अभिसह शारदपुनमिक् राति ॥
 घबल घसन तनु चदनपूर ।
 अरण-अधरे घर विगद कपूर ॥
 कचरी उपरे कर कुद विपार ।
 कण्ठे बिलम्बित मोतिमहार ॥
 करवे क्षापल करतल काति ।
 मलयजचदनयलयक पाति ॥
 घाव कि कौमुदी तनु नह चिह ।
 जठन क्षीर नीर नह भिन्न ॥
 छाया धरी ना छाडल वाद ।
 चरणे शरण कर जामिनो-आष ॥
 गोपालदास कह मुचतुर गोरी ।
 नूपुरक रतन तुले मुत्त पूरि ॥^१

स्वपिडिता—

कृष्ण की व्यथ प्रतीक्षा में रात्रि का अवसान होना है, सबेरे कृष्ण का प्रसवते हैं। स्वपिडिता राधा का भरकर कृष्ण का उलाहने देती है—

छल करि बाणी बतए पारलापति
 तोहारि यचन परमाण ।
 चारिप्रहर राति जागि पोहायकु
 क्षापलि राति विहान ॥
 मायव, आजि बड देखति दुरा ।
 आगे इह आरति ना मुतिपा अय तोह
 हेरि पायकु बड गुन ॥

^१ 'क्षणदा-नील-चिन्तामणि', २३३ ।

भालहि सिन्दुर—काजले पूरल
 वदनहि दशनक रेख ।
 हेरइते तोहे लाज मोहे होयत
 जावकराग परतेख ॥
 कमलिनी पाइ सरम रसे भूललि
 ना बुझलि मालनीगन्ध ।
 कहइ गोपाल दास नाहि समुझलि
 की फुले किये मकरन्द ॥^१

यह पद गोविन्ददास के ३०५ मध्यक^२ पद की छाया वहन करती हुई भी कवि की मौलिकता और काव्य कुशलता का स्पष्ट परिचायक है ।

रचनाये—

‘रसकल्पवल्ली’ के अतिरिक्त कवि की और भी रचनाएँ उपलब्ध हैं—
 चैतन्यतत्त्वसार^३ सरकारठाकुरशाखावर्णन^४ अष्टरम, ‘जगन्नाथवल्लभ’ नाटक का अनुवाद^५ और गोपालदास के नाम से ‘पापण्डदलन’ निवन्ध मिला है ।
 मस्कृत निवन्ध ‘अष्टरस’ के अवलम्बन पर रामगोपालदास के पुत्र पीताम्बरदास ने बगला में ‘अष्टरसव्याख्या’ की रचना की ।

तरुणी रमण रचनाये और जीवन वृत्त—

तरुणी रमण या तरणी रमण ने ब्रजबुलि में बहुत से पदों की रचना की । कवि का वास्तविक परिचय अभी ज्ञात नहीं हो सका है । विद्वानों ने अनुमान के आधार पर कवि के सम्बन्ध में भिन्न तथ्यों का सकलन किया है । पदकल्प-तरु में केवल एक ही पद^६ तरुणी रमण की छाप में मिलता है, यह ब्रजबुलि

^१ पदकल्पतरु—३९५ ।

^२ वही—३९५ ।

^३ साहित्य परिषद् पत्रिका, ६, पृ ५६ ।

^४ वही ६, पृ २६१ ।

^५ कलकत्ता विश्वविद्यालय का हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या २५८२,
 (लिपिकाल १२३५ बगान्द) ।

^६ वही सख्या २६२६, (लिपिकाल १०८२ मल्लान्द) ।

^७ सख्या—३५४ ।

में ह। भुकुन्ददास गोस्वामी के 'सिद्धान्त चन्द्रोदय' में तरणा रमण के बहुत स पद संग्रहीत हैं। ग्रंथ के आठवें अध्याय के ६१ पदा में से ४३ पद तरणी रमण के हैं। इन ४३ पदों में से ६ बगला और बाकी ब्रजबुलि के ह। इन पदा पर विचार करने में ऐसा प्रतीत होता है कि किसी विनोय विषय पर यह क्रमबद्ध रचना की गई ह। इन पदा के सम्बन्ध में एक बात और विनोय ध्यान देने की यह है कि कवि की अधिवाश ब्रजबुलि पदा में तरणी रमण की छाप है और बगला पदों में चण्डीदास की। संभवत एक ही कवि ने ब्रजबुलि तथा बगला पदों के लिए दो भिन्न छापों का प्रयोग किया ह। सहजिया ग्रंथ के अनुसार^१ से भी इसी अनुमान की पुष्टि होती ह कि चण्डीदास और तरणी रमण एक ही व्यक्ति थे।^२ कदाचिन् कवि का वास्तविक नाम चण्डीदास था, पुष्ट प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। तरणा रमण गीत ब्रजबुलि पदों का एक उदाहरण सण्डिता राधा की कृष्ण के प्रति मानाचिन्—

सण्डिता—

ए हरि माधव कर अवधान ।

जितल विषाधि औषध किया काम ॥

अधियारा होइ उजर करे जोइ ।

दिवसक घाद पूछन नाहि कोइ ॥

दरपण लेइ कि करय बाधे ।

शफरी पलायन कि करय आय ॥

सापरि शवायब कि करय नोरे ।

हाम अबाध तुआ कि करय धारे ॥

बा करय बाधु गण विधि भव धाम ।

निनि परभाते भायलि श्याम ।

तरणी रमण भण एछन रग ।

रजनी गोवायली काकरु सग ॥^३

^१ कृष्णदास विन्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति, संख्या ११११ ।

^२ इहा जानि चण्डीदास तरणी रमण ।

गीत—छ— गाहिअन निरीति ग घन ॥

^३ सिद्धान्त-चन्द्रोदय आठवां अध्याय २७ ।

प्रेमदास : जीवन वृत्त -

कवि का असली नाम पुरुषोत्तम मिश्र और उपाधि सिद्धान्तवागीश थी, 'प्रेमदास' (प्रेमदादास) उनका गुरदत्त नाम था। गोविन्दराम और राधाचरण कवि के दो बड़े भाई थे। पिता नगादान, पितामह मुकुन्दानन्द और प्रपितामह जगन्नाथ मिश्र थे। ये काश्यपगोत्रिय थे। कवि का निवास म्यात कुलनगर वर्द्धमान जिन्ने में मानकर के पास था। १६ वर्ष की आयु में प्रेमदास घर से भागकर वृन्दावन में गोविन्ददेव के मन्दिर में रमोज्जु का काम करने लगे। कुछ दिनों के बाद उनके बड़े भाई गोविन्द राम उन्हें नमस्त्रा बुझाकर घर लौटा लाए। किंवदन्ती है कि कवि को स्वप्न में श्रीचैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैत से कवित्व रचनाशक्ति का वर प्राप्त हुआ था। कवि ने अपनी जीवन सत्रन्धी उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख 'चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी' के अन्तिम पृष्ठों और 'वशी-शिक्षा' में भी किया है। वन्दना के अर्थ में कवि ने तीन प्रभु के बाद ही वशीवदन, जाह्नवी ठाकुरानी, रामायिठाकुर और हरि गोसाईं का स्मरण किया इससे विद्वानों का अनुमान है कि प्रेमदास वाघनापाडा के गोस्वामियों के शिष्य थे।^१

रचनाएँ—

प्रेमदास का 'चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी'^२ चैतन्य-जीवनी काव्य, कवि कर्णपुर के 'चैतन्यचन्द्रोदय नाटक' का काव्यानुवाद है। कवि ने सन् ईसवी १७१२-१३ में यह अनुवाद किया।^३ यह ग्रन्थ केवल अनुवाद मात्र नहीं, ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह ग्रन्थ विशेष महत्त्व का है। प्रेमदास का दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ वशी-शिक्षा १७१६-१७ सन् ईसवी में रचा गया।^४

^१ श्रीसुकुमारसेन वागला साहित्ये इतिहास, पृ० ६४४।

^२ रायल एशियाटिक सोसाइटी की हस्तलिखित ग्रन्थ-संख्या-५४४४, १८५० सन् ईसवी में मुद्रित हुआ।

^३ विदनेत्ररसक्षीणीमिते शाके मुदान्वित।

लिलेरव प्रेमदास कौमुदी चन्द्रोदयस्य वे ॥ 'एशियाटिक सोसाइटी, हस्तलिखित ग्रन्थसंख्या ५४४४।

'शकादित्य पोल शत चौत्रिंश शकेते, श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक सुखेते, लौकिक भाषाते मुयि करिनु लिखते ** (वशी शिक्षा)।

^४ 'पील शत अष्टत्रिंश शकेर गणने, श्रीश्रीवशीशिक्षा ग्रन्थ करिनु वर्णने पृ० २३६। योगेन्द्रनाथ दे ने १३३१ वगवद में इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया।

पदावली साहित्य में उनका कृणित्व अधिक प्रकाशित हुआ। पदकल्पतरु में प्रेमदास के ३१ पद संगृहीत हैं जिसमें से ६ ब्रजबुलि के हैं।^१ 'पदकल्पतरु' से पहले किसी भी अन्य प्राचीन मगध ग्रंथों में प्रेमदास के पद संकलित नहीं हुए हैं। 'गौरपदनरगिणि', 'अप्रकाशितपद रत्नावली', कीर्तन-गीत रत्नावली में प्रेमदास के कुछ पद मिलते हैं। ब्रजबुलि की तुलना में प्रेमदास के बगल पद अधिक सुन्दर हैं। प्रेमदास की ब्रजबुलि रचना का उदाहरण—

राधा कृष्ण स बहती हैं—

माधव, मोहे कहसि चाँदमुख ।

चादक गुण कहए सब सुशीतल

चादे जनम भरि बुद्ध ॥

जलनिधि-उदर ऊयल शशधर

गरल सगें उपनीत ।

सेवल शकर शिरसि रहल जब

ताहा फणी हेरि असम्बित ॥

पुन जाइ गगने करल आरोहण

ताहे गरासे राहु मंद ।

देवे कलकित होयल भृगधरि

असित पक्षे तनु-अत ॥

बाहे मिनति करु कपटहि नागर

हेरि विरस मन होय ।

प्रेम-दास कह चाद घदन चाह

चकोरे पीयूष देइ सोय ॥^२

इस पद को ब्रजबुलि-साहित्य में ऊँचा स्थान दिया जा सकता है विषय की दृष्टि में इसमें मौलिकता है।

धनरामदास वैशिष्ट्य—

पदकल्पतरु में धनरामदास रचित १६ पद उद्धृत हुए हैं जिनमें से १५ बगल और एक ब्रजबुलि^३ में हैं। धनरामदास के सभी पद बाल-कृष्ण विषयक हैं।

^१ सख्या ४७५, ५५८, ५६१, ५९२, ५९६, ८०७ ।

^२ अप्रकाशितपदरत्नावली ३९९ ।

^३ सख्या—११५२ ।

गौडीय वैष्णव भक्तकवियों ने मुख्य रूप से मधुर रस में रचनाएँ की। वात्सल्य रस की रचना करने वाले ब्रजबुलि साहित्य में केवल दो ही चार कवि हुए हैं। इसी दृष्टि से ब्रजबुलि साहित्य में घनरामदास का महत्त्व है।

रचनाएँ—

पदकल्पतरु में दो वगला पद^१ घनश्यामदास की छाप में मिलते हैं, एक राधा-जन्मावसर सम्बन्धी और दूसरे में कृष्ण ने अपने मुह में यशोदा की विश्वरूप दर्शाया। 'सकीर्तनामृत' में श्रीकृष्ण की बाल-लीला विषयक चार पद^२ घनश्यामदास की छाप में मिलते हैं। इन पदों की भाषा और शैली घनरामदास के पदों के अनुरूप ही है, इनमें से कुछ पद 'पदकल्पतरु', 'कृष्ण-पदामृतसिन्धु', 'कीर्तनगीतरत्नावली' में घनरामदास की छाप से सकलित हुए हैं।

घनश्याम दास नाम के और कवि—

अब प्रश्न यह उठता है कि घनरामदास और घनश्यामदास क्या एक ही व्यक्ति थे? वगला साहित्य में घनराम (चक्रवर्ती) नाम से 'धर्म-मंगल' काव्य के रचयिता केवल एक ही व्यक्ति के विषय में अभी जात है। इनकी जीवनी से अनुमान होता है कि ये राम भक्त थे, अतएव बाल-कृष्ण विषयक पदों के रचयिता घनराम दास और घनराम चक्रवर्ती की अभिन्नता में सन्देह है। वैष्णव साहित्य में 'घनश्याम' नाम के बहुत से व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है, पद रचयिता की दृष्टि से जिनमें से प्रमुख घनश्याम कविराज (गोविन्द कविराज के पौत्र) हैं जो ब्रजबुलि साहित्य के प्रसिद्ध रचयिताओं में से थे। घनश्याम कविराज के सभी पद मधुर रस विषयक हैं, अतएव वात्सल्य रस विषयक 'घनश्याम' या 'घनराम' छाप वाले पदों के ये रचयिता रहे होंगे इसकी संभावना बहुत कम है।

रचनाएँ—१७ वीं शताब्दी के आरम्भ के लगभग 'श्रीकृष्णविलास'^३ नामक घनश्याम दास रचित एक कृष्णलीला-काव्य उपलब्ध हुआ है। इस काव्य में कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन भागवत के अनुकरण

^१ संख्या—११३८, ११४५।

^२ संख्या—७६, ७८, ८१, ८७।

^३ रायल एगियाटिक सोसाइटी की हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या-५४२१ (खण्डित—२८३ पृ०)।

पर हुआ ह । घनश्याम दास के गुरु जयगोपालदास जाति-पानि की भेद-भावना के धार विरोधी थे श्री जीव गास्वामी और श्रीनिवास आचार्य ने इनका अपने दल में बहिष्कार कर दिया था ।^१ वैष्णव-इतिहास गायद इसी कारण इनके सम्बन्ध में मौन ह । जमिनी-सहिता के अनुनाद अश्वमेघ पत्र लिखनेवाले विभिन्न रचयिताओं में से घनश्यामदास भी एक थे । कवि की स्व-उक्ति से ज्ञात होता ह कि ये जाति व कायस्थ थे ।^२ अश्वमेघ-पत्र के लिखने वाले घनश्यामदास और 'श्रीवृष्ण विलास' के रचयिता घनश्यामदास एक ही व्यक्ति जान पड़त हैं असंभव नहीं यदि घनश्याम दास की छापवाले बाल-वृष्ण विषयक पदों के रचयिता भा ये ही घनश्यामदास रह हों ।

और यह भी असंभव नहीं यदि घनरामदास छाप वाले ब्रजबुलि पत्र के रचयिता भी उपयुक्त घनश्यामदास ही रहे ह । घनश्यामदास और घनरामदास नामों की अत्यधिक समानता के कारण दोनों नामों के परस्पर मिश्रण का अनुमान अनुचित न होगा । इस अनुमान का आधार पद का छन्द विषयक गालमात्र है । जब सम्पूर्ण पत्र मात्रिक छन्द में लिखा हुआ है तब अन्तिम चार पक्तियाँ प्यार छन्द में क्या लिखी गई ? संभव ह घनश्यामदास व ब्रजबुलि व वात्सल्य रस विषयक पद के कारण ही छाप वाले पदांग में घनरामदास का नाम जोड़ दिया गया ह, क्योंकि घनरामदास के नाम से उपर्युक्त सभी बगल पद वात्सल्य रस सवधी ह ।

घनश्याम दास का परिचय—

अनुमान होता है कि बगल पदा का रचयिता घनरामदास, घनराम चक्रवर्ती और घनश्यामदास में स्वतंत्र ही १७वीं शताब्दी का कोई कवि रहा होगा जिसकी जीवन सामग्री अभी अपकार में ही ह, पुष्ट प्रमाण व अभाव में निश्चय के साथ कुछ कहा नहीं जा सक्ता ह ।

^१ भक्तिरत्नावली में श्रीजीव-गास्वामी का पत्र द्रष्टव्य ।

^२ उत्पत्ति कायस्थकुले नहि विद्यावन्त
अष्टशता नाहि पदि अमर मुवन्त ।
हन जन करे गात लाक उपहास
वृष्णेरे बिकर (कठ) घनश्यामदास ।

वात्सल्य—

धनरामदाम की छाप से प्राप्त वात्सल्य रम विषयक ब्रजबुलि पद नीचे दिया जा रहा है—

पचवरिषवयसा—कृति मोहन
 धावमान पर अंगना ।
 पायस पाणितले आवर माखन
 सायत मिटावत वयना ॥
 दोले दोले मोहन गोपाल ।
 प्रखर चरणगति मुखर किंकिणी कटि
 लौटन लोलये वनमाल ।
 सोनाय बांधिल भान्ण रुखन उरे माल
 पिछे दोले पाट-कि थोप ।
 खेने आलगच्छि वेइ खेने भूमे गड़ि जाइ
 खेने परसन्न खेने कोप ॥
 नन्द सुनन्द जशोमती रोहिणी
 आनन्दे सुतमुख चाय ।
 अरुण दृगंचल काजरे रजित
 हासि हासि वदन देखाय ॥
 कुन्तले रतनमणि झलमल देखि ।
 कुण्डले उज्ज्वल गंड काजररेखि ॥
 धनराम—दास बोले शुन नन्दरानी ।
 त्रिजगन्नाय नाचाओ करै दिया नती ॥^१

ब्रजबुलि के इस पद में बगला का मिश्रण स्पष्ट है, भाषण सीधी और सरल है ।

राधामोहन ठाकुर : जीवन वृत्त—

ये श्रीनिवास आचार्य के वृद्ध प्रपौत्र थे । 'पदामृत-समुद्र' ग्रन्थ के मगला-चरण में कवि ने जो अपना परिचय दिया है उससे ज्ञात होता है कि इनके गुरु और पिता जगदानन्द थे । पिता के निवास स्थान चाकन्दी ग्राम में ही इनका जन्म हुआ ।^२ इनका जन्म समय १६९९ सन् ईसवी के लगभग और मृत्यु समय १७७८ सन् ईसवी माना जाता है । राधामोहन ठाकुर कटवा से

^१ पदकल्पतरु, ११५२ ।

^२ स्वर्गीय जगद्बन्धु बाबू के मतानुसार ।

कुठ दूर मालिहाटि गाव व रहने वाले थे। व अपने समय के प्रमुख बण्णव पंडितों में अन्यतम थे। मुर्शिदाबाद के कुजघाटा के महाराजा नन्दकुमार और पुटिया के राजा रवींद्र नारायण राधा माहन ठाकुर व गिण्य थे। 'भक्तमाल' ग्रन्थ से मालूम होता है कि पुटिया के राजा रवान्द्र नारायण पहले गाक्त थे, परन्तु राधामोहन ने विचार विमर्श में राजपण्डितों को पराजित करके बण्णव धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित की और इस प्रकार राजा को विष्णु मन्त्र से दीक्षित किया। 'भक्तमाल' में वर्णित उपयुक्त घटना से राधामाहन के पाण्डित्य और प्रभावशाली व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।

स्वकीया परकीयावात् का सैद्धान्तिक विरोध—

११२५ बंगाल में बंगाल के दो प्रमुख बण्णव दल-स्वकीयावादी और परकीयावादी—में सैद्धान्तिक विरोध छिडा।^१ मत प्रायश्चय ने इतना प्रचण रूप ग्रहण कर लिया कि निणय के लिए प्रमुख बण्णव पण्डितों की एक सभा बुलानी पड़ी। उस विद्वत मण्डली के सामने दाना दला को अपने मत के सिद्धान्ता को स्पष्ट करने का कहा गया। राधामाहन ठाकुर परकीयावादी दल के मुखिया थे इनके नेतृत्व में परकीयावादी दल ही विजयी हुआ। इन्हें एक जय-पत्र प्रदान किया गया १७ फाल्गुन ११२५ बंगाल में मुर्शिदा कुली खा के दरबार में वह दलील रजिस्टर करवाई गई। उपरिलिखित विवरण भी इनके प्रमाण्ड पाण्डित्य का ही परिचायक है।

रचनाएँ—

राधामोहन ठाकुर ने १८वा शताब्दी के आरम्भ में पदामृत समुद्र नामक पत्र-संग्रह ग्रन्थ का संकलन किया था। 'महानावानुसारिणी' नामक इस ग्रन्थ की एक संस्कृत टीका भी लिखी थी जिसमें उनकी प्रगाढ विद्वत्ता और ममीदाव के सभी गुण स्पष्ट रूप में प्रकट हैं। ये दोनों ग्रन्थ ही राधामाहन ठाकुर का बण्णव-साहित्य में अमर रहने के लिए पर्याप्त हैं।

पत्रों का वैशिष्ट्य—

'पदामृत-समुद्र' में विभिन्न रचयिताओं के संकलित पत्रों की संख्या ७४६ है जिसमें स कवि की स्वरचित पत्रों की संख्या २२८ है। पदकल्पतरु में

^१ विन्धुभारती द्वारा प्रकाशित चिठिपत्रे समाज विमर्श (दूसरा भाग) में एक पत्र प्रकाशित हुआ है जिसमें गार्वाथ का समय ११३७ बंगाल (सन् १७३१ ई०) दिया हुआ है।

राधामोहन ठाकुर के १८० पद संगृहीत हैं, संग्रहकार वैष्णवदास ने 'पदामृतसमुद्र' से ही उन पदों का सकलन किया ।

'पदकल्पतरु' में राधामोहन छाप के ऐसे पद जो पदामृतसमुद्र में नहीं हैं, वे सगहकर्ता वैष्णवदास के गुरु राधामोहन ठाकुर द्वारा रचे गए पद हैं । ये राधामोहन टेया निवासी द्विज हरिदास के वंशधर और पदकर्ता थे । राधामोहन ठाकुर ने ब्रजबुलि में ही अधिकांश पद लिखे उनके बंगला पदों की संख्या २३ और संस्कृत पदों की संख्या ५ है । इन्होंने घण्डालकार बहुल कुछ चित्र-गीतों की भी रचना की । राधामोहन ठाकुर गोविन्ददास कविराज के अन्वयानुसरण करने वाले पदकर्ताओं में से होते हुए भी इनके पदों में भावों का सौन्दर्य है । इनकी रचना शैली के उदाहरण स्वरूप ब्रजबुलि के दो पद उद्धृत किए जा रहे हैं ।

श्रीकृष्ण वन्दना—

जय जय नन्द नन्दन चन्द ।

अग-दीपति निन्दि नीरद

नील-नीरज-कन्द ॥

पीत-अम्बर कनक-भूषण

मकर-कुण्डल-धारि ।

वृष्णि-दूषण कंस-भारण

करण-मानस-कारि ॥

वल्लवीकुल-हृदय आकुल-

करण-उद्यमवन्त ।

ततर्हि किञ्चित् मसृण मानस

निजहु मन्दिरे सन्त ॥

चरण-पंकज भक्त-मानस-

सरसि उदय-कारि ।

ए राधामोहन-पाप-विमोचन

ए भव-सागर-तारि ॥^१

^१ पदकल्पतरु—संख्या—२४३५ ।

नन्दन-वन नीके नागर
 नविन धन रस-मेह ।
 नील-उतपल-नविन-नीरद
 निर्दि निरपम देह ॥
 निरवि सो रूप-ठाम ।
 नलिनि-नापक-नदिनी-तट
 नटत जनु नव काम ॥
 नूतन-नीप नि-कृत निवटहि
 निपत करतहि नाट ।
 नविन नापरि नगर ना रह
 निपट्टे निरन्तर हाट ॥
 नचन-नाचने निजहि नव राग
 कराये जो निति नीत ।
 निजक पद-तले नीत बाघड
 ए राषामोहन-बोत ॥^१

नरहरि चक्रवर्तिनरहरि नाम के दो पदकत्ता—

(नरहरिनाम द्वितीय और पनश्यामनाम द्वितीय) कृष्ण-साहित्य में नरहरि नाम के दो प्रसिद्ध पदवर्ती हुए। नरहरि प्रथम महाप्रभु पतञ्जल्य दस के सममामयिक और अन्तरग भक्त, श्रीगणेश निवासी सुप्रसिद्ध नरहरि सरकार ठाकुर के जाति के वर थे। दूसरे नरहरि हमारे ज्ञात कवि हैं। इन दोनों पदवर्तियों ने हा 'नरर्त्वि' छाप का प्रयोग किया है अथवा दाता रचयिताओं के पद आपस में जाने पुर्नमित्त गए हैं कि उनका अन्त करना असम्भव नहीं था कठिना अवश्य है।

जीवन वृत्त -

नरहरि चक्रवर्ती के पिता जगन्नाथ विठ्ठलाय परवर्ती के शिष्य थे। नरहरि का निवास स्थान गुगा के विनार पूब में गणेशनाथ के पास था। कवि ने भक्ति-तान्त्र में गणेशनाथ परियाय में अपना परिचय दिया

^१ पदकत्तरत - यस्या - २४६५ ।

है। इससे अधिक कवि के जीवन सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं हो सका। विद्वानों का अनुमान है कि सन् ईसवी १८ वीं शताब्दी के अन्त में कवि का जन्म हुआ। प्रेमदास के समान नरहरि चक्रवर्ती ने भी वृन्दावन के गोविन्द देव के मन्दिर में कुछ दिनों तक रसोड्डए का काम किया था।

रचनाएं—

नरहरि रचित 'भक्तिरत्नाकर' काव्य वैष्णव साहित्य के श्रेष्ठ ग्रन्थों में से है। इस ग्रन्थ को 'वैष्णव-इतिहास' का कोश कहा जाए तो अनुचित न होगा। 'भक्ति-रत्नाकर' में श्रीचैतन्य देव के परवर्ती प्रधान वैष्णव-आचार्य श्रीनिवास, नरोत्तम ठाकुर, ग्यामानन्द, पद् गोस्वामी तथा अन्य वैष्णव महन्तों की जीवनी विषयक बहुत महत्वपूर्ण बातें मालूम होती हैं। इसमें वृन्दावन-परिक्रमा तथा नवद्वीप-परिक्रमा का पाण्डित्यपूर्ण विजद विवरण दिया हुआ है, इन दोनों अंगों को स्वतन्त्र ग्रन्थ ही कहना चाहिए। ग्रंथ की पंचम तरंग में ब्रज-मण्डल और रास-स्थली के दर्शन प्रसंग में संगीत शास्त्र का विस्तृत विवेचन दिया हुआ है जो रचयिता के संगीत शास्त्र के अभावधारण ज्ञान और शोध नैपुण्य का स्पष्ट परिचायक है। 'भक्ति-रत्नाकर' की पंचम तरंग वास्तव में संगीत शास्त्र विषयक निबन्ध है। इसमें रास, अष्टकालीन नित्य-लीला, झूलन और होरि-लीला के प्रसंग में रचयिता ने बहुत से स्वकृत पद उद्धृत किए हैं। वारहवीं तरंग के 'नवद्वीप-परिक्रमा' के प्रसंग में महाप्रभु की बाल्य-लीला, विद्यारम्भ, दिग्विजयी के साथ विचार, उपनयन, विवाह, कीर्तन प्रचार आदि लीला विषयक सुन्दर और सक्षिप्त विभिन्न पद रचयिताओं के पदों के साथ नरहरि ने स्वरचित भी बहुत से पद सन्निविष्ट किए हैं। विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों के उद्धरणों से रचयिता के विद्या नैपुण्य का परिचय मिलता

- १ निज परिचय दिते लज्जा हय मने ।
पूर्ववास गगातीरे जाने सर्वजने ।
विश्वनाथ-चक्रवर्ती सर्वत्र विख्यात
तार शिष्य पिता मोर विप्र जगन्नाथ ।
ना जानि कि हेतु हेतु मोर दुइ नाम
नरहरि-दास आर दास धनश्याम ॥

—भक्तिरत्नाकर, ग्रन्थानुवाद, पृ० १०६७ ।

- २ श्रीनगेन्द्र नाथ वसुके सम्पादन में स्वतंत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं ।

है। बहुत से अनुपलब्ध ग्रन्थों का निर्देश भी 'भक्ति रत्नाकर' में दिया हुआ है।

नरहरि चक्रवर्ती रचित दूसरा जीवनी ग्रन्थ है 'नरात्मविलास'^१—इसमें नरोत्तम ठाकुर का जीवन चरित और क्रिया बलाप वर्णित हुआ है, यह ग्रन्थ 'भक्ति रत्नाकर' का परिपूरक है। 'भक्ति रत्नाकर' और 'नरात्मविलास' के अतिरिक्त नरहरि ने 'श्रीनिवासचरित' नाम का एक जीवनी काव्य लिखा था। इस ग्रन्थ की कोई भी हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं है। 'भक्ति रत्नाकर' में 'श्रीनिवासचरित' का उल्लेख मिलता है^२।

पद्य-रचना—

नरहरि चक्रवर्ती ने बहुत से पदा की भी रचना की है। इनके गौराग विषयक पदा का सङ्कलन ग्रन्थ है 'गौरचरित्र-चिन्तामणि'^३। पदा का दूसरा बृहत् सङ्कलन ग्रन्थ है 'गीतचन्द्रोदय'^४। इसमें सङ्कलनकर्ता के स्वरचित पदा भी सङ्कलित हैं। इस ग्रन्थ की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ अब तक प्राप्त हुई हैं सभी खड्डित हैं^५। इससे विद्वानों का अनुमान है कि नरहरि चक्रवर्ती सङ्कलन के कार्य को पूरा करने के पूर्व ही परलोक सिंघार गए। त्रिपुरा दरबार के ग्रन्थालय में जा हस्तलिखित प्रति हैं वह खड्डित हैं फिर भी पुस्तक का अधिकांश उसमें सुरक्षित है। नरहरि के अन्य दो ग्रन्थ 'छन्दसमुद्र' और 'पदनिप्रदाय' के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय

^१ बरतला से बहुत बार मुद्रित हुआ है।

^२ गिष्यगण नाम एथा लिखिते नारिनु श्रीनिवासचरित्र ग्रन्थेत विस्तारिनु। चतुर्दश-तरंग।

^३ असम्पूर्ण हस्तलिखित प्रति के अवलम्बन से श्रीहरिदास-दास द्वारा प्रकाशित, चतनाब्द ४६१, प्रकाशित ग्रन्थ में लगभग पौने चार सौ पद्य हैं।

^४ वीरचन्द्र देववर्मान ने 'गीतचन्द्रोदय' का कुछ हिस्सा १२९८ त्रिपुरा में आगरतला से प्रकाशित करवाया था, इसमें केवल ३३० ही पद्य हैं।

^५ गिष्यचन्द्र शील के संग्रह में २०५ पृष्ठों (माहिष परिपद् पत्रिका ८ पृ० १८६) की हस्तलिखित प्रति थी। एक हस्तलिखित प्रति त्रिपुरा दरबार के संग्रह में है जिसमें पदा की संख्या १४४६ है।

जगद्वन्वु का मत है--“ 'छन्द-ममूद्र' से इनके ससृष्ट भाषा और साहित्य में गम्भीर व्युत्पत्ति (ज्ञान) का परिचय मिलता है ।” जो कुछ भी हो उनकी रचनाओं से यह तो स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि ये भारी छन्दोगास्त्री और सगीतज्ञ थे ।

पदकल्पतरु में उनके पद—

‘पदकल्पतरु’ में ‘नरहरि’ की छाप में ३६ पद उद्धृत हुए हैं, जिनमें ने अघिकांश पदों के रचयिता नरहरिदाम प्रथम हैं । ‘घनश्यामदाम’ छाप वाले ४२ पदों को भी साहित्य-मर्मज्ञों ने घनश्याम प्रथम की रचना माना है । ‘क्षण-दागीतचिन्नामणि’, ‘पदामृतममुद्र’, ‘कीर्त्तनानन्द आदि विभिन्न सकलन ग्रन्थों में नरहरि चक्रवर्ती का कोई भी पद नगृहीत नहीं हुआ है, ‘नरहरि’, ‘घनश्याम’ की छाप में सकलित पद नरहरि प्रथम और घनश्याम प्रथम के ही पद हैं ।

छन्द के ज्ञाता—

ब्रजवृत्ति-साहित्य में छन्द शास्त्र की दृष्टि ने नरहरि को निस्सन्देह प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत रखा जा सकता है, पर भावोत्कर्ष और कवित्व-शक्ति की कसीटी पर इनके पद उतने सरे नहीं उतरते । हा, लोचन दास के वमाली-पदों के अनुकरण पर रचे गए गौराम विषयक मुख्यत ‘नदीया नागरी’ नाव वाले कुछ पदों में रसज्ञता और स्वाभाविकता अवश्य है । नरहरिदाम चक्रवर्ती के ब्रजवृत्ति रचना के उदाहरण स्वरूप नीचे दो एक पद उद्धृत किए जा रहे हैं—

चैतन्य का विवाह-वर्णन—

श्री चैतन्य का विष्णुप्रिया देवी के साथ विवाह के अवसर का वर्णन—

देवरमणी—वृन्द विरचि

वेश विविध भाति ।

राजत यल—माहि अतुल

झलके कनककांति ॥

भ्रमत गगन—पय अगणन

जूय हिय-उत्साह ।

मानत दिठि सफल निरखि

गौरवर — विवाह ॥

मिश्र-भवन रीत रुचिर

उचरि पुलकगात ।

नवनव-अभि लाय करइ
 धृति धरइ न जात ॥
 निरुपम पहु प्रेयसीछवि
 लोचन भरि नेत ।
 नरहरि कत भाखय सबे
 प्राण निछनि देत ॥^१

गौरांग का प्रेमावेश—

गौरांग महाप्रभु का भगवद प्रेमावेशमय स्वरूप का वणन —

नाचत गौर
 निखिलनदपडित
 निरुपम भगि
 मदनमी हरइ ।

प्रधुरचण्डकर—

दरपरिभजन—
 भगकिरणे विक—
 विदिक उजरइ ॥

उनमत - अतुल—
 सिंह जिनि गरजन
 गुनइते बली कलि—
 वारण डरइ ।

धन धन लम्फ
 ललितगति चचल—
 चरणघाते शिति
 टलमल करइ ॥

किधरगरव
 खरव कषपरिकर
 गायत उलसे
 भमियरत मरइ ।

वायत बहुविध
 खोल समक धुनि
 परगत गगन
 कौन धनि धरइ ॥

^१ भक्तिरत्नाकर, पृ० ८१३ ।

अतुल-प्रताप
 कापि दुरजनगण
 लेख्य शरण
 चरणतले पडइ ।

नरहरि-पहुँक
 किरीति रहू जगभरि
 परमदुलह धन
 नियत वितरइ ॥^१

मुवनदास : पद-रचना—

इनका एक ही पद अभी तक मिला है लेकिन उसीसे इनके कवित्व का पता चल जाता है। एक वारहमासा इनका मिलता है।^२ उस वारहमासे में महाप्रभु चैतन्य की पत्नी विष्णुप्रिया का विरह-वर्णन है। एक और पद^३ इनका मिलता है लेकिन वह ब्रजबुलि का नहीं है बल्कि बगला है। डा० सुकुमार सेन इसे इन्ही की रचना मानते हैं।^४ वारहमासे की कुछ पक्तियाँ निम्नोद्धृत हैं—

वारहमासा—

घन घन मेघ गरजे दिन यामिनी
 आबोल माह थापाइ ।
 नव जलघर पर दामिनि शलकये
 बाह दिगुण तर्हि बाइ ॥
 सहचरि दैव दारुण मोहे लागि ।
 शरद सुधाकर सम मुख सुन्दर
 सो पहुँ काहाँ गेओ भागि ॥ध्रु०॥
 अन्तर गर गर पाँजर जरजर
 झरझर लोचन वारि ।
 दुख-कुल-जलधि-भगन महु अन्तर
 ताकर दुख कि निवारि ॥

^१ भक्तितलाकर, पृ० ८८३ ।

^२ पदकल्पतरु, पदसंख्या—१७८९-१८०० ।

^३ वही, पदसंख्या—१०३१ ।

^४ हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २८४ ।

जदि पुन गौर-चाद नदिया-पुर
गगन उजोरए नीत ।
तब दुख विफल सफल करि मानिये
होयत तब फिर चीत ॥^१

विन्दुदास रचनाएँ—

विन्दुदास को भी बहुत कम रचनाएँ उपलब्ध हैं। पदकल्पतरु में तीन पद ऐसे मिलते हैं जिनकी रचना इन्होंने ब्रजबुलि में की है। उन पदा को देखने से लगता है कि इनके और पद हागे क्योंकि उन पदा से इनकी कवित्व-शक्ति का पता चलता है। इन तीनों की पद संख्या कल्पतरु में ७१, १६६७ तथा २३३३। पदकल्पतरु की पद संख्या २२५३ भी इन्हीं की रचना है लेकिन यह बगला में है। इससे लगता है कि इन्होंने बगला और ब्रजबुलि दोनों में ही पद लिखे थे। निम्नलिखित पद में सखी राधा व मन के वृष्टा का पूछनी है और उसमें भाग बटाना चाहती है—

पद — तोहारि येदन छदन कारण ।
पुन पुन पूछिये ताप ।
तुहु उर धरि धरि मरि मरि बोलसि
सुध बुध सब लोय ॥
आलि रि हामरा तोहारि किये नहिये ।
जो तुया बूखे दुलायत शत-गण
ताहारे कि वदन ना कहिये ॥ध्रु०॥
ए तुया सगिनि रगिनि रसिकिनि
कहिले कि आओव लाजे ।
फणि मणि धरय गमन भवने जाव
जछे सिधायव काज ॥
हाम आगुयाओनि आगुनि पठव
बठव योगिनि-साजे ।
तत्र मत्र यत गत शत बूढय
बूढव सागर भासै ।

^१ पदकल्पतरु पदसंख्या—१७९४ ।

भावना औ तुया अन्तरे अन्तर
 कहिले कि रहे ताप-लेश ।
 विन्दु इन्दुमुखि सिन्धु उतारव
 बोलह वचन विशेष ॥^१

गोवर्धनदास : रचनाएँ—

गोवर्धनदास, ब्रजवृत्ति के उन थोड़े से कवियों में से हैं जिन्होंने होली विषयक पद लिखे हैं। पदकल्पतरु में इनके सोलह पद मिलते हैं। उन्हें देखने से लगता है कि इन्होंने अधिकांश रचनाएँ ब्रजवृत्ति में ही कीं। बंगला के भी दो पद हैं। उनका होली विषयक एक पद नीचे उद्धृत है—

होली विषयक पद—

बाजे दिग् दिग् थैया होरि रंगे ।
 किशोर किशोरी सखिनी मेलि
 तपन तनवा तीरे केलि
 सुखमयवति मधु ऋतुपति
 रतिपति तयि संगे ॥
 मसृण घुसृण चुवक चन्दन
 जंघ्र रन्ध्रे वरिखे सघन
 अरुण वसन्त लुलित रशन
 श्रम-जल गल अंगे ।
 वीणा मुरज सर उवांग
 द्विमिकि द्विमिकि द्विमि मृदंग
 चंचलगति खजन जिति
 नृत्यति अति भंगे ॥
 गावे गमकै गोपि मेलि
 गौरि गुज्जरि रामकेलि
 सुभगा सुहिनि सुहइ साहानि
 संगित रस-तरंगे ।

^१ पदकल्पतरु, पद संख्या—७१ ।

यूये यूये युवतिवृन्द
 माझे शोहत गोकुल-चन्द
 गोवद्धन हृदि बद्धन
 कव मद्दन अनगे ॥^१

सख्य के पद—

इनका एक पद सखाआ सहित गाया के चराने का मिलता है—

पाल जड करि गिशुगण मेलि
 नामाइल यमुनार जले ।
 आन दे गोगणे करे जलपाने
 पिओ पिओ सभे बोले ॥
 उच्च पुच्छ करि जले पेट भरि
 उपरे उठिल धेनु ।
 राखाल मेलिया हेलिया हेलिया
 घन बाम गिगा धेनु ॥
 नव तृण पाइया धेनु खाइया खाइया
 भ्रमये यमुना-तीर ।
 न देर नन्दन करि गोचारण
 सखागण सगे फिरे ॥
 बेलि अवसान देखि बलराम
 धेनुगण लया मुखे ।
 कृष्ण माझे करि सखागण घेरि
 चलिल गोकुल मुखे ॥
 मोठे प्रवगिया गोगण रातिया
 पयते मिलिला माय ।
 पुत्र बोले निला पराण पाइला
 दास गोवध्या गाय ॥^२

^१ पदवन्त्यातर, प० मन्थ्या १४४३ ।

^२ वही—१२४१ ।

आनन्द (आनन्ददास) : पद—

पदकल्पतरु में आनन्ददास की दो कविताएँ मिलती हैं। पद संख्या २७९४ में राधा और कृष्ण के पामा खेलने का वर्णन है। उसमें सखियाँ भी योग दे रही हैं। दूसरी कविता ब्रजबुलि की है जो निम्नोद्धृत है—

वृषभानुनन्दिनी—के शोभा बनी
 वरण किरण छवि जिनि दामिनी ॥
 चरण कमल पर नखर निशाकर
 मजीर रजित मधुर ध्वनि ।
 किए विधि-अद्भुत उरजुग निरमित
 सीतकटि नीलिमवसनकसिनी ॥
 किए मुल छन्द जिनि कोटि चन्द
 काम कामान भाग भृगनयनी ।
 श्याम भुजगिनी वेणी के लावणि
 आनन्द-मतिगति दुख हरिणी ॥^१

नन्द : पद—

पदकल्पतरु में नन्द रचित तीन पद हैं। एक पद नन्द (द्विज) पद संख्या १७३३ मिलता है। डा० सुकुमार सेन दोनों को एक ही नन्द मानते हैं।^२ उनका एक पद नीचे उद्धृत है—

सुन्दरि, आन-गुण नहें मोर बचन मधुर ।
 तुया परसादे साध सब पूर ॥
 आन - सग कभुना कहबि मोर ।
 चांद ना तेजइ कबहुं चकोर ॥
 तुया गुण - गायन वयन हामार ।
 तुया हृदि शीतल पंकज - हार ।
 तुहुं दरपण बिनु सब आन्वियार ।
 भिछ नह नन्द कहये कत बार ॥^३

^१ पदकल्पतरु, पद संख्या—२८७२ ।

^२ हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २९२ ।

^३ पदकल्पतरु, पद संख्या १०४६ ।

कृष्णकान्त जीवन वृत्त और रचनाएँ—

इन्होंने ब्रजबुलि में सुंदर पदा की रचना की है। इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का मिथुण परिलक्षित होता है। इन्हें उद्धवदाम से अभिन्न माना गया है।^१ लेकिन डा० मुकुमार सेन इसमें सशंका नहीं हैं।^२ इनके बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। पदकल्पतरु के रचयिता वैष्णव दाम के साथ इनका संबंध था।^३ पदकल्पतरु में इनके २० पद मिलते हैं। इनकी सरस रचना का परिचय निम्नलिखित पद से मिल जाता है—

सहचरि सगे पाये हाम नाति ।
भवहरि हेरहु मनोहर भाति ॥
को जाने कछन मम हिय चाप ।
थापक अक्षतिन पाणि उचाप ॥
आजु नेहारलु जछन कानु ।
कछन सकेत ना वुझलु हाम ॥
सो हेन रूप सो धरगधि रग ।
मनहि लागि अयिर कह अग ॥
अव सति गूनह वणुक गान ।
गोवद्धन पर इह अनुमान ॥
कृष्णकान्त कह इये कि विचार ।
हरि रहु ताहि रचह अभिसार ॥^४

चूडामणि एक पद—

पदकल्पतरु में चूडामणि की सिर्फ एक कविता मिलती है। डा० मुकुमार सेन को इसमें संदेह है कि यह चूडामणि का रचना है।^५ वह कविता निम्नलिखित है—

नाचत मोहन नद-बुलाल मेरो जान ।
नासा - विराजित मोतिम - भूषण
फाटि मामो घुगुह रसाल ॥

^१ पदकल्पतरु (पंचम गद्य) पृ० ३१ ।

^२ हिन्दी आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २९५ ।

^३ पदकल्पतरु (पंचम गद्य), पृ० ३१ ।

^४ वही, पृ० मध्या - २८७८ ।

^५ हिन्दी आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २९५ ।

सुन्दर उर पर वर रुद-नख-पद
 सररुह रतन-मंजीर ।
 नय नव वच्छ-पुच्छ धरि धायत
 पतन अंगुलि घुलि-घुसर शरीर ॥
 मरकत चान्द मुकुर भुव-मण्डल
 परिसर कुञ्चित अलक-हिलोल ।
 ब्रज-रमणी परबोध करायत
 नयन फिरायत आध आध बोल ॥
 अभिनव नील जलद जिनि तनुरुचि
 कहिल नहिल रूप किये निरमाण ।
 कत कत भकत यतन करि ध्याओत
 सबे चूड़ामणि दासेर एइ निवेदन ॥^१

उद्धवदास : जीवन वृत्त—

उद्धवदास के ९९ पद 'पदकल्पतरु' में मिलते हैं । ब्रजवृत्ति तथा बगला दोनो में ही इन्होंने पद रचना की है । इनका असली नाम कृष्णकान्त मजुमदार था और ये टेसा वैद्यपुर के निवासी थे ।^२ इनका जन्म अम्बष्ठ कुल में हुआ था । ये रावामोहन ठाकुर के शिष्य थे । पदकल्पतरु के सकलन कर्ता वैष्णव दास के मित्र थे । वैष्णवदास का असली नाम गोकुलानन्द सेन था ।^३

ये १८वीं शताब्दी के अच्छे कवियों में थे ।^४

रचनाएं—

इनकी रचनाएँ 'गीरपदतरंगिणी', 'कृष्णपदामृतसिन्धु', 'कीर्तन गीत रत्नावली', 'कीर्तनानन्द', 'संकीर्तनामृत' तथा 'मुकुन्दानन्द' आदि सग्रहों में मिलती हैं ।^५ उनका एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

श्रीरावामोहन झूलत हिंडोरे ।

चदन-काठकि हिंडोरे झूलत

श्यामा श्यामहु भोरे ॥ ध्रु ॥

^१ पदकल्पतरु, पद सख्या ११४२ ।

^२ अप्रकाशित पद रत्नावली, भूमिका (उद्धवदास का वृत्तान्त) ।

^३ वही ।

^४ डा० सुकुमार सेन . हिस्ट्री आफ ब्रजवृत्ति लिटरेचर, पृ० २९८ ।

^५ वही पृ० २९७-९८ ।

शुलना क्षमवत राइ घमवित
 कानु कोरे अगोरे ।
 सुरग रगहि डोर विरचित
 - कतहू हिरामन-हीरे ॥
 कनक-खम्या कनक डाली ।
 खचित चुनिया रसाल रे ॥
 ता पर मोतिम-जाल रे ।
 कनक-पाटकि डुरिया रे सति
 चित सुरग सुडार रे ॥
 देह शोकार घोले भालि भालि
 उधवदास हि भान रे ॥^१

नन्दकिशोर रचनाए—

इनकी जा छ वविताए 'सवीतनामृत' में सकलित हैं उनमें पाच प्रजवुलि की हैं और एक बंगला की । इनका एक पद नीचे दिया जाता ह—

लोचन लोरे धारि घन मुगमद
 कलम बयल नखचद्र ।
 पदनखे दास बबज पहु लिख इते
 हरति धरल पद इद ॥
 सुदरी अन्तरे उलसित भेल
 आवर मुषइ सुधारसवावरे ।
 विरहताप दूर गल ॥
 करे कर बारइते अन्तर दरदर
 रसवती पुलकित अग ।
 उपजल प्रेम विहगपति तछु भए
 भागल मान भुजग ॥
 नाह बाह धरि अयिर बलेवर
 मदन जलधि जल भगे ।
 भांगल मान जनित भय माधव
 कोरे पसारल रगे ॥

^१ अप्रकाशित पद रत्नावली, पद सख्या—४४६ ।

भुज भुज यन्धन निविड आलिंगन
 वदन वदन एकु मेलि ।
 नन्दकिशोर हेरि अनुमानइ
 दूह-क कलह किए केलि ॥^१

दीनबन्धु : जीवन वृत्त और रचनाएँ —

दीनबन्धु ने 'सकीर्तनामृत' का सकलन किया है जिसमें चालीस पदकर्ताओं के पद संग्रह किए गए हैं। पदों की संख्या ४९१ है और इनमें दो सौ से भी अधिक पद दीनबन्धु के लिखे हुए हैं। इन पदों में दीनबन्धु की लगभग एक सौ कविताएँ ब्रजबुलि की हैं। 'सकीर्तनामृत' का प्रकाशन वगीय साहित्य परिषद् की ओर से हुआ है। उनका काल ईसवी मन् की अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।^२ ये संस्कृत के भी विद्वान् थे। छन्दों का इनका ज्ञान सुन्दर था। 'अप्रकाशित पद रत्नावली' में इनके आठ पद दिए हुए हैं। वे सभी वगला के पद हैं। इनका ब्रजबुलि का एक पद नीचे उद्धृत है—

धनो साजत श्याम मनोहर वेश ।
 कसी कानड़ु छांदे वाघावल केश ॥
 सींधि सिंदूर चन्दन विन्दुछटा ।
 रविमण्डल वैदल चांद छटा ॥
 मृगनाभि विचित्रित गण्डदुकूल ।
 वरवेशर लम्बित नासिकमूल ।
 धन कुकुम घोरि लेपि कुचभार ।
 तहि शोभित सुन्दर मोतिम हार ॥
 कर-कंकण हरि अनंग विभोर ।
 कृटि किंकिणी मण्डित नीलनिचोल ॥
 पद पकज रंजित जावकरंग ।
 दीनबन्धु नेहारि प्रफुल्लित अंग ॥^३

संस्कृत मिश्रित ब्रजबुलि का एक पद—

'अप्रकाशित पद रत्नावली' में निम्नलिखित पद मिलता है। इसमें संस्कृत रूप और ब्रजबुलि का मिश्रण है—

^१ सकीर्तनामृत, ३९५ ।

^२ हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ३०६ ।

^३ सकीर्तनामृत, ४४ ।

निज मन्दिर तेजि गत क्षयट ।
 चल-कुण्डल-मण्डित-गण्ड तट ॥
 मद-भक्त-भतगज-भव-गता ।
 जटिला-पद-मकज-यूलि-नता ॥
 नतक-धर हेरि गत सुवत ।
 जटिला जय देह बले कुगल ॥
 मधुरापर बातहि शूय मिठ ।
 गुरु-भाविति नूनित देय पिठ ॥
 सुबलावृत्ति राड बने गमन ।
 रहू दीनब-धु कलित भवन ॥^१

नयनानन्द जीवन वृत्त और रचनाएँ—

पदकल्पतरु में नयनानन्द के २५ पद मिलने हैं । नयनानन्द इसवी सन की अठारहवीं शताब्दी के प्रवाध में हुए हैं ।^२ वे जानि के ब्राह्मण थे । उनका निवास स्थान वीरभूम जिले का मगलाडिहि बताया जाता है । कल्पना विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में नयनानन्द की कविताओं का एक हस्तलिखित संग्रह है ।^३ इसमें ७२ गीति कविताएँ हैं । डा० सुकुमार सन ने निम्न लिखित पद अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है—

निगिमुखे मुखे हरि छादत गाइ ।
 गावी दाहन केलि करत मायाइ ॥
 दोहत गावी सखागणसग ।
 घरघर पागरी बोलत रग ॥
 गोदोहन केलि कष अवसान ।
 सहचर आसि पुन भेटल कान ॥
 ए नयनानन्द कहइ जुडि हात ।
 एके एके मीलल सकल सांगान ॥^४

^१ अप्रकाशित पदरत्नावली पृ० मध्या—५१० ।

^२ हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर पृ० ३११ ।

^३ संख्या—२१३५ ।

^४ हिस्ट्री आफ ब्राबुलि लिटरेचर, पृ० ३१२ ।

एक पद में हिन्दी के शब्द—

नीचे लिखे हुए पद में हिन्दी शब्दों के रूप मिलते हैं—

उठ गोपाल प्रातःकाल मुख नेहारि तेर ।
 रजनी अब-सान भेइ काम भेइ मेर ॥
 उठत भानु देखत कानु रजनी गेइ दूर ।
 बालक मंगे मेलत रगे रोहिण्य बलवीर ॥
 एइ श्रीदास दामसुदाम संगी गण तेर ।
 पूरत वेणु घाओत धेनु आगिना भरल मेर ॥
 नद-रानी पसारि पाणि बालक लेइ कीर ।
 मुख नेहारि दु-ख बिसरि किये सुख जानि और ॥
 श्याम चन्द्र चन्द्र उदित नाशल हृदि घोर ।
 हेरियावयन कहिछे नयन उठ कानाइ मोर ॥^१

जगदानन्द · जीवन वृत्त और पद—

ये गोकुलानन्द के पुत्र थे । गोकुलानन्द, नयनानन्द के भाई थे । इनका निम्नलिखित पद वीरभूम विवरण में मिलता है—

आरति करे नन्दरानी बालक मुख हेरि ।
 गावत नव-नागरी सब राखाल सकल घेरि ॥
 रम्भा फल घृत प्रदीप पुष्परचित्त घालि ।
 सुन्दरी गणे हुलोति देइ शिशुगण करताली ॥
 राखि शिववेणु जशोदा माइ कोरे निल दुनो भाइ ।
 माखन दहि देइ क्षीर खावए रामकानइ ।
 सकल शिशुर मुख तुलि जशोमती चुभो खावए ।
 मंगल पुछे नन्द घोष जगदानन्द गावए ॥^२

चन्द्रशेखर (३) : जीवन वृत्त और रचनाएँ—

चन्द्रशेखर का काल ईसवी सन् की अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है ।^३ इस काल में लिखी जाने वाली ब्रजबुलि कविता को देखने से चन्द्रशेखर तथा

^१ वीरभूम विवरण, खण्ड १, पृ० १८० ।

^२ वीरभूम विवरण, खण्ड १, पृ० १७९ ।

^३ हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ३२३ ।

उनके भाई शशिसेखर के महत्व का समया जा सकता है। उस काल तक आत आते ब्रजबुलि कविता निष्प्राण हो गई थी। उनमें कोई ताजगी नहीं रह गई थी। इन दोनों भाइयों ने उनका पुनः प्राणप्रतिष्ठा की। चन्द्रसेखर के पिता का नाम गोविन्दानन्द ठाकुर था और ये बद्धमान तिले के थे। इनकी कविताएँ किसी प्रसिद्ध पत्र-मग्नह में नहीं मिलतीं। इनकी कविताएँ 'पद रस सार' (सम्भवतः इसका सकलन ईसवी सन् की अठारहवाँ शताब्दी के अन्तिम दिना में हुआ) मिलती है। 'नायिकारत्नमाला' में इनके सबसे अधिक पद मिलते हैं। 'अप्रकाशित पद रत्नावली', 'कीर्तनगीत रत्नावली' तथा वीरभूम विवरण (तृतीय खण्ड) में इनकी कविताएँ मिलती हैं। निम्नलिखित पद इनके रचना बौद्ध का परिचय देता है—

हाँ हाँ निरलज परपक्षक गठ
 राइ-नियडे मति जाहा ।
 बेरि बेरि तोहे निये हम करतहि
 फाहे उदबेग बढ़ाइ ॥
 तभु यदि जायबि कलह बाढ़ायबि
 हरि हसायय प्राते ।
 येह ना पायबि रोइ रोइ आयबि
 कर अयलम्बइ माये ॥
 एतहु बचन कहि फिरि बुति चलतहि
 कानु चलल तछु साय ।
 चन्द्रसेखरे कहे लाज नाहि जावर -
 - ताकर सज्ज किये बात ॥^१

संस्कृत मिश्रित ब्रजबुलि का पद—

निम्नलिखित कविता में संस्कृत और ब्रजबुलि का मिश्रण है। इसमें राधा, उदब से संस्कृत में प्रश्न करती है और उदब ब्रजबुलि में जवाब देते हैं—

कस्त्व श्यामल धामा ।
 हरि-किकर हाम उदब-नामा ॥
 अथ हरि स कुत्र ।
 मधुपुरे वसइ बरजजनमित्र ॥

^१ अप्रकाशित पद रत्नावली, पत्रसम्प्रा—२४५ ।

फुरते कि मधुनगरे ।
 कंसक वक्ष दलन करि विहरे ॥
 पुन पुन पूछइ गोरो ।
 चन्द्रशेखर कहे प्रेमभित्तारी ॥^१

शशिशेखर : जीवन वृत्त—

ये चन्द्रशेखर के भाई थे और ब्रजवृत्ति के बहुत अच्छे कवि थे । इनके पद अत्यधिक लोकप्रिय हैं । वैसे चन्द्रशेखर से इनकी ब्रजवृत्ति कविताएँ निम्नकोटि की हैं । इनकी कविता में कहीं 'शशि' और कहीं 'शेखर' की छाप मिलती है । इनकी कविताएँ 'नायिका रत्नमाला', 'अप्रकाशितपदरत्नावली', 'कीर्तनगीतरत्नावली' और 'कृष्ण-पदामृत सिन्धु' में मिलती हैं । इनका एक पद नीचे उद्धृत है—

अति शीतल मलयानिल
 मन्द-मन्द-ब्रह्मा ।
 हरि-वैमुख हमारि अंग,
 मदनानले दहना ॥
 कोकिला-कुल कुह कुहरद
 अलि शंकर कुसुमे ।
 हरि-लाल से तनुतेजब
 पाओब आन-जनमे ॥
 सब संगिनि घिरि बैठलि
 गाओत हरि-नामे ।
 जैखने गुने तैखने उठे
 नव-रागिनी गाने ॥
 ललिता कोरे करि बैठत
 विशाखा घरे नाटिया ।
 शशिशेखरे कहे गोचरे
 जाओत जिउ फाटिया ॥^२

^१ नायिका-रत्नमाला, ५४ ।

^२ अप्रकाशित पद रत्नावली, पद सख्या—२५७ ।

गोपीनाथ दुर्लभ पद—

इनकी एक कविता दास हस्तलिखित संग्रह ग्रन्थ में मिलती है। 'दुर्लभ' पदवी बगाल की निम्नश्रेणी की जातियों में मिलती है। इनका पद नीचे उद्धृत है—

शुन हे नागर गुरु रसेर कल्पतरु
 अनायिनी राइ-पराण ।
 चतुरेर गिरोमणि प्रेम रतनलति
 विदगध नागर कान ।
 धधु, जानति राइ तोहारि ।
 नील अम्बर गले देइ मिनति कर
 राखवि बचन हामारि ॥
 अब राइ गुरुजना सगति तब तहि
 ना करिह मुरली नितान ।
 शुनइते मधुर शब्दे तनु पुलरित
 चमकि चमकि उठे प्राण ।
 उतपन चित रीत नाहो भानत
 लोरे नयान मोर झाप ।
 तुआ मुव दरगन लागि चित आकुल
 गुरु-दुरजन भये काप ॥
 कि कहव औ मुल-चांद बरश बिन
 खेने कत जुग करि मानि ।
 लाल जन चनोर-तापहरण मुल
 देखिले कि हए नाहि जानि ॥
 कहइते गौरी पुलवे परिपूरत
 नागर करलहि कोर ।
 आहा मरि मरि करि घुम्बइ बत घेरि
 गोपीनाथ दुर्लभ भोर^१ ॥

दयाल पद—

दयाल की एक ब्रजमुनि कविता मिलती है। वह कविता निम्नलिखित है—

^१ हिस्ट्री आफ ब्रजमुनि लिटरेचर, पृ० ३३३ ३३४ पर उद्धृत ।

पेतलुं अपरूप नन्दकुमार ।

कालिन्दी नीर तीरतरहेलन

जैछन जलदसंचार ॥

चूड़हि उरए मयूरशिलण्डक

सो एक अपरूप ठाम ।

जैछन इन्द्र धनुक तहि ऊयल

ऐछ मजु मनै भान ॥

मोतिमहार उर-पर लोलत

हेरिए तारकपाति ।

कटि पर पीत वसन तहि राजित

जिनि सौदामिनी कानि

चरण अवधि वन-माला विराजित

उनमत मधुकर जाल ।

पद पंकज तले मास नोंपलु

कातर कहत दयाल^१ ॥

हरिवंश दास : पद—

इनकी दो कविताएं 'अप्रकाशित पदरत्नावली' में मिलती हैं। उनकी संख्या ५८१ तथा ५८२ है। इन कविताओं से लगता है कि ये ब्रजबुलि के अच्छे कवि थे। इनका एक पद नीचे उद्धृत है—

सजनी कि हेरलु कुंजक माझ ।

युगल कमल पर युगलहु मधुकर

युगल कमल पुन साज ॥

पुन दश शशधर हेरि कमल पर

रति-पति लागल घन्द ।

पुन दुहुं कमले रविर किरण गौ

उदयति आर दश चन्द ॥

युगल सरोवरे युगल कमल गौ

दरश परश नाहि जान ।

पुन युग-कमल अरुण संग जुझत

शशधर दश-परिमान ॥

^१ अप्रकाशित पद रत्नावली, पद संख्या—५०३ ।

पुनहि कमल चारि देखत सारि सारि
 - कमले कमले कर रण ।
 रबिर उदय-बाले चादेर उदय गो
 । मनमय मुरछिन मन ॥
 चाद-कमल-रण कटल निरीवन
 हेन बले राहु गरास ।
 आध सपन दलि हरिवेग मने सुली
 आलि मिलिना पूरत आस ॥^१

कमलाकान्तदास जीवन-वृत्त—

ये पदरत्नाकर' के सकलन कर्ता थे। ग्रन्थ के अन्त में उन्होंने अपना कुछ परिचय दिया है। उससे पता चलता है कि वे सिउर ग्राम के वासी थे जहाँ से आठ कोस पूरव कटवा ह। वे कण-वायस्य थे। उनका पिता का नाम ब्रजकिशोर और कनिष्ठ भ्राता का नाम हविमणोकांत था। इनका परिचय पदकल्पतरु के पाचवें खण्ड में दिया हुआ है।^२ इनका काल ईसवी सन् की उन्नीसवा शताब्दी का प्रारम्भ है। अप्रकाशित पदरत्नावली' के एक पद से पता चलता है कि इनके गुरु का नाम नटवर था जो गिवानन्द के पुत्र तथा गदाधर दास के गिष्य थे।

पद—

ब्रजबुलि के ये अच्छे ही कवि माने जा सकते हैं। संभवतः वष्णव-साहित्य में ब्रजबुलि के वही अन्तिम कवि थे। इनका एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

श्याम गुण धाम विने
 याम युग भेल ।
 काम-गर दाम-अव
 भेल मुझे गल ॥
 भ्रमर-बुल-नाछे अब
 साद ममु प्राण ।

^१ अप्रकाशित पद रत्नावली पद सख्या—५०३ ।

^२ पदकल्पतरु पंचम खण्ड, भूमिका पृ० ७-९ ।

कुंज मन-रञ्ज भय-

कुंज सम भान ॥

कोकिल-कल-भावे अब

त्रास मेल चीत ।

संग-सुख लागि मम

अंल भेद भीत ॥

गन्ध सह गन्धवह

मन्द-गति भेल ।

इह सुखद विपिन-द्रुम-

दाम सुख देल ॥

विकच फुल-यन्द चित

गन्ध हरि गेल ।

सवल हृदि कमल अब

तरल-मति भेल ॥^१



दसवा अध्याय

तुलनात्मक अध्ययन

ब्रजभाषा और ब्रजबुलि की तुलना—

पिछले कई अध्यामों में ब्रजभाषा तथा ब्रजबुलि के भक्त-कविया की रचनाओं, उनके मत और सिद्धांत तथा साधना पद्धति की विस्तृत रूप से हमने चर्चा की है। यहाँ पर हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि उनमें किन किन बातों में समानता है और किन किन बातों में अन्तर है। अध्ययन की सुविधा के लिये चार विषयों को ध्यान में रख कर हम विचार करना चाहेंगे भक्ति और साधना, पदावली, भाषा और छन्द, अलंकार।

(क) भक्ति और साधना

भक्ति के आश्रय—

ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के कविगण मुख्य रूप से भक्त हैं। वाक्य के द्वारा उन्होंने अपनी भक्ति ही निवेदित की है। कृष्ण और राधा इस भक्ति के केंद्र हैं। कृष्ण का बाल अथवा विगोर रूप ही इस भक्ति का आश्रय है। वैसे यह सही है कि किसी में राधा का प्रधानता दा गई है और किसी में कृष्ण की और किसी में युगल-मूर्ति को। विगोर रूप से ब्रजभाषा के कवियों में यह चर्चित अधिक देखने को मिलता है। इसका कारण यह है कि ब्रजभाषा के कवि अलग-अलग संप्रदाय में अन्तर्भुक्त थे। इन संप्रदायों में निम्बाक संप्रदाय, सखी संप्रदाय, बल्लभ संप्रदाय तथा राधावल्लभीय संप्रदाय के भक्तों में अनेक विभिन्न कवि हो चुके हैं जिन्होंने ब्रजभाषा में पद रचना कर एक अपूर्व रस की सृष्टि की है। ब्रजबुलि के भक्त-कवि चैतन्य संप्रदाय में अन्तर्भुक्त थे। इन विभिन्न संप्रदायों के भक्त-कवियों ने अपने अपने संप्रदायों की मापताओं तथा विधि-पद्धतियों को ही अपनी रचनाओं में रूप दिया।

बल्लभ और चैतन्य संप्रदाय—

ब्रजभाषा के भक्त-कवियों में बल्लभ-संप्रदायी कवियों और विशेष रूप से अष्टछाप के कवियों का प्रमुख स्थान है। निम्बाक राधावल्लभी तथा मती

संप्रदाय के कवियों की भी उल्लूक्य रचनाएँ मिली हैं और अद्ब वे प्रकाश में आने लगी हैं। वल्लभ-संप्रदायी कवियों की विशिष्टता को ध्यान में रखकर यहाँ विशेषरूप से उन्हीं की चर्चा हम करेंगे। जैसा कि पहले हम कह चुके हैं कि उन विभिन्न संप्रदायों के कवियों ने अपने काव्य में संप्रदायगत विशिष्टताओं को बराबर सामने रखा है इसलिये साधना आदि की दृष्टि में उनकी रचनाओं के अध्ययन का मतलब उन संप्रदायों के प्रवर्तकों द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों का अध्ययन है। अतएव सबसे पहले हम वल्लभाचार्य और श्री चैतन्य प्रतिपादित मतों की परीक्षा करना चाहेंगे कि उनमें कहाँ तक समानताएँ और अममानताएँ हैं।

वल्लभ और चैतन्य संप्रदायों में साम्य—

वल्लभ तथा चैतन्य संप्रदाय में कई बातों में साम्य है। दोनों संप्रदायों में भक्ति को प्रमुखता दी गई है। इस भक्ति को ही दोनों संप्रदायों में सब कुछ माना गया है। इस जन्म अथवा दूसरे जन्म के लिये इस भक्ति की उपलब्धि को ही चरितार्थ माना गया है। श्रीकृष्ण का बाल और किशोर रूप दोनों संप्रदायों के भक्तों को मुग्ध करता है। इस रूप के मिवाय दूसरे रूप की वे कल्पना नहीं करते। शृंगार और मधुर भाव के आश्रय श्रीकृष्ण है। उपर्युक्त सभी संप्रदायों में यह बात पाई जाती है। वैसे शृंगार या मधुर भावना की मात्रा में कुछ-कुछ अन्तर अवश्य है। वल्लभ और चैतन्य दोनों संप्रदायों में भागवत् पुराण को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। भागवत पुराण को दोनों संप्रदायों ने शीर्ष स्थान दिया है। कृष्ण की लीला-भूमि-व्रज दोनों संप्रदायों के लिये प्रिय हैं। अन्य संप्रदायों के लिये भी व्रज उन्हीं प्रकार से प्रिय है। वल्लभ और चैतन्य संप्रदाय के भक्तों का केन्द्र वृन्दावन रहा है। व्रजभूमि के प्रति इन वैष्णव कवियों की आसक्ति उनकी रचनाओं में सर्वत्र पाई जाती है। राधा-कृष्ण की लीला-भूमि-व्रज का कण-कण उन भक्त कवियों के लिये पवित्रतम है और उस भूमि का पद-पद उनके लिये तीर्थराज है। वल्लभ तथा चैतन्य संप्रदाय दोनों में ही जाति-पाति को भक्ति के क्षेत्र में अस्वीकार किया गया है। 'कह्यो शुक श्री भागवत विचार। जाति पाति कोऊ पूछत नाही श्रीपति के दरवार' ॥^१ भगवान् और भक्त के बीच वे कोई भी व्यवधान स्वीकार नहीं करते। चैतन्य

^१ सूर सागर, पद मख्या २३१।

संप्रदाय इसमें वल्लभ संप्रदाय से आगे बढ़ा हुआ है। वल्लभ संप्रदाय में वर्णाश्रम का सामाजिक जीवन के लिये अस्वीकार किया गया है। चतय संप्रदाय का दृष्टिकोण निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है—

जेइ भजे सेइ बडो, अभवत होन छाड ।

कृष्ण भजने नाहि जाति कुलादि विचार ॥^१

किया विप्र किया न्यासी गूढ़ केने नय ।

जेइ कृष्ण तत्ववेत्ता सेइ गुरु हय ॥^२

गौडीय वैष्णव मत—

वल्लभाचार्य और चतय समसामयिक थे अतएव उनमें कुछ समानताएँ अवश्य थीं लेकिन दाना का व्यक्तित्व अलग-अलग था, दोनों की अपनी अलग-अलग विशिष्टताएँ थीं। चतय संपूर्ण रूप से भक्त थे। उनकी भक्ति की उत्कृष्टता ने संपूर्ण बंगाली समाज को अभिभूत कर लिया था। चतय ने अपने मन के प्रचार के लिये कितना प्रयत्न की रचना नहीं की थी। चतय के अनुयायियों और विरोधियों से बन्दावन के गोस्वामिया—रूप सनातन और जीव—ने चतय प्रवर्तित भक्ति तत्व का अपूर्व व्याख्या की है। जीव गाम्वामी के भगवत-सदभ अथवा पद-सदभ नामक ग्रन्थ में गौडीय वैष्णव धर्म के तत्वा का बड़े सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है। गौडीय वैष्णव के 'अचिन्त्य भेदाभेद के सबंध में हम अन्यत्र विचार कर चुके हैं। गौडीय वैष्णव मत में मधुर रस की भक्ति का ही प्राधान्य दिया गया है। प्रेम को गौडीय वैष्णव आचार्य लोग मन की स्वामाविक वृत्ति नहीं मानते। उनका कहना है कि भगवान की जब कृपा होनी है तब भक्त के मन से मोक्ष आदि की वासना का अवसान हो जाता है और उसमें गुह्य भाव का आविर्भाव होता है। यही भाव, भक्ति अथवा प्रेम के रूप में परिणत हो सकता है। इस प्रेम के सबंध में कहा गया है

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा-तारे बलि काम ।

कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा-धरे प्रेम नाम ।

कामेर तात्पर्य निज सम्भोग केवल ।

कृष्णमुख तात्पर्य-ह्य प्रेम प्रचल ॥^३

^१ चतय चरितामृत, ३।४।६३ ।

^२ वही, २।८।१०० ।

^३ वही १।४। १४१ ।

इस प्रेम का उदय जब हृदय में होता है तब कृष्ण से आत्मीयता का बोध होने लगता है और जितना ही यह प्रेम बढ़ता जाता है उतने ही कृष्ण 'अपने' होते जाते हैं। अतएव हम देखते हैं कि गौडीय वैष्णवों ने लौकिक आत्मेन्द्रिय प्रेम को 'काम' कहा है जो जड़ोन्मुख है, जो मोहग्रस्त करता है। भगवद्विषयक प्रेम के लिये गौडीय वैष्णवों ने 'प्रेमा' शब्द का प्रयोग किया है और इसे ही परम पुरुषार्थ माना है

परिपूर्णं कृष्णं प्राप्तिं सेइ प्रेमा हइते ।

एइ प्रेमेर वश कृष्ण कहे भागवते ॥^१

और यही पंचम पुरुषार्थ प्रेम महाधन है जो कृष्ण के माधुर्यरस का आस्वादन कराता है :

पंचम पुरुषार्थ सेइ प्रेम महाधन ।

कृष्णेर माधुर्यरस कराय आस्वादन ॥^२

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी इस प्रेम रस, माधुर्य रस के परिपन्थी हैं :

अज्ञान तमेर नाम कहिये कैतव ।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-वाछा आदि सब ॥

तार मध्ये मोक्ष वांछा कैतव प्रधान ।

याहा हइते कृष्णभक्ति हय अन्तर्द्वानि ॥^३

महाप्रभु श्री चैतन्य के धर्म मत को बड़े मुन्दर ढग ने निम्नलिखित श्लोक के द्वारा व्यक्त किया गया है.—

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं

रम्या काचिदुपासना ब्रजवधू वर्गेण या कल्पिता ।

शास्त्रं भागवतं प्रमाणममल प्रेमा पुमर्थोमहान्

श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न. परः ॥^४

महाप्रभु के मत से श्रीकृष्ण ही उपास्य हैं और उनका वाम वृन्दावन है, उस वृन्दावन की वालाओं ने जिस मधुर भाव से भजन किया है वही श्रीकृष्ण की उपासना है। इस धर्म का प्रमाण श्रीमद्भागवत है और श्रेष्ठ पुरुषार्थ प्रेमा है।

^१ चैतन्य चरितामृत, २।८।६९ ।

^२ वही, १।७।१३७ ।

^३ वही, १।१।५० ।

^४ खगेन्द्रनाथ मित्र-वैष्णव रस-साहित्य, पृ० १८-१९ पर उद्धृत ।

वल्लभ की पुष्टि भक्ति—

महाप्रभु वल्लभाचार्य भक्त तो थे ही साथ ही एक बहुत बड़े दार्शनिक, तत्व चिन्तक और धर्म के तत्वा के जानकार थे। उन्होंने आधार स्वरूप अपने संप्रदाय को एक दार्शनिक प्रणाली दी जिसकी उद्भावना उन्होंने स्वयं की थी। उनके लिखे बहुत से संस्कृत ग्रंथ हैं। श्री वल्लभाचार्य प्रवर्तित भक्ति में मधुर रस की भक्ति की अपेक्षा वात्सल्य भक्ति की ही प्रधानता है। वैसे यह कहना ठीक नहीं होगा कि उनके मत में मधुर भक्ति का स्थान नहीं है। हम अन्यत्र देख चुके हैं कि उन्होंने मधुर भक्ति सबसाधारण के लिये नहीं बतलाई है। गोसाईं विठ्ठलनाथ के समय से वल्लभ-संप्रदाय में भी मधुर भक्ति का अधिक प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। वल्लभाचार्य के संप्रदाय में नन्द, यगोदा, गाप, गोपी आदि का प्रेम ही प्राधान्य पाए हुए है। इस संप्रदाय के भक्त अधिकांश वात्सल्य, सख्य अथवा दास्य भक्ति का ही आश्रय लिए हुए देखे जाते हैं। वल्लभाचार्य प्रवर्तित पुष्टि भक्ति में पूण निष्ठा से भगवान् के भजन की बात बही गई है —

‘सबदा सबभावेन भजनीयो ब्रजाधिय’ ।^१

कहा गया है कि उत्कट प्रेम द्वारा भगवान् का स्मरण और ध्यान भक्त का एकमात्र कर्तव्य है। इसके द्वारा वह भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करता है। इसमें भगवान् की उपासना के सिवा अर्य कोई वस्तु काम्य नहीं है। परमानन्द दास के निम्नलिखित पद से वल्लभ-संप्रदाय के कवियों के दृष्टिकोण पर प्रकाश पड़ता है —

माधो यह प्रसादहू पाउ ।

तब भूत भत्य भत्य परिचायक दास को दास कहाऊँ ।

यह परमारथ मोहि गुर सिखयो स्याम धाम की पूजा ।

२ यह वासना घटे नहि कबहुँ देवन देखो दूजा ।

परमानन्ददास तुम ठाकुर यह नाचो जिन दूटे ।

नदकुमार जसोदानदन हिलिमिलि प्रीति न छूटे ।^३

वल्लभ संप्रदाय में पुष्टि भक्ति का चरम लक्ष्य पूण पुण्योत्तम की लीला में प्रविष्ट होकर उस नित्य लीला का आस्वादन करना है। पुष्टिमाग में कहा

^१ चतुःश्लोकी (पोडग ग्रंथ संप्रह), श्लोक १ ।

^२ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५३१ पर उद्धृत ।

गया है कि मनुष्य भगवन् श्रीलोपयोगी देह प्राप्त करने के वाद ब्रह्म के साथ आनन्द रस ले ।

निम्बार्क संप्रदाय में भी कहा गया है कि कृष्ण की धारणागति छोड़ कर मनुष्य के लिए अन्य कोई गति नहीं है :—

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्^१

निम्बार्क, राधावल्लभी और सखी-संप्रदाय—

इस संप्रदाय में भी भगवान् की कृपा से प्रेम-रूपाभक्ति मिलने की बात कही गई है । मधुर भाव की भक्ति का निम्बार्क संप्रदाय में प्राधान्य है । इस संप्रदाय में युगल उपासना के साथ राधा की उपासना पर विशेष बल दिया गया है । राधावल्लभीय संप्रदाय में श्रीराधा की प्रधानता है । प्रियादास ने लिखा है—

श्री हित जू की रति कोऊ लापनि में एक जाने ।

राधाई प्रधान माने पाछे कृष्ण व्याइये ॥^२

इसी प्रकार से सखी-संप्रदाय के भक्त-कवियों ने युगल-उपासना का आनन्द सखीभाव से उपभोग किया है ।

चैतन्य सम्प्रदाय में राधातत्त्व—

चैतन्य संप्रदाय में राधा तत्त्व की अपनी अलग विशिष्टता है । यह विशिष्टता अन्य वैष्णव संप्रदायों में देखने को नहीं मिलती । चैतन्य संप्रदाय में राधा और कृष्ण को अभिन्न, एक स्वरूप कहा गया है—

राधा कृष्ण ऐछैं सदा एकइ स्वरूप ।

लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप ॥^३

राधा के प्रेम को 'साध्य शिरोमणि' कहा गया है लेकिन इस प्रेम को पाना जीव के लिये कठिन है । राधा का यह प्रेम जो सर्व 'साध्य शिरोमणि' है किसी साधन का फल नहीं है । यह नित्य है । सखी भाव से राधा-कृष्ण की नित्य-लीला में राधा के प्रेम का आनुगत्यमय प्रेम प्राप्त करना सम्भव माना

^१ निम्बार्कद्वय दशश्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ८ ।

^२ नामा जी कृत भक्त माल, पृ० ६०५ ।

^३ चैतन्य चरितामृत, १।४।८५ ।

गया है। गौडीय वैष्णव भक्त-विवियों की रचनाओं में सखी भाव से ही इस नित्य-लीला का आस्वादन हुआ है।

सखीर स्वभाय एक एकम्य कयन ।

कृष्ण सह निज लीलाय नाह सखीर मन ॥

कृष्ण सह राधिकार जे लीला कराय ।

निज केलि हते ताहे कोटि सुख पाय ॥^१

राधा भाव की भक्ति चैतन्य महाप्रभु को छोड़कर अन्यत्र देखने का नहीं मिलती। चैतन्य ने स्वयं राधा भाव से भक्ति की थी। अपने प्रियतम कृष्ण से मिलन के लिये उनका हृदय आतुर बना रहता था। ब्रजबुलि अथवा ब्रज भाषा के कवियों ने द्रष्टा रूप में ही उस नित्य प्रेम का आस्वादन किया है। बल्लभाचार्य ने गोपियों के प्रकार बतलाए हैं लेकिन राधा का नाम उन्होंने कहीं नहीं लिया है।^२ यहाँ एक बात और विनोद ध्यान देने की है कि राधा कृष्ण लीला में सखिया का स्थान बहुत महत्व का रहा। ये सखिया राधा कृष्ण की लीला प्रसारिका हैं। प्रेमलीला एक मात्र विषय स्वरूप है श्रीकृष्ण और उनकी आश्रय स्वरूपा हैं श्री राधिका। इस विषयाश्रय के अवलम्बन से जो नित्य-लीला गालोक-बन्दावन में चल रही है उसमें ये सखिया राधा के परिमंडल में ही आवृत्त भी लक्षित होती है। ब्रजभाषा के वैष्णव साहित्य में इन सखियों का अपना स्वतंत्र स्थान है और आगे चलकर इतना महत्व इतना अधिक बढ़ा कि सखी भाव से उपासना करने वाला एक पथक 'सखी-संप्रदाय' वृन्दावन में चल पड़ा।

चैतन्य संप्रदाय में परकीया भाव—

चैतन्य-संप्रदाय की एक विशेषता यह भी है कि इस संप्रदाय में परकीया भाव की प्रमानता है। विश्वभारती द्वारा प्रकाशित चिठिपत्रे समाज चित्र' (दूसरा भाग^३) में एक पत्र प्रकाशित हुआ है जिसमें बंगाल के परकीया भाव और ब्रजमंडल के स्वकीया भाव पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। यह पत्र (विजय) सन् १७३१ ई० (११३७ बंगाल) में श्री राधा माहन ठाकुर को लिखा गया है। जिसने लिखा इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इस पत्र के अनुसार

^१ चतय परितामृत २।८।१८७ ६८।

^२ अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय पृ० ५०८।

^३ पद्मानन महोदय प्रकाशक विश्वभारती प्रया विभाग, (माच १९५३ ई०)

कृष्णदेव भट्टाचार्य जयपुर में राजा जयसिंह के सभा पंडित थे। जयपुर में वे बगाल (गोर मडल) में स्वकीयावाद की स्थापना के लिये भेजे गए। वे पातमाही मनसबदार को नाश ले आए थे। स्वकीया और परकीयावाद पर विचार करने के लिये मालियारी ग्राम में पंडितों की एक सभा दुलाई गई। उसमें बगाल के मन्त पंडित-जगदानन्द, रामानन्द, मदनमोहन, मुरलीधर, वल्लभीकान्त, साह्य पचानन और हृदयानन्द थे। उन मन्त पंडितों के साथ कृष्णदेव भट्टाचार्य का छ महीने तक स्वकीया-परकीया का टकराव शारदायं होता रहा। यह 'दिग्विजय विचार' के नाम से भी सुप्रसिद्ध है। इस सभा में नवद्वीप के सभा पंडित, काशी के सभा पंडित, सोनार ग्राम विजयपुर के सभा पंडित, उन्कल के सभा पंडित, धर्म अविकारी (विचारक), बैरागी तथा वैष्णव सभी इकट्ठे हुए थे। इसमें भागवत शास्त्र मत, पुराण, महाप्रभु का मत, पद्मगोस्वामियों का भक्ति शास्त्र तथा श्रीधर गो-वामी की टीका, तोषणी आदि को लेकर विचार होता रहा। कृष्णदेव भट्टाचार्य पराजित हुए और स्वकीया मत की स्थापना में असफल हुए और परकीया-स्थापन के लिये विजय-गय त्रिव दिया गया। वृन्दावन और जयनगर (जयपुर) में विजय-पत्र की प्रतिलिपि भेजी गई। अतः गौड़ मडल में परकीया-वाद का आधिपत्य बना रहा। वृन्दावन से गिरोपा (समान या पुरस्कार स्वरूप दी गई पगड़ी) आई। स्वकीयावाद की पगजय के फलस्वरूप बगाल, उड़ीसा, सूत्रे विहार में भी जहां स्वकीयावाद की स्थापना थी वहां लोगों ने उसे छोड़ दिया और परकीयावाद को अपनाया।

वल्लभ संप्रदाय की मधुर और सख्य भक्ति—

वल्लभ-संप्रदाय में मधुर भाव की तथा सख्य भाव की भक्ति को ध्यान में रख कर भक्तों की दो कोटियां बतलाई गई हैं। मधुर भाव से भक्ति करने वाले भक्तों को सखी और सख्य भाव से भक्ति करनेवालों को सखा कहा गया है। इनमें रावा या चन्द्रावली स्वामिनी कही गई हैं। इस संप्रदाय में मुख्य सखिया आठ मानी गई हैं। उनके अलावा और भी बहुत सी सखिया हैं जिनकी सख्या बहुत अधिक है इन्हीं प्रकार सखाओं की भी सख्या बहुत अधिक है लेकिन उनमें आठ मुख्य हैं। अष्टछाप के कवियों की एक विशेषता है—गोचारण-लीला में वे कृष्ण के सखा हैं कुञ्ज-लीला में सखी हैं। उन आठ कवियों के नाम निम्नलिखित हैं।

भक्त कवि	सखी	सखा
सूरदास	चम्पक लता	कृष्ण
परमानन्ददास	चन्द्रभागा	तीक

कुम्भनदास	विगाखा	बजुन
कृष्णदास	ललिता	ऋषभ
छीत स्वामी	पद्मा	सुबल
गोविन्द स्वामी	भामा	श्रीदामा
चतुर्भुज दास	विमला	विशाल
नन्ददास —	चंद्ररेखा	भोज —

काकरोत्री से प्रकाशित श्री हरिराय जी की भावना सहित चौरासी वैष्णवों की तथा अष्टसप्तान की वार्ता के अनुसार इन कवियों के नाम और स्वरूप का तालिका ऊपर दी गई है। श्री बल्लभाचार्य की सुवाचिनो टीका के रास पचाध्यायी, फल प्रकरण, अध्याय ३ में उन्नीस प्रकार की गोपिया का उल्लेख है जो रास में प्रवेश पाने की अधिकारिणी हैं।

सरसी और मजरी—

गौडीय वैष्णव संप्रदाय में भा अष्टसप्तिया की बात कही गई है। इस संप्रदाय में सवा के प्रकार भेद से गोपिया की दो कोटियाँ की गई हैं - (१) सरसी। (२) मजरी। मजरी उन भक्तों को कहा गया है जो प्रायः राधिका के समान ही कृष्ण का प्रीति विधान करते हैं। मजरी वह जो राधाकृष्ण के मिलन तथा सवा के अनुकूल वाय करना चाहते हैं। ये मजरी राधिका की अन्तरगा हैं और इस दृष्टि से सेवा के क्षेत्र में इनका अधिकार सनिया से बहुत अधिक है। अष्ट सप्तिया के नाम तथा उन भक्तों के नाम निम्नलिखित हैं। श्री गौरांग के समय में नवद्वीप में ये इसी नाम से परिचित थे

ब्रजलीला में
ललिता
विगाखा
मुमित्रा
चम्पकलता
रगन्धरी
मुदरी
तुगन्धरी
रतु रसा

गौरांग लीला में
रूप गोस्वामी
रामानन्द राय
गिवानन्द सेन
रायव पदित
गाविन्द घोष
वासुदेव घोष
मायव घोष
गाविदानन्द

Handwritten text line 1.

Handwritten text line 2.

Handwritten text line 3.

Handwritten text line 4.

Handwritten text line 5.

Handwritten text line 6.

Handwritten text line 7.

Handwritten text line 8.

Handwritten text line 9.

Handwritten text line 10.

Handwritten text line 11.

Handwritten text line 12.

Handwritten text line 13.

Handwritten text line 14.

Handwritten text line 15.

Handwritten text line 16.

Handwritten text line 17.

Handwritten text line 18.

Handwritten text line 19.

Handwritten text line 20.

Handwritten text line 21.

Handwritten text line 22.

Handwritten text line 23.

Handwritten text line 24.

Handwritten text line 25.

Handwritten text line 26.

Handwritten text line 27.

Handwritten text line 28.

Handwritten text line 29.

Handwritten text line 30.

से यह बात बाद में आई। वल्लभाचार्य ने इस तरह की कोई बात नहीं कही है। श्री विठ्ठलनाथ के बाद ही वल्लभ-संप्रदाय में यह बात आइ। गौडीय वैष्णव संप्रदाय की यह परंपरा पहले से ही चली आती है।

वल्लभ भगवान् के अवतार—

वल्लभ-संप्रदाय में वल्लभाचार्य को पूण ब्रह्म विष्णु अथवा कृष्ण कहा गया है। वैसे तो मध्ययुग में गुरु के प्रति भक्ति प्रायः सभी संप्रदायों में देखने को मिलती है। गुरु का गोविन्द ही नहीं गोविन्द से भी बढकर कहा गया है। नन्ददास ने वल्लभाचार्य का 'कृष्ण' कह कर वन्दना की है

तन्मामि पद परम गुरु, कृष्ण कमल दल नन ।

जग करन करणार्नध, गोकुल जासो ऐन ।^१

कृष्णदास ने वल्लभाचार्य की वन्दना करते हुए उन्हें 'ब्रजपति' 'गिरधारी' आदि कहा है

ब्रजपति वल्लभ एक ही जानों भेद नहीं ह नमो नमो ।

भजनानंद रसिक गिरधारी आप दिलायत नमो नमो ॥^२

इसी प्रकार कृष्णदास ने एक जगह और कहा है

शोभा शिरोमणि प्रकट पुरुष प्रमाण भूतल आयीया ।

कृष्णदास के प्रभु आप प्रगटे ब्रज सुन्दरी मन भायीया^३ ॥

मुमन दास ने गाया है

वरनों श्री वल्लभ अवतार ।

गोकुल पति प्रगटे फिर गोकुल सबल विन्व आमार^४ ॥

जब मूरत्तम से उनके अन्तिम समय में पूछा गया कि उन्होंने समस्त जीवन भगवान् का गुणगान किया है लेकिन अपने गुरु वल्लभाचार्य का नहीं किया मूरत्तम ने कहा मैं तो सगरा जस श्री आचार्य जी को ही वरतन किया है जो मैं द्वारा दयता ता "पारा करता"। वल्लभ-संप्रदाय के भक्ता का

^१ नन्ददास मानमजरी (सपाक उमागकर शुक्ल) पृ० ६१ ।

^२ बीतन मण्डल भाग २ पृ० २१० ।

^३ वही पृ० २१६ ।

^४ वही पृ० २०६ ।

^५ अष्टाप वात्रा, वाकरीया पृ० ५२ ।

विश्वास है कि भक्तों के निम्न पुष्टि मार्ग को प्रकाश करने तथा भागवत के गूढ़ अर्थ को प्रकट करने के लिये ही बल्लभ का अवतार हुआ था ।

चैतन्य-पूर्ण अवतार—

श्री चैतन्य महाप्रभु को लोचनदाम ने पूर्ण अवतार माना है और कहा है कि युगधर्म मकीर्तन का प्रचार करने के लिये ही उनका अवतार हुआ^१ । लोचनदाम के मतानुसार राधा के वर्ण की अग में धारण कर तथा उनके भावरस को अन्तर में धारण कर श्री चैतन्य अवतरित हुए ।

राधार वरणे अग गौराग हृदया ।

राधिकार भावरस अन्तरे धरिया ॥^२

वृन्दावन दाम ने मत्स्य, कूर्म आदि अवतारों की धारा में श्री चैतन्य का उल्लेख करते हुए विशेष रूप से उन्हें कृष्ण का अवतार कहा है । जयानन्द ने भी उन्हें युगावतार कहा है । उन्होंने बतलाया है कि कीर्तन का प्रचार तथा चाण्डाल पर्यन्त सबके उद्धार हेतु उनका अवतार हुआ है । श्री चैतन्य को परतत्त्व, कृष्ण कहा गया है ।

स्वयं भगवान् कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व ।

पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥

नन्द सुत बलि जोरे भागवते गाइ ।

सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसात्रि ॥^३

और भी कहा गया है

श्रीकृष्ण चैतन्य गोसात्रि ब्रजेन्द्र कुमार ।

रसमय मूर्ति कृष्ण साक्षात् शृंगार ॥^४

चैतन्य-एकही देह में राधा और कृष्ण—

चैतन्य की एक विशेषता अन्य किसी संप्रदाय में नहीं है और वह है राधा-कृष्ण के युगल रूप का एक ही देह में अवतीर्ण होना । श्री चैतन्य केवल कृष्ण नहीं है बल्कि एक ही देह में राधा और कृष्ण दोनों हैं । कविराज गोसाईं कहते हैं

^१ चैतन्य मंगल, सूत्र खड ।

^२ वही, आदि खड ।

^३ चैतन्य चरितामृत, २।६।१३८ ।

^४ वही, १।४।१८१ ।

राधा कृष्ण एक आत्मा दुइ देह धरि ।
अयोन्ये विलासे रस आस्वादन करि ॥
सेइ दुइ एक रचे चतय गोसाइ ।
भाव आस्वादिते दोहे हल एक ठाइ ॥^१

इस प्रकार में कहा जा सकता है कि चतन्य के अवतार का कारण युगमम कीर्तन का प्रचार, आघाण्टाल सबका उद्धार प्रेम भक्ति का प्रचार और स्वयं अपने प्रेम और माधुर्य का आस्वादन करना था ।

भगवान् की लीला—

प्रायः सभी वैष्णव मप्रदाय इस बात में एक मत हैं कि भगवान् लीला के लिये ही अवतार धारण करते हैं । भगवान् की इस लीला का दान भक्त की सबसे बढकर काम्य वस्तु है । भगवान् की नित्य लीला का अंग हाना ही भक्त अपना धर्म साध्य मानता है । भगवान् नर रूप धारण कर नाना प्रकार की लीला करते हैं और इस लीला का वर्णन मध्ययुग के भक्त-कवियों ने छक कर किया है । भगवान् की नानाविध लीला का प्रत्यक्ष करता हुआ भक्त अपने आपमें मस्त बना रहता है । उसका हृदय का निगूढ प्रेम उन सभी लीलाओं का दान कर घय हाता है । भगवान् की लीला, प्रकट और अप्रकट दो प्रकार की कही गई है । मध्ययुग के भक्त कवियों की रचनाओं में इसी प्रकट लीला की अभिव्यक्ति हुई है । प्रकट लीला की अभिव्यक्ति में उन भक्त कवियों ने भगवान् के नाना रूपा को देखा है और उनसे नाना प्रकार के सबध स्थापित किए हैं । उनकी भक्ति, रागानुगा भक्ति है इसलिये ये सभी सबध प्रेम के ही मन्त्र हैं । लेकिन चाह जा भी सबध क्या न हा, भगवान् ही उन प्रेम के आलवन हैं । इस प्रेम से आश्रमरूप आलवन, नद, यगोश बालबाल गावियों आदि हैं । वे सभी इसी प्रपत्त में रहते हैं कि भगवान् का वे प्रसन्न रहें ।

सयोग वियोग—

प्रेम के सयोग और वियोग पम दाना के ही चित्रण इन भक्त-कवियों ने किए हैं । मधुर प्रेम का नमी अवस्थाओं का उठाने वर्णन किया है । मयाग मुग्ध का पाकर भक्त-हृदय जितना निहाळ रहता है उनना ही वियोग-अवस्था में मित्र की लालसा में ब्यानुल रहता है । लेकिन विरह का अवस्था में

^१ चतन्य चरितामृत १।४।४९ ।

ही जैसे भक्त-हृदय अपने आपको पूर्ण पाता है और यही कारण है कि विरह जनित काव्य अन्यतम रस और भावप्रवण हुआ है। गीतगान करने का उद्देश्य यह माना जाता है कि उगने श्रद्धा, प्रीति और भक्ति प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है —

सता प्रसंगान्मम वीर्य-मयिदो भवन्ति हृत्कर्णरगामनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्षितग्नून्मिष्यति ॥^१

लीला-वर्णन में भिन्नता—

देव, काल और परंपरा के भेद में वैष्णव-कवियों के लीला-वर्णन में भी भेद है। जहाँ तत्र बल्लभ-संप्रदाय का प्रयत्न है भक्त का चरम नाथ्य भगवान् की नित्य-लीला में युक्त होकर अग्रगण्य आनन्द की प्राप्ति है। गोपी भाव से वह इस लीला को देखना चाहता है —

हमको विधि ब्रज बधू न कीन्हों, कहा अमरपुर वास भाए;
वार वार पछिनात यहँ कहि, सुख होतो हरि सग राए ।
कहा जन्म जो नहीं हमारो, फिरि फिरि ब्रज अयतार भलो,
वृन्दावन द्रुम लता हूजिए करता सों माँगिए चलो ।
यह वांछना होड कयो पूरन दामो हूँ वर ब्रज रहिए,
सूरदास प्रभु अन्तर्यामी तिनिहि बिना कानो कहिए ॥^२

बल्लभ संप्रदायी कवियों की विशेषता—

बल्लभ-संप्रदाय के कवियों ने और विशेष रूप से जष्टछाप के कवियों ने राधा कृष्ण की लीला के मयोग और वियोग अवस्था के जो वर्णन किए हैं उनमें राधा का स्वकीया रूप ही लिया गया है परकीया-भाव बहुत ही कम है। वियोग-शृंगार की विभिन्न अवस्थाएँ, पूर्वराग, मान, प्रेम-वैचित्र्य, प्रवास आदि का वर्णन इन भक्त-कवियों ने किया है। इनके अलावा कृष्ण की बाल-लीला का मुन्दर वर्णन इन भक्त-कवियों की रचनाओं में मिलता है। बालकों के स्वभाव आदि का सूक्ष्म निरीक्षण इन कवियों ने किया है। कृष्ण का घुटहरो से चलने का प्रयास करना, प्रथम दो दाँतों का निकलना, मिट्टी खाना, चन्द्रमा के लिये मचलने, आदि का वर्णन सूरदास, परमानन्द दाम आदि ने अनुलनीय ढंग से किया है। बाल बालों के साथ गायों का चराना, नाना प्रकार की

^१ श्रीमद्भागवत, ३।२५।२५ ।

^२ सूरसागर, पद संख्या १६६४ ।

क्रीडा कराता, दूध-दही की धोरी करना आदि के बणन इन कविया की रचनाओं में भरे पडे हैं ।

वल्लभ संप्रदाय में परकीया-भाव—

वल्लभ-संप्रदाय के कविया में स्वकाया भाव की ही प्रधानता है यह हम देख चुके हैं । परकीया भाव के पद बहुत ही कम मिलते ह । कुमनदास कृष्णदास तथा छोटस्वामा के ऐसे पद नहीं मिलते जिनमें परकीय भाव हो ।^१ सूरदास, परमानन्ददास चतुभुजदास तथा गोविन्ददास के कुछ पद परकीय भाव वाले ह ।

सूरदास के निम्नलिखित पद में कहा गया है —

मुरली सुनत भई सब धोरी, मानहुँ परितरि माझ ठगोरी ।
छुटि सब लाज गई कुलकानी, सुत पति आरज पथ भुलानी ।
बोड जेवत पति ही तन हेर, बोड दधिमें जावन पथ फर ॥^२

इसी प्रकार स गाविन् स्वामी न मुरली की आवाज पर मात पिता पति सुत को छोडने की बात बही है

अब कहा करों मेरी आली रो अखियन लागेई रहत,
निसदिन फिरति रूप रस माता आवे नहीं गह बाज करत ।
जदपि मात पिता पति सुत गह देपत तोह,
न धीरज धरों मोहन धेनु सुनत,
गोविन्द प्रभु को हों जौलों न देखों आली,
तौलों छिनु छिनु बसे मेरे प्रान रहत ॥^३

इसी तरह से परमानन्द दास ने भी कहा ह —

म तो प्रीति श्याम सों कोनी ।
बोऊ निचो बोऊ बचो अब तों यह कर दीनी ।
जो पतिप्रत तो या छोटा सों इहें समप्यो देह ।
जो स्वभिचार नद नलन सों बाढयो अयिक सनेह ।

^१ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय पृ० ६२९ ।

^२ मूरमागर पत्र सन्ध्या १६०७ ।

^३ अष्टछाप परिचय रूपासक्ति पत्र सन्ध्या ४२, पृ० २५५ ।

जो ब्रत गह्यो सो और न भायो मर्यादा को भंग ।
परमानन्द लाल गिरधर को पायो मोरो संग ॥^१

निम्बार्क संप्रदाय में मधुर रस की प्रधानता—

निम्बार्क संप्रदाय में मधुर रस की भक्ति की प्रधानता है । इस संप्रदाय के भक्त-कवियों ने युगल-मूर्ति की दिव्य लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया है । श्रीकृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्तिरूपा श्री राधा के साथ वृन्दावन घाम में नित्य लीला में निरत रहते हैं । 'महावाणी' में सहज सुख का जो वर्णन हरिव्यास देव जी ने किया है उसमें 'प्रेम वैचित्र्य' का सुन्दर वर्णन है जिसमें पास रहने पर भी वियोग के भाव की विह्वलता बनी रहती है ।

सदा अनमिले मिले तऊ लागे चहनि चहानि ।
हो वलि जाऊँ अहु कहा परी अटपटी जानि ॥^२

सखी और राधावल्लभी संप्रदाय में युगल लीला—

इसी प्रकार सखी संप्रदाय में युगल-लीला को सखी भाव से देखते रहने में ही भक्त अपनी चरम सार्यकता मानता है । सखी संप्रदाय की उपासना पर भगवत रसिक ने प्रकाश डाला है । उनका कहना है :

आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप ।
नित्यकिशोर उपासना, जुगल मंत्र को जाप ॥
जुगल मंत्र को जाप, वेद रसिकन की बानी ।
श्री वृन्दावन घाम, इष्ट स्यामा महरानी ॥
प्रेम देवता मिले बिना सिधि होइ न कारज ।
'भगवत' सब सुख दानि, प्रगट भे रसिकाचारज ॥^३

राधावल्लभीय संप्रदाय में भी युगल सरकार की प्रेम-लीला को भक्त आत्मविभोर होकर देखता रहता है । इस संप्रदाय के कवियों ने भी मधुर रस की लीला का ही वर्णन किया है ।

^१ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ६२८ ।

^२ महावाणी, सहज सुख, राग ललित, पद सख्या १२ ।

^३ भागवत संप्रदाय, पृ० ३६० पर उद्धृत ।

गौडीय वैष्णव संप्रदाय में रस का विवेचन—

गौडीय वैष्णव संप्रदाय में रस के आलंबन श्रीकृष्ण तथा उनकी प्रियागण हैं। रस विषयक सिद्धान्त का सुन्दर विवेचन 'रसामृत सिन्धु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' में किया गया है। उज्ज्वल नीलमणि में जितने विगद भाव से रस का विवेचन हुआ है वसा किसी साहित्यिक रस ग्रंथ में नहीं है। भक्त जिस प्रेम लीला का आस्वादन करता है उस प्रेम के आलंबन गौडीय वैष्णव संप्रदाय में नायक नायिका यथेदवगी दूती, सती हरिवत्सला आदि हैं। राधा और चंद्रावली नित्यप्रिया हैं। वे कृष्ण के जैसी रूप-गुण वाली हैं। नि य प्रेयसिया में कई प्रधान भानी गई हैं, उनके नाम या हैं राधिका (गाधर्वी) चंद्रावली (सामाभा), विगान्वा, ललिता (अनुराधा), श्यामा, धनिष्ठा गायत्री, पद्मा, श्यामा भद्रा ताग चित्रा और पाली। राधा कृष्ण की हृदिनि गति हैं और प्रेयसिया में मवश्रेष्ठ हैं। इस प्रकार से नायक नायिका का अवलम्बन कर ब्रजबुलि के पदकत्तिया ने लीलागान किया है। उज्ज्वल नीलमणि में पूर्ववर्ती अलंकार ग्रथा और काम शस्त्रीय ग्रथा के विभिन्न पारिभाषिक शब्दा जस विभाव अनुभाव सचारी भाव आदि को स्वीकार किया गया है लेकिन इसका विवेचन स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया है। नायक-नायिका के विभिन्न भेदों का ध्यान में रखकर पदा की रचना की गई है। पूर्वराग, भान, अमिसार, सयोग शृंगार की विभिन्न अवस्थाओं को लेकर ब्रजबुलि के पद कताआ ने अपूर्व पदों की रचना की है।

गौडीय वैष्णव संप्रदाय में नाम सकीर्तन का महत्त्व—

गौडीय वैष्णव संप्रदाय में नाम-सकीर्तन का बहुत बड़ा माहात्म्य है। कविराज गोस्वामी ने कहा है

हयें प्रभु कहे गुन स्वरूप राम राम ।
नाम सकीर्तन कर्लो परम उपाय ॥^१

कठियुग में नाम सवातन को ही परम उपाय कहा गया है। यह नाम सकीर्तन भगी अनर्थों का नाश करने वाला और कृष्ण प्रेम से पूण करने वाला है

^१ वैतन्य चरितामृत ३।२०।७ ।

नाम संकीर्तन हूँते सर्वानिर्यनाश ।
सर्वशुभोदय कृष्ण प्रेमेर उल्लास ॥^१

नाम कीर्तन की महिमा श्रीमद्भागवत में भी कही गई है -
एतन्निविद्यमाननामिच्छतामफुनोभयम् ।
योगिना नृप निर्णीत हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥^२

नाम संकीर्तन के वशीभूत भगवान् हो जाते हैं । भगवान् ने श्रुत्य कहा है कि जो उनके नाम का गान करते हुए उनके नामने नृत्य करता है उसके हाथों वे विक्रि जाते हैं । उनका गान करते हुए उनके नामने जो रुदन करता है सब प्रकार से भगवान् उसके वश में हो जाते हैं ।

गीत्वा च मम नामानि, नत्तयेन्मममन्निधौ ।
इदं प्रवीणि ते सत्यं श्रौतोऽहं तेन चाज्जुन ॥
गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम सन्निधौ ।
तेषामहं परिशीतो नान्यशीतो जनार्दनः ॥^३

इस नाम संकीर्तन का इतना अधिक महत्व गौडीय संप्रदाय में है कि उनका कहना है कि इसी के प्रचार के लिये श्रीचैतन्य का अवतार हुआ था ।

हरिनाम संकीर्तन प्रकट करिव ।

कृष्णदाम कविराज ने श्रीचैतन्य के आविर्भाव का कारण संकीर्तन का आस्वादन बतलाया है—

दुइ हेतु अवतरि लब्धा भवत गण ।
आपनि आम्बादे प्रेम नाम संकीर्तन ।
मेइ द्वारे आचण्डाले कीर्तन संचारे ।
नाम प्रेम मालागायि पराहल संसारे ॥^४

(दो हेतुओं से (उन्होंने) अवतार लिया । प्रेम नाम संकीर्तन का आस्वादन स्वयं करते हैं । चाण्डाल पर्यन्त कीर्तन का संचार कर नाम-प्रेम की माला गूँथकर समार को माला पहनाई) ।

^१ चैतन्य चरितामृत, ३।२०।९ ।

^२ भागवत, २।१।११ ।

^३ हरिभक्ति विलास ११-२३१ ।

^४ चैतन्य मंगल, सूत्र खण्ड ।

^५ चैतन्य चरितामृत : १।४।३५ ।

चैतन्य संप्रदाय में साधन भक्ति—

कविराज गोस्वामी ने चतुर्थ चरितामृत का 'मध्यलीला' के बाइसवें परिच्छेद में साधन भक्ति की विषय विवचना की है। कहते हैं कि चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को साधन भक्ति के चौंसठ अंगों की शिक्षा दी है। इस शिक्षा में कुछ को ग्रहण योग्य और कुछ को वर्जित बताया गया है। गुरु का आश्रय, दीक्षा आदि दस तां ग्रहण योग्य हैं और अवष्णव सग, सेवानामापराध आदि दस वर्जनीय हैं। इसके बाद श्रवण कीर्तन आदि चौआलीस अंग बताये गये हैं और उन चौआलीस में श्रवण कीर्तन स्मरण पूजन, वन्दन, परिचर्या, दास्य, सख्य आत्मनिवेदन ये नौ श्रेष्ठ हैं। चौंसठ अंग में साधु सग, नामकीर्तन, भागवत श्रवण, मथुरावास, श्रीमूर्ति सेवा ये पाँच अत्यन्त श्रेष्ठ हैं और इन पाँचों में भी नामकीर्तन का उच्च स्थान दिया गया है। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि नामकीर्तन का कितना बड़ा स्थान गौडीय वष्णव सम्प्रदाय में प्राप्त है।

वल्लभ संप्रदाय में सेवा का प्राधान्य—

श्री वल्लभाचार्य ने नवधा भक्ति को प्रेमभक्ति का साधन कहा है। वल्लभ-संप्रदाय की भक्ति की चर्चा करते समय हम यह देख चुके हैं कि नवधा भक्ति के सब अंगों में अष्टछाप के कवियों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। नामकीर्तन का जो स्थान गौडीय वष्णव संप्रदाय में है वह वल्लभ-संप्रदाय में नहीं है। उसे नाम की महत्ता और नामकीर्तन नाम-जप के महत्त्व का मध्ययुग में अत्यधिक प्रधानता दी गई थी फिर भी गौडीय वष्णव संप्रदाय में उसकी अपनी एक अलग विशेषता है। इसी प्रकार से भगवान की सेवा का जो अष्टछाप वल्लभ-संप्रदाय में है वह गौडीय वष्णव संप्रदाय में नहीं है। सेवा का माहात्म्य बहुत बड़ा कहा गया है। परमानन्द दास ने कहा है

सेवा मदन गोपाल की मुक्ति है ते सोठी ।^१

इसी प्रकार से मूरदास ने भी 'सवाफल' नाम के पद में टापुर के मन्दिर की सेवा का पद बतलाया है। यह पद नाथद्वारा निज पुस्तकालय की प्रति न० ४६।५ में सुरक्षित है।^२ मूरदास सेवा का फल बतलाने हुए कहते हैं

^१ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० ६६७।

^२ यही, पृ० ६६६ पर उद्धृत।

से है। इसे गौर चित्रकार कहते हैं। इनसे सुनने वाला को यह संकेत मिल जाता है कि किस लीला का उस दिन गान होगा। ब्रजभाषा का पदावली साहित्य इस प्रकार का नहीं है और न बंगाल की यह परंपरा ही हिन्दी प्रदेशों में है।

‘महाजन’ पदावली—

बंगाल में वैष्णव पदावली को ‘महाजन पदावली’ भी कहते हैं। ये पद गीति-काव्य धर्मो है। पदा की रचना कविता करने के लिए नहीं लिखी गई है। उनका उद्देश्य भक्ति का निवेदन एवं उन पदों के द्वारा भगवान् की लीला का प्रत्यक्ष करना है। उन पदाको रूपक या कवि कल्पना समझना गलत होगा। उन भक्ति कवियों के लिए यह परम सत्य है। श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में जो नरलीला की थी उसी लीला का चित्र वैष्णव पदावली है। पदवक्ताओं ने वृन्दावन में चलने वाली राधा-कृष्ण की नित्य-लीला का आम्बुादन किया है और अपनी उसी अनुभूति को इन पदा में अभिव्यक्त किया है। इन पदा के द्वारा भी व उस लीला रस का आस्वादन करत रहे ह। अतएव इन पदा का गीति-काव्य की दृष्टि से अध्ययन करना समीचीन नहीं होगा यद्यपि उनमें काव्यत्व भी है और योत्तात्मकता भी। वास्तव में उन पदा में पदवक्ताओं की गभीर अनुभूति और उनका धर्म विश्वास है।

जयदेव के गीत ‘गोविन्द’ में लीला-वर्णन के लिए जा गीत लिखे गए हैं उन्हें ‘पद’ कहा गया है। चतुर्थ-भरवर्ती साधका की रचनाओं में चरम परिणति देखने का मिलती है। ‘महाजन-पद’ केवल शुष्क तत्त्वचिंतन के लिये नहीं लिखे गए। उन पदा में उन भक्ता की भक्ति गद्गद रगालुता और उनके भक्ति रस से सिंचित हृदय की मरस अनुभूति का परिचय मिलता है।

राधा-कृष्ण लीला का लौकिक रूप में वर्णन—

वैष्णव-पदावली में राधा-कृष्ण का लीला का जो वर्णन है वह लौकिक प्रेम की विभिन्न दशाओं के जसा है। वास्तव में उस प्रेम का चित्रण, उस प्रेम का तमयता और क्षीणानुभूति को प्रकट नहीं किया जा सकता फिर भी उसे कुछ दूर तक मानव प्रेम की विभिन्न मनोभावों के द्वारा समझा जा सकता है। इससे बात यह है कि कृष्ण ने इस लीला का मटरूप धारण कर ही संपादन किया है

कृष्णेर जतेक खेला सर्वोत्तम नरलीला
 नररूप ताहार स्वरूप ।
 गोपचेज घेणुकर नवकिशोर नटवर ।
 नरलीलार हय अनुरूप ।^१

यही कारण है कि वैष्णव पदावली का आकर्षण केवल भक्तों के लिए ही नहीं है बल्कि साधारण नट-नटियों के लिए भी है। लेकिन इतना होने पर भी यह ध्यान रखना जरूरी है कि यह लीला मानवीय नहीं है। उन 'महाजनों' के कृष्ण उनके अन्तर में अपने अपूर्व रूप तथा रम-माधुरी को लेकर विराजमान है। अतएव वैष्णव पदावली के अन्तर में पैठने के लिये वैसा हृदय और मन चाहिए। केवल काव्य की दृष्टि से उनके माधुर्य का आस्वादन करने वाला बहुत कुछ से और शायद असल वस्तु में वचित रह जाना है।

वैष्णव-पदावली में धर्म की अनुप्रेरणा—

बहुत बार काव्य को गीति या धर्म के प्रचार का वाहन बनाया गया है लेकिन इससे काव्योत्कर्ष में महायता तो नहीं ही पहुँचती है बल्कि वह उनके अपकर्ष का कारण बन जाता है। वैष्णव पदावली धर्म की अनुप्रेरणा में रची तो गई है लेकिन उसमें मतवाद का स्थापन ऐसा नहीं किया गया है कि जिससे रसास्वादन में बाधा पहुँचे। ब्रजलीलाध्यान की यह आनुसंगिक फल है, उसकी सहायक मात्र है। यही कारण है कि इन पदों की रचना करने समय श्रीकृष्ण का सर्वावतार श्रेष्ठ रूप और श्रीराधा का भगवान् की परा-शक्ति या परा-प्रकृति रूप बराबर बना रहता है। वैष्णव पदावली का अध्ययन करते समय यह मूलतत्त्व अगर आँसों में ओझल हो जाय तो उसका रसास्वादन करना भी अधूरा ही रह जायगा।

पदावली में मधुर रस का प्राधान्य—

पदावली में दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर भाव की भक्ति का परिचय मिलता है लेकिन सबसे अधिक मधुर रस को ही प्रधानता दी गई है। हम पहले देख चुके हैं कि भक्त विरह की दशा में ही अपने को सम्पूर्ण भाव से पाते हैं। पदावली में भी मधुर रस की भक्ति का प्राधान्य तो है लेकिन सर्वत्र विरह की व्याकुलता उसमें परिव्याप्त है जैसे नाना छल से भक्त का हृदय भगवान् से मिलन के लिए छटपट कर रहा है। मान, प्रवास, पूर्वराग सभी

^१ चैतन्य चरितामृत, २।८१।८३।

में उस विरह की वेदना को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। इस विरह वेदना का अनुभव भक्त हृदय को इस प्रकार होता है कि उन्होंने राधा-कृष्ण के मिलने के वणन में भी उस विरह की प्रधानता बनाए रखी है। मिलन में विरह का मय बना हुआ है और विरह में मिलन की व्याकुलता पदावली में स्थापित भक्त-हृदय के भाववग का बुद्धि के द्वारा नहा समझा जा सकता।

आसाम, उड़ीसा और नेपाल में ब्रजगुलि के पद—

ब्रजगुलि व पद बंगाल के सिवा आसाम उड़ीसा और नेपाल में भी मिलते हैं। आसाम के वणव पदा में बाल और किंगोर रूप का वणन है और उनमें दास्य भक्ति का ही प्रधानता है। राधा को उन पदों में कोई स्थान नहीं दिया गया है। लगता है जैसे बल्लभ-सप्रदाय का प्रभाव आसाम के वणव भक्ता पर पड़ा है। उड़िया पदों में कुछ विनय और वन्दना व पद है। विष्णु राम आदि की वन्दना के पद भी मिलते हैं। कृष्ण के ऐश्वर्य रूप, पूतनादि वध का भी वणन किया गया है वैसे मधुर रस के भा कुछ पद मिलते हैं। नेपाल में ब्रजगुलि के पद कुछ स्वतंत्र रूप से लिखे हुए नहीं मिलते। नाटका के बीच-बीच में लिखे हुए ये पद मिलते हैं इसलिए कृष्ण भक्ति-काव्य की दृष्टि से उन्हें कोई विशेष महत्व नहीं दिया जा सकता। पद कल्पतरु के आधार पर वर्ण्य विषयों की सूची—

पद-कल्प-तरु की सूची से बंगाल के वणव-साहित्य में वर्णित विषयों का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। पद-कल्पतरु के कुछ विषय निम्न लिखित हैं

राधा का पूव राग, श्रीकृष्ण का पूव राग वय सधि रूपानुराग, अभिसार नायिका भेद, मान दुजय मान, विविध मान, अकारण मान, वारणभास मान, स्वयं दौय स्वयं दौत्य-सभोग रसालय अभिसारानुराग प्रेम-वचिन्मय रूपाल्लास रास रमाद्गार गोवधन लीला, गरतकाशीन महारास गोष्ठ विहार और दानलीला नीला विलास वसन्त लीला स्नान यात्रा रथयात्रा, पूननयात्रा अभिषेक लीला प्रवाम, अदूर प्रवास सुदूर प्रवास, दिव्योमाद म्वन रसालगार द्वाग्ग-मामिक विरह, नानाविध विरह, विरह की दस दशा भावाल्लास, था गौरचन्द्र का नृत्यादि लीला-वणन गौरचन्द्र का रूप-वणन गौरचन्द्र व ऐश्वर्यादि का वणन, श्री गौराग का सयासाणि वणन गौराग का माहात्म्य-वणन, गौरचन्द्र के

भक्त-वृन्दो का चरित्र वर्णन, दगावतार वर्णन, अष्टकालीय नित्य लीला, पूर्वाह्न लीला, मध्याह्न लीला, अपराह्न लीला, प्रदोष लीला, रात्रि लीला, निद्रा लीला, जन्मसकीर्तन, प्रार्थना ।

ब्रजभाषा के वर्ण्य-विषय—

ब्रजभाषा के विभिन्न कवियों ने दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर भाव के सुन्दर पदों की रचना की है। अष्टछाप के कवियों ने विभिन्न भावों और लीलाओं के वर्णन किए हैं लेकिन सूरदाम आदि ने बाल लीला का जितना सुन्दर वर्णन किया है वह रसपरक साहित्य में बेजोड़ है। सम्भवतः अष्टछाप के कवियों में नददास ने ही नायिका-भेद जैसी चीज लिखी है। ब्रजभाषा के कवियों ने भी शृंगार के सयोग और वियोग पक्ष दोनों के ही सुन्दर वर्णन किए हैं। ब्रजभाषा और ब्रजवुलि के कवियों की रचनाओं पर पिछले अध्यायों में पूरी तरह से प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। यहाँ पर तुलना के लिये कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं।

विनय के पद—

ब्रजभाषा और ब्रजवुलि के कवियों में शान्त रस के पद बहुत ही कम मिलते हैं। उनका ध्यान लीला-गान की ओर ही अधिक है। विनय के पदों में भक्त कवियों ने भगवान् को पतित पावन और अपने को पतित कहा है। ब्रजभाषा के कवियों में विनय के पदों को देखने से सहज ही मालूम हो जाता है कि उनमें दैन्य की भावना अधिक तीव्र है। ब्रजवुलि के पदकर्ताओं में दैन्य की वह तीव्रता नहीं दीख पड़ती।

भजन मन सतत हृदया गिरदन्त ।

राधा कृष्ण परम-सुख-दायक

रसमय परमानन्द ॥ घृ ॥

चंचल विषय-विष सुख मानि खाओसि

ना जानसि इह अति मन्द ।

परकाले विकट मरण-दुख देयब

बुझह अवहि करु अन्ध ॥

मोहे दुख-भागि करण नहे समुचित

तो हाम जनमक बन्धु ।

निज दुख जानि अबहि नरण करु
ओ बुहु करणार सिन्धु ॥
जो पद पफज प्रेम-मुधा पिबि
बुर कर जिन दुख-बद ।
ए राधा मोहन कह तेजह मिलइ मोह
जछे गहत निज बध ॥^१

‘रौतम दास के निम्नलिखित, पद में भी यह देखते ह कि भगवान में अनुरक्ति न होने के कारण भक्त ग्लानि प्रकट कर रहा ह

हरि हरि किये मोर करम अभाग ।
बिफले जनम गेल हृदय रहल गेल
ना भेल हरि अनुराग ॥^२

कुछ पद विद्यापति के अवश्य मिलते हैं जिनमें ब्रजभाषा के कवियों के पदा का आभास मिल जाता ह

जतने जतेक घन पाये घटोरलु
भेलि परिजने खाय ।
मरणक बेरि हेरि काइ ना पूछत
करम सगे चलि जाय ।
ए हरि बंदो तुया पद-नाय
तुया पद परिहरि पाप-पयोनिधि
पार हब कौन उपाय ॥^३

ब्रजवलि कविया में ब्रजभाषा कविया से एक अलग विशेषता यह ह कि चैतय संप्रदायी कविया ने श्रीगौराग (चतय महाप्रभु) को श्रीकृष्ण का अवतार माना इसीलिए श्रीकृष्ण तथा श्रीगौराग में उन्होंने कुछ अन्तर नहीं देखा । श्रीकृष्ण की सभी लीलाए गौराग अवतार में भी हुई । भक्त हृदय ने बसा ही उन्हें पतित-पावन माना

गौरांगपतित-पावन तुया नाम ।
कलि-जोये जन आछिल कृत-पातरी
बेओलि सवे निज ठाम ॥ ध्रु ॥

^१ पद कल्पतरु, पद संख्या ३०३४ । ^२ वही, पद संख्या ३०२० ।

^३ वही ३०१८ ।

आचण्डाल अवधि तोहारि गुणे कान्दये
 प्रेम-पुलके नाहि और
 हरि-नाम-मुधा-रसे जग-जन पूरल
 दिन रजनी रह भोर ॥^१

यह मही है कि मूरदाम तथा अन्य ब्रजभाषा के कवियों में यह पतित-पावन का भाव बड़े ही वेग से प्रकट हुआ है :

परम पुनीत-पवित्र कृपानिधि, पावन नाम कहायो ।
 सूर पतित जय सुन्यो विरद यह, तब घोरज मन आयो ॥^२

अथवा

सरन गए को को ना उवार्यो ।
 जब जब भीर पड़ो संतन को, चक्र मुदरसन तहां संभार्यो ॥^३

दास्य भक्ति के पद—

दास्य भक्ति के पद भी ब्रजभाषा में बहुत मिलते हैं । परिमाण और विविधता की दृष्टि से दास्य भाव वाले पद ब्रजभाषा में ब्रजबुलि से बहुत ही अधिक हैं । गोविन्ददास के निम्नलिखित पद में ब्रजबुलि के भक्तों की रचनाओं का कुछ अनुमान किया जा सकता है —

भजहुं रे मन नन्द-नन्दन
 अभय-चरणारविन्द , रे ।
 डुलह मानुष—जनम सतसगे
 तरह ए भव—सिन्धु रे ।
 शीत आतप वात दरिखण
 ए दि यामिनी जागि रे ।
 बिफले सेविलुं कृपण दुरजन
 चपल सुख-लव लागि रे ॥
 ए धन जीवन पुत्र परिजन
 इथे कि आछे परतीत रे ।
 कमल दल—जल जीवन टलमल

^१ पद कल्पतरु, पद सख्या, ३००९ ।

^२ सूर सागर, १।१२५ ।

^३ वही, विनय, १।१४ ।

भजहुँ हरि-पद नीत रे ॥
 श्रयण कीर्तन स्मरण बदन
 पाद — सेवन — दासि ।
 पुजन सखिजन आत्म निवेदन
 गोविंद दास अभिलाषि ॥^१

भक्त हृदय हरि के चरण-कमला में भौरे की अनन्यता—अनुराग से तल्लीन
 रहना चाहता है

तज मन हरि विमुखन के सग ॥
 जाको सगहि कुमति उपजति ह ।
 भजनाहि पडत विभग ॥ध्रु॥
 सतत असत-पथ लेइ जो जायत
 उपजत कामिनी—सग ।
 शमन - दूत परमायु परीखत
 दूराहि नेहारत रग ॥
 अतये से हरि—नाम सार परम मधु
 पान करह छोडि ढग ।
 कह माघो हरि चरण सरोरुहे
 भाति रहू जनु भुग ॥

और भी इसी प्रकार के पद दास्य भाव के और मिलते हैं इसकी तुलना
 में निम्नलिखित सूरदास का पद ब्रजभाषा की दास्य भक्ति का प्रतिनिधित्व
 करता है

हमें नद नदन मोल लिये ।
 यम के फद काटि मुकराय, अभय अजात किये ।
 भाल तिलक श्रवणन तुलसीदल मेरे अक दिये ।
 मूढे मूढ कठ वनमाला मुद्रा चक्र दिये ।
 सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये ।
 सूरदास को और बढो सुख जूठनि लाइ जिये ।^१

^१ पदकल्पतरु, ३०३२ ।

^२ वही, ३०३५ ।

^३ सूरसागर, पद सख्या १७१ ।

सख्य रस के पद—

सख्य तथा वात्मल्य भक्ति के पदों से ब्रजभाषा का साहित्य तो भरा पटा है। ब्रजबुलि के कवियों में भी सख्य वात्मल्य भक्ति के पद मिलते हैं लेकिन उनकी मख्या बहुत थोड़ी है और जो कुछ है भी उनमें भी बगला के ही पद अधिक है। अतः यह निःसर्कोच भाव में कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा के सख्य तथा वात्मल्य भक्ति के पदों के सामने भाव तथा परिमाण की दृष्टि में इन पदों का कोई विशेष महत्व नहीं। निम्नाद्वृत ब्रजबुलि के पद में सख्य-रस का नमूना देखा जा सकता है।

जमुनाक तीर तरुतल सुशीतल
 अतिया मिलल दोन भाइ ।
 नभे बले भाल भाल कि खेला खेलावे बोल
 बाजू खेलिय एइ ठायि ॥
 फार कोचड़ेते भेटा कड़ि
 रामचाकि दाठागुलि
 केहो कहो पाचनि फिराय ।
 राम कानाइ कुतूहले दुइ भाइ दुइ दले
 शिशुगण करे घाओया घाय ॥
 कौतुके ठेलाठेलि निज अंग हेलाहेलि
 केह केह लाटुया घुराय ।
 तव शिशु थरे थरे गेह्येया बलाइ करे
 लोफे गेहु मत बलाइ ॥
 सातलि भागलु बलि ठाके महामत बली
 चौदिगे पड़े घाओया घाइ ।
 एक शिशु कहे शुन सातलि पात्याछि पुन
 मार जदि कानाइर दीहाइ ॥^१

लेकिन इस तरह के सख्य विषयक पद ब्रजबुलि में गिने-चुने ही हैं। गैया चराने के लिए कृष्ण-वलराम के साथ वन को जाते हुए गोप-बालो का मुन्दर वर्णन है :

^१ पद कल्पतरु, पदसख्या ११९५ ।

गोठेरे साजन गोपाल ।
 घवलि/सावलि पिउलि बलिया
 हांकारे सब राखाल ॥ध्रु॥
 काह काये चेलि विनोद पागडि
 काह गले गुजागाभा ।
 इवेत लोहित काह नील पीत
 कटि तटे भाल शोभा ॥
 भाइया बलराम पूरिछे विषाण
 कानाइ पूरिछे वेणु ।
 उच्च पुच्छ करि थवण तुलिया
 आगे घले सब घेनु ॥
 नाचत गायत वेणु बाजायत
 घेनु चालायत रग ।
 भोजन-सभार लया आगुसार
 यादवेत्र चलु सगे ॥^१

जन्म सबधी पद—

जन्म सबधी पदा में ब्राह्मणिक व वैष्णव-विविधों ने महाप्रभु चैतन्य के जन्म का वर्णन ही अधिक किया है। वृष्ण-जन्म सबधी पद भी कुछ मिलते हैं। बाल-लीला के पदा में भी इसी प्रकार से चैतन्य और वृष्ण दोनों से सम्बन्धित पद हैं। ब्रजभाषा का बाल-लीला में वृष्ण सबधी ही पद अधिक लिखे गए हैं वस कुछ पद बल्लभाचार्य और विटठलाय सबधी भी मिलते हैं।

बाल-लीला—

ब्रजबुक्ति के निम्नलिखित पद में गौरी माना (चतुर्थ महाप्रभु की माता)
 के आगम में गौराग के नाचत हुए मुन्दर रूप का वर्णन है
 जिसे हाम पेखलु बनक-पुतलिया ।
 गौरीर आगिनाय नाचे पूलि-धूसरिया ॥
 चौदिक दिगम्बर बालके धेड़िया ।
 तार भासे गौरा नाचे हरि हरि बलिमा ॥

^१ पदवत्पद पदसंज्ञा, ११९२ ।

रातुल कमल-पदे घाय द्विजमणिया ।
 जननी गुनये भाल नूपुरेरे ध्वनिया ॥
 वामुदेव घोषे कहे शिशु-रस जानिया ।
 घन्य नदियार लोक नव द्वीप घनिया ॥^१

वात्सल्य-रस का पद—

निम्नोद्धृत ब्रजवृत्ति का पद वात्सल्य रस का सुन्दर नमूना है । कृष्ण को मक्खन का लालच दिला कर यशोदा नचा रही है । मक्खन खाते-खाते नाचते हुए श्याम का मौदर्य अपूर्व रूप में प्रकट हो रहा है जिसे देखकर यशोदा और रोहिणी मा का हृदय वात्सल्य स्नेह में गद्गद् है .—

दधि-मय-ध्वनि शूनइते नीलमणि
 आओल संगे बलराम ।
 जशोमती हेरि मुख पाओल नरमे सुख
 चुम्बये चान्द-बयान ॥
 कहे गुन जादुमणि तोरे दिव क्षीर ननी
 खाइया नाचह मोर आगे ।
 नवनी-लोभित हरि मायेर बदन हेरि
 कर पाति नवनीत मागे ॥
 राणी दिल पूरि कर खाइते रगिमाघर
 अति मुशोभित भेल ताय ।
 खाइते खाइते नाचे कटिते किन्तिणी बाजे
 हेरि हरपित भेल माय ॥
 नन्द-दुलाल नाचे भालि ।
 घाडिल मंथन-दण्ड उयलिल महानन्द ।
 सघने देइ करतालि ॥ ध्रु ॥
 देख देख रोहिणि गद गद कहे राणी
 जादुया नाचिछे देख मोर ।
 घनराम दासे कय रोहिणी आनन्दमय
 डुहु भेल प्रेमे विभोर ॥^२

^१ पदकल्पतरु, ११५० ।

^२ वही, ११५७ ।

ब्रजभाषा के मूरदास, परमानन्ददास आदि के लिखित बाल-लीला के पद अत्यन्त सुपरिचित हैं। उन पदा में विविधता है और एक अपूर्व रस-माधुरी है। ब्रजभाषा के ये पद विश्व-साहित्य में बेजाड हैं।

शृंगार के पद—

शृंगार के दोना पदो—सयोग और वियाग—के बणना से ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य भरा पडा ह। ब्रजभाषा तथा ब्रजबुलि के कवियो और उनकी रचनाओ के सबध में पिछले अध्याया में पूरा प्रकाश ाला जा चुका है। उन पदा को देखने से ही पना चलना ह कि भक्त-कविया ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का बणन छक कर किया ह। ब्रजबुलि में वर्णित शृंगार-लीलाओ के बण्य विषय के सबध में हम पहल कह चुके हैं और यह भी कह चुके हैं कि गौडीय ब्रणव सप्रणय में इसके सबध में जितने विस्तार से आलाचा हुई है उतनी अय किसी भक्ति साहित्य में नहा। ब्रजभाषा के कविया ने भी शृंगार लीला का विनाद बणन किया ह। पर यह तो निस्सकोच कहा जा सकता है कि ब्रजबुलि साहित्य इस दष्टि से अत्यधिक समृद्ध ह।

ब्रजबुलि और ब्रजभाषा में वर्णित विभिन्न लालाएँ—

ब्रजबुलि तथा ब्रजभाषा दोना में ही राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओ का बणन किया गया ह। बाल लीला, गोवधन-लीला, रास लीला, गाण्ड विहार, नौका विलास, दान-लीला, बसन्त लाला, चूलन, हाली, अभिषेक लीला आदि के सुन्दर बणना से वैष्णव काव्य-साहित्य भरा पडा ह। ब्रजभाषा साहित्य में 'राधा-कृष्ण के बर्णनालीन चूला या हिंडाल' के पद और 'बसन्तोत्सव प्रसंग होरो' या 'होली के प' प्रचुर मात्रा में लिखे गए। गौडीय ब्रणव साहित्य में इस प्रकार के पदा की संख्या बहुत कम ह। ऐसा अनुमान करना गलत नही होगा कि 'हिंडोला तथा हाली' लीला विषयक पदा के लिए बगीय वैष्णव साहित्य ब्रजभाषा के कवियो का ही कणी है। आज भी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के गाँवा में सावन मादो के दिन में स्त्रियाँ चूला झूलती हैं। हाली उत्सव में रगभरा पिचकारी और गुआर की ठागी का बहार से इन प्रदेशों में जसा उद्दाम-भनाहर उत्सव होता ह, उसके सामन बगाव में यह उत्सव फीका ही होता ह। बपा तथा बसन्त ऋतु की ये विशेषताएँ इन प्रदेशों में परंपरागत हैं।

राधाकृष्ण की अन्य लीलाओ के सबध में निम्नन्देह यह कहा जा सकता है कि बगीय वैष्णव-साहित्य में उनका जितना प्राचुर्य और बचिम्ब है तथा जितना

वैविध्य है वह ब्रजभाषा के वैचित्र्य-साहित्य में नहीं है। ब्रजभाषा साहित्य में द्रवि वेचन-लीला, दान-लीला, नाग-लीला, विसासिन लीला, रामलीला, भूदन, अष्टवाम लीला का प्राधान्य है। श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन में ब्रजभाषा के कवियों ने मूलतः श्रीमद्भागवत का ही अनुसरण किया अतएव उनकी कवि-प्रतिभा तथा काव्य-शक्ति भावार्थ के ही पर में आवृत्त रह गए, क्योंकि उनमें लीला-वैचित्र्य इतना कम है।

भ्रमरगीत की परम्परा—

ब्रजभाषा के 'भ्रमर-गीत' की परम्परा उमड़ी अपनी है। उद्भव-संवाद के अन्तर्गत जिन सामिक व्यञ्जना का परिणय मिलता है वह अद्भुत है। बंगोद वैष्णव पदावली में यह बात नहीं मिलती। भ्रमर-गीत प्रथम में जो सामिक व्यञ्जना ब्रजभाषा कवियों द्वारा बत पड़ी उस बुद्धिविद्या-संभव तथा वास्तु-चातुर्य का ब्रजबुलि साहित्य में बहुत बड़ा अभाव रह गया।

लीला बरान द्वारा भक्ति निवेदन—

इन लीलाओं के सम्बन्ध में जना ध्यान रगना आवश्यक है कि इन भक्त कवियों ने इन पदों में अपने हृदय का प्रेम व्यक्त किया है, उनके न बालकों के मूढम मनोविज्ञान का चित्रण करना था और न नायिका भेद का सांगोपांग विवेचन करना था। उनका एकमात्र उद्देश्य अपने अन्तर के भगवान् की लीला को प्रत्यक्ष करना था और उस नित्य लीला का द्रष्टा होना था। नन्द, यगोदा, गोर, गोपी नभी रूपों में उनके भक्त हृदय का प्रेम ही प्रकट हुआ है।

(ग) भाषा

ब्रजबुलि में ब्रजभाषा के अन्त—

पिछले अध्यायों में ब्रजभाषा और ब्रजबुलि की भाषागत विशेषताओं और विकास पर प्रकाश डालने की चेष्टा हमने की है। यह हम देख चुके हैं कि सन् ईसवी की चौदहवीं, पन्द्रहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में एक सामान्य काव्य भाषा का व्यवहार होता था। इस सम्बन्ध में हमने अबहट्ट की भी चर्चा की है और पूर्वी तथा पश्चिमी अबहट्टों की विशेषताओं पर भी विचार किया है। इस सामान्य काव्य भाषा के रूपों को ब्रजबुलि तथा ब्रजभाषा के पदों और शब्दों में सहज ही देखा जा सकता है। यहाँ पर ब्रजबुलि के कुछ पदों और शब्दों को प्रस्तुत करने जा रहे हैं जिनसे तत्कालीन सामान्य काव्यभाषा

का कुछ परिचय प्राप्त हो सकता है। ब्रजबुलि के बहुत से ऐसे पद हैं जिनमें ब्रजभाषा के शब्द आ गए हैं। ब्रजबुलि के पद-संग्रह में ब्रजभाषा के सूरदास, श्रीभट्ट आदि जैसे भक्त कवियों के पद ज्यों के त्यों उद्धृत किए गए हैं।

निम्नलिखित ब्रजबुलि के पदों में ब्रजभाषा के शब्द आ गए हैं

सखि गागरि गरि काख तलि जलखो जमुनाक घलि
 देखो एक दूर बनि जमुना कुल आला
 चरने पर दिया चरन खड़ेहु स जलद बरन
 मेरि मन हेरि हरेन किए सेइ लाला
 सखि नागर बर निय तले चूडाय पर चाद झले
 मोहन मनि माल गले दोलहि बोन माला
 सखि पिघन कोटी-पीत बसन
 मोती जिनि ज्योति दसन
 जाको कहि जगत घोसन ताको कहि वाग
 मन हम घर चलत तुरत बन जो अहि
 जलत मरत होगो नद लाला
 बुझे अनुमान सुरत जिनको मोर चित नदान घर से नित
 प्राण सकट मोझे डाला ।
 मनए द्विज गगाराम देखो एक जलद स्याम सहि जगपाला
 जिनको पद विपद हरन तरनि भवसिंघु तरन
 पूजे ऐ कोमल चरण घोचे जम जाला सह घोचे जन जाला ।^१

निम्नलिखित दोहे रूप गोस्वामी के लिखे हुए हैं—

बहुक बहुक बहुत फिरतेहे भक्ति ना जाने कोइ ।
 विदावन में भक्तिदाता रूप सनातन दोइ ॥
 रागानुगा भजन करो करो ब्रज कि रित
 नन्दनदन पावगे त करो रूप सो प्रित ।
 नेहि नेहि ए दो दोहां एक रसके भूप
 प्राप्ति कुल मज्यादा खोजे भज सौनातन रूप ॥१॥

^१ विश्वभारती-हस्तलिखित प्रति सख्यक २६९ (४) ।

रूप रस के सरोवर ज्ञान भजन करो दान करो कुण्ड बुद्ध
 राधाकृष्ण ध्यान करो तो रूपानुगा होइ ।
 मति फाटे मौन मिले मन फाटे सोना होय
 ओछा द्वो हिति करे आप्तेर सब कुछ मोय ।
 रूप रघुनाथ को भजन दिने जो जिए जगत संसार
 आत्मा ना मरत बनाया जेछे मालाकार ।
 रूप ना सोवरे सोवरे रघुनाथ ॥
 हेनी जनार सगे मोर नाहि साय
 रूप रूप सब कोइ कहे मन में उपजय रग
 रूप ना जानके रूप कहाय करे भजन का भंग ॥३॥
 हरि के फिरे न पयउ द्वय लोभ फिरे सब देस
 मन लाभ तु कहि ऊजर भवत उजर केस ।
 साहेब सो मेवक बड़ा जानाया भगवान
 छमुद्र बांधा रघुनाथ कूद गेव हनुमान ॥४॥^१

चंगला की वैष्णव-पदावली में ब्रजभाषा के पद—

डा० सुकुमार सेन ने अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री आफ ब्रजबुली' में कुछ, कवियों का उल्लेख किया है । इन कवियों में कुछ तो ब्रज के ही रहने वाले थे और कुछ वगाली कवि थे जिन्होंने अपना बहुत अधिक समय वृन्दावन में वास कर बिताया था । डा० सेन ने निम्नलिखित कवियों तथा उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है^२

आगरवाली—

प्रिया, मुख देखो श्याम नेहारि

कहि न जात आनन की शोभा रहि बिचारि बिचारि ॥

इन कवियों की रचनाओं के कुछ उदाहरण हम दे रहे हैं, उनके अलावा अन्य कवियों और जिन सग्रहों में उनकी कविताएँ मिलती हैं उनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

कवि

संग्रह

आगरवाली

पदकल्पतरु (पद सख्या २८८४)

^१ विश्वभारती हस्तलिखित-प्रति, सख्या ४९६ ।

^२ ए हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ३७५-३७९ ।

कवि	सग्रह
कवलदास	कृष्ण पदामृत सिन्धु में एक पद मिलता है लेकिन पाठ अशुद्ध है।
कृष्णकान्त तनया	अप्रकाशित पदरत्नावली, ४८३। पदकल्पतरु २८८६।
कृष्णदास	पदकल्पतरु—चार पद। अप्रकाशित पद रत्नावली, ४६३। कृष्ण पदामृत सिन्धु ११३।
कृष्णानन्द	'अप्रकाशित पद रत्नावली ४८५ (यह पद 'पद रत्नाकर' से लिया गया है)। इसी कवि के एक वगला और चार ब्रजबुलि के पद, 'पद रत्नाकर' से 'अप्रकाशित पद रत्नावली' में उद्धृत हैं।
गोपालभट्ट	पदकल्पतरु २९६६, १०८८ २८३८।
नन्ददास	'अप्रकाशित पदरत्नावली' में 'पद रत्नाकर' से लिए हुए पद ४३५ ४३६ ४३७, ४३८।
परमानन्द	पदकल्पतरु १५८५, २८५८, २८७१।
माधो	पदकल्पतरु २३६६, २३६५ २९६८ ३०३५।
रघुनाथ दास	पदकल्पतरु २३८७, २४६७, २८६९।
राम राय	पदकल्पतरु २८४४।
राय गदाधर	वगीय साहित्य परिषद् हस्तलिखित प्रति, सख्या ९७८।
व्यास	'भक्ति रत्नाकर' (पृ० ४७३) में दो पद, वगीय साहित्य परिषद् एक पद, हस्तलिखित प्रति, स० ९७८।
गिराम	पदकल्पतरु १५५७।
सुबेर कवि	अप्रकाशित पदरत्नावली ४६४।

वगीय साहित्य परिषद् की हस्तलिखित प्रति सख्या २०१ में श्रीभट्ट का
निम्नलिखित पद आया है—

श्यामा श्याम सेज उठ भठे स परस दी करत तिगार ।

इन पहरे ओभा-के मोतिन-के माला उन पहरे नओ से बहार ॥

नट पटि पाग सोझारत श्यामा अलक सुधाये नन्द-कुमार ।

श्रीभट्ट फहे युगल-ये दूती हामारि कुंजन में करत बिहार ॥^१

सम्भवतः यह पद निम्नार्क संप्रदाय के 'श्रीभट्ट' का है ।

सूरदास का निम्नलिखित पद पदवत्पतर में संगृहीत है—

गोविन्द मुपारयिद निरखि मन विचारों ।

चन्द्र कोटि भानु कोटि मदन कोटि ओयारों ॥

मुन्दर फपोल लोल पंकज दल-नयना ।

अवर विम्बु मधुर हाम कुंदकलिक-दशना ॥

मणि-कुंडल मकरामृत अलक-भंगु पुंजा ।

केशर को निलक वैनो सोणे मणि गुंजा ॥

नव जलधर तड़िदम्बर गले बनमाला शोहे ।

लीला-नट सूर के प्रभु रूपे जग-मन-मोहे ॥^२

सूरदास के उपर्युक्त पद के अलावा और दो पद अप्रकाशित पद रत्नावली में आए हैं उनमें से एक निम्नलिखित है—

सभे मेलि झुलन जाइ हिंडोर ।

बंशी-वट तट सब मखिभोग

झुलन नन्द-किशोर ॥

सखि-नाण नगहि चनु वृषभानु-मुता

चायत मृदग-मन्दिरा ।

ताम्बूल करपुर हार मनोहर

भेटव पीतम प्यारा ॥

ललिता विशाखा सगोत गाओत

हरि-गुण-गान सब भोरा ।

सूरदास प्रभु तुहारि दरश को

ढूँढ़त नयन-चकोरा ॥^३

सूरदास का दूसरा पद जो 'अप्रकाशित पद रत्नावली' में आया है वह राधा के रूप का वर्णन है । लेकिन इसमें एक बात ध्यान देने की है कि ब्रजभाषा

^१ डा० सुकुमार सेन-ए हिन्दी अफ ब्रजवृत्ति लिटरेचर, पृ० ३७८ पर उद्धृत ।

^२ पदकल्पतरु, पद संख्या १०८६ ।

^३ अप्रकाशित पद-रत्नावली, पद संख्या ४६६ ।

के पदा को लेते समय ब्रजबुलि के समग्र कृताओं ने अपने ढंग से उसमें परिवर्तन किए हैं। निम्नलिखित पद में यह बात देखने को मिलती है—

पेखलु एकहि अदभुत बाग ।
 युगल बबैल पर गजवर गौरत
 तापर सिंह करत अनराग ॥ घृ ॥
 तहि पर सरवर ता पर गिरिवर
 गिरि फुले कञ्ज-पराग ।
 रसिक कपोत बसइ तहि उपर
 अरुण अमन फल लाग ॥
 फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव
 ता पर गुक-मृग भाग ।
 युगल धनुक बसइ तहि उपर
 ता पर मणि घर नाग ॥
 इहविध शोभा रहत निगि-बासर
 कबहुँ ना करत तियाग ।
 सुरदास पदु रसिक गिरोमणि
 बाइहु सिधु सोहाग ॥^१

ब्रजबुलि की भाषागत विशेषताएँ और ब्रजभाषा—

ब्रजबुलि के व्याकरण और भाषागत विशेषताओं पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं। अब ब्रजबुलि की कुछ विशेषताओं को देने जा रहे हैं जिनमें ब्रजभाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। ब्रजबुलि के सबनाम के रूपा के साथ ब्रजभाषा के रूपा का साम्य है। ब्रजबुलि के हम हाम हम सब हमें, हमें हम सैं, मुझे, मोर मझु भो हामक, हम सञ्ज तुहू तोहे तामों तोर, ताहर तोह तोहारि तुहु सञ्जे, सो ताहे, ता सञ्जे ताक, ताकर, ताह, तापर आदि ब्रजभाषा के ही अनुरूप हैं।

ब्रजबुलि में पंथी विभक्ति में 'कि' का प्रयोग होता है। यह ब्रजभाषा का ही प्रभाव है वस ब्रजबुलि में लिंग पर ध्यान नहीं दिया जाता। जैसे—

^१ अप्रकाशित पद रत्नावली, पद सभ्या, ४६५।

आजु वनि नव अभिषेक गोविंद कि ।
परमानन्द प्रेम-सुख-कन्द कि ॥^१

ब्रजबुलि का 'सो' ब्रजभाषा जैसा ही है—

'सो रस-जलधि माझे मणि-नेह ।'

ब्रजभाषा का 'गए' ब्रजबुलि में 'गेव' हो गया है ।

'हरे गेव मुरलि अलापन गीत ।'

ब्रजभाषा का कर्तृ-पद स्त्रीलिंग होने पर तिङन्त पद भी 'ई' युक्त होता है । मैथिली तथा वगला में ऐसा नहीं है । ब्रजबुलि में दोनों बातें देखने को मिलती हैं । वैसे प्राचीन मैथिली में यह प्रवृत्ति है । जैसे विद्यापति की निम्नलिखित पक्तियाँ—

'गेलि कामिनी गजहु गामिनी ।'

'तर्तहि धावल दुहु लोचन रे

जतहि गेलि वर नारि ।'

ब्रजबुलि के कुछ शब्द—

ब्रजबुलि में बहुत से ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो कभी कभी उच्चारण भेद से ब्रजभाषा के शब्दों से भिन्न प्रतीत होते हैं । बहुत-से शब्द ज्यों के त्यों उसी रूप में व्यवहृत हुए हैं । उनमें से कुछ शब्द नीचे दिए जा रहे हैं—

पहु, रोयत, देइ, भोर, आन, लावनि (लावण्य), लहु, भापनि, ढुलायत, नाचत, गायत, नहि, अधिर, चलइ, काहे, उपेखि, आइला, माझ, तुरिने, ऐछे (ऐसे), ऐछन, सगहि, प्रकटहि, विने (विना), को, देयव, माहा, वैठत, किये, होय, मोय, दुहु, वरिखये, जैछे (जैसे), ताहे, सोहे (सोहे), विहरे, कोर, चटकनि, छाह, पेखलुं, जानसि, तुहुं, जामर, कहये, अव, बोलव, ताकर, आगे, अभिलाषी, नेहारि, तोर, तोहे, माहा, निन्द, जारल, रोख, (रोष), बात, बहुत, वयनी, दुलह, आगोरलि, पहिल, हेरत, पियासे, छाति (छाती), छोडि, समुझिया, प्राण-सागाति, तव, तनिक, मोहे, निहारि, मोरि, ऊयल (उगा), दौ (दो), झुरये, तियासल, जीउ, निकसव, वनाइ, छोटि (छोटी), वयन, (वदन), खेह, पूछिए, सूववूच, खोय, लखई, भेटलु, सहइ, लेउ, लखइ, चित, आँखिते, पूछिये, एक बेरि, जेठ, हठ, इये, भेजल, साचि (सचित), विछुरल, आयल, वैठे, वैठये,

^१ पदकरपतर, सख्या १५८५ ।

दीठ मीठ (मीठा), उधारि गारि (गाली) उहवे, इनवे, बालाइते, दीघल (दीघ), डराइ, भाय, मेहइ बाउरि बरी अनहि आवत, निवसइ विछुरल, फुर, थुरे, दहत, भिगल दुवर रेह गोड विसरन, डरकत, जोय, रोय, तातल, रोपल, टुटल, कटारि (कटारी), चिबुग उमडि, कौन कामा, आवलि तेजह उवरि, तेजि (त्यागकर), समुजलुं, भोडमि पातियायब, टूटत गावांपलु, गोर भेल, फिरत, खोयल, धोर परतित (प्रतीति) विहाने । डीट, तल्पइ (तडपते हूँ), डेरि (डैरी), निचोरि (निचाड कर), मातियन, पियारि कउन (कौन), घोरि (घोलकर), कतहु (कही) टारल आदि ।

(घ) छन्द और अलंकार—

बगला की वैष्णव पदावली के छन्द—

बगला की वैष्णव पदावली में प्रधानतया तीन श्रेणी के छन्द मिलते हैं (१) मात्रा-वृत्त छन्द (२) अक्षरवृत्त छन्द (३) मात्रा-वृत्त और अक्षर वृत्त मिश्रित छन्द ।

शुद्ध मात्रा-वृत्त छन्द मयिली और बगला की ब्रजबुलि पदावली में ही मिलता है लेकिन मयिली और ब्रजबुलि वण क लघु-गुरु विचार के सम्बन्ध में पर्याप्त स्वाधीनता है । प्राचीन हस्तलिखित मयिली और ब्रजबुलि की पोथिया में तो उच्चारण के अनुसार वण विन्यास पाया जाता है । लेकिन मुद्रित बगला पदावली प्रथम में यह नहीं हो सका है । विद्यापति के किसी किसी पद में वण के लघु-गुरु व्यवहार की स्वाधीनता इतनी अधिक दासती है कि उसका मात्रावृत्त छन्द न कहकर अक्षरवृत्त कहना ही ठीक होगा । निम्नलिखित पद में यह बात देखी जा सकती है—

सामर सुन्दर ए बाटे आएल
ते मोरि लागिल आली ।
आरति आचर साधि भले
सबे सखी-जन साली ॥
कहइ मो सति कहइ मो ।
कतए ताहरि धासा ।
रूढ़ दुगुण छडि मयें भावओ
पुनु दरशन आता ।

कि मोरा जीवने कि मोर जाँवने

कि मोरा चतुर पने ।

मदन-वाने मुरछलि अछयो

सहयो जीव अपने ।

इसे त्रिपदी छन्द की लघु-गुरु मात्रा और यति की रक्षा करके पटना असंभव है। वर्णों के लघु-गुरु पर विचार न करके यदि बगला लघु त्रिपदी के समान पढ़ा जाय तो दो-तीन स्थलों को छोड़कर कहीं रकावट नहीं पड़ती। नाजि, मो और वाने शब्दों में यथा क्रम 'मा-आ-जि', 'मो-ओ-य' और 'वा-आ-ने' और आवओ तथा अछयो के स्थान पर 'आव' और 'अछो' उच्चारण करने पर ही अक्षर औ यति-शुद्ध बगला और लघु-त्रिपदी छन्द होता।

पदावली-साहित्य में व्यवहृत होने वाले छन्द निम्नलिखित हैं—

आठ, सोलह, और बान्ह मात्राओं को 'चतुष्पदी'। विषम चरणों में बारह और सम चरणों में सोलह मात्राओं वाला विषम चतुष्पदी छंद। अट्ठाइस, पच्चीस (३+४+३+४+३+४+४) तथा तेइस (३+३+३+३+५) मात्राओं की त्रिपदी।

सैतालिस और इक्यावन मात्राओं की दीर्घ चतुष्पदी।

वर्णिक छंद या अक्षर वृत्त निम्नलिखित हैं—

चौदह अक्षरों वाला पयार छंद।

आठ, दस और ग्यारह अक्षरों वाला एकावली छंद।

छब्बीस अक्षरों वाला दीर्घ त्रिपदी छंद।

बीस अक्षरों वाला लघु त्रिपदी छंद।

इनके अलावा घामाली तथा और विभिन्न प्रकार के मिश्र छंदप्रयुक्त हुए हैं। मिश्र छंदों में मिश्र पत्रपदी, मिश्र पयार, मिश्र त्रिपदी आदि उल्लेख योग्य हैं।

मात्रिक और वर्णिक छंदों के कुछ उदाहरण निम्नोद्धृत हैं :

मात्रिक छन्द—

शुनइते चमकइ गृहपति-राव ।

तुय मञ्जिर-रवे उनमति धाव ॥

यह सोलह मात्राओं वाला चतुष्पदी-छंद है।

त्रिपदी चतुष्पदी का उदाहरण—

कालियदमन दिन माह ।
कालिन्द-पूल वदम्बक छाह ॥
कल शत व्रज-नय-बाला ।
पेखलु जनु यिर विजुरिक माला ॥

तेहस मात्रा की त्रिपदी—

मन्द पवन कुज भवन
कुमुम-नाय-माधुरी ।
मदन राज नव समाज
भ्रमर भ्रमरि-चातुरी ॥

चौदह अक्षर का प्यार—

प्रति अग कौन विधि निरमित्ति बिसे ।
देखिते देखिते कत भमिजा बरिये ॥
मलु मलु किया रूप देखिनु स्वपने ।
खाइते गुइते मोर लागियाछे मने ॥

- ग्यारह अक्षर वाली एकावली—

अपहय तुआ मुरली धुनि ।
सालसा बाइल गवद गुनि ॥
किरने ए रूप देखिपा सेह ।
उदवेगे धनि ना धरे देह ॥

बीस अक्षर वाली लघु त्रिपदी—

बदम्बेर बने पाके कौन जने
वेमन गवद आसि ।
एक आचम्बिते थकणर पथ
मरमे रहल पति ॥

षामाली छन्द का उदाहरण—

आर मुग्धाए आला सइ
गौर भावेर कथा ।
कौनर भितर कुल-बधू
बाइया आहुस तथा ॥

हलदि वाँदिते गोरी
 वसिल जतने ।
 हलदि-वरन गोरा चाँद
 पड्या गेल मने ॥
 किसेर राधन-किसेर बाड़न
 किसेर हलदि बाँटा
 आंखिर जले बुक भिजिल
 भास्या गेल पाटा ॥

मिश्र त्रिपदी—

तखनि बलिलुं तोरे जाइस ना जमुना-तीरे
 चाइस ना से कदम्बेर तले ।
 नुमि एखन केन बा बोल शुन नागो बड़ि माइ
 गा मोर केमन केमन करे ॥

वंगला की पदावली और ब्रजभाषा के पदों में अलंकार—

वंगला के पदावली-साहित्य में नाना अर्थालंकारों और शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है। अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि शब्दालंकार तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक आदि अर्थालंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। इन अलंकारों का प्रयोग अभ्यासपूर्वक नहीं किया गया है। वे अपने आप ही सहज भाव से आते गए हैं। ब्रजभाषा के भक्त कवियों के लिये भी यही बात कही जा सकती है। सूरदास के पदों में उपमाएं उत्प्रेक्षाएँ एक-पर-एक आती जाती हैं फिर भी लगता है कि जैसे भक्त कवि प्रयत्न करने पर भी, उन अलंकारों की सहायता लेने पर भी जो कुछ कहना चाहता था वह नहीं कह सकता, जैसे उसमें अतृप्ति बनी ही रहती है।

ब्रजभाषा के पदों के छंद—

ब्रजभाषा के वैष्णव-कवियों ने अधिकांश गेय पदों की रचना की है। इस गेयता का ध्यान पद-रचना के समय उन्होंने बराबर रखा है। यही कारण है कि सब समय छंद के नियमों का पालन करने का आग्रह नहीं दीख पड़ता। यति भग दोष तो प्रायः ही देखने को मिल जाता है लेकिन गाने में यह दोष नहीं रह जाता। विभिन्न रागों के पद इन भक्त कवियों ने लिखे हैं। इन पदों में टोक या ध्रुव जोड़ दिए गए हैं। संगीत को ध्यान में रखकर ऐसा

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी :

अकबरी दरवार के हिन्दी कवि—डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण स० २००७ वि० ।

अष्टछाप : —सम्पादक पो० कण्ठमणि शास्त्री, प्रकाशक पो० कण्ठमणि शास्त्री, सचालक विद्याविभाग, काकरोली, द्वितीय संस्करण स० २००९ वि० ।

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (भाग १, भाग २) —डा० दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग । प्रथम संस्करण, स० २००४ वि० ।

अष्टछाप-परिचय : —प्रभुदयाल मीत्तल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस, मथुरा । द्वितीय संस्करण, सं २००६ वि० ।

असमिया साहित्य की रूपरेखा —लेखक विरचिकुमार वरुआ, अनुवादक अध्यापक कमल नारायण, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी, आसाम ।

उत्तरी भारत की संत परंपरा :—परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग, स० २००८ वि० ।

उद्धव-शतक : —जगन्नाथ दास रत्नाकर, प्रकाशक इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, १९५४ ई० ।

कविता-कौमुदी (भाग १) : —रामनरेण त्रिपाठी, हिन्दी मंदिर प्रयाग, छठा संस्करण, स० १९९० वि० ।

कीर्तन-संग्रह : —सकलन कर्ता, लल्लू भाई, छगनलाल देसाई, अहमदाबाद, संस्करण १९८४ वि० ।

कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा—शिवप्रसाद सिंह, प्रकाशक साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् १९५५ ई० ।

कुंभनदास : —सम्पादक गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा, पो० कण्ठमणि शास्त्री, क० श्री गोकुलानंद शर्मा, प्रकाशक पो० कण्ठमणि शास्त्री, विद्याविभाग, काकरोली (राजस्थान), प्र० स० २०१० वि० ।

- गोपी प्रेम — हनुमान प्रसाद पौद्धार मुद्रक तथा प्रकाशक, घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण स० १९९१ वि० ।
- गोविंदस्वामी —संपादक गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा, पो० कण्ठ मणि शास्त्री, क० गान्गुलानद तलग प्रकाशक पा० कण्ठमणि शास्त्री, विद्याविभाग, काक रौली (राजस्थान) प्रथमावृत्ति स० २००८ वि० ।
- घनानन्द-कवित्त —सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक सरस्वती मंदिर, जतनवर, बनारस ।
द्वितीय संस्करण स० २००७ वि० ।
- घौरासी घणवतन की घात —प्रकाशक लक्ष्मी वकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।
स० १९८५ वि० ।
- छीतस्वामी —सम्पादक गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा, पा० श्री कण्ठमणि शास्त्री, क० श्री गोकुलानद शर्मा, प्रकाशक पो० कण्ठमणि शास्त्री, विद्या विभाग काकरौली (राजस्थान) । प्रथम संस्करण स० २०१२ वि० ।
- डोला माहुरा वृहा —सम्पादक श्री रामसिंह श्री सूयकरण पारीक तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी प्रकाशक, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, स १९९१ वि० ।
- तामिल और उत्तका साहित्य —श्री पूणसोमसुन्दरम् सम्पादक, क्षेमचंद्र 'सुमन', राजकमल पब्लिकेशन लिमिटेड बम्बई द्वारा प्रकाशित ।
- तुलसी-ग्रन्थावली (२) —सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल भगवानदीन, ब्रज रत्नदास काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, पहला संस्करण, स० १९८० वि० ।
- वेव-वशन —श्री हरदयालु सिंह प्रकाशक इडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग १९४१ ई० ।

- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—प्रथम खंड : गोस्वामी हरिराय जी प्रणीत,
संपादक, गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा तथा द्वारका
दाम परीख, प्रकाशक, युद्धाद्वैत एकेडमी,
काकरीली, प्रथम संस्करण, स० २००८ वि० ।
- वही ---द्वि० खण्ड-प्रथम संस्करण स० २००९ वि० ।
- वही ---तृतीय खण्ड-प्रथम संस्करण स० २०१० वि० ।
- ध्रुवदास-ग्रन्थावली ---संपादक तथा प्रकाशक रामकृष्ण वर्मा,
भारतजीवन प्रेस, बनारस सिटी ।
- नन्ददास (प्रथम और द्वि० भाग) ---संपादक उमाशंकर शुक्ल,
प्रकाशक-प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ।
प्रथम संस्करण सन् १९४२ ई० ।
- नन्ददास-ग्रन्थावली ---संपादक ब्रजरत्नदास,
प्रकाशक काजी नागरीप्रचारिणी सभा, स०
२००६ वि० ।
- नवधा भक्ति : ---जयदयाल गोयन्दका,
मुद्रक और प्रकाशक-धनश्यामदास जालान,
गीता प्रेस, गोरखपुर, स० १९९४ वि० ।
- नागर समुच्चय : ---नागरीदास कृत, प्रकाशक प० श्रीधर शिव-
लाल जी, ज्ञान सागर प्रेस, मुम्बई, सवत्
१९९५ वि० ।
- निम्बार्क माधुरी : ---ब्रह्मचारि विहारि शरण, प्रकाशक वृन्दावन,
स० १९९७ वि० ।
- पंचमंजरी : --- (रसमंजरी, अनेकार्थं मंजरी, मानमंजरी या
नाममाला, विरह मंजरी तथा रूप मंजरी)
प्रकाशक बलदेवदास करसन दास कीर्तनियाँ,
सरस्वती प्रेस, मुम्बई, संस्करण स० १९७३
वि० ।
- पुरानी हिन्दी : ---चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रकाशक नागरी प्रचा-
रिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण स०
२००५ वि० ।
- पुष्टिमार्गीय दो सौ बावन
वैष्णवन की वार्ता : ---रामदास जी सम्पादित, प्रकाशक—लक्ष्मी
वेकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, स० १९८८ वि० ।

- पृथ्वीराजरासो — चंदबरदाई — सम्पादक मोहनलाल विष्णुलाल पडया
राधाकृष्णदास और श्यामसुंदर दास,
नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला, क्रमांक ४
१९०४ ई० ।
- प्राचीन वार्ता रहस्य (१) — सम्पादक द्वारकादाम पुरुपोत्तमदास परित,
प्रकाशक श्रीविद्याविभाग काकरोली,
प्रथमा वृत्ति स० २००० वि० ।
- प्रेमलता अर्थात् श्रीहितहरिवंश
जी रचित 'चौरासी पद' — आगरा अब्दुल उलाही प्रेस में छापा गया ।
स० १९४५ वि० ।
- प्रेमवाटिका — सम्पादक किशोरीलाल गोस्वामी काशी हरि
प्रकाश मंत्रालय में मुद्रित ।
- बिहारी रत्नाकर — जगन्नाथदास रत्नाकर प्रयागर
प्रकाशन शिवाला बनारस । नवीन संस्करण,
१९५१ ई० ।
- बुद्ध-चरित (काव्य) — सर एडविन आनल्ड के 'लाइट आफ गीया'
के आधार पर रामचंद्रशुक्ल वृत्त, प्रकाशक
काशी नागरीप्रचारिणी समा, स १९९५ वि० ।
- ब्रजभाषा — धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहा
बाद, प्रथम संस्करण, १९५४ ई० ।
- ब्रजभाषा का व्याकरण — प० किशोरीदास वाजपेयी, प्रकाशक हिमालय
एजेन्सा बनारस (हरिद्वार) ।
- ब्रजभाषुरीसार — सम्पादक वियोगी हरि, प्रकाशक हिन्दी
साहित्य सम्मेलन प्रयाग अष्टम संस्करण
स० २००६ वि० ।
- ब्रजलोक सस्कृति — संपादक सत्येन्द्र, प्रकाशक ब्रज-साहित्य मंडल,
मथुरा मूर जयन्ती स० २००५ वि० ।
- ब्रज विहार — नारायण स्वामी, प्रकाशक श्री कृष्णदास
आत्मज शंठ सेमराज, वैकटेश्वर प्रेस, बबई
स० १९५० वि० ।

- भक्त कवि व्यास जी —वासुदेव गोस्वामी, सम्पादक, प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेम, मथुरा, प्रथम-संस्करण स० २००९ वि० ।
- भक्तनामावली : —ध्रुवदास कृत, सम्पादक राधाकृष्ण, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०१ ई० ।
- भक्तमाल : —भक्ति मुधास्वाद तिलक सहित, प्रकाशक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, दूसरी बार, सन् १९२६ ई० ।
- भगवत रसिक की वाणी —वृन्दावन निवासी महन्त स्वामी भगवानदास जू की आज्ञानुसार लखनऊ गणेशगज निवामि केदारनाथ शालीग्राम वैद्य ने ब्राह्मण प्रेस नौवरा कानपुर में मुद्रित कराय प्रकाशित किया ।
- भगवत संप्रदाय —वलदेव उपाध्याय, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण सं० २०१० वि० ।
- भारत का धार्मिक इतिहास —प० शिवशंकर मिश्र, प्रकाशक—रिखव दास वाहिती, दुर्गाप्रेस, कलकत्ता ।
- भारत की चित्रकला —रायकृष्णदास, भारतीय दर्पण ग्रन्थमाला, भारती भटार, प्रयाग । स० २००७ वि० ।
- भारतवर्ष और वैष्णवता —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रकाशक श्री वैष्णव साधु सुधारिणी सभा, मन्त्री भवन, बडोदा, १९१० ई० ।
- भारतीय आर्यभाषा और हिंदी —डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, प्रकाशक, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई, प्रथम संस्करण, १९५४ ई० ।
- भारतीय ईश्वरवाद —श्री पाण्डेय रामावतार शर्मा, सन् १९३६ ई० ।
- भारतीय दर्शन —वलदेव उपाध्याय, प्रकाशक—शारदा मन्दिर, २।१७ गणेश दीक्षित लेन, बनारस ।
- भारतीय मूर्तिकला —रायकृष्णदास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, स० १९९६ वि० ।

- भारते बु प्रयावली (दूसरा खंड)--सपादक राजरत्नदास, प्रकाशक--नागरीप्रचारिणी सभा काशी सं० १९९१ वि० ।
- भ्रमरगीत-सार सपादक, आचार्य रामचन्द्र गुबल, प्रकाशक--गोपालदास सुन्दरदास साहित्य-सेवा-मदन, बनारस, चतुर्थ संस्करण सं० १९९० वि० ।
- मध्यकालीन धर्म-साधना —प० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक--साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९५२ ई० ।
- मध्यकालीन हिंदी कवयित्रीया —सावित्री सिन्हा, आत्मा राम एंड सन्स दिल्ली प्रथम संस्करण, १९५३ सन ई० ।
- मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी)—हरिहर निवास द्विवेदा, प्रकाशक--उज्जय द्विवेदी, विद्यामन्दिर प्रकाशन, प्रथम संस्करण सं० २०१२ वि० ।
- महावाणी —हरिव्यास देवाचार्य सम्पादक श्री निम्बाक-माधुरी तथा श्री निम्बाक मयूख, प्रकाशक ब्रह्मचारी विहारी गण, वृन्दावन सं० २००८ वि० ।
- मिश्रवधु विनोद (१) —गणेश विहारी मिश्र, श्यामविहारो मिश्र, गणदेव विहारी, मिश्र, प्रकाशक--गंगा पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ । तृतीय संस्करण सं० १९८२ वि० ।
- वही (२) —द्वि० बार, सं० १९८४ वि० ।
- वही (३) —द्वि० वृत्ति सं० १९८५ वि० ।
- मुगल बादशाहों की हिंदी —चन्द्रबली पाण्डेय, प्रकाशक काशी नागरी प्रचारिणी सभा सवत् १९९७ वि० ।
- मूल गोसाइ चरित —वेणीमाधवदास, प्रकाशक-नीता प्रेस गोरखपुर सवत् १९९१ वि० ।
- मुगल शतक —भट्ट देवाचार्य, प्रकाशक म० प० श्रीग्रज-विहारी गण मु० मुपटा, पा० मऊ जि० गया, वि० सं० २००० वि० ।
- रसखान पदावली —सप्रहर्ता श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी प्रकाशक--हिन्दी प्रेस प्रयाग ।

रसिक गोविन्द और

उनकी कविता

—प० बटुकनाथ शर्मा तथा प० बलदेव उपाध्याय । प्रकाशक—बलिया-हिन्दी-प्रचारिणी-सभा, स० १९८३ वि० ।

राजस्थान का पिंगल साहित्य

—प० मोतीलाल मेनारिया, प्रकाशक हितैपी पुस्तक भंडार, उदयपुर, प्रथम सम्करण, सन् १९५२ ई० ।

राजस्थानी भाषा और साहित्य—

प० मोतीलाल मेनारिया, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

रामचरित मानस

—तुलसीदास, संपादक श्री शंभुनारायण चौबे, काशीनागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण, स० २००५ वि० ।

रासविलास अर्थात् चौबीस छंद—

श्रीवृन्दावन दास जी कृत, मथुरा में श्याम, काशी में लाला श्याम लाल के प्रबन्ध से छपा, स० १९४६ वि० ।

रूपक रहस्य

—श्यामसुन्दर दास, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, चतुर्थ संस्करण, स० २००८ वि० ।

रघुरस कलिका (प्रथम भाग)

—यह पुस्तक लखनऊ के समर हिन्द यत्रालय में छपी, स० १९३५ वि० ।

विद्यापति की पदावली

—सकल कर्ता रामवृक्ष बेनीपुरी, शोधक गगानन्द सिंह, पुस्तक भंडार, पटना और लहरिया सराय ।

विभूतिमयी ब्रजभाषा

—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाम महात्म्य कार्यालय (ब्रजसाहित्य ग्रन्थमाला) ।

विरह लीला

—कवि आनंदधन कृत, सम्पादक काशी प्रसाद जायसवाल, प्रकाशक काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९०७ ई० ।

वैष्णवधर्म

—परशुराम चतुर्वेदी, विवेक प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५३ सन् ई० ।

शिवसिंह सरोज

—शिवसिंह सेंगर द्वारा सगृहीत, स० १९४० ।

- श्रीराधा-सुधा-शतक
—हृष रचिन, हरिदचन्द्र चन्द्रिका से उद्धृत
हाकर और ग्रन्थ के मुख्य सम्पादक श्री बाबू
हरिदचन्द्र जी भारतलक्ष्मी की छापा लेकर और
उन्ही क द्वारा गुद्ध करके बाबू हमीर सिंह ने
हरिप्रकाश मशालय में मुद्रित किया।
- श्रीलाइ सागर
—चाचा हित वन्द्यावन दास प्रकाशक लाला
जुगल विशार काशीराम राहतक मण्डी
(पूव पहाव) म० २०११ वि०।
- सगीत रागकल्पद्रुम
—मवलन कर्ता वृष्णानन्द व्यासदेव, सम्पादक
नगोदनाथ वमु प्रकाशक वगीप साहित्य
परिषद् कलकत्ता, १०१४, १९१६।
- सम्प्रदाय प्रदीपालोक
(सम्प्रदाय प्रदीप का भावानुवाद)
—अनुवादक पा० कण्ठमणि गहनी प्रकाशक
विद्या विभाग, काकराली।
- सरसमजावली
—सहचरी शरण श्रुत, वृन्दावन निवासी महन्त
स्वामी भगवनदास जी का आगानुसार बरप
नौपडा बानपुरने हायमण्ड जुबला प्रेस में
छपवाकर प्रकाशित किया, सन् १९०५ ई०।
- सुजान रसखान
—किशारीलाल गोस्वामी, सम्पादक आय पुस्त
कालय आरा द्वारा संपादित काशी, भारत
जावन प्रेस में मुद्रित सन् १८९२ ई०।
- सूरदास
—डा० अजेवर वमा, प्रकाशक हिन्द्या परिषद्
विश्वविद्यालय प्रयाग, परिर्वाचन सस्वरण,
१९५० ई०।
- सूर निजय
—द्वारका दास परोख तथा प्रमुन्याल मीतल,
प्रकाशक अग्रवाल प्रस मयुग, द्वितीय
मस्वरण स० २००८ वि०।
- सूर सागर (१)
—सम्पादक श्री मन्मथार बाब्रदया, प्रकाशक
काशी नागरीप्रकाशिणी उभा, मस्वरण स०
२००९।
- सूर (२)
—प्रथम मस्वरण म० २००७ वि०।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कार्य विवरण दूसरा भाग ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग ।

पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ — प्रकाशक अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मञ्ज, मथुरा, स० २०१० वि० ।

शुक्ल (रविशंकर) अभिनन्दन ग्रन्थ — प्रकाशक रामगोपाल माहेश्वरी, प्रधान मंत्री, मध्यप्रदेश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन ।

हस्तलिखित ग्रन्थ और खोज रिपोर्टें—

छद्म पोडसी — श्री वृन्दावनदास कृत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ५७७।१८ ।

जुगलसत (युगल शतक) — श्री भट्ट, काशी नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या २७९९।१६९६ ।

तेरहो समय प्रबन्ध पद बन्ध (कृष्ण लीला) — श्री वृन्दावनदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या २८८०।१७६७ ।

वाणिया (सखी सम्प्रदाय के कवियों की स्फुट वाणियाँ)

राम-सागर — काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ३७१।२६९ ।

हित-चीरासी — परशुराम कृत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ६८०।४९२ ।

हित-चीरासी — हित हरिवंश कृत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ७३०।५३० ।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी । खोज रिपोर्ट्स—काशी ।

वंगला, आसामी, उड़िया :

अकिया-नाट (आसामी) — विरचि कुमार बडुआ

अचिन्त्यभेदाभेदवाद — श्री सुन्दरानन्द विद्याविनोद, गौड़ीय मठ, बागवाजार कलकत्ता से प्रकाशित, १३५७ वगोव्द ।

अप्रकाशित पद-रत्नावली — सम्पादक सतीशचन्द्रराय, प्रकाशक—श्री यतीनचन्द्र राय, एम० ए० साहाजादपुर पो० (पावना) ।

- क्षणदा गीतचिन्तामणि — विश्वनाथ चरणरत्नो व्याख्याकार गधिरामनाथ
गाम्बामी प्रकाशक काशीनाथ राय बल्लभन
१३१५ बंगाल ।
- गौडीय वैष्णव तत्त्व — श्री गणेश्वर सायाल, प्रकाशक श्री गणेश्वर
सायाल, ७ बालिंगज स्टेशन रोड, बंगला
१३५३ बंगाल ।
- गौडीय वैष्णव रसेर अलौकिकत्व — उमा राम, प्रकाशक मुरारीमाहा
१६८ रमंगदत्त स्ट्रीट बल्लभता १३५८
बंगाल ।
- गौडीय वैष्णव साहित्य — हरिदास प्रकाशक श्रीधाम नवद्वीप, हरिवाल
कुटीर ४६२ चतयाबद ।
- गौरपदतरंगिणी — सवलनकता जगद्वधु भद्र, प्रकाशक वगीय
साहित्य परिषद, बल्लभता, १३१० बंगाल ।
- घण्टीदास पदावली — सम्पादित अक्षय चन्द्र सरकार, साधारणी
जत्रे, श्री नन्लाल बसु द्वारा मुद्रित और
प्रकाशित चुचुडा, १२५८ बंगाल ।
- घण्टीदास पदावली — श्री हरकृष्ण मुखोपाध्याय तथा श्री सुनीति
कुमार चट्टोपाध्याय द्वारा सम्पादित प्रकाशक
बंगाल साहित्य परिषद्, मन्डिर १३४१
बंगाल ।
- चिठि पत्रे समाज चित्र (२ भाग) — श्री पचानन मठल, प्रकाशक विश्वभारता
ग्रन्थन विभाग ६।३ द्वारकानाथ ठाकुरलन
बल्लभता १९५३ ई० ।
- चतुर्थ चरितामृत (१) — कृष्णदास कविराज गास्वामी सम्पादक
राधागाविदनाथ सहायित और परिवर्द्धित
तृतीय संस्करण भक्तिप्रथ प्रचार भण्डार
११ गुरेन ठाकुर ग बालिंगज, बल्लभता
१३५५ बंगाल ।
- | | | | | |
|------------|-----|---|-----|--------|
| यही | (२) | — | वही | १३५६ |
| यही | (३) | — | वही | १३५७ |
| यही | (४) | — | वही | १३५९ " |
| यही भूमिका | | — | वही | १३५५ |

- चैतन्य भागवत — वृन्दावन दान, सम्पादक अनुल्क तृप्य गोस्वामी, कलकत्ता ४१८ चैतन्यावद् ।
- चैतन्य मंगल — जयानन्द, सम्पादक सनेन्द्रनाथ यमु, जालीदान नाग, प्रकाशक—वर्गीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता. १९०५ ई० ।
- चैतन्य मंगल — दोचन्द्रदास, भक्ति भूषण श्री मृणाळ कान्ति घोष सम्पादित ।
- जूलन गीति — श्रीवीरचन्द्र, नूतन इक्की लिखित यत्र में मुद्रित, १३०० त्रिपुरावद् ।
- नेपाले वांगला नाटक — सम्पादक श्री ननीगोपाल वृन्दोपाध्याय, प्रकाशक—रामनमठ सिंह वर्गीय-साहित्य-परिषद् मद्रिद २४३११ अथर मार्कुलान रोड कलकत्ता, १३२४ वगावद् ।
- पंच भाणिक्य — काशीप्रसन्न सेन गुप्त विद्याभूषण, प्रकाशित १३०० त्रिपुरावद् में ।
- पञ्चकल्पतरु (१) — मरुत्तन वैष्णवदास सम्पादक ननीगचन्द्र राय, प्रकाशक—वर्गीय साहित्य परिषद् कलकत्ता, १३२२ वगावद् ।
- वही (२) — वही १३२५ वगावद्
- वही (३) — वही १३३० ”
- वही (४) — वही १३३४ ”
- वही परिशिष्ट — वही १३३८ ,
- पदावली माधुर्य — श्री दीनेज चन्द्र सेन पब्लिशिंग हाउस, ६१ वडवाजार स्ट्रीट, कलकत्ता. १३४४ वगावद् ।
- पदामृत माधुरी (चार खंड) — नवद्वीप त्रजवामी तथा सनेन्द्रनाथ मित्र मक-लित, प्रकाशक गुरुदाम चट्टोपाध्याय कलकत्ता ।
- पदामृत समुद्र — राधामोहन द्वारा सकलित, प्रकाशक रामदेव मिश्र, द्वितीय मस्करण १३१५ वगावद् ।
- प्राचीन गद्य पद्यादर्श (उड़िया) — सम्पादक राय साहेब आर्त्तवल्लभ महान्ति, प्रकाशक प्राची समिति, कटक, १९३२ ई० ।
- वंगभाषा औ साहित्य — दिनेजचन्द्र सेन, प्रकाशक—गुरुदास चट्टोपा-

ध्याय एण्ड मन्म, बलकृता ।

- बंग साहित्य परिचय (खण्ड २) —दीनेशचन्द्र सन, कलकत्ता विश्वविद्यालय
१९१४ ईसवी ।
- बङ्ग-गीत (आसामी) —श्री सङ्कट और थामायक द्वारा रचित,
नूतन तागण, बरकट की कम्पनी के श्री
गंगाधर चरकर जी द्वारा प्रकाशित जारहाट
आसाम ।
- बलरामदास —मपाक श्री रमणीमाहन मल्लिक, कालिका
यत्र १३०६ बंगाव ।
- बागलाचरित प्रथे श्री चतय —श्री गिरिग शर राय चौधरा कलकत्ता
विश्वविद्यालय से प्रकाशित, १९४९ ई० ।
- बागलार चणव धम —महामहापाध्याय प० प्रमथनाय तन्भूषण
कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित १९३९
मन् ६० ।
- बागला साहित्ये इतिहास (प्रथम खण्ड) —श्री मुकुमा मन प्रकाश उपद्र चन् भट्टा-
चाय माडा बुक एजेंसी कलकत्ता, द्वितीय
संस्करण १०४८ ई० ।
- बांगालीर इतिहास (आदिपय) —नाहार रजन राय, बुक एम्पारियम कलकत्ता
१३५६ बंगाव ।
- विद्यापति गोष्ठी ओ गीति त्रिगतिका —श्री मुकुमा ना गीतिय गमा यज्ञमान,
१९८७ ई० ।
- बणव कविता श्री तपन माहन चट्टागार्यार द्वारा संगृहीत
ओर सम्पादि १३२८ बंगाव ।
- बलक-यशायली (धवन) —मपाक गानग रद्र मंग गमेद्र नाथ मि र
प्रकाशक कलकत्ता विश्वविद्यालय १०३७०१
- बलकपरावली (बागुबेध घोष क पद) —कलक-भूतान्तानि धाय प्रकाशक बंगाल
साहित्य परिचय कलकत्ता १३१० बंगाव ।
- बलक धरना —श्री श्री तपन शम गन्नाथ गिदयद्र मंग ।
- बलक महाभारत परावली —प्रकाशक श्री उगद्वारा तुलागणाय बमुना
साहित्य मन्त्र कलकत्ता ।

- वैष्णव रस साहित्य — खगेन्द्रनाथ मिश्र, प्रकाशक कमला बुक डिपो, कलकत्ता, १३५३ वगावद् ।
- वैष्णव साहित्य — मुशील कुमार चक्रवर्ती, कलकत्ता १३३२ वगावद् ।
- वैष्णवसाहित्य प्रवेशिका — श्री हिमाशु चन्द्र चौधरी, प्रकाशक जेनरल, प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स लिमिटेड, ११९ धर्म-तला स्ट्रीट, कलकत्ता, १३५८ वगावद् ।
- भक्तिर प्राण — श्री भागवत कुमार योत्स्वामी, प्रकाशक—श्री० वैदर्जी एण्ड कंपनी, २५ कर्नवालिन स्ट्रीट कलकत्ता ।
- भक्ति रत्नाकर — नरहरि चन्द्रवर्ती, नम्पादक रामनारायण विद्यागन्ध, प्रकाशक—वर्गीय साहित्य परिषद् कलकत्ता ।
- भक्ति-रस — विद्यान प्रकाश गंगोपाध्याय, कलकत्ता ४ से प्रकाशित ।
- भागवत-धर्म (२ भाग) — श्री कुलदा प्रसाद मल्लिक, प्रकाशक—तारादान भट्टाचार्य, नदीया प्रचार सपिन्धि, नवद्वीप १३२६ वगावद् ।
- भानुसिंहेर पदावली — रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रकाशक—श्री पुलिन विहारी सेन, त्रिविभारती, ६।३ द्वारकानाथ ठाकुरलेन, कलकत्ता, १३५८ वगावद् ।
- भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय (१) — अक्षय कुमार दत्त, द्वितीय मस्करण, नूतन सस्कृत यत्र, १८८८ ई० ।
- वही (२) — वही, द्वितीय सस्करण, संस्कृत प्रेस १३१४ वगावद् ।
- भारतीय मध्यजुगे साधनार धारा — श्री क्षितिमोहन सेन, कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित १९३० ई० ।
- भाषार इतिवृत्त — श्री सुकुमार सेन, प्रकाशक—वर्द्धमान साहित्य सभा, १९५० ई० ।
- मध्यजुगेर बांगला साहित्य — तुलसी प्रसाद वन्दोपाध्याय, दास गुप्ता एण्ड कंपनी लिमिटेड, ५४-३ क्लेज स्ट्रीट, कलकत्ता १२, १३५८ वगावद् ।

गाविन्दीनामत	—श्री कृष्णदास ऋषि रामचूत, श्री कृष्णपन्डाम द्वारा प्रकाशित, कुमिल्ला १३३०, उगाव्द ।
गीत-गोविन्द	—जयदेव कृत भागवत पुस्तकालय गायघाट, बनारस ।
तत्त्वाय निबन्ध शास्त्राद्य प्रकरण	—प्रवामक प० श्रीधर गिबलाल जा, बम्बई, स० १९६१ वि ।
दशायतार चरित	—क्षेमेन्द्र विरचित, प० दुर्गाप्रसाद और बाणा नाथ पहरण परब द्वारा सम्पादित बम्बई १८९१ ई० ।
धर्मपालाक	—आनन्दवदनासायचूत, प्रकाशित श्रीरामा मस्वृत्त मारोजि, बनारस १९४० ई० ।
नागव भक्ति सूत्र	—प्रकाशक, गीता प्रेस, गोरगपुर ।
पद्मपुराण	—आनन्दनाथ मद्रासाय १८२६ ई० ।
पञ्चायला	—श्रीरामनाथनाथी कृत, श्रीमन्त गुरीनाथ मद्रासाय द्वारा सम्पादित श्री केशीनाथ राय द्वारा प्रकाशित, टापा ।
प्रमेयस्तथायली	—कान्हेय विद्या भूषण, संपादक अण्णय कुमार गम्भारानी प्रकाशक सरस्वती गार्हिय परिषद् १९०७ ई० ।
बुद्ध चरित	—जयवर्षा भाग १ सम्पादक ई० एच० जनरल वपटिग्ट मिगन प्रम बन्दरसा १९३५ ई० ।
ब्रह्मवैवर्तपुराण	—सम्पादक पंचानन तबल्ल, संपादकी कर्णा लय बन्दरसा १८२७ ई० ।
बुद्ध चरित	—श्रीराम जीव गाम्भारी अनुपादक (अष्टोत्तरी) भक्ति विद्यालय गम्भारी प्रकाशक विद्या गाम्भी, भक्ति हृदय मद्रासा मद्रासा १९३२ ई० ।
अश्वत्थामासगीत	—श्रीराम जीव गाम्भारी श्री हरिनाथ द्वारा संपादित प्रथम संस्करण १९४८ ई० ।
ब्रह्मवैवर्त	—श्रीराम जीव गाम्भारी संपादक श्रीराम जीव गाम्भारी मद्रासा १८२७ ई० ।

बंगला पत्रिकाएँ -

उत्तरा

प्रदीप

प्रयामी

विश्वभारती पत्रिका

समालोचनी

साहित्य परिषत् पत्रिका

हस्तलिखित ग्रन्थ --

पदमेरुग्रन्थ (पदावली संग्रह-ग्रन्थ) -- विश्वभारती में मुरदित, हस्तलिखित ग्रन्थ
नम्बरा ५५० ।

पद-नग्नह (पदावली संग्रह-ग्रन्थ) -- विश्वभारती में मुरदित, हस्तलिखित ग्रन्थ
नम्बरा २३४६ ।

रूप गोस्वामी के ब्रजभाषा के दोहे -- विश्वभारती में मुरदित, हस्तलिखित ग्रन्थ
नम्बरा ४९६ ।

द्विज गंगाराम का पद -- विश्वभारती में मुरदित, हस्तलिखित ग्रन्थ
नम्बरा २६९ ।

अन्य पदों के फुटकल संग्रह ।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश --

अग्निपुराण -- संपादक, पचानन तर्करत्न, बंगवामी कार्यालय,
कलकत्ता १३१४ बंगवाद ।

अणुभाष्य (१, २) -- बनारस संस्कृत निरीक्ष, प्रकाशक, ब्रजवामी
दाम एण्ट कंपनी बनारस, १९०७ ई० ।

अहिर्बुध्न्य-संहिता (पाचरात्र आगम) प्रथम भाग -- सम्पादक एम०डी० रामानुजाचार्य, अद्वयार
लाईब्रेरी, अद्वयार, मद्रास, १९१६ ई० ।

उज्वलनोलमणि -- श्री रूपगोस्वामी श्रीमत् पुरीदास महाशय
द्वारा सम्पादित, श्री शमीनाथ राय द्वारा
प्रकाशित, १९४६ ई० ।

कवोद्भवचनसमुच्चय -- एफ० डब्ल्यु टामस द्वारा सम्पादित, एशिया-
टिक सोसायिटी द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता
१९१२ ई० ।

गोपालतापनी उपनिषत् -- सम्पादक और प्रकाशक श्री हरिदास दास ।

- मेघदूत —महाकवि कालिदास, प्रकाशक-नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ १९१७ ई० ।
- राधा सुधानिधि हितहरिवंश (संस्कृत में) हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन बाबा हितदास ने नाद ग्राम (जिला मथुरा ने किया) ।
- लघुभागवतामृत —श्रीरूपगोस्वामी, श्री बलाई चाँद गोस्वामी तथा श्री अतुलकृष्ण गोस्वामी द्वारा सम्पादित, श्रीमहाप्रभु के श्रीमंदिर से प्रकाशित, कलकत्ता, १३०४ बंगाल ।
- विष्णुपुराण —सम्पादक जीवानन्द विद्यासागर, नरस्वती प्रेस १८८२ ई० ।
- बृहत्संहिता —गणेश आश्रम द्वारा संपादित, प्रकाशक, आनन्दाश्रम, १९१२ ई० ।
- वेदान्तकामधेनु (दशश्लोकी) —निम्बार्काचार्य रचित, श्री छवीलेलाल गोस्वामी कृत हिन्दी भाषा-टीका-सहित, तृतीयवार, श्रीसुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से छपा ।
- शांडिल्य भक्ति सूत्र —व्याख्या, भक्ति-चन्द्रिका, सम्पादक महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज, गवर्नमेंट संस्कृत कालिज, बनारस ।
- श्रीकृष्ण कर्णामृत —लीलांगुल विल्वमंगल ठाकुर, डा० सुशील कुमार दे द्वारा सम्पादित ।
- श्रीभाष्य —दुर्गाचरण साख्यवेदान्त तीर्थ द्वारा अनु० और सम्पादित, वगीय साहित्य परिषद्, १३२२ बंगाल ।
- श्रीमद् ब्रह्मसूत्रभाष्य —मध्वाचार्य, सम्पादक आर-राववेन्द्राचार्य भाग १, मैसोर गवर्नमेंट ब्रान्च प्रेस १९११ ई० ।
- श्री मद्भगवद्गीता —साधारण भाषा टीका सहित, प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, बयालीसवा संस्करण स० २००० वि० ।
- श्री मद्भागवत महापुराण (दो खंड) —प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, हिन्दी व्याख्या सहित, द्वितीय संस्करण, स० २००८ वि० ।

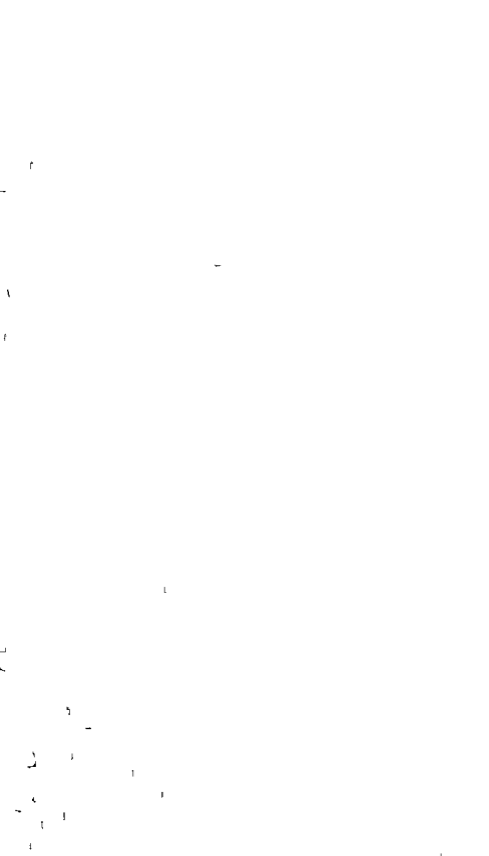
1

—

1

1

- प्राकृत व्याकरण — हेमचन्द्र, सपादक श्री० पी० एल० वैद्य,
प्रकाशक मोतीलाल व्याज्जी, १९६ भवानी
पेठ, पूना १९७८ मन् ई० ।
- उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण — दामोदरदान, भारतीय विद्या भवन, बम्बई,
स० २०१० वि० ।
- कीर्तिलता — हरप्रसाद जायन्त्री, वगशः सम्करण, १९२४
ई० ।
- चर्यागीतिपदावली — सुकुमान नेन, प्रकाशक साहित्य सभा बद्धमान,
१९५६ ई० ।
- चौद्वयान ओ दोहा — महामहोपाध्याय हर प्रसाद जायन्त्री द्वारा
सम्पादित, श्री राधा कमल मिह द्वारा
प्रकाशित, कलकत्ता १३७३ बंगाल ।
- महापुराण — पुष्पदन्त, सम्पादक श्री० पी० एल० वैद्य,
माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई ।
१९४१ ई० ।
- वर्णरत्नाकर — ज्योतिरीश्वर, नुर्मीन कुमार चटर्जी द्वारा
सम्पादित, रावल एशियाटिक सोसायटी ने
प्रकाशित कलकत्ता, १९४० ई० ।
- सन्देश रामक — कवि अब्दुल रहमान कृत, सपादक श्री जिन
विजय मुनि तथा श्री हर्नबल्लभ भावानी,
मिथी जैन ग्रन्थ माला (ग्रन्थक २२) प्रकाशक
भारतीय विद्या भवन, चाँपाठी रोड, मुम्बई,
वि० स० २००१ ।



- History of Classical Sanskrit Literature* —Sri M Krishnamachariar, Oriental Book Agency, Poona, 1937
- History of Sri Vaisnavas* —Late Mr. T. A Gopinath Rao. Government Press, Madras, 1923.
- Hymns of the Alvars* —Edited by Hooper Oxford University Press, 1929
- India Old and New* —Hopkins, New York, 1902
- Introduction to the Pāñ-carātra and the Ahirbhu-dhnya Samhita* —F Otto Schrader, Adyar Library, Adyar. Madras, 1916.
- Kṛṣṇa in Early Tamil Literature* —V R Ramchandra Dikshitar. Indian Culture, Vol IV, 1937-38
- Mathura* —A District Memoir F. S Growse, Third Edition 1833.
- Murza Khan's Grammar of Brajbhaka* —Maulana Ziauddin. Visva Bharati, Research Publication, 1935
- Modern Religions Move-ments in India* —J N Farquhar, The Macmillan Company, 1918.
- Modern Vernacular Lite-rature of Hindustan* —G. A Grierson, Asiatic Society. 57 Park Street Calcutta, 1889
- Obscure Religious Cults as Background of Bengal Litt* —Sashi Bhushan Dasgupta, Calcutta University, 1948
- Sri Vallabhacharya* —Bhai Manilal C Parekh, Shri Bhagavata Dharma Mission, Harmony House, Rajkot, India, 1943.
- Studies in Early Assa-mese Literature* —Birinchi Kumar Barua, Sri K K Barooah, Nowgong, Assam 1953
- Studies in Tamil Litera-ture and History* —V R Ramchandra Dikshitar, London, Luzac and Co, 46 Great Russell Street, W C T 1930
- The Bhakti Cult in ancient India* —Prof. Bhagabat Kumar Goswami Calcutta, 1922.



नामानुक्रमणिका

टि० = टिप्पणी

श		अनंत मोहाति	५९६
अकीया वराहट,	४२४	अन्य निचमात्मक, ३४४, ३४५ टि०,	
अतवाघ लीला	३१६	३४६ टि० ।	
अतल्लिकित	१०	अनय रमिताभरण	३४४
अधवामुर वधोपाख्यान नाट्य	४००	अनादि पातन	४०६
अक्बर १०४, १०५, १०९, ११०,		अनुसंधान समिति,	४१० टि०
१६९, २३०, २३२, २४५ २७३		अनेकाय मजरी	२१३ टि० २७५
२८१		(गी) अपभ्रंश स्तवकसू अथ रामशमा	
अरुवरी दरवार के हिंदा कवि, १०१		२९ टि० ।	
११३ टि०, ११४ टि०		अप्रकाशित पदरत्नावली, ५०८ टि०	
अक्किचन दास	४५५	५१३ टि०, ५४५ ५५० ५५१,	
अक्षयधामरदत्त ३५ टि०, २३४ टि०		५५९, ५७६ टि०, ५७७ टि०,	
अच्युतानन्द ४३३ ६३४ टि०, ४३५		५७८, ५७९ टि०, ५८१ ५८२	
टि०, ४३७, ४३८, ४३९ टि०,		५८४, ५८५, ५८६ टि०, ३२१,	
५९६ ।		६२२ ६२३ टि० ।	
अणवार संहिता	६३८	अभिनन्द	७४
अणुभाष्य, १९२ १०८ टि०, २०६		अभिनव राधावानन्द	३९९
टि०, २१३ टि० २१६ टि० ।		अभिराम ठाकुर	५९६
अदियारकुलार	६१	अमरकाय गीता	४३४
अन्त	५५८	अमीर खुमरो	१०४, १६५
अद्वैत प्रभु	३७६	अमीर सिंह गानू	३६२
अद्वैताचार्य ११८ ४३९, ४५३, ५००		अर्जुन	३१३
५१०, ५९६ ।		अजुन भजन	४२५
अद्वैतमान	८६ १५५	अथ कोइति	४३७
अधर मुत्तजी	४५० टि०	अर्ली हिन्दू अथ वी वणव फेव एण	
अनंत आचार्य	४३९ ५१०	मूवमेट, ४४३ टि० ४४६ टि०,	
अनंतदास	४३३ ४४०, ५१०	४१२ टि०, ६५३ टि० ।	

अली हिस्ट्री अन्व दी वैष्णव सेक्ट, १९ टि०, ५७ टि० ।	अष्ट देव भाषा ३२२
अलवेली अलि, ३६४, ३६५	अष्टम स्कव ४२६ टि
अलाउद्दीन होसेनगाह ४४९	अष्टयाम १००, १७५, ३०८
अवलोकितेश्वर स्तवराज ४०४	अष्टरम ५५६
अविद्याघारी गीतस्तव ४०४	अष्टरम व्याख्या ५५६
अश्वघोष ४३ टि०, ५९	अष्टविशति तत्त्व ४५१
अश्वमेध नाटक ४०६	अष्ट सखान की वार्ता २७१ टि, ५९५
अश्वनी चरित्र १०९ टि०	असमीया साहित्य में वरगीत, ४१८ टि, ४२० टि ।
अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय, १६६, २१७ टि, २२२ टि, २२५ टि, २४३ टि, २४५ टि, २४६ टि, २५७ टि, २५८ टि, २६० टि, २६२ टि, २६३ टि, २६४ टि, २६५ टि, २६९ टि, २७३ टि, २७५, ५९१ टि, ५९३ टि, ६०१ टि, ६०२ टि, ६०५ टि, ६०६ टि ।	अहिर्बुध्न्य संहिता ६ टि, ७ टि, ८ टि. आ आइने अकबरी, २४३ आईन अकबरी की भाषा वचनिका, १७५ आगम प्रमाण, १९ आगर वाली, ६२० आण्डाल, १३, १५, ६२ आत्माराम दास, ५११ आनन्द, ५७४ आनन्दघन, २९९, ३१८, ३१९, ३२० आनन्द तीर्थ, २५ आनन्ददासा विनोद, ३५७ टि आनन्द मोहन्ती ४३७ आनन्द रघुनन्दन १७५ आवस्वयोर रेलिजस कल्टस् ४४५ आर्कोओलॉजिक्ल सर्वे अन्व इण्डिया एनुअल रिपोर्ट् ९५ टि, ९६ टि आर्त्तवल्लभ महन्ती ४३२ टि. आवतर मलिक ४३८ टि.—और यशोव्रन्त की ८४ कलाएँ ४३८ टि. आगवीर २३०, २३१ आशास्तव ३५२
अष्टछाप, ३, ९४, २४३ टि, २४४ टि, २४५ टि०, २५९, २६० टि, २६५, २६६, २६७ टि, २६८, २६९ टि, २७० टि, २७३, २७४, २७८, २७९, २८२ टि, २८५, २९६, ४३३ टि ।	
अष्टछाप की वार्ता २२२ टि, २७४, ५९७ टि ।	
अष्टछाप परिचय, २२५ टि, २४३ टि, २४५ टि, २६३ टि २६४ टि, २६५ टि, २६८ टि, २६९ टि, २८१ टि, २८२, २८५ टि. २८६ टि, २८७ टि, २८८ टि, ६०१ टि ।	

आमकरण	२९३, २९४, २९५	उत्तरी भारत की सन्त परम्परा	१८३
आसामें प्राप्त प्राचीन भाषापुथिर विवरण	४२६ टि	उदय	११७ टि, ३१३ टि, ३१४ टि ३१५ टि
इ		उदय कहानी	४३४ टि, ४३५ टि, ४३७ टि, ४३८ टि, ४३९ टि
इट्रोडक्शन टु दी पाचरात्र एण्ड दी अहिबुधन्य सहिता	५ टि	उद्व दास	५३१ ५७५ ५७६
इडियन एटिक्वेरी	७१ टि ८० टि ८९ टि १५३ टि १५८ टि १६२ टि १६४ टि	उद्व दूत	५४२
इडिया, ओरड एंड यू	१८७	उद्व देवाचाय	३०८
इसायबलापेडिया अव रलिजम एण्ड एथिकम	३५ टि १७८, १८७ टि, २३४ टि	उद्व शतक	१७२
इपीरियल गजेटियर अव इण्डिया	११७ टि	उद्व सदेग	५६२
इलियाम साह	४४८	उद्व सवाद	४२६ टि, ५४२
इदक चमन	३०० २०१	उद्धारण दत्त	५९६
ई		उद्यातन मूरि	१८०
ईश्वर चद्र गुप्त	३८१	उमापति ओझा	३८७
ईश्वर दास	४३७ टि ४३८ टि, ६३९ टि	उमापति घर	७२, ७३, ७४ ४१०, ४५२
ईश्वर पुरी	२९, ३४ टि ११८	उमाशंकर शुक्ल	२७५ टि, २७६ टि २७७ टि, २७८ टि
ईश्वर सहिता	५ टि	उमा मिथ	१५६
उ		उषा हरण नाटक	४०८
उकिन यकिन प्रकरण	१५७ १८० १८१	उम्बे	६, १४
उज्ज्वल नाउमणि	४८ टि ४९ टि, ५० टि, ५१ टि ६० १८६ ४८५ ८८५ टि, ४८७ ५३३, ६०३	एवादाग स्वन्ध	४२६ टि
उत्तर राम चरित	३७०	एवादागी माहात्म्य,	२५७
उत्तरग	१० टि	एनुअल रिपोट ऑन दी सच फॉर हिंदी मॅन्युस्क्रिप्टस फार दि इयर	१९०८ ३३६ टि
४०		एरियन	१२
		एगियाटिक सोमायटी	४०५ टि
		आकारनाथ ठाकुर,	१०५ टि
		आरुनामि	३०
		आरिजिन एण्ड डेवलपमेंट अव बंगाली लिपि	१५६ टि १५६ टि
			१५८ टि, १६४ ३८४ टि

क		कान्ता कौशलि,	४३४
कठमणि शास्त्री,	२७९ टि, २८२,	कान्हु दाम,	४३०
२८५		कालिदास,	५३ टि, ५१, ५०२,
कमवध जात्रा,	८२६	कालिदाम नाथ,	५५१
कठोपनिषद्	४६३ टि	कालिदाम नाथ नगह्	५५२ टि, ५५३
कवीर,	१३५ टि, १६५, १६६,	कालिय दमन,	८२४, ४३७
३१६, ४१८		काव्य निर्णय,	१५२
कमल नारायण,	४१८ टि, ४२० टि	काव्य प्रकाश,	६८
कमलाकर पिल्लाड,	५९६,	काव्यानुशासन,	६९
कमलाकान्त दाम,	५८५	काशी नागरी प्रचारिणी मभा की मन्त्र	
करुणामय दाम,	५३६	रिपोर्ट, ३०३ टि, ३०४ टि,	
कर्णपुर,	४९४ टि, ५०२, ५५८	३२०, ३२१ टि.	
कर्णानन्द, ५३६ टि, ५४४ टि, ५४९,		काशी नागरी प्रचारिणी मभा में	
कर्णानन्द रस,	५३८	मुरक्षित वाणियाँ.	३२५ टि,
कर्त्त ह०,	१८७,	३२६ टि, ३०७, ३२९, ३४०,	
कलानिधि,	४९३	३४१	
कलिजुग रासो,	३२२	काशी प्रमाद जायसवाल,	३१९ टि
कवल दास,	६२१	(राजा) किशन सिंह,	३१३
कविता कौमुदी,	१६९	किशोर दास,	५४१, ५४२, ५४३
कवितावली,	१५१	किशोरीदास,	३३९, ३४०
कवि प्रिया की टीका,	१७४	किशोरी लाल गोस्वामी,	२९१,
कवि रजन,	५२८, ५२९,	किशोरी शरण अली,	३५७, ३५८
कविराज गोस्वामी,	४५४, ४६२,	कीर्तन गीत रत्नावली,	५५९, ५६०,
५९८, ६०३ टि, ६०५		५७६, ५८१, ५८०	
कवि वल्लभ,	५३०, ५३१, ५३२,	कीर्तन मग्नह,	५९७ टि
५३३		कीर्तना नद,	५४०, ५५१,
कवि शेखर,	५२९,	५६८ ५७६,	
कवि शेखर राय,	५२५, ५२६,	कीर्तिनाथ उपाध्याय,	३९९
५२७, ५२८		कीर्तिलता,	१५५, १५७, १५८,
कवीन्द्र परमेश्वर,	४४९	१७३, १८१, ४४६ टि,	
कवीन्द्र वचन समुच्चय,	६८, ६९,	कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा,	
७०, ९०, ४४५		१५६ टि	

कीन्ह देव	२९३	कृष्ण मंगल	४१० टि
कुज विहागी,	४०२,	कृष्ण शास्त्री	२५ टि.
कुतक,	६९	कृष्णा नंद	४५१ ६२१
कुदनलाल साह,	३४१	केलाग,	१५९
कुभनदास, ०४ १६७ २३९ टि		केलिमाला	३२४
२७०, २७१ २७२ टि २७३		केगव वादमीरी	३०३
२८५, ५९५, ५९७ ६०१		केगवनास,	१७०
, पद मग्रह १९६ टि, २०१ टि		केगव देव,	३०८
कुमार गुप्त,	१२	केगव भारती,	२९, ३४
कुल्शेकर अलवार,	१३ १७	कनेडी,	१८७ ४३० टि
कृपाराम	१८६	कोशामुर वधोपान्याय नाटक,	४०८
कृष्ण इन अर्ली तमिल लिटरेचर, ६२ टि		क्षणदा गीत चिन्तामणि	४३० टि
कृष्ण कणामत, ७७, ७८, ७९ ८०		५४५ ५५४, ५५५ टि ५६८	
४६४, ५३८,		भिति मोहन सेन, २९ टि ६५० टि	
कृष्णबाल	५७५	क्षमेद्र	८६
कृष्णान्त ताया	६२१		र
कृष्ण वात मज्जुमत्तर	५७६	मगेन्द्रनाथ मित्र, १३७ ४४७ ४७१	
कृष्ण चरित नाटक,	४०८	५०० टि	
कृष्णदास ०३ ०४, १६७ २३९ टि,		ग	
२६५, २६६, २६७ २६८ २६९,		गगादास	५५८
२७३, २८५, २८९ ५०५, ५०७		गगा मंगल	५०३,
६०१ ६०१		गगावतरण	१७२
कृष्णनास (काला)	५९६	गज निस्तारण गीता,	४३७
कृष्णदास कविगज ६६ ९४, ४२९		गणपतगाल दूवे	१०३ टि
४३५ ४५५ ४८६, ४९८, ५००,		गणपति रामचंद्र नव प्रथम, ४३० ४३१	
५३८ ६०८		गणेश,	४०८ टि
कृष्णदाग गांध्यामी	५०६	(राजा) गणेश	६८८
कृष्णनाम शान्ती	२६०	गणा विभूति टीका	४३४
कृष्ण श्व,	६०६	गदाधर,	० ६, १०६,
कृष्णदेश टाटाचाय	५९६	गलाधर दाम	५८५
कृष्ण पणामुवगिमु ५४१ ५१२ टि		गदाधर नास निवना २०५ २०६	
५६०, ५७६ ५८२ ६०१		२०८	

गदावर पङ्क्ति,	४३५	गोपाल जी महाराज,	३१३
गदावर भट्ट,	१७६, १८४, ३६६,	गोपाल चम्पू,	१८४ टि.
३६७, ३६८		गोपाल ताथनी,	३१ टि., ४७७,
गयसुकुमार रास,	१७५	४७८	
गरुड स्तम्भ,	१२	गोपालदाम,	५५३-५५६,
गल्लू गोस्वामी,	३७६	गोपाल देव,	३०८
गार्मा द तामी,	२७५	गोपाल प्रगाद शर्मा,	३४९
गाहा सत्तमई,	६७, ६८, ९०,	गोपाल भट्ट,	९०, ५५४, ६२१
४४५, ४५४		गोपाल भट्ट गोस्वामी,	५९६
गीत गोविन्द,	७४, ७५, ७६, ७७,	गोपाल विजय,	५२५, ५२९
७८ ७९, ८६, ९१, १००, १२०,		गोपीचन्द्र नाटक,	४०५
१२६, १२७, १४३, १८३, १८४,		गोपीनाथ	४९३
४०५, ४४४, ४४५, ४४६, ५५३,		गोपीनाथ कविराज, म० म०,	
५७५, ६०७,		१०, ३२७ टि०, ११६ टि०,	
गीत चन्द्रोदय,	५४३, ५६७,	३०७ टि०,	
गीत दिगम्बर,	४०५	गोपीनाथ दुर्लभ	५८३
गीत पचाशिका,	४०३ टि	गोपीनाथ राव-टी० ए०	१३ टि०
गीतार्थ संग्रह,	१९,	२३ टि०,	
गीतावली,	१५१	गोपीनाथ विजय	५२९
गुप्तगीता,	४३४	गोपी प्रेम प्रकाश	२९९
गुमाना,	३२१	गोरखनाथ	४०८
गुरु प्रणालिका,	२३०	गोरखोपाख्यान कथा	४०८
गुरुप्रमाद सेनगुप्त,	४१३	गोवर्धनदास	५७२, ५७३
गुरु भक्ति गीता,	४३३ टि., ४३८	गोवर्धनलीला,	२५७, २७५
गुण मजगी दाम,	३७६	गोवर्द्धनाचार्य,	७२
गुर्जर काव्य संग्रह,	१५७	गोविन्द,	४९६
गोकुल नाथ	२२५, २४३, ६०६	गोविन्दगति,	५९४
गोकुलानन्द,	५८०	गोविन्द घोष,	५०३, ५९५
गोकुलानन्द सेन,	५७६,	गोविन्द्र चद्र टीका,	४३९
गोणल,	१०४, १५३	गोविन्द दास,	५०६, ५५४, ५६४,
गोपाल आता,	४१८	६०१, ६१२	
गोपाल चरित,	५२९	गोविन्द दास आचार्य,	५१५

गोविन्ददास बविराज	४११, ४१२,	घ	
४९१, ५१२, ५१५ ५२५,		घन बानन्द	१५२, १७०
५२७, ५४४, ५४९ ५३०,		घन आनन्द कविता,	३१८ टि०
५५१, ५६०,		३१० टि०	
गोविन्दगति,	५४९	घनराम चक्रवर्ती,	५६०
गोविन्द दास चक्रवर्ती,	५१५	घनरामदास	५५९, ५६० ५६१,
गोविन्द रति मजरी	५४५	५६०	
गोविन्द राम	५५८	घनश्यामदास	५४४, ५४५ ५४९,
गोविन्द लीलामत,	९३ ४२९	५६८, ५६०, ५६१, ५६५	
४३९ टि०		घनश्यामदास कविराज	५१५ ५६०,
गोविन्द विलास,	५३८	घमड देव,	३०८
गोविन्द सरन देव,	३२१	घुन्गिया,	५०६
गोविन्द स्वामी, ९४ १६७ २१८ टि०		च	
२३९ टि०, २८१, २८२, २८३,		चण्डीदास, ९१, १२० १२१, १२३,	
२८४ २८५ टि०, ५९५		१२६ १०७, १२८ १३२,	
गोविन्दानन्द	५९५	१३४, १३५ १३८ १३९,	
गोविन्दानन्द ठाबुर	५८१	१४६, १४८, १८३ १८४,	
गोस्वामी,	५७ टि०	४००, ४१० ४२९, ४४५	
गोस्वामी रणठाड,	२९८	४४६ ४५४, ४५५ ४५८	
गोस्वामी विष्णुदास	१०१, १०२	५०७, ५५७	
गौरविन्दारणस,	५४३	चण्डीदास पदावला-१२७ टि०, १०८	
गौरगणोद्देश नोपिका	५०२	टि०, १२९ १३० १३१ १३४	
गौरचरित्र चितामणि	५५७	टि० १३६ टि०	
गौरपद तरंगिणी	४५३ टि०, ५३०	चण्डी मंगल-	५०३
टि०, ५५१, ५५९ ५७६		चद्रगुप्त द्वितीय	१२
गौरीदान पडित	५९६	चद्रघर गमा गुलेरी १५५ टि० १५७	
ग्राउस-एफ एम २३२ ३३७ ३४०		१६१, १६२ १६३ १८३	
प्रियमन भर अ० ज्यो० २५ टि० ३५		चद्रमोहन घाण,	१६४
टि० ८९ टि०, १५४ १७७,		चद्रवमण	४४३
१८७ २३४ टि०, ३८३		चद्रगोखर	५८०, ५८१, ५८२,
श्रीधर विहार	३००	चद्र हास	२७४ २७५
शमर अर दि हिन्दी लखेज १५९ टि०		चम्पति राय	४३०, ४३३ टि

चक्रपाणि चौधरी	५५४	४६५ टि, ८६६ ४६७, ४६८,
चतुर्भुज	५२५	४६९, ४७० टि, ४७१, ४७२,
चतुर्भुज दास ९४, १६७, २३९, २७३,		४७३ टि, ४७३, ४७८, ४८०,
२८५, २८६, २८७, २८८, ५९५,		४८१, ४८२ ४८५, ४८८, ४८९,
६०१		४९३, ४९६, ४९८, ४९९, ५०१,
चतुर्भुज दास पद्मग्रह	२०० टि,	५०२, ५०४ टि, ५३२, ५८९,
२०४ टि		५९० टि, ५९०, टि, ५९३ टि,
चतुरा तरंगिणी	४०५	५९८ टि, ५९९ टि, ६०३ टि,
चतुरदास	२३२	६०४ टि, ६०५, ६०८ टि.
चतुर्व्यूह	९	चैतन्य चन्द्रोदय कौमुदी ५५८
चतु श्लोक २२० टि., ३५२, ५९१ टि		चैतन्य चन्द्रोदय नाटक ४९४ टि,
चर्यांगीत पदावली	३८७ टि.	५५८
चान्द कवि	४३०, ४३१ टि	चैतन्य तत्त्वनाम ५५६
चिन्ता मणि	१७०	चैतन्य भागवत ९१ टि, ४५०, ४५३,
चित्रिपत्रे समाज चित्र ५६३ टि	५९३	४९६, ५००, ५०१
चिरंजीव	५१५	चैतन्य मंगल ५०१, ६०४ टि.
चुन्नी लाल	३२०	चैतन्य देव १०, २९, ७४, ८०, ९०,
चूडामणि	५७५	९४, ९८, १०१, ११२, ३६६,
चोरबरा	४२५	४०९, ४११, ४२७, ४२८, ४२९,
चौबीस छद्म	३६१ टि	४३२, ४३३, ४३५, ४३६, ४३८,
चौरासी वैष्णवन की वार्ता	१७४,	४४१, ४४२, ४४३, ४४६, ४४७,
२४० टि, २४१, २४२, २४४ टि		४४८, ४४९, ४५१, ५५४, ५६५,
२४६ टि, २५९, २६१ टि, २६६,		५६६, ५८८, ५८९, ५९०, ५९३,
२६७, २७३, टि, २८८, २८९ टि.		५९६, ५९८, ५९९, ६०४, ६११,
२९६, ५९५		६१५
चैतन्य	३४, १६७, १८४, १८६,	चैतन्य महाप्रभु ४६५, ४६९, ४८७,
१८७, १८८, २०१, ३६९, ३७६,		४८८, ४८९, ४९१, ४९३, ४९६,
३८१, ५६८, ५६९		४९८, ५००, ५०२, ५०३, ५०९,
चैतन्य चरितामृत ४१ टि., ४२ टि,		५२४, ५२७
६६, ७२ टि, ९४, ९८, ११८ टि,		(बी) चैतन्य मुक्कमेट ४३२ टि.
११९, ४४७, ४५६, ४६०, ४६१,		छ
४६२ टि, ४६३ टि, ४६४,		छन्द का जोड़ा ३१५

छन्द समुद्र,	५६७	जयवान् मिश्र	४१२ टि०
छन्दम लीला,	३६०	जयापाल दास	५६१
छप्पय गजप्राहू को	३१५	जयदेव ७२, ७४, ७६, ७९, ८६ ९१,	
छत्रसाल,	१७०	१८३, १८५ २०१, २७५, ४००,	
छत्तिस गुप्तगीता	४३४	४०१, ४०५ ४२९ ४४४, ४४६,	
छीतम्बामी, ९४, १६७, २३९ २७०		४५२, ६०७,	
२८०, २८१ टि०, ५९५, ६०१,		जयदक्ष मल्ल,	६००
छीतस्वामी (पद संग्रह)	१९३ टि०,	जयमती	४०४
	२०० टि०,	जयरण मल्ल	४००
छटि खान	४४२,	जयमिह	५९४
छेम,	१०९	जमस्थिति	२०९ ४००,
	ज	जमान	५९८,
जम्बुवती	४२४ टि०	जगन् राय एगिप्टिक साम्राज्यी	
(राजा) जगत प्रकाश मल्ल	४०४		१८७
	४०६	जलभेद	२२१ टि०
जगदवधु	५६२, ५६८ टि०	जसरा खा आर श्री कविरजन,	४९१
जगन्गान्ध	५६२ ५८० ५०४		टि०
जगन्गानन्द दास,	५५० ५५१, ५५२,	जमवत मिह महाराज,	२९८ २०९
	५५३	जानकीराम नास	५२६
जगदानन्द पन्नावली	५५१,	जाह्नवी ठकुराना,	५५८,
जगन्नाथ	५६५	जाह्नवी देवी	५०६, ५११,
जगन्नाथदास	८३३ ४३६ ४३५	जिनमिश्र मल्ल देव	४०६
	४२६ ४३०, ४४० ५९६	जिमाउद्दीन,	१५९ टि०
जगन्नाथदास रनायर	१७० १७२	जीयगोस्वामी ११ ९१, ९७, १६८,	
जगन्नाथ चरितामृत	४३५	१८४, ३६६ ४५९, ५२५ ५६१	
जगन्नाथ मिश्र	५५८,	५८९ ५०६	
जगन्नाथ वल्लभ,	०० ४९५, ५७६	जायन्ता	२५५
जगमोहन रामायण	४३४,	जुगल्मान चरित्र	२६९
जामेजय	४१३,	जुगुत् भक्ति विनाय,	२००,
जानराज आफ कामराय	४१९ टि०	जुगुल रस माधुरी	२०९,
जानान मिश्र	२४५	जग्गिना सहिना	५६१
जमानचौत मल्ल	६०३ ४०४	जीवरण	१०

जानदास, १३३ टि०, १३४ टि०, ५०६, ५०७, ५१०, ५१२,	तानसेन १०४, १०५, २३२, २८२, २९४,	
जानवीर, २३०	तारकेश्वर भट्टाचार्य ४२६ टि.	
जानसागर, ४३२	तारादेवी, ३४९	
ज्योतिरीश्वर ठाकुर, १५५, १५७, १८१,	तिथि लीला, ३१६	
झ	तिरुपत, १३	
झुमरा ४२५,	तिरुमगे आलवार, १३, १६,	
झूलनगीति ४१४ टि०	तिरुमडिमै, १३, १४	
ट	तिलोत्तमा, ४३९	
टाइम्स अन्व एश्येंट उडिया प्रोज एण्ड पोएट्री ४३१ टि.	तुलसी, ३७, १५१, १६८, १८०	
टीका सर्वस्व, १५८	तुलसी ग्रंथावली, ३७० टि,	
टेंकलड, २४, २५	तुलसीदास, २७४, ३६९, ३७०, ४०५,	
ठाकुरदास, २३३	तुलाभिणा, ४३७	
डॉक्ट्रिनज अन्व निम्बार्क एण्ड हिज फॉलो- अर्स ३० टि	तेस्सीतोरी, लु पि, १५३, १५८, १६२, १६४	
डूगरेन्द्र सिंह तोमर, १०१	तैत्तरीय उपनिषद्, १९४ टि	
ढोला मारुरा दूहा, १६५	तोण्डर डिप्पोलि, १३	
त	त्रिविक्रम भट्ट, ७१	
तगारे ग व. १६२	त्रिविव नामावली, २००	
तत्त्वदीप निवव १९३ टि., १९४ टि., १९५ टि, १९६ टि, १९७ टि, २०६ टि, २०७ टि, २१२ टि., २१३ टि., २१५ टि, २१७ टि	त्रैलोक्य मल्ल, ४००, ४०१, ४०३	
तत्त्व निर्णय, २७ टि	द	
तत्त्व सदर्भ, ४७० टि,	दण्डात्मिका लीला, ५२५	
तत्त्वार्थ पंचक, ३०८	दयाराम साहनी, ९५,	
तमिल और उसका साहित्य, १४ टि,	दयाल ५८३, ५८४	
तमिलवेद, १७	दशम स्कन्ध भागवत, २७५—भाषा, २५७,	
तन्वी रमण, ५५६, ५५७	दशरथ ओझा, १७५, १७६, १८८	
	दशावतार चरित, ८६, ८७,	
	दानकेलि कौमुदी, ५३८	
	दान लीला, २६९, ३५५,	
	दानलीला काव्य, ९१ टि	
	दानलीला चन्द्रामृत, ५३८	

दामादर,	५१५	द्विज माधव	५०३,
दामादर चम्पति राय,	४३०	द्रापदा का जोडा,	३१५
दामोदरदास,	२१४	घनजय पंडित	५९६
दामोदरदाम हरमानी	२८८, २८९	घनपति	४०८ टि
दामादर पण्डित	१५७	घमगुप्त	४००
दामोदर महाकवि	४९१	घम मंगल	५६०
दास घोषी,	४३५	धीरेन्द्र वमा	१५२ टि १५९ टि
दास हस्तलिखित संग्रह,	५४५ ५५१,	१६६	
५५३ टि ,		घोषी	७२ ४४४ ४५२
द्विग्विजय विचार	५९४	घुव चरित्र	२६२
दिव्य सिंह	५१५ ५४४	घुवनास	१७६ २३५ २३६, २३८,
दीक्षित वे० एन०	९६ टि	२५९, ३५५	
दीनयालु गुप्त	१६६, २८३ २४५	घ्वया लोच	६८, ६९
२५७, २५८, २६२, २६१	२७२	न	
२७५		नद	५७४
दीनवधु	४३७ टि ५७८	न विगीर	५७७
दीनेशचन्द्र मेन	१८७ ३८३	न कुमार	५६३
दुष्कूट के पद	२५७	ननास ७२ ९४ १६७ १७६ १८०	
दध	१५२, १७०, ३७४	१८८ १९३ टि, १९६ टि	
देव दान,	३७५ टि	१०७ टि १९८ टि २०१ टि,	
देव नद	३४९	२०२ टि २०६ टि २१० टि,	
देवकी नन्दन	४३५ ५०४ ५१२	२१२ टि, २१७ टि २२१ टि	
देवका नन्दन दास	४०७	२३९ टि २७४ २७५ २७६	
देवकी नन्दन सिंह	५२५	२७७ २७८ २७९ ५०५ ५९७,	
देवदनाथ वज्रवज्रा,	४२०, ४२१ टि	६१०, ६२१ ६२०	
दत्तारि ठाकुर	६१८, ४२१,	नदनाम प्रयावली	१९४ टि १९७ टि
श्रीगो घावन घैणवा श्री वार्ता	१७४	२०० टि २७० टि	
२७४ २७५ २७० २८० टि		नलीला	३१६
२०१ २९२ २०४ २०५ टि		न ठाकुरे बाजपयी	२४६ टि
दीहन भाग्य	२००	नगप लाग	२१६
द्विदशपनिपत्र	२०	नगा थावू	६००
द्वारनाथस पागीन,	२५७ २८० २०३	नगे गुप्त	५२७ ७३२

नगेन्द्र वसु	५६६	३००, ३३३, ३३४, ३३६, ३३७,
नटवर	५८५	३५२
ननी गोपाल वन्दोपाध्याय	४०० टि,	नागलीला
४०२ टि, ४०६, ४०८		२५७
नम्मालवार	१३, १६, १७	नाथमुनि
नयना नंद	५७९, ५८०	१९, २०
नर परिचर्या टीका	४०३ टि	नाथ लील
नरसिंह देव	४३१, ४३२	३१६
नरहरदास	२३२	नाभादाम
नरहरि	१०९, ११०, ११३, ११४,	१६८, १७५, २३१,
४५५, ५१०, ५६५		२३२ टि, २३३, २३४, २४२,
नरहरि चक्रवर्ती	५४३, ५४५, ५६५,	२४७, २५७, २५९, २९३ टि,
५६६, ५६७, ५६८		२९४, ३०२, ३०६, ३२७, ३४८,
नरहरिदास	३३४, ३३७, ३३८, ५४४	३६६, ३६७ टि, ३६९
नरहरि सरकार	४९१, ४९७, ५३१	नामनिवि लीला
नरहरि सरकार ठाकुर	५६५	३१६
नरोत्तम ठाकुर	५३०, ५६६, ५६७	नाम मजरी,
नरोत्तम दास	१६८, १६९, ५१५,	नामवर सिंह
५२४, ६११		१८०
नरोत्तम विलाम	५६७	नायिका रत्नमाला,
नर्मदेग्वर चतुर्वेदी	१०३ टि	५८१, ५८२,
नल चम्पू	७१	नारद पचरात्र,
नल दमयन्ती	२५७	४६८, ४८५,
नव गुज्जरि	४३८	नारद भक्तिसूत्र
नवनीत जी की सेवानिवि	१७४	३७ टि, २१६ टि.,
नव भक्तिमाल	३४१ टि, ३४२ टि,	नारायणदास,
३४३ टि, ३६४ टि		४१८, ४९१,
नवरत्न	३५४	नारायणदेव,
नवलदास	३३२, ३३५, ३३६, ३३७	नारायण सिंह
नाग भद्र	१२	४०३ टि,
नागर समुच्चय	२८० टि	नारायण स्वामी,
नागरीदास	२३२, २७९, २९८, २९९,	३७७,
		नारायणी,
		५००, ५०१,
		नारायणीयोपाख्यान,
		४, ५,
		नासिकेतोपाख्यान,
		१७५,
		निवार्क, ३, २९, ३०, ३१, १७९,
		३७३,
		निवार्क अष्टोत्तर,
		३०८
		निवादित्य, ३०३,—दगग्लोकी, ५९२
		टि,
		निवार्क मयूख,
		३०८
		निवार्क माधुरी,
		३०८
		निजरूप लीला,
		३१६
		नित्य विहारी युगल ध्यान,
		३४४

नित्यानन्द,	५५८ ५९६,	५१४ टि०, ५१७ टि०, ५१९,
नित्यानन्द दास,	५११,	५२० टि० ५२१ टि०, ५२२
नित्यानन्द प्रभु	५००, ५०१, ५०४	टि०, ५०३ टि०, ५२६ टि० ५२८
५०६, ५११		५०९ टि० ५३० टि० ५३१
निराकार संहिता,	४३८	टि०, ५०७, ५०७, ५३४, ५३०
निर्बोध मनरजन,	३४४	५०७ टि०, ५४०, ५४१ टि०
(श्री) निवाण लीला	३१६	५४४ ५४५ ५४६ टि०, ५४७
निश्चयात्मक उत्तराद्य	२४४	टि०, ५४८ टि०, ५४९ ५५० टि०
नोहार रजन राय	४४३ टि ४४४	५५१, ५५४ ५५६ ५५९ ५६०,
४४५ टि, ६५० टि, ४५८ टि		५६३ ५६४, ५६५ टि०, ५६८
नथ बखनाय,	५४५ ५४४	५७० टि० ५७१, ५७२ ५७३,
नृसिंह परिचर्या,	११६ ३०७	५७४ ५७५, ५७६ ५७७ ५८५
नेपाली बागला नाटक,	४०० टि ४००	टि० ६०९ ६११, ६१२ टि०,
टि ४०८ टि,		६१३ टि०, ६१४ टि० ६१५
नेपाली भाषा नाटक,	३९८ टि ३०९	टि० ६१६ टि० ६२०, ६२१,
टि, ६०१ टि, ४०२ टि ४०३		६२२, ६२४ टि०,
टि, ४०४ टि ४०६ टि, ४०८		पञ्चिन्ता मणिमाला— ४१५ टि०
टि,		पञ्च प्रमग माला, २७०
नेवाज,	१७६	पद्मरत्नाकर ५२७ टि० ५३३ ५४५
नेहमजरी	३५५, ३५७ टि	५८१, ५८५ ६२१
नाटम आन दी पहाठपुर रिलीफज	९६	पद्मरत्नाकर,
टि		४१० टि०
प		पद्मरत्नाकर,
पञ्च गन्धार निरूपण,	३०२	६१२
पञ्चानन मण्डल	५०३ टि,	पद्मग्रह— ६३० टि० ४३५
पत्नी प्रमाण	६२४	पद्ममत्त ममुद्र— १२० टि० ५६२ ५६३
पद्मरत्न सर	१४४ टि०, १४८ टि०	५६४, ५६८
६१२, ४३०, ४३५, ४३७, टि०		पद्मनि प्रणीत ५६७,
६९३ टि० ४९४ ६९७ ४०८		पद्मपुत्रा, ५६ टि० ६५ ६६ ४७२
टि०, ४९९ टि०, ५०० ५०४ टि०		टि०
५०५ टि० ५०६ टि० ५०७ टि०,		पद्माकर १५२ १७०
५०० टि०, ५१० टि०, ५११ टि०		पद्मावती ४३५
		पद्मावती, ७० ७३ टि०,
		पद्मात्म मन्त्र ६७३ टि० ४७४ टि०

परमानन्द	४१२, ६२१,	प्राकृत व्याकरण ८५, ८६ टि	१४५ टि
परमानन्द 'औली,	२५९,	प्राण प्यारी	२५७
परमानन्द दास, ९४, १६७, १९४ टि०		प्राचीन गद्य पद्यादर्ग	४३० टि.,
१९७ टि०, १९८ टि०, २०२ टि०,		४३१ टि, ४३२ टि	
२०५ टि०, २१७ टि०, २२१,		पिंगल	१५३
२२२ टि०, २५७, २५८, २५९,		पिंगल ग्रथ	३२२
२६०, २६१, २६२, २६३, २६४,		पिंपरा गुचुआ	४२५
२६५, २७८, ५९४, ६००, ६०१,		प्रियरजन सेन	४२९
६०५, ६१७,		प्रियादास १७४, २३४, ३०६, ३६९,	
परमानन्द सागर, २६२,		५९२	
परमानन्द सारग,	२५९,	पीतम्बर दास ३३३, ३३४, ४१० टि,	
परमेश्वर दास,	५९६,	४९०, ५५४, ५५६	
परवृढाष्टक,	२२५,	(डा०) पी० एल० वैद्य	२० टि
परगुराम, ११४, ११५, ११६, ३०३,		प्रीति चौवनी	३५५
३१२, ३१३, ३१४, ३२१,		प्रीति रस मजरी	२९९
परशु राम चतुर्वेदी	१८३	पुराण अममिया साहित्य	४२१ टि
परगुराम देव	३०८	पुरातन प्रबन्ध १५७, १६२, १६३	
परशुराम सागर ११४, ११६,		पुरानी राजस्थानी	१५७
११७ टि, ३१२ टि, ३१५ टि,		पुरानी हिन्दी १५५, टि, १५७, १६१,	
३१६ टि		१६२, १६३, १८१	
पराकुरा मुनि	१९	पुरुषोत्तम ठाकुर ४१८, ४२१	
पवन दूत	४४४	पुरुषोत्तम दास	५०४, ५०५
पाखण्ड दलन	५५६	पुरुषोत्तम नाग	५९६
पाण्डव विजय नाटक	४००	पुहोषत्तम सहस्र नाम	२००
पारिजात मगल	३८७	पुष्पदन्त	८०
पारिजात हरण	५२५	पूदत्ताल्वार	१३
(महाराज) प्रताप रुद्र देव	४३०	पूर्णाचन्द	४५१
प्राकृत कल्प तरु	८९	पूर्ण सोमसुन्दरम्	१४ टि
प्राकृत पिंगल	८८	पूरणदास	३१४ टि
प्राकृत पैगलम् १५३, १५५, १५७,		पृथ्वी राज रासो ८६, १५७, १५८,	
१५८, १६२, १६३, १६४, ३८५,		१६५	
३८६ टि.		पेयाल्वार	१३

परियाउवार	१३, १४ १५, १६	पुन्दनलाल	३४१
प्रतापमल्ल देव	४०४ ४०५	पूठ विनाम	२९९
प्रताप रुद्र	४९३	व	
प्रथम स्वघ	४२६ टि	वकिम चद्र	४००
प्रथम चिन्ता मणि	१६२, १६३	वकिम चद्र चट्टापाध्याय	४१३ ४१४
प्रयोग चद्र बागची	४०१ टि ४०२	वग भापा आ साहित्य	३८३ टि
टि ४०३ टि, ४०४ टि, ४०६		वग साहित्य परिचय	४५५
टि ४०८, ४४३		वटुकनाथ गमा	३२१
प्रबोध चद्रोदय	१७६	वट्टु चडीदाम	४१०, ४४६, ४९८
प्रभात मुखर्जी	३८४ टि, ४२९ टि	वट्टी दास	३२०
४३२ टि, ४३४ टि, ४३७ टि,		वन विहार	३५५
४३८ टि, ४३९ टि		वनो ठनी जी	२०९
प्रभुदयाल मोतल	१५१ टि २२५ टि,	वयालाम लाठा	१७६
२४६, २५७ २६९ २८५		वलन्व उपाध्याय	२३०, टि २३२
प्रमय नाथ तव भूषण	४५२	वलराम दाग	६३३ ४३४, ४४०,
प्रह्लाद चरित	२१५	६७०, ५०६ ५११, ५१२, ५१४,	
प्रसाद रास	४१५ टि ५३६	५१६ ५९६	
प्रेम दास	५५१, ५५८ ५५९, ५६६	वहादुर सिंह	२५८
प्रेम वाग्बि	२९१ २९३ टि	रनी मोत्रारा	१२
प्रेम भक्ति	४००	वागला साहित्येर इतिहास	३९० टि,
प्रेमलता	३५५	६०० टि ६२९ टि ४३६ टि,	
प्रेम विलाम	५०१ ५०२ ५११ ५१५	४४३ टि, ४४४ टि ४४५ टि	
५३६ टि		४४७ टि, ४४९ टि ४५० टि	
प्रेमावली	३५५	४५८ टि ४०१ टि, ५१० टि	
प्रेमरत्न रास	२६०	५०५ टि ५२९ टि ५०८ टि	
प्रेमनस्व निरूपण	२६१	५५८ टि	
पादार अभिनदन ग्रथ	९७ टि	याजला अध्याय	४६४
२६३ टि		याग भट्ट	६७
पासूअलवार	१०	याणीबात नासनि	६०१
फ		याल शिष्य ऋषि	३३
पत्ररहान	६४८	यात्र परिग	६९
पाग विलास	२०९	याल मुमुक्षु	३२१

(श्री) वावनी लीला	३१६	२३२.	२३३ टि.,	३७३ टि.,
बाहुबलव देवाचार्य	३९८	३७४ टि.	३७६ टि.,	३७७ टि.,
विल्व मगल	७७	३७८ टि.	३७९ टि.	३८० टि.
विहारनिदास	२२९, २३०, ३३०,	ब्रजरत्नदास		२७९
३३१, ३३०, ३३३, ३३४, ३३५,		ब्रजराय-श्री गोस्वामी		२९८
३३७		ब्रजलीला		३५५
विहारी	१५२, १७०, ३७३	ब्रजविहारी गरण		३०२
विहारी ग्लाकर	३७४ टि	ब्रजवामी दाम		१७६
विहारी लाल अग्रवाल	३४१	ब्रज सुन्दर मान्याल		५१० टि
विहारी सतसई १००,-की टीका १७४		ब्रह्मगीता		४३७ ४३९
(राजा) वीरवल २६६, २८०		ब्रह्मचारी विहारी गरण		३०६ टि,
वीरभूमि विवरण	५८० टि. ५८१	३०७ टि.		
बुद्ध चरित ५३ टि ५९, १५१ टि.		ब्रह्मघीर		२३०
१५६ टि १६२		ब्रह्म विवातत्त्व ज्ञान		४३८
बुद्ध देव.	३८३	ब्रह्म वैवर्त पुराण		६५. ६६. ११९
बेंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर	१८७	ब्रह्म शकुलि लेखन		४३८
बेनी माधवदास	३६३	ब्रह्म सहिता		७८. ८०, ४६२
बैजू बावरा	१०३ १०४ १०५	ब्रह्म सूत्र		१८. २९, ३०
बैनर्जी-आर० डी०	९६ टि.	ब्रह्माण्ड भूगोल		४३८
बोवायन	१९			भ
बौद्ध गान ओ दोहा	१६१	भवरगीत,		२७५, २७६
बोहित देव	३०८	भक्त कवि व्याम जी,		३५३ टि, ३५४
ब्यालीस बानी	३५५	टि, ३५५ टि.		
ब्रज किगोर	५८५	भक्त नामावली,		२५५, २५९
ब्रज प्रेमानदी मागर	३६०	भक्त प्रार्थनावली,		३६०
ब्रज विहार	३७७	भक्तमाल,		१६८, २३१, २३२ टि,
ब्रज भारती	१५१ टि २८९ टि	२३४ टि २४२, २४७, २५७,		
ब्रजभाषा	१५२ टि., १५९ टि	२५८, २५९, २६६, २७४, २९३,		
१६६		२९४, ३०१, ३०२, ३०६, ३०७,		
ब्रजभाषा के अप्रसिद्ध मुकवि	२८९	३१५, ३२७, ३४८, ३४९, ३५३,		
ब्रजभाषा व्याकरण	१६६	३५४, ३६६, ३६७ टि, ३६९,		
ब्रज भावुरी सार	१७२, २३० टि,	५६३, ५९२ टि, -परटीका २६९-		

(दि) भक्तिबन्धन इन एर्येंट इटिया	१०८ टि, ६३९ टि —का अनु-
५७ टि	वाद ४३९—पुराण, ४२६ ५८८,
भक्ति प्रदाय,	६२६ ५९०
भक्ति मग दीपिका	३०० भागवत तत्त्वलीला ५१०
भक्ति रत्नावली ९६, ४०६ ५००,	भागवत भाषा, २५७
५१० टि, ५१५, ५२५, ५३०,	भागवत भाषानुवाद— २६९
५५४ टि, ५६१, टि, ५६५	भागवत मंत्रदाय २३० टि ३७३ टि
५६६, ५६७, ५६० टि ५७०	४३७ टि ६०० टि
टि, ६२१	भागीरथ ४१८
भक्ति रत्नावली ४०६	भानुसिंह ४१३ ६१८—पनावली
भक्ति रत्नामृतमिथु ४२ टि ४३ टि	४१६ टि, ४१८ टि, ४४१,
४४ टि, ६५ टि, ४६ टि, ४७	भारत की चित्रकला १०० टि
टि, ४८ टि, ९२ टि, १०८	भारतवर्षीय उपामव संप्रदाय ३५ टि,
टि, २२२ २२३ टि, ४७७	२३४ टि
६७८ ४८० टि ४८० टि, ४८५	भारताय ब्राह्मण और हिंदी १५१
टि, ४८४ टि ४८५	टि १५९ टि, १६० टि
भक्ति वर्धनी, २२१ टि	भारताय इस्वरवाद २६ टि
भक्ति मुधास्वाद तिलक, २५७ २५८	भारतीय मन्थयगर साधनार घारा
भगवद्गीता १८	२९ टि, ४५० टि
भगवदतत्त्व दीपिका, २९५	भारतीय मूर्तिपूजा ९६ टि
भगवत मुदित भक्त, २२३	भारतन्दु हरिश्चन्द्र, १७० १७१
भगवत रसिक, २३२, ३४३ ३४४	१७२ १७६ ३६०
३४५, ३४६	भावप्रकाश २६०, २६७
भगवत् सम्भ, ५८९	भावसंग्रह २४३ टि
भगवानात्म, २३०	भाषा गानाध ५५३
भगवानात्म पुराण पडा— ४३५	भाषा संगीत ६०६
भान बुडलिया— ३५५	भास, ६९
भजनान दाष्टक २००	भास्कराचार्य, ३०
भट्ट नारायण ६८	भित्तारीनाम, १५२ १५३
भवानन् ४०३	भौमसिंह २०३
भविष्य पुराण ११९	भुवननाम ५७०
भागवत, ४, ११ १००, ४३७ टि	भगम गास्वामी, ५०६,

भूपतीन्द्र मल्ल, ४००, ४०६, ४०७	मध्यकालीन साधना	८६ टि,
४०९	मध्यकालीन धर्म-साधना,	५२ टि.,
भूमि लोटोवा,	४२५.	मध्यदेशीय भाषा, १०१ टि. १०२
भूपण,	१७०	टि १८५, १८६, १८८,
भैरवानन्द.	३९९, ४००.	मधुर कवि,
भैरवा प्रादुर्भाव,	४०६.	मध्वाचार्य,
भोगीलाल जयचन्द साडेसरा	०२	मन शिक्षा,
भोज,	१८८,	मनीन्द्रनाथ वसु, ४२६ टि. ४५८ टि.
भोजन व्यवहार,	४२५	मलयगन्धिनी.
भोज वर्मा देव, ७१. ४४४ ४४५,		महानुभावानुमारिणी.
भोरलीला.	२९९,	महापुराण, ८०, ८१ टि, ८३ टि,
भ्रमरगीत.	७३ २५५, २५७,	८५ टि,
भ्रमरगीत सार २४० टि ३७२ टि.		महाभारत, ४, १९, ५३ टि ५८,
भ्रमरदूत,	३८०	६० टि, १०० ११९, ४०६,
		४७६,
म		
मकरध्वज कथा,	१०२	महाभारत कथा,
मकखन लाल,	३४१	महाभारत तात्पर्य निर्णय, २५ टि,
मजलिस मडन,	३००	महामाया,
मणिक,	३९९.	४३४, ५१५,
मणि लाल पारेख-भाई,	२२९ टि	महावाणी, ११४, ११६, ३०६ टि,
मतिगम १००. १५२ १७०		३०७, ३०८, ३०९, ३१० टि,
मथुरा, ए डिस्ट्रिक्ट मेम्बायर २३२		३११ टि, ३१२, ६०८ टि..
टि. ३२४ टि ३२५ टि,		महावाणी निवेदन. ११६ टि,
३४० टि.		महीनाथ भट्ट,
		३९९
मथुराष्टक २२५		महेय पण्डित,
मदन गोपाल देव,	३०८,	५९६
मदन चरित,	४०४,	माँगुडी मरुदणार,
मदन चरित कथा नाटक,	४०८,	५९ टि
मदन मोहन,	५९४,	माडकेल मधुमदन.
मदन राय,	५५४,	४९०
मदालसा हरण,	४०६,	माठर श्रुति,
मदुरइक्काचि,	५९,	४७७
		माधव,
		४९६
		माधव आचार्य, ५०२, ५०३,
		५०४,
		माधव घोष,
		५०३, ५९५,
		माधव दास, ५०२, ५०३, ५०४

माधव रेव, ३०८, ३८२	४१८,	मुकुन्ददाम गोस्वामी,	५५७
४२० ४२१, ४२४,	४२६	मुकुन्दानन्द,	५५८ ५७६
६२७		मुकुट राय,	५३१
माधव भट्ट,	९१ टि,	मुखपरवानगी भाटी भीम,	३१३
माधवानर,	४०६	मुगल बादशाहा की हिन्दी, १०९ टि,	
माधवानल कामवदला,	४०८	मुदित कुवलयारव,	६०४
माधवी दासी,	४३०,	मुनि जिनविजय,	१६३
माधवेद्रपुरी ११८, ४५२	४५३	मुरलीधर,	५९४,
माधो	६२१	मुरारी	४३०,
माधव भुव मदन,	३०	मुर्शिद कुलीखा,	५६३
मानमजरा १०३ टि,	५९७ लि	मुहम्मद तुगलक,	४४८
मानरम लीला,	३५५,	मुहम्मद शाह,	२१८
माता लीला,	२५७	मूल गोसाड चरित,	३७०
मानसिंह राजा	२७३	मृगुणि स्तुति,	४३४,
मानसाल्लास,	१८५	मृणालिनी,	४१४ टि,
मालती माधव,	३७९	मेगस्थनीज,	१२,
मालाधर वसु, ११८, ४४७, ४४८,		सेधदूत,	५३ टि, ५९ टि
४९६,		मेयोरा	१२,
मिजासर्वात्म ग्रामर आफ ब्रजभीला,		मेस्तुगाचाय,	१६३
१५० टि		मोनीराम,	३२१,
मिश्रप्रधु विनोद, १०९ टि	११६	मातीलाल मेनारिया, १५३ ३१५ टि	
२३३ २७१ ३०७ ३०१,		य	
३३३ ३३६, ३३६ ३४०		यदुनन्दन	५१०
३५८		यदुनन्दादाम,	५३७ ५३८,
मौरा	१६८	यदुपति दास,	४३१, ४३२ टि
मौरावाई	२६६	यन्दु लन्दन कवि,	५४,
मृतगिवज्जतवारीस,	२४३	यमुताष्टव	३५२
मुग्धितात अच्युत फाल,	२४०	यगावत सिंह	२९०
मुंजीराम गमा,	२६५,	यगोरात्र गान ४०९, ४१० टि	
मुकुन्दगान	४९१	४२८ ४९१ ४९२ ६०४	
मुकुन्द दव	३०८,	यगावत	४३३ ६३८
मुकुन्द माला,	१७	यगोवन्त दासरा चौरासा आणा, ४३८,	
४३			

योगोवन्त मल्लिक,	५९६,	रवीन्द्र नारायण	५६३
यामुन मुनि—	१९. २०.	रम कदम्ब,	५३१ ५३० ५३३,
युगल रम माचुरी,	३२२, ३२४ टि,	५३८	
युगल घातक.	११४, ११५, ३०१,	रम कल्पवल्ली,	४९१. ५३३. ५५६
३०२, ३०३ टि, ३०४ टि,		रस क्रीडा	४२४
३०५ टि ३०६ टि. ३०८ टि.		रम खान	१५० १७०. २९०.
३१३ टि-		४२४ टि.	
योगेन्द्र नाथ दे,	५५८ टि.	रम विहार	३५५
र		रम मजरी	२७५. ४१० टि, ४९१,
रग विहार,	३५५, ३५७ टि,	५४५ ५५४.	
रघुनन्दन,	४५१. ४९१, ५२९,	रम रत्नावली,	३५५
५५०, ५५३,		रस राज	१००
रघुनन्दन गोस्वामी,	५२५, ५२८,	रम विलाम,	१५३,
रघुनाथ चरित,	३१५,	रसानन्द लीला,	३५५
रघुनाथ ज्ञा,	३९९,	रमामृत मिथु	६०३
रघुनाथ दान	६६१.	रसिक गोविन्द. ३२० ३२१. ३२२,	
रघुनाथ दान गोस्वामी,	९०. ५३५.	३२३. ३२४,	
५९६,		रसिक गोविन्दानन्दघन. ३२० ३२१,	
रघुनाथ भट्ट,	९०	३२२	
रघुराम	४३९	रसिक दान, २३२, ३३९, ३४०,	
रघुवर दयाल.	३४१	३४१. ५२८,	
रणजीत मल्ल	४०७, ४०८. ४०९	रसिक प्रिया की टीका,	१५३
रणमल्ल छद,	१५७,	नग कल्पद्रुम, १०५. टि, १०६. टि .	
रतिकान्त ठाकुर.	५५३	१०७ टि १०८ टि १०९ टि.,	
रति मजरी,	३५५	नग तरंगिणी	४०५ टि .
रत्न सार,	५५७,	राग रत्नाकर,	२९२
रमा चौधरी,	३० टि.	राघव पण्डित	५९५.
रमानाथ ज्ञा,	३९९	राजकृष्ण राय,	४१३
रविगंकर गुक्ल अभिनन्दन त्रय		राज वर्धन.	३९९
२८७ टि,		राजशेखर.	१४० टि, १८०
रवीन्द्र नाथ ठाकुर ४१३. ४१६टि..		राजस्थान का पिगल साहित्य,	१५३
४१८ टि. ४४१, ४९०		टि,	

राजस्थानी भाषा और साहित्य, ३१५	रामचंद्र शुक्ल, १०४, १०५, १५१
टि	टि, १५६ १६२, १७४ १७५,
राज बल्लभ, ५३१	१७७, २४३ टि, ३५९, ३६९
राजसूय ८२६	टि,
राज प्रतापछद्रदत्त, ४२८	राम चरण ठाकुर, ४१८, ४२१,
राणा व्याम, २९६	४२६,
राधा विशोर गोस्वामी ३५४	राम चरित मानस, ३७, टि, १५१
राधा कृष्ण रमकल्पवल्ली ५५४	राम चरित मानस की टीका १७४
राधा कृष्ण लीला रम कदम्ब ५३८	राम चरित्र, ६०८,
राधा चरण, ५५८	राम दयालु गोस्वामी, ३७६
राधा चरण गास्वामी ३४१, ३६४	राम दाम, ३१४
३७६	राम नरंग त्रिपाठी, १६९
राधा तत्र ३५२	राम भरत १७४
राधा प्रसाद, २३३	राम भद्र ४०१, ४०५
राधा मोहन ठाकुर ४३३, टि	राम राय, ४९५ ४९६, ६२१,
५६२, ५६३, ५६४, ५६५	राम गर्मा, ८९
५७६, ५९३,	राम सागर, ३१६ टि,
राधा रम बलि बौद्ध, २५७	रामाक नाटिका, ४००
राधा बल्लभ ५३०, ५३१	रामानन्द १६७, ४५१, ५९४,
राधा बल्लभ चक्रवर्ती, ५३३, ५३४	रामानन्द राय ४९२, ४९३ ४०५,
५३५	४९६ ५९५
राधा बल्लभनास ५३६	रामानन्द वसु ४९८ ४९९ ५००
राधा सुधानिधि २३४ २३७ टि,	५१४
३५२	रामानन्द संगीत नाटक, ८९५
राधिका दास २३३, ३६७	रामानुज, १७९
रामकृष्ण गापाल भण्डारकर, १०,	रामानुजाचाय, १५ १९, २० २२
१८ टि, २५ टि २०, ५७ टि,	२३, २४
राम गापालदास ४०१, ५३३	रामायण ६० टि, १००
राम चंद्र कविराज, ५११, ५१५	रामायण नाटक ४००, ४०८
५१६ ५२०,	रामायण मूचनिका ३२२
रामचंद्र दीक्षितार, ६२ टि,	रामायि ठानुर ५५८
राम चन्द्र गर्मा ४०४	रामायनार गर्मा पाण्डेय २६ टि,

राय कृष्णदास, ९६टि . ९८, १००टि.	रैन रूपा रम,	३००
राय गदाधर, ६२१	ल	
राय चौधरी, १९ टि, ५७ टि.	लक्ष्मण द्विवेदी,	२१५
राय दामोदरदास. ४३० ४३२ टि.,	लक्ष्मण मेन,	७२, ४४३, ४४४
राय रामानन्द, ४२८. ४२९, ४३०	लक्ष्मी पुराण	४३४
राय रामानन्देर भणिता युक्त पदावली, ४२९	लघु भागवतामृत, ५२ टि, ५४, ४६२ टि, ४६३ टि.	
रायशेखर, ५३८	लक्ष्मिन,	३२१. ३२२
राय नाहव महन्ती, ४३१.	ललित किशोरी, २३२, ३३९ ३४०, ३४१. ३४२, ३४३.	
रास, ४३९, —के कवित्त, ३००	ललित कुवलयान्वमदालना नाटक ४०५	
राम पञ्चाध्यायी. ६५, २२१ टि. २७५.	ललित प्रकाश,	३४७
रास रम, ३६०,	ललित माधुरी.	३४१. ३४३,
रास रस लता, ३००	ललित मोहनी दाम.	२३२.
रास विलाम, ३६१ टि .	ललित मोहनी.	३४७
रास सर्वस्व, ३५५	ललिता.	३६४
राहुल साकृत्यायन, १८१	लत्यू लाल. १५२. १७४, १७५	
रिपोर्ट आव् सर्व आव् हिंदी मन्यु- स्क्रिप्टस् ३२० टि, ३२१ टि,	लस्कर परागल नान.	४४९.
(दी) रिलीजन्म अक् इण्डिया, १८७	लाडलीदान.	२३८
रूप गोस्वामी ६६. ९०, ९२ १६८, १८४, १८६, ४४५, ४४९.	लाड सागर. ३५२, ३५७, ३५९ टि, . ३६० टि,	
४५५, ४५९, ४८६, ५३३	लापर गोपाल देव,	३०८
५३८, ५३९, ५४२, ५८९,	लाल चन्द्रिका टीका,	१७४
५९५, ५९६, ६१९	लाल जी,	१०९ टि,
रुक्मिणी कान्त. ५८५	लालमती देवी.	४०६
रुक्मिणी परिणय, ४०६	लाला जुगल किशोर काशी राम, ३५७ टि .	
रुक्मिणी मगल, १०१ १०२. ११०. २७५,	लाला बाबू,	३७७
रुक्मिणी विजय, ४२५	लाला भक्त राम,	२९२
रूप मजरी, २७५	लिंग्विस्टिक सर्वे अक् इण्डिया, १५४ टि,	
रूपक रहस्य, १७५ टि,		

लोचन,	४५५	२३९ टि, ५८८' ५९१, ५९३,
लोचनगस	५०१, ५६८ ५९८	५९५, ५९७, ६०५, ६०६, ६१५
व		
वगी थलि,	३६४, ३६५,	वल्लभ रसिक बानी, २३८,
वगीधर,	१५५,	श्री वल्लभाचाय-लाइफ टोचिंगस एंड मूवमेंट २२९ टि,
वग मणि आसा	४०४, ४०५,	वल्लभीवाल, ५९४,
वशी लीलामत,	५५१	वावपति ७१,
वशी वदन,	५५१,	वाणी नाथ ४९३
वशी गिळा,	५५१ ५५८,	वात्तिक तिलक, २७५ टि, २९३,
वश्राक्ति जीवित	६९,	३०६, ३४८,
वजगाति माघनमाला	३८७,	वामन, ६८,
वड वन्द	२४, २५	वासु दव, ३१४, ५१०
वतश्रवणीग	४२४,	वासुदेव गोम्वाभी, ५५ टि,
वन जन प्रगमा	३००,	वासुदेव घोप ४९६ ८९७, ४९८,
वनमालवम देव-	७१,	५०३ ५९५,
वण रत्नाकर	१५५ १५७ १५८	वासुदेवगरण अग्रवा ९७, टि,
१७३, १८१,		१८५, १८६ १८८,
वलदव उपाध्याय	३०७ ३०८	विट्टल नाथ- ३६, १६६ १७६,
३२१ २२२ ३३६ ३४०		२०१, २२५, २२६ २३९ २६६
३४ ६३७ टि,		२७३, २७८, २७९ २८०, २८२
वल्लभ- १०१ ११४ २४१ २४२		२८५, २८६, २८९, २९०,
२४३ २६४ २४७ २५९ २६१,		२९१ २९३, २९४ २९६ २९७,
२६६ २८८, २८९ २९६		५९१ ६०६ ६१५
६३३ टि		विट्टल विपुल, २३०, २३२ ३२७,
वन्दम दाम	५२० ५३० ५३१	३२८, ३२९, ३३४,
वल्लभाचाय	३३, २४ १६६ १६७,	विश्व माघव ५३८
१७४, १७६ १८४, १९१		विद्यापति ९१, १३९, १४०, १६२
१०२ १९२, २००, २०२ २०६		१४४, १८८, १८९ १५०,
२०७ २१० २१० २१३, २१८		१५५ १५७, १७९, १८१,
२१९ २२०, २२१ २२२		१८३, १८४, २०१ ३८३, ६००
२२३, २२५ २२६ २२७		६०१, ४१०, ४१९, ४२०, ४२०,

४४६, ४५४, ४५५, ५१६,	विश्व भारती पत्रिका, ३८१ टि.
५२५, ५२६, ५२७, ५२८,	३८२ टि,
५३२, ५३३, ५४४, ६११,	विश्व मल्ल, ४००,
६२५,	विष्णु पुराण, १९, ३७ टि., ३८ टि,
विद्यापति-गोण्डी, ३८७, ३८८, ३९८,	५२ टि, ५३ टि, ६४, ४६४
४०२, टि., ४०३ टि, ४०४ टि,	टि., ४७६,
४०५ हि, ४०६ टि., ४०८ टि,	विष्णु पुरी. ४१८,
विद्यापति पदावली, ५२७ टि,	विष्णु प्रिया देवी, ५०२, ५६८, ५७०,
विद्यापति की पदावली, १४० टि.,	विष्णु स्वामी, ३३, १९१,
१४१ टि. १४२ टि, १४४ टि,	विहार चन्द्रिका— २९९,
१४५ टि, १४६, टि., १४७ टि,	वीर चन्द्र (महाराज) ४१३, ४१४ टि,
१४८ टि., १४९ टि, १५० टि.,	वीर चन्द्रदेव वर्मन ५६७ टि,
विद्याविलाप, ४०६,	वीर दाम— २८९,
विद्याविलाप नाटक, ४००,	वीर नारायण, ४०१, ४०२,
विन्दु दाम ५७१,	(महाराज) वीरसिंह देव, ९९
विनयपत्रिका— १५१,	वृजनार २९९,
विप्रमति— ३१६,	वृद्ध चम्पति राय ४३०,
वियोगी-हरि, १७२, २३२, २९१,	वृन्दावन दाम, ९१ टि, १७६, ४१२,
३४१, ३४३, ३४७, ३४९, ३५५,	४५०, ४५५, ५००, ५०१,
३५८, ३६२, ३६४, ३६६, ३७३,	५०२, ५९८,
३७४, ३७७,	वृन्दावन देव, ३२१,
विरह मजरी, २७५,	वृन्दावन शतक ३५२, ३५६ टि,
विरह लीला, ३१९ टि.,	वृन्दावन-भक्त ३५५,
विराट गीता, ४३४,	वृष्टि चिन्तामणि ४०४,
विलसन, २० टि,	वृहदारण्यक ४६२ टि,
विलाप कुसुमाजलि, ५३५,	वेणी माधव टास दे, ५४५,
विल्व मगल, ५३८,	वेणी सहार, ६८, ६९,
विवर्त-विलास— ४५५,	वेदान्त मार गुप्त गीता, ४३४,
विश्वनाथ चक्रवर्ती, ५६५,	वेदान्त सूत्र, ४७३ टि.,
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र— ३१८,	वेद परिक्रमा, ४३७,
विश्वनाथ सिंह (महाराज), १७५,	वैद्य लीला ३५५,
विश्व लक्ष्मी, ४०६,	वैष्णवी, ५३१,

वैष्णवीदास	५७५, ५७६,	गङ्गुजीत राजा,	१००
वैष्ण पदावला (चयन)	१३७ टि,	गङ्गु विगोर	२०५ टि
वैष्णव रममाहित्य	४७१ टि ५९०	गरण	७२
टि,		गङ्गुभूषण दाम गुप्त,	६२ टि ४४५
वैष्णव वदन	४६९ ६३३ टि	टि	
वैष्णव वरना,	५०४	गङ्गु गेवर, ७०, ४१२, ५८१ ५८२	
वैष्णव साहित्य प्रवर्णिता,	४४३ टि	गाडिल्य	५, २७
४५० टि, ४५१ टि,		गाडिल्य भक्ति सूत्र	२७ टि, २१६
वैष्णविजम गविजम एण्ड-		टि	
मास्तर मिलिजम सिस्टम	१८ टि	गाटिल्य संहिता	५
५७ टि		गाति पव,	४, ५
व्याल्गीस चौपदी	६३८,	गारदाचरण मैत्र,	५३२
व्यास	३४९ ६२१	गारीरव सूत्र,	१०
व्यास वाणी	३५४	गङ्गुघर पद्धति	९०
श्री व्यास सुवन	३४९	गालिग्राम	३२१
व्याहला	२५७	गिवचन्द्र गील	५०७ टि
श्रज मामुरी सार १७६ टि, २९१ टि		गिवनदन ठाकुर	१५६
२९९ टि ३०० टि ३०१ टि,		गिवपावती महिमा नरय,	४०५
२०३ टि, ३१९ टि, ३०० टि		गिव रहस्य,	५१० टि
३४१ टि, ३६२ टि ३४३ टि		गिवराम	६०१
२४४ टि, ३४७ टि, ३४९ टि,		गिव सर्वोदय,	६३०
३५० टि ३५५ टि ३५७ टि,		गिवनिहू सराज	३२१
३५९ टि ३५० टि ३६० टि		गिवाजा	१७०
३६६ टि, २६५ टि, ३६६ टि		गिवानन्द	५८५
२६७ टि ३६८ टि		गिवानन्द मन	५९५
श		गिल्याधिकारम	६० ६१ ६२
शरद देव, ३८०, ४१८ ४१०		गुठादिम मानन्द	१०३ टि
४२० ४२१ ४२४ ४२६		गुन्यनाम नेत्र	६३९
शरदगणाय ११ २८, १० २५		गुन्य साहिता ४३३ टि ४३७ टि,	
३० २६ १७० १८०, १०२		६३८	
शत्रुताग	१७६	गुरमन	१०
शपी माता	६१५	गुगार रत्न मदन	१७४

शृगार गतक	३५६ टि.	श्रीनाथ भट्ट,	३९९
शृगार सुदामा चरित्र,	३१५	श्रीनिवास,	३०, ११८, ५६६
शेखर,	४५३	श्रीनिवास आचार्य,	५१५, ५३०, ५३३
शेरगाह	१०९, ११०	५३६, ५३७, ५४०, ५४४, ५४९	
शौच निषेध लीला,	३१६	५६१, ५६२	
शौरीन्द्रमोहन गुप्त,	५२८, ५५४	श्रीनिवाम चरित,	५६७
श्याम सगई,	२७५	श्रीनिवास मल्ल देव,	४०५
श्यामराय,	५५४	श्रीपति द्विवेदी,	२९५
श्यामसुन्दरदास, १७५, १७६, २४३ टि		श्रीभट्ट, ११४, ११५, ११६, ११७, ३०१,	
श्यामानन्द,	५६६	३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७,	
श्री आचार्य पाद,	३०८	३०८, ३१५, ६१९, ६२१, ६२२,	
श्री कर नन्दी,	४४९	श्री मद्भगवद्गीता, ५३, ५८, १९५,	
श्रीकृष्ण कीर्तन, ९१, १२०, १२१,		१९७ टि, २०६, ४६७ टि	
१२२ टि, १२३ टि, १२४ टि,		श्री मद्भागवत्, ३९ टि, ४० टि, ४६,	
१२५ टि, १२६, ४१०, ४११		५२ टि, ५३, ६३, ६५, ७७, ११९,	
टि, ४४६, ४४७,		१२१, १६८, १८०, १८४, १८८,	
श्रीकृष्ण गीतावली, ३६९, ३७० टि,		१९२, २१६ टि, २१९ टि, २२०,	
३७१ टि ३७२ टि		२२३, ४६२ टि, ४६५ टि,	
श्रीकृष्ण चरित,	३१५	४६९ टि, ४७२ टि., ४७८, ४७९,	
श्रीकृष्ण जन्म,	४२५	५०३, ६०० टि, ६०४, ६१८,	
श्रीकृष्ण दास,	३३६	श्री राधार क्रम विकास दर्शने ओ	
श्रीकृष्ण मगल,	५०२, ५०३	साहित्ये,	६२ टि
श्रीकृष्ण रहस्य,	४२६	श्रीरावा सुधा गतक, ३६२, ३६३ टि	
श्रीकृष्ण विजय, ११८, ११९ टि,		श्रीराम विजय	४२५
१२०, ४४७, ४४८, ४९८		श्रीवल्लभ,	५३०
श्रीकृष्ण विलास, ५६०, ५६१,		श्रीवास,	५९६,
श्री खण्डेर प्राचीन वैष्णव कवि, ५५४		श्रेडर,	५ टि, ६, १०
श्री चैतन्य,	५५८	श्लोक सार संग्रह,	४०३ टि,
श्रीधर गोस्वामी,	५९४	श्वेत द्वीप,	५
श्रीधर पण्डित (खोला वेचा) ५९६,		श्वेतागर,	४६३ टि
श्रीधर स्वामी, २५९, ४५३,		षट् गोस्वामी,	५६६
श्रीधर टीका, ३३, १९१		षट् सदर्म,	५८९

पोडग ग्रथ मग्रह	२०८ टि, २०९	समवपी लीला,	३१६
टि, २२३ टि	२०४ टि	ममरय,	१७२
स		समय प्रवच	३०२
भक्तीतनामत,	५४५, ५६०, ५७६	समुद्र गुप्त	५८
५७७ ५७८		सरवार ठाडुर गागा वणन	५५६
सगीत चद्र	४०३ टि	मरयू प्रमाद अग्रवाठ	११०
सगीतन कविया की हिन्दी रचनाएँ		तरमत्स २३२ ३३४	३३५
	१०३ टि	३३६	
सगीतनारोग्य चूडामणि	४०४	मरुत भजावला	३४७ ३४८ टि
सगीत माधव	५०४	मरुतदव	२२२
सदग रासक,	८६ १५५ १५७	मरुतवनी बडाभरण,	१८८
मग्रनाय कल्पद्रुम,	२८५	गर्वेवरनरणदव	२०१
सप्रदाय प्रतीपालाव	२९५ २०६,	सलीमगाह निन्त्री	२१४ ३१५
२९७ टि, २९८ टि		मवया दस अवतार का	२१५
समोहन तत्र	७५	सहृदरि गरण	२२० २३१ २४७
समारवद्र राजा	१००	२४८	
सक्ति मिदालन,	३३३ टि	सहृदिया-भाहिय	४७६ टि ४५८
सगी गरण,	२२३	टि	
सनमद	१७०	गागा का जाडा	३१५
सनीगचद्र राय	५३२, ५५४	गागा हरिजन महिमा	२५३ टि
सत्यनायण कविरत्न,	५७०	गागाग	४३९
सत्यराज	६०८, ४१०	गावन मि	३१३
सनागिब,	५०४	साहिय परिपत्र पत्रिका	४०१ टि
सनागुलाल,	१७५	६०२ टि ४०३ टि ४०४ टि	
सदुक्ति कणामत	६८ ६० ७१ ७२	४०० टि ४०८ टि	
७२ ७६, ७७, ७०, १६० टि	६४५	साहिय सहरा	२४२ ४२
सनन-कुमार गन्ना	१०	२५७	
सातानन	५८९	साहिय पनावन	५०४
सातानन माखामो	९१ १६८ १८६	सातार ग	५५
४६९ ६७७ ४५० ५०६ ६०७		सिदालन चगाव	६५ १५७ टि
सातापस्त	५२५	सिदालन परमपाना	२१७ टि
सातापान गा	६३६	७	

सिद्धान्त मुक्तावली, १९६ टि. १९७	सुबोधिनी टीका २०३ टि., २२०,
टि, २१८ टि, २२३ टि, २२६	५९५
टि, २२७ टि, ३०८,	सुमोखन शुक्ल ३५३
सिद्धान्त रहस्य, २२५ टि.,	मुभाषितावली ९०
सिद्धि त्रय, १९	सुल्तान बहादुर शाह १०४
सिद्धि नरसिंह देव, ४०४, ४०५	मुशील कुमार दे ४४३, ४४६ टि.,
सुंदर कवि, ६२१	४५२ टि, ४५३ टि.
सुंदर ठाकुर, ५९६	मूक्ति मुक्तावली ९०
सुंदर दास, ५४९, ५५०	मूक्ति रत्नाकर ९०
सुंदरानंद ठाकुर, ५४९	सूरदास ३, ७१, ९४, १०१, ११४.
सुकुमार सेन ९७ टि, ३८१, ३८२.	१५१, १५९, १६७, १७७, १८२,
३८३, ३८४, ३८५ ३८७ टि,	१८३, १८४, १८५, २३९, २४०,
३८८, ३८९, ३९९ टि, ४०२ टि,	२४१, २४२, २४३, २४४, २४५,
४०३ टि, ४०४ टि, ४०५ टि.	२४६, २४७, २४८, २४९, २५०,
४०६ टि. ४०८ टि, ४१९ टि.,	२५१, २५२, २५३. २५५, २५६,
४२८ टि, ४२९, ४३६ टि.	२५७, २७०, २७६, २७८,
४४४ टि, ४४७ टि, ४४९ टि.	३०६, ३३८ ३५८, ३६९,
४९१ टि, ४९२ टि, ४९५,	३७२ टि., ५९४, ५९७,
५१० टि, ५२५ टि, ५२९.	६००, ६०१, ६०५, ६१०,
५३६, ५४९, ५५८ टि. ५७०,	६११, ६१७, ६१९, ६२२,
५७४, ५७५, ५७६ टि, ५७९,	६२८ ६२९
६२०. ६२२।	सूरदास के दृष्टकूट की टीका
सुजान ३१८	१७४
सुजान रसखान २९०, २९१, २९२ टि,	सूरदास के पद २५७
२९३ टि	सूर निर्णय २४० टि २४२ टि,
मुदगर्न दाम ४३८, ४३९	२४३ टि, २४६ टि, २४८ टि.
सुदामा चरित १६९. २७५	२५७ टि.
सुधा निधि ४९३	सूर पचीसी २५७
सुनदा ५१५	सूर पूर्व ब्रजभाषा १५७
मुनीति कुमार चैटर्जी ९६, १५१ टि,	सूर रामायण २५७
१५३, १५६, १५७, १५८, १५९,	सूर शतक २५७
१६४, ३८४ टि ३९८	सूर सदभं २४६ टि.

सूर सागर ९९, १८३ टि, १०३ टि	स्वामिन्याष्टक	२०१
१९४ टि, १९६ टि, १९७ टि,	स्वामी गोवधनदास	३२१
१९८ टि, २०० टि, २०१ टि	स्वामी हरिनाम	३५ १६८
२०२ टि, २०४ टि २०५ टि	ह	
२०६ टि, २०७ टि, २१४ टि	हृष्टर	११७ टि
२१७ टि, २२१ टि, २४१,	हजारीप्रसाद द्विवेदी ५२ टि, ५९ टि,	
२४५ २४९ टि, २५० टि	८६ टि १७४ टि १७५ टि	
२५१ टि, २५२, २५३, २५६ टि,	१७९ १८० १८४, १८६ १८७,	
२५५ टि २५६ टि २५७ टि,	२६६ टि	
३७१ टि, ५८८ टि, ६०० टि,	ऋठी	३६२, ३६३ ३६४
६०१ टि ६१२ टि ६१३ टि	हनुमन्नाटक	१७६
सूर सागर सार २५७	हररत्न	४०५
सूर साठी २५७	हरगौरी विवाह	४०३
सूर सागवली १९४ टि, १९५ टि	हरप्रसाद शास्त्री	४४६
१९६ टि, १९७ टि १९८ टि,	हरमेखला टीका	४०४
२०० टि २५७	हापकिन्स	१८७
सूर साहित्य १८७	हाल	६७
सूर मौरम २४२ टि, २४५ टि	हाल मात वाहन	६७ ४४५
सूयवरण-भारीक १६५	हरिगोमा	५५८
सूय वणन सभ्राट ९७	हरिचरन दाम	१७४
मेनापनि १५२ १७०	हरिनाम २३०, २३१, २३२, २३३ ३४७	
सेवक चन्द्रिका १७८	(स्वामी) हरिनाम ३२४, ३२५ ३२६	
सेवन वानी २३८	२२७	
मेवा फल २५७	हरिनाम दास ५६४, ५६७ टि	
मैयट इब्राहीम पिहानी २९१	हरिप्रकाश यशालय	३६२
सामनाय महापात्र ४३८	हरिभजा मणि मजरी	२०५
स्टडीरा इन तमिल लिटरेचर ६१ टि	हरिभवन चद्रामून	५३८
स्वयम् दव ३०८	हरिनाम विद्या	६०४ टि
स्वयम् भट्टारक स्तोत्र ४०४	हरि बल्लभ	५३० ५३१
स्वगारोहण कथा १०२	हरि व्यास ११४, ११६ ११७ २२९	
स्याम गगार्ड १७६	२०६ ३०७, ३०९ ३१०, ३१८	
स्वामिनी स्तोत्र २०१	२१५ ३२१	

हरिव्यास देल	५१२ टि, ६०२	(चात्ता) हित वृन्दावन दास	३५२,
हरिव्यास छव्वीसी	३१५		३५७, ३५९, ३६०, ३६९, ३६२
हरिराम व्यास	३०७	हितमिगार लाला	३५५
हरिराय	२२१, २४२, २४३, २६७,	हित सुव मागर	३५२
५९५, ६०६		हित हरिवज	३५, १६८, १७६, २३३,
हरिराम शुक्ल व्यास	११६, २३८,		२३४, २३५, २३७, २३८, २४२,
३५२, ३५३, ३५४, ३५५			३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३,
(श्री) हरिणीला	३१६		३५५, ३६२
हरिवज	५३ टि., ६४, ११९	हित हरिवज चरित	२३३
हरिवज दाम	५८४	हितोपदेश	१७५
हरिवज का अनुवाद	४३८	हिन्दी काव्य धारा	१८१
हरिवज टीका	२५७	हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग	
हरिवज देव	३१३, ३१४, ३०१		१८०
हरिश्चन्द्र (ग्रय)	१७२	हिन्दी नाटक . उद्भव और विकास	
हरिश्चन्द्र आग्यान	४२६ टि		१७५ टि, १७६, १८८
हरिश्चन्द्र चरिका	३६२	हिन्दी भाषा और माहित्य	२४३ टि.
हरिश्चन्द्र नाटक	४०५	हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट्स	३०० टि
हरिश्चन्द्र भारतेन्दु	३७६	हिन्दी शब्द मागर	१७७
हरि मिह राज	३७८, ३९८, ३९९.	हिन्दी माहित्य	१७४, १७५, टि.,
हरिहर निवान द्विवेदी	१०१ टि,		१८४, १८६, २४६ टि
१०२ टि		हिन्दी साहित्य की भूमिका	५९ टि
हरे कृष्ण मुत्तोपाध्याय	५५४	हिन्दी माहित्य का आदिकाल	१७९,
हर्जरवर्म देव	७१		१८०
हर्ष चरित	६७	हिन्दी साहित्य का इतिहास	१०४,
हलायुव ठाकुर	५९६		१०५, १७४, १७५ टि., २४३ टि,
हिडोरा लीला	२६९		२५८ टि, २६९ टि
हित चौरासी	३५१ टि, ३५२	हिन्दुस्तानी	१६५, ४१८ टि, ४२० टि.
हिततरंगिणी	१८६	हिन्दु रिलिजन्म	२० टि
(बात्रा) हितदान	३५० टि	हिमागुचद्र चौवरी	४४३ टि, ४५० टि,
(गोस्वामी) हितरूप	३५७		४५१ टि
हितरूप किशोरी लाल	१७४	हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्रंश	
(श्री) हितरूप चरितावली	३६०		१६२ टि.

नी हिस्ट्री आव आसामी लिटरेचर	होम्म आप दि आलवास	६० टि
४२१ टि	हागवती	५०५
हिस्ट्री आव बगाल	हीरावला तत्व	५३८
४४३ टि	हमायू	१०६ १०५ १००
हिस्ट्री आव प्रजबुलि लिटरेचर ९७ टि	हुलास लीला	३५५
३८३ टि ४१९ टि, ४२८ टि	(श्री युत) हुसन जगत भूषण	८१०
८९२ टि, ४९५ टि, ५४० टि	हुमन गाह	४०९ ४१० टि, ४९१
५५१ टि, ५७० टि ५७४ टि	४००	
५७५ टि, ५७६ टि ५७८ टि,	हृपर	६२ टि
५७९ टि, ५८० टि, ५८३ टि	हृदयराम	१७६,
६२०, ६०२ टि	हृदयानन्द	५९४,
(दी) हिस्ट्री आफ मेडिकल वैष्णविज्म	हृषीकेश देव	३००,
इन उडिया ८२० टि, ४३२ टि,	हतु उदय भागवत	४३०
४३४ टि, ४३७ टि ४३९ टि	हेमचन्द्र	६९ ८५ ८६ टि १४५
हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर ४१० टि	टि १५४ १६०	
(दी) हिस्ट्री आफ दी श्री वष्णवाज	हमराज	३१३
१३ टि	हमलता देवी,	५३७
हिस्ट्री आफ श्री वष्णवाज	हरावलीज	१२
०३ टि	हलियाडोरस	१२
(दी) हिस्ट्री आफ मिडिक्वल वष्णविज्म		
इन उडिया	३८४ टि	